Registered No. B. 1819.

अंक ६

महाभारत।

(भाषा--भाष्य--समेत)

संपादक — श्रीपाद दामोदर सातवळेकर.
स्वाध्याय मंडल, औंध (जि. सातारा)

१२ अंकोंका मूल्य म.आ.से. ६) वी.पी.से ७) विदेशके लिये ८)

महाभारतके नियम

(१) महाभारत मूल और भाषांतर प्रति अंकमें सौ पृष्ठ प्रकाशित होगा।

(२) इसमें मूल श्लोक और उसका सरल भाषानुवाद होगा। मूलग्रंथ समाप्त होनेतक कोई टीका टिप्पणी लिखी नहीं जायगी। जो लिखना होगा वह ग्रंथसमाप्ति के पश्चात् विस्तृत लेखमें सविस्तर लिखा जायगा।

(३) भूमिका रूप इस विस्तृत लेखमें धार्मिक, सामाजिक, राजकीय तथा अन्य दृष्टियोंसे परिपूर्ण विवरण होगा, तात्पर्य यह भूमिका का विस्तृत लेख भारतकालीन वस्तुस्थितिका पूर्ण रीतिसे निदर्शक होगा। यह लेख मूलग्रंथ के छपने के पश्चात् छपेगा।

(४) संपूर्ण महाभारतके मुख्य प्रसंगों के सौ चित्र इस ग्रंथमें दिये जांयगे। उन में प्रतिपर्व एक चित्र रंगीन भी होगा। इसके अतिरिक्त उस समयकी भूगोलिक अवस्था बताने वाले कई नकशे दिये जांयगे।

(५) इसके अतिरिक्त ग्राम,नगर,प्रांत, और देशोंके नाम, जातिवाचक नाम, तथा अन्य नामोंका पूर्ण परिचय देनेवाली सूचियां सचित्रभी दी जांयगी।

मूल्य।

(६) बारह अंकोंका अर्थात् १२०० पृष्ठोंका मूल्य मनी आर्डर से ६) छः रु. होगा और वी.पी.से ७.) रु. होगा यहमूल्य वार्षिक मूल्य नहीं है, परंतु १२०० पृष्ठोंका मूल्य है।

(७) बहुधा प्रतिमास १०० पृष्ठोंका एक अंक प्रकाशित होगा, परंतु संभव हुआ तो अधिक अंक भी प्रसिद्ध होंगे।

(८) प्रत्येक अंक तैयार होते ही ग्राहकों के पास भेजा जायगा। यदि किसीको न मिला, तो सूचना १५ दिनोंके अंदर मिलनी चाहिये। जिनकी सूचना १५ दिनोंके अंदर आवेगी उनको ही वह न मिला हुआ अंक पुनः भेजा जायगा। परंतु जिनकी सूचना १५ दिनोंके अंदर न आवेगी उनको ॥=)आनेका मूल्य आनेपर, संभव हुआ तो ही,अंक भेजा जायगा।

(९) सब ग्राहक अपने अपने अंक संभाल कर रखें और चार अथवा पांच महिनों के पश्चात् अपने अंकोंकी जिल्द बनवालें जिससे अंक गुम होनेकी संभावना नहीं होगी। एक या दो मास के पश्चात् किसी को भी पिछला अंक मूल्य देनेपरभी मिलेगा नहीं। क्यों कि एक अंक कम होनेसे

वैशम्पायन उवाच—एतच्छ्रुत्वा वचो राज्ञः सास्मितं मृदु वल्गु च।
वसूनां समयं स्मृत्वाऽथाऽभ्यगच्छदनिन्दिता ॥ १ ॥
उवाच चैव राज्ञः सा ह्लादयन्ती मनो गिरा ।
भविष्यामि महीपाल महिषी ते वशानुगा ॥ २ ॥
यत्तु कुर्यामहं राजञ्छुभं वा यदि वाऽशुभम् ।
न तद्वारयितव्याऽस्मि न वक्तव्या तथाऽप्रियम्॥३॥
एवं हि वर्तमानेऽहं त्वयि वत्स्यामि पार्थिव।
वारिता विप्रियं चोक्ता त्यजेयं त्वामसंशयम्॥ ४ ॥
तथेति सा यदा तूक्ता तदा भरतसत्तम ।
प्रहर्षमतुलं लेभे प्राप्य तं पार्थिवोत्तमम् ॥ ५ ॥
आसाद्य शान्तनुस्तां च बुभुजे कामतो वशी।
न प्रष्टव्येति मन्वानो न स तां किंचिदूचिवान् ॥ ६ ॥
स तस्याः शीलवृत्तेन रूपौदार्यगुणेन च ।
उपचारेण च रहस्तुतोष जगतीपतिः ॥ ७ ॥
दिव्यरूपा हि सा देवी गङ्गा त्रिपथगामिनी।
मानुषं विग्रहं कृत्वा श्रीमन्तं वरवर्णिनी ॥ ८ ॥
भाग्योपनतकामस्य भार्या चोपनताऽभवत् ।

आदिपर्वमें अठानव्वे अध्याय ।

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि आनिन्दिता गङ्गा राजाकी मृदु और मनोहर वाणी मन्द हंसीके साथ सुनकर वसुओंके नियम को स्मरण करके उनके सामने गयीं और बातोंसे भूपतिके चित्तको प्रसन्न करती हुई बोलीं, कि हे महीपाल! मैं तुम्हारी रानी और वशीभूता हूंगी, पर मैं यदि शुभ वा अशुभ कार्य करूं, तो तुम रोकने वा अप्रिय बात कहने नहीं पाओगे; हे पृथ्वीपाल! तुम यदि ऐसे नियमसे मेरे साथ रह सको तो मैं भी तुम्हारे साथ रहूंगी, यदि रोको वा अप्रिय वाणी कहो, तो निश्चय तुमको त्याग दूंगी ! हे भरतश्रेष्ठ। राजाके वह मानने पर गङ्गाने उन भूपालश्रेष्ठको प्राप्त कर अपार आनन्द लाभ किया। (१—५)

भूपति शान्तनु भी उनको लाभकर उनके वशमें होकर मनमाना भोग करने लगे ; पूछना उचित न समझकर उससे कुछ पूछते नहीं थे, वरन उनकी शीलता सुव्यवहार, सुन्दरता, उदारता और निरालेकी सेवासे सन्तुष्ट होने लगे। सुन्दरी दिव्यरूपा त्रिपथगामिनी देवी गङ्गा शोभनीय मानवी शरीर धरकर देवराजके

शान्तनोर्नृपसिंहस्य देवराजसमद्युतेः ॥ ९ ॥
संभोगस्नेहचातुर्यैर्हावलास्यमनोहरैः ।
राजानं रमयामास यथा रेमे तथैव सः ॥ १० ॥
स राजा रतिसक्तत्वादुत्तमस्त्रीगुणैर्हृतः ।
संवत्सरानृतून्मासान्बुबुधे न बहून्गतान् ॥ ११ ॥
रममाणस्तया सार्धं यथाकामं नरेश्वरः ।
अष्टावजनयत्पुत्रांस्तस्याममरसंनिभान् ॥ १२ ॥
जातं जातं च सा पुत्रं क्षिपत्यम्भसि भारत ।
प्रीणाम्यहं त्वामित्युक्त्वा गङ्गा स्रोतस्यमज्जयत् १३
तस्य तन्न प्रियं राज्ञः शान्तनोरभवत्तदा ।
न च तां किंचनोवाच त्यागाद्भीतो महीपतिः ॥१४॥
अथैनामष्टमे पुत्रे जाते प्रहसतीमिव ।
उवाच राजा दुःखार्तः परीप्सन्पुत्रमात्मनः ॥१५॥
मा वधीः कस्य काऽसीति किं हिनत्सि सुतानिति ।
पुत्रघ्नि सुमहत्पापं संप्राप्तं ते सुगर्हितम् ॥ १६ ॥

समान द्योतमान नृपसिंह शान्तनुके सौभाग्य से उनका मनोरथ सफल करती हुई प्यारी पत्नी हुई। वह सम्भोग, स्नेह, चतुरता, सुन्दर नाच और मनोहर हाव भावसे राजाका मन बहलाने लगीं; राजाभी उसके प्रेमी बने; वह अच्छी स्त्रीके गुणसे वशीभूत होकर क्रीडामें आसक्त रहनेसे यह जान नहीं सके, कि अनेक महीने, ऋतु और वर्ष बीत रहे हैं। ९--११

नरेशने मनमानी उनसे क्रीडाकरते हुए क्रमशः अमर सदृश आठ पुत्र उत्पन्न किये। हे भारत! जब जो पुत्र जन्म लेता था, तबही गङ्गा उसको जलमें डालदेती और कुमारको यह कहकर सोतेमें डूबा देती थी, कि तुमको प्रसन्न करती हूं। इस प्रकार क्रमसे सात पुत्रोंको डाल देने पर गङ्गाका ऐसा निर्दयी व्यवहार राजाके लिये अति असन्तोषका होने लगा, पर इस भयसे, कि कहीं छोडकर चली न जाय, उससे कुछ कहते नहीं थे। अनन्तर आठवें पुत्रके जन्म लेने पर जब गङ्गा हंस रही थी, कि ऐसे समयमें राजा अति दुःखी होकर निज पुत्रकी रक्षाके निमित्त उनसे बोले, कि पुत्रको मत मारो; तुम कौन किसकी बेटी हो? क्यों पुत्रको मार डालती हो? री पुत्रघात करनेवाली! तुम यह अति अनुचित और महत् पाप कर रही हो। (१२-१६)

स्त्र्युवाच— पुत्रकाम न ते हन्मि पुत्रं पुत्रवतां वर ।
जीर्णोऽस्तु मम वासोऽयं यथा स समयः कृतः ॥१७॥
अहं गङ्गा जह्नुसुता महर्षिगणसेविता ।
देवकार्यार्थसिद्ध्यर्थमुषिताऽहं त्वया सह ॥ १८ ॥
इमेऽष्टौ वसवो देवा महाभागा महौजसः ।
वसिष्ठशापदोषेण मानुषत्वमुपागताः ॥ १९ ॥
तेषां जनयिता नाऽन्यस्त्वदृते भुवि विद्यते ।
मद्विधा मानुषी धात्री लोके नाऽस्तीह काचन॥ २० ॥
तस्मात्तज्जननीहेतोर्मानुषत्वमुपागता ।
जनयित्वा वसूनष्टौ जिता लोकास्त्वयाऽक्षयाः २१॥
देवानां समयस्त्वेष वसूनां संश्रुतो मया ।
जातं जातं मोक्षयिष्ये जन्मतो मानुषादिति ॥ २२ ॥
तत्ते शापाद्विनिर्मुक्ता आपवस्य महात्मनः ।
स्वस्ति तेऽस्तु गमिष्यामि पुत्रं पाहि महाव्रतम्॥२३॥
एष पर्यायवासो मे वसूनां संनिधौ कृतः ।

नारी बोली, कि हे पुत्र-कामी! तुम पुत्रवान् जनोंमें श्रेष्ठ हुए, तुम्हारे इस पुत्रको न मारूंगी; पर मैंने जो नियम बांधा था, उसके अनुसार तुम्हारे पास मेरे रहनेका काल बीत गया। मैं महर्षियोंसे सेवित जन्हुकी कन्या गङ्गा हूं, देवताके कार्य साधनेके लिये तुमसे सहवास किया था, तुम्हारे पुत्र महातेजस्वी महाभाग अष्टवसु वसिष्ठजीके शापसे मनुष्य होकर जन्मे थे, इस मर्त्यलोक भरमें तुम्हारे विना उनका जन्मदाता होनेवाला कोई नहीं है, और मेरे विना कोई उनकी माता होनेवालीभी नहीं है, इस हेतु मैंने वसुओं की माता होनेके लिये मानवी शरीर को आश्रय किया था, तुमने अष्टवसुओं को जन्म देकर अक्षयलोक लाभ किया। (१७-२१)

वसुओं से मेरा यह नियम स्वीकार किया हुआ था, कि जन्म लेतेही मैं उनको मानवी जन्मसे मुक्त करूंगी। इसलिये उनको उस प्रकारसे जल में डाल दिया था, इससे वे महात्मा आपव ऋषिके शापसे मुक्त हुए, इस समय तुम इस महाव्रत पुत्रको पालो; तुम्हारा मङ्गल होवे, मैं जाती हूं। मैंने तुम्हारे लिये वसुओंके निकट एक पुत्र मांगा था, इससे हरेक वसुके आठवें भागसे इस पुत्रका जन्म हुआ है। सो मेरे प्रस्‍व

मत्प्रसूतं विजानीहि गङ्गादत्तमिमं सुतम् ॥२४॥ [३९९१]

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यामादिपर्वणि संभवपर्वणि भीष्मोत्पत्तावष्टनवतितमोऽध्यायः ॥ ९८ ॥

शान्तनुरुवाच — आपवो नाम को न्वेष वसूनां किं च दुष्कृतम्
यस्याऽभिशापात्ते सर्वे मानुषीं योनिमागताः॥ १ ॥
अनेन च कुमारेण त्वया दत्तेन किं कृतम् ।
यस्य चैव कृतेनाऽयं मानुषेषु निवत्स्यति ॥ २ ॥
ईशा वै सर्वलोकस्य वसवस्ते च वै कथम् ।
मानुषेषूदपद्यन्त तन्ममाऽऽचक्ष्व जाह्नवि ॥ ३ ॥

वैशम्पायन उवाच—एवमुक्ता तदा गङ्गा राजानमिदमब्रवीत् ।
भर्तारं जाह्नवी देवी शान्तनुं पुरुषर्षभ ॥ ४ ॥

गङ्गोवाच — यं लेभे वरुणः पुत्रं पुरा भरतसत्तम ।
वासिष्ठनामा स मुनिः ख्यात आपव इत्युत ॥ ५ ॥
तस्याऽऽश्रमपदं पुण्यं मृगपक्षिसमन्वितम् ।
मेरोः पार्श्वे नरेन्द्रस्य सर्वर्तुकुसुमावृतम् ॥ ६ ॥
स वारुणिस्तपस्तेपे तस्मिन्भरतसत्तम ।

किये हुए, इस पुत्रको "गङ्गादत्त" अर्थात् गङ्गाका दिया हुआ करके जानना । (२२—२४) [३९९१]

आदिपर्व में अठानव्वे अध्याय समाप्त ।

आदिपर्व में निनानवे अध्याय ।

शान्तनुजी बोले, कि आपव नामके कौनसे ऋषि हैं ? और वसुओं ने उनका कौनसा दोष किया था ? और तुम्हारे दिये हुए इस पुत्रने कौनसा दोष किया था, कि उस कर्मफलसे वह मानवलोकमें वास करेगा ? हे जाह्नवी ! वसुलोग सर्व लोकोंके ईश्वर हैं, सो मुझे यह कहो, कि वे क्यों मर्त्यलोकमें उत्पन्न हुए । (१-३)

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि देवी जाह्नवी गङ्गा पुरुषश्रेष्ठ पति राजा शान्तनु से यह कहने लगीं, कि हे भारत-श्रेष्ठ ! पूर्वकालमें वरुणदेवने जिनको पुत्रलाभ किया था, वह वसिष्ठ नामक मुनि आपव नामसे प्रसिद्ध हुए। पर्वतोंमें श्रेष्ठ सुमेरु के किनारे उनका पवित्र आश्रम था, वह आश्रम मृग पक्षियोंसे गूंजता हुआ और सदा सर्वऋतुओंके फूलों से घिरा रहता था। हे भारतश्रेष्ठ ! पुण्यवानोंमें श्रेष्ठ वही वरुणपुत्र मीठे फल मूल और जलयुक्त उस आश्रमके वनमें तप किया करते हैं, हे भरतर्षभ !

वने पुण्यकृतां श्रेष्ठः स्वादुमूलफलोदके ॥ ७ ॥
दक्षस्य दुहिता या तु सुरभीत्यभिशब्दिता ।
गां प्रजाता तु सा देवी कश्यपाद्भरतर्षभ ॥ ८ ॥
अनुग्रहार्थं जगतः सर्वकामदुहां वरा ।
तां लेभे गां तु धर्मात्मा होमधेनुं स वारुणिः ॥ ९ ॥
सा तस्मिंस्तापसारण्ये वसन्ती मुनिसेविते ।
चचार पुण्ये रम्ये च गौरपेतभया तदा ॥ १० ॥
अथ तद्वनमाजग्मुः कदाचिद्भरतर्षभ ।
पृथ्वाद्या वसवः सर्वे देवा देवर्षिसेवितम् ॥ ११ ॥
ते सदारा वनं तच्च व्यचरन्त समन्ततः ।
रेमिरे रमणीयेषु पर्वतेषु वनेषु च ॥ १२ ॥
तत्रैकस्याऽथ भार्या तु वसोर्वासवविक्रम ।
संचरन्ती वने तस्मिन्गां ददर्श सुमध्यमा ॥ १३ ॥
नन्दिनीं नाम राजेन्द्र सर्वकामधुगुत्तमाम् ।
सा विस्मयसमाविष्टा शीलद्रविणसंपदा ॥ १४ ॥
द्यवे वै दर्शयामास तां गां गोवृषभेक्षण ।
आपीनां च सुदोग्ध्रीं च सुवालधिखुरां शुभाम् ॥ १५
उपपन्नां गुणैः सर्वैः शीलेनाऽनुत्तमेन च ।
एवं गुणसमायुक्तां वसवे वसुनन्दिनी ॥ १६ ॥

एक समय सर्वकामदुघा सुरभी नाम्नी देवी दक्षपुत्रीने जगत् पर कृपा प्रगट करनेके लिये कश्यपसे एक कन्या प्रसव की; धर्मात्मा वरुणपुत्रने उस कन्याको लेकर हवनधेनु बनायी सुरभीकी कन्या गौ उन मुनियोंसे सेवित पवित्र और रमणीय उपवनमें वासकर निर्भय चित्तसे चरने लगी । (४-१०)

हे भरतश्रेष्ठ अनन्तर किसी समयमें पृथ्वादिदेव वसुगण देवर्षिसेवित उस वनमें आकर निज निज स्त्रीसे विचरने लगे और रमणीय पर्वत और निकुञ्जमें इधर उधर क्रीडा करनेको प्रवृत हुए। हे इन्द्रसमान विक्रमी ! उनमेंसे एक वसुकी सुन्दरी एक स्त्रीने उस वनमें घूमती हुई सुरभी की कन्या नन्दिनीको देखा। हे राजेन्द्र! वसुकी स्त्रीने शीलसम्पदसे भरी पूरी नन्दिनीको देखा। हे गोबैल समान आंखवाले ! सर्व्वकामदुघाओंमें श्रेष्ठ, प्रशस्त थनवाली, अच्छी दुधारी, सुन्दर

दर्शयामास राजेन्द्र पुरा पौरवनन्दन ।
द्यौस्तदा तां तु दृष्टैव गां गजेन्द्रेन्द्रविक्रम ॥ १७ ॥
उवाच राजंस्तां देवीं तस्या रूपगुणान्वदन् ।
एषा गौरुत्तमा देवी वारुणेरसितेक्षणा ॥ १८ ॥
ऋषेस्तस्य वरारोहे यस्येदं वनमुत्तमम् ।
अस्याः क्षीरं पिबेन्मर्त्यः स्वादु यो वै सुमध्यमे ॥ १९ ॥
दशवर्षसहस्राणि स जीवेत्स्थिरयौवनः ।
एतच्छ्रुत्वा तु सा देवी नृपोत्तम सुमध्यमा ॥ २० ॥
तमुवाचाऽनवद्याङ्गी भर्तारं दीप्ततेजसम् ।
अस्ति मे मानुषे लोके नरदेवात्मजा सखी ॥ २१ ॥
नाम्ना जितवती नाम रूपयौवनशालिनी ।
उशीनरस्य राजर्षेः सत्यसन्धस्य धीमतः ॥ २२ ॥
दुहिता प्रथिता लोके मानुषे रूपसंपदा ।
तस्या हेतोर्महाभाग सवत्सां गां ममेप्सिताम् ॥ २३ ॥
आनयस्वाऽमरश्रेष्ठ त्वरितं पुण्यवर्धन ।
यावदस्याः पयः पीत्वा सा सखी मम मानद ॥ २४ ॥

पूंछ और खुरयुक्त, शुभलक्षणा, सुशीला, और सर्वगुणवती देखकर अचरज मान कर अपने पति द्यु नामक वसुको दिखा या। (११–१७)

हे गजेन्द्र समान विक्रमी पौरव-नन्दन! द्यु नामक वसुने तब उस सुरभी की पुत्री को देखकर अपनी प्रेमिका देवीसे उस के रूप और गुणका वर्णन कर कहा, कि री सुन्दरी! जिन ऋषिका यह उत्तम तपोवन है, यह कालेनेत्रवाली देवी सुरभी की पुत्री उन वरुणपुत्रकी उत्तम गौ है। हे सुन्दरी! जो नर इस नंदिनी का मीठा दूध पीयेगा, वह अटल यौवन पाकर दशसहस्र वर्ष जीवित रहेगा। (१७—२०)

हे नृपोत्तम! सुमध्यमा सुंदरी देवी वसुपत्नीने यह सुनकर अति तेजस्वी पति से कहा, कि मर्त्यलोकमें रूप-यौवनवती भूदेवपुत्री जितवती नामक मेरी सहेली है, वह धीमान् सत्य प्रेमी राजर्षि उशीनरकी बेटी है, मानव लोकमें उसका रूप सम्पद प्रसिद्ध है, हे महाभाग! उसके लिये मुझे बछडा-साहित इस गौको लेनेकी अभिलाषा हुई है। हे पुण्य बढाने वाले अमरश्रेष्ठ! शीघ्र गौको लाइये, हे मानद! मेरी वह सहेली केवल इस

मानुषेषु भवत्वेका जरारोगविवर्जिता ।
एतन्मम महाभाग कर्तुमर्हस्यनिन्दित ॥ २५ ॥
प्रियं प्रियतरं ह्यस्मान्नाऽस्ति मेऽन्यत्कथंचन।
एतच्छ्रुत्वा वचस्तस्या देव्याः प्रियचिकीर्षया॥ २६॥
पृथ्वाद्यैर्भ्रातृभिः सार्धं द्यौस्तदा तां जहार गाम्।
तया कमलपत्राक्ष्या नियुक्तो द्यौस्तदा नृप ॥ २७॥
ऋषेस्तस्य तपस्तीव्रं न शशाक निरीक्षितुम् ।
हृता गौः सा तदा तेन प्रपातस्तु न तर्कितः ॥ २८ ॥
अथाऽऽश्रमपदं प्राप्तः फलान्यादाय वारुणिः।
न चाऽपश्यत्स गां तत्र सवत्सां काननोत्तमे॥ २९ ॥
ततः स मृगयामास वने तस्मिंस्तपोधनः ।
नाऽध्यागमच्च मृगयंस्तां गां मुनिरुदारधीः ॥ ३० ॥
ज्ञात्वा तथाऽपनीतां तां वसुभिर्दिव्यदर्शनः।
ययौ क्रोधवशं सद्यः शशाप च वसूंस्तदा ॥ ३१ ॥
यस्मान्मे वसवो जह्रुर्गां वै दोग्ध्रीं सुवालधिम्।
तस्मात्सर्वे जनिष्यन्ति मानुषेषु न संशयः ॥ ३२ ॥

गौका दूध पीकर मर्त्यलोकमें जरारहित और रोग वर्जित होगी! हे अनिन्दित महाभाग! मेरा यह प्रियकार्य करना आपका कर्तव्य है, इससे अधिकाप्रिय मेरा और कुछ नहीं है। (२१-२६)

द्युनामक वसुने यह बात सुनकर प्रेमिका देवीको प्रिय अनुष्ठान करनेके लिये पृथु आदि भाइयोंके साथ उस कामधेनुको हर लिया! हे भूप! वह उस कालमें अपनी कमलनेत्रा स्त्रीकी बातोंमें आकर उन ऋषिकी कठोर तपस्याकी भली भांति आलोचना नहीं कर सके। वह तर्क एकबार भी मनमें नहीं उठाया, कि इस गौके हरनेसे हमारा पतन होगा। (२६-२८)

अनन्तर वरुणपुत्र ऋषि फल बटोरकर आश्रममें उपस्थित हुए; पर अपने सुहावने काननमें बछडा सहित उस गौको नहीं देखा। तब उदारधीमान उस वनमें इधर उधर ढूंढने लगे। पर देरतक ढूंढ करकेभी नहीं पाया। आगे दिव्य नेत्रसे जाना, कि वसुओंने गौ हर ली है, इससे उन्होंने उसीक्षण क्रोधयुक्त होकर वसुओंको यह शाप दिया, कि जोकि वसुओंने मेरी सुलक्षणवती अच्छी पूछवाली दुधारी कामधेनुको हर लिया है,

एवं शशाप भगवान्वसूंस्तान्भरतर्षभ ।
वशं क्रोधस्य संप्राप्त आपवो मुनिसत्तमः ॥ ३३ ॥
शप्त्वा च तान्महाभागस्तपस्येव मनो दधे ।
एवं स शप्तवान्राजन्वसूनष्टौ तपोधनः ॥ ३४ ॥
महाप्रभावो ब्रह्मर्षिर्देवान्क्रोधसमन्वितः ।
अथाऽऽश्रमपदं प्राप्तास्ते वै भूयो महात्मनः ॥ ३५ ॥
शप्ताः स्म इति जानन्त ऋषिं तमुपचक्रमुः ।
प्रसादयन्तस्तमृषिं वसवः पार्थिवर्षभ ॥ ३६ ॥
लेभिरे न च तस्मात्ते प्रसादमृषिसत्तमात् ।
आपवात्पुरुषव्याघ्र सर्वधर्मविशारदात् ॥ ३७ ॥
उवाच च स धर्मात्मा शप्ता यूयं धरादयः ।
अनुसंवत्सरात्सर्वे शापमोक्षमवाप्स्यथ ॥ ३८ ॥
अयं तु यत्कृते यूयं मया शप्ताः स वत्स्यति ।
द्यौस्तदा मानुषे लोके दीर्घकालं स्वकर्मणा ॥ ३९ ॥
नाऽनृतं तच्चिकीर्षामि क्रुद्धो युष्मान्यदब्रुवम् ।
न प्रजास्यति चाऽप्येष मानुषेषु महामनाः ॥ ४० ॥
भविष्यति च धर्मात्मा सर्वशास्त्रविशारदः ।

सो इसमें सन्देह नहीं, कि वे सब मर्त्यलोकमें जन्म लेंगे। हे भरतकुलप्रदीप! मुनियोंमें श्रेष्ठ भगवान् आपवने क्रोधके वशमें होकर वसुओंको यह शाप दिया! उन महाभाग महर्षिने शाप देकर तप में मन लगाया। (२९—३४)

हे राजन्! क्रोधयुक्त महाप्रतापी ब्रह्मर्षि तपोधन से देवता आठोंवसु इस प्रकारसे शाप पाकर शापके वृत्तान्तसे ज्ञात होकर फिर उन महात्माके आश्रममें आकर उनकी उपासना करने लगे। हे पृथ्वीपालश्रेष्ठ पुरुषव्याघ्र! वसुगणने उन सर्वधर्मनिपुण ऋषिश्रेष्ठ आपवको प्रसन्न करनेके लिये बडी चेष्टा की, पर मनोरथ सफल नहीं हो सका। अनन्तर धर्मात्मा ऋषिने कहा, कि मैंने धर आदि तुम सबोंको जो शाप दिया है, वर्षभरमें तुम उस शापसे मुक्त हो सकोगे, पर तुम जिसके लिये शापग्रस्त हुए हो, वह द्यु-नामक वसुही केवल निज धर्मके दोषसे मनुष्यलोक में दीर्घकालतक वसेगा, मैंने क्रोधित होकर जो कहा है, उसकी विरुद्धता नहीं कर सकूंगा। (३४--४०)

यह महामना द्यु नामक वसु मर्त्य-

पितुः प्रियहिते युक्तः स्त्रीभोगान्वर्जयिष्यति॥ ४१॥
एवमुक्त्वा वसून्सर्वान्स जगाम महानृषिः।
ततो मामुपजग्मुस्ते समेता वसवस्तदा ॥ ४२॥
अयाचन्त च मां राजन्वरं तच्च मय कृतम् ।
जाताञ्जातान्प्रक्षिपाऽस्मान्स्वयं गङ्गे त्वमम्भसि४३॥
एवं तेषामहं सम्यक्शप्तानां राजसत्तम ।
मोक्षार्थं मानुषाल्लोकाद्यथावत्कृतवत्यहम् ॥ ४४ ॥
अयं शापाहषिस्तस्य एक एव नृपोत्तम ।
द्यौ राजन्मानुषे लोके चिरं वत्स्यति भारत ॥ ४५ ॥
वैशम्पायन उवाच–एतदाख्याय सा देवी तत्रैवाऽन्तरधीयत ।
आदाय च कुमारं तं जगामाऽथ यथेप्सितम्॥ ४६ ॥
स तु देवव्रतो नाम गाङ्गेय इति चाऽभवत् ।
द्युनामा शांतनोः पुत्रः शांतनोरधिको गुणैः ॥४७॥
शांतनुश्चाऽपि शोकार्तो जगाम स्वपुरं ततः।
तस्याऽहं कीर्तयिष्यामि शान्तनोरधिकान्गुणान्४८॥
महाभाग्यं च नृपतेर्भारतस्य महात्मनः ।

लोकमें सन्तान उत्पादन नहीं करेगा, स्त्रीमिलन त्याग देगा, और धर्मात्मा सर्व शास्त्रोंमें पण्डित होकर पिताके प्रिय कार्यमें सदा नियुक्त रहेगा । महर्षि सब वसुओंसे यह बात कहकर चले गये । तब सब वसुओंने एकत्र होकर मेरे पास आकर प्रार्थनापूर्वक कहा, कि हे गंगे ! हमारे जन्म लेतेही तुम स्वयं हमें जलमें डाल देना । हे राजश्रेष्ठ ! शापसे ग्रसित वसुओंको शापसे बचानेके लिये मैंने वैसा किया है । हे नृपोत्तम भारत ! उन ऋषि के शापसे यह द्यु नामक वसु अकेले दीर्घकाल मनुष्यलोकमें वसेगे । (४०—४५)

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि देवी गङ्गा यह कहकर उस स्थानहीसे अन्तर्हित हुई और उस कुमारको लेकर मनमाने स्थानको पधारीं। वह द्यु नामक वसु शान्तनुकी सन्तान होकर देवव्रत और गाङ्गेय नामसे प्रसिद्ध हुए और शान्तनुसे भी अधिक गुणशील भये थे । इधर शान्तनुने शोकयुक्त होकर निज पुरमें प्रवेश किया। हे महाराज! इसक्षण उन महात्मा भारत राजा शान्तनु के अनुपम गुण और महाभाग्यकी कथा कहूंगा, जिनका देदीप्यमान इतिहास महाभारत करके प्रसिद्ध

यस्येतिहासो द्युतिमान्महाभारतमुच्यते ॥४९॥ [४०४०]

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यामादिपर्वणि संभवपर्वण्यापवोपाख्याने नवनवतितमोऽध्यायः ॥ ९९ ॥

वैशम्पायन उवाच-स राजा शान्तनुर्धीमान्देवराजर्षिसत्कृतः ।
धर्मात्मा सर्वलोकेषु सत्यवागिति विश्रुतः ॥ १ ॥
दमो दानं क्षमा बुद्धिर्ह्रीर्धृतिस्तेज उत्तमम् ।
नित्यान्यासन्महासत्त्वे शान्तनौ पुरुषर्षभे ॥ २ ॥
एवं स गुणसंपन्नो धर्मार्थकुशलो नृपः ।
आसीद्भरतवंशस्य गोप्ता सर्वजनस्य च ॥ ३ ॥
कम्बुग्रीवः पृथुव्यंसो मत्तवारणविक्रमः ।
अन्वितः परिपूर्णार्थैः सर्वैर्नृपतिलक्षणैः ॥ ४ ॥
तस्य कीर्तिमतो वृत्तमवेक्ष्य सततं नराः ।
धर्म एव परः कामादर्थाच्चेति व्यवस्थिताः ॥ ५ ॥
एतान्यासन्महासत्त्वे शांतनौ पुरुषर्षभे ।
न चाऽस्य सदृशः कश्चिद्धर्मतः पार्थिवोऽभवत् ॥६॥
वर्तमानं हि धर्मेषु सर्वधर्मभृतां वरम् ।
तं महीपा महीपालं राजराज्येऽभ्यषेचयन् ॥ ७ ॥

हुआ है। (४६--४९)

आदि पर्वमें निनानवे अध्याय समाप्त।

आदि पर्व में एक सौ अध्याय ।

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि धीमान् शान्तनु सत्यवादी करके सर्व लोकों में प्रसिद्ध और देवता तथा राजर्षियोंसे सत्कार किये जाते थे। हे पुरुषश्रेष्ठ! महासत्त्व शान्तनुमें दम, दान, क्षमा, बुद्धि, लज्जा, धैर्य, और बडा प्रभाव यह सब गुण सदा विद्यमान थे। ऐसे सुगुणशाली, धर्मार्थपरायण वह राजा भरतवंश और सर्व जनोंके रक्षक थे; वह शङ्खसी ग्रीवायुक्त, बृहत् स्कन्धधारी, उन्मत्त हस्तिवत् पराक्रमी, विक्रमी, और संपूर्ण अर्थ और राजलक्षणोंसे अलंकृत थे। मानववृन्दने उस कीर्तिमान पुरुषके चरित्रको देखकर यह ठहराया था, कि काम और अर्थसे धर्मही श्रेष्ठ है; पुरुषश्रेष्ठ महासत्त्व शान्तनुमें यह सब गुण थे। (१—६)

कोई पृथ्वीपाल धर्मके विषयमें उनके समान नहीं हो सके। भूपोंने उन राजाको धर्मपथमें वर्तमान और धार्मिकोंमें प्रधान देखकर राजाओंके प्रधान पद पर बैठाया;

वीतशोकभयाबाधाः सुखस्वप्नविबोधनाः ।
पतिं भारतगोप्तारं समपद्यन्त भूमिपाः ॥ ८ ॥
तेन कीर्तिमता शिष्टाः शक्रप्रतिमतेजसा ।
यज्ञदानक्रियाशीलाः समपद्यन्त भूमिपाः ॥ ९ ॥
शान्तनुप्रमुखैर्गुप्ते लोके नृपतिभिस्तदा ।
नियमात्सर्ववर्णानां धर्मोत्तरमवर्तत ॥ १० ॥
ब्रह्म पर्यचरत्क्षत्रं विशः क्षत्रमनुव्रताः ।
ब्रह्मक्षत्रानुरक्ताश्च शूद्राः पर्यचरन्विशः ॥ ११ ॥
स हास्तिनपुरे रम्ये कुरूणां पुटभेदने ।
वसन्सागरपर्यन्तामन्वशासद्वसुंधराम् ॥ १२ ॥
स देवराजसदृशो धर्मज्ञः सत्यवागृजुः ।
दानधर्मतपोयोगाच्छ्रिया परमया युतः ॥ १३ ॥
अरागद्वेषसंयुक्तः सोमवत्प्रियदर्शनः ।
तेजसा सूर्यकल्पोऽभूद्वायुवेगसमो जवे ।
अन्तकप्रतिमः कोपे क्षमया पृथिवीसमः ॥ १४ ॥
वधः पशुवराहाणां तथैव मृगपक्षिणाम् ।

वे शोक, भय और बाधाओंसे रहित होकर सुखसे सोते और सुखसे जागते थे, सो भारतवर्षाधिप शान्तनुको उन्होंने पति समझा था। स्वर्गनाथके समान तेजस्वी कीर्तिमान् उन सम्राटके शासनके अनुसार नरेशवृन्द यागशील, और सुक्रिया युक्त हुए थे। तब शान्तनु आदि भूपालोंसे प्रजा रक्षित और सुनियम भली भांति स्थापित होनेसे सर्व वर्णोंका धर्म बढने लगा। (८—१०)

क्षत्रिय लोग ब्राह्मणोंकी सेवामें, वैश्य लोग क्षत्रियों की सेवामें और शूद्र लोग ब्राह्मण और क्षत्रियोंके प्रेमी रहकर वैश्यों की सेवामें लगे रहे। राजा शान्तनु कुरुवंशियोंकी कुलक्रमिक रमणीय राजधानी हस्तिनापुरमें बसकर सागर सहित धरतीको शासने लगे। धर्मशील, सत्यवादी और सरल स्वभावी धरतीनाथ शान्तनु दान धर्म और तपस्याके बलसे देवराजके समान श्रीमान् हुए थे। वह क्रोधद्वेष-वर्जित देखनेमें चन्द्रमा ऐसे प्यारे, तेजमें सूर्य सदृश, वेगमें पवन समान, क्रोधमें यमराजकी भांति और क्षमागुणमें पृथ्वीकी नाई थे। हे राजन्! उनके राज्यके समय पशु, सूवर, मृग, पक्षी आदि जीव नहीं मारे जाते थे। (१०-१५)

शान्तनौ पृथिवीपाले नाऽवर्तत तथा नृप ॥ १५ ॥
ब्रह्मधर्मोत्तरे राज्ये शान्तनुर्विनयात्मवान्।
समं शशास भूतानि कामरागविवर्जितः ॥ १६ ॥
देवर्षिपितृयज्ञार्थमारभ्यन्त तदा क्रियाः।
न चाऽधर्मेण केषां चित्प्राणिनामभवद्वधः॥ १७ ॥
असुखानामनाथानां तिर्यग्योनिषु वर्तताम्।
स एव राजा सर्वेषां भूतानामभवत्पिता ॥ १८ ॥
तस्मिन्कुरुपतिश्रेष्ठे राजराजेश्वरे सति ।
श्रिता वागभवत्सत्यं दानधर्माश्रितं मनः ॥ १९ ॥
स समाः षोडशाऽष्टौ च चतस्रोऽष्टौ तथाऽपराः।
रतिमप्राप्नुवन्स्त्रीषु बभूव वनगोचरः ॥ २० ॥
तथारूपस्तथाचारस्तथावृत्तस्तथाश्रुतः ।
गाङ्गेयस्तस्य पुत्रोऽभून्नाम्ना देवव्रतो वसुः ॥ २१ ॥
सर्वास्त्रेषु स निष्णातः पार्थिवेष्वितरेषु च।
महाबलो महासत्त्वो महावीर्यो महारथः ॥ २२ ॥
स कदाचिन्मृगं विद्ध्वा गङ्गामनुसरन्नदीम्।
भागीरथीमल्पजलां शान्तनुर्दृष्टवान्नृपः ॥ २३ ॥

वह राज्यको अहिंसा रूपी ब्रह्मधर्म से अलंकृत करके स्वयं काम क्रोधसे रहित, नम्र और यत्नशील होकर विना पक्षपात सर्व प्राणियोंका शासन करते थे । उन दिनों देव-यज्ञ, ऋषियज्ञ और पितृयज्ञ की क्रिया होने लगीं, कोई अधर्म करके किसी जीवको मारता नहीं था। वह राजा दीन, दुःखी, अनाथ और पक्षी योनि में जन्म लिये हुए सर्व जीवोंके पिता के समान थे; और उनके साम्राज्यके कालमें वाणीने सत्यका तथा मनने दान-धर्मका आश्रय किया, और वह छत्तीस वर्ष तक स्त्री सम्भोगादि विषय सुख न प्राप्त होने के कारण वनको सिधारे। गङ्गाके गर्भ से जन्मे वसु उन के पुत्र देवव्रत सुन्दरता, आचार चरित्र और विद्या सर्व विषयहीमें उनके सदृश हुए थे। (१६-२१)

महाबलवीर्यवन्त महासत्ववान् महारथी और गदादि सर्व अस्त्रोंके चलाने में निपुण नृपवर शान्तनुने एक समय एक मृगको बींधकर उसके पीछे जाते हुए निकटकी नदी भागीरथी गङ्गाको स्वल्प जलयुक्त देखा । पुरुषश्रेष्ठ

तां दृष्ट्वा चिन्तयामास शान्तनुः पुरुषर्षभः ।
स्यन्दते किं त्वियं नाऽद्य सरिच्छ्रेष्ठा यथा पुरा॥२४॥
ततो निमित्तमन्विच्छन्ददर्श स महामनाः ।
कुमारं रूपसंपन्नं बृहन्तं चारुदर्शनम् ॥ २५ ॥
दिव्यमस्त्रं विकुर्वाणं यथा देवं पुरन्दरम् ।
कृत्स्नां गङ्गां समावृत्य शरैस्तीक्ष्णैरवस्थितम् ॥२६॥
तां शरैराचितां दृष्ट्वा नदीं गङ्गां तदन्तिके ।
अभवद्विस्मितो राजा दृष्ट्वा कर्माऽतिमानुषम् ॥२७॥
जातमात्रं पुरा दृष्ट्वा तं पुत्रं शान्तनुस्तदा ।
नोपलेभे स्मृतिं धीमानभिज्ञातुं तमात्मजम् ॥ २८ ॥
स तु तं पितरं दृष्ट्वा मोहयामास मायया ।
संमोह्य तु ततः क्षिप्रं तत्रैवाऽन्तरधीयत ॥ २९ ॥
तदद्भुतं ततो दृष्ट्वा तत्र राजा स शांतनुः ।
शंकमानः सुतं गंगामब्रवीद्दर्शयेति ह ॥ ३० ॥
दर्शयामास तं गंगा बिभ्रती रूपमुत्तमम् ।
गृहीत्वा दक्षिणे पाणौ तं कुमारमलंकृतम् ॥ ३१ ॥
अलंकृतामाभरणैर्विरजोम्बरसंवृताम् ।

शान्तनु वह देखकर सोचने लगे, कि इस जलभरी गङ्गामें आज क्यों पहिलेके समान सोता नहीं देखता हूं? अनन्तर उसका कारण ढूंढते हुए देखा, कि बडा भारी देखनेमें सुन्दर रूपधारी और देवराज सदृश सुन्दर एक कुमार तेजबाण-जालसे गङ्गाजीके सोतोंको रोक कर दिव्यास्त्र चला रहा है। (२२–२६)

राजाने अपने पासहीमें नदीगङ्गाको बाणोंसे ढंपी हुई देखकरके बालकका अलौकिक आश्चर्य कार्य निहार कर अचरज माना! धीमान् शान्तनुने पहिले जन्म लेनेही पर पुत्रको देखा था, सो इस क्षण निज पुत्र करके पहिचाननेके योग्य कोई लक्षण उनके स्मरणपथमें आरूढ नहीं हुआ; कुमार पिताको देख करकेही मायासे उनको मुग्ध करके उस स्थानहीसे अन्तर्हित हुए। अनन्तर राजा शान्तनु वह आश्चर्य लीला देखकर शङ्का-युक्त होकरके गंगासे बोले, कि उस अन्त-र्हित हुए कुमारको मुझे दिखाओ। २७-३०

गंगाने उत्तम रूप धरकर दहिने हाथ में उस अलंकृत कुमारको लेकर राजा-को दिखाया। निर्मल वस्त्रसे भली

दृष्टपूर्वामपि स तां नाऽभ्यजानात्स शांतनुः॥ ३२॥

गङ्गोवाच — यं पुत्रमष्टमं राजंस्त्वं पुरा मय्यविन्दथाः।
स चाऽयं पुरुषव्याघ्र सर्वास्त्रविदनुत्तमः ॥ ३३ ॥
गृहाणेमं महाराज मया संवर्धितं सुतम् ।
आदाय पुरुषव्याघ्र नयस्वैनं गृहं विभो ॥ ३४ ॥
वेदानधिजगे साङ्गान्वसिष्ठादेष वीर्यवान् ।
कृतास्त्रः परमेष्वासो देवराजसमो युधि ॥ ३५ ॥
सुराणां संमतो नित्यमसुराणां च भारत ।
उशना वेद यच्छास्त्रमयं तद्वेद सर्वशः ॥ ३६ ॥
तथैवाऽङ्गिरसः पुत्रः सुरासुरनमस्कृतः ।
यद्वेद शास्त्रं तच्चापि कृत्स्नमस्मिन्प्रतिष्ठितम् ।
तव पुत्रे महाबाहौ सांगोपांगं महात्मनि ॥ ३७ ॥
ऋषिः परैरनाधृष्यो जामदग्न्यः प्रतापवान् ।
यदस्त्रं वेद रामश्च तदेतस्मिन्प्रतिष्ठितम् ॥ ३८ ॥
महेष्वासमिमं राजन्राजधर्मार्थकोविदम् ।
मया दत्तं निजं पुत्रं वीरं वीर गृहं नय ॥ ३९ ॥

भांति आवृता और नाना आभूषणोंसे सजी हुई गंगाको पहिले देखने परभी इस समय उन्होंने नहीं पहिचाना ! तब गंगा बोली, कि हे पुरुषव्याघ्र नृपते ! पहिले तुमने मेरे गर्भसे जो आठवां पुत्र लाभ किया था, यह वही पुत्र है । यह सम्पूर्ण अस्त्र विद्याओंमें अति पण्डित हुआ है । हे विभो, महाराज! इस पुत्रको मैंने बढाया है, इसे घरको ले जाओ। यह कुमार युद्धमें देवराज समान बडे चापधारी, अस्त्र विद्यामें दक्ष और वीर्यवान् हुआ है; तुम्हारे इस पुत्रने ऋषि वसिष्ठसे छओं अंगके सहित वेद पढ लिया है। (३१–३५)

हे भारत ! यह सुर और असुर दोनोंके प्यारे हैं; असुरोंके गुरु उशना जिन जिन शास्त्रोंसे ज्ञात हैं, इस पुत्रने वह सब पढ लिये; और अंगिराके पुत्र तथा सुरासुरोंके नमस्कारयोग्य बृहस्पतिजी जो जो शास्त्र जानते हैं, इस पुत्रने वह सबभी सीख लिये हैं । प्रतापी कठोर ऋषि जामदग्न्य राम जिन सब अस्त्रविद्याओंसे ज्ञात हैं, इस महाबाहु महात्मा पुत्रमें सांगोपांग वह सब विद्या अधिष्ठित हुई हैं। हे राजन् , हे वीर ! धर्मार्थ कोविद महाधनुर्धारी तुम्हारे इस वीर

वैशम्पायन उवाच—तयैवं समनुज्ञातः पुत्रमादाय शांतनुः।
भ्राजमानं यथाऽऽदित्यमाययौ स्वपुरं प्रति॥ ४०॥
पौरवस्तु पुरीं गत्वा पुरन्दरपुरोपमाम्।
सर्वकामसमृद्धार्थं मेने सोऽऽत्मानमात्मना॥ ४१॥
पौरवेषु ततः पुत्रं राज्यार्थमभयप्रदम्।
गुणवन्तं महात्मानं यौवराज्येऽभ्यषेचयत्॥ ४२॥
पौरवाञ्छान्तनोः पुत्रः पितरं च महायशाः।
राष्ट्रं च रञ्जयामास वृत्तेन भरतर्षभ॥ ४३॥
स तथा सह पुत्रेण रममाणो महीपतिः।
वर्तयामास वर्षाणि चत्वार्यमितविक्रमः॥ ४४॥
स कदाचिद्वनं यातो यमुनामभितो नदीम्।
महीपतिरनिर्देश्यमाजिघ्रद्गन्धमुत्तमम्॥ ४५॥
तस्य प्रभवमन्विच्छन्विचचार समन्ततः।
स ददर्श तदा कन्यां दाशानां देवरूपिणीम्॥ ४६॥
तामपृच्छत्स दृष्ट्वैव कन्याममसितलोचनाम्।
कस्य त्वमसि का चाऽसि किं च भीरु चिकीर्षसि ४७

पुत्र को मैं इस समय दे देती हूं, इसे घर लेते जाओ। (३६—३९)

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि राजा शान्तनु गंगासे ऐसी आज्ञा पाकर दिवाकर सदृश देदीप्यमान पुत्रको लेकर अपने पुरमें आये और उन्होंने पुरन्दरपुर ऐसी पुरीमें प्रवेशकर अपनेको अति सम्पद युक्त और सिद्धकाम समझा। अनन्तर पौरववंश के राज्यको भले प्रकार रखनेके निमित्त अभय-देनेवाले और गुणशील महात्मा पुत्रको यौवराज्यमें अभिषिक्त किया। हे भरतर्षभ! महायशस्वी शान्तनुपुत्रने सुचरित्रसे अपने पिता, पौरवगण और प्रजावृन्द सबोंको प्रेमी बनाया था। अपरिमित विक्रमयुक्त महीपाल शान्तनुने अपने पुत्रके साथ आमोद आनन्दमें चार वर्षकाल काटा। (४०—४४)

किसी समयमें उन महीपति शान्तनु ने यमुनातटके वनमें जाकर एक प्रकार की अनजानी अच्छी गन्धका अनुभव किया। यह पता लगानेके लिये, कि कहांसे वह गन्ध आ रही थी, चारों ओर घूमघाम कर अन्तमें देवरूपिणी एक दासीको देखा; काली आंखवाली उस कन्याको देख करकेही उन्होंने पूछा, कि री भीरु! तुम कौन, किसकी बेटी हो?

साऽब्रवीद्दाशकन्याऽस्मि धर्मार्थं वाहये तरीम् ।
पितुर्नियोगाद्भद्रं ते दाशराज्ञो महात्मनः ॥ ४८ ॥
रूपमाधुर्यगन्धैस्तां संयुक्तां देवरूपिणीम् ।
समीक्ष्य राजा दाशेयीं कामयामास शांतनुः॥ ४९ ॥
स गत्वा पितरं तस्या वरयामास तां तदा ।
पर्यपृच्छत्ततस्तस्याः पितरं सोऽऽत्मकारणात् ॥५०॥
स च तं प्रत्युवाचेदं दाशराजो महीपतिम् ॥ ५१ ॥
जातमात्रैव मे देया वराय वरवर्णिनी ।
हृदि कामस्तु मे कश्चित्तं निबोध जनेश्वर ॥ ५२ ॥
यदीमां धर्मपत्नीं त्वं मत्तः प्रार्थयसेऽनघ ।
सत्यवागसि सत्येन समयं कुरु मे ततः ॥ ५३ ॥
समयेन प्रदद्यां ते कन्यामहमिमां नृप ।
न हि मे त्वत्समः कश्चिद्वरो जातु भविष्यति॥ ५४ ॥
शान्तनुरुवाच —श्रुत्वा तव वरं दाश व्यवस्येयमहं तव ।
दातव्यं चेत्प्रदास्यामि न त्वदेयं कथंचन ॥ ५५ ॥

इस वनमें क्यों आई हो ? कन्या बोली, कि तुम्हारा मङ्गल होवे, मैं दासकन्या हूं, महात्मा दासराज मेरे पिता हैं । उन की आज्ञासे मैं धर्मके लिये नाव चलाती हूं । (४९—४८)

राजा शान्तनने उस दासकन्याको रूपवती सुगन्धवती मधुरतासे मोहिनी और देवरूपिणी देखकर मनही मनमें उसकी कामना की, फिर उसके पिताके पास जाकर वह कन्या मांगी और यहभी पूछा, कि मुझसे विवाह कर देनेको संमत हो वा नहीं । दासराजने उनसे कहा, कि हे नरेश ! इस सुन्दरीने जब जन्म लिया है, तभी निश्चय हुआ है, कि यह कन्या किसी वरको सम्प्रदान की जायगी, पर मेरी एक इच्छा है, उसे सुनिये; हे अनघ ! आप सत्यवादी हैं, अतएव यदि इस कन्याको धर्मपत्नी बनानेकी प्रार्थना करें, तो आपको मेरे पास सत्य करके एक बात अङ्गीकार करनी होगी । हे नृप ! उसके अंगिकार करनेहीसे मैं कन्याको दान कर दूंगा । मेरे लिये आपके समान सुपात्र फिर कभी न मिलेगा । (४९—५४)

शान्तनु बोले, कि हे दास ! कहो, तुम क्या वर मांगते हो । मैं सुनकर उसकी व्यवस्था करूंगा, यदि देने योग्य हो, तो दूंगा, न देनेका हो, तो न दे

दाश उवाच —अस्यां जायेत यः पुत्रः स राजा पृथिवीपते।
त्वदूर्ध्वमभिषेक्तव्यो नाऽन्यः कश्चन पार्थिव॥ ५६॥
वैशम्पायन उवाच—नाऽकामयत तं दातुं वरं दाशाय शांतनुः।
शरीरजेन तीव्रेण दह्यमानोऽपि भारत॥ ५७॥
स चिन्तयन्नेव तदा दाशकन्यां महीपतिः।
प्रत्ययाद्धास्तिनपुरं कामोपहतचेतनः॥ ५८॥
ततः कदाचिच्छोचन्तं शान्तनुं ध्यानमास्थितम्।
पुत्रो देवव्रतोऽभ्येत्य पितरं वाक्यमब्रवीत्॥ ५९॥
सर्वतो भवतः क्षेमं विधेयाः सर्वपार्थिवाः।
तत्किमर्थमिहाऽभीक्ष्णं परिशोचासि दुःखितः॥६०॥
ध्यायन्निव च मां राजन्नाऽभिभाषसि किंचन।
न चाऽश्वेन विनिर्यासि विवर्णो हरिणः कृशः॥ ६१॥
व्याधिमिच्छामि ते ज्ञातुं प्रतिकुर्यां हि तत्र वै।
एवमुक्तः स पुत्रेण शान्तनुः प्रत्यभाषत॥ ६२॥
असंशयं ध्यानपरो यथा वत्स तथा शृणु।

सकूंगा। दासराजने कहा, कि हे पृथ्वीनाथ! इस कन्याके गर्भसे जो पुत्र जन्म लेगा वह पुत्र आपके पीछे राजा होगा; उसीको अभिषिक्त करना होगा, दूसरे पुत्रको अभिषिक्त नहीं कर सकेंगे। (५५—५६)

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि हे भारत! राजा शान्तनु कठिन कामपीडासे जलने परभी दासको वह देनेको सम्मत नहीं हुए। वह उस दास-कन्याकी चिन्ता करते हुए कामसे चेत रहित होकर हस्तिनापुरको लौट गये; अनन्तर एक समय शान्तनु शोकसे विह्वल होकर सोच रहे थे, कि ऐसे समयमें पुत्र देवव्रतने आकर उनसे कहा, कि आपका सबप्रकारसे कुशल देखता हूं, सब राजालोग आपकी आज्ञावश हैं तिसपरभी आप क्यों दुःखित होकर शोक प्रगट कर रहे हैं? मुझे जान पडता है, मानों आप मेरे ही विषयमें सोच रहे हैं। हे राजन्! मुझसे कुछ बात नहीं कहते हैं, पर मैं देखता हूं, कि आप पीले बदरङ्ग और दुबले हो गये हैं, अब घोडे पर चढकर घूमते नहीं; सो जानना चाहता हूं, कि आपको कौनसी पीडा हुई है, मैं उसको दूर करने का उपाय करूंगा। (५७—६२)

पुत्रकी यह बात सुनकर शान्तनु बोले, कि ऐ बेटा! यह सन्देह नहीं है,

अपत्यं नस्त्वमेवैकः कुले महति भारत ॥ ६३ ॥
शस्त्रनित्यश्च सततं पौरुषे पर्यवस्थितः ।
अनित्यतां च लोकानामनुशोचामि पुत्रक॥ ६४ ॥
कथंचित्तव गाङ्गेय विपत्तौ नास्ति नः कुलम्।
असंशयं त्वमेवैकः शतादपि वरः सुतः ॥ ६५ ॥
न चाऽप्यहं वृथा भूयो दारान्कर्तुमिहोत्सहे ।
सन्तानस्याऽविनाशाय कामये भद्रमस्तु ते ॥ ६६ ॥
अनपत्यं त्वेकपुत्रमित्याहुर्धर्मवादिनः ।
अग्निहोत्रं त्रयीविद्या सन्तानमपि चाऽक्षयम्॥ ६७ ॥
सर्वाण्येतान्यपत्यस्य कलां नाऽर्हन्ति षोडशीम्।
एवमेतन्मनुष्येषु तच्च सर्वं प्रजास्विति ॥ ६८ ॥
यदपत्यं महाप्राज्ञ तत्र मे नास्ति संशयः ।
एषा त्रयी पुराणानां देवतानां च शाश्वती ॥ ६९ ॥
त्वं च शूरः सदामर्षी शस्त्रनित्यश्च भारत ।

कि मैं सोचयुक्त हूआ हूं; उसका कारण सुनो। ऐ बेटा भरत-कुल प्रदीप! हमारे इस महत् वंशमें एकमात्र सन्तान तुमने जन्म लिया है, पर तुम सदा अस्त्र चलानेमें नियुक्त और पौरुषकी इच्छा रखते हो, सो मनुष्यकी अनित्यता समझ कर मैं शोकयुक्त हुआ हूं! हे गाङ्गेय! यदि किसी प्रकार तुमको विपत् होय, तो हमारा वंश नहीं रहेगा, पर इसमें सन्देह नहीं, तुम एक पुत्रही मेरे शत पुत्रोंसे श्रेष्ठ हो, इस हेतु मैं फिर विवाह करनेकी इच्छाभी नहीं करता, केवल वंश की रक्षाके लिये इतनीही कामना करता हूं, कि तुम कुशलसे रहो; धर्मवादीलोग कहा करते हैं, कि जिसका एकमात्र पुत्र है, वह निःसन्तान है। (६३-६७)

अग्निहोत्र वेदाध्ययन और शिष्य प्र-शिष्योंसे विद्याका प्रकार इन सबके अक्षय फल देनेवाले होनेपरभी पुत्रके सोलह भागके एकांशकेभी तुल्य नहीं होते और पुत्र जिस प्रकार मनुष्यके लिये मंगल साधनेहारा करके प्रसिद्ध है, उस प्रकार पशु पक्षी आदि दूसरे जीवोंके लिये भी प्रसिद्ध हुआ है। हे महाप्राज्ञ! इस में मुझे संशय नहीं है, कि पुत्रसे स्वर्ग प्राप्त होता है। सब पुराणोंकी जड और देवोंके प्रमाणभूत जो वेद हैं, उससे सदा इसका प्रमाण मिलता है। हे भारत! तुम शूर, अमर्षयुक्त और अस्त्र चलाने में सदा नियुक्त रहते हो, इससे युद्ध-

नाऽन्यत्र युद्धात्तस्मात्ते निधनं विद्यते क्वचित् ॥ ७० ॥
सोऽस्मि संशयमापन्नस्त्वयि शांते कथं भवेत्।
इति ते कारणं तात दुःखस्योक्तमशेषतः ॥ ७१ ॥
वैशम्पायन उवाच—ततस्तत्कारणं राज्ञो ज्ञात्वा सर्वमशेषतः ।
देवव्रतो महाबुद्धिः प्रज्ञया चाऽन्वचिन्तयत् ॥ ७२ ॥
अभ्यगच्छत्तदैवाऽऽशु वृद्धामात्यं पितुर्हितम्।
तमपृच्छत्तदाऽभ्येत्य पितुस्तच्छोककारणम् ॥ ७३ ॥
तस्मै स कुरुमुख्याय यथावत्परिपृच्छते ।
वरं शशंस कन्यां तामुद्दिश्य भरतर्षभ ॥ ७४ ॥
ततो देवव्रतो वृद्धैः क्षत्रियैः सहितस्तदा ।
अभिगम्य दाशराजं कन्यां वव्रे पितुः स्वयम् ॥ ७५ ॥
तं दाशः प्रतिजग्राह विधिवत्प्रतिपूज्य च ।
अब्रवीचैनमासीनं राजसंसदि भारत ॥ ७६ ॥
त्वमेव नाथः पर्याप्तः शांतनोर्भरतर्षभ ।
पुत्रः शस्त्रभृतां श्रेष्ठः किं तु वक्ष्यामि ते वचः ॥ ७७ ॥
को हि संबन्धकं श्लाघ्यमीप्सितं यौनमीदृशम्।

स्थलही में तुम्हारे नष्ट होनेकी सम्भावना देखता हूं। ऐसा होनेसे वंशकी कैसी गति होगी ? इसी लिये मैं संशययुक्त हुआ हूं। बेटा! तुमको दुःखके सम्पूर्ण कारणोंसे ज्ञात किया। (६७-७१)

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि महाबुद्धि देवव्रत राजासे वह सब कारण ज्ञात होकर बुद्धिसे कुछकाल सोच करके उसी-क्षण परम हितैषी वृद्ध मन्त्रीके पास जाकर पिताके उस शोकके कारण का वृत्तान्त पूछा । हे भरतर्षभ ! कुरुराज-पुत्र के यथावत् पूछने पर उस गन्धवती कन्याके लिये दासराजने जो वर मांगा था, मन्त्रीने वह कह सुनाया। अनन्तर देवव्रत वृद्ध क्षत्रियोंसे मिलकर स्वयं दास राजके साथ जाकरके पिताके लिये वह कन्या मांगी। दासराजने उनको विधि-पूर्वक पूजकर स्वागत किया। (७२-७६)

हे भारत! देवव्रतके उस दासराजकी सभामें बैठनेपर दासराजने उनसे कहा, कि हे भरतर्षभ! आप शस्त्र धरनेवालोंमें श्रेष्ठ और शान्तनुके एक मात्र पुत्र हैं; आप सब शस्त्रधारियों में प्रधान हैं, आप से एक बात कहता हूं, सुनिये। कन्या के पिताके साक्षात् इन्द्र होने परभी ऐसे मानयुक्त और प्रार्थनीय सम्बन्धके

अतिक्रामन्न तप्येन साक्षादपि शतक्रतुः ॥ ७८ ॥
अपत्यं चैतदार्यस्य यो युष्माकं समो गुणैः।
यस्य शुक्रात्सत्यवती संभूता वरवर्णिनी ॥ ७९ ॥
तेन मे बहुशस्तात पिता ते परिकीर्तितः।
अर्हः सत्यवतीं वोढुं धर्मज्ञः स नराधिपः ॥ ८० ॥
असितो ह्यपि देवर्षिः प्रत्याख्यातः पुरा मया।
सत्यवत्या भृशं चाऽर्थी स आसीदृषिसत्तमः ॥ ८१ ॥
कन्यापितृत्वात्किंचित्तु वक्ष्यामि त्वां नराधिप।
बलवत्सपत्नतामत्र दोषं पश्यामि केवलं ॥ ८२ ॥
यस्य हि त्वं सपत्नः स्या गन्धर्वस्याऽसुरस्य वा।
न स जातु चिरं जीवेत्त्वयि क्रुद्धे परंतप ॥ ८३ ॥
एतावानत्र दोषो हि नाऽन्यः कश्चन पार्थिव।
एतज्जानीहि भद्रं ते दानादाने परंतप ॥ ८४ ॥
वैशम्पायन उवाच-एवमुक्तस्तु गाङ्गेयस्तद्युक्तं प्रत्यभाषत ।
शृण्वतां भूमिपालानां पितुरर्थाय भारत ॥ ८५ ॥
इदं मे व्रतमादत्स्व सत्यं सत्यवतांवर ।

छोडनेसे उसको अवश्य ही सन्तापित होना पडता है। जो पुरुष-प्रधान तुम्हारे ऐसे गुणवान् हैं, उन्हींके वीर्यसे इस सत्यवती नाम्नी सुन्दरी कन्याने जन्म लिया है; उन्होंने बहुवार मेरे पास आप के पिताका नाम लेकर कहा था, कि वह धर्मज्ञ भूपाल सत्यवतीसे विवाह करनेके योग्यपात्र हैं; फिरभी ऋषिश्रेष्ठ देवर्षि असितने पहिले इस सत्यवतीके लिये बार बार प्रार्थना की थी, मैंने उस पर ध्यान नहीं दिया। हे नृपोत्तम! मैं कन्याका पिता हूं, इस लिये यह एक बात कहता हूं, कि इसमें केवल एक बलवत् सपत्न दोष है। हे शक्रको पीडा देनेवाले! आप जिसके सपत्न हैं, यद्यपि वह गन्धर्व वा असुर होवे, तथापि आपके क्रोधित होनेसे वह कभी दीर्घकाल तक जी नहीं सकेगा, तौभी हे पृथ्वीनाथ! इस विषयमें इतनाही दोष है, कोई दूसरा दोष नहीं; हे परन्तप! आपका मंगल होवे, देने और न देनेके विषयमें यही जानना। (७६-८४)

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि हे भरत-वंशतिलक! गङ्गापुत्र देवव्रत दासराजकी यह बात सुनकर पिताके उपकारके लिये सब वृद्ध क्षत्रियोंके सामने बोले, कि हे

नैव जातो न वाऽजात ईदृशं वक्तुमुत्सहेत् ॥ ८६ ॥
एवमेतत्करिष्यामि यथा त्वमनुभाषसे ।
योऽस्यां जनिष्यते पुत्रः स नो राजा भविष्यति॥८७॥
इत्युक्तः पुनरेवाऽथ तं दाशः प्रत्यभाषत ।
चिकीर्षुर्दुष्करं कर्म राज्यार्थे भरतर्षभ ॥८८॥
त्वमेव नाथः संप्राप्तः शान्तनोरमितद्युतेः ।
कन्यायाश्चैव धर्मात्मन्प्रभुर्दानाय चेश्वरः ॥८९॥
इदं तु वचनं सौम्य कार्यं चैव निबोध मे ।
कौमारिकाणां शीलेन वक्ष्याम्यहमरिंदम ॥९०॥
यत्त्वया सत्यवत्यर्थे सत्यधर्मपरायण ।
राजमध्ये प्रतिज्ञातमनुरूपं तवैव तत् ॥९१॥
नाऽन्यथा तन्महाबाहो संशयोऽत्र न कश्चन ।
तवाऽपत्यं भवेद्यत्तु तत्र नः संशयो महान् ॥ ९२ ॥
वैशम्पायन उवाच–तस्यैतन्मतमाज्ञाय सत्यधर्मपरायणः ।

सत्यवादिन्! जानना, कि सत्यही मेरा व्रत है, मैं सत्य करके कहता हूं ऐसा मनुष्य जन्मा नहीं है, कि यह कहनेका उत्साही हो और यहभी जान नहीं पडता, कि पीछे जन्म लेगा। तुम जो अभिप्राय प्रगट करते हो, मैं वैसाही करूंगा, तुम्हारी इस कन्या के गर्भमें जो सन्तान उत्पन्न होगी, वह सन्तानही हमारे राज्यकी अधिकारी होगी। (८६–८७)

हे भरतर्षभ! उनकी यह बात सुनकर दासराजने राज्यके लिये कठोर कर्म करने पर होकर फिर यह कहा, कि हे धर्मात्मन्! अति प्रकाशमान आप शान्तनु पक्षके कर्ता होकर आये हैं, पर इस कन्या दानकेभी आप कर्ता होवें। हे शान्तशील! इसस्थल में और एक बात कहनी है, उसका भी विधान आप कीजिये। हे अरिन्दम! जिनकी कन्या पर स्नेह है, उनको यह अवश्यमेव कहना पडता है, अतएव मैं कन्याके प्रेमसे ही कहता हूं। हे सत्यधर्मशील! इन राजाके बीचमें आपने सत्यवतीके निमित्त जो प्रतिज्ञा की, वह आप जैसे महानुभाव हैं, उसके योग्य ही हुआ। हे महाबाहो! इस विषयमें मुझे कुछभी शङ्का नहीं है, कि उसका विपरीत नहीं होगा, पर आपकी जो सन्तान होगी उसके लिये मुझे बडा संशय होता है। (८७–९२)

वैशम्पायन बोले, कि हे राजन्! सत्य धर्मशील, सत्यव्रतधारी, गङ्गानन्दन दास-

प्रत्यजानात्तदा राजन्पितुः प्रियचिकीर्षया ॥ ९३ ॥

गाङ्गेय उवाच — दाशराज निबोधेदं वचनं मे नृपोत्तम ।
शृण्वतां भूमिपालानां यद्ब्रवीमि पितुः कृते ॥ ९४ ॥
राज्यं तावत्पूर्वमेव मया त्यक्तं नराधिपाः ।
अपत्यहेतोरपि च करिष्येऽद्य विनिश्चयम् ॥ ९५ ॥
अद्य प्रभृति मे दाश ब्रह्मचर्यं भविष्यति ।
अपुत्रस्याऽपि मे लोका भविष्यन्त्यक्षया दिवि९६॥

वैशम्पायन उवाच—तस्य तद्वचनं श्रुत्वा संप्रहृष्टतनूरुहः ।
ददानीत्येव तं दाशो धर्मात्मा प्रत्यभाषत ॥ ९७ ॥
ततोऽन्तरिक्षेऽप्सरसो देवा सर्षिगणास्तदा ।
अभ्यवर्षन्त कुसुमैर्भीष्मोऽयमिति चाऽब्रुवन् ९८॥
ततः स पितुरर्थाय तामुवाच यशस्विनीम् ।
अधिरोह रथं मातर्गच्छावः स्वगृहानिति ॥ ९९ ॥

वैशम्पायन उवाच—एवमुक्त्वा तु भीष्मस्तां रथमारोप्य भाविनीम् ।
आगम्य हास्तिनपुरं शांतनोः संन्यवेदयत् १००॥

राजका अभिप्राय जानकर पिताकी प्रीतिके लिये प्रतिज्ञा पूर्वक बोले; कि हे नृपोत्तम दासराज! मैं पिताके लिये इन राजाओंके सम्मुख यह कहता हूं सुनो। हे राजवृन्द! मैंने पहिलेही राज्य छोड दिया है, अब मेरे पुत्रके राज्य पानेके विषय में जो शङ्का कही गयी है, उसके निमित्तभी प्रतिज्ञा करता हूं; हे दास! मैं जितने दिन जीवित रहूंगा, आजसे तब-तक के लिये ब्रह्मचर्य अवलम्बन कर लेता हूं, इससे मेरे निःसन्तान होने पर भी मेरा अक्षय स्वर्ग होगा । श्रीवैश-म्पायनजी बोले, कि धर्मात्मा दासराज उनकी वह बात सुनकर परमानन्दसे गदगद होकर कन्यादानके लिये सम्मत हुए। (९३–९७)

अनन्तर आकाशसे अप्सरा गण और ऋषिगण गंगानन्दन देवव्रत के वैसे भयानक संकल्पको सुनकर यह कहके, कि " यह भीष्म है" उनपर फूंल वर्षाने लगे। आगे भीष्म पिताके लिये उस यशस्विनी योजनगन्धा कन्यासे बोले, कि हे माता! रथपर आरूढ होओ, अपने घर-को चलना होगा। वैशम्पायन बोले, कि भीष्मने यह बात कह कर भाविनी गन्ध-वतीको रथपर चढाकर हस्तिनापुर में गमन करके शान्तनुसे सब कह सुनाया। राजगणभी आकर सब मिल करके और

तस्य तद् दुष्करं कर्म प्रशशंसुर्नराधिपाः ।
समेताश्च पृथक्चैव भीष्मोऽयमिति चाऽब्रुवन् १०१
तच्छ्रुत्वा दुष्करं कर्म कृतं भीष्मेण शांतनुः ।
स्वच्छन्दमरणं तुष्टो ददौ तस्मै महात्मने ॥१०२॥
न ते मृत्युः प्रभविता यावज्जीवितुमिच्छसि ।
त्वत्तो ह्यनुज्ञां संप्राप्य मृत्युः प्रभविताऽनघ १०३ ॥ [४१४३]

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यामादिपर्वणि संभवपर्वणि सत्यवतीलाभोपाख्याने शततमोऽध्यायः ॥ १०० ॥

वैशम्पायन उवाच–ततो विवाहे निर्वृत्ते स राजा शांतनुर्नृपः ।
तां कन्यां रूपसंपन्नां स्वगृहे संन्यवेशयत् ॥ १ ॥
ततः शान्तनवो धीमान्सत्यवत्यामजायत ।
वीरश्चित्राङ्गदो नाम वीर्यवान्पुरुषेश्वरः ॥ २ ॥
अथाऽपरं महेष्वासं सत्यवत्यां सुतं प्रभुः ।
विचित्रवीर्यं राजानं जनयामास वीर्यवान् ॥ ३ ॥
अप्राप्तवति तस्मिंस्तु यौवनं पुरुषर्षभे ।
स राजा शान्तनुर्धीमान्कालधर्ममुपेयिवान् ॥ ४ ॥

हरेक मनुष्य पृथक रूपसे उनके उस दुष्कर कार्य की प्रशंसा करने लगे और बोले, कि इनके भयङ्कर कार्य करनेसे इनका नाम भीष्म हुआ है। महाराज शान्तनुने भीष्म कृत वह दुःसाध्य कार्य सुनकर सन्तुष्ट होकरके उन महात्माको इच्छामृत्यु का वर दिया। "हे निष्पाप! जबतक तू जीनेकी इच्छा करेगा तबतक मृत्युका प्रभाव तुझपर न होगा और तेरी आज्ञा प्राप्त करकेही तेरेपर मृत्यु का प्रभाव होजायगा।" (९८–१०३) [४१४३]

आदिपर्वमें एकसौ अध्याय समाप्त।

आदिपर्व में एकसौ पहिला अध्याय।

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि हे महीपाल! अनन्तर विवाह होजाने पर राजा शान्तनुने रूपवती सत्यवतीको अपने घरमें स्थापन किया। उनके वीर्य और सत्यवतीके गर्भसे चित्रांगद नामक धीमान् वीर्यवान् पुरुष-श्रेष्ठ एक वीरपुत्रने जन्म लिया। अनन्तर वीर्यवन्त प्रभु शान्तनुने उस सत्यवतीसे विचित्रवीर्य नामक बडे चापधारी एक पुत्रको उत्पादन किया था। पुरुषश्रेष्ठ विचित्रवीर्य वयःप्राप्त होनेके पहिलेही धीमान् शांतनु कालके वशमें हुए। (१–४)

स्वर्गते शान्तनौ भीष्मश्चित्राङ्गदमरिंदमम्।
स्थापयामास वै राज्ये सत्यवत्या मते स्थितः॥ ५ ॥
स तु चित्राङ्गदः शौर्यात्सर्वांश्चिक्षेप पार्थिवान् ।
मनुष्यं न हि मेने स कंचित्सदृशमात्मनः॥ ६ ॥
तं क्षिपन्तं सुरांश्चैव मनुष्यानसुरांस्तथा ।
गन्धर्वराजो बलवांस्तुल्यनामाऽभ्ययात्तदा॥ ७ ॥
तेनाऽस्य सुमहद्युद्धं कुरुक्षेत्रे बभूव ह ।
तयोर्बलवतोस्तत्र गन्धर्वकुरुमुख्ययोः ।
नद्यास्तीरे सरस्वत्याः समास्तिस्रोऽभवद्रणः॥ ८ ॥
तस्मिन्विमर्दे तुमुले शस्त्रवर्षसमाकुले ।
मायाधिकोऽवधीद्वीरं गन्धर्वः कुरुसत्तमम्॥ ९ ॥
स हत्वा तु नरश्रेष्ठं चित्राङ्गदमरिन्दमम् ।
अन्ताय कृत्वा गन्धर्वो दिवमाचक्रमे ततः॥ १० ॥
तस्मिन्पुरुषशार्दूले निहते भूरितेजसि ।
भीष्मः शान्तनवो राजा प्रेतकार्याण्यकारयत्॥ ११॥
विचित्रवीर्यं च तदा बालमप्राप्तयौवनम् ।

शांतनुके स्वर्गको सिधारनेपर भीष्मने सत्यवतीके मतमें होकर अरिंदम चित्रांगद को राज्य पर अभिषिक्त किया। चित्रांगदने शूरतासे सम्पूर्ण राजों को पराजय किया था! वह किसी मनुष्यको आत्मसदृश नहीं समझते थे; यह देखकर, कि वह सुर असुर मनुष्योंको पराजय कर सकते हैं, चित्रांगद नामक एक बलवन्त गन्धर्वराज उनके पास उपस्थित हुए। अनन्तर शान्तनु पुत्र चित्रांगदके साथ गन्धर्वराज चित्रांगदका कुरुक्षेत्रमें अत्यन्त कठोर युद्ध हुआ; गंधर्वराज और कुरुराज दोनों महाबली थे; सो तीन वर्षोंतक सरस्वती नदीके तटकर दोनोंका युद्ध हुआ। (५—८)

हे नृपश्रेष्ठ! उसमें शस्त्रवृष्टियुक्त और मथनेहारा घोर युद्ध होनेके अंतमें बडी बडी माया धरनेवाले गन्धर्वराजने बीर कुरुनंदनको रणमें गिराया था। गंधर्वराज नरश्रेष्ठ, अरिंदम, चित्रांगदको मारकर एकही कालमें नष्ट करके स्वर्ग पर जा चढे! अति तेजस्वी चित्रांगदके हत होनेपर शांतनुनंदन भीष्मने उनकी सम्पूर्ण अंतक्रिया सम्पन्न की थी। उसके पश्चात् उन महाभुज सत्यव्रतशील भीष्म-ने यौवन न पाये हुए, बालक विचित्र-

कुरुराज्ये महाबाहुरभ्यषिञ्चदनन्तरम् ॥ १२ ॥
विचित्रवीर्यः स तदा भीष्मस्य वचने स्थितः।
अन्वशासन्महाराज पितृपैतामहं पदम् ॥ १३ ॥
स धर्मशास्त्रकुशलं भीष्मं शान्तनवं नृपः।
पूजयामास धर्मेण स चैनं प्रत्यपालयत् ॥ १४ ॥ [४१५७]

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यामादिपर्वणि संभवपर्वणि चित्राङ्गदोपाख्यान एकाधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०१ ॥

वैशम्पायन उवाच—हते चित्राङ्गदे भीष्मो बाले भ्रातरि कौरव ।
पालयामास तद्राज्यं सत्यवत्या मते स्थितः॥ १ ॥
संप्राप्तयौवनं दृष्ट्वा भ्रातरं धीमतां वरः ।
भीष्मो विचित्रवीर्यस्य विवाहायाऽकरोन्मतिम्॥२॥
अथ काशिपतेर्भीष्मः कन्यास्तिस्रोऽप्सरोपमाः।
शुश्राव सहिता राजन्वृण्वाना वै स्वयंवरम् ॥ ३ ॥
ततः स रथिनां श्रेष्ठो रथेनैकेन शत्रुजित् ।
जगामाऽनुमते मातुः पुरीं वाराणसीं प्रभुः ॥ ४ ॥
तत्र राज्ञः समुदितान्सर्वतः समुपागतान् ।
ददर्श कन्यास्ताश्चैव भीष्मः शान्तनुनन्दनः॥ ५ ॥

वीर्यको कुरुराज्यमें अभिषिक्त किया । महाराज ! विचित्रवीर्य भीष्मके आज्ञानुसारी होकर पिताके राज्यको शासने लगे । वह धर्मशास्त्रज्ञ भीष्मको जिस प्रकार पूजते थे, भीष्मनेभी वैसाही धर्मानुसार उनका पालन किया था । (९–१४)

आदिपर्वमें एकसौ पहिला अध्याय समाप्त।[४१५७]

आदिपर्व में एकसौ दूसरा अध्याय ।

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि हे कौरव ! भ्राता चित्रांगदके मारे जानेपर बालक भ्राता विचित्रवीर्य को उपलक्ष कर भीष्म सत्यवतीके मतमें रहकर राज्य पालने लगे । अनन्तर धीमान् भीष्मने भ्राता विचित्रवीर्यको यौवन प्राप्त होते देखकर उनके विवाहका निश्चय किया । हे राजन्! अनन्तर उन्होंने सुना, कि काशीराजकी अप्सरा-समान तीन कन्याओंका एकत्र स्वयंवर होगा । महारथी शत्रुजित् प्रभु भीष्म माताकी आज्ञा लेकर प्रधान रथपर चढकर वाराणसी पुरीमें गये । उन्होंने वहां पहुंचकर देखा, कि सर्वत्रसे राजालोग आकर उपस्थित हुए हैं, और उनकेबीचमें स्वयंवरकी अभिलाषिणी वे तीन कन्या भी विद्यमान हैं । (१—५)

कीर्त्यमानेषु राज्ञां तु तदा नामसु सर्वशः।
एकाकिनं तदा भीष्मं वृद्धं शान्तनुनन्दनम् ॥ ६ ॥
सोद्वेगा इव तं दृष्ट्वा कन्याः परमशोभनाः।
अपाक्रामन्त ताः सर्वा वृद्ध इत्येव चिंतया ॥ ७ ॥
वृद्धः परमधर्मात्मा वलीपलितधारणः ।
किंकारणमिहाऽऽयातो निर्लज्जो भरतर्षभः ॥ ८ ॥
मिथ्याप्रतिज्ञो लोकेषु किं वदिष्यति भारत।
ब्रह्मचारीति भीष्मो हि वृथैव प्रथितो भुवि ॥ ९ ॥
इत्येवं प्रब्रुवन्तस्ते हसन्ति स्म नृपाधमाः।
वैशम्पायन उवाच—क्षत्रियाणां वचः श्रुत्वा भीष्मश्चुक्रोध भारत ॥ १० ॥
भीष्मस्तदा स्वयं कन्या वरयामास ताः प्रभुः।
उवाच च महीपालान्राजञ्जलदनिस्वनः ॥ ११ ॥
रथमारोप्य ताः कन्या भीष्मः प्रहरतां वरः।
आहूय दानं कन्यानां गुणवद्भ्यः स्मृतं बुधैः ॥ १२ ॥
अलंकृत्य यथाशक्ति प्रदाय च धनान्यपि।
प्रयच्छन्त्यपरे कन्यां मिथुनेन गवामपि ॥ १३ ॥
वित्तेन कथितेनाऽन्ये बलेनाऽन्येऽनुमान्य च।

हे राजन् ! जब सब राजाओंके नाम कहे जाने लगे, तब उस अकेले वृद्ध शांतनुपुत्र भीष्माचार्यजीको देख कर वह सुंदर कन्याएं खेदके साथ वहांसे दूर चली गयीं। तथा " यह वृद्ध, सफेद बालोंसे युक्त, भारतोंमें श्रेष्ठ, भीष्म निर्लज्ज बन कर यहां क्यों आगया है? हे भारत ! अपनीही प्रतिज्ञा असत्य करके अब यह जनतामें क्या कहेगा ? भीष्म ब्रह्मचारी है, यह बात सच मुच असत्य ही है। " इस प्रकार बोलते हुए वे सब अधम राजा लोग उसकी हंसी करने लगे। (६—१०)

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि हे भारत ! क्षत्रियोंका उक्त भाषण श्रवण करके भीष्माचार्य क्रोधित हुए, और उन्होंने स्वयं उन तीन कन्याओंको हर लिया और उन कन्याओंको निज रथपर चढाकर मेघस्वन से बोलने लगे। बुधोंसे कथित हुआ है, कि गुणवान् वरको बुलवाकर यथाशक्ति कन्याको अलंकृत करके धनदानपूर्वक सम्प्रदान करना, और दूसरे लोग दो गौ लेकर कन्यादान करते हैं। कोई कोई पण्डित धन लेकर कन्यादान करते हैं, कोई कोई बलपूर्वक कन्याको लेजाते

प्रमत्तामुपयन्त्यन्ये स्वयमन्ये च विन्दते ॥ १४ ॥
आर्षं विधिं पुरस्कृत्य दारान्विन्दन्ति चाऽपरे।
अष्टमं तमथो वित्त विवाहं कविभिर्वृतम् ॥ १५ ॥
स्वयंवरं तु राजन्याः प्रशंसन्त्युपयान्ति च ।
प्रमथ्य तु हृतामाहुर्ज्यायसीं धर्मवादिनः ॥ १६ ॥
ता इमाः पृथिवीपाला जिहीर्षामि बलादितः ।
ते यतध्वं परं शक्त्या विजयायेतराय वा ॥ १७ ॥
स्थितोऽहं पृथिवीपाला युद्धाय कृतनिश्चयः ।
एवमुक्त्वा महीपालान्काशिराजं च वीर्यवान् ॥ १८ ॥
सर्वाः कन्याः स कौरव्यो रथमारोप्य च स्वकम् ।
आमन्त्र्य च स तान्प्रायाच्छीघ्रं कन्याः प्रगृह्य ताः॥ १९ ॥
ततस्ते पार्थिवाः सर्वे समुत्पेतुरमर्षिताः ।
संस्पृशन्तः स्वकान्बाहून्दशन्तो दशनच्छदान्॥ २० ॥
तेषामाभरणान्याशु त्वरितानां विमुञ्चताम् ।

हैं, कोई कोई कन्याकी सम्मतिसे विवाह करते हैं, कोई कोई प्रमत्ता कन्यासे मिलते हैं, दूसरे लोग दान करनेवाले को बुलाकर वा स्वयं जाकर कन्याको प्राप्त करते हैं और कोई कोई उचित विधानके अनुसार दक्षिणाके स्वरूपमें कन्याको लाभ करते हैं, आठ संख्याओंमें गिने जाते हुए यह शेषोक्त विवाह कवियोंका प्रार्थनीय है; पर राजगण स्वयंवरहीकी प्रशंसा करते हैं और उसमेंही उपगत होते हैं; परन्तु धर्मवादी जन कहते हैं, कि स्वयंवरके स्थलसे विपक्षपक्षको, दबाकर बलपूर्वक जो कन्या ली जाती है, वह पत्नीही श्रेष्ठा है, इस कारण मैं बलपूर्वक इस स्थानसे कन्या हरता हूं, हे राजवृंद! तुममें जिसकी जितनी शक्ति हो, उसके अनुसार जयके लिये यत्नवान् होओ, अथवा हार मान जाओ। हे महीपतिगण! मैं युद्धके लिये निश्चित हो रहा हूं। वीर्यवान् कौरवनंदन काशी-राज और दूसरे महीपालोंसे ऐसा कहकर कन्याओंको अपने रथपर ले करके राजाओंको युद्धार्थ बुलाकर शीघ्र पधारे। (१०—१९)

अनन्तर सम्पूर्ण भूप क्रोधित होकर निज निज बढाई प्रगट करके दांतोंसे होंठ काटते हुए उठ खडे हुए; और उनमेंसे किसी किसी ने क्रोधवश ऐसी शीघ्रता की, कि उनके पहिने हुए आभूषण और कवचादि शरीरसे गिरने लगे,

आमुञ्चतां च वर्माणि संभ्रमः सुमहानभूत् ॥ २१ ॥
ताराणामिव संपातो बभूव जनमेजय ।
भूषणानां च सर्वेषां कवचानां च सर्वशः ॥ २२ ॥
सवर्मभिर्भूषणैश्च प्रकीर्यद्भिरितस्ततः ।
सक्रोधामर्षजिह्मभ्रूकषायीकृतलोचनाः ॥ २३ ॥
सूतोपक्लृप्तान्रुचिरान्सदश्वैरुपकल्पितान् ।
रथानास्थाय ते वीराः सर्वप्रहरणान्विताः ॥ २४ ॥
प्रयान्तमथ कौरव्यमनुसस्रुरुदायुधाः ।
ततः समभवद्युद्धं तेषां तस्य च भारत ॥ २५ ॥
एकस्य च बहूनां च तुमुलं लोमहर्षणम् ॥ २६ ॥
ते त्विषून्दशसाहस्रांस्तस्मिन्युगपदाक्षिपन् ।
अप्राप्तांश्चैव तानाशु भीष्मः सर्वांस्तथांतरा॥ २७ ॥
अच्छिनच्छरवर्षेण महता लोमवाहिना ।
ततस्ते पार्थिवाः सर्वे सर्वतः परिवार्य तम् ॥ २८ ॥
ववृषुः शरवर्षेण वर्षेणेवाऽद्रिमम्बुदाः ।
स तं बाणमयं वर्षं शरैरावार्य सर्वतः ॥ २९ ॥
ततः सर्वान्महीपालान्पर्यविध्यत्त्रिभिस्त्रिभिः ।

उनके वह गिरते हुए, कवच और आभूषण तारोंके पतनके समान दीख पडे! वह सब राजालोग इधर उधर कवच और अलङ्कारोंके गिर जानेसे क्रोध और अमर्षवश भौंहें चढाय और आंखें बढाय अस्त्र शस्त्र लेकर सारथियोंसे अच्छे घोडे जोते हुए, प्रस्तुत सुन्दर रथोंपर चढके अस्त्र शस्त्र उठाकर चले जाते हुए भीष्मको पाछियाते हुए चले। (२०-२५)

हे भारत! अनन्तर अकेले भीष्मसे उन सब राजाओंका रोंयें खडा करनेवाला घोर युद्ध होने लगा। राजा लोगोंने एकही कालमें भीष्मपर दश सहस्र बाण मारे, भीष्म ने उसीक्षण अर्थात् उन बाणोंके आ पहुंचनेके बीचपथहीमें रोंयें तक को बींधनेवाले और बाणोंको बिना रोक टोक की वृष्टिसे टुकरे टुकरे कर डाला। इस के पीछे सब राजालोग चारों ओरसे उनको घेरकर जिस प्रकार बादल दल पर्वतपर बिना रोक टोक जल-धारा वर्षाते हैं, उस प्रकार उनपर बाण वर्षाने लगे। तब भीष्मने बाणजालसे उन सब बाणोंका वर्षना रोककर तीन

एकैकस्तु ततो भीष्मं राजान्विव्याध पञ्चभिः॥ ३० ॥
स च तान्प्रतिविव्याध द्वाभ्यां द्वाभ्यां पराक्रमान् ।
तद्युद्धमासीत्तुमुलं घोरं देवासुरोपमम् ॥ ३१ ॥
पश्यतां लोकवीराणां शरशक्तिसमाकुलम् ।
स धनूंषि ध्वजाग्राणि वर्माणि च शिरांसि च॥ ३२ ॥
चिच्छेद समरे भीष्मः शतशोऽथ सहस्रशः ।
तस्याऽतिपुरुषानन्याँल्लाघवं रथचारिणः ॥ ३३ ॥
रक्षणं चात्मनः संख्ये शत्रवोऽप्यभ्यपूजयन्।
तान्विनिर्जित्य तु रणे सर्वशस्त्रभृतां वरः ॥ ३४ ॥
कन्याभिः सहितः प्रायाद्भारतो भारतान्प्रति।
ततस्तं पृष्ठतो राजञ्छाल्वराजो महारथः॥ ३५ ॥
अभ्यगच्छदमेयात्मा भीष्मं शान्तनवं रणे ।
वारणं जघने भिन्दन्दन्ताभ्यामपरो यथा ॥ ३६ ॥
वासितामनुसंप्राप्तो यूथपो बलिनां वरः ।
स्त्रीकामस्तिष्ठ तिष्ठेति भीष्ममाह स पार्थिवः॥ ३७ ॥

तीन बाणोंसे हरेक महीपालको विद्ध किया राजाओंमें से भी हरेकने पांच बाणोंसे भीष्मको विद्ध किया। (२५- ३०)

हे राजन् ! भीष्मने फिर प्रभाव प्रगट कर दो दो बाणोंसे हर भूपको विद्ध किया। वह युद्ध इतना कठोर होने लगा, कि जो सब वीर देवासुरके युद्धके समान और शरशक्तियोंसे समाकुल उस घोर युद्धको देख रहे थे, उनके लिये भी यह भयानक हो गया, भीष्म युद्धस्थलमें कवच और शिर काटने लगे। तब रथ पर चढे हुए राजालोगोंने शत्रु पक्षी होने पर भी उनके अलौकिक आश्चर्य कार्य, शीघ्र हाथ चलानेका कौशल और आत्मरक्षाको देखकर उनको प्रशंसापूर्वक सम्मान प्रगट किया। अनन्तर शस्त्र धरने वालोंमें श्रेष्ठ भरतवंशतिलक भीष्मने युद्धमें राजाओंको पराजयकर कन्याओंके साथ निज नगर की ओर यात्रा की। (३१–३५)

हे राजन् ! जिस प्रकार महाबली हस्तीदलपति किसी हास्तिनीके प्राप्त किये हुए दूसरे हाथीके दो जंघाको फाड कर हस्तिनी की ओर दौडता है, उस प्रकार अमेयात्मा महारथी शाल्वराज स्त्रीकामी होकर युद्धके लिये भीष्मके पीछे दौडे और वह महाभुज अमर्षयुक्त होकर " तिष्ठ तिष्ठ " ऐसा कहने लगे। शत्रुबल

शाल्वराजो महाबाहुरमर्षेण प्रचोदितः ।
ततः स पुरुषव्याघ्रो भीष्मः परबलार्दनः ॥ ३८ ॥
तद्वाक्याकुलितः क्रोधाद्विधूमोऽग्निरिव ज्वलन् ।
विततेषुधनुष्पाणिर्विकुञ्चितललाटभृत् ॥ ३९ ॥
क्षत्रधर्मं समास्थाय व्यपेतभयसंभ्रमः ।
निवर्तयामास रथं शाल्वं प्रति महारथः ॥ ४० ॥
निवर्तमानं तं दृष्ट्वा राजानः सर्व एव ते ।
प्रेक्षकाः समपद्यन्त भीष्मशाल्वसमागमे ॥ ४१ ॥
तौ वृषाविव नर्दन्तौ बलिनौ वासितान्तरे ।
अन्योन्यमभिवर्तेतां बलविक्रमशालिनौ ॥ ४२ ॥
ततो भीष्मं शान्तनवं शरैः शतसहस्रशः ।
शाल्वराजो नरश्रेष्ठः समवाकिरदाशुगैः ॥ ४३ ॥
पूर्वमभ्यर्दितं दृष्ट्वा भीष्मं शाल्वेन ते नृपाः ।
विस्मिताः समपद्यन्त साधुसाध्विति चाऽब्रुवन् ॥ ४४ ॥
लाघवं तस्य ते दृष्ट्वा समरे सर्वपार्थिवाः ।
अपूजयन्त संहृष्टा वाग्भिः शाल्वं नराधिपम् ॥ ४५ ॥

मथनेवाले पुरुषव्याघ्र भीष्म उस वाक्यसे आकुलित होकर क्रोधसे जलते हुए अग्नि समान जल उठे, क्षत्रिय धर्म-में सच्चे निष्ठावान् उस महारथीने लिलारको हिलोडकर शर और शरासनको फैलाकर शाल्वराजके निमित्त निडर और स्थिर चित्तसे रथको रोक लिया । ३५-४०

सम्पूर्ण राजालोग उनको निवृत्त होते देखकर भीष्म और शाल्व दोनोंका समागम देखनेके लिये खडे होगये । ऋतुमती गौके लिये बलवन्त दो बैल जिस प्रकार तर्जन गर्जन करते हैं, वैसे-ही महाबली पराक्रमी दो भूप आपसमें विक्रम प्रगट करने लगे । नरोंमें श्रेष्ठ शाल्वराजने शतसहस्र शीघ्रगामी शरोंसे भीष्मको ढांप लिया । राजालोग पाहिले ही शाल्वराजसे भीष्मको मथे जाते देखकर अचरज मानकर शाल्वको बार बार साधु-वाद करने लगे और शाल्वराज की लघु हस्तता और रण में पण्डिताई को अव-लोकन कर प्रसन्नचित्त से बडी प्रशंसा करने लगे । (४१—४५)

अनन्तर शत्रु पुर-विजयी शान्तनुपुत्र ने क्षत्रियों की वह प्रशंसा की वाणी सुन करके क्रोधयुक्त होकर " तिष्ठ तिष्ठ " यह बात कही और क्रोधपूर्वक सारथीको

क्षत्रियाणां ततो वाचः श्रुत्वा परपुरंजयः ।
क्रुद्धः शान्तनवो भीष्मस्तिष्ठ तिष्ठेत्यभाषत॥ ४६ ॥
सारथिं चाऽब्रवीत्क्रुद्धो याहि यत्रैष पार्थिवः।
यावदेनं निहन्म्यद्य भुजङ्गमिव पक्षिराट् ॥ ४७ ॥
ततोऽस्त्रं वारुणं सम्यग्योजयामास कौरवः।
तेनाऽश्वांश्चतुरो मृद्गाच्छाल्वराजस्य भूपतेः ॥४८॥
अस्त्रैरस्त्राणि संवार्य शाल्वराजस्य कौरवः।
भीष्मो नृपतिशार्दूल न्यवधीत्तस्य सारथिम् ॥४९॥
अस्त्रेण चाऽप्यथैन्द्रेण न्यवधीत्तुरगोत्तमान्।
कन्याहेतोर्नरश्रेष्ठ भीष्मः शांतनवस्तदा ॥ ५० ॥
जित्वा विसर्जयामास जीवंतं नृपसत्तमम् ।
ततः शाल्वः स्वनगरं प्रययौ भरतर्षभ ॥ ५१ ॥
स्वराज्यमन्वशाच्चैव धर्मेण नृपतिस्तदा ।
राजानो ये च तत्राऽऽसन्स्वयंवरदिदृक्षवः॥ ५२ ॥
स्वान्येव तेऽपि राष्ट्राणि जग्मुः परपुरंजयाः।
एवं विजित्य ताः कन्या भीष्मः प्रहरतां वरः ॥५३॥
प्रययौ हास्तिनपुरं यत्र राजा स कौरवः ।
विचित्रवीर्यो धर्मात्मा प्रशास्ति वसुधामिमाम् ५४

आज्ञा दी, कि जहां वह शाल्वराज हैं, वहां रथको ले चलो; जिस प्रकार गरुड सर्प नष्ट करता है, उस प्रकार मैं आज उसका पूर्णनाश करूंगा। उसके अनन्तर कुरुनन्दन भीष्मने वारुणास्त्र छोडकर उससे शाल्वराजके घोडे नष्ट किये और अस्त्रसे शाल्वराजके सम्पूर्ण अस्त्र दूरकर उनके सारथीको यमराजका पाहुना बनाया। हे नरश्रेष्ठ ! शान्तनुनन्दन भीष्मने कन्याओंके लिये ऐन्द्र अस्त्रसे उनके अच्छे घोडोंको मारा। इस प्रकार से उन्होंने नृपश्रेष्ठ शाल्वराजको जीतकर जीवन शेष रहते ही छोड दिया।४६-५१

आगे राजा शाल्व निज नगर में जाकर धर्मानुसार अपना राज्य पालनेमें प्रवृत्त हुए। शत्रुपुर विजयी जो सब भूप स्वयंवर देखनेको आये थे, वेभी निज निज राज्यको पधारे। महायोद्धा कुरुपुत्र भीष्म इस प्रकार तीन कन्या जीत कर हस्तिनापुरमें उस स्थानकी ओर चले जिस स्थानमें कौरवराज विचित्रवीर्य विराज रहे थे। उनके पिता कुरुवंशी

यथा पिताऽस्य कौरव्यः शांतनुर्नृपसत्तमः।
सोऽचिरेणैव कालेन अत्यक्रामन्नराधिप ॥ ५५॥
वनानि सरितश्चैव शैलांश्च विविधान्द्रुमान्।
अक्षतः क्षपयित्वाऽरीन्संख्येऽसंख्येयविक्रमः ५६॥
आनयामास काश्यस्य सुताः सागरगासुतः।
स्नुषा इव स धर्मात्मा भगिनीरिव चाऽनुजाः॥ ५७॥
यथा दुहितरश्चैव परिगृह्य ययौ कुरून् ।
आनिन्ये स महाबाहुर्भ्रातुः प्रियचिकीर्षया॥ ५८॥
ताः सर्वगुणसंपन्ना भ्राता भ्रात्रे यवीयसे ।
भीष्मो विचित्रवीर्याय प्रददौ विक्रमाहृताः॥ ५९॥
एवं धर्मेण धर्मज्ञः कृत्वा कर्माऽतिमानुषम्।
भ्रातुर्विचित्रवीर्यस्य विवाहायोपचक्रमे ।
सत्यवत्या सह मिथः कृत्वा निश्चयमात्मवान् ॥६०॥
विवाहं कारयिष्यन्तं भीष्मं काशिपतेः सुता।
ज्येष्ठा तासामिदं वाक्यमब्रवीद्धसती तदा ॥ ६१॥
मया सौभपतिः पूर्वं मनसा हि वृतः पतिः।
तेन चाऽस्मि वृता पूर्वमेष कामश्च मे पितुः॥ ६२॥

नृपश्रेष्ठ शान्तनु जिस प्रकार धरती शासते थे, धर्मात्मा विचित्रवीर्यभी उस प्रकार शासन कर रहे थे। हे नराधिप! भीष्म स्वल्पकालके बीचमेंही वन, जल, पर्वत और भांति भांतिके वृक्षयुक्त उपवन अतिक्रम करने लगे। अन्तनर शत्रुकुल नष्टकर रणस्थलसे अक्षत शरीरमें काशीराजकी कन्याओंको ले आये। (५१-५६)

उन धर्मशील महाभुज भीष्मने भ्राता के प्रियसाधनके लिये विक्रमसे लाभ की हुई सर्वगुणयुक्त कुमारियोंको पुत्रवधू, छोटी बहिन और बेटीकी नाईं लेकर कौरवोंके पास आकर कनिष्ठ भ्राता विचित्रवीर्यको देदिया। वह धर्मज्ञ उक्त प्रकार धर्मानुसार अलौकिक कार्य पूराकर भ्राता विचित्रवीर्यके विवाहके लिये प्रबन्ध करने लगे। जितेन्द्रिय भीष्म सत्यवतीसे परामर्श कर काशीराजकी कन्याओंसे विचित्रवीर्यका विवाह कर देना निश्चय कर चुके थे, कि ऐसे समय उन कन्याओंमेंसे बडी कन्या हंसकर उनसे बोली, कि मैं पहिले सौभराज्यके अधीश शाल्वको मनही मनमें पति बना चुकी थी, उन्होंनेभी मनहीमनमें मुझको

मया वरयितव्योऽभूच्छाल्वस्तास्मिन्स्वयंवरे।
एतद्विज्ञाय धर्मज्ञ धर्मतत्त्वं समाचर ॥ ६३ ॥
एवमुक्तस्तया भीष्मः कन्यया विप्रसंसदि ।
चिन्तामभ्यगमद्वीरो युक्तां तस्यैव कर्मणः॥ ६४ ॥
विनिश्चित्य स धर्मज्ञो ब्राह्मणैर्वेदपारगैः ।
अनुजज्ञे तदा ज्येष्ठामम्बां काशिपतेः सुताम् ॥६५॥
अम्बिकाम्बालिके भार्ये प्रादाद्भ्रात्रे यवीयसे।
भीष्मो विचित्रवीर्याय विधिदृष्टेन कर्मणा ॥ ६६॥
तयोः पाणी गृहीत्वा तु रूपयौवनदर्पितः ।
विचित्रवीर्यो धर्मात्मा कामात्मा समपद्यत ॥६७॥
ते चापि बृहती श्यामे नीलकुञ्चितमूर्धजे ।
रक्ततुङ्गनखोपेते पीनश्रोणिपयोधरे ॥ ६८ ॥
आत्मनः प्रतिरूपोऽसौ लब्धः पतिरिति स्थिते ।
विचित्रवीर्यं कल्याण्यौ पूजयामासतुः शुभे ॥६९॥
स चाऽश्विरूपसदृशो देवतुल्यपराक्रमः ।
सर्वासामेव नारीणां चित्तप्रमथनो रहः ॥ ७० ॥

भार्या बनाया था, इसमें मेरे पिताकी इच्छा भी थी, उस स्वयंवर स्थलमें मैं शाल्वहीको वरमाल देती, आप धर्मशील हैं; यह विचारकर धर्मानुसार कार्य कीजिये। (५८-६३)

उस कन्याके विप्रोंकी सभामें यह बात कहने पर धर्मज्ञ वीर भीष्म यह सोचने लगे, कि वर्तमान विषयमें क्या कर्तव्य है। आगे उन्होंने वेदपारग ब्राह्मणोंसे युक्ति निश्चयकर काशी नरेशकी अम्बा नाम्नी उस बडी कन्याको अपनी अभीष्ट पूर्ण करनेकी आज्ञा दी। अनन्तर यथाविधि कर्मानुसार अम्बिका और अम्बालिका नाम्नी काशीराजकी दो छोटी बेटियोंसे विचित्रवीर्यका विवाह करदिया। रूप यौवनयुक्त धर्मात्मा विचित्रवीर्य अम्बिका, अम्बालिकाका पाणिग्रहण कर कामानुवर्त्ती हुए। (६४-६७)

घूंघराले नीले केशवाली, लाल और तुंगनखयुक्त, काली और सुलक्षणा कल्याणी अम्बिका और अम्बालिका दोनों पीननितम्बिनी और पीनपयोधरा थीं। वे विचित्रवीर्य को अपना मनमाना पति पाकर सन्तोष पूर्वक उपासना करने लगीं। अश्विनीकुमार समान रूपवान और देववत् विक्रमी विचित्रवीर्य निराले

ताभ्यां सह समाः सप्त विहरन्पृथिवीपतिः।
विचित्रवीर्यस्तरुणो यक्ष्मणा समगृह्यत ॥ ७१ ॥
सुहृदां यतमानानामाप्तैः सह चिकित्सकैः।
जगामाऽस्तमिवाऽऽदित्यः कौरव्यो यमसादनम् ७२ ॥
धर्मात्मा स तु गाङ्गेयश्चिन्ताशोकपरायणः।
प्रेतकार्याणि सर्वाणि तस्य सम्यगकारयत् ॥ ७३ ॥
राज्ञो विचित्रवीर्यस्य सत्यवत्या मते स्थितः।
ऋत्विग्भिः सहितो भीष्मः सर्वैश्च कुरुपुङ्गवैः॥ ७४ ॥ [४२३१]

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यामादिपर्वणि संभवपर्वणि विचित्रवीर्योपरमे द्व्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०२ ॥

वैशम्पायन उवाच– ततः सत्यवती दीना कृपणा पुत्रगृद्धिनी ।
पुत्रस्य कृत्वा कार्याणि स्नुषाभ्यां सह भारत ॥ १ ॥
समाश्वास्य स्नुषे ते च भीष्मं शस्त्रभृतां वरम्।
धर्मं च पितृवंशं च मातृवंशं च भाविनी ॥ २ ॥
प्रसमीक्ष्य महाभागा गांगेयं वाक्यमब्रवीत् ॥ ३ ॥
शान्तनोर्धर्मनित्यस्य कौरवस्य यशस्विनः ।
त्वयि पिण्डश्च कीर्तिश्च संतानं च प्रतिष्ठितम्॥ ४ ॥

में दोनों नारियोंहीके मनमोहन बने थे। वह उन नारियोंके साथ लगातार सात वर्ष विहार कर यौवन कालहीमें भयानक क्षय रोगसे जकडे गये। अनन्तर विश्वासी चिकित्सकों से आरोग्यके लिये मित्रोंके यत्न करने पर भी कुरुकुल प्रदीप विचित्र वीर्य कालके वशमें होकर अस्ताचलको गये और सूर्यके समान अदृश्य हुए। धर्मात्मा भीष्मने चिन्तायुक्त और शोक वश होकर ऋत्विक और सम्पूर्ण कौरवों के साथ सत्यवतीके मतानुसारी होके राजा विचित्रवीर्यके सब प्रेतकर्म भल प्रकार किये। (६८–७४) [४२३१]

आदिपर्वमें एक सौ दूसरा अध्याय समाप्त।

आदिपर्वमें एक सौ तीसरा अध्याय।

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि हे भारत ! अनन्तर महाभागा भाविनी सत्यवती पुत्र शोक से विह्वला, दीन और क्षुब्धचित्त होकर पुत्र वधुओं के साथ पुत्रकी और्ध्व-दैहिक क्रिया पूरी कर भीष्मको और दोनों पुत्रवधुओंको समझा बुझा कर मातृवंश और पितृवंशकी दशा शोच के धर्म पर दृष्टि रखकरके भीष्मसे बोली, कि धर्मशील यशस्वी कुरुवंशी नरेश

यथा कर्म शुभं कृत्वा स्वर्गोपगमनं ध्रुवम् ।
यथा चाऽऽयुर्ध्रुवं सत्ये त्वयि धर्मस्तथा ध्रुवः ॥ ५ ॥
वेत्थ धर्मांश्च धर्मज्ञ समासेनेतरेण च ।
विविधास्त्वं श्रुतीर्वेत्थ वेदाङ्गानि च सर्वशः ॥ ६ ॥
व्यवस्थानं च ते धर्मे कुलाचारं च लक्षये ।
प्रतिपत्तिं च कृच्छ्रेषु शुक्राङ्गिरसयोरिव ॥ ७ ॥
तस्मात्सुभृशमाश्वस्य त्वयि धर्मभृतां वर ।
कार्ये त्वां विनियोक्ष्यामि तच्छ्रुत्वा कर्तुमर्हसि॥८॥
मम पुत्रस्तव भ्राता वीर्यवान्सुप्रियश्च ते ।
बाल एव गतः स्वर्गमपुत्रः पुरुषर्षभ ॥ ९ ॥
इमे महिष्यौ भ्रातुस्ते काशिराजसुते शुभे ।
रूपयौवनसंपन्ने पुत्रकामे च भारत ॥१०॥
तयोरुत्पादयाऽपत्यं संतानाय कुलस्य नः ।
मन्नियोगान्महाबाहो धर्मं कर्तुमिहाऽर्हसि ॥ ११॥
राज्ये चैवाऽभिषिच्यस्व भारताननुशाधि च।
दारांश्च कुरु धर्मेण मा निमज्जीः पितामहान् ॥ १२ ॥

शान्तनुका वंश, कीर्ति और पिण्ड एक तुम्ही पर निर्भर है; और जिस प्रकार शुभ कर्मसे निश्चयही स्वर्ग होता है, और सत्यशीलता से निश्चयही आयु की वृद्धि होती है, उस प्रकार तुममें निश्चयही धर्म प्रतिष्ठित है। हे धर्मज्ञ ! तुम धर्म और नानाप्रकारकी श्रुति और सम्पूर्ण वेदांगों में संक्षेपमें और विस्तृत रूपसे ज्ञात हो। (१—६)

शुक्र और अङ्गिरा की नाईं तुम्हे धर्मशीलता और कुलाचार तथा विपत्कालमें विचार करने की सामर्थ भी है, यह सब मैं जानती हूं, इसलिये मैं तुमसे बडा भरोसा पाकर तुमको किसी कार्यमें नियुक्त करूंगी। हे धार्मिकवर ! यह सुनकर तुमको उसे पूरा करना चाहिये। हे पुरुषश्रेष्ठ ! तुम्हारा प्रिय भ्राता मेरा पुत्र वीर्यवान विचित्रवीर्य पुत्र न होतेही बालपनमें स्वर्गको सिधारा है। हे भारत! तुम्हारे भ्राताकी रानी रूपयौवनयुक्ता, शुभलक्षणा यह काशीराजकी कन्यायें पुत्रकामा हुई हैं। हे महाभुज ! हमारे वंश परम्परा की रक्षाके लिये मेरे नियोग से उन दो पुत्रवधुओंके पुत्रोत्पादन कर धर्मरक्षा करो। तुम राज्यमें अभिषिक्त होकर भारत राज्यका शासन करो और

वैशम्पायन उवाच—तयोच्यमानो मात्रा स सुहृद्भिश्च परंतपः।
इत्युवाचाऽथ धर्मात्मा धर्म्यमेवोत्तरं वचः ॥ १३ ॥
असंशयं परो धर्मस्त्वया मातरुदाहृतः।
त्वमपत्यं प्रति च मे प्रतिज्ञां वेत्थ वै पराम् ॥ १४ ॥
जानासि च यथावृत्तं शुल्कहेतोस्त्वदन्तरे।
स सत्यवति सत्यं ते प्रतिजानाम्यहं पुनः ॥ १५ ॥
परित्यजेयं त्रैलोक्यं राज्यं देवेषु वा पुनः।
यद्वाऽप्यधिकमेताभ्यां न तु सत्यं कथंचन ॥ १६ ॥
त्यजेच्च पृथिवी गन्धमापश्च रसमात्मनः।
ज्योतिस्तथा त्यजेद्रूपं वायुः स्पर्शगुणं त्यजेत् ॥ १७ ॥
प्रभां समुत्सृजेदर्को धूमकेतुस्तथोष्मताम्।
त्यजेच्छब्दं तथाऽऽकाशं सोमः शीतांशुतां त्यजेत् ॥ १८ ॥
विक्रमं वृत्रहा जह्याद्धर्मं जह्याच्च धर्मराट्।
न त्वहं सत्यमुत्स्रष्टुं व्यवस्येयं कथंचन ॥ १९ ॥
एवमुक्ता तु पुत्रेण भूरिद्रविणतेजसा।
माता सत्यवती भीष्ममुवाच तदनन्तरम् ॥ २० ॥

धर्मानुसार विवाह करलो। पितरों को मत डुबाओ। (७-१२)

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि माता और मित्रोंके ऐसा कहनेपर धर्मात्मा परन्तप भीष्मने धर्मसंयुक्त यह उत्तर दिया, कि हे माता! इसमें सन्देह नहीं है, कि आपने जो कहा, वह धर्मयुक्त है, पर सन्तानके लिये जो सत्य प्रण हुआ था उससेभी आप ज्ञात हैं, सो उस सत्यकी रक्षा के लिये फिर अभी प्रतिज्ञा करता हूं, कि देवलोकका राज्य त्याग दे सकता हूं, अथवा इससेभी अधिक जो कुछ हो, उसकोभी छोड सकता हूं, तथापि सत्यको किसी प्रकार छोड नहीं सकूंगा। यद्यपि पृथ्वी गन्धको छोड सके, जल निज रसको छोड सके, ज्योति रूपको छोड सके, पवन स्पर्शगुणको छोड सके, सूर्य निज प्रकाश को छोड सके, पुच्छलतारा गर्मी को छोड सके, आकाश शब्द को छोड सके, चन्द्रमा ठंढी किरणको छोड सके, इन्द्र विक्रमको त्याग सकें और धर्मराज धर्मको त्याग सकें, तथापि मैं सत्यको किसीप्रकार त्यागने को प्रवृत्त नहीं हूंगा। (१३-१९)

बहुबलधारी और तेजस्वी भीष्मके उत्साहसे ऐसा कहनेपर माता सत्यवतीने उनसे कहा, कि हे सत्यपराक्रमी! सत्यमें जो

जानामि ते स्थितिं सत्ये परां सत्यपराक्रम ।
इच्छन्सृजेथास्त्रींल्लोकानन्यांस्त्वं स्वेन तेजसा॥२१॥
जानामि चैवं सत्यं तन्मदर्थे यच्च भाषितम् ।
आपद्धर्मं त्वमावेक्ष्य वह पैतामहीं धुरम् ॥२२॥
यथा ते कुलतन्तुश्च धर्मश्च न पराभवेत् ।
सुहृदश्च प्रहृष्येरंस्तथा कुरु परंतप ॥२३॥
लालप्यमानां तामेवं कृपणां पुत्रगृद्धिनीम् ।
धर्मादपेतं ब्रुवतीं भीष्मो भूयोऽब्रवीदिदम् ॥२४॥
राज्ञि धर्मानवेक्षस्व मा नः सर्वान्व्यनीनिशः ।
सत्याच्च्युतिः क्षत्रियस्य न धर्मेषु प्रशस्यते ॥२५॥
शान्तनोरपि संतानं यथा स्यादक्षयं भुवि ।
तत्ते धर्मं प्रवक्ष्यामि क्षात्रं राज्ञि सनातनम्॥२६॥
श्रुत्वा तं प्रतिपद्यस्व प्राज्ञैः सह पुरोहितैः ।
आपद्धर्मार्थकुशलैर्लोकतन्त्रमवेक्ष्य च ॥ २७ ॥ [४२५८]

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यामादिपर्वणि संभवपर्वणि भीष्मसत्यवतीसंवादे त्र्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०३ ॥

भीष्म उवाच—जामदग्न्येन रामेण पितुर्वधममृष्यता ।

तुम्हारी परमनिष्ठा है, वह मैं जानती हूं। तुम इच्छा करनेसे निज तेजसे अन्य त्रिलोक रच सकते हो, औरभी तुमने मेरे निमित्त जो सत्य किया था, उससेभी मैं ज्ञात हूं ; पर हे नृप ! तुम इस विपदकी दशापर ध्यान देकर पैतृक वंशका भार लो। ऐसा करो, कि जिससे कुलका क्रम न मिट कर धर्मरक्षा होवे और मित्रवर्ग आनन्दित होवें। यह सुनकर, कि सन्तान चाहने वाली सत्यवती कातर होकर ऐसी धर्मविरुद्ध बात बार बार कह रही है, भीष्मने फिर कहा, कि हे राज्ञी ! आप धर्मपर दृष्टि कीजिये, हम सबोंको मत नष्ट करना, क्षत्रियका असत्य व्यवहार धर्मशास्त्रमें प्रशंसित नहीं होता। हे रानी! आपसे ऐसा सनातन क्षत्रियधर्म कहता हूं, कि जिससे भूमण्डलमें शान्तनुका वंश अक्षय बना रहे, आप उसे सुनकर लोकयात्रा पर दृष्टि रख करके पुरोहित और उनके साथ, कि जो सब प्राज्ञ धर्मार्थ विषयोंमें पण्डित हैं विचारिये (२०-२७)

आदिपर्वमें एकसौ तीसरा अध्याय समाप्त।[४२५८]

आदिपर्वमें एकसौ चौथा अध्याय ।

भीष्मजी बोले, कि पूर्वकालमें जमदग्नि

राजा परशुना पूर्वं हैहयाधिपतिर्हतः ॥ १ ॥
शतानि दश बाहूनां निकृत्तान्यर्जुनस्य वै ।
लोकस्याऽऽचरितो धर्मस्तेनाऽति किल दुश्चरः॥ २ ॥
पुनश्च धनुरादाय महास्त्राणि प्रमुञ्चता ।
निर्दग्धं क्षत्रमसकृद्रथेन जयता महीम् ॥ ३ ॥
एवमुच्चावचैरस्त्रैर्भार्गवेण महात्मना ।
त्रिःसप्तकृत्वः पृथिवी कृता निःक्षत्रिया पुरा॥ ४ ॥
एवं निःक्षत्रिये लोके कृते तेन महर्षिणा ।
ततः संभूय सर्वाभिः क्षत्रियाभिः समन्ततः ॥ ५ ॥
उत्पादितान्यपत्यानि ब्राह्मणैर्वेदपारगैः ।
पाणिग्राहस्य तनय इति वेदेषु निश्चितम् ॥ ६ ॥
धर्मं मनसि संस्थाप्य ब्राह्मणांस्ताः समभ्ययुः।
लोकेऽप्याचरितो दृष्टः क्षत्रियाणां पुनर्भवः ॥ ७ ॥
ततः पुनः समुदितं क्षत्रं समभवत्तदा ।
इमं चैवाऽत्र वक्ष्येऽहमितिहासं पुरातनम् ॥ ८ ॥
अथोतथ्य इति ख्यात आसीद्धीमानृषिः पुरा।
ममता नाम तस्याऽऽसीद्भार्या परमसंमता॥ ९ ॥

के कुमार रामने पिताके वधसे दुःखी होकर परशुसे हैहय देशके अधीश कार्तवीर्यार्जुनको नष्ट किया था। जिस हैहयपतिने प्रजाओंसे अति कठोर धर्मका अनुष्ठान कराया था, परशुरामने उनके सहस्र भुजको काटकर, उससेभी न शान्त होकर फिर रथपर भूमण्डलको जीतने के लियेचापलेकर महास्त्रोंके प्रयोगसे वारंवार क्षत्रियकुलको नष्ट किया। उन महात्माने नाना अस्त्रोंसे इक्कीस बार धरतीको क्षत्रियोंसे खाली किया। उन महर्षिसे इस प्रकार भूमण्डलके क्षत्रियोंसे वर्जित होनेपर सब स्थानों की सम्पूर्ण क्षत्रियोंकी स्त्रियोंने वेदपारग ब्राह्मणोंसे सन्तान उत्पन्न करायी। वेदमें यह निश्चित है, कि जो जन विवाह करता है, उसके क्षेत्रमें सन्तान होनेसे उसकीही होती है, अतएव धर्म जानकरकेही क्षत्रिय पत्नियोंने ब्राह्मणोंसे संसर्ग किया था; इससेही क्षत्रियोंकी फिर उत्पत्ति हुई है। (१—८)

इस विषयमें और एक प्राचीन इतिहास कहता हूं, सुनिये, पूर्वकालमें उतथ्य नामक धीशील एक ऋषि थे; उनकी परम प्यारी ममता नाम्नी एक भार्या थी।

उतथ्यस्य यवीयांस्तु पुरोधास्त्रिदिवौकसाम् ।
बृहस्पतिर्बृहत्तेजा ममतामन्वपद्यत ॥ १० ॥
उवाच ममता तं तु देवरं वदतां वरम् ।
अन्तर्वत्नी त्वहं भ्रात्रा ज्येष्ठेनाऽऽरम्यतामिति॥११॥
अयं च मे महाभाग कुक्षावेव बृहस्पते ।
औतथ्यो वेदमत्राऽपि षडङ्गं प्रत्यधीयत ॥ १२ ॥
अमोघरेतास्त्वं चाऽपि द्वयोर्नास्त्यत्र संभवः।
तस्मादेवंगते त्वद्य उपारमितुमर्हसि ॥ १३ ॥
एवमुक्तस्तदा सम्यग्बृहस्पतिरुदारधीः ।
कामात्मानं तदाऽऽत्मानं न शशाक नियच्छितुम् १४॥
स बभूव ततः कामी तया सार्धमकामया ।
उत्सृजन्तं तु तं रेतः स गर्भस्थोऽभ्यभाषत॥१५॥
भोस्तात मा गमः कामं द्वयोर्नास्तीह संभवः ।
अल्पावकाशो भगवन्पूर्वं चाऽहमिहाऽऽगतः ॥१६॥
अमोघरेताश्च भवान्न पीडां कर्तुमर्हसि ।
अश्रुत्वैव तु तद्वाक्यं गर्भस्थस्य बृहस्पतिः ॥ १७ ॥
जगाम मैथुनायैव ममतां चारुलोचनाम् ।

एक समय उतथ्यके कनिष्ठ भ्राता देवोंके पुरोहित और परम तेजस्वी बृहस्पति उस ममताके पास उपगत हुए, इससे ममता उन वाचस्पति देवरसे बोली, कि तुम्हारे बडे भाईसे मैं गर्भवती हुई हूं; सो तुम लौट जाओ हे महाभाग बृहस्पते ! मेरे गर्भमें स्थित इस उतथ्य मुनिने कोखमें स्थित होकरकेही षडंग वेदको पाठ किया है, तुमभी अमोघ वीर्यवान् हो, सो "इस कोखमें" दो सन्तानोंका स्थान क्योंकर संभव हो सकता है ? इसलिये आज तुम लौट जाओ । ममताके ऐसा कहनेपर बृहस्पति अतिप्रदीप्त तेजस्वी होने परभी तब कामके वशमें अपने चित्त को रोक नहीं सके, अकामा कामिनी परभी अनुरागी हुए । (८—१४)

अनन्तर वीर्यगिरानेमें उद्यत बृहस्पति से गर्भमें स्थित बालकने कहा, कि हे तात ! आप शान्त होवें; इस गर्भमें दो की स्थिति संभव नहीं हो सकती । हे भगवान् ! यह स्थान स्वल्प है, मैं पहिले यहां आया हूं, आप अमोघ वीर्यवान् हैं, सो मुझको पीडा न पहुंचावें । बृहस्पति उस गर्भमें स्थित मुनिकी बातको न मान कर

शुक्रोत्सर्गं ततो बुद्ध्वा तस्य गर्भगतो मुनिः ॥१८॥
पद्भ्यामारोधयन्मार्गं शुक्रस्य च बृहस्पतेः।
स्थानमप्राप्तमथ तच्छुक्रं प्रतिहतं तदा ॥ १९ ॥
पपात सहसा भूमौ ततः क्रुद्धो बृहस्पतिः।
तं दृष्ट्वा पतितं शुक्रं शशाप स रुषान्वितः॥ २० ॥
उतथ्यपुत्रं गर्भस्थं निर्भर्त्स्य भगवानृषिः ।
यन्मां त्वमीदृशे काले सर्वभूतेप्सिते सति ॥ २१ ॥
एवमात्थ वचस्तस्मात्तमो दीर्घं प्रवेक्ष्यसि ।
स वै दीर्घतमा नाम शापादृषिरजायत ॥ २२ ॥
बृहस्पतेर्बृहत्कीर्तेर्बृहस्पतिरिवौजसा ।
जात्यन्धो वेदवित्प्राज्ञः पत्नीं लेभे स विद्यया ॥ २३ ॥
तरुणीं रूपसंपन्नां प्रद्वेषीं नाम ब्राह्मणीम् ।
स पुत्राञ्जनयामास गौतमादीन्महायशाः ॥ २४ ॥
ऋषेरुतथ्यस्य तदा सन्तानकुलवृद्धये ।
धर्मात्मा च महात्मा च वेदवेदाङ्गपारगः ॥ २५ ॥
गोधर्मं सौरभेयाच्च सोऽधीत्य निखिलं मुनिः ।
प्रावर्तत तदा कर्तुं श्रद्धावांस्तमशङ्कया ॥ २६ ॥

मैथुनके लिये मनोहर नेत्रवती ममताकी ओर गये। अनन्तर गर्भमें स्थित उस मुनिने बृहस्पतिके वीर्य गिरनेके समयको समझकर वीर्य घुसनेके पथको दोनों पावों से रोक रखा; तब वही वीर्य रोके जाकर स्थान न पानेसे उसी क्षण भूमिपर गिर गया। (१९—२०)

यह देखकर भगवान् ऋषि बृहस्पतिने क्रोधित होकर गर्भमें स्थित उतथ्य-पुत्रको लाञ्छन कर शाप दिया, कि जोकि ऐसे मनोहर कालमें तुमने मुझको ऐसी बात कही सो तुम दीर्घ अंधेरी में प्रविष्ट रहोगे अर्थात् अन्धे होगे। बृहत कीर्तियुक्त बृहस्पतिके इस शापके हेतु बृहस्पति-सदृश तेजस्वी वह ऋषि जन्म लेकर दीर्घतमा नामसे प्रसिद्ध हुए। वेदज्ञ, प्राज्ञ, जन्मान्ध दीर्घतमाने विद्या बलसे प्रद्वेषी नाम्नी एक तरुणी और रूपवती ब्राह्मणीको पत्नी प्राप्त किया। इससे महा-यशने उतथ्य ऋषिके कुलको बढानेके लिये गौतमादि पुत्रोत्पादन किये। (२०—२५)

धर्मात्मा वेदवेदाङ्गपारग महात्मा वह दीर्घतमा सुरभीकी सन्तान कामधेनुसे सम्पूर्ण गोधर्म शिक्षा करके उससे श्रद्धा-

ततो वितथमर्यादं तं दृष्ट्वा मुनिसत्तमाः ।
क्रुद्धा मोहाभिभूतास्ते सर्वे तत्राऽऽश्रमौकसः ॥ २७ ॥
अहोऽयं भिन्नमर्यादो नाऽऽश्रमे वस्तुमर्हति ।
तस्मादेनं वयं सर्वे पापात्मानं त्यजामहे ॥ २८ ॥
इत्यन्योन्यं समाभाष्य ते दीर्घतमसं मुनिम् ।
पुत्रलाभा च सा पत्नी न तुतोष पतिं तदा ॥ २९ ॥
प्रद्विषन्तीं पतिर्भार्यां किं मां द्वेक्षीति चाऽब्रवीत्।
प्रद्वेष्युवाच — भार्याया भरणाद्भर्ता पालनाच्च पतिः स्मृतः ॥ ३० ॥
अहं त्वां भरणं कृत्वा जात्यन्धं ससुतं तदा ।
नित्यकालं श्रमेणाऽऽर्ता न भरेयं महातपाः ॥ ३१ ॥
भीष्म उवाच— तस्यास्तद्वचनं श्रुत्वा ऋषिः कोपसमन्वितः ।
प्रत्युवाच ततः पत्नीं प्रद्वेषीं ससुतां तदा ॥ ३२ ॥
नीयतां क्षत्रियकुले धनार्थश्च भविष्यति ।
प्रद्वेष्युवाच — त्वया दत्तं धनं विप्र नेच्छेयं दुःखकारणम् ॥ ३३ ॥
यथेष्टं कुरु विप्रेन्द्र न भरेयं पुरा यथा ।

युक्त होकर निःशङ्क चित्तसे खुलाखुली मैथुनादि करनेको प्रवृत्त हुए। आश्रमनिवासी मुनिगण दीर्घतमा को मर्यादा छोडते देखकर मोहयुक्त और क्रोधित हुए और आपसमें कहने लगे, कि क्या आश्चर्य है! इसने मर्यादा और लज्जा त्याग दी है, सो यह पापात्मा आश्रममें रहनेके योग्य नहीं है; हम इसको आश्रम से निकाल बाहर करें; और दीर्घतमाकी पत्नीभी पुत्र लाभके हेतु उस अन्धेपति पर सन्तुष्ट नहीं थी। (२६-२९)

एक समय दीर्घतमाने भार्याको असन्तुष्ट देखकर कहा, कि तुम क्यों मुझ पर विद्वेषका व्यवहार करती हो? प्रद्वेषी बोली, कि पति स्त्रीको भरते पोषते हैं; इस हेतु वह भर्ता कहे जाते हैं और पालते हैं; इससे पति कहे जाते हैं। हे महातपस्वि! मैं सदासे तुम्हारी जन्मान्धताके हेतु तुम्हारा और तुम्हारे पुत्रोंका भरण पोषण कर कर थक गयी हूं, अब और भरण कर नहीं सकूंगी। (३०-३१)

भीष्म बोले, कि ऋषिने पत्नीकी बात सुन करके क्रोधयुक्त होकर पुत्रवती पत्नी प्रद्वेषीसे कहा, कि मुझ को क्षत्रियोंके कुलमें ले जाओ, तो तुम धनवती बन सकोगी। प्रद्वेषी बोली, कि हे विप्रेन्द्र! तुम्हारे दिये हुए दुःखदायी धनकी मुझे इच्छा नहीं है, तुम जो चाहो करो, मैं

दीर्घतमा उवाच—अद्यप्रभृति मर्यादा मया लोके प्रतिष्ठिता ॥ ३४ ॥
एक एव पतिर्नार्या यावज्जीवं परायणम् ।
मृते जीवति वा तस्मिन्नाऽपरं प्राप्नुयान्नरम् ॥ ३५ ॥
अभिगम्य परं नारी पतिष्यति न संशयः ।
अपतीनां तु नारीणामद्यप्रभृति पातकम् ॥ ३६ ॥
यद्यस्ति चेद्धनं सर्वं वृथाभोगा भवन्तु ताः ।
अकीर्तिः परिवादाश्च नित्यं तासां भवन्तु वै ॥ ३७ ॥
इति तद्वचनं श्रुत्वा ब्राह्मणी भृशकोपिता ।
गङ्गायां नीयतामेष पुत्रा इत्येवमब्रवीत् ॥ ३८ ॥
लोभमोहाभिभूतास्ते पुत्रास्तं गौतमादयः ।
बद्ध्वोडुपे परिक्षिप्य गङ्गायां समवासृजन् ॥ ३९ ॥
कस्मादन्धश्च वृद्धश्च भर्तव्योऽयमिति स्म ते ।
चिन्तयित्वा ततः क्रूराः प्रतिजग्मुरथो गृहान् ॥ ४० ॥
सोऽनुस्रोतस्तदा विप्रः प्लवमानो यदृच्छया ।
जगाम सुबहून्देशानन्धस्तेनोडुपेन ह ॥ ४१ ॥
तं तु राजा बलिर्नाम सर्वधर्मविदां वरः ।
अपश्यन्मज्जनगतः स्रोतसाऽभ्याशमागतम् ॥ ४२

पहिले की नाईं फिर भरण पोषण नहीं कर सकूंगी । ३२-३४)

दीर्घतमा बोले, कि मैं आजसे ऐसी लोक मर्यादा स्थापन करता हूं, कि नारी एक पतिपर जीवनभर निर्भर करेगी । एक पति जीवित रहे, वा मर जावे कोई स्त्री दूसरे पतिकी शरण ले नहीं सकेगी; यदि कोई नारी दूसरा पति कर ले, तो वह पतित होगी, इसमें सन्देह नहीं । जिनको पति नहीं है, बात बातमें उनका पाप होगा और उनका प्रचुर धनभी रहे, तो उसका भोग व्यर्थ होगा। वे नित्य अकीर्ति तथा निन्दाकी पात्र होंगी; ब्राह्मणी उनकी यह बात सुनकर अतिक्रोधयुक्त होकर बोली, कि हे पुत्रो ! इसको गङ्गामें डाल आओ । (३४-३८)

आगे लोभ और मोह से अभिभूत गौतमादि पुत्रोंने अन्धे बापको बांधकर बेडे पर रख करके गङ्गामें बहा दिया । अनन्तर वे कुटिल पुत्र यह सोचते हुए घरको लौटे, कि इस अन्धे और बूढेको हम क्यों भरने पोषने चले । आगे अन्धे विप्र बेडे पर गङ्गाके सोतेमें बहते हुए, मनमाने अनेक देशोंसे ही चले। धार्मिक-

जग्राह चैनं धर्मात्मा बलिः सत्यपराक्रमः ।
ज्ञात्वा चैवं स वव्रेऽथ पुत्रार्थे भरतर्षभ ॥ ४३ ॥
संतानार्थं महाभाग भार्यासु मम मानद ।
पुत्रान्धर्मार्थकुशलानुत्पादयितुमर्हसि ॥ ४४ ॥
एवमुक्तः स तेजस्वी तं तथेत्युक्तवानृषिः ।
तस्मै स राजा स्वां भार्यां सुदेष्णां प्राहिणोत्तदा॥४५॥
अन्धं वृद्धं च तं मत्वा न सा देवी जगाम ह ।
स्वां तु धात्रेयिकां तस्मै वृद्धाय प्राहिणोत्तदा॥४६॥
तस्यां काक्षीवदादीन्स शूद्रयोनावृषिस्तदा ।
जनयामास धर्मात्मा पुत्रानेकादशैव तु ॥४७॥
काक्षीवदादीन्पुत्रांस्तान्दृष्ट्वा सर्वानधीयतः ।
उवाच तमृषिं राजा ममेम इति भारत ॥४८॥
नेत्युवाच महर्षिस्तं ममेम इति चाऽब्रवीत् ।
शूद्रयोनौ मया हीमे जाताः काक्षीवदादयः॥ ४९ ॥
अन्धं वृद्धं च मां दृष्ट्वा सुदेष्णा महिषी तव ।
अवमन्य ददौ मूढा शूद्रां धात्रेयिकां मम ॥५०॥

वर बलि नाम एक राजाने गङ्गास्नान को जाकर सोतेसे निकट आये हुए, उन अन्धे ऋषिको देखा। बलि उनको सत्य पराक्रमी धर्मशील जानकर अपने घरमें लाये और अपने पुत्रके लिये उनसे प्रार्थना कर बोले, कि हे मानद, महाभाग! मेरे वंश की रक्षाके लिये मेरी स्त्रीसे सन्तान उत्पन्न कीजिये, कि धर्म और अर्थमें कुशल होवे। (३९-४४)

तेजस्वी ऋषिके राजाकी उस बात पर सम्मत होनेपर राजाने उनके पास अपनी सुदेष्णा नाम्नी स्त्रीको भेज दिया; पर राजरानी सुदेष्णाने उनको अन्धा और बूढा देखकर स्वयं उनके पास न जाकर अपनी दासीको भेजा। धर्मात्मा ऋषिने उस शूद्रयोनिमें काक्षीवदादि ग्यारह पुत्र उत्पन्न किये। अनन्तर राजाने काक्षीवदादि पुत्रों को पठनशील देखकर यह उस अन्धे ऋषिसे कहा, कि "यह मेरे पुत्र हैं।" परन्तु महर्षि ने कहा, कि यह तुम्हारे पुत्र नहीं हैं; यह मेरे हैं, उन्होंने मुझसे शूद्रयोनिमें जन्म लिया है। सुदेष्णा नाम्नी तुम्हारी रानीने मूर्खताके हेतु मुझको अन्धा और बूढा देखकर, अनादर करके शूद्रा धात्रियोंको भेज दिया था। (४५-५०)

ततः प्रसादयामास पुनस्तमृषिसत्तमम् ।
बलिः सुदेष्णां स्वां भार्यां तस्मै स प्राहिणोत्पुनः ५१
तां स दीर्घतमाऽङ्गेषु स्पृष्ट्वा देवीमथाऽब्रवीत् ।
भविष्यन्ति कुमारास्ते तेजसाऽऽदित्यवर्चसः॥५२॥
अङ्गो वंगः कलिंगश्च पुण्ड्रः सुह्मश्च ते सुताः।
तेषां देशाः समाख्याताः स्वनामकथिता भुवि॥५३॥
अंगस्यांऽगोऽभवद्देशो वंगो वङ्गस्य च स्मृतः ।
कालिंगविषयश्चैव कालिंगस्य च स स्मृतः ॥५४॥
पुण्ड्रस्य पुण्ड्राः प्रख्याताः सुह्मा सुह्मस्य च स्मृताः।
एवं बलेः पुरा वंशः प्रख्यातो वै महर्षिजः ॥ ५५ ॥
एवमन्ये महेष्वासा ब्राह्मणैः क्षत्रिया भुवि।
जाताः परमधर्मज्ञा वीर्यवन्तो महाबलाः ॥
एतच्छ्रुत्वा त्वमप्यत्र मातः कुरु यथेप्सितम् ५६॥ [४३१४]

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यामादिपर्वणि संभवपर्वणि भीष्मसत्यवतीसंवादे चतुरधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०४॥

भीष्म उवाच—पुनर्भरतवंशस्य हेतुं सन्तानवृद्धये ।
वक्ष्यामि नियतं मातस्तन्मे निगदतः शृणु ॥ १ ॥

अनन्तर बलिने फिर उन ऋषिको प्रसन्न करके अपनी स्त्री सुदेष्णाको उनके पास भेजा। ऋषि दीर्घतमा देवी सुदेष्णा के अङ्गोंको स्पर्शकर बोले, कि तुम्हारे आदित्य समान तेजस्वी पुत्र उत्पन्न होंगे ! उन पुत्रोंके नाम, अङ्ग, वङ्ग, कलिङ्ग, पुण्ड्र और सुह्म होंगे; इस भूमण्डल में उनके निज निज नामसे एक एक देश प्रख्यात होगा। अङ्गके नामसे अङ्गदेश, वङ्गके नामसे वङ्गदेश, कलिङ्गके नामसे कलिङ्गदेश, पुण्ड्रके नामसे पुण्ड्रदेश और सुह्मके नामसे सुह्मदेश होगा। पूर्वकाल में इस प्रकार महर्षिसे जन्म लिया हुआ राजा बलिका वंश प्रसिद्ध हुआ था। इनके अतिरिक्त महाबल पराक्रमी परम धर्मज्ञ बडे बडे चापधारी बहुतेरे क्षत्रियों ने ब्राह्मणोंके वीर्यसे जन्म लिया था; हे मा ! आप यह सुनकर जो मन चाहे करें। (५१-५६) [४३१४]

आदि पर्वमें एकसौ चौथा अध्याय समाप्त।

आदिपर्वमें एकसौ पांच अध्याय।

भीष्म बोले, कि हे माता ! भरतवंश की सन्तान बढानेके लिये योग्य उपाय कहता हूं, सुनिये; किसी गुणवन्त

ब्राह्मणो गुणवान्कश्चिद्धनेनोपनिमन्त्र्यताम्।
विचित्रवीर्यक्षेत्रेषु : समुत्पादयेत्प्रजाः ॥ २ ॥
वैशम्पायन उवाच–ततः सत्यवती भीष्मं वाचा संसज्जमानया।
विहसन्तीव सव्रीडमिदं वचनमब्रवीत् ॥ ३ ॥
सत्यमेतन्महाबाहो यथा वदसि भारत।
विश्वासात्ते प्रवक्ष्यामि सन्तानाय कुलस्य नः॥ ४ ॥
न ते शक्यमनाख्यातुमापद्धर्मं तथाविधम्।
त्वमेव नः कुले धर्मस्त्वं सत्यं त्वं परागतिः॥ ५ ॥
तस्मान्निशम्य सत्यं मे कुरुष्व यदनन्तरम्।
धर्मयुक्तस्य धर्मार्थं पितुरासीत्तरी मम॥ ६ ॥
सा कदाचिदहं तत्र गता प्रथमयौवनम्।
अथ धर्मविदां श्रेष्ठः परमर्षिः पराशरः॥ ७ ॥
आजगाम तरीं धीमांस्तरिष्यन्यमुनां नदीम्।
स तार्यमाणो यमुनां मामुपेत्याऽब्रवीत्तदा॥ ८ ॥
सान्त्वपूर्वं मुनिश्रेष्ठः कामार्तो मधुरं वचः।
उक्तं जन्म कुलं मह्यमस्मि दाशसुतेत्यहम्॥ ९ ॥
तमहं शापभीता च पितुर्भीता च भारत।

ब्राह्मणको धन देकर नेवता दीजिये; वह विचित्रवीर्यके क्षेत्रमें पुत्रोत्पादन करेंगे। श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि अनन्तर सत्यवती मुह नीचे कर लज्जाके साथ टूटी फूटी बातोंमें भीष्मसे बोली, कि हे महाभुज, भारत! तुम जो कहते हो, सब ठीक है। परन्तु तुम पर विश्वास रहनेके हेतु अपने वंश की वृद्धिके लिये जैसा कहूंगी, उस आपद्धर्मको तुम पलट नहीं सकोगे। हमारे वंशमें तुम्ही धर्म, तुम्ही सत्य और तुम्ही परमा गति भये हो, सो मेरी सत्य बातको सुनकर आगे जैसा कर्तव्य होवे, वही करो। (१-६)

मेरे पिता धार्मिक थे; उनकी धर्म कर्मके लिये नाव थी, एक समय मैं अपने नवयौवन के दिनों में उस नावको चलाती थी, कि उस समय धीमान् धार्मिक श्रेष्ठ परमर्षि पराशर यमुना नदीके पार उतरनेके लिये आकर मेरी नावपर चढ बैठे! मैं उन मुनिश्रेष्ठ को यमुना पार कर रही थी, कि ऐसे समयमें वह कामवश होकर मीठी बातोंमें मुझको लुभाने लगे। हे भारत! मैं पिताके भय और ऋषिके शापका भय खाकर सूर्य-

बरैरसुलभैरुक्ता न प्रत्याख्यातुमुत्सहे ॥ १० ॥
अभिभूय स मां बालां तेजसा वशमानयत्।
तमसा लोकमावृत्य नौगतामेव भारत ॥ ११ ॥
मत्स्यगन्धो महानासीत्पुरा मम जुगुप्सितः।
तमपास्य शुभं गन्धमिमं प्रादात्स मे मुनिः ॥ १२ ॥
ततो मामाह स मुनिर्गर्भमुत्सृज्य मामकम् ।
द्वीपेऽस्या एव सरितः कन्यैव त्वं भविष्यसि ॥ १३ ॥
पाराशर्यो महायोगी स बभूव महानृषिः ।
कन्यापुत्रो मम पुरा द्वैपायन इति श्रुतः ॥ १४ ॥
यो व्यस्य वेदांश्चतुरस्तपसा भगवानृषिः ।
लोके व्यासत्वमापेदे कार्ष्ण्यात्कृष्णत्वमेव च॥१५॥
सत्यवादी शमपरस्तपस्वी दग्धकिल्बिषः ।
समुत्पन्नः स तु महान्सह पित्रा ततो गतः ॥ १६ ॥
स नियुक्तो मया व्यक्तं त्वया चाऽप्रतिमद्युतिः।
भ्रातुः क्षेत्रेषु कल्याणमपत्यं जनयिष्यति ॥ १७ ॥
स हि मामुक्तवांस्तत्र स्मरेः कृच्छ्रेषु मामिति।

वान् वर पाकर उनकी बात पलट नहीं सकी। (९—१०)

हे भारत! उन ऋषि-मुझको नावपर स्थित और बालिका पाकर तेजसे विवश कर अंधेरीसे भूमण्डलको छायकर अपने वशमें कर लिया। पहिले मेरे शरीरमें मछली की बडी बुरी गन्ध थी, उन्होंने उनको भगाकर यह सुन्दर गन्ध कर दी। अनन्तर बोले, कि तुम इस यमुना द्वीपही पर मेरे वीर्यसे पैदा हुए इस गर्भको छोडकर फिर कन्यावस्थाहीमें रहोगी। उससे यमुनाके द्वीप पर मेरी कन्यावस्थाके उस गर्भसे पराशर के पुत्र महर्षि महायोगी जन्म लेकर द्वैपायन नामसे प्रसिद्ध हुए। (११-१४)

वह भगवान् ऋषि तपके प्रभावसे चारों वेदोंके व्यास अर्थात् विभाग कर व्यास नामसे प्रख्यात हुए हैं और कृष्णवर्ण होनेसे उनका नाम कृष्ण हुआ है। सत्यवादी शान्तशील और पापरहित वह महात्मा जन्म लेकरकेही उसीक्षण पिताके साथ चले गये थे, उन अप्रतिम द्युतिमान् व्यासको मेरे नियुक्त करनेसे वह तुम्हारे भ्राताके क्षेत्रमें उत्तम पुत्र उत्पन्न कर सकते हैं। हे महाभुज! उन्होंने पहिले मुझसे कहा था, कि

तं स्मरिष्ये महाबाहो यदि भीष्म त्वमिच्छसि॥ १८॥
तव ह्यनुमते भीष्म नियतं स महातपाः ।
विचित्रवीर्यक्षेत्रेषु पुत्रानुत्पादयिष्यति ॥ १९ ॥

वैशम्पायन उवाच—महर्षेः कीर्तने तस्य भीष्मः प्राञ्जलिरब्रवीत् ।
धर्ममर्थं च कामं च त्रीनेतान्योऽनुपश्यति ॥ २० ॥
अर्थमर्थानुबन्धं च धर्मं धर्मानुबन्धनम् ।
कामं कामानुबन्धं च विपरीतान्पृथक्पृथक् ॥ २१ ॥
यो विचिन्त्य धिया धीरो व्यवस्यति स बुद्धिमान् ।
तदिदं धर्मयुक्तं च हितं चैव कुलस्य नः ॥ २२ ॥
उक्तं भवत्या यच्छ्रेयस्तन्मह्यं रोचते शुभम् ।

वैशम्पायन उवाच- ततस्तस्मिन्प्रतिज्ञाते भीष्मेण कुरुनन्दन ॥ २३ ॥
कृष्णद्वैपायनं काली चिन्तयामास वै मुनिम् ।
स वेदान्विब्रुवन्धीमान्मातुर्विज्ञाय चिन्तितम्॥२४॥
प्रादुर्बभूवाऽविदितः क्षणेन कुरुनन्दन ।
तस्मै पूजां ततः कृत्वा सुताय विधिपूर्वकम् ॥ २५ ॥

प्रयोजन होवे, तो मुझे स्मरण करना । हे भीष्म! यदि तुम चाहो, तो अब उनको स्मरण करूं, तुम्हारी सम्मति होनेसे वह महातपा द्वैपायन अवश्य ही विचित्र-वीर्यके क्षेत्रमें सन्तान उत्पादन करेंगे। (१५-१९)

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि उन महर्षि कृष्णद्वैपायनके नाम कहतेही भीष्मने दोनों हाथ जोडकर कहा, कि जो धर्म, अर्थ और काम इन विषयोंकी भले प्रकार आलोचना करते हैं और इस प्रकार अर्थ और अर्थसे संबंधित, धर्म और धर्मसे संबंधित, तथा काम और कामसे संबंधित व्यवहारों को तथा उनके विपरीत पृथक् पृथक् व्यवहारों को जो अपनी बुद्धि से विचार करके जानता और तदनुसार अनुष्ठान करता है वही बुद्धिमान कहा जाता है। आपने मेरे कुलका हितजनक धर्मयुक्त और मङ्गल-कारी जो वचन मुझसे कहा, उससे मैं पूर्ण रूपसे सम्मत हूं। (२०-२३)

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि हे कुरु नन्दन ! अनन्तर भीष्मके उस विषयमें सम्मत होने पर कालीने मुनि कृष्णद्वै-पायनका स्मरण किया। धीमान् वेदव्यास वेदकी व्याख्या कर रहे थे, कि ऐसे समयमें माताकी चिन्ता जानकर क्षण कालमें माताके सम्मुख प्रगट हुए,

परिष्वज्य च बाहुभ्यां प्रस्रवैरभ्यषिञ्चत ।
मुमोच बाष्पं दाशेयी पुत्रं दृष्ट्वा चिरस्य तु ॥ २६॥
तामद्भिः परिषिच्याऽऽर्तां महर्षिरभिवाद्य च।
मातरं पूर्वजः पुत्रो व्यासो वचनमब्रवीत् ॥ २७॥
भवत्या यदभिप्रेतं तदहं कर्तुमागतः ।
शाधि मां धर्मतत्त्वज्ञे करवाणि प्रियं तव ॥ २८॥
तस्मै पूजां ततोऽकार्षीत्पुरोधाः परमर्षये ।
स च तां प्रतिजग्राह विधिवन्मान्त्रपूर्वकम् ॥ २९॥
पूजितो मन्त्रपूर्वं तु विधिवत्प्रीतिमाप सः ।
तमासनगतं माता पृष्ट्वा कुशलमव्ययम् ॥ ३०॥
सत्यवत्यथ वीक्ष्यैनमुवाचेदमनन्तरम् ।
मातापित्रोः प्रजायन्ते पुत्राः साधारणाः कवे॥ ३१॥
तेषां पिता यथा स्वामी तथा माता न संशयः।
विधानविहितः स त्वं यथा मे प्रथमः सुतः॥ ३२॥
विचित्रवीर्यो ब्रह्मर्षे तथा मेऽवरजः सुतः ।

दूसरा कोई कुछ जान नहीं सका। आगे धीवर की बेटीने पुत्रका विधिपूर्वक समादर कर हाथोंसे गले लगाकर स्तन दुग्धसे नहाया और बहुकालके पीछे पुत्रको देखकर अश्रुजलसे आपभी नहा गयी। पूर्व पैदा भये पुत्र व्यास दुःखिता माता पर जल छोड ठण्डाकर प्रणामपूर्वक बोले, कि हे धर्मतत्त्व जानने वाली! आपकी जैसी इच्छा है, उसको पूरी करनेके लिये मैं आया हूं, आप आज्ञा कीजिये,आपका मनमाना अनुष्ठान करूंगा। अनन्तर पुरोहितने आकर उन परमर्षिकी यथाविधि पूजा की; उन्होंने भी मंत्र से वह पूजा ली और मंत्रसे उपासना किये जाकर प्रसन्न हुए। आगे माता सत्यवतीने उनको आसन पर बैठे हुए देखकर कुशल पूछ करके कहा, कि हे कवि! पितासे जो उत्पन्न होते हैं, वे पिता माता दोनोंमें साधारण होते हैं। पुत्र पर पिताका जैसा अधिकार है, इसमें सन्देह नहीं है, माताका भी वैसाही अधिकार रहता है। हे ब्रह्मर्षि! दैवविधानसे पैदा भये तुम मेरे जिस प्रकार प्रथम पुत्र हो, विचित्रवीर्यभी उस प्रकार मेरा कनिष्ठ पुत्र था और विचित्रवीर्य तथा भीष्म एक पिताके पुत्र होनेसे भीष्म जिस प्रकार विचित्रवीर्य के भ्राता भये हैं, उस

यथा च पितृतो भीष्मस्तथा त्वमसि मातृतः ॥३३॥
भ्राता विचित्रवीर्यस्य यथा वा पुत्र मन्यसे।
अयं शान्तनवः सत्यं पालयन्सत्यविक्रमः ॥३४॥
बुद्धिं न कुरुतेऽपत्ये तथा राज्यानुशासने ।
स त्वं व्यपेक्षया भ्रातुः सन्तानाय कुलस्य च॥३५॥
भीष्मस्य चाऽस्य वचनान्नियोगाच्च ममाऽनघ।
अनुक्रोशाच्च भूतानां सर्वेषां रक्षणाय च ॥ ३६ ॥
आनृशंस्याच्च यद् ब्रूयां तच्छ्रुत्वा कर्तुमर्हसि।
यवीयसस्तव भ्रातुर्भार्ये सुरसुतोपमे ॥ ३७ ॥
रूपयौवनसंपन्ने पुत्रकामे च धर्मतः ।
तयोरुत्पादयाऽपत्यं समर्थो ह्यसि पुत्रक ॥ ३८ ॥
अनुरूपं कुलस्याऽस्य संतत्याः प्रसवस्य च।
व्यास उवाच— वेत्थ धर्मं सत्यवति परं चाऽपरमेव च ॥ ३९ ॥
तथा तव महाप्राज्ञे धर्मे प्रणिहिता मतिः।
तस्मादहं त्वन्नियोगाद्धर्ममुद्दिश्य कारणम् ॥ ४० ॥
ईप्सितं ते करिष्यामि दृष्टं ह्येतत्सनातनम्।

प्रकार तुम और विचित्रवीर्य एक माताके गर्भसे पैदा होने के कारण यह मुझको समझ पडता है, कि तुमभी विचित्रवीर्यके भ्राता भये हो, आगे तुमको जैसी समझ हो। (२३–३४)

यह शान्तपुत्र सत्यविक्रमी भीष्म सत्य पालनेके लिये राज्य शासन, पुत्रोत्पादन करनेको सम्मत नहीं होते, अतएव हे अनघ! मैं जो कहती हूं,सुनकर अपने भाई विचित्रवीर्य पर स्नेहवश होके कुरुवंशकी रक्षा, प्रजाका पालन, भीष्मकी बात, मेरा नियोग, सर्वजीवों पर कृपा और अनिर्दयिताके लिये तुमको पूरा करना चाहिये। तुम्हारे कनिष्ठ भ्राताकी देवकन्या समान रूप यौवनवती दो भार्या हैं, वे धर्मानुसार पुत्रकामा हुई हैं। ऐ बेटा! तुम समर्थ हो, सो उन दो राणियोंसे इस कुल की परम्परा को बनाये रखने के योग्य पुत्रोत्पादन करो। (३४–३९)

व्यासजी बोले, कि हे अतिबुद्धिमती सत्यवती! आप अपर और पर दोनों प्रकारके धर्मोंसे जिस प्रकार ज्ञात हैं; उस विषयमें आपका चित्तभी उसी प्रकार धर्म में स्थित है; अतएव मैं आपके नियोगके अनुसार धर्मको स्मरणकर आपकी इच्छा पूरी करूंगा, क्योंकि यह सनातनधर्म

भ्रातुः पुत्रान्प्रदास्यामि मित्रावरुणयोः समान्॥४१॥
व्रतं चरेतां ते देव्यौ निर्दिष्टमिह यन्मया ।
संवत्सरं यथान्यायं ततः शुद्धे भविष्यतः ॥ ४२ ॥
न हि मामव्रतोपेता उपेयात्काचिदङ्गना ।

सत्यवत्युवाच— सद्यो यथा प्रपद्येते देव्यौ गर्भं तथा कुरु ॥ ४३ ॥
अराजकेषु राष्ट्रेषु प्रजाऽनाथा विनश्यति ।
नश्यन्ति च क्रियाः सर्वा नास्ति वृष्टिर्न देवता ॥४४॥
कथं चाऽराजकं राष्ट्रं शक्यं धारयितुं प्रभो ।
तस्माद्गर्भं समाधत्स्व भीष्मः संवर्धयिष्यति ॥४५॥

व्यास उवाच— यदि पुत्रः प्रदातव्यो मया भ्रातुरकालिकः ।
विरूपतां मे सहतां तयोरेतत्परं व्रतम् ॥ ४६ ॥
यदि मे सहते गन्धं रूपं वेषं तथा वपुः ।
अद्यैव गर्भं कौशल्या विशिष्टं प्रतिपद्यताम् ॥ ४७ ॥

वैशम्पायन उवाच—एवमुक्त्वा महातेजा व्यासः सत्यवतीं तदा।
शयने सा च कौशल्या शुचिवस्त्रा स्वलंकृता ॥ ४८॥
समागमनमाकाङ्क्षेदिति सोऽन्तर्हितो मुनिः।

मेरा ज्ञात है, मैं भ्राताको मित्र-वरुण-सदृश पुत्र दान करूंगा; पर अब यह एक नियम बना देता हूं, कि वधूगण न्यायानुसार वर्ष भर व्रत किये रहें; तभी वे शुद्धा होंगी, व्रत न करके कोई नारी मेरे पास नहीं आसकेगी। (३९-४३)

सत्यवती बोली, कि ऐसा करो, कि जिससे देवी राजरानियां आजही गर्भवती होवें। राज्य राजासे खाली रहनेपर प्रजा अनाथ होकर नष्ट होगी, क्रिया लोप हो जायंगी, वृष्टि नहीं होगी और देवगण चले जायंगे, सो विना राजाके राज्यकी क्यों कर रक्षा हो सकती है; अतएव तुम आजही गर्भाधान करो, भीष्म उस गर्भजात बालकको बढावेंगे। व्यासजी बोले, कि यदि विलम्ब न कर अकालही में पुत्र देना पडे, तो रानियां मेरे कुरूपको सहें, यही उनका परम व्रत होगा। यदि कौशल्या मेरी गन्ध, रूप, वेश और शरीरको सह सके, तो वह आजही विशेष गर्भ ले। (४३-४७)

श्रीवैशम्पायनजी बोले कि महातेजस्वी व्यासजी सत्यवतीसे यह बात कहकर फिर बोले, कि राजमहिषी कौशल्या अच्छा शुद्ध वस्त्र पहिन करके अच्छे आभूषणोंसे सजकर मेरे मिलन की कामना

ततोऽभिगम्य सा देवी स्नुषां रहसि संगताम् ४९ ॥
धर्म्यमर्थसमायुक्तमुवाच वचनं हितम् ।
कौशल्ये धर्मतन्त्रं त्वां यद्ब्रवीमि निबोध तत् ॥५०॥
भरतानां समुच्छेदो व्यक्तं मद्भाग्यसंक्षयात् ।
व्यथितां मां च संप्रेक्ष्य पितृवंशं च पीडितम् ॥५१॥
भीष्मो बुद्धिमदान्मह्यं कुलस्याऽस्य विवृद्धये ।
सा च बुद्धिस्त्वय्यधीना पुत्रि प्रापय मां तथा ॥ ५२ ॥
नष्टं च भारतं वंशं पुनरेव समुद्धर ॥ ५३ ॥
पुत्रं जनय सुश्रोणि देवराजसमप्रभम् ।
स हि राज्यधुरं गुर्वीमुद्वक्ष्यति कुलस्य नः ॥ ५४ ॥
सा धर्मतोऽनुनीयैनां कथंचिद्धर्मचारिणीम् ।
भोजयामास विप्रांश्च देवर्षीनतिथींस्तथा ॥ ५५ ॥

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यामादिपर्वणि संभवपर्वणि सत्यवत्युपदेशे पञ्चाधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०५ ॥ [४३६९]

वैशम्पायन उवाच- ततः सत्यवती काले वधूं स्नातामृतौ तदा ।
संवेशयन्ती शयने शनैर्वचनमब्रवीत ॥ १ ॥
कौशल्ये देवरस्तेऽस्ति सोऽद्य त्वाऽनुप्रवेक्ष्यति ।

करे; सत्यवती पुत्रवधूके पास जाकर निराले में भेंटकर धर्म और अर्थयुक्त और हितजनक यह बात बोली, कि हे कौशल्ये ! तुमसे धर्म सम्मत जो बात कहती हूं, सुनो । मेरे दुर्भाग्यसे भरतवंश उखड गया है, उससे भीष्मने मुझको पीडित देखकर और पिताके वंशको उखडनेपर विचारकरके कुल बढानेके लिये मुझको युक्ति दी है, ऐ बेटी! वह युक्ति तुम्हारे अधीन है, अतएव तुम मेरा अभीष्ट सिद्धकर उस युक्तिको सफल करो, विनष्ट भरतवंशका फिर उद्धार करो। री सुन्दरी! देवराज समान कुमार प्रसव करो, वह कुमार हमारे इस भारी राज्यके भारको संभाल लेगा। सत्यवती ने उस धर्मचारिणीको धर्मानुसार विनय करके किसी प्रकार सम्मत कराके देव, ऋषि, ब्राह्मण और अतिथियोंको भोजन कराया। (४८—५५) [४३६९]

आदिपर्वमें एकसौ पांच अध्याय समाप्त।

आदिपर्वमें एकसौ छः अध्याय ।

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि अनन्तर वधू कौशल्याके योग्य समय में ऋतु-स्नान करने पर सत्यवती उसे भले प्रकार

अप्रमत्ता प्रतीक्षैनं निशीथे ह्यागमिष्यति ॥ २ ॥
श्वश्र्वास्तद्वचनं श्रुत्वा शयाना शयने शुभे ।
साऽचिन्तयत्तदा भीष्ममन्यांश्च कुरुपुङ्गवान् ॥ ३ ॥
ततोऽम्बिकायां प्रथमं नियुक्तः सत्यवागृषिः ।
दीप्यमानेषु दीपेषु शरणं प्रविवेश ह ॥ ४ ॥
तस्य कृष्णस्य कपिलां जटां दीप्ते च लोचने ।
बभ्रूणि चैव श्मश्रूणि दृष्ट्वा देवी न्यमीलयत् ॥ ५ ॥
संबभूव तया सार्धं मातुः प्रियचिकीर्षया ।
भयात्काशिसुता तं तु नाऽशक्नोदभिवीक्षितुम् ॥६॥
ततो निष्क्रान्तमागम्य माता पुत्रमुवाच ह ।
अप्यस्या गुणवान्पुत्र राजपुत्रो भविष्यति ॥ ७ ॥
निशम्य तद्वचो मातुर्व्यासः सत्यवतीसुतः ।
प्रोवाचाऽतीन्द्रियज्ञानो विधिना संप्रचोदितः ॥ ८ ॥
नागायुतसमप्राणो विद्वान्राजर्षिसत्तमः ।
महाभागो महावीर्यो महाबुद्धिर्भविष्यति ॥ ९ ॥
तस्य चाऽपि शतं पुत्रा भविष्यन्ति महात्मनः ।

सजे हुए विस्तर पर बैठाकर धीमे स्वरसे बोले, कि हे कौशल्ये ! तुम्हारे एक देवर हैं; वह आज रात्रिको तुम्हारे पास आवेंगे; तुम एकमन होकर उनकी बाट ताकती रहो । अम्बिका सासकी वह बात सुनकर शुभ शयनमें सोकर भीष्म और दूसरे कुरुश्रेष्ठोंकी चिन्ता करने लगी । अनन्तर सत्यवतीके सुत सत्यव्रत बोलने वाले ऋषिने पहिले अम्बिकाके लिये नियुक्त होकर दीप जलते रहते ही घरमें प्रवेश किया । अम्बिकाने उन कृष्णवर्ण पुरुषकी पिङ्गल जटा, बडी भारी दाढी और जलते हुए नेत्रोंको देखकर आंखें मूद लीं । द्वैपायनने माताका प्रिय साधने के लिये उसके साथ सङ्गम किया; पर काशी राजकी कन्या भयसे उनको देख नहीं सकी । (१—६)

अनन्तर व्यासजीके घरसे निकलने पर उनकी माताने उनसे पूछा, कि क्यों बेटा । इस वधूसे गुणवान् पुत्र जन्म लेगा ? इन्द्रियोंसे अतीत ज्ञान रखनेवाले सत्यवतीनन्दन व्यासजी माताकी यहबात सुनकर बोले, कि विधिपूर्वक जन्म लिया हुआ यह गर्भमें स्थित बालक दश सहस्र हस्ती के समान बलवान्, विद्वान राजर्षियोंमें श्रेष्ठ, महाभाग महा वीर्यवन्त

किं तु मातुः स वैगुण्यादन्ध एव भविष्यति ॥ १० ॥
तस्य तद्वचनं श्रुत्वा माता पुत्रमथाऽब्रवीत् ।
नाऽन्धः कुरूणां नृपतिरनुरूपस्तपोधन ॥ ११ ॥
ज्ञातिवंशस्य गोप्तारं पितॄणां वंशवर्धनम् ।
द्वितीयं कुरुवंशस्य राजानं दातुमर्हसि ॥ १२ ॥
स तथेति प्रतिज्ञाय निश्चक्राम महायशाः ।
साऽपि कालेन कौशल्या सुषुवेऽन्धं तमात्मजम् १३॥
पुनरेव तु सा देवी परिभाष्य स्नुषां ततः ।
ऋषिमावाहयत्सत्या यथापूर्वमरिन्दम ॥ १४ ॥
ततस्तेनैव विधिना महर्षिस्तामपद्यत ॥ १५ ॥
अम्बालिकामथाऽभ्यागादृषिं दृष्ट्वा च साऽपि तम् ।
विवर्णा पाण्डुसंकाशा समपद्यत भारत ॥ १६ ॥
तां भीतां पाण्डुसंकाशां विषण्णां प्रेक्ष्य भारत ।
व्यासः सत्यवतीपुत्र इदं वचनमब्रवीत् ॥ १७ ॥
यस्मात्पाण्डुत्वमापन्ना विरूपं प्रेक्ष्य मामिह ।
तस्मादेष सुतस्ते वै पाण्डुरेव भविष्यति ॥ १८ ॥
नाम चाऽस्यैतदेवेह भविष्यति शुभानने ।

और अति बुद्धिमान् होगा और उस महात्मासे सौ सन्तान उत्पन्न होंगी; पर वह माताके दोषसे अन्धा होगा। ७-१०

पुत्र की बात सुनकर माता बोली, कि हे तपोधन ! अन्धा पुरुष कुरुवंशके योग्य भूप नहीं हो सकता; अतएव जाति कुलके रक्षक पितरोंके वंशधर और कुरुवंशका राजा होसके, ऐसा एक पुत्र उत्पन्न करना होगा। महायशा व्यास उसपर स्वीकृत होकर चले गये। आगे समय आने पर कौशल्याने ऋषिकथित एक अन्धापुत्र प्रसव किया। हे अरिन्दम ! देवी सत्यवतीने पूर्ववत पुत्रवधूको आज्ञा देकर फिर उन ऋषिको बुलाया। महर्षि पूर्ववत विधिके अनुसार अम्बालिकाके पास आकर उपगत हुए। (११—१५)

हे भारत ! अम्बालिका उन ऋषिको देखकर पीली हो गयी। सत्यवतीके सुत व्यासजी उसको भीत, दुःखित और पीली देखकर बोले, कि इस कारण, कि तुम मुझको विरूप देख कर पीली हुई हो, तुम्हारा पुत्रभी पीला होगा। हे शुभानने ! वह पुत्र पीला अर्थात् पाण्डु नामहीसे प्रख्यात होगा। भगवान् ऋषि-

इत्युक्त्वा स निराक्रामद्भगवानृषिसत्तमः ॥ १९॥
ततो निष्क्रान्तमालोक्य सत्या पुत्रमथाऽब्रवीत् ।
शशंस स पुनर्मात्रे तस्य बालस्य पाण्डुताम् ॥२०॥
तं माता पुनरेवाऽन्यमेकं पुत्रमयाचत ।
तथेति च महर्षिस्तां मातरं प्रत्यभाषत ॥ २१॥
ततः कुमारं सा देवी प्राप्तकालमजीजनत् ।
पाण्डुं लक्षणसंपन्नं दीप्यमानं वराश्रिया ॥ २२॥
यस्य पुत्रा महेष्वासा जज्ञिरे पञ्च पाण्डवाः ।
ऋतुकाले ततो ज्येष्ठां वधूं तस्मै न्ययोजयत् ॥ २३॥
सा तु रूपं च गन्धं च महर्षेः प्रविचिन्त्य तम् ।
नाऽकरोद्वचनं देव्या भयात्सुरसुतोपमा ॥ २४ ॥
ततः स्वैर्भूषणैर्दासीं भूषयित्वाऽप्सरोपमाम् ।
प्रेषयामास कृष्णाय ततः काशिपतेः सुता ॥ २५ ॥
सा तमृषिमनुप्राप्तं प्रत्युद्गम्याऽभिवाद्य च ।
संविवेशाऽभ्यनुज्ञाता सत्कृत्योपचचार ह ।
कामोपभोगेन रहस्तस्यां तुष्टिमगादृषिः ॥ २६ ॥
तया सहोषितो राजन्महर्षिः संशितव्रतः ।

श्रेष्ठके यह बात कहकर घरसे निकलने पर सत्यवतीने उनसे सन्तानकी बात पूछी। व्यासने माताको फिर पुत्रके पीला होनेका विषय कह सुनाया। (१६—२०)

सत्यवतीने यह सुनकर फिर उनसे और एक पुत्रकी प्रार्थना की; महर्षिने वहभी स्वीकार किया। अनन्तर समय आनेपर देवी अम्बालिकाने सुन्दर श्रीयुक्त पाण्डुवर्ण एक कुमार प्रसव किया, जिनके पुत्र पांच पाण्डव बडे चापधारी भये थे। अनन्तर बडी वधूका ऋतु काल आनेपर सत्यवतीने उसको उन ऋषिके निकट नियुक्त किया; पर उसने ऋषिके शरीरकी वैसी गन्ध स्मरणकर देवीके वाक्यानुरूप कर्म नहीं किया। (२१—२४)

अनन्तर देवकन्या सदृशी उस काशीराज पुत्रीने अप्सरा समान एक दासीको अपने आभूषणों से अलंकृता कर कृष्ण द्वैपायनजीके निकट नियोग किया। आगे ऋषिके आनेपर दासी उठकर नमस्कार पूर्वक ऋषिकी आज्ञानुसार उनको उपचरित और सत्कृत कर बिस्तर पर जा बैठी। हे राजन्! व्रतशील महर्षि निरालेमें उससे सहवासमें कामको भोगकर उस पर

उत्तिष्ठन्नब्रवीदेनामभुजिष्या भविष्यसि ॥ २७ ॥
अयं च ते शुभे गर्भः श्रेयानुदरमागतः ।
धर्मात्मा भविता लोके सर्वबुद्धिमतां वरः ॥ २८ ॥
स जज्ञे विदुरो नाम कृष्णद्वैपायनात्मजः ।
धृतराष्ट्रस्य वै भ्राता पाण्डोश्चैव महात्मनः ॥ २९ ॥
धर्मो विदुररूपेण शापात्तस्य महात्मनः ।
माण्डव्यस्याऽर्थतत्त्वज्ञः कामक्रोधविवर्जितः ॥३०॥
कृष्णद्वैपायनोऽप्येतत्सत्यवत्यै न्यवेदयत् ।
प्रलम्भमात्मनश्चैव शूद्रायाः पुत्रजन्म च ॥ ३१ ॥
स धर्मस्याऽनृणो भूत्वा पुनर्मात्रा समेत्य च ।
तस्यै गर्भं समावेद्य तत्रैवाऽन्तरधीयत ॥ ३२ ॥
एते विचित्रवीर्यस्य क्षेत्रे द्वैपायनादपि ।
जज्ञिरे देवगर्भाभाः कुरुवंशविवर्धनाः ॥ ३३ ॥ [४४०२]

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यामादिपर्वणि संभवपर्वणि विचित्रवीर्यसुतोत्पत्तौ षडधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०६ ॥

जनमेजय उवाच— किं कृतं कर्म धर्मेण येन शापमुपेयिवान् ।
कस्य शापाच्च ब्रह्मर्षेः शूद्रयोनावजायत ॥ १ ॥

अति प्रसन्न हुए और उठकर जानेके काल उससे बोले, तुम्हारा दासीपन मुक्त होगा। हे शुभे ! तुम्हारे गर्भमें स्थित सन्तान धर्मात्मा मङ्गलभाजन और बुद्धिमान जनोंमें सबसे श्रेष्ठ होगी । महाराज! श्रीकृष्णद्वैपायनजी के वीर्य और उसके गर्भसे धृतराष्ट्र और महात्मा पाण्डु के भाई विदुरने जन्म लिया। (२५-२९)

अर्थ तत्त्व जाननेवाले और जितेन्द्रिय श्रीकृष्णद्वैपायनजीने माताके निकट आकर महात्मा माण्डव्यके शापसे धर्मका विदुरके स्वरूपमें जन्म और अपने सामने दासीका नियोग, और उससे पुत्रके स्वरूपमें धर्मका जन्म यह सब कह सुनाये । अनन्तर वह उस गर्भ की कथा माताके निकट कहकर धर्मानुसार ऋणसे छुटकारा पाकर उस स्थानहीमें अन्तर्हित हुए । हे भूप ! श्रीद्वैपायनजी के वीर्य और विचित्रवीर्यके क्षेत्रमें कुरुकुलके बढानेवाले देवकुमार समान कुमारों ने इस प्रकार जन्म लिया था। (३०-३३)

आदिपर्वमें एक सौ छः अध्याय समाप्त। [४४०२]

आदिपर्व में एक सौ सात अध्याय ।

जनमेजय बोले, कि धर्मने कौनसा कर्म

वैशम्पायन उवाच—बभूव ब्राह्मणः कश्चिन्माण्डव्य इति विश्रुतः।
धृतिमान्सर्वधर्मज्ञः सत्ये तपसि च स्थितः ॥ २ ॥
स आश्रमपदद्वारि वृक्षमूले महातपाः ।
ऊर्ध्वबाहुर्महायोगी तस्थौ मौनव्रतान्वितः ॥ ३ ॥
तस्य कालेन महता तस्मिंस्तपसि वर्ततः ।
तमाश्रमपदं प्राप्ता दस्यवो लोप्त्रहारिणः ॥ ४ ॥
अनुसार्यमाणा बहुभी रक्षिभिर्भरतर्षभ ।
ते तस्याऽऽवसथे लोप्त्रं दस्यवः कुरुसत्तम ॥ ५ ॥
निधाय च भयाल्लीनास्तत्रैवाऽनागते बले ।
तेषु लीनेष्वथो शीघ्रं ततस्तद्रक्षिणां बलम् ॥ ६ ॥
आजगाम ततोऽपश्यंस्तमृषिं तस्करानुगाः ।
तमपृच्छंस्ततो राजंस्तथावृत्तं तपोधनम् ॥ ७ ॥
कतमेन पथा याता दस्यवो द्विजसत्तम ।
तेन गच्छामहे ब्रह्मन्यथा शीघ्रतरं वयम् ॥ ८ ॥
तथा तु रक्षिणां तेषां ब्रुवतां स तपोधनः ।
न किंचिद्वचनं राजन्नब्रवीत्साध्वसाधु वा ॥ ९ ॥
ततस्ते राजपुरुषा विचिन्वानास्तमाश्रमम् ।

किया था, कि उस कारण शापसे ग्रसित हुए और किस ब्रह्मर्षिके शापसे शूद्र योनिमें जन्म लिया ? (१)

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि माण्डव्य नामसे प्रसिद्ध सर्व धर्मज्ञ धृतिमान् सत्य-निष्ठ और तपमें नियुक्त एक महातपा महायोगी ब्राह्मण एक समय आश्रमके द्वारपर स्थित वृक्षकी जडमें ऊर्ध्वबाहु और मौनी होकर बहुत दिनोंसे तप कर रहे थे, कि ऐसे समयमें एकदिन लुटेरे लूटी हुई वस्तुओंको लेकर उनके उस आश्रममें आये। हे भरतवंशश्रेष्ठ उनके पीछे रखवारे आरहे थे; सो वे भय खाकर रखवारोंके आते न आते उस आश्रममें लूटे हुए धन-को छिपाकर आपभी वहीं रहे। (२-६)

अनन्तर चोरोंको पाछियाते हुए पैदल रखवारे उसी क्षण उस स्थानमें आपहुंचे। हे राजन्! उन्होंने उस दशामें तपस्वी उस ऋषिको देखकर पूछा, कि हे द्विजवर! लुटेरे किस पथसे गये? हे ब्राह्मण! कह दीजिये, हम शीघ्र उस पथमें जायंगे। हे राजन्! रखवारोंके उस प्रकार पूछनेपर तपोधन माण्डव्यने भली बुरी कुछ नहीं कही। अनन्तर राजपुरुषोंने

ददृशुस्तत्र लीनांस्तांश्चौरांस्तद् द्रव्यमेव च॥१०॥
ततः शङ्का समभवद्रक्षिणां तं मुनिं प्रति ।
संयम्यैनं ततो राज्ञे दस्यूंश्चैव न्यवेदयन् ॥ ११ ॥
तं राजा सह तैश्चौरैरन्वशाद्वध्यतामिति ।
स रक्षिभिस्तैरज्ञातः शूले प्रोतो महातपाः ॥१२ ॥
ततस्ते शूलमारोप्य तं मुनिं रक्षिणस्तदा ।
प्रतिजग्मुर्महीपालं धनान्यादाय तान्यथ ॥ १३ ॥
शूलस्थः स तु धर्मात्मा कालेन महता ततः ।
निराहारोऽपि विप्रर्षिर्मरणं नाऽभ्यपद्यत ॥ १४ ॥
धारयामास च प्राणानृषींश्च समुपानयत् ।
शूलाग्रे तप्यमानेन तपस्तेन महात्मना ॥ १५ ॥
संतापं परमं जग्मुर्मुनयस्तपसान्विताः ।
ते रात्रौ शकुना भूत्वा संनिपत्य तु भारत ॥ १६ ॥
दर्शयन्तो यथाशक्ति तमपृच्छन्द्विजोत्तमम् ।
श्रोतुमिच्छामहे ब्रह्मन्किं पापं कृतवानसि ।
येनेह समनुप्राप्तं शूले दुःखभयं महत् ॥ १७ ॥ [४४१९]

इति श्रीमहा० शत० संहि० वैयासिक्यां० संभवपर्वणि माण्डव्योपाख्याने सप्ताधिकशततमोऽध्यायः ॥१०७॥

उस आश्रममें ढूंढते हुए चुराये हुए पदार्थोंके साथ चोरोंको पाया। (६-१०)

आगे उन मुनिपर रखवारोंका सन्देह होनेपर उन्होंने लुटेरों और मुनिको बांधकर राजाके पास दे दिया। राजाने लुटेरोंके साथ मुनिकोभी मारनेकी आज्ञा दी। रखवारोंने महातपा माण्डव्य को न जानकर शूलीपर चढा दिया; अनन्तर चुरायी हुई वस्तुओंको लेकर राजाके यहां गये! धर्मात्मा विप्रर्षि बहुकाल शूलीपर चढे हुए और विना भोजन रहने परभी मृत्युके मुखमें न गिरे। वह तपके बलसे जीवित रहे, आगे ऋषिओंको अपने पास बुलवाया। हे भारत! तपोबल-युक्त मुनिलोग रात्रिको पक्षियोंका स्वरूप लेकर उनके पास आकरके उन महात्माको शुलीके ऊपर तपमें मग्न देखकर, अति दुःखी हुए और उन्होंने निज निज रूप लेकर द्विजोत्तमसे पूछा, कि हे ब्रह्मन्! हम सुनना चाहते हैं, कि तुमने कौनसा पाप किया है, कि इस शूलीका भारी दुःख और भय सहना पडता है। (११--१७) [४४१९]

आदिपर्वमें एकसौ सात अध्याय समाप्त।

वैशम्पायन उवाच—ततः स मुनिशार्दूलस्तानुवाच तपोधनान् ।
दोषतः कं गमिष्यामि न हि मेऽन्योऽपराध्यति॥१॥
तं दृष्ट्वा रक्षिणस्तत्र तथा बहुतिथेऽहनि ।
न्यवेदयंस्तथा राज्ञे यथावृत्तं नराधिप ॥ २ ॥
श्रुत्वा च वचनं तेषां निश्चित्य सह मन्त्रिभिः ।
प्रसादयामास तदा शूलस्थमृषिसत्तमम् ॥ ३ ॥

राजोवाच— यन्मयाऽपकृतं मोहादज्ञानादृषिसत्तम ।
प्रसादये त्वां तत्राऽहं न मे त्वं क्रोद्धुमर्हसि ॥ ४ ॥
एवमुक्तस्ततो राज्ञा प्रसादमकरोन्मुनिः ।
कृतप्रसादं राजा तं ततः समवतारयत् ॥ ५॥
अवतार्य च शूलाग्रात्तच्छूलं निश्चकर्ष ह ।
अशक्नुवंश्च निष्क्रष्टुं शूलं मूले स चिच्छिदे ॥ ६ ॥
स तथाऽन्तर्गतेनैव शूलेन व्यचरन्मुनिः ।
तेनाऽतितपसा लोकान्विजिग्ये दुर्लभान्परैः ॥ ७ ॥
अणीमाण्डव्य इति च ततो लोकेषु गीयते ।
स गत्वा सदनं विप्रो धर्मस्य परमात्मवित् ॥ ८॥

आदिपर्व में एकसौ आठ अध्याय।

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि अनन्तर मुनि शार्दूल माण्डव्यने उन तपोधनोंसे कहा, कि मैं किसको दोष लगाऊं, कोई और मनुष्य इस विषयमें दोषी नहीं है। हे नराधिप ! अनेक दिनोंके पीछे रखवारोंने उनको उस दशामें देखकर राजासे सब हाल कह सुनाया। वह सुनकर भूपाल तब मन्त्रियोंसे युक्ति करके, उस शूलीपर स्थित ऋषिको प्रसन्न करनेके लिये विनयके साथ कहने लगे, कि मैंने मोहवश अज्ञानतासे आप की हानि की है, अब आपकी प्रसन्नताके लिये प्रार्थना करता हूं, आप मुझपर क्रोधित न होवें। (१-४)

राजाकी ऐसी बात सुनकर मुनि प्रसन्न हुए। भूपाल उनको प्रसन्न देखकर शूलीके खम्भेसे उतार कर उसे निकालने लगे, पर उससे मनोरथ सफल नहीं हो सका, आगे देहके भीतर घुसी हुई शूलीकी जड काट डाली। तब मुनि भीतर घुसीहुई शूलीको ले करके ही कठोर तपस्या करने लगे; उससे औरोंके लिये दुर्लभ पुण्यलोकको जीत लिया। वह अणी अर्थात् शूलीके अगले भागको लिये रहनेके कारण आणि–माण्डव्य नामसे लोगों में प्रसिद्ध हुए। तत्त्वज्ञ ब्राह्मण

आसनस्थं ततो धर्मं दृष्ट्वोपालभत प्रभुः ।
किं नु तद्दुष्कृतं कर्म मया कृतमजानता ॥ ९ ॥
यस्येयं फलनिर्वृत्तिरीदृश्यासादिता मया ।
शीघ्रमाचक्ष्व मे तत्त्वं पश्य मे तपसो बलम्॥१०॥

धर्म उवाच— पतङ्गिकानां पुच्छेषु त्वयेषीका प्रवेशिता ।
कर्मणस्तस्य ते प्राप्तं फलमेतत्तपोधन ॥ ११ ॥
स्वल्पमेव यथा दत्तं दानं बहुगुणं भवेत् ।
अधर्म एवं विप्रर्षे बहुदुःखफलप्रदः ॥ १२ ॥

अणीमाण्डव्यउवाच-कस्मिन्काले मया तत्तु कृतं ब्रूहि यथातथम् ।
तेनोक्तो धर्मराजेन बालभावे त्वया कृतम् ॥ १३ ॥

अणीमाण्डव्य उवाच-बालो हि द्वादशाद्वर्षाज्जन्मतो यत्करिष्यति ।
न भविष्यत्यधर्मोऽत्र न प्रज्ञास्यन्ति वै दिशः॥ १४॥
अल्पेऽपराधेऽपि महान्मम दण्डस्त्वया धृतः।
गरीयान्ब्राह्मणवधः सर्वभूतवधादपि ॥ १५॥
शूद्रयोनावतो धर्म मानुषः संभविष्यसि ।
मर्यादां स्थापयाम्यद्य लोके धर्मफलोदयाम् ॥ १६ ॥
आचतुर्दशकाद्वर्षान्न भविष्यति पातकम् ।
परतः कुर्वतामेव दोष एव भविष्यति ॥ १७ ॥

अणि-माण्डव्य एक समय धर्मके पास गये। धर्मको वहां बैठे देखकर प्रभु अणि-माण्डव्य उनको लाञ्छन कर बोले, कि मैंने अज्ञानतासे कौनसा कुकर्म किया है, कि जिससे ऐसा फल पाया? इसका गूढ तत्त्व मुझसे शीघ्र कहो और मेरी तपस्याका प्रभाव देखो। (५—१०)

धर्म बोले, कि तुमने एक दिन पतंगे की पूछमें इषीका अर्थात् तिनका घुसाया था, हे तपोधन! तुमने उस कर्मका यह फल प्राप्त किया है । स्वल्प किया हुआ दान भी जैसा बहुफलदायी होता है, अधर्म भी उसी प्रकार बहुत दुःख देनेवाला होता है। अणि-माण्डव्य बोले, कि हे धर्म! मेरी बालावस्थामें किये हुए छोटेसे दोषका तुमने ऐसा कठोर दण्ड दिया है, इस हेतु तुम मनुष्य होकर शूद्र योनिमें जन्म लोगे। आजसे मैं कर्मके फल भोगनेके विषयमें लोकों में यह नियम स्थापन करता हूं, कि जब तक चौदह वर्षकी आयु पूरी न होवे तबतक पाप करनेसेभी पाप नहीं होगा! चौदह

वैशम्पायन उवाच- एतेन त्वपराधेन शापात्तस्य महात्मनः ।
धर्मो विदुररूपेण शूद्रयोनावजायत ॥ १८ ॥
धर्मे चाऽर्थे च कुशलो लोभक्रोधविवर्जितः।
दीर्घदर्शी शमपरः कुरूणां च हिते रतः ॥ १९ ॥(४४३८)

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यामादिपर्वणि संभवपर्वण्यणी-माण्डव्योपाख्यानेऽष्टाधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०८ ॥

वैशम्पायन उवाच- तेषु त्रिषु कुमारेषु जातेषु कुरुजाङ्गलम् ।
कुरवोऽथ कुरुक्षेत्रं त्रयमेतदवर्धत ॥ १ ॥
ऊर्ध्वसस्याऽभवद् भूमिः सस्यानि रसवन्ति च।
यथर्तुवर्षी पर्जन्यो बहुपुष्पफला द्रुमाः ॥ २ ॥
वाहनानि प्रहृष्टानि मुदिता मृगपक्षिणः ।
गन्धवान्ति च माल्यानि रसवन्ति फलानि च ॥ ३ ॥
वणिग्भिश्चाऽन्वकीर्यन्त नगराण्यथ शिल्पिभिः।
शूराश्च कृतविद्याश्च सन्तश्च सुखिनोऽभवन् ॥ ४ ॥
नाऽभवन्दस्यवः केचिन्नाऽधर्मरुचयो जनाः।
प्रदेशेष्वपि राष्ट्राणां कृतं युगमवर्तत ॥ ५ ॥

वर्षके पीछे पापकर्म करनेसे उसके फल की प्राप्ति होगी। (११-१७)

श्रीवैशम्पायनजी बोले,कि इस दोषके हेतु महात्मा अणि-माण्डव्यके शापसे धर्मने विदुरके स्वरूपमें शूद्रयोनिमें जन्म लिया; पर वह धर्म और अर्थके विषयमें पण्डित, लोभ क्रोध वर्जित शांत और पारिणामदर्शी होकर कुरुवंशके हित साधनेमें सदा उत्साही थे ।

आदिपर्वमें एकसौ आठ अध्याय समाप्त ।४४३८

आदिपर्व में एक सौ नौ अध्याय ।

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि अनन्तर उन तीन कुमारोंके जन्म लेने पर कौरवगण, कुरुजाङ्गल देश और कुरुक्षेत्र इन तीनोंकी पूरी उन्नति हुई। तब भूमिमें बहुत शस्य उपजने लगे, शस्य रसयुक्त हुए, बादलोंके उचित समयमें वृष्टि करनेसे वृक्षोंके अपरिमित फल और फूल होने लगे। उनदिनों सब वाहन प्रसन्न, मृग पक्षी प्रमुदित, पुष्प गन्धयुक्त और फल अच्छे रसयुक्त होते थे। तब नगर वाणिज्य और शिल्प पर जनिवालेसे भरा पूरा था; और शूरलोग, विद्वानलोग और साधुगण सुखी होने लगे। उस समयमें कोई लूटेरा वा अधर्मशील न था, सो राज्यके सब प्रदेशोंमें मानो सत्ययुग प्रवृत्त हुआ। (१–५)

धर्मक्रिया यज्ञशीलाः सत्यव्रतपरायणाः ।
अन्योन्यप्रीतिसंयुक्ता व्यवर्धन्त प्रजास्तदा ॥ ६ ॥
कामक्रोधविहीनाश्च नरा लोभविवर्जिताः ।
अन्योन्यमभ्यनन्दन्त धर्मोत्तरमवर्तत ॥ ७ ॥
तन्महोदधिवत्पूर्णं नगरं वै व्यरोचत ।
द्वारतोरणनिर्यूहैर्युक्तमभ्रचयोपमैः ।
प्रासादशतसंबाधं महेन्द्रपुरसन्निभम् ॥ ८ ॥
नदीषु वनखण्डेषु वापीपल्वलसानुषु ।
काननेषु च रम्येषु विजह्रुर्मुदिता जनाः ॥ ९ ॥
उत्तरैः कुरुभिः सार्धं दक्षिणाः कुरवस्तथा ।
विस्पर्धमाना व्यचरंस्तथा देवर्षिचारणैः ॥ १० ॥
नाऽभवत्कृपणः कश्चिन्नाऽभवन्विधवाः स्त्रियः ।
तस्मिञ्जनपदे रम्ये कुरुभिर्बहुलीकृते ॥ ११ ॥
कूपारामसभावाप्यो ब्राह्मणावसथास्तथा ।
बभूवुः सर्वर्द्धियुतास्तस्मिन्राष्ट्रे सदोत्सवाः ॥ १२ ॥
भीष्मेण धर्मतो राजन्सर्वतः परिरक्षिते ।
बभूव रमणीयश्च चैत्ययूपशताङ्कितः ॥ १३ ॥

प्रजा धर्मशील, यागशील, सत्यशील, और आपसमें प्रेमशील होकर विशेष रूपसे बढने लगी। संपूर्ण जन क्रोध लोभ और अभिमानवर्जित होकर धर्मानुसारही परस्पर आनन्द मानने लगे। उस कालमें वह नगर बडे भारी समुद्रके समान भरा, सैकडों बडे बडे भवनोंसे पूरा और बादल दलके सदृश द्वार और तोरणोंसे संयुक्त होकर अमरावती की सी अपूर्व शोभा पाने लगा। मानवगण नदी, वन, तडाग, सरोवर, रमणीय फुलवाडी और पर्वतोंकी समभूमि पर प्रसन्न चित्तसे विहार करने लगे। दक्षिण कुरुलोग उत्तर कुरुओंसे एक दूसरेको अहङ्कार दिखा कर सिद्ध, ऋषि और चारणोंके साथ विचरने लगे। (६—१०)

कुरुओंसे बढे हुए उस सुन्दर जनपदमें कोई कृपण नहीं था और कोई नारी विधवा नहीं होती थीं। कूप, उपवन, तडाग, सभा और ब्राह्मणोंकी वस्ती सर्व सम्पद्युक्त हुई, और सब स्थानोंमें सदा उत्सव होने लगे। वह राज्य भीष्मसे धर्मानुसार इस प्रकार रक्षित हुआ, कि अनेक देशोंके यज्ञयूपोंसे चित्रित होकर

स देशः परराष्ट्राणि विसृज्याऽभिप्रवर्धितः ।
भीष्मेण विहितं राष्ट्रे धर्मचक्रमवर्तत ॥ १४ ॥
क्रियमाणेषु कृत्येषु कुमाराणां महात्मनाम् ।
पौरजानपदाः सर्वे बभूवुः परमोत्सुकाः ॥ १५ ॥
गृहेषु कुरुमुख्यानां पौराणां च नराधिप ।
दीयतां भुज्यतां चेति वाचोऽश्रूयन्त सर्वशः॥१६ ॥
धृतराष्ट्रश्च पाण्डुश्च विदुरश्च महामतिः ।
जन्मप्रभृति भीष्मेण पुत्रवत्परिपालिताः ॥ १७ ॥
संस्कारैः संस्कृतास्ते तु व्रताध्ययनसंयुताः ।
श्रमव्यायामकुशलाः समपद्यन्त यौवनम् ॥ १८ ॥
धनुर्वेदे च वेदे च गदायुद्धेऽसिचर्मणि ।
तथैव गजशिक्षायां नीतिशास्त्रेषु पारगाः ॥ १९ ॥
इतिहासपुराणेषु नानाशिक्षासु बोधिताः ।
वेदवेदाङ्गतत्त्वज्ञाः सर्वत्र कृतनिश्चयाः ॥ २० ॥
पाण्डुर्धनुषि विक्रान्तो नरेष्वभ्यधिकोऽभवत् ।
अन्येभ्यो बलवानासीद् धृतराष्ट्रो महीपतिः॥ २१ ॥
त्रिषु लोकेषु न त्वासीत्कश्चिद्विदुरसंमितः ।

अति रमणीय बन गया; भीष्म के विधान से उस राज्यमें धर्मचक्र ऐसा प्रवर्तित हुआ, कि बहुतेरे दूसरे राज्योंको छोडकर उस राज्यमें बसने लगे । महात्मा कुरु-कुमारोंसे किये जाते हुए कार्योंको देखकर जनपद और पुरवासी सब अति उत्साहयुक्त हुए । हे नराधिप ! प्रधान कौरवों और पुरवासियोंके घरोंमें "खाओ, पीओ" यह बात सदा सुनाई देने लगी । (११—१६)

धृतराष्ट्र, पाण्डु और महामति विदुर जन्महीसे भीष्मसे पुत्रकी भांति प्रति-पालित, जातिके योग्य संस्कारोंसे संस्कृत, व्रत तथा पठन में नियुक्त, और श्रम तथा व्यायाममें पण्डित होकर उचित समयमें यौवनदशाको प्राप्त हुए। वे धनुर्वेदमें, गदा-युद्धमें, खड्ग-चर्म चलानेमें गजशिक्षामें और नीतिशास्त्रमें दक्ष हुए। वे वेद वेदाङ्गके तत्त्वज्ञ होकर इतिहास, पुराण और दूसरे नाना विषयोंकी शिक्षा आदि सब विषयों में पण्डित हुए थे । विक्रमी पाण्डु धनुर्विद्यामें और महीपति धृतराष्ट्र बलवत्ता में सबोंसे श्रेष्ठ भये । (१७–२१)

धर्मनित्यस्तथा राजन्धर्मे च परमं गतः ॥ २२ ॥
प्रनष्टं शान्तनोर्वंशं समीक्ष्य पुनरुद्धृतम् ।
ततो निर्वचनं लोके सर्वराष्ट्रेष्ववर्तत ॥ २३ ॥
वीरसूनां काशिसुते देशानां कुरुजाङ्गलम् ।
सर्वधर्मविदां भीष्मः पुराणां गजसाह्वयम् ॥ २४ ॥
धृतराष्ट्रस्त्वचक्षुष्ट्वाद्राज्यं न प्रत्यपद्यत ।
पारशवत्वाद्विदुरो राजा पाण्डुर्बभूव ह ॥ २५ ॥
कदाचिदथ गाङ्गेयः सर्वनीतिमतां वरः ।
विदुरं धर्मतत्त्वज्ञं वाक्यमाह यथोचितम् ॥ २६ ॥ [४४६४]

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यामादिपर्वणि संभवपर्वणि पाण्डुराज्याभिषेके नवाधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०९ ॥

भीष्म उवाच— गुणैः समुदितं सम्यगिदं नः प्रथितं कुलम् ।
अत्यन्यान्पृथिवीपालान्पृथिव्यामधिराज्यभाक् ॥ १ ॥
रक्षितं राजभिः पूर्वं धर्मविद्भिर्महात्मभिः ।
नोत्सादमगमच्चेदं कदाचिदिह नः कुलम् ॥ २ ॥
मया च सत्यवत्या च कृष्णेन च महात्मना ।
समवस्थापितं भूयो युष्मासु कुलतन्तुषु ॥ ३ ॥

हे राजन् ! तीनों लोकोंमें विदुरके समान धर्मशील, और धर्म विषयमें परम तत्त्वज्ञ कोई दूसरा नहीं था । उस काल में राजा शांतनुके नष्ट होते हुए वंशको फिर जगते देखकर संपूर्ण राज्योंमें ऐसी प्रशंसा की बात उडने लगी, कि वीर प्रसविनी स्त्रियोंमें दोनों काशी-राजकी बेटियां, देशोंमें कुरुजाङ्गल, सर्व धर्मज्ञ जनोंमें भीष्म और नगरोंमें हास्तिनापुर श्रेष्ठ है । धृतराष्ट्रको जन्मान्ध होने और विदुरको शूद्राणीके गर्भमें जन्म लेनेके हेतु राज्यकी प्राप्ति नहीं हुई, सो पाण्डु ही राज्याधिप हुए । अनन्तर एक समय नीति शास्त्रमें पंडित गंगानन्दन धर्मतत्त्वज्ञ विदुरको यथोचित यह बात बोले । (२२—२६) [४४६४]

आदि पर्वमें एक सौ नौ अध्याय समाप्त ।

आदिपर्वमें एक सौ दश अध्याय ।

भीष्मजी बोले, कि हमारा यह सर्वगुण युक्त और सर्वत्र प्रख्यात कुरुकुल पृथ्वी भर में दूसरे सब पृथ्वीपालोंपर अधिकार फैलाता आया है इसविषयमें कि धर्मशील, महात्मा राजाओंके द्वारा पहिलेसे रक्षित इस कुलकी कभी उखडनेकी दशा न

तच्चैतद्वर्धते भूयः कुलं सागरवद्यथा ।
तथा मया विधातव्यं त्वया चैव न संशयः ॥ ४ ॥
श्रूयते यादवी कन्या स्वनुरूपा कुलस्य नः ।
सुबलस्याऽऽत्मजा चैव तथा मद्रेश्वरस्य च ॥ ५ ॥
कुलीना रूपवत्यश्च ताः कन्याः पुत्र सर्वशः ।
उचिताश्चैव संबन्धे ह्यस्माकं क्षत्रियर्षभाः ॥ ६ ॥
मन्ये वरयितव्यास्ता इत्यहं धीमतां वर ।
सन्तानार्थं कुलस्याऽस्य यद्वा विदुर मन्यसे ॥ ७ ॥
विदुर उवाच-- भवान्पिता भवान्माता भवान्नः परमो गुरुः ।
तस्मात्स्वयं कुलस्याऽस्य विचार्य कुरु यद्धितम् ॥८॥
वैशम्पायन उवाच-अथ शुश्राव विप्रेभ्यो गान्धारीं सुबलात्मजाम् ।
आराध्य वरदं देवं भगनेत्रहरं हरम् ॥ ९ ॥
गान्धारी किल पुत्राणां शतं लेभे वरं शुभा।
इति शुश्राव तत्त्वेन भीष्मः कुरुपितामहः ॥ १० ॥
ततो गान्धारराजस्य प्रेषयामास भारत ।
अचक्षुरिति तत्राऽऽसीत्सुबलस्य विचारणा॥ ११ ॥

होवे, मेरे, सत्यवतीके और महात्मा कृष्ण-द्वैपायनके प्रयत्नसे तुम तीन कुलतन्तु उत्पन्न हुए हो। अब तुम लोगोंही पर कुल स्थापित हुआ है, सो तुम्हारी और मेरी ऐसी चेष्टा होनी चाहिये, कि यह कुल सागर सदृश बढे। (१-४)

सुन चुका हूं, कि यदुवंशी शूरसेनकी कन्या, सुबलराजपुत्री और मद्रदेशाधिप की बेटी, यह तीन कन्या हमारे वंशके योग्य हैं। हे पुत्र! क्षत्राणियोंमें श्रेष्ठ वे कन्यायें कुलीन, रूपवती और हर बातमें हमारे साथ सम्बन्धके योग्य हैं; हे श्रीमान् विदुर! मैं समझता हूं, कि इस वंशकी सन्तानके निमित्त उन्हींसे विवाह करना उचित है, अथवा तुम्हारी समझमें जो अच्छा होवे, कहो। विदुर बोले, कि आप हमारे पिता हैं, आपही हमारी माता हैं और आपही हमारे परम गुरु हैं, अतएव आपही स्वयं विचारकर जो इस वंशका मङ्गलदायी होवे, वही कीजिये। (५--८)

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि कुरुपितामह भीष्मने ब्राह्मणोंके मुखसे सुना, कि शुभ लक्षणयुक्त सुबलपुत्री गान्धारीने भगनामक देवताके नेत्रहारी वरदायी महादेवकी आराधना कर सौ पुत्र

कुलं ख्यातिं च वृत्तं च बुद्ध्या तु प्रसमीक्ष्य सः ।
ददौ तां धृतराष्ट्रस्य गान्धारीं धर्मचारिणीम्॥ १२॥
गान्धारी त्वथ शुश्राव धृतराष्ट्रमचक्षुषम् ।
आत्मानं दित्सितं चाऽस्मै पित्रा मात्रा च भारत १३
ततः सा पट्टमादाय कृत्वा बहुगुणं तदा ।
बबन्ध नेत्रे स्वे राजन्पतिव्रतपरायणा ॥ १४॥
नाऽभ्यसूयां पतिमहमित्येवं कृतनिश्चया ॥ १५॥
ततो गान्धारराजस्य पुत्रः शकुनिरभ्ययात्।
स्वसारं वयसा लक्ष्म्या युक्तामादाय कौरवान् १६॥
तां तदा धृतराष्ट्राय ददौ परमसत्कृताम् ।
भीष्मस्याऽनुमते चैव विवाहं समकारयत्॥ १७॥
दत्वा स भगिनीं वीरो यथार्हं च परिच्छदम्।
पुनरायात्स्वनगरं भीष्मेण प्रतिपूजितः ॥ १८॥
गान्धार्यपि वरारोहा शीलाचारविचेष्टितैः ।
तुष्टिं कुरूणां सर्वेषां जनयामास भारत ॥ १९॥
वृत्तेनाऽऽराध्य तान्सर्वान्गुरून्पतिपरायणा ।

पानेका वरलाभ किया है। हे भारत! अनन्तर भीष्मने गान्धारराजके निकट दूत भेजा। धृतराष्ट्र अन्धे हैं, सो गान्धार राजने बहुत विचार किया। आगे उन्होंने कौरवोंके कुल, प्रसिद्धि और चरित्र को भले प्रकार आलोचना करके धृतराष्ट्र को गान्धारी नाम्नी कन्या दान करना निश्चय किया। (९-१२)

हे भारत! अनन्तर गान्धारीने सुना, कि धृतराष्ट्र अन्धे हैं और उस अन्धेसे उनका विवाह होगा। तब उन्होंने पतिव्रता होनेके हेतु वस्त्र लेकर कई फेरा लगा करके अपने नेत्रोंको बांधा, क्योंकि उन्होंने यह निश्चय किया था, कि मैं पतिसे डाह न करूंगी। अनन्तर गान्धारराजकुमार शकुनिने रूप यौवन-वती परम सुकृता भगिनीको लेकर कौरवोंके निकट आ करके धृतराष्ट्रको सम्प्रदान किया, तब भीष्मके मतानुसार दोनोंका विवाह कर दिया गया। (१३-१७)

वीर शकुनि धृतराष्ट्र को यथोचित वस्त्रादि देकर बहिनको सम्प्रदान करके भीष्मसे भले प्रकार आदर सत्कार पाकर निज नगर को पधारा। हे भरतवंश तिलक! सुन्दरी गान्धारी शीलता, सदाचार और यत्नसे सम्पूर्ण कौरवोंका

वाचाऽपि पुरुषानन्यान्सुव्रता नाऽन्वकीर्तयत् ॥ २० ॥ ४४८४]

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यामादिपर्वणि संभवपर्वणि धृतराष्ट्रविवाहे दशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ ११० ॥

वैशम्पायन उवाच- शूरो नाम यदुश्रेष्ठो वसुदेवपिताऽभवत् ।
तस्य कन्या पृथा नाम रूपेणाऽप्रतिमा भुवि ॥ १ ॥
पितृष्वस्रीयाय स तामनपत्याय भारत ।
अग्र्यमग्रे प्रतिज्ञाय स्वस्याऽपत्यं स सत्यवाक् ॥ २ ॥
अग्रजामथ तां कन्यां शूरोऽनुग्रहकांक्षिणे ।
प्रददौ कुन्तिभोजाय सखा सख्ये महात्मने ॥ ३ ॥
नियुक्ता सा पितुर्गेहे ब्राह्मणातिथिपूजने ।
उग्रं पर्यचरत्तत्र ब्राह्मणं संशितव्रतम् ॥ ४ ॥
निगूढनिश्चयं धर्मे यं तं दुर्वाससं विदुः ।
तमुग्रं संशितात्मानं सर्वयत्नैरतोषयत् ॥ ५ ॥
तस्यै स प्रददौ मन्त्रमापद्धर्मान्ववेक्षया ।
अभिचाराभिसंयुक्तमब्रवींचैव तां मुनिः ॥ ६ ॥

सन्तोष उपजाने लगी ! सुव्रत वाली गान्धारी सुन्दर व्यवहारसे गुरुओंकी सेवा किया करती थीं, वाक्यसेभी कभी अन्य पुरुषका नाम नहीं लेती थी। (१७-२०)

आदिपर्वमें एकसौ दश अध्याय समाप्त। [४४८४]

आदिपर्वमें एकसौ ग्यारह अध्याय।

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि शूरनामक यदुकुलमें श्रेष्ठ एक महात्मा वसुदेवके पिता थे। उनकी पृथा नाम्नी एक कन्या थी। वह कन्या ऐसी रूपवती थी; कि भूमण्डलमें कोई नारि उनके रूपकी बराबरी नहीं कर सक्ती थी। हे भारत ! सत्यवादी शूरने कृपाकांक्षी निःसन्तान पितृस्वस्रीय प्रिय मित्र महात्मा कुन्ती-भोजराजसे पहिले स्वीकार किया था, कि अपनी पहिली सन्तान तुमको दे दूंगा; उस स्वीकारके अनुसार प्रथम गर्भसे जन्मी हुई उस कन्याको दे दिया। (१—३)

पृथा उस पिताके घरमें ब्राह्मणोंकी सेवा और अतिथियोंके सत्कारमें नियुक्त रहती थी, एक समय उसने जितेन्द्रिय व्रतशील उग्रस्वभावी और धर्मके गूढ तत्त्वोंके जाननेवाले ब्राह्मण दुर्वासाको सर्व प्रयत्नसे सेवा कर प्रसन्न किया ! उस मुनिने भविष्यत्में सन्तान आपद्धर्मकी बात सोचकर उसको अभिचारयुक्त मन्त्र दिया और बोले, कि तुम इस मन्त्रसे जिन

यं यं देवं त्वमेतेन मन्त्रेणाऽऽवाहयिष्यसि ।
तस्य तस्य प्रभावेण तव पुत्रो भविष्यति ॥ ७ ॥
तथोक्ता सा तु विप्रेण कुन्ती कौतूहलान्विता ।
कन्या सती देवमर्कमाजुहाव यशस्विनी ॥ ८ ॥
सा ददर्श तमायान्तं भास्करं लोकभावनम् ।
विस्मिता चाऽनवद्याङ्गी दृष्ट्वा तन्महदद्भुतम् ॥ ९ ॥
तां समासाद्य देवस्तु विवस्वानिदमब्रवीत् ।
अयमस्म्यसितापाङ्गि ब्रूहि किं करवाणि ते ॥ १० ॥

कुन्त्युवाच—
कश्चिन्मे ब्राह्मणः प्रादाद्वरं विद्यां च शत्रुहन्।
तद्विजिज्ञासयाऽऽह्वानं कृतवत्यस्मि ते विभो॥ ११ ॥
एतस्मिन्नपराधे त्वां शिरसाऽहं प्रसादये ।
योषितो हि सदा रक्ष्याः स्वापराद्धापि नित्यशः॥१२॥

सूर्य उवाच—
वेदाऽहं सर्वमेवैतद्यद्दुर्वासा वरं ददौ ।
संत्यज्य भयमेवेह क्रियतां संगमो मम ॥ १३ ॥
अमोघं दर्शनं मह्यमाहूतश्चाऽस्मि ते शुभे ।
वृथाह्वानेऽपि ते भीरु दोषः स्यान्नाऽत्र संशयः॥१४॥

जिन देवताओंको बुलाओगी उन उन देवताके प्रभावसे तुम्हारे पुत्र उत्पन्न होगा । (४—७)

यशस्विनी बाला पृथाने दुर्वासा की यह बात सुन करके अचरज मान कर कन्यावस्थाहीमें सूर्यदेवको बुलाया । आगे उस अनिन्दित अङ्गवालीने लोकभावन आदित्य को आते देखकर महत् आश्चर्य देख करके विस्मय माना । सूर्य देव उसके पास आकरके बोले, कि री असिताङ्गि! मैं यह आया हूं,कहो,तुम्हारा क्या प्रियकार्य करना होगा।(८-१०)

पृथा बोली, कि हे शत्रुनाशी विभो! किसी ब्राह्मणने मुझको विद्या और वर दिया है, उसकी परीक्षाके लिये आपको बुलाया है । मैं इस अपराधके लिये सिर नायकर आपको प्रसन्न करती हूं; नारी यद्यपि बहुत अपराध भी करे, तथापि उसकी रक्षा करना चाहिये । सूर्य बोले, कि मैं यह सब जानता हूं, कि मुनि दुर्वासाने तुमको वर दिया है, अब तुम भय त्यागकर मुझसे संगम करो । री शुभे! मेरा दर्शन अव्यर्थ है ; री भीरु ! तुमने जिस कारण मुझको बुलाया, यदि वह व्यर्थ हो, तो इसमें सन्देह नहीं, कि हानि होगी । (११—१४)

वैशम्पायन उवाच-एवमुक्ता बहुविधं सान्त्वपूर्वं विवस्वता ।
सा तु नैच्छद्दूरारोहा कन्याऽहमिति भारत॥ १५॥
बन्धुपक्षभयाद्भीता लज्जया च यशस्विनी ।
तामर्कः पुनरेवेदमब्रवीद्भरतर्षभ ॥ १६ ॥
मत्प्रसादान्न ते राज्ञि भविता दोष इत्युत ।
एवमुक्त्वा स भगवान्कुन्तिराजसुतां तदा ॥ १७॥
प्रकाशकर्ता तपनः संबभूव तया सह ।
तत्र वीरः समभवत्सर्वशस्त्रभृतां वरः ।
अमुक्तकवचः श्रीमान्देवगर्भश्रियान्वितः ॥ १८॥
सहजं कवचं बिभ्रत्कुण्डलोद्योतिताननः ।
अजायत सुतः कर्णः सर्वलोकेषु विश्रुतः ॥ १९ ॥
प्रादाच्च तस्यै कन्यात्वं पुनः स परमद्युतिः ।
दत्वा च तपतां श्रेष्ठो दिवमाचक्रमे ततः ॥ २० ॥
दृष्ट्वा कुमारं जातं सा वार्ष्णेयी दीनमानसा ।
एकाग्रं चिन्तयामास किं कृत्वा सुकृतं भवेत् ॥२१॥
गूहमानाऽपचारं सा बन्धुपक्षभयात्तदा ।
उत्ससर्ज कुमारं तं जले कुन्ती महाबलम् ॥ २२ ॥
तमुत्सृष्टं जले गर्भं राधाभर्ता महायशाः ।

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि हे भारत! सूर्य इस प्रकार अनेक बातोंसे समझाने बुझाने लगे; पर सुन्दरी यशस्विनी कुन्तीने कन्यावस्थामें रहनेके कारण बन्धुओंके भय और लज्जासे अपनी सम्मति नहीं दी। हे भरतर्षभ! दिवाकरने फिर उससे कहा, कि री राज्ञी! मेरी कृपासे तुम कोई दोषयुक्ता न होओगी। प्रकाशनाथ भगवान् आदित्य कुन्तीराजकी कन्यासे यह कहकर उससे जा मिले। इससे सर्वशस्त्रधारियोंमें प्रधान, देववत् श्रीमान्, जन्म के साथ कवचकुण्डलोंसे सर्वलोकोंमें प्रशंसावान् कर्ण नामक पुत्र उत्पन्न हुआ। अनन्तर परम द्युतिमान् आदित्य फिर उसको कन्यावस्था देकर आकाशको गये। (१५—२०)

यादव-कन्या जन्मे हुए कुमारको देख कर दीनाचित्तसे सोचने लगी, कि अब कौन उपाय करना चाहिये! क्या करूं; तो मङ्गल होवे! अनन्तर उसने उस बुरी लीलाको छिपानेके लिये महाबली कुमारको जलमें बहा दिया। अति यशवन्त

पुत्रत्वे कल्पयामास सभार्यः सूतनन्दनः ॥ २३ ॥
नामधेयं च चक्राते तस्य बालस्य तावुभौ ।
वसुना सह जातोऽयं वसुषेणो भवत्विति ॥ २४ ॥
स वर्धमानो बलवान्सर्वास्त्रेषूद्यतोऽभवत् ।
आपृष्ठतापादादित्यमुपातिष्ठत वीर्यवान् ॥ २५ ॥
तस्मिन्काले तु जपतस्तस्य वीरस्य धीमतः ।
नाऽदेयं ब्राह्मणेष्वासीत्किंचिद्वसु महीतले ॥ २६ ॥
तामिन्द्रो ब्राह्मणो भूत्वा भिक्षार्थी समुपागमत् ।
कवचं प्रार्थयामास फाल्गुनस्य हिते रतः ॥ २७ ॥
स्वशरीरात्समुत्कृत्य कवचं स्वं निसर्गजम् ।
विप्ररूपाय शक्राय ददौ कर्णः कृताञ्जलिः ॥ २८ ॥
प्रतिगृह्य तु देवेशस्तुष्टस्तेनाऽस्य कर्मणा ।
ददौ शक्तिं सुरपतिर्वाक्यं चेदमुवाच ह ॥ २९ ॥
देवासुरमनुष्याणां गन्धर्वोरगरक्षसाम् ।
यमेकं जेतुमिच्छेथाः सोऽनया न भविष्यति॥ ३०॥

सूतपुत्र राधापतिने जलमें डाले हुए बालक को उठाकर स्त्रीके साथ पुत्रका प्रतिनिधि बनाया। उस बालकने वसु अर्थात् कुण्डल और कवचरूपी धनके साथ जन्म लिया था, इससे राधापति और उसकी स्त्रीने उस बालकका वसुषेण यह नाम रखा। (२१—२४)

बली और प्रभावी वह बालक ज्यों ज्यों बढने लगा त्यों त्यों अस्त्र विद्याओंमेंभी दक्ष होने लगा। जबतक पीठपर्यन्त ताप युक्त नहीं होता था, तबतक वह सूर्यकी उपासना करते थे; उपासना करनेके कालमें धीमान् वसुषेणके पास भूमण्डलमें ऐसा कोई अर्थ नहीं था, जो वह ब्राह्मणोंको नहीं देते थे। एक समय देवराज इन्द्रने अर्जुनके हित साधनेके निमित्त ब्राह्मणका वेष लेकर भिक्षार्थी होकरके उनके निकट आकर कवच पानेकी प्रार्थना की, उसपर कर्णने कर जोडकर निज शरीरसे स्वभावहीसे मिले हुए कवचको काटकर ब्राह्मण रूपी इन्द्रको दे दिया। (२५-२८)

सुरनाथ इन्द्रने कवच लेकर कर्णके इस प्रकार कार्यसे प्रसन्न होकर उनको एक पुरुष नष्ट करनेवाला शक्तिअस्त्र दे दिया और कहा, कि देव, असुर, मनुष्य, गंधर्व, उरग और राक्षस इनमेंसे चाहे जिस एकको तुम जय करना चाहोगे, इस शक्तिसे वह नष्ट होगा। सूर्य पुत्र

प्राङ्नाम तस्य कथितं वसुषेण इति क्षितौ।
कर्णो वैकर्तनश्चैव कर्मणा तेन सोऽभवत् ॥ ३१ ॥ (४५१५)

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यामादिपर्वणि संभवपर्वण्यैन्द्रशक्तिलाभ एकादशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ १११ ॥

वैशम्पायन उवाच- सत्त्वरूपगुणोपेता धर्मारामा महाव्रता ।
दुहिता कुन्तिभोजस्य पृथा पृथुललोचना ॥ १ ॥
तां तु तेजस्विनीं कन्यां रूपयौवनशालिनीम् ।
व्यावृण्वन्पार्थिवाः केचिदतीव स्त्रीगुणैर्युताम् ॥ २ ॥
ततः सा कुन्तिभोजेन राज्ञाऽऽहूय नराधिपान् ।
पित्रा स्वयंवरे दत्ता दुहिता राजसत्तम ॥ ३ ॥
ततः सा रङ्गमध्यस्थं तेषां राज्ञां मनस्विनी ।
ददर्श राजशार्दूलं पाण्डुं भरतसत्तमम् ॥ ४ ॥
सिंहदर्पं महोरस्कं वृषभाक्षं महाबलम् ।
आदित्यमिव सर्वेषां राज्ञां प्रच्छाद्य वै प्रभाः ॥ ५ ॥
तिष्ठन्तं राजसमितौ पुरन्दरमिवाऽपरम् ।
तं दृष्ट्वा साऽनवद्याङ्गी कुन्तिभोजसुता शुभा ॥ ६ ॥
पाण्डुं नरवरं रङ्गे हृदयेनाऽऽकुलाऽभवत् ॥ ७ ॥
ततः कामपरीताङ्गी सकृत्प्रचलमानसा ।

पहिले वसुषेण नामसे धरतीमें प्रसिद्ध थे, अब कवच काटनेसे कर्ण नामसे प्रख्यात हुए। (२९—३१) [४५१५]

आदिपर्वमें एकसौ ग्यारह अध्याय समाप्त।

आदिपर्वमें एकसौ बारह अध्याय।

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि कुंतिभोज की कन्या प्रशस्त नेत्रवाली पृथा सत्त्वगुणयुक्त व्रतशील और धर्मप्रेमी थी; पर ऐसी रूपयौवनवती, तेजस्विनी और अच्छे अच्छे स्त्रीगुणोंसे भरी हुई कन्याको किसी राजाने प्रार्थना नहीं की थी। हे राजश्रेष्ठ! इस हेतु पिता राजा कुंतिभोजने राजाओंको बुलवाकर कन्याको स्वयंवरमें नियुक्त किया। (१—३)

मनस्विनी पृथाने उन सब भूपालोंके मध्य रङ्गभूमिमें भरतवंशश्रेष्ठ राजसिंह पाण्डुको देखा। राजसभामें स्थित दूसरे देवराजके समान सिंह सदृश विक्रमी बैलकी भांति नेत्रवाले, महामति, महाबली और आदित्यकी नाई सब राजाओंकी प्रभा ढंपनेवाले नरश्रेष्ठ पाण्डुको देखकर अनिन्दित अंगवाली शुभलक्षणभरी

व्रीडमाना स्रजं कुन्ती राज्ञः स्कन्धे समासजत्॥ ८॥
तं निशम्य वृतं पाण्डुं कुन्त्या सर्वे नराधिपाः।
यथागतं समाजग्मुर्गजैरश्वै रथैस्तथा ॥ ९॥
ततस्तस्याः पिता राजन्विवाहमकरोत्प्रभुः।
स तया कुन्तिभोजस्य दुहित्रा कुरुनन्दन॥ १०॥
युयुजेऽमितसौभाग्यः पौलोम्या मघवानिव।
कुन्त्याः पाण्डोश्च राजेन्द्र कुन्तिभोजो महीपतिः ११॥
कृत्वोद्वाहं तदा तं तु नानावसुभिरार्चितम्।
स्वपुरं प्रेषयामास स राजा कुरुसत्तम ॥ १२॥
ततो बलेन महता नानाध्वजपताकिना।
स्तूयमानः स चाऽऽशीर्भिर्ब्राह्मणैश्च महर्षिभिः १३॥
संप्राप्य नगरं राजा पाण्डुः कौरवनन्दनः।
न्यवेशयत तां भार्यां कुन्तीं स्वभवने प्रभुः॥१४॥

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यामादिपर्वणि संभवपर्वणि कुन्तीविवाहे द्वादशाधिकशततमोऽध्यायः॥ ११२॥ [४५२९]

वैशम्पायन उवाच—ततः शान्तनवो भीष्मो राज्ञः पाण्डोर्यशस्विनः।

कुन्ती बडी विकल हुई; अनन्तर उसने एकही बार कामसे विह्वल अंगयुक्त और चञ्चलचित्त होकरके लज्जाके साथ राजा पाण्डुके गलेमें माला दे दी। (४—८)

कुन्तीके पाण्डुको माला देते देखकर भूपाललोग हस्ती, घोडे और रथों पर चढकर जिस प्रकार आये थे, वैसेही निज निज स्थानोंको पधारे। हे राजन्! अनन्तर कन्याके पिताने यथाविधि उनका विवाह कर दिया। देवराज जिस प्रकार शचीके साथ मिले हैं, उनके समान अतुल सौभाग्ययुक्त कुरुनन्दन कुन्ती-भोजकी कन्यासे मिल। हे राजेंद्र! कुरुश्रेष्ठ! महीपाल कुंतीभोजने कुंतीका विवाहकर दामादको अनेक धनोंसे पूज कर बेटीको उनके पुरमें भेजदिया। अनंतर राजा कौरवनंदन पाण्डु महार्षि और ब्राह्मणोंके अशीससे स्तुति किये जाकर नाना प्रकार ध्वजासंयुक्त अनेक सेनाओं के सहित निज नगरमें उपस्थित हुए। अनंतर प्रभु पाण्डुने स्त्री कुंतिको अपने गृहमें रखा। (९—१४) [४५२९]

आदिपर्वमें एक सौ बारह अध्याय समाप्त।

आदिपर्वमें एक सौ तेरह अध्याय।

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि अनन्तर

विवाहस्याऽपरस्याऽर्थे चकार मतिमान्मतिम् ॥ १ ॥
सोऽमात्यैः स्थविरैः सार्धं ब्राह्मणैश्च महर्षिभिः।
बलेन चतुरङ्गेण ययौ मद्रपतेः पुरम् ॥ २ ॥
तमागतमभिश्रुत्य भीष्मं वाह्लीकपुङ्गवः ।
प्रत्युद्गम्याऽर्चयित्वा च पुरं प्रावेशयन्नृपः ॥ ३ ॥
दत्वा तस्याऽऽसनं शुभ्रं पाद्यमर्घ्यं तथैव च।
मधुपर्कं च मद्रेशः पप्रच्छाऽऽगमनेऽर्थिताम् ॥ ४ ॥
तं भीष्मः प्रत्युवाचेदं मद्रराजं कुरूद्वहः ।
आगतं मां विजानीहि कन्यार्थिनमरिंदम ॥ ५ ॥
श्रूयते भवतः साध्वी स्वसा माद्री यशस्विनी ।
तामहं वरयिष्यामि पाण्डोरर्थे यशस्विनीम् ॥ ६ ॥
युक्तरूपो हि संबन्धे त्वं नो राजन्वयं तव।
एतत्संचिन्त्य मद्रेश गृहाणाऽस्मान्यथाविधि ॥ ७ ॥
तमेवंवादिनं भीष्मं प्रत्यभाषत मद्रपः ।
न हि मेऽन्यो वरस्त्वत्तः श्रेयानिति मतिर्मम ॥ ८ ॥
पूर्वैः प्रवर्तितं किंचित्कुलेऽस्मिन्नृपसत्तमैः ।
साधु वा यदि वाऽसाधु तन्नाऽतिक्रान्तुमुत्सहे ॥ ९ ॥

शान्तनुके पुत्र मतिमान् भीष्मने यशवन्त भूपाल पाण्डुका और एक विवाह करना निश्चय किया, वह वृद्ध मान्त्रियों, ब्राह्मणों, महर्षियों और चतुरङ्गी सेनाओंके साथ मद्रेश्वरके नगरको गये। वाहीकोंमें श्रेष्ठ मद्रपति भीष्मके आनेकी बात सुनकर आगे बढकर यथाविधि उनकी पूजाकर निजपुरमें लिवाय लाये और पाद्य अर्घ्य, मधुपर्क और शुक्ल आसन देकर आनेका कारण पूछा। (१—४)

कुरुवंशके प्रधान भीष्म उनसे बोले, कि हे अरिंदम ! मैं कन्याके लिये आया हूं। सुन चुका हूं, कि साध्वी यशस्विनी माद्री नाम्नी आपकी बहिन है, मैं पाण्डुके लिये उसको मांगता हूं। हे राजन्! विवाह के सम्बन्धमें आप हमारे योग्य पात्र हैं। हे मद्रेश्वर! इस विषयमें सोच विचार कर आप हमको यथाविधि सम्बन्धी की भांति समझिये। (५—७)

भीष्म की यह बात सुन मद्रपति बोले, कि हे कौरव ! मैं समझता हूं, कि हमारे लिये आपसे अच्छे पात्र कोई दूसरे नहीं हैं, हमारे वंशमें पहिले के भूपोंने शुल्क लेनेका जो एक नियम किया है, वह

व्यक्तं तद्भवतश्चाऽपि विदितं नाऽत्र संशयः।
न च युक्तं तथा वक्तुं भवान्देहीति सत्तम॥ १० ॥
कुलधर्मः स नो वीर प्रमाणं परमं च तत् ।
तेन त्वां न ब्रवीम्येतद्संदिग्धं वचोऽरिहन्॥ ११ ॥
तं भीष्मः प्रत्युवाचेदं मद्रराजं जनाधिपः ।
धर्म एष परो राजन्स्वयमुक्तः स्वयंभुवा ॥ १२ ॥
नाऽत्र कश्चन दोषोऽस्ति पूर्वैर्विधिरयं कृतः ।
विदितेयं च ते शल्य मर्यादा साधुसंमता॥ १३ ॥
इत्युक्त्वा स महातेजाः शातकुम्भं कृताकृतम्।
रत्नानि च विचित्राणि शल्यायाऽदात्सहस्रशः॥ १४
गजानश्वान्रथांश्चैव वासांस्याभरणानि च ।
मणिमुक्ताप्रवालं च गाङ्गेयो व्यसृजच्छुभम्॥१५ ॥
तत्प्रगृह्य धनं सर्वं शल्यः संप्रीतमानसः ।
ददौ तां समलंकृत्य स्वसारं कौरवर्षभे ॥ १६ ॥
स तां माद्रीमुपादाय भीष्मः सागरगासुतः ।
आजगाम पुरीं धीमान्प्रविष्टो गजसाह्वयम्॥ १७ ॥

भला होवे वा बुरा, मैं उसके विरुद्धकार्य करने का साहसी नहीं हो सकता; वह नियम प्रकाशही है, सो संदेह नहीं, कि आपभी उससे ज्ञात हैं, अतएव हे वीर ! "दान करो" यह बात कहना आपके योग्य नहीं है । हे शत्रुनाशी ! शुल्क लेना हमारा कुलधर्म है, और वही परम प्रमाण है, सो मैं विना सङ्कोच आपसे यह बात नहीं कह सकता हूं। (८-११)

जनाधिप भीष्मने तब मद्रराजसे कहा, कि हे राजन् ! स्वयं ब्रह्माजीने भी इसको परमधर्म कहा है । पूर्वके पुरुष इस विधिके अनुसार चलते थे, सो यह दोषयुक्त नहीं है । हे शल्य ! यहभी ज्ञात हो, कि यह मर्यादा साधुओंकी संमति युक्त है । महातेजस्वी गङ्गानन्दनने यह बात कहकर सहस्रों बना तथा बिन बना अपरिमित सुवर्ण, विचित्र रत्न, गज, रथ, अश्व, वस्त्र, आभूषण अच्छी मणि, मोती और लाल शल्यको दिये । शल्यने यह सब धन लेकर प्रसन्नचित्तसे कौरवश्रेष्ठ भीष्मको नाना अलङ्कारोंसे सजी हुई कन्या दान की । धीमान् गङ्गापुत्र भीष्म माद्रीको लेकर हस्तिनापुरको लौट कर पुरमें प्रविष्ट हुए। (१२-१७)

तत्र इष्टेऽहनि प्राप्ते मुहूर्ते साधुसंमते।
जग्राह विधिवत्पाणिं माद्र्याः पाण्डुर्नराधिपः १८
ततो विवाहे निर्वृत्ते स राजा कुरुनन्दनः ।
स्थापयामास तां भार्यां शुभे वेश्मनि भाविनीम् १९
स ताभ्यां व्यचरत्सार्धं भार्याभ्यां राजसत्तमः।
कुन्त्या माद्र्या च राजेन्द्रो यथाकामं यथासुखम् २०
ततः स कौरवो राजा विहृत्य त्रिदशा निशाः।
जिगीषया महीं पाण्डुर्निरक्रामत्पुरात्प्रभो ॥ २१ ॥
स भीष्मप्रमुखान्वृद्धानभिवाद्य प्रणम्य च।
धृतराष्ट्रं च कौरव्यं तथाऽन्यान्कुरुसत्तमान् ॥ २२॥
आमन्त्र्य प्रययौ राजा तैश्चैवाऽभ्यनुमोदितः २३॥
मङ्गलाचारयुक्ताभिराशीर्भिरभिनन्दितः ।
गजवाजिरथौघेन बलेन महताऽगमत् ॥ २४॥
स राजा देवगर्भाभो विजिगीषुर्वसुन्धराम्।
हृष्टपुष्टबलैः प्रायात्पाण्डुः शत्रूननेकशः ॥ २५ ॥
पूर्वमागस्कृतो गत्वा दशार्णाः समरे जिताः।
पाण्डुना नरसिंहेन कौरवाणां यशोभृता ॥ २६ ॥
ततः सेनामुपादाय पाण्डुर्नानाविधध्वजाम्।

अनन्तर नराधिप पाण्डुने साधुओंकी सम्मतियुक्त शुभ दिनमें, शुभलग्नमें, विधिपूर्वक माद्री से विवाह किया। आगे विवाहके निर्वाह हो जाने पर कुरुनन्दनने नयी-ब्याही स्त्रीके रहनेके लिये एक सुन्दर घर निर्दिष्ट कर दिया। राजश्रेष्ठ पाण्डु कुन्ती और माद्रीके साथ मनमाने सुखसे वसने लगे। (१८—२०)

हे प्रभो! राजा पाण्डुने स्त्रीसे तीस रात्रि विहार करके धरतीके जय करनेके लिये यात्रा की। पृथ्वीके जयेच्छुक राजा पाण्डु भीष्मादि वृद्धोंको, धृतराष्ट्रको और कुरुओंमें दूसरे श्रेष्ठ जनोंको प्रणाम नमस्कार और निमंत्रण करके उनकी आज्ञा लेकर मङ्गलाचारयुक्त अशीस सुनते हुए हाथी, घोडे और रथोंसे भरी हुई बडी भारी सेनाके साथ चले। वह प्रसन्न और पुष्ट सेनाओंके सङ्ग शत्रु मण्डलीकी खोजके लिये निकले। (२१—२५)

कौरवोंके यश बढानेवाले नरोंमें सिंह-रूपी पाण्डुने पहिलेही दोषी दशार्ण देशके राजाओंको लडाई में परास्त किया।

प्रभूतहस्त्यश्वयुतां पदातिरथसंकुलाम् ॥ २७ ॥
आगस्कारी महीपानां बहूनां बलदर्पितः ।
गोप्ता मगधराष्ट्रस्य दीर्घो राजगृहे हतः ॥ २८ ॥
ततः कोशं समादाय वाहनानि च भूरिशः ।
पाण्डुना मिथिलां गत्वा विदेहाः समरे जिताः ॥ २९ ॥
तथा काशिषु सुह्मेषु पुण्ड्रेषु च नरर्षभ ।
स्वबाहुबलवीर्येण कुरूणामकरोद्यशः ॥ ३० ॥
तं शरौघमहाज्वालं शस्त्रार्चिषमरिन्दमम् ।
पाण्डुपावकमासाद्य व्यदह्यन्त नराधिपाः ॥ ३१ ॥
ते ससेनाः ससेनेन विध्वंसितबला नृपाः ।
पाण्डुना वशगाः कृत्वा कुरुकर्मसु योजिताः ॥ ३२ ॥
तेन ते निर्जिताः सर्वे पृथिव्यां सर्वपार्थिवाः ।
तमेकं मेनिरे शूरं देवेष्विव पुरन्दरम् ॥ ३३ ॥
तं कृताञ्जलयः सर्वे प्रणता वसुधाधिपाः ।
उपाजग्मुर्धनं गृह्य रत्नानि विविधानि च ॥ ३४ ॥
मणिमुक्ताप्रवालं च सुवर्णं रजतं बहु ।
गोरत्नान्यश्वरत्नानि रथरत्नानि कुञ्जरान् ॥ ३५ ॥

अनन्तर रङ्गविरङ्गे झण्डोंके साथ अगणित हाथी, घोडे, रथ और पैदलोंसे बनी हुई सेनाको लेकर अनेक राजाओंको हानि पहुंचाये हुए, बल तथा अहङ्कारसे गर्वित मगधके दीर्घनामक राजाका राज मन्दिरहीमें वध किया। वहांसे कोष और बहुत वाहन लूटकर मिथिलामें जाकरके विदेह को परास्त किया। (२६–२९)

हे भरतश्रेष्ठ! अनन्तर उन्होंने काशी, सुह्म और पुण्ड्रदेशमें जाकर निज भुजवीर्यसे कौरव वंशका यश फैलाया। तब बाणरूपी समूह शिखासे सुशोभित और शस्त्ररूपी तेजसे प्रज्वलित शत्रु नाशी पाण्डुरूपी अग्निसे भूपाललोग जल कर मरनेलगे। सेना सहित पाण्डुने सेनासहित नरेशोंके बलको तोड कर और वशमें लाकर अपने काममें नियुक्त किया। (३०—३२)

धरती भरके सब भूपोंने पाण्डुसे परास्त होकर मानवोंमें उनको ऐसा वीर समझा, कि जैसे देवोंमें इन्द्र हैं; और सब कर जोड उनको प्रणाम कर नाना अस्त्र, मणि, मुक्ता, प्रवाल, सुवर्ण, चांदी, गौ, घोडे, हाथी, गदहे, ऊंट, भैंसे, बकरे,

खरोष्ट्रमहिषीश्चैव यच्च किंचिदजाविकम् ।
कम्बलाजिनरत्नानि राङ्कवास्तरणानि च ।
तत्सर्वं प्रतिजग्राह राजा नागपुराधिपः ॥ ३६ ॥
तदादाय ययौ पाण्डुः पुनर्मुदितवाहनः ।
हर्षयिष्यन्स्वराष्ट्राणि पुरं च गजसाह्वयम् ॥ ३७॥
शान्तनो राजसिंहस्य भरतस्य च धीमतः ।
प्रनष्टः कीर्तिजः शब्दः पाण्डुना पुनराहृतः॥ ३८॥
ये पुरा कुरुराष्ट्राणि जन्हुः कुरुधनानि च ।
ते नागपुरसिंहेन पाण्डुना करदीकृताः ॥ ३९ ॥
इत्यभाषन्त राजानो राजामात्याश्च संगताः ।
प्रतीतमनसो हृष्टाः पौरजानपदैः सह ॥ ४० ॥
प्रत्युद्ययुश्च तं प्राप्तं सर्वे भीष्मपुरोगमाः ।
ते न दूरमिवाऽध्वानं गत्वा नागपुरालयात्॥ ४१ ॥
आवृतं ददृशुर्हृष्टा लोकं बहुविधैर्धनैः ।
नानायानसमानीतै रत्नैरुच्चावचैस्तदा ॥ ४२ ॥
हस्त्यश्वरथरत्नैश्च गोभिरुष्ट्रैस्तथाऽविभिः ।
नाऽन्तं ददृशुरासाद्य भीष्मेण सह कौरवाः ॥ ४३ ॥

भेड, कम्बल, मृगचर्म, और रंकुमृगके बने चंदवे इत्यादि नाना धन भेट लेकर उनके सामने खडे हुए। हस्तिनापुरके नाथ पाण्डुने उन सबोंको लेलिया। (३३-३६)

अनन्तर वह अति प्रसन्न सेनाओंके साथ निज राज्यकी प्रजा और पुर वासियों को आनन्द देनेके लिये हस्तिनापुरमें लौट गये। तब राजा और मन्त्रिगण पुरवासी और ग्राम वासियोंसे मिलकर प्रसन्न चित्तसे आपसमें यह कहने लगे, कि धीमान् भरत और राजाओंमें सिंहरूपी शान्तनुकी कीर्ति बिगडनेपर हुई थी, पर अब पाण्डुने फिर उसका उद्धार किया। जिन राजाओंका धन और राज्य हर लिया गया था, अब नागपुरनाथ पाण्डुने उनको कर देनेवाले बनाये। (३७—४०)

आगे पाण्डुके निकट आनेपर भीष्म आदि कौरव हृदयसे उनको लौटा लानेको चले। वे हस्तिनापुरसे कुछ दूर जाकर राजाके साथियोंको बहुत धनसे भरा पूरा देखकर प्रसन्न हुए; नाना यानों पर लाये हुए बडे बडे हाथी, घोडे, रथ, ऊंट, भेड आदि नाना धन रत्न इतने अधिक आरहे थे, कि उन्होंने उनका अंत नहीं

सोऽभिवाद्य पितुः पादौ कौसल्यानन्दवर्धनः ।
यथार्हं मानयामास पौरजानपदानपि ॥ ४४ ॥
प्रमृद्य पुरराष्ट्राणि कृतार्थं पुनरागतम् ।
पुत्रमाश्लिष्य भीष्मस्तु हर्षादश्रूण्यवर्तयत् ॥ ४५ ॥
स तूर्यशतशंखानां भेरीणां च महास्वनैः ।
हर्षयन्सर्वशः पौरान्विवेश गजसाह्वयम् ॥ ४६ ॥ [४५७५]

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यामादिपर्वणि संभवपर्वणि
पाण्डुदिग्विजये त्रयोदशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ ११३ ॥

वैशम्पायन उवाच- धृतराष्ट्राभ्यनुज्ञातः स्वबाहुविजितं धनम् ।
भीष्माय सत्यवत्यै च मात्रे चोपजहार सः ॥ १ ॥
विदुराय च वै पाण्डुः प्रेषयामास तद्धनम् ।
सुहृदश्चाऽपि धर्मात्मा धनेन समतर्पयत् ॥ २ ॥
ततः सत्यवती भीष्मं कौसल्यां च यशस्विनीम् ।
शुभैः पाण्डुजितैरर्थैस्तोषयामास भारत ॥ ३ ॥
ननन्द माता कौसल्या तमप्रतिमतेजसम् ।
जयन्तमिव पौलोमी परिष्वज्य नरर्षभम् ॥ ४ ॥

देखा; कौशल्याके आनंद बढाने वाले पांडुने चचा भीष्मके पांव छूकर नगर तथा जनपदवासियोंकाभी यथोचित सम्मान किया । भीष्म शत्रुपुरजयकारी सफल मनोरथ घरको लौटे हुए भतीजे पांडुको गलेसे लगाकर आनंदसे आंसू वर्षाने लगे । पाण्डुने अनेक तूर्य और भोंपू आदिके घोर शब्दसे संपूर्ण पुरवासियों को प्रसन्न कर हस्तिनापुरमें प्रवेश किया। (४१-४६) [४५७५]

आदिपर्वमें एकसौ तेरह अध्याय समाप्त ।

आदिपर्वमें एकसौ चौदह अध्याय ।

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि अनन्तर धर्मात्मा पाण्डुने धृतराष्ट्रकी आज्ञा लेकर अपने भुजबलसे लाभ किये हुए धनको भीष्म, सत्यवती और माता कौशल्याको भेट दी और कुछ विदुरके पास भेजा । उन्होंने आत्मजनोंको धनसे सन्तुष्ट किया। हे भारत! सत्यवतीने पाण्डुके जीत लाये हुए नाना रत्नोंसे भीष्म और यशस्विनी कौशल्याको प्रसन्न किया । शची जिस प्रकार जयन्तको गलेसे लगाकर सुखको प्राप्त करती है, वैसे ही कौशल्याने अतुल तेजस्वी नरश्रेष्ठ पाण्डुको गले लगा कर के आनन्द पाया । (१—४)

तस्य वीरस्य विक्रान्तैः सहस्रशतदक्षिणैः ।
अश्वमेधशतैरीजे धृतराष्ट्रो महामखैः ॥ ५ ॥
संप्रयुक्तस्तु कुन्त्या च माद्र्या च भरतर्षभ ।
जिततन्द्रिस्तदा पाण्डुर्बभूव वनगोचरः ॥ ६ ॥
हित्वा प्रासादनिलयं शुभानि शयनानि च ।
अरण्यनित्यः सततं बभूव मृगयापरः ॥ ७ ॥
स चरन्दक्षिणं पार्श्वं रम्यं हिमवतो गिरेः ।
उवास गिरिपृष्ठेषु महाशालवनेषु च ॥ ८ ॥
रराज कुन्त्या माद्र्या च पाण्डुः सह वने चरन् ।
करेण्वोरिव मध्यस्थः श्रीमान्पौरन्दरो गजः ॥ ९ ॥
भारतं सह भार्याभ्यां खड्गबाणधनुर्धरम् ।
विचित्रकवचं वीरं परमास्त्रविदं नृपम् ॥ १० ॥
देवोऽयमित्यमन्यन्त चरन्तं वनवासिनः ॥ ११ ॥
तस्य कामांश्च भोगांश्च नरा नित्यमतन्द्रिताः ।
उपजह्रुर्वनान्तेषु धृतराष्ट्रेण चोदिताः ॥ १२ ॥
अथ पारसवीं कन्यां देवकस्य महीपतेः ।

धृतराष्ट्र, वीरवर पाण्डुके बलार्जित इतने अधिक धनसे पञ्चमहायज्ञ किया करते थे, कि उस धनसे सैकडों सहस्रों गुणा अधिक दाक्षिणा युक्त सैकडों अश्वमेध यज्ञ हो सकते थे। हे भरतकुलप्रदीप! अनालसी पाण्डु, कुन्ती और माद्रीके साथ एकत्र होकर वनमें जा बसे ! वह सुखदायी भवन और कोमल बिस्तर छोडके वनमें सदा वसते हुए आखेट खेलने लगे। वह हिमालय पहाडके मनमोहन दाहिने छोरमें घूमघाम कर बडे बडे साल वनोंसे सोहते हुए पहाडकी पीठ पर वसने लगे। (५--८)

श्रीमान् पाण्डु, कुन्ती और माद्रीके संग वनमें वसते हुए दो हथनियोंके बीच में ऐरावतके समान शोभा पाने लगे। दो स्त्रियां साथ लिये खड्ग बाण और चाप धरे हुए, परमास्त्र चलानेमें दक्ष, विचित्र कवचसे सुशोभित, विचरते हुए पाण्डुको देख करके वनवासी लोग देवता समझने लगे। धृतराष्ट्र की आज्ञासे मनुष्यगण सदा आलससे रहित होकर वनमें उनके लिये कामना और भोजनकी सामग्री पहुंचाने लगे। (९-- १२)

इधर गङ्गापुत्र भीष्मने सुना, कि महीपाल देवकके शूद्राणीके गर्भसे जन्मी

रूपयौवनसंपन्नां स शुश्रावाऽऽपगासुतः ॥ १३ ॥
ततस्तु वरयित्वा तामानीय भरतर्षभः ।
विवाहं कारयामास विदुरस्य महामतेः ॥ १४ ॥
तस्यां चोत्पादयामास विदुरः कुरुनन्दन ।
पुत्रान्विनयसंपन्नानात्मनः सदृशान्गुणैः ॥ १५ ॥ [४५९०]

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यामादिपर्वणि संभवपर्वणि
विदुरपरिणये चतुर्दशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ ११४ ॥

वैशम्पायन उवाच- ततः पुत्रशतं जज्ञे गान्धार्यां जनमेजय ।
धृतराष्ट्रस्य वैश्यायामेकश्चाऽपि शतात्परः ॥ १ ॥
पाण्डोः कुन्त्यां च माद्र्यां च पुत्राः पञ्च महारथाः ।
देवेभ्यः समपद्यन्त सन्तानाय कुलस्य वै ॥ २ ॥
जनमेजय उवाच- कथं पुत्रशतं जज्ञे गान्धार्यां द्विजसत्तम ।
कियता चैव कालेन तेषामायुश्च किं परम् ।
कथं चैकः स वैश्यायां धृतराष्ट्रसुतोऽभवत् ॥ ३ ॥
कथं च सदृशीं भार्यां गान्धारीं धर्मचारिणीम् ।
आनुकूल्ये वर्तमानां धृतराष्ट्रोऽभ्यवर्तत ॥ ४ ॥

हुई रूप और यौवनयुक्त एक कन्या है। अनन्तर उन्होंने राजा देवकसे मांगकर वह कन्या ला करके महामति विदुरका विवाह कर दिया। कुरुनन्दन विदुर ने उस क्षत्रियके वीर्य और शूद्राणीके गर्भसे जन्मी हुई कन्यासे अपने समान गुण और नम्रतायुक्त अनेक पुत्रोंको जन्म दिया। (१३-१५) [४५९०]

आदिपर्वमें एक सौ चौदह अध्याय समाप्त।

आदिपर्वमें एक सौ पन्द्रह अध्याय।

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि हे जनमेजय! अनन्तर धृतराष्ट्रके वीर्य और गान्धारीके गर्भसे सौ पुत्र और वैश्या के गर्भसे एक पुत्रने जन्म लिया और पाण्डुके वंशकी रक्षाके लिये देवोंने कुंती और माद्रीके गर्भसे महारथी पांच पुत्र उत्पन्न किये। (१—२)

जनमेजयने पूछा, कि हे द्विजश्रेष्ठ! गांधारीके गर्भसे क्योंकर और कितने दिनोंमें सौ पुत्र उत्पन्न हुए उनकी आयु कितनी थी? धृतराष्ट्रने वैश्याके गर्भसे क्योंकर एक पुत्रको जन्म दिया? धृतराष्ट्र अपनी प्यारी स्त्री गांधारीसे कैसा व्यवहार किया करते थे? महात्मा मृगरूपी मुनिके शाप देनेपर क्योंकर पाण्डुके पांच महारथी पुत्र उत्पन्न हुए? हे विद्वान्

कथं च शप्तस्य सतः पाण्डोस्तेन महात्मना।
समुत्पन्ना दैवतेभ्यः पुत्राः पञ्च महारथाः ॥ ५ ॥
एतद्विद्वन्यथान्यायं विस्तरेण तपोधन ।
कथयस्व न मे तृप्तिः कथ्यमानेषु बन्धुषु ॥ ६ ॥
वैशम्पायन उवाच- क्षुच्छ्रमाभिपरिम्लानं द्वैपायनमुपस्थितम् ।
तोषयामास गान्धारी व्यासस्तस्यै वरं ददौ ॥ ७ ॥
सा वव्रे सदृशं भर्तुः पुत्राणां शतमात्मनः ।
ततः कालेन सा गर्भं धृतराष्ट्राद्थाऽग्रहीत् ॥ ८ ॥
संवत्सरद्वयं तं तु गान्धारी गर्भमाहितम् ।
अप्रजा धारयामास ततस्तां दुःखमाविशत् ॥ ९ ॥
श्रुत्वा कुन्तीसुतं जातं बालार्कसमतेजसम् ।
उदरस्याऽऽत्मनः स्थैर्यमुपलभ्याऽन्वचिन्तयत् ॥ १०॥
अज्ञातं धृतराष्ट्रस्य यत्नेन महता ततः ।
सोदरं घातयामास गान्धारी दुःखमूर्च्छिता ॥११॥
ततो जज्ञे मांसपेशी लोहाष्ठीलेव संहता ।
द्विवर्षसंभृता कुक्षौ तामुत्स्रष्टुं प्रचक्रमे ॥ १२ ॥
अथ द्वैपायनो ज्ञात्वा त्वरितः समुपागमत् ।

पंडित तपोधन ! यह सब कथा विस्तृत रूपसे यथारीति कहिये, कुलका चरित्र सुनकर मैं तृप्त नहीं हूं। (३—६)

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि एक समय भगवान् द्वैपायनके भूख और थकावटसे कातर होकर गांधारीके पास आ पहुंचने पर गांधारीने उनको संतुष्ट किया था; उससे व्यासने गांधारीकी प्रार्थनाके अनुसार यह वर दिया, कि तुम्हे पतिके समान वीर्यवान् सौ पुत्र पैदा होंगे। अनन्तर गांधारी योग्य कालमें धृतराष्ट्रसे गर्भवती हुई। गर्भ होनेके पीछे दोवर्ष बीते पर तौभी संतान नहीं हुई, इससे वह बडी दुःखी होने लगी; आगे यह सुन कर, कि कुंतीके बाल सूर्यके समान पुत्र भये हैं, अपने गर्भको स्थिर देख चिंतायुक्त होकर अति मनः पीडासे धृतराष्ट्रके अज्ञातमें बडे यत्नपूर्वक अपने पेटमें आघात किया,उससे दो वर्षका वह गर्भ कटीहुई लोहेकी गेंदके समान मांसपेशी स्वरूपसे भूमिपर गिरा। (७-१२)

गांधारीके उसे त्यागने पर होतेही जापकोंमें श्रेष्ठ द्वैपायनने उस बातसे ज्ञात होकर तुरन्त वहां पहुंच करके उस मांस-

तां स मांसमयीं पेशीं ददर्श जपतां वरः ॥ १३ ॥
ततोऽब्रवीत्सौबलेयीं किमिदं ते चिकीर्षितम् ।
सा चाऽऽत्मनो मतं सत्यं शशंस परमर्षये ॥ १४ ॥
गान्धार्युवाच– ज्येष्ठं कुन्तीसुतं जातं श्रुत्वा रविसमप्रभम् ।
दुःखेन परमेणेदमुदरं घातितं मया ॥ १५ ॥
शतं च किल पुत्राणां वितीर्णं मे त्वया पुरा ।
इयं च मे मांसपेशी जाता पुत्रशताय वै ॥ १६ ॥
व्यास उवाच– एवमेतत्सौबलेयि नैतज्जात्वन्यथा भवेत् ।
वितथं नोक्तपूर्वं मे स्वैरेष्वपि कुतोऽन्यथा ॥ १७ ॥
घृतपूर्णं कुण्डशतं क्षिप्रमेव विधीयताम् ।
सुगुप्तेषु च देशेषु रक्षा चैव विधीयताम् ॥ १८ ॥
शीताभिरद्भिरष्ठीलामिमां च परिषेचय ॥ १९ ॥
वैशम्पायन उवाच– सा सिच्यमाना त्वष्ठीला बभूव शतधा तदा ।
अङ्गुष्ठपर्वमात्राणां गर्भाणां पृथगेव तु ॥ २० ॥
एकाधिकशतं पूर्णं यथायोगं विशांपते ।
मांसपेश्यास्तदा राजन्क्रमशः कालपर्ययात् ॥ २१ ॥
ततस्तांस्तेषु कुण्डेषु गर्भानवदधे तदा ।
स्वनुगुप्तेषु देशेषु रक्षां वै व्यदधात्ततः ॥ २२ ॥

पेशीको देखा; अनन्तर सुबलकन्या से बोले, कि तुम यह क्या करनेको उद्यत हुई हो । गांधारीने महर्षिसे अपनी यह सच्ची इच्छा प्रगटकर, कि कुंतीके सूर्यके समान प्रकाशमान पुत्र उत्पन्न हुए सुनकर अति दुःख से मैंने पेटमें चोट मारी है । आपने पहिले मुझको वर दिया था, कि सौ पुत्र उत्पन्न होंगे, अब सौ पुत्रोंके बदले यह मांसपेशी पैदा हुई है । व्यासजी बोले, कि हे सुबलपुत्री ! जो कहा था, सोही होगा, कदापि बात नहीं पलटेगी, हँसीमेंभी मैंने कभी झूठी बात नहीं कही है, फिर क्यों वह बात उलट जायगी ? अब घृतसे सौ घडे भरकर निरालेमें यत्नसे रखो और ठण्डे जलसे इस मांसपेशीको नह लाओ । (१३—१९)

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि हे नरेश ! अनन्तर नहलाते नहलाते वह मांसपेशी बहुत भागोंमें बंट गयी । काल पूर्ण होने पर उनकी संख्या सौ हुई; और प्रत्येक भाग अंगूठे के पोरके समान हुआ । अनंतर वह सब मांसपेशी घृतभरे घडोंमें रक्षित

शशंस चैव भगवान्कालेनैतावता पुनः ।
उद्धाटनीयान्येतानि कुण्डानीति च सौबलीम्॥२३॥
इत्युक्त्वा भगवान्व्यासस्तथा प्रतिनिधाय च ।
जगाम तपसे धीमान्हिमवन्तं शिलोच्चयम् ॥ २४ ॥
जज्ञे क्रमेण चैतेन तेषां दुर्योधनो नृपः ।
जन्मतस्तु प्रमाणेन ज्येष्ठो राजा युधिष्ठिरः॥ २५॥
तदाख्यातं तु भीष्माय विदुराय च धीमते ।
यस्मिन्नहनि दुर्धर्षो जज्ञे दुर्योधनस्तदा ॥ २६ ॥
तस्मिन्नेव महाबाहुर्जज्ञे भीमोऽपि वीर्यवान् ।
स जातमात्र एवाऽथ धृतराष्ट्रसुतो नृप ॥ २७ ॥
रासभारावसदृशं रुराव च ननाद च ।
तं खराः प्रत्यभाषन्त गृध्रगोमायुवायसाः ॥ २८ ॥
वाताश्च प्रववुश्चाऽपि दिग्दाहश्चाऽभवत्तदा ।
ततस्तु भीतवद्राजा धृतराष्ट्रोऽब्रवीदिदम्॥ २९ ॥
समानीय बहून्विप्रान्भीष्मं विदुरमेव च ।
अन्यांश्च सुहृदो राजन्कुरून्सर्वांस्तथैव च॥ ३० ॥
युधिष्ठिरो राजपुत्रो ज्येष्ठो नः कुलवर्धनः।

होकर भले अच्छे गुप्त स्थानमें भली भांति रखी जाने लगीं। भगवान व्यास तब सुबलकन्यासे बोले, कि इतने समय में अर्थात् दो वर्ष पीछे यह सब घडे खोलना। धीमान् भगवान द्वैपायन यह कहकर वह सब गर्भ स्थापन कर फिर तप के लिये हिमाचलको पधारे। (२०-२४)

अनन्तर योग्यकालमें उन टुकडोंमें से पहिले राजा दुर्योधनका जन्म हुआ पर राजा युधिष्ठिर पहिले जन्म लेनेके हेतु ज्येष्ठ भये थे। यह बात धीमान् विदुर और धृतराष्ट्रके कानोंमें पहुंची। जिस दिन दुर्योधनका जन्म हुआ, उसी दिन महाभुज वीर्यवान् भीमनेभी जन्म लिया था। (२५—२७)

हे महाराज ! दुर्योधन जन्म लेतेही गदहेके समान शब्द करने और चिल्लाने लगा, उसे सुनकर गिद्ध, गदहे, सियार और कौए कोलाहल मचाने लगे, हवा वेगसे बहने लगी और दिशायें जलने लगीं। हे महाराज ! राजा धृतराष्ट्र इससे भय खाकर भीष्म, विदुर, ब्राह्मण, मित्र और कौरवोंको बुलवाकर बोले, कि हमारे वंश बढानेवाले राजपुत्र युधिष्ठिर ज्येष्ठ

प्राप्तः स्वगुणतो राज्यं न तस्मिन्वाच्यमस्ति नः ३१ ॥
अयं त्वनन्तरस्तस्मादपि राजा भविष्यति ।
एतत्प्रब्रूत मे तथ्यं यदत्र भविता ध्रुवम् ॥ ३२॥
वाक्यस्यैतस्य निधने दिक्षु सर्वासु भारत ।
क्रव्यादाः प्राणदन्घोराः शिवाश्चाऽशिवशंसिनः॥३३ ॥
लक्षयित्वा निमित्तानि तानि घोराणि सर्वशः।
तेऽब्रुवन्ब्राह्मणा राजन्विदुरश्च महामतिः॥ ३४॥
यथेमानि निमित्तानि घोराणि मनुजाधिप ।
उत्थितानि सुते ज्येष्ठे तानि ते पुरुषर्षभ ॥ ३५॥
व्यक्तं कुलान्तकरणो भवितैष सुतस्तव ।
तस्य शान्तिः परित्यागे गुप्तावपनयो महान्॥ ३६ ॥
शतमेकोनमप्यस्तु पुत्राणां ते महीपते ।
त्यजैनमेकं शान्तिं चेत्कुलस्येच्छसि भारत॥
एकेन कुरु वै क्षेमं कुलस्य जगतस्तथा ॥ ३७॥
त्यजेदेकं कुलस्याऽर्थे ग्रामस्याऽर्थे कुलं त्यजेत्।

हैं, सो वह अपनेही गुणसे राज्यको पा सकते हैं, उस विषयमें मुझे कुछ कहना नहीं है, पर मेरे इस पुत्रने युधिष्ठिरके पीछे जन्म लिया है, उससे क्या यह कुमार राजा हो सकेगा ? इस विषयमें जो निश्चय हो, वह आप ठीक ठीक कहिये। (२८—३२)

हे भारत ! इस बातके कहे जाने पर सियार और मांस खानेवाले कुटिल जंतु अमङ्गलकारी शब्द मचाने लगे। हे महाराज! चारों ओर यह सब अमङ्गल चिह्न देख कर के ब्राह्मणगण और महामति विदुर धृतराष्ट्रसे बोले, कि हे पुरुषश्रेष्ठ महाराज ! आपके ज्येष्ठ पुत्रके जन्म लेतेही जिस प्रकार यह सब भयानक अमङ्गल चिह्न दीख पडते हैं, उससे यह प्रकाश हो रहा है, कि आपका यह पुत्र कुलहानि करनेवाला होगा, इसको त्याग देनेहीसे कुल की शांति हो सकती है, नहीं तो बडी हानि होगी, हे महीपाल भारत ! यदि आप अपने कुलकी शांति रखनी चाहते हों, तो यही अच्छा होगा, कि इस एक पुत्रको त्याग दीजिये; तब आपके निनानब्वे पुत्र तो बचेंगे, आप एकको छोड कर इस वंश और जगत्का हित कीजिये। हे महाराज! कहा है, कि कुलकी रक्षाके लिय एकको त्यागना, ग्रामकी भलाईके लिये कुलको त्यागना,

ग्रामं जनपदस्याऽर्थे आत्मार्थे पृथिवीं त्यजेत् ॥ ३८॥
स तथा विदुरेणोक्तस्तैश्च सर्वैर्द्विजोत्तमैः ।
न चकार तथा राजा पुत्रस्नेहसमन्वितः ॥ ३९॥
ततः पुत्रशतं पूर्णं धृतराष्ट्रस्य पार्थिव ।
मासमात्रेण संजज्ञे कन्या चैका शताधिका ॥ ४०॥
गान्धार्यां क्लिश्यमानायामुदरेण विवर्धता ।
धृतराष्ट्रं महाराजं वैश्या पर्यचरत्किल ॥४१॥
तस्मिन्संवत्सरे राजन्धृतराष्ट्रान्महायशाः ।
जज्ञे धीमांस्ततस्तस्यां युयुत्सुः करणो नृप ॥ ४२॥
एवं पुत्रशतं जज्ञे धृतराष्ट्रस्य धीमतः ।
महारथानां वीराणां कन्या चैका शताधिका ॥ ४३॥
युयुत्सुश्च महातेजा वैश्यापुत्रः प्रतापवान् ॥ ४४॥ [४६३४]

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यामादिपर्वणि संभवपर्वणि गान्धारीपुत्रोत्पत्तौ पञ्चदशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ ११५ ॥

जनमेजय उवाच– धृतराष्ट्रस्य पुत्राणामादितः कथितं त्वया ।
ऋषेः प्रसादात्तु शतं न च कन्या प्रकीर्तिता ॥ १ ॥
वैश्यापुत्रो युयुत्सुश्च कन्या चैका शताधिका ।

देशकी भलाईके लिये ग्रामको त्यागना और आत्माके लिये पृथ्वीको त्यागना उचित है। (३३—३८)

उन सब द्विजों और विदुरके ऐसा कहने पर राजा धृतराष्ट्रने पुत्रके स्नेह से उनकी बात नहीं सुनी । हे पृथ्वीनाथ ! अनन्तर महीने भरमें धृतराष्ट्रके सौ पुत्र और एक कन्या ने जन्म लिया। गांधारी जब बढते हुए गर्भकी पीडासे कातर थी, उसी वर्ष उस वैश्याके गर्भसे धृतराष्ट्रके अतियशयुक्त धीमान् युयुत्सु नामक एक पुत्रने जन्म लिया । वैश्याके गर्भ और क्षत्रियके वीर्यसे जन्म लेनेके हेतु वह पुत्र करण करके कथित हुआ है । इस प्रकार धीमान् धृतराष्ट्रसे महारथी वीर सौ पुत्र और एक कन्या और महातेजस्वी युयुत्सुने जन्म लिया था। (३९–४४)

आदिपर्वमें एकसौ पन्दरह अध्याय समाप्त।[४६३४]

आदिपर्वमें एकसौ सोलह अध्याय।

जनमेजय बोले, कि हे अनघ ! धृतराष्ट्रके ऋषिकी कृपासे सौ पुत्रोंका जन्म लेना आप कह चुके,पर ऋषिकी प्रसन्नता से कन्याके उत्पन्न होनेकी कोई कथा आपने नहीं कही है। आप धृतराष्ट्रके

गान्धारराजदुहिता शतपुत्रेति चाऽनघ ॥ २ ॥
उक्ता महर्षिणा तेन व्यासेनाऽमिततेजसा।
कथं त्विदानीं भगवन्कन्यां त्वं तु ब्रवीषि मे॥ ३ ॥
यदि भागशतं पेशी कृता तेन महर्षिणा।
न प्रजास्यति चेद्भूयः सौबलेयी कथंचन॥ ४ ॥
कथं तु संभवस्तस्या दुःशलाया वदस्व मे।
यथावदिह विप्रर्षे परं मेऽत्र कुतूहलम् ॥ ५ ॥
वैशम्पायन उवाच- साध्वयं प्रश्न उद्दिष्टः पाण्डवेय ब्रवीमि ते ।
तां मांसपेशीं भगवान्स्वयमेव महातपाः॥
शीताभिरद्भिरासिच्य भागं भागमकल्पयत्॥ ६ ॥
यो यथा कल्पितो भागस्तं तं धात्र्या तथा नृप।
घृतपूर्णेषु कुण्डेषु एकैकं प्राक्षिपत्तदा ॥ ७ ॥
एतस्मिन्नन्तरे साध्वी गान्धारी सुदृढव्रता ।
दुहितुः स्नेहसंयोगमनुध्याय वराङ्गना ॥ ८ ॥
मनसाऽचिन्तयद्देवी एतत्पुत्रशतं मम ।

सौ पुत्रोंसे अधिक एक वैश्याके गर्भसे जन्म लिये हुए,पुत्र,युयुत्सु और गान्धारी के गर्भसे जन्म ली हुई एक कन्याके जन्म लेनेकी कथा कह चुके; पर अस्वल्प तेजयुक्त महर्षि व्यासजी बोले थे, कि गांधारराजपुत्रीके सौ पुत्र जन्म लेंगे, भगवन्! अब आपने क्योंकर गांधारी के गर्भमें सौ पुत्रोंसे अधिक एक कन्याकी बात कही? यदि महर्षिने उन मांसपेशियोंको सौ भागोंसे बाटा हो और यदि सुबलपुत्रीका फिर गर्भ न हुआ हो; तो, क्यों कर दुःशलाकी उत्पत्ति हुई? हे विप्रवर! इस विषयको सुननेके लिये मुझे बडी इच्छा हुई है, आप यथावत् कह सुनावें। (१—५)

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि हे पाण्डव! आपने अच्छा प्रश्न किया है। मैं आपसे व्यक्त रूपसे कहता हूं। भगवान् व्यासने स्वयं ठण्डे जलसे उन मांसपेशियों को नहलवा कर उन्हें अलग अलग बांट डालनेकी कल्पना करी। हे महाराज! वह ज्यों ज्यों बांटने लगे, त्यों त्यों धात्री उन्हें घृतके घडोंमें छोडने लगी। इस समय कठोर व्रत करनेवाली सती सुन्दरी देवी गान्धारी कन्यास्नेह की आलोचना कर मनही मनमें सोचने लगी, कि इसमें संदेह नहीं है, कि इन मांस पेशियोंसे सौ पुत्र उत्पन्न होंगे, क्योंकि

भविष्यति न संदेहो न ब्रवीत्यन्यथा मुनिः ॥ ९ ॥
ममेयं परमा तुष्टिर्दुहिता मे भवेद्यदि ।
एका शताधिका बाला भविष्यति कनीयसी ॥ १० ॥
ततो दौहित्रजाल्लोकादबाह्योऽसौ पतिर्मम ।
अधिका किल नारीणां प्रीतिर्जामातृजा भवेत् ११ ॥
यदि नाम ममाऽपि स्याद् दुहितैका शताधिका ।
कृतकृत्या भवेयं वै पुत्रदौहित्रसंवृता ॥ १२ ॥
यदि सत्यं तपस्तप्तं दत्तं वाऽप्यथ वा हुतम् ।
गुरवस्तोषिता वापि तथाऽस्तु दुहिता मम ॥ १३ ॥
एतस्मिन्नेव काले तु कृष्णद्वैपायनः स्वयम् ।
व्यभजत्स तदा पेशीं भगवानृषिसत्तमः ॥ १४ ॥
गणयित्वा शतं पूर्णमंशानामाह सौबलीम् ।
व्यास उवाच — पूर्णं पुत्रशतं त्वेतन्न मिथ्या वागुदाहृता ॥ १५ ॥
दौहित्रयोगाय भाग एकः शिष्टः शतात्परः ।
एषा ते सुभगा कन्या भविष्यति यथेप्सिता ॥ १६ ॥
ततोऽन्यं घृतकुम्भं च समानाय्य महातपाः ।
तं चापि प्राक्षिपत्तत्र कन्याभागं तपोधनः ॥ १७ ॥

मुनिकी बात कभी मिथ्या नहीं होती; पर यदि मुझे सौ पुत्रोंसे अधिक कनिष्ठा एक कन्या हो, तो मेरे हृदयको बडा सन्तोष मिले और उससे मेरे पति दौहित्र से मिलते हुए पुण्यलोकके बाहर न होवें; विशेष नारी मातको दामादसे बडी प्रीति होती है; सो यदि मेरी सौ पुत्रोंसे ऊपर एक पुत्री भी होवे तो, मैं पुत्र और नातियोंसे घिरी जाकर कृतार्थ होऊं। (९—१२)

यदि मैं सच्ची रीति पर तप दान वा अग्निमें हवन किया हो अथवा यदि गुरुओंको प्रसन्न किया हो, तो मुझे एक कन्या भी होवे । इस अवसरमें ऋषिओंमें श्रेष्ठ भगवान् श्रीकृष्णद्वैपायन जी स्वयं उन मांसपेशियोंको बांट रहे थे । वह पूर्ण सौ भाग गिन कर गांधारीसे बोले, कि सौबली ! तुम्हारे सौ बेटे हुए; मैंने तुमसे झूठी नहीं कही थी । दैव संयोगसे ऊपर एक भाग बचा रहा, तुम्हारी इच्छानुसार इस भागसे एक सुंदरी कन्या होगी । (१३-१६)

अनंतर महातपा तपोधनने दूसरे एक घृतके घडेको मंगवाकर उसमें कन्याके

एतत्ते कथितं राजन्दुःशलाजन्म भारत ।
ब्रूहि राजेन्द्र किं भूयो वर्तयिष्यामि तेऽनघ ॥ १८॥[४६५२]

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यामादिपर्वणि संभवपर्वणि
दुःशलोत्पत्तौ षोडशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ ११६ ॥

जनमेजय उवाच– ज्येष्ठानुज्येष्ठतां तेषां नामानि च पृथक्पृथक् ।
धृतराष्ट्रस्य पुत्राणामानुपूर्व्या प्रकीर्तय ॥ १ ॥

वैशम्पायन उवाच– दुर्योधनो युयुत्सुश्च राजन्दुःशासनस्तथा ।
दुःसहो दुःशलश्चैव जलसन्धः समः सहः ॥ २ ॥
विन्दानुविन्दौ दुर्धर्षः सुबाहुर्दुष्प्रधर्षणः ।
दुर्मर्षणो दुर्मुखश्च दुष्कर्णः कर्ण एव च ॥ ३ ॥
विविंशतिर्विकर्णश्च शलः सत्त्वः सुलोचनः ।
चित्रोपचित्रौ चित्राक्षश्चारुचित्रः शरासनः ॥ ४ ॥
दुर्मदो दुर्विगाहश्च विवित्सुर्विकटाननः ।
ऊर्णनाभः सुनाभश्च तथा नन्दोपनन्दकौ ॥ ५ ॥
चित्रबाणश्चित्रवर्मा सुवर्मा दुर्विमोचनः ।
अयोबाहुर्महाबाहुश्चित्राङ्गश्चित्रकुण्डलः ॥ ६ ॥
भीमवेगो भीमबलो बलाकी बलवर्धनः ।
उग्रायुधः सुषेणश्च कुण्डधारो महोदरः ॥ ७ ॥
चित्रायुधो निषङ्गी च पाशी वृन्दारकस्तथा।

भागको छोड दिया । हे अनघ भरत-वंश श्रेष्ठ ! दुःशलाकी जन्म-कथा आपसे यह कह चुका । हे राजेन्द्र ! कहिये, फिर क्या कहना होगा । (१७-१८) [४६५२]

आदिपर्वमें एकसौ सोलह अध्याय समाप्त ।

आदिपर्वमें एकसौ सत्तरह अध्याय ।

जनमेजय बोले, कि धृतराष्ट्रके बडे छोटेके क्रमसे सब लडकोंके, और हरेकका अलग नाम आद्योपांत कहिये ।श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि हे महाराज ! दुर्योधन, युयुत्सु, दुःशासन, दुःसह, दुःशल, जल-सन्ध, सम, सह, विंद, अनुविंद, दुर्धर्ष, सुबाहु, दुष्प्रधर्षण, दुर्मर्षण, दुर्मुख, दुष्कर्ण, कर्ण, विविंशति, विकर्ण, शल, सत्त्व, सुलोचन, चित्र, उपचित्र, चित्राक्ष, चारु-चित्र, शराशन, दुर्मद, दुर्विगाह, विवित्सु, विकटानन, ऊर्णनाभ, सुनाभ, नंद, उपनंद, चित्रबाण, चित्रवर्मा, सुवर्मा, दुर्विमो-चन, अयोबाहु, महाबाहु, चित्रांग, चित्र-कुण्डल, भीमवेग, भीमबल, बलाकी, बल-

दृढवर्मा दृढक्षत्रः सोमकीर्तिरनूदरः ॥ ८ ॥
दृढसन्धो जरासन्धः सत्यसन्धः सदःसुवाक् ।
उग्रश्रवा उग्रसेनः सेनानीर्दुष्पराजयः ॥ ९ ॥
अपराजितः कुण्डशायी विशालाक्षो दुराधरः ।
दृढहस्तः सुहस्तश्च वातवेगसुवर्चसौ ॥ १० ॥
आदित्यकेतुर्बह्वाशी नागदत्तोग्रयाय्यपि ।
कवची क्रथनः कुण्डी कुण्डधारो धनुर्धरः ॥ ११ ॥
उग्रभीमरथौ वीरौ वीरबाहुरलोलुपः ।
अभयो रौद्रकर्मा च तथा दृढरथाश्रयः ॥ १२ ॥
अनाधृष्यः कुण्डभेदी विरावी दीर्घलोचनः ।
प्रमथश्च प्रमाथी च दीर्घरोमश्च वीर्यवान् ॥ १३ ॥
दीर्घबाहुर्महाबाहुर्व्यूढोरुः कनकध्वजः ।
कुण्डाशी विरजाश्चैव दुःशला च शताधिका ॥ १४ ॥
इति पुत्रशतं राजन्कन्या चैव शताधिका ।
नामधेयानुपूर्व्येण विद्धि जन्मक्रमं नृप ॥ १५ ॥
सर्वे त्वतिरथाः शूराः सर्वे युद्धविशारदाः ।
सर्वे वेदविदश्चैव सर्वे सर्वास्त्रकोविदाः ॥ १६ ॥
सर्वेषामनुरूपाश्च कृता दारा महीपते ।

वर्द्धन, उग्रायुध, सुषेण, कुण्डधार, महोदर, चित्रायुध, निषंगी, पाशी, वृन्दारक, दृढवर्मा, दृढक्षत्र, सोमकीर्ति, अनूदर, दृढसन्ध, जरासन्ध, सत्यसन्ध, सदःसुवाक्, उग्रश्रवा, उग्रसेन, सेनानी, दुष्पराजय, अपराजित, कुण्डशायी, विशालाक्ष, दुराधर, दृढहस्त, सुहस्त, वातवेग, सुवर्चा, आदित्यकेतु, बह्वाशी, नागदत्त, अग्रयायी, कवची, क्रथन, कुण्डी, कुण्डधार, धनुर्धर, उग्र, भीमरथ, वीरबाहु, अलोलुप, अभय, रौद्रकर्मा, दृढरथाश्रय, अनाधृष्य, कुण्डभेदी, विरावी, दीर्घलोचन, प्रमथ, प्रमाथी, वीर्यवान् दीर्घरोम, दीर्घबाहु, महाबाहु, व्यूढोरु, कनकध्वज, कुण्डाशी, विरजा, यह सौपुत्र और कन्या दुःशला है।(१-१४)

महाराज! धृतराष्ट्रके सौ पुत्रोंके और सौके अतिरिक्त कन्या दुःशलाका नाम यह कह चुका, हे महाराज! इन नामोंके क्रमके अनुसार इनके जन्मका क्रमभी जानना। वे सबके सब महारथी शूर, युद्धमें दक्ष, वेदमें पंडित और अस्त्र चलानेमें

Registered No. B. 1819.

अंक ७

महाभारत।

(भाषा-भाष्य-समेत)

संपादक — श्रीपाद दामोदर सातवळेकर.
स्वाध्याय मंडल, औंध (जि. सातारा)

१२ अंकोंका मूल्य म.आ.से. ६) वी.पी.से ७) विदेशके लिये ८)

महाभारतके नियम

(१) महाभारत मूल और भाषांतर प्रति अंकमें सौ पृष्ठ प्रकाशित होगा।

(२)इसमें मूल श्लोक और उसका सरल भाषानुवाद होगा। मूलग्रंथ समाप्त होनेतक कोई टीका टिप्पणी लिखी नहीं जायगी। जो लिखना होगा वह ग्रंथसमाप्ति के पश्चात् विस्तृत लेखमें सविस्तर लिखा जायगा।

(३)भूमिका रूप इस विस्तृत लेखमें धार्मिक, सामाजिक, राजकीय तथा अन्य दृष्टियोंसे परिपूर्ण विवरण होगा, तात्पर्य यह भूमिका का विस्तृत लेख भारतकालीन वस्तुस्थितिका पूर्ण रीतिसे निदर्शक होगा। यह लेख मूलग्रंथ के छपने के पश्चात् छपेगा।

(४)संपूर्ण महाभारतके मुख्य प्रसंगों के सौ चित्र इस ग्रंथमें दिये जांयगे। उन में प्रतिपर्व एक चित्र रंगीन भी होगा। इसके अतिरिक्त उस समयकी भूगोलिक अवस्था बताने वाले कई नकशे दिये जांयगे।

(५)इसके अतिरिक्त ग्राम,नगर,प्रांत, और देशोंके नाम, जातिवाचक नाम, तथा अन्य नामोंका पूर्ण परिचय देनेवाली विविध सूचियां भी दी जांयगी।

मूल्य।

(६) बारह अंकोंका अर्थात् १२०० पृष्ठोंका मूल्य मनी आर्डर से ६)छः रु. होगा और वी.पी.से ७.) रु. होगा यह मूल्य वार्षिक मूल्य नहीं है, परंतु १२०० पृष्ठोंका मूल्य है।

(७)बहुधा प्रतिमास १०० पृष्ठोंका एक अंक प्रकाशित होगा, परंतु संभव हुआ तो अधिक अंक भी प्रसिद्ध होंगे।

(८)प्रत्येक अंक तैयार होते ही ग्राहकों के पास भेजा जायगा। यदि किसीको न मिला, तो सूचना १५ दिनोंके अंदर मिलनी चाहिये। जिनकी सूचना १५ दिनोंके अंदर आवेगी उनको ही वह न मिला हुआ अंक पुनः भेजा जायगा। परंतु जिनकी सूचना १५ दिनोंके अंदर न आवेगी उनको ।।।=)आनेका मूल्य आनेपर, संभव हुआ तो ही,अंक भेजा जायगा।

(९)सब ग्राहक अपने अपने अंक संभाल कर रखें और चार अथवा पांच महिनों के पश्चात् अपने अंकोंकी जिल्द बनवा लें, जिससे अंक गुम होनेकी संभावना नहीं होगी। एक या दो मास के पश्चात् किसी को भी पिछला अंक मूल्य देनेपरभी मिलेगा नहीं। क्यों कि एक अंक कम होनेसे

धृतराष्ट्रेण समये परीक्ष्य विधिवन्नृप ॥ १७ ॥
दुःशलां चापि समये धृतराष्ट्रो नराधिपः ।
जयद्रथाय प्रददौ विधिना भरतर्षभ ॥ १८ ॥ [४६७०]

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यामादिपर्वणि संभवपर्वणि धृतराष्ट्रपुत्रनामकथने सप्तदशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ ११७ ॥

जनमेजय उवाच-कथितो धार्तराष्ट्राणामार्षः संभव उत्तमः ।
अमनुष्यो मनुष्याणां भवता ब्रह्मवादिना ॥ १ ॥
नामधेयानि चाऽप्येषां कथ्यमानानि भागशः ।
त्वत्तः श्रुतानि मे ब्रह्मन्पाण्डवानां च कीर्तय ॥ २ ॥
ते हि सर्वे महात्मानो देवराजपराक्रमाः ।
त्वयैवांऽशावतरणे देवभागाः प्रकीर्तिताः ॥ ३ ॥
एतदिच्छाम्यहं श्रोतुमतिमानुषकर्मणाम् ।
तेषामाजननं सर्वं वैशम्पायन कीर्तय ॥ ४ ॥
वैशम्पायन उवाच -राजा पाण्डुर्महारण्ये मृगव्यालनिषेविते ।
चरन्मैथुनधर्मस्थं ददर्श मृगयूथपम् ॥ ५ ॥
ततस्तां च मृगीं तं च रुक्मपुङ्खैः सुपत्रिभिः ।

निपुण थे। हे महीपाल! धृतराष्ट्रने परीक्षाद्वारा योग्य कन्याओंका निश्चयकर उचित समयमें यथारीति उन सबोंका विवाह कर लिया। हे भरतकुल प्रदीप! अनन्तर महाराजा धृतराष्ट्रने योग्य कालमें जयद्रथ को दुःशला नाम्नी कन्या सम्प्रदान कर दी। (१४—१८) [४६७०]

आदि पर्वमें एक सौ सतरह अध्याय समाप्त।

आदिपर्वमें एक सौ अठारह अध्याय।

जनमेजय बोले, कि हे ब्रह्मवादिन्! आप मनुष्य धृतराष्ट्रके पुत्रोंके श्रेष्ठ अलौकिक आर्ष जन्मकी कथा और उनके अलग नाम भी कह चुके हैं। हे ब्राह्मण! वह सब आपसे सुन लिया है, अब पांडवोंके चरित्रकी कथा कहिये; आपने वंशोंके अवतरणमें कहा है, कि पांडवगण सब महात्मा तथा इन्द्रके समान पराक्रमी थे और देवोंके अंशोंसे जन्म लिया था; सो मैं उन अलौकिक कर्म करने वाले पांडवोंकी जन्मसे लेकर आद्योपांत संपूर्ण कथा सुनना चाहता हूं, हे वैशम्पायन! आप उसे कह जाइये। (१-४)

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि महाराज! राजा पांडुने मृगव्यालोंसे भरे एक बडे वनमें घूमते घामते मैथुन धर्ममें आसक्त एक यूथपति मृगको देखा। आगे उन्होंने

निर्बिभेद शरैस्तीक्ष्णैः पाण्डुः पञ्चभिराशुगैः॥ ६ ॥
स च राजन्महातेजा ऋषिपुत्रस्तपोधनः।
भार्यया सह तेजस्वी मृगरूपेण संगतः॥ ७ ॥
संसक्तश्च तया मृग्या मानुषीमीरयन्गिरम्।
क्षणेन पतितो भूमौ विललापाऽऽकुलेंद्रियः॥ ८ ॥

मृग उवाच—काममन्युपरीता हि बुद्ध्या विरहिता अपि।
वर्जयंति नृशंसानि पापेष्वपि रता नराः॥ ९ ॥
न विधिं ग्रसते प्रज्ञा प्रज्ञां तु ग्रसते विधिः।
विधिपर्यागतानर्थान्प्राज्ञो न प्रतिपद्यते॥ १० ॥
शश्वद्धर्मात्मनां मुख्ये कुले जातस्य भारत।
कामलोभाभिभूतस्य कथं ते चालिता मतिः॥ ११ ॥

पाण्डुरुवाच—शत्रूणां या वधे वृत्तिः सा मृगाणां वधे स्मृता।
राज्ञां मृग न मां मोहात्त्वं गर्हयितुमर्हसि॥ १२॥
अच्छद्मना मायया च मृगाणां वध इष्यते।
स एव धर्मो राज्ञां तु तद्वि त्वं किं नु गर्हसे॥ १३ ॥
अगस्त्यः सत्रमासीनश्चकार मृगयामृषिः।

सोनेकी पूछसे सुशोभित सुंदर परवाले नोकदार और तेज चलनेवाले पांच बाणों से उस मृग और मृगीको विद्ध किया। हे महाराज! कोई बडे तेजस्वी तपोधन ऋषिकुमार मृगका स्वरूप लेकर स्त्रीके साथ उस प्रकारसे मिले थे। वह उस मृगीसे लिपटे रहते ही बाणाघातसे क्षण भरमें धरतीपर गिरकर मनुष्यकी बातोंमें विकल-चित्तसे पांडुसे बोले, कि काम क्रोधयुक्त हीनबुद्धि जनभी ऐसा निष्ठुर कार्य नहीं करता; पर मानवी बुद्धि दैवका पार नहीं पा सकती; दैवही मानवी बुद्धिसे बढ चढ जाता है, सो दैवी विषय को बुद्धिमान् जनभी समझ नहीं सकते। (९—१०)

हे भारत! तुम सदाके धर्मयुक्त प्रधान वंशमें जन्म लेकर क्योंकर काम लोभसे अभिभूत हुए, और क्योंकर तुम्हारा चित्त ऐसा डगमगाया? पाण्डु बोले, कि हे मृग! राजालोग शत्रु नाशन में जैसा किया करते हैं, मृग वेधने में वैसाही करते हैं, सो तुम्हे मोहसे मुझको ऐसा लाञ्छन नहीं करना चाहिये। छिपकर और कौशलसे मृग वध करना राजाओंका धर्म है; तुम फिर क्यों उस विषयमें निन्दा कर रहे हो? ऋषि अगस्त्यने

आरण्यान्सर्वदैवत्यान्मृगान्प्रोक्ष्य महावने॥ १४ ॥
प्रमाणदृष्टधर्मेण कथमस्मान्विगर्हसे ।
अगस्त्यस्याऽभिचारेण युष्माकं च वपा हुता॥ १५ ॥

मृग उवाच— न रिपून्वै समुद्दिश्य विमुञ्चन्ति नराः शरान्।
रन्ध्र एषां विशेषेण वधकालः प्रशस्यते ॥ १६ ॥

पाण्डुरुवाच— प्रमत्तमप्रमत्तं वा विवृतं घ्नंति चौजसा ।
उपायैर्विविधैस्तीक्ष्णैः कस्मान्मृग विगर्हसे ॥ १७ ॥

मृग उवाच— नाऽहं घ्नन्तं मृगान्राजन्विगर्हे चाऽऽत्मकारणात् ।
मैथुनं तु प्रतीक्ष्यं मे त्वयेहाऽद्याऽनृशंस्यतः ॥ १८ ॥
सर्वभूतहिते काले सर्वभूतेप्सिते तथा ।
को हि विद्वान्मृगं हन्याच्चरन्तं मैथुनं वने ॥ १९ ॥
अस्यां मृग्यां च राजेन्द्र हर्षान्मैथुनमाचरम् ।
पुरुषार्थफलं कर्तुं तत्त्वया विफलीकृतम् ॥ २० ॥
पौरवाणां महाराज तेषामक्लिष्टकर्मणाम् ।
वंशे जातस्य कौरव्य नाऽनुरूपमिदं तव ॥ २१ ॥

यज्ञकर सम्पूर्ण वनमें सर्वदेवोंके उद्देशमें सम्पूर्ण मृगोंको प्रोक्षण कर मृगया की थी। उन्होंने अभिचार कर्मके लिये तुम्हारी वपासे हवन किया था; सो प्रमाणित धर्मके अनुसार तुम मुझसे मारे गये हो, फिर क्यों हमारी निन्दा कर रहे हो। ११–१५

मृग बोला, कि मनुष्यलोग शत्रु को भली भांति न देखकर बाण नहीं चलाते, विशेष जिस समय शत्रुसे दोष होता है, उसी समयमें शत्रु वधनेका सुन्दर अवसर करके कहा है। पाण्डु बोले, कि ऐ मृग! मृग प्रमत्त रहें वा अप्रमत्त ही रहें, लोग नाना कठोर उपायोंसे खुलाखुली उनका वध करते हैं, अतएव तुम क्यों निन्दा करते हो? मृग बोला, कि महाराज! तुमने मृग मारा है, इस लिये तुम्हारी निन्दा नहीं करता! पर तुमको इस समय निष्ठुर व्यवहार न कर मेरे मैथुनकाल तक ठहरे रहना चाहिये था। सर्वभूतोंके प्रिय और सर्वभूतों के हितयुक्त ऐसे समयमें क्या कोईभी विद्वान् जन वनमें मैथुन करते हुए, मृग को वध कर सकता है? (१६—१९)

हे राजेंद्र! मैं आनंदसे इस मृगीसे संतान पैदा करनेके लिये लिपट गया था, तुमने वह व्यर्थ कर दिया। महाराज! तुमने शुद्ध कर्म करनेवाले पौरव राजों के वंशमें जन्म लिया है, सो यह कार्य

प्राप्नुवन्त्यकृतात्मानः कामजालविमोहिताः ॥ २ ॥
शश्वद्धर्मात्मना जातो बाल एव पिता मम ।
जीवितान्तमनुप्राप्तः कामात्मैवेति नः श्रुतम् ॥ ३ ॥
तस्य कामात्मनः क्षेत्रे राज्ञः संयतवागृषिः ।
कृष्णद्वैपायनः साक्षाद्भगवान्मामजीजनत् ॥ ४ ॥
तस्याऽद्य व्यसने बुद्धिः संजातेयं ममाऽधमा ।
त्यक्तस्य देवैरनयान्मृगयां परिधावतः ॥ ५ ॥
मोक्षमेव व्यवस्यामि बन्धो हि व्यसनं महत्।
स्ववृत्तिमनुवर्तिष्ये तामहं पितुरव्ययाम् ॥ ६ ॥
अतीव तपसाऽऽत्मानं योजयिष्याम्यसंशयम्।
तस्मादेकोऽहमेकाकी एकैकस्मिन्वनस्पतौ ॥ ७ ॥
चरन्भैक्ष्यं मुनिर्मुण्डश्चरिष्याम्याश्रमानिमान् ।
पांसुना समवच्छन्नः शून्यागारकृतालयः ॥ ८ ॥
वृक्षमूलनिकेतो वा त्यक्तसर्वप्रियाप्रियः ।

युक्त जन अच्छे वंशमें जन्म लेने पर भी कामके फन्देमें फंसकर अपने कर्मके दोषसे कुगति प्राप्त करता है। मैंने सुना है, कि मेरे पिता विचित्रवीर्य धर्मात्मा शांतनुसे जन्म लेकर के केवल कामयुक्त आत्मा होनेहीसे बालेपनहीमें परलोकको सिधारे थे; उन कामयुक्त राजाके क्षेत्रमें साक्षात् भगवान् ऋषि संयतवादी श्रीकृष्णद्वैपायनने मुझे जन्म दिया था; ऐसे मनुष्यके पुत्र होने-परभी मैं बुरी रीतिसे केवल वनहीमें घूम फिर रहा हूं ! आज मेरी बुरी बुद्धि व्यसनके विषयमें लिप्त हुई है, तो देवोंने मुझको त्याग दिया है, क्योंकि मेरा पुत्रका मुख विना देखे स्वर्ग पानेका पथ रुक गया। (१—५)

अब मैं मोक्षमार्ग का पथिक बनूं ! पुत्र उत्पादन आदि सांसारिक बंधन ही अति दुःखका कारण हुआ है, सो मैं ब्रह्मचारी बनकर जन्मदाता व्यासजीसे किये जाते हुए कार्यमें नियुक्त होऊंगा। मैं अपने चित्तको बिना संदेह कठोर तपमें नियुक्त करूंगा, उससे भार्यादि त्याग कर अकेले सिर मुंडाकर मुनि हो आश्रमों में स्थित इन सब वृक्षोंमेंसे एक एकसे भीख मांग मांग जीवनको बचाऊंगा। सब प्रिय और अप्रियको छोडकर धूलसे देहको नहला कर खाली घरमें वा पेडकी जडमें वसूंगा, किसी प्रकारसे न तो हर्ष और न शोक करूंगा, अपनी निंदा और प्रशंसा को समान समझूंगा, अशीस वा

न शोचन्न प्रहृष्यंश्चतुल्यनिन्दात्मसंस्तुतिः ॥ ९ ॥
निराशीर्निर्नमस्कारो निर्द्वन्द्वो निष्परिग्रहः ।
न चाऽप्यवहसन्कंचिन्न कुर्वन्भ्रुकुटीं क्वचित् ॥ १० ॥
प्रसन्नवदनो नित्यं सर्वभूतहिते रतः ।
जङ्गमाजङ्गमं सर्वमविहिंसंश्चतुर्विधम् ॥ ११ ॥
स्वासु प्रजास्विव सदा समः प्राणभृतः प्रति ।
एककालं चरन्भैक्ष्यं कुलानि दश पञ्च वा ॥ १२ ॥
असंभवे वा भैक्ष्यस्य चरन्ननशनान्यपि ।
अल्पमल्पं च भुञ्जानः पूर्वालाभे न जातुचित् ॥ १३ ॥
अन्यानविचरँल्लाभादलाभे सत्यपूरयन् ।
अलाभे यदि वा लाभे समदर्शी महातपाः ॥ १४ ॥
वास्यैकं तक्षतो बाहुं चन्दनेनैकमुक्षतः ।
नाऽकल्याणं न कल्याणं चिन्तयन्नुभयोस्तयोः ॥ १५ ॥
न जिजीविषुवत्किंचिन्न मुमूर्षुवदाचरन् ।
जीवितं मरणं चैव नाऽभिनंदन्न च द्विषन् ॥ १६ ॥

प्रमाण की इच्छा न करूंगा; और बिना बखेडा तथा किसीसे दान न लेकर दिन काटूंगा। (९—१०)

मैं किसीपर न तो हँसूंगा और न भौंह चढाऊंगा; सदा प्रसन्नमुख होकर सर्व भूतोंके हितमें नियुक्त रहूंगा; अण्ड स्वेद, जरायु और उद्भिदसे जन्म लिये हुए इन चार प्रकारके स्थावर जंगम प्राणियों पर हिंसा प्रगट नहीं करूंगा; अपनी प्रजावत सर्व भूतों पर तुल्य दृष्टि रखूंगा। नित्य पांच वा दश घरोंमें एकही बार भीख मांगूंगा; उनसे भीख न मिले तो बिना भोजनभी दिन गंवाऊंगा; स्वल्प भोजन किया करूंगा, पर तौभी एक बारमें न मिले, तो फिर कभी भीख न मांगूंगा; सात वा दश घरमें मांगने-पर यदि भीख न मिले, तो लोभसे दूसरे घरमें फिर नहीं जाऊंगा। चाहे लाभ होवे वा नहीं, मैं सबोंको समान सम-झूंगा और कठोर तप करूंगा। (१०-१४)

किसीके बसूलेसे मेरे एक हाथको काटने और चंदनसे दूसरे हाथको सुगंध युक्त कर देनेमें दोनोंमें से किसीको नतो हित और न अहितकी इच्छा करूंगा। मैं जीवन और मृत्युसे आनंद वा द्वेष प्रगटकर न तो कभी उछल उठूं और न कभी मुर्झाऊंगा। चेतनयुक्त जन निमे-षादि कालके नियमसे जो सब स्वर्गादि

याः काश्चिज्जीवता शक्याः कर्तुमभ्युदयाक्रियाः।
ताः सर्वाः समतिक्रम्य निमेषादिव्यवस्थिताः १७॥
तासु चाऽप्यनवस्थासु त्यक्तसर्वेन्द्रियक्रियाः।
संपरित्यक्तधर्मार्थः सुनिर्मुक्तात्मकल्मषः ॥ १८॥
निर्मुक्तः सर्वपापेभ्यो व्यतीतः सर्ववागुराः।
न वशे कस्यचित्तिष्ठन्सधर्मा मातरिश्वनः॥ १९॥
एतया सततं वृत्त्या चरन्नेवंप्रकारया ।
देहं संस्थापयिष्यामि निर्भयं मार्गमास्थितः॥२०॥
नाऽहं सुकृपणे मार्गे स्ववीर्यक्षयशोचिते।
स्वधर्मात्सततोपेते चरेयं वीर्यवर्जितः ॥ २१॥
सत्कृतोऽसत्कृतो वापि योऽयं कृपणचक्षुषा।
उपैति वृत्तिं कामात्मा स शुनां वर्तते पथि ॥ २२॥
वैशम्पायन उवाच--एवमुक्त्वा सुदुःखार्तो निश्वासपरमो नृपः।
अवेक्षमाणः कुंतीं च माद्रीं च समभाषत ॥ २३॥
कौशल्या विदुरः क्षत्ता राजा च सह बन्धुभिः।
आर्या सत्यवती भीष्मस्ते च राजपुरोहिताः ॥ २४॥

फलदायी मङ्गलयुक्त कार्य कर सकते हैं, मैं संपूर्ण रूपसे चित्तके पापको धोकर उन सब क्रियादिको कर कर धर्मार्थ त्याग और अनित्य फल देनेवाली सब इंद्रियोंकी क्रियाओं को त्याग दूंगा और अविद्यादि सर्व प्रकारके जालको फाडकर सब पापोंसे माफ होकर वायुका गुण लिये रहूंगा, किसीके वशमें नहीं जाऊं गा। (१५--१९)

सदा ऐसी रीतिसे चलकर निर्भय पथको आश्रय करके देह छोडूंगा; वीर्य वर्जितहोकर आत्मतत्त्वरूपी धर्मसे सदा च्युत निजवीर्यनाशी कुमार्ग पर कभी पांवको न रखूंगा। काम रहित होनेपरभी जो कामयुक्त होकर दीनके समान फिर काम-क्रियामें फंसता है, वह सुकार्य करे वा कुकार्य करे अवश्यही कुत्तेके पथमें चलता है अर्थात् जूठा चाटनेवाला है। (२०--२२)

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि अनंतर राजा अति दुःखीचित्तसे यह सब बातें कह कर लम्बी शांस छोडकर कुन्ती और माद्री की ओर आंख फेर कर बोले, कि कौशल्या, विदुर, बन्धु सहित राजा धृतराष्ट्र, आर्या सत्यवती, भीष्म, राजपुरोहित-लोग, व्रतशील सोम पीनेवाले महात्मा

ब्राह्मणाश्च महात्मानः सोमपाः शंसितव्रताः ।
पौरवृद्धाश्च ये तत्र विवसन्त्यस्मदाश्रयाः ।
प्रसाद्य सर्वे वक्तव्याः पाण्डुः प्रव्रजितो वनम्॥ २५ ॥
निशम्य वचनं भर्तुर्वनवासे धृतात्मनः ।
तत्समं वचनं कुन्ती माद्री च समभाषताम् ॥ २६ ॥
अन्येऽपि ह्याश्रमाः सन्ति ये शक्या भरतर्षभ ।
आवाभ्यां धर्मपत्नीभ्यां सह तप्तुं तपो महत् ॥ २७ ॥
शरीरस्याऽपि मोक्षाय स्वर्गं प्राप्य महाफलम् ।
त्वमेव भविता भर्ता स्वर्गस्याऽपि न संशयः ॥ २८ ॥
प्रणिधायेन्द्रियग्रामं भर्तृलोकपरायणे ।
त्यक्त्वा कामसुखे ह्यावां तप्स्यावो विपुलं तपः२९॥
यदि चाऽऽवां महाप्राज्ञ त्यक्ष्यसि त्वं विशांपते।
अद्यैवाऽऽवां प्रहास्यावो जीवितं नाऽत्र संशयः ॥३०॥

पाण्डुरुवाच— यदि व्यवसितं ह्येतद्युवयोर्धर्मसंहितम् ।
स्ववृत्तिमनुवर्तिष्ये तामहं पितुरव्ययाम् ॥ ३१ ॥
त्यक्त्वा ग्राम्यसुखाहारं तप्यमानो महत्तपः ।
वल्कली फलमूलाशी चरिष्यामि महावने ॥ ३२ ॥

ब्राह्मणगण और जितने नगरके वृद्धजन मेरे आश्रयमें हैं, उन सबोंसे प्रसन्नकर कहना, कि पाण्डु प्रव्रज्या आश्रमकी शरण लेकर वनमें गया है ! (२३—२५)

कुन्ती और माद्री वनवासका संकल्प ठाने हुए पतिके वचन सुनकर यथायोग्य वाक्य बोलीं । हे भरतश्रेष्ठ ! दूसरे बहुत आश्रम हैं, जिनको आश्रयकर आप इन दो धर्मपत्नियोंके साथ कठोर तपस्या कर सकेंगे, और इसमें सन्देह नहीं है, कि देह छोडनेके लिये महाफलको पाकर स्वर्गको प्राप्त करेंगे । हम दोनोंभी पति-लोकयुक्त होकर अब इन्द्रियोंको रोककर कामना और सुखको तजकर कडी तपस्या करेंगी । हे महाप्राज्ञ पृथ्वीनाथ ! आप हमको छोड देंगे तो बिना सन्देह हम आजही प्राण छोडेंगी । (२६–३०)

पाण्डु बोले, कि तुम्हारा यह निश्चय यदि धर्मके अनुसार होवे, तो मैं अपने पिताकी अव्ययवृत्तिको आश्रयकर लूंगा। ग्रामके भोजन और ग्रामके सुखको छोडकर वल्कल पहिन कर और फल मूल खाता हुआ भारी तपकर घने वनमें घूमूंगा ; चीर, चर्म और जटा धारणकर

अग्नौ जुह्वदुभौ कालावुभौ कालावुपस्पृशन् ।
कृशः परिमिताहारश्चीरचर्मजटाधरः ॥ ३३ ॥
शीतवातातपसहः क्षुत्पिपासानवेक्षकः ।
तपसा दुश्चरेणेदं शरीरमुपशोषयन् ॥ ३४ ॥
एकान्तशीलो विमृशन्पक्वापक्वेन वर्तयन् ।
पितॄन्देवांश्च वन्येन वाग्भिरद्भिश्च तर्पयन् ॥ ३५ ॥
वानप्रस्थजनस्याऽपि दर्शनं कुलवासिनाम् ।
नाऽप्रियाण्याचरिष्यामि किं पुनर्ग्रामवासिनाम् ॥ ३६ ॥
एवमारण्यशास्त्राणामुग्रमुग्रतरं विधिम् ।
कांक्षमाणोऽहमास्थास्ये देहस्याऽस्य समापनात् ॥ ३७ ॥
वैशम्पायन उवाच—इत्येवमुक्त्वा भार्ये ते राजा कौरवनन्दनः ।
ततश्चूडामणिं निष्कमङ्गदे कुण्डलानि च ॥ ३८ ॥
वासांसि च महार्हाणि स्त्रीणामाभरणानि च ।
प्रदाय सर्वं विप्रेभ्यः पाण्डुः पुनरभाषत ॥ ३९ ॥
गत्वा नागपुरं वाच्यं पाण्डुः प्रव्रजितो वनम् ।
अर्थं कामं सुखं चैव रतिं च परमात्मिकाम् ॥ ४० ॥
प्रतस्थे सर्वमुत्सृज्य सभार्यः कुरुनन्दनः ।

नियमित भोजन कर, भूख प्यास पर ध्यान न रखकर ठण्डी हवा और धूपको सहकर और अङ्गोंको दुबला पतला बनाकर दोनों समय नहाता और अग्नि में हवन करता हुआ कठोर तपस्यासे इस शरीरको सुखा डालूंगा। (३१–३४)

निरालेमें रहकर कच्चा और पक्का और वानप्रस्थके योग्य शास्त्रकी चर्चा करता हुआ, वनके फल, जल और बातोंसे पितर और देवोंका तर्पन करूंगा; ग्रामवासियोंकी बात तो दूर रही, एकही घरमें टिके हुए, वानप्रस्थोंकाभी कभी अप्रिय कार्य नहीं करूंगा ; जबतक यह देह न छूटेगी तबतक मैं योंही इन सब वनके शास्त्रोंकी कठोर विधियोंको पालन करता हुआ जीवित रहूंगा। (३५–३७)

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि कौरव-नन्दन राजा पाण्डु दोनों स्त्रियोंसे यह बात कह कर चूडामणि, निष्क, अङ्गद, कुण्डल, मूल्यवान् वस्त्र और स्त्रियोंके आभूषण आदि सब वस्तु ब्राह्मणों को देकर, साथियोंसे बोले, कि तुम हास्तिनापुर में जाकर कहना, कि कुरुनन्दन पाण्डु अर्थ, काम, सुख, और परम प्रिय स्त्रीसे

ततस्तस्याऽनुयातारस्ते चैव परिचारकाः ॥४१॥
श्रुत्वा भरतसिंहस्य विविधाः करुणा गिरः।
भीममार्तस्वरं कृत्वा हाहेति परिचुक्रुशुः ॥४२॥
उष्णमश्रु विमुञ्चन्तं तं विहाय महीपतिम्।
ययुर्नागपुरं तूर्णं सर्वमादाय तद्वचः ॥४३॥
ते गत्वा नगरं राज्ञो यथावृत्तं महात्मनः।
कथयाश्चक्रिरे राज्ञस्तद्धनं विविधं ददुः ॥४४॥
श्रुत्वा तेभ्यस्ततः सर्वं यथावृत्तं महावने।
धृतराष्ट्रो नरश्रेष्ठः पाण्डुमेवाऽन्वशोचत ॥४५॥
न शय्यासनभोगेषु रतिं विंदति कर्हिचित्।
भ्रातृशोकसमाविष्टस्तमेवाऽर्थं विचिन्तयन् ॥४६॥
राजपुत्रस्तु कौरव्यः पाण्डुर्मूलफलाशनः।
जगाम सह पत्नीभ्यां ततो नागशतं गिरिम् ॥४७॥
स चैत्ररथमासाद्य कालकूटमतीत्य च।
हिमवन्तमतिक्रम्य प्रययौ गन्धमादनम् ॥४८॥
रक्ष्यमाणो महाभूतैः सिद्धैश्च परमर्षिभिः।
उवास स महाराज समेषु विषमेषु च ॥४९॥

मिलनेके सुख सबको तज प्रव्रज्याश्रम लेकरके स्त्रियोंके संग वनको पधारा है। (३८—४१)

अनन्तर उनके साथी और नौकर उन भरतवंशके सिंहरूपी नरेशकी नाना करुणा की बातें सुनकर अति दुःखयुक्त कोलाहलसे हाहाकार करते हुए रोने लगे; आगे राजाको तज कर शोकके आंसू गिराते हुए उनकी सब बातोंके साथ विना विलम्ब हास्तिनापुरमें जा पहुंचे। नरश्रेष्ठ धृतराष्ट्र उनके मुखसे उनकी सब घटनाओंको सुन कर पाण्डुके लिये बडा शोक करने लगे। वह भाईके शोकसे विकल होकर उन्हीं बातोंको सोचसोच सेज, आसन, भोग किसीसे सुख नहीं पासके। (४२—४६)

इधर कौरववंशी राजकुमार पाण्डु फल मूल खाते हुए दोनों स्त्रियोंके साथ नागशत पर्वतको पधारे। आप उस चैत्ररथ पर चढ कर कालकूट पर्वतको पीछे रखके हिमाचलसे होते हुए गन्धमादनमें जा पहुंचे। हे महाराज! वह महाभूत, सिद्ध और परम ऋषियोंसे रक्षित होकर समभूमि और सूखे स्थानोंमें

इन्द्रद्युम्नसरः प्राप्य हंसकूटमतीत्य च ।
शतशृङ्गे महाराज तापसः समतप्यत ॥ ५० ॥ [४७५५]

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यामादिपर्वणि संभवपर्वणि
पाण्डुचरित ऊनविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ ११९ ॥

वैशम्पायन उवाच- तत्राऽपि तपसि श्रेष्ठे वर्तमानः स वीर्यवान् ।
सिद्धचारणसङ्घानां बभूव प्रियदर्शनः ॥ १ ॥
शुश्रूषुरनहंवादी संयतात्मा जितेन्द्रियः ।
स्वर्गं गन्तुं पराक्रान्तः स्वेन वीर्येण भारत ॥ २ ॥
केषांचिद् भवद्भ्राता केषांचिद् भवत्सखा ।
ऋषयस्त्वपरे चैनं पुत्रवत्परिपालयन् ॥ ३ ॥
स तु कालेन महता प्राप्य निष्कल्मषं तपः ।
ब्रह्मर्षिसदृशः पाण्डुर्बभूव भरतर्षभ ॥ ४ ॥
अमावास्यां तु सहिता ऋषयः संशितव्रताः ।
ब्रह्माणं द्रष्टुकामास्ते संप्रतस्थुर्महर्षयः ॥ ५ ॥
संप्रयातानृषीन्दृष्ट्वा पाण्डुर्वचनमब्रवीत् ।
भवन्तः क्व गमिष्यन्ति ब्रूत मे वदतांवराः ॥ ६ ॥
ऋषय ऊचुः—समवायो महानद्य ब्रह्मलोके महात्मनाम् ।

वासकर चुके । अन्तमें इन्द्रद्युम्न तालको प्राप्तकरके हंसकूटको पीछे छोड कर शतशृङ्ग नामक पहाड पर कठोर तप करने लगे। (४७—५०) [४७५५]

आदिपर्वमें एकसौ उन्नीस अध्याय समाप्त।

आदिपर्वमें एकसौ बीस अध्याय।

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि हे भारत! वीर्यवन्त पाण्डु उस स्थानमें बडी अच्छी तपस्यामें सदा नियुक्त रहकर सिद्धचारणों के अति प्रिय बने। वह गुरुसेवक, अहङ्कारवर्जित, संयतात्मा और जितेन्द्रिय होकर निज वीर्यसे स्वर्गको प्राप्त करनेके योग्य पराक्रमी बने। कोई कोई ऋषि उनको भाई, दूसरे मित्र समझने लगे और सब अन्यऋषि उनको पुत्रवत् पालने लगे। हे भरतश्रेष्ठ! अनन्तर पाण्डु बहुत दिनों तक विना कलङ्क तपोबल बटोरकर ब्रह्मर्षि समान बने। (१—४)

एक समय अमावास्या तिथिमें व्रतशील महर्षि लोग भगवान् स्वयंभूके दर्शनके लिये एकत्र होकर ब्रह्मलोकमें जा रहेथे, कि ऐसे समयमें पांडु उन ऋषियों को जाते हुए देखकर बोले, कि हे वाक्निपुण महर्षियो! कहिये, आप कहां जायंगे! ऋषिलोग

देवानां च ऋषीणां च पितॄणां च महात्मनाम् ॥ ७ ॥
वयं तत्र गमिष्यामो द्रष्टुकामाः स्वयंभुवम् ।
वैशम्पायन उवाच—पाण्डुरुत्थाय सहसा गन्तुकामो महर्षिभिः ॥ ८ ॥
स्वर्गपारं तितीर्षुः स शतशृङ्गादुदङ्मुखः ।
प्रतस्थे सह पत्नीभ्यामब्रुवंस्तं च तापसाः ॥ ९ ॥
उपर्युपरि गच्छन्तः शैलराजमुदङ्मुखाः ।
दृष्टवन्तो गिरौ रम्ये दुर्गान्देशान्बहून्वयम् ॥ १० ॥
विमानशतसंबाधां गीतस्वरनिनादिताम् ।
आक्रीडभूमिं देवानां गन्धर्वाप्सरसां तथा ॥ ११ ॥
उद्यानानि कुबेरस्य समानि विषमाणि च ।
महानदीनितम्बांश्च गहनान्गिरिगह्वरान् ॥ १२ ॥
संति नित्यहिमा देशा निर्वृक्षमृगपक्षिणः ।
संति क्वचिन्महादर्यो दुर्गाः केचिद्दुरासदाः ॥ १३ ॥
नाऽतिक्रमेत पक्षी यान्कुत एवेतरे मृगाः ।
वायुरेको हि यात्यत्र सिद्धाश्च परमर्षयः ॥ १४ ॥
गच्छन्त्यौ शैलराजेऽस्मिन्राजपुत्र्यौ कथं त्विमे ।

बोले, आज ब्रह्मलोकमें महात्मा देव तथा ऋषियों की और महात्मा पितरों की बडी बटोर होगी; हम ब्रह्मलोक में जाते हैं। (५—८)

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि पांडु महर्षियों के साथ जानेकी इच्छासे स्वर्गको पार करनेके लिये एकायक उठकर दोनों स्त्रियोंके साथ शतशृङ्गसे उत्तरकी ओर चले। तब तपस्वियोंने उनसे कहा, कि हमने उत्तर की ओर शैलराजसे क्रमशः ऊपरको चलते हुए इस सुन्दर पर्वतपर अगणित अगम्य देश देखे हैं, बीच बीचमें देव गंधर्व और अप्सराओंके सैकडों यानोंसे भरे और गीतोंसे गूंजते हुए स्थान दीख पडते हैं, कहीं कहीं, कुबेरकी समभूमि और विषम फुलवाडी बडी बडी नदी और दुर्गम कन्दरा हैं; कोई कोई स्थान सदा हिमसे ढपे रहते हैं; वहां न तो वृक्ष, मृग, अथवा पक्षी हैं न और कुछ हैं; कहीं कहीं ऐसी भारी वर्षा होती है, कि वह स्थान दुर्गम फिसलने वाले हो जाते हैं; किसी पशुकी बात तो दूर रही, पखेरूभी वहां पहुंच नहीं सकते, केवल अकेला वायु और सिद्ध तथा परम ऋषि लोग वहां जा सकते हैं। इन राज-कन्याओंने कभी

न सीदेतामदुःखार्हौ मा गमो भरतर्षभ ॥ १५॥

पाण्डुरुवाच — अप्रजस्य महाभागा न द्वारं परिचक्षते ।
स्वर्गे तेनाऽभितप्तोऽहमप्रजस्तु ब्रवीमि वः॥ १६ ॥
पित्र्यादृणादनिर्मुक्तस्तेन तप्ये तपोधनाः ।
देहनाशे ध्रुवो नाशः पितॄणामेष निश्चयः ॥ १७ ॥
ऋणैश्चतुर्भिः संयुक्ता जायन्ते मानवा भुवि ।
पितृदेवर्षिमनुजैर्देयं तेभ्यश्च धर्मतः ॥ १८ ॥
एतानि तु यथाकालं यो न बुध्यति मानवः ।
न तस्य लोकाः सन्तीति धर्मविद्भिः प्रतिष्ठितम्॥१९॥
यज्ञैस्तु देवान्प्रीणाति स्वाध्यायतपसा मुनीन् ।
पुत्रैः श्राद्धैः पितॄंश्चापि आनृशंस्येन मानवान्॥ २० ॥
ऋषिदेवमनुष्याणां परिमुक्तोऽस्मि धर्मतः ।
त्रयाणामितरेषां तु नाश आत्मनि नश्यति॥ २१ ॥
पित्र्यादृणादनिर्मुक्त इदानीमस्मि तापसाः ।
इह तस्मात्प्रजाहेतोः प्रजायन्ते नरोत्तमाः ॥ २२ ॥

दुःख सहन नहीं किया है, सो दुर्गम शैलराज पर चलनेमें क्यों नहीं मुर्झावेंगी अतएव हे भरतश्रेष्ठ ! तुम मत आओ। (९—१५)

पांडु बोले, कि हे महाभागवृन्द! कहा है, कि जिसके सन्तान नहीं है, उसके स्वर्गमें घुसनेके द्वार नहीं हैं, मेरी सन्तान नहीं है, सो अति दुःखसे जलकर आपसे ऐसा कहता हूं। हे तपोधनवृन्द! मैं पितरोंके ऋणसे मुक्त न होनेहीके कारण बडा दुःखी बना हूं, मुझको निश्चय होगया है, कि मेरे इस शरीर के नष्ट होने पर पितर लोगभी नष्ट होंगे। मनुष्यलोग पितरोंके, देवोंके, ऋषियोंके और मनुष्योंके इन चार ऋणोंको लेकर इस धरतीमें जन्म लेते हैं और धर्मानुसार उनको वह ऋण भरनाही चाहिये; धर्म जानने वाले कहते हैं, कि जो मनुष्य इन स्वाभाविक ऋणोंके भरनेके लिये उचित समयमें मन नहीं लगाता है, उसकी सुगति नहीं होती है। मानवलोग यागसे देवोंको, पठन तथा तपसे मुनियोंको, पुत्रोत्पादन तथा पिण्ड दानसे पितरोंको और निष्ठुरतासे रहित होकर मनुष्योंको तुष्टकर उनके ऋणोंसे मुक्त होते हैं। (१६--२०)

मैं देव, ऋषि और मनुष्य, इनके ऋणसे धर्मानुसार मुक्त हुआ हूं, पर मेरे शरीरके नष्ट होने पर पितरोंको नष्ट होना

यथैवाऽहं पितुः क्षेत्रे जातस्तेन महर्षिणा ।
तथैवाऽस्मिन्मम क्षेत्रे कथं वै संभवेत्प्रजा ॥ २३ ॥

ऋषय ऊचुः– अस्ति वै तव धर्मात्मन्विद्मो देवोपमं शुभम् ।
अपत्यमनघं राजन्वयं दिव्येन चक्षुषा ॥ २४ ॥
दैवोदिष्टं नरव्याघ्र कर्मणेहोपपादय ।
अक्लिष्टं फलमव्यग्रो विंदते बुद्धिमान्नरः ॥ २५ ॥
तस्मिन्दृष्टे फले राजन्प्रयत्नं कर्तुमर्हसि ।
अपत्यं गुणसंपन्नं लब्धा प्रीतिकरं ह्यसि ॥ २६ ॥

वैशम्पायन उवाच– तच्छ्रुत्वा तापसवचः पाण्डुश्चिन्तापरोऽभवत् ।
आत्मनो मृगशापेन जानन्नुपहतां क्रियाम् ॥ २७ ॥
सोऽब्रवीद्विजने कुंतीं धर्मपत्नीं यशस्विनीम् ।
अपत्योत्पादने यत्नमापदि त्वं समर्थय ॥ २८ ॥
अपत्यं नाम लोकेषु प्रतिष्ठा धर्मसंहिता ।
इति कुन्ति विदुर्धीराः शाश्वतं धर्मवादिनः ॥ २९ ॥

पडेगा । हे तपस्वीगण ! जो लोग नरोंमें श्रेष्ठ हैं, वे पितरोंके ऋणको भरनेको सन्तान पैदा करनेके निमित्त पृथ्वीमें जन्म लेते हैं, पर मैं अभीतक उक्त ऋणसे मुक्त नहीं हो सका हूं, सो पूछता हूं, कि मैंने जिस प्रकार पिता विचित्रवीर्यके क्षेत्रमें महर्षि व्याससे जन्म लिया है, क्या वैसेही मेरे इस क्षेत्रमें सन्तान उत्पन्न हो सकेगी ? (२१--२३)

ऋषिलोग बोले, कि हे धार्मिक नरेश ! हम दिव्य नेत्रोंसे देखते हैं, कि तुम्हारे पाप रहित देववत् शुभ पुत्र उत्पन्न होंगे, सो हे नरव्याघ्र ! तुम कर्मसे देवोंका अभिप्राय पूरा करो, क्योंकि बुद्धिमान जन न घबराकर सुन्दर फल प्राप्त करते हैं ! ऐ महाराज ! तुम्हारा फल दीख पडता है, तुम सन्तान उत्पन्न करनेका प्रयत्न करो, उससे अवश्यही आनन्द देनेवाले सर्व गुणोंसे सजे हुए पुत्र पा सकोगे । (२४—२६)

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि राजा पाण्डु तपस्वियोंकी वह बात सुनकर और यह स्मरणकर, कि मृगके शापसे उनकी पुत्र पैदा करनेकी शक्ति नष्ट हो गयी है, चिन्ता युक्त हुए । आगे वह यशस्विनी धर्मपत्नी कुन्तीसे निरालेमें बोले, कि हे कुन्ती ! तुम इस विपत्काल में पुत्र उत्पन्न करनेका प्रयत्न करो; देखो, धर्म कहनेवाले सदा कहते हैं, कि सन्तान इन तीनों लोकोंमें धर्म भरी प्रतिष्ठा

इष्टं दत्तं तपस्तप्तं नियमश्च स्वनुष्ठितः ।
सर्वमेवाऽनपत्यस्य न पावनमिहोच्यते ॥ ३० ॥
सोऽहमेवं विदित्वैतत्प्रपश्यामि शुचिस्मिते ।
अनपत्यः शुभाँल्लोकान्न प्राप्स्यामीति चिंतयन् ॥ ३१ ॥
मृगाभिशापान्नष्टं मे जननं ह्यकृतात्मनः ।
नृशंसकारिणो भीरु यथैवोपहतं पुरा ॥ ३२ ॥
इमे वै बन्धुदायादाः षट् पुत्रा धर्मदर्शने ।
षडेवाऽबन्धुदायादाः पुत्रास्ताञ्छृणु मे पृथे ॥ ३३ ॥
स्वयंजातः प्रणीतश्च परिक्रीतश्च यः सुतः ।
पौनर्भवश्च कानीनः स्वैरिण्या यश्च जायते ॥ ३४ ॥
दत्तः क्रीतः कृत्रिमश्च उपगच्छेत्स्वयं च यः ।
सहोढो ज्ञातिरेताश्च हीनयोनिधृतश्च यः ॥ ३५ ॥

सी हुई है। याग, दान, तपस्या और भले प्रकार अनुष्ठान किया हुआ नियम, यह सब उनको पवित्र नहीं करते हैं, जिनके कि सन्तान नहीं होती। हे सुन्दरी! यह जाननेही कारण मैं सोचके देखता हूं, कि मेरे पुत्र पैदा न होने से मैं शुभलोक को नहीं प्राप्त कर सकूंगा। (२७--३१)

री भीरु! पहिले जैसे मैं बुरी आत्म-युक्त और निष्ठुर कार्य में दत्तचित्त था, वैसेही मृगके शाप से मेरी सन्तान पैदा करने की शक्ति जाती रही है। धर्मशास्त्रोंमें कहा है, कि छः प्रकारके पुत्र बन्धुके धनके अधिकारी होते हैं, और छः प्रकार के पुत्र उसके अधिकारी नहीं होते। री पृथे! मैं उन बारह प्रकारके पुत्रोंकी बात कहता हूं, सुनो। (पहिला) औरस अर्थात् जो ब्याही स्त्रीसे निजके द्वारा पैदा हो, (दूसरा) प्रणीत, अर्थात् जो अच्छे पुरुषके द्वारा निज क्षेत्रसे पैदा हो, (तीसरा) परिक्रीत, अर्थात् जो मोल लिये हुए वीर्यके द्वारा निज क्षेत्रसे पैदा हो, (चौथा) पौनर्भव अर्थात् जो विधवा के गर्भसे अन्यके द्वारा पैदा हो, (पांचवा) कानीन अर्थात् जो कन्यावस्था में पैदा हो, (छठवां) स्वैरिणीके गर्भसे पैदा हुआ, अर्थात् जो गूढ वा कुण्ड नामसे प्रसिद्ध है, (सातवां) दत्त अर्थात् जो पूर्व पिता मातासे देदिया जाय, (आठवां) क्रीत, अर्थात् जो धन देकर ले लिया गया हो, (नवां) उपक्रीत, अर्थात् जो कृत्रिम हो, (दशवां) स्वयं उपागत अर्थात् मैं तुम्हारा पुत्र बना, यह कह के जो स्वयं आवे, (ग्यारहवां) ज्ञातिरेता सहोढ अर्थात्

पूर्वपूर्वतमाभावं मत्वा लिप्सेत वै सुतम् ।
उत्तमाद्देवरात्पुंसः काङ्क्षन्ते पुत्रमापदि ॥ ३६ ॥
अपत्यं धर्मफलदं श्रेष्ठं विन्दन्ति मानवाः ।
आत्मशुक्रादपि पृथे मनुः स्वायंभुवोऽब्रवीत् ॥ ३७ ॥
तस्मात्प्रहेष्याम्यद्य त्वां हीनः प्रजननात्स्वयम् ।
सदृशाच्छ्रेयसो वा त्वं विद्ध्यपत्यं यशस्विनि ॥ ३८ ॥
शृणु कुन्ति कथामेतां शारदण्डायिनीं प्रति ।
सा वीरपत्नी गुरुणा नियुक्ता पुत्रजन्मनि ॥ ३९ ॥
पुष्पेण प्रयता स्नाता निशि कुन्ति चतुष्पथे ।
वरयित्वा द्विजं सिद्धं हुत्वा पुंसवनेऽनलम् ॥ ४० ॥
कर्मण्यवसिते तस्मिन्सा तेनैव सहाऽवसत् ।
तत्र त्रीञ्जनयामास दुर्जयादीन्महारथान् ॥ ४१ ॥
तथा त्वमपि कल्याणि ब्राह्मणात्तपसाधिकात् ।
मन्नियोगाद्यत क्षिप्रमपत्योत्पादनं प्रति ॥ ४२ ॥ (४७९७)

इति श्रीमहा० शत० संहि० वैयासिक्यामादि० संभव० पाण्डुपृथासंवादे विंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १२० ॥

जो भाई आदिसे गर्भवती स्त्रीसे विवाह करने पर उसके गर्भसे पैदा हो, (बारहवां) हीनयोनिधृत, अर्थात् जो हीन जाति की स्त्रीसे पैदा हो। (३२–३५)

इन बारह प्रकारके पुत्रोंमें पहिला न बन पडे, तो उससे पिछला, फिर उससे पिछला; फिर वहभी न हो तो उससे पिछला, इस प्रकारसे माताको पुत्रकी इच्छा करनी चाहिये। लोग आपत्कालमें उत्तम छोटे सहोदर भाईसे पुत्रकी कामना किया करते हैं। स्वायंभुव मनुने कहा है, कि मनुष्यगण अपने वीर्यके विना भी धर्म-फलदेनेवाले श्रेष्ठ पुत्र प्राप्त कर सकते हैं। अतएव हे कुन्ती! मैं इस समय सन्तान पैदा करने की शक्तिसे रहित हुआ हूं, सो तुमको नियोग करता हूं, तुम सत्य वा श्रेष्ठजनसे यशस्वी पुत्र प्रसव करो। (३६—३८)

हे पृथे! शरदण्डायनकी कन्याकी कथा कहता हूं, सुनो। वह वीरकी स्त्री पतिसे पुत्र पैदा करनेको नियुक्त होकर ऋतु-स्नान करके रात्रिको चौराहे पर खडी हुई। आगे एक सिद्ध ब्राह्मणको वरण कर पुंसवन यज्ञमें अग्निकी आहुति चढाकर उस धर्मको पूरा करनेके पीछे उनसे मिली। इससे दुर्जय आदि तीन महारथियोंका जन्म हुआ। हे कल्याणि! उस प्रकार तुमभी मेरे नियोगसे ऐसे

वैशम्पायन उवाच—एवमुक्ता महाराज कुन्ती पांण्डुमभाषत ।
कुरूणामृषभं वीरं तदा भूमिपतिं पतिम् ॥ १ ॥
न मामर्हसि धर्मज्ञ वक्तुमेवं कथचन ।
धर्मपत्नीमभिरतां त्वयि राजीवलोचने ॥ २ ॥
त्वमेव तु महाबाहो मय्यपत्यानि भारत ।
वीर वीर्योपपन्नानि धर्मतो जनयिष्यसि ॥ ३ ॥
स्वर्ग मनुजशार्दूल गच्छेयं सहिता त्वया ।
अपत्याय च मां गच्छ त्वमेव कुरुनन्दन ॥ ४ ॥
न ह्यहं मनसाऽप्यन्यं गच्छेयं त्वदृते नरम् ।
त्वत्तः प्रतिविशिष्टश्च कोऽन्योऽस्ति भुवि मानवः॥५॥
इमां च तावद्धर्मात्मन्पौराणीं शृणु मे कथाम् ।
परिश्रुतां विशालाक्ष कीर्तयिष्यामि यामहम् ॥ ६ ॥
व्युषिताश्व इति ख्यातो बभूव किल पार्थिवः।
पुरा परमधर्मिष्ठः पूरोर्वंशविवर्धनः ॥ ७ ॥
तस्मिंश्च यजमाने वै धर्मात्मनि महाभुजे ।

किसी ब्राह्मणसे, जो मुझसे तप में श्रेष्ठ हो, शीघ्र सन्तान पैदा करने की चेष्टा करो ! (३९—४२) [४७९७]

आदिपर्वमें एकसौ बीस अध्याय समाप्त ।

आदिपर्वमें एकसौ इक्कीस अध्याय ।

वैशम्पायनजी बोले, कि हे महाराज! कुन्ती यह बात सुन कर कुरुवंशियोंमें श्रेष्ठ भूपति पाण्डुसे बोली, कि हे धर्मज्ञ राजीवनेत्र ! मैं आपकी धर्मपत्नी और आपहीके प्रेममें फंसी हूं; सो आपको मुझसे ऐसा कहना कभी उचित नहीं है । हे वीर महाभुज ! धर्मानुसार आपही को मुझसे अपने वीर्यके द्वारा सन्तान पैदा करनी चाहिये । हे मानवोंमें व्याघ्ररूपी पुरुष ! ऐसाही होनेसे मैं आपके साथ स्वर्गमें जा सकूंगी; अतएव हे कुरुनन्दन ! आपही सन्तानके लिये मुझसे मिलिये क्योंकि मैं मनमेंभी दूसरे पुरुषसे मिलना नहीं चाहती; विशेष इस भूमण्डलमें ऐसा कौन है, जो आपसे श्रेष्ठ हो सके ? (१–५)

हे धार्मिक, विशालाक्ष ! पहिले मैंने एक पौराणिक कथा सुनी थी, उसको आपसे कहती हूं, सुनिये । पूर्वकालमें कुरुवंश-बढानेवाले परम धार्मिक व्युषिताश्व नामक एक प्रसिद्ध राजा थे । उन धर्मात्मा महाभुज नरेशके याग आरम्भ करदेने पर इन्द्र सहित देवता और देवर्षि

उपागमंस्ततो देवाः सेन्द्रा देवर्षिभिः सह ॥ ८ ॥
अमाद्यदिन्द्रः सोमेन दक्षिणाभिर्द्विजातयः ।
व्युषिताश्वस्य राजर्षेस्ततो यज्ञे महात्मनः ॥ ९ ॥
देवा ब्रह्मर्षयश्चैव चक्रुः कर्म स्वयं तदा ।
व्युषिताश्वस्ततो राजन्नतिमर्त्यान्व्यरोचत ॥ १० ॥
सर्वभूतान्यति यथा तपनः शिशिरात्यये ।
स विजित्य गृहीत्वा च नृपतीन्राजसत्तम ॥ ११ ॥
प्राच्यानुदीच्यान्पाश्चात्यान्दाक्षिणात्यानकालयत् ।
अश्वमेधे महायज्ञे व्युषिताश्वः प्रतापवान् ॥ १२ ॥
बभूव स हि राजेन्द्रो दशनागबलान्वितः ।
अप्यत्र गाथां गायन्ति ये पुराणविदो जनाः ॥ १३ ॥
व्युषिताश्वे यशोवृद्धे मनुष्येन्द्रे कुरूद्वह ।
व्युषिताश्वः समुद्रान्तां विजित्येमां वसुन्धराम् १४ ॥
अपालयत्सर्ववर्णान्पिता पुत्रानिवौरसान् ।
यजमानो महायज्ञैर्ब्राह्मणेभ्यो धनं ददौ ॥ १५ ॥
अनन्तरत्नान्यादाय स जहार महाक्रतून् ।
सुषाव च बहून्सोमान्सोमसंस्थास्ततान च ॥ १६ ॥

लोग वहां आ पहुंचे थे। आगे उन महात्मा राजर्षि व्युषिताश्वके यज्ञमें देवराज सोमरस पीकर और ब्राह्मणलोग दक्षिणा पाकर उन्मत्तके समान हो गये थे, वे देवगण और ब्रह्मर्षिलोग स्वयं कर्म पूरा करने लगे। (९-१०)

हे राजन्! जिस प्रकार हिम अन्त होनेपर भगवान् आदित्य सम्पूर्ण भूतोंको पीछे रखकर आगे बढकर प्रकाशमान होते हैं, वैसेही व्युषिताश्व सर्वलोकोंको पीछे रखकर सोहने लगे! हे श्रेष्ठभूप! वह प्रतापी राजेन्द्र व्युषिताश्व दश हस्तीके समान बल रखते थे, सो अश्वमेधयज्ञमें पूर्व, पश्चिम, उत्तर, और दक्षिण, उन चारों ओरके राजाओंको हराके पकड पकड कर अपने वशमें लाये थे। हे कुरुकुल-श्रेष्ठ! पुराण कहने वाले लोग यह कथा कहा करते हैं, कि यशवन्त व्युषिताश्वके पृथ्वीनाथ होनेसे उन्होंने समुद्र तक इस धरतीको जीतकर सर्वलोकोंका इस प्रकार पालन किया था, कि जैसे पिता औरस पुत्रको पालते हैं। उन्होंने अनन्त रत्न बटोरकर सोमसंस्था अर्थात् ज्योति-ष्टोमादि महायज्ञोंको बढा-

आसीत्काक्षीवती चाऽस्य भार्या परमसंमता।
भद्रा नाम मनुष्येन्द्र रूपेणाऽसदृशी भुवि ॥ १७॥
कामयामासतुस्तौ च परस्परमिति श्रुतम् ।
स तस्यां कामसंपन्नो यक्ष्मणा समपद्यत ॥ १८॥
तेनाऽचिरेण कालेन जगामाऽस्तमिवांऽशुमान्।
तस्मिन्प्रेते मनुष्येन्द्रे भार्याऽस्य भृशदुःखिता१९॥
अपुत्रा पुरुषव्याघ्र विललापेति नः श्रुतम् ।
भद्रा परमदुःखार्ता तन्निबोध जनाधिप ॥ २०॥

भद्रोवाच— नारी परमधर्मज्ञ सर्वा भर्तृविनाकृता ।
पतिं विना जीवति या न सा जीवति दुःखिता॥२१॥
पतिं विना मृतं श्रेयो नार्याः क्षत्रियपुङ्गव ।
त्वद्गतिं गन्तुमिच्छामि प्रसीदस्व नयस्व माम्॥ २२॥
त्वया हीना क्षणमपि नाऽहं जीवितुमुत्सहे।
प्रसादं कुरु मे राजन्नितस्तूर्णं नयस्व माम्॥ २३॥
पृष्ठतोऽनुगमिष्यामि समेषु विषमेषु च ।

कर अगणित सोमलता निचोडी और ब्राह्मणोंको प्रचुर धन दिया था।(१०-१६

राजा काक्षीवान् की कन्या भद्रा उनकी परम प्यारी स्त्री थी। हे मनुष्यों-में इद्ररूपी ! भूमण्डलभरमें उन भद्राके समान अनुपम रूपवती नारी कोई दूसरी नहीं थी । उस दम्पातिमें नारी जिस प्रकार पतिहीकी कामना करती थी। उन प्रकार पतीभी उस नारीके प्रेमी थे। अनन्तर भद्राके बडे प्रेमी व्युषिताश्वको क्षयने घेरा, इससे वह सूर्यकी भांति स्वल्प कालके बीचमें अस्त हो गये। उस भूपालके परलोकको सिधारनेपर उनकी स्त्री शोकसे बडी विह्वल हुई। हे पुरुषोंमें व्याघ्ररूपी नरेश ! भद्राने अति दुःखी होकर जैसा शोक किया था, वह कहती हूं, सुनिये ।(१७-२०)

भद्रा भर्ताको लक्ष्यकर बोली, कि हे परम धर्मज्ञ ! पतिके बिना नारी अति निष्फला होती है । जो नारी पतिके विना जीवनको धारण किये रहती है, वह सदा दुःखी होकर मरीसी बनी रहती है । हे क्षत्रियश्रेष्ठ ! पति के विना अबलाओंकी मृत्युही मङ्गलदायी होती है, अतएव मैं तुम्हारे साथ चली जाना चाहती हूं, प्रसन्न होकर मुझको साथ ले चलो। हे महाराज!तुम्हारे विना मुझे क्षण भर भी जीनेकी इच्छा नही है, अंतएव

त्वामहं नरशार्दूल गच्छन्तमनिवर्तितुम् ॥ २४ ॥
छायेवाऽनुगता राजन्सततं वशवर्तिनी ।
भविष्यामि नरव्याघ्र नित्यं प्रियहिते रता ॥ २५ ॥
अद्य प्रभृति मां राजन्कष्टा हृदयशोषणाः ।
आधयोऽभिभविष्यन्ति त्वामृते पुष्करेक्षण ॥ २६ ॥
अभाग्यया मया नूनं वियुक्ताः सहचारिणः ।
तेन मे विप्रयोगोऽयमुपपन्नस्त्वया सह ॥ २७ ॥
विप्रयुक्ता तु या पत्या मुहूर्तमपि जीवति ।
दुःखं जीवति सा पापा नरकस्थेव पार्थिव ॥ २८ ॥
संयुक्ता विप्रयुक्ताश्च पूर्वदेहे कृता मया ।
तमोभिः कर्मभिः पापैः पूर्वदेहेषु संचितम् ॥ २९ ॥
दुःखं मामनुसंप्राप्तं राजंस्त्वद्विप्रयोगजम् ॥ ३० ॥
अद्यप्रभृत्यहं राजन्कुशसंस्तरशायिनी ।
भविष्याम्यसुखाविष्टा त्वद्दर्शनपरायणा ॥ ३१ ॥
दर्शयस्व नरव्याघ्र शाधि मामसुखान्विताम्।

प्रसन्न होओ, मुझको विना विलम्ब यहांसे ले जाओ । हे राजोंमें व्याघ्ररूपी पुरुष ! चाहे समभूमि हो, चाहे, रूखी हो, हर स्थानमें मैं तुम्हारे सङ्ग पीछे पीछे जाऊंगी, फिर न लौटूंगी । हे नरव्याघ्र! मैं तुम्हारी प्रिय और हित करने में सन्नद्ध,परछाहींके समान पीछे जाती हुई और सदा आज्ञा माननेवाली बनी रहूंगी! हे पुष्करेक्षण ! तुम्हारे विना आजसे कष्टदायी हृदय सोखने-हारी चित्तपीडा मुझको जकड लेगी।(२१-२६)

मुझको निश्चय जान पडता है, कि जो एकत्र रहते हैं, बुरे भाग्यवश मैंने उनको एक दूसरेसे अलग कर दिया था, उस पापहीसे मुझे यह भारी विरह आ पडी है ! हे पृथ्वीनाथ ! जो नारी पतिसे अलग होकर क्षण भरभी जीती रहती है, वह मानों नरकमें घुसकर बडे ही कष्टसे दिन काटती है । मैंने पूर्वजन्ममें इकट्ठे विराजती हुई दम्पतियोंको एक दूसरेसे अलग कर दिया था, उस पाप-कर्म से बटोर हुए दुःखने इस समय विरहका स्वरूप लेकर मुझपर चढाई की है। हे भूपाल ! मैं आजसे तुमको आखोंके सामने रखकर कुशाके बिस्तर पर लेटी रहूंगी; किसी सुखसे सुखी न होऊंगी । हे नरव्याघ्र ! दर्शन दीजिये। हे नाथ ! हे नरनाथ!कातर होकर विलपती हुई,असुखी

कृपणां नाथ करुणां विलपन्तीं नरेश्वर ॥ ३२ ॥

कुन्त्युवाच— एवं बहुविधं तस्यां विलपन्त्यां पुनः पुनः ।
तं शवं संपरिष्वज्य वाक्किलाऽन्तर्हिताऽब्रवीत् ॥ ३३ ॥
उत्तिष्ठ भद्रे गच्छ त्वं ददानीह वरं तव ।
जनयिष्याम्यपत्यानि त्वय्यहं चारुहासिनि ॥ ३४ ॥
आत्मकीये वरारोहे शयनीये चतुर्दशीम् ।
अष्टमीं वा ऋतुस्नाता संविशेथा मया सह ॥ ३५ ॥
एवमुक्ता तु सा देवी तथा चक्रे पतिव्रता ।
यथोक्तमेव तद्वाक्यं भद्रा पुत्रार्थिनी तदा ॥ ३६ ॥
सा तेन सुषुवे देवी शवेन भरतर्षभ ।
त्रीञ्शाल्वांश्चतुरो मद्रान्सुतान्भरतसत्तम ॥ ३७ ॥
तथा त्वमपि मय्येवं मनसा भरतर्षभ ।
शक्तो जनयितुं पुत्रांस्तपोयोगबलान्वितः ॥३८॥ [४८३५]

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यामादिपर्वणि संभवपर्वणि व्युषिताश्वोपाख्याने एकविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १२१ ॥

वैशम्पायन उवाच—एवमुक्तस्तया राजा तां देवीं पुनरब्रवीत् ।
धर्मविद्धर्मसंयुक्तमिदं वचनमुत्तमम् ॥ १ ॥

इस दीना अधीनाको आज्ञा दो। (२७-३२)

कुन्ती बोली, कि इस प्रकारसे वह व्युषिताश्वकी स्त्री उस मुर्देसे लिपटकर बार बार भांति भांतिके विलाप कर रही थी, कि ऐसे समयमें यह आकाश-वाणी हुई, कि—"भद्रे ! उठो, जाओ; री मधुरहासिनी ! तुझको वर देता हूं, तेरेसे संतान पैदा करूंगा। री सुंदरी ! अष्टमी चतुर्दशीमें तू ऋतुस्नान कर मुझसे अपने बिस्तर पर लेटना।" यह आकाश-वाणी होनेपर पुत्र चाहती हुई देवी पतिव्रता भद्रा उस बातके अनुसार उस प्रकार लेटी रही। हे भरतवंशमें श्रेष्ठ पुरुष ! उस देवीने उस शवके वीर्यसे तीन शाल्व और चार मद्र, सात सन्तान प्रसव कीं। हे भरतश्रेष्ठ ! उस प्रकार आपभी तप और योगके बलसे मानसके द्वारा मुझसे सन्तान पैदा कर सकते हैं। (३३—३८) [४८३५]

आदिपर्वमें एकसौ इक्कीस अध्याय समाप्त।

आदिपर्वमें एकसौ बाईस अध्याय।

श्रीवैशम्पायनजी बोले,: धर्मज्ञ राजा पाण्डु देवीसे यह बात सुनकर फिर उनको अच्छा धर्मयुक्त यह वाक्य बोले, कि हे

पाण्डुरुवाच— एवमेतत्पुरा कुंति व्युषिताश्वश्चकार ह ।
यथा त्वयोक्तं कल्याणि स ह्यासीदमरोपमः ॥ २ ॥
अथ त्विदं प्रवक्ष्यामि धर्मतत्त्वं निबोध मे ।
पुराणमृषिभिर्दृष्टं धर्मविद्भिर्महात्मभिः ॥ ३ ॥
अनावृताः किल पुरा स्त्रिय आसन्वरानने ।
कामचारविहारिण्यः स्वतन्त्राश्चारुहासिनि ॥ ४ ॥
तासां व्युच्चरमाणानां कौमारात्सुभगे पतीन् ।
नाऽधर्मोऽभूद्वरारोहे स हि धर्मः पुराऽभवत् ॥ ५ ॥
तं चैव धर्मं पौराणं तिर्यग्योनिगताः प्रजाः ।
अद्याऽप्यनुविधीयन्ते कामक्रोधविवर्जिताः ॥ ६ ॥
प्रमाणदृष्टो धर्मोऽयं पूज्यते च महर्षिभिः ।
उत्तरेषु च रम्भोरु कुरुष्वद्याऽपि पूज्यते ॥ ७ ॥
स्त्रीणामनुग्रहकरः स हि धर्मः सनातनः ॥ ८ ॥
अस्मिंस्तु लोके न चिरान्मर्यादेयं शुचिस्मिते ।
स्थापिता येन यस्माच्च तन्मे विस्तरतः शृणु ॥ ९ ॥
बभूवोद्दालको नाम महर्षिरिति नः श्रुतम् ।

कुन्ति! तुमने जो कहा,वह ठीकही है । व्युषिताश्वने ऐसाही किया था, क्योंकि वह देववत थे ; पर धर्मज्ञ महात्मा महर्षियोंने पुराणोंमें धर्मका जो तत्त्व दिखाया है, वह तुमसे कहता हूं, सुनो, ऐ सुन्दरि ! पूर्वकालमें स्त्रियोंको कुछ मनाही नहीं थी; ऐ मधुरहासिनी ! वे उन दिनों स्वतन्त्र अर्थात् पतिआदियोंसे न रोकी जाकर भोगके सुखकी आशामें घूमा करती थीं । (१–४)

ऐ सुन्दरी ! वे कुमारी—दशाहीसे व्यभिचार किया करती थीं, इससे उन को अधर्म नहीं होता था, क्योंकि वही पूर्व कालका धर्म था । ऐ सुन्दरि ! आजतक तिर्यग् योनिकी प्रजा काम द्वेषसे रहित होकर उस पुराने धर्मसे चलती है। महर्षिलोगभी प्रमाणसे दर्शाये हुए इस धर्मकी प्रशंसा किया करते हैं, ऐ सुन्दरि ! उत्तरकुरुओंमें आज तक इस धर्मकी पूजा हो रही है, क्योंकि वह सनातन धर्म स्त्रियों पर कृपायुक्त है। पर थोडे कालसे इस विषयमें वर्त्तमान नियम हो रहा है; जिस हेतु जिनसे यह स्थापित हुआ है,विस्तारपूर्वक कहता हूं,सुनो।५-९

हमने सुना है, कि उद्दालक नामक एक महर्षि थे । श्वेतकेतु नामसे प्रसिद्ध

श्वेतकेतुरिति ख्यातः पुत्रस्तस्याऽभवन्मुनिः॥१०॥
मर्यादेयं कृता तेन धर्म्या वै श्वेतकेतुना ।
कोपात्कमलपत्राक्षि यदर्थं तन्निबोध मे ॥ ११ ॥
श्वेतकेतोः किल पुरा समक्षं मातरं पितुः ।
जग्राह ब्राह्मणः पाणौ गच्छाव इति चाऽब्रवीत्॥१२॥
ऋषिपुत्रस्ततः कोपं चकाराऽमर्षचोदितः ।
मातरं तां तथा दृष्ट्वा नीयमानां बलादिव ॥ १३ ॥
क्रुद्धं तं तु पिता दृष्ट्वा श्वेतकेतुमुवाच ह ।
मा तात कोपं कार्षीस्त्वमेष धर्मः सनातनः ॥ १४ ॥
अनावृता हि सर्वेषां वर्णानामङ्गना भुवि ।
यथा गावः स्थितास्तात स्वे स्वे वर्णे तथा प्रजाः॥१५॥
ऋषिपुत्रोऽथ तं धर्मं श्वेतकेतुर्न चक्षमे ।
चकार चैव मर्यादामिमां स्त्रीपुंसयोर्भुवि ॥ १६ ॥
मानुषेषु महाभागे न त्वेवाऽन्येषु जन्तुषु ।
तदाप्रभृति मर्यादा स्थितेयमिति नः श्रुतम्॥ १७ ॥
व्युच्चरन्त्याः पतिं नार्या अद्यप्रभृति पातकम्।
भ्रूणहत्यासमं घोरं भविष्यत्यसुखावहम् ॥ १८ ॥

उनके एक पुत्र भये थे। उन श्वेतकेतुहीने क्रोधित होकर धर्मके अनुसार यह मर्यादा ठहरायी है। ऐ पद्मनेत्रवती! उनका कारण सुनो। एक समय एक ब्राह्मण श्वेतकेतुके पिताके सामने उसकी मातासे हाथ थामकर बोला, कि आओ हम चलें। अनन्तर ऋषिकुमार श्वेतकेतु अन्य पुरुषसे माताको लिवाये जाते देखकर दुःखी और क्रोधित हुए। (१०-१३)

उनके पिता उद्दालक उनको क्रोधसे कांपते हुए देखकर बोले, कि बेटा! तुम क्रोधित मत होओ, सनातन धर्म ऐसाही है। इस भूमण्डलमें सर्व वर्णोंकीही स्त्रियां विना रोक टोक सबोंसे मिलती हैं। ऐ बेटा! गौके समान सर्व वर्णोंकी प्रजाभी निज निज वर्णोंसे व्यवहार किया करती हैं। आगे ऋषिकुमारने वह सहनेको अक्षम होकर भूमण्डलमें स्त्रीपुरुषोंकी यह मर्यादा ठहरायी। ऐ महाभागे! हमने सुना है, कि उससे मनुष्य समाज में यह नियम ठहर गया है; यह दूसरे प्राणियों पर नहीं वर्तता है। (१४-१७)

श्वेतकेतुने यह नियम रचा, कि आजसे जो नारी पतिको तजकर व्यभिचार करे-

भार्यां तथा व्युच्चरतः कौमारब्रह्मचारिणीम्।
पतिव्रतामेतदेव भविता पातकं भुवि ॥ १९ ॥
पत्या नियुक्ता या चैव पत्नी पुत्रार्थमेव च।
न करिष्यति तस्याश्च भविष्यति तदेव हि॥ २० ॥
इति तेन पुरा भीरु मर्यादा स्थापिता बलात्।
उद्दालकस्य पुत्रेण धर्म्या वै श्वेतकेतुना ॥ २१ ॥
सौदासेन च रम्भोरु नियुक्ता पुत्रजन्मनि।
मदयंती जगामर्षिं वासिष्ठमिति नः श्रुतम्॥ २२ ॥
तस्माल्लेभे च सा पुत्रमश्मकं नाम भाविनी।
एवं कृतवती साऽपि भर्तुः प्रियचिकीर्षया॥ २३ ॥
अस्माकमपि ते जन्म विदितं कमलेक्षणे ।
कृष्णद्वैपायनाद्भीरु कुरूणां वंशवृद्धये ॥ २४ ॥
अत एतानि सर्वाणि कारणानि समीक्ष्य वै।
ममैतद्वचनं धर्म्यं कर्तुमर्हस्यनिंदिते ॥ २५ ॥
ऋतावृतौ राजपुत्रि स्त्रिया भर्ता पतिव्रते ।
नाऽतिवर्तव्य इत्येवं धर्मं धर्मविदो विदुः ॥ २६ ॥

गी, उसको घोर दुखदायी भ्रूणहत्याका पाप लगेगा। फिरभी इस भूमण्डलमें जो पुरुष कौमारावस्थासे ब्रह्मचारिणी, पतिव्रता प्यारी स्त्रीको तजकर परायी नारीसे मिलेगा उसकोभी वैसाही पाप लगेगा। जो स्त्री पुत्र पैदा करनेके लिये पतिसे न मिलकर उनकी बात नहीं मानेगी, उसकोभी वैसाही पाप पहुंचेगा। हे भीरु! उन उद्दालकके पुत्र श्वेत-केतुने बलपूर्वक धर्मके अनुसार यह मर्यादा ठहरायी थी। (१८—२१)

ऐ सुन्दरी! हमने सुना है, कि सौदास की स्त्री मदयन्ती पतिसे पुत्र पैदा करने में नियुक्त होकर महर्षि वसिष्ठके निकट गयी थी और उनसे अश्मक नामक पुत्र प्राप्त किया था। उस कामिनीने भर्ताका प्रिय कार्य करने हीके लिये ऐसा किया था। ऐ पद्मनेत्रे! तुम यहभी जानती हो, कि कुरुओंका वंश बढानेके लिये भगवान् कृष्णद्वैपायनसे हम लोगोंका जन्म हुआ। अतएव हे सुन्दरी! इन सब विषयों की भली भांति आलोचना करके मेरी इस धर्मानुसारी बातको मानना तुम्हे उचित है। (२२—२५)

हे पातिव्रते, राजपुत्रि! धर्म जाननेवाले पुरातन धर्मकी यह व्याख्या तो करते

शेषेष्वन्येषु कालेषु स्वातंत्र्यं स्त्री किलाऽर्हति ।
धर्ममेवं जनाः सन्तः पुराणं परिचक्षते ॥ २७ ॥
भर्ता भार्यां राजपुत्रि धर्म्यं वाऽधर्म्यमेव वा ।
यद् ब्रूयात्तत्तथा कार्यमिति वेद विदो विदुः ॥ २८ ॥
विशेषतः पुत्रगृद्धी हीनः प्रजननात्स्वयम् ।
यथाऽहमनवद्याङ्गि पुत्रदर्शनलालसः ॥ २९ ॥
तथा रक्तांगुलिनिभः पद्मपत्रनिभः शुभे ।
प्रसादार्थं मया तेऽयं शिरस्यभ्युद्यतोऽञ्जलिः ॥ ३० ॥
मन्नियोगात्सुकेशान्ते द्विजातेस्तपसाऽधिकात् ।
पुत्रान्गुणसमायुक्तानुत्पादयितुमर्हसि ।
त्वत्कृतेऽहं पृथुश्रोणि गच्छेयं पुत्रिणां गतिम् ॥ ३१ ॥

वैशम्पायन उवाच- एवमुक्ता ततः कुन्ती पाण्डुं परपुरञ्जयम् ।
प्रत्युवाच वरारोहा भर्तुः प्रियहिते रता ॥ ३२ ॥
पितृवेश्मन्यहं बाला नियुक्ताऽतिथिपूजने ।
उग्रं पर्यचरं तत्र ब्राह्मणं संशितव्रतम् ॥ ३३ ॥
निगूढनिश्चयं धर्मे यं तं दुर्वाससं विदुः ।

हैं, कि भार्या हर ऋतुमें पतिको छोड कर अन्यत्र न जाय, शेष अन्य समयमें वह स्वतन्त्र हो सकती हैं ; पर ऐ राजपुत्री! वेद जानने वाले यहभी कहते हैं, कि चाहे धर्म वा अधर्म होवे, पति भार्यासे जो कहे, भार्याको वह अवश्य मानना चाहिये। ऐ सुन्दरि ! विशेष मैं पैदा करनेकी शक्तिसे हाथ धो चुका हूं, पर पुत्र पानेकी इच्छाभी रखता हूं, सो हे शुभे ! मैं पुत्र देखनेकी इच्छासे तुमको प्रसन्न करनेके लिये लाल उंगलियोंसे सुशोभित इस पद्मपत्र समान हथेलीको सिर पर उठाता हूं। ऐ सुकेशिनी ! तुम मेरे नियोगके अनुसार अच्छी तपस्यायुक्त ब्राह्मणसे गुणवन्त पुत्र प्रसव करो । हे पृथुश्रोणि तुमसे मैं पुत्रवान जनोंकी गति लाभ करूं गा। (२६-३१)

श्रीवैशम्पायन जी बोले, कि पतिके प्रिय कार्य और हित चाहने वाली सुन्दरी कुन्ती, शत्रुपुर नाशनेहारे पति पाण्डुकी यह बात सुन कर बोली, कि बालपनमें मैं पिताके घरमें अतिथियों की सेवामें नियुक्त थी। उन दिनों प्रशंसित व्रतयुक्त ब्राह्मणोंकी भले प्रकार सेवा किया करती थी। एक समय धर्मके गूढ तत्त्व जाननेवाले दुर्वासा नामक प्रसिद्ध

तमहं संशितात्मानं सर्वयत्नैरतोषयम् ॥ ३४ ॥
स मेऽभिचारसंयुक्तमाचष्ट भगवान्वरम् ।
मन्त्रं त्विमं च मे प्रादादब्रवीचैव मामिदम् ॥ ३५ ॥
यं यं देवं त्वमेतेन मन्त्रेणाऽऽवाहयिष्यसि ।
अकामो वा सकामो वा वशं ते समुपैष्यति ॥ ३६ ॥
तस्य तस्य प्रसादात्ते राज्ञि पुत्रो भविष्यति ।
इत्युक्ताऽहं तदा तेन पितृवेश्मनि भारत ॥ ३७ ॥
ब्राह्मणस्य वचस्तथ्यं तस्य कालोऽयमागतः ।
अनुज्ञाता त्वया देवानाह्वयेयमहं नृप ॥ ३८ ॥
तेन मंत्रेण राजर्षे यथा स्यान्नौ प्रजा हिता ।
आवाहयामि कं देवं ब्रूहि सत्यवतां वर ॥ ३९ ॥
त्वत्तोऽनुज्ञाप्रतीक्षां मां विद्ध्यस्मिन्कर्मणि स्थिताम् ॥ ४० ॥

पाण्डुरुवाच—
अद्यैव त्वं वरारोहे प्रयतस्व यथाविधि ।
धर्ममावाहय शुभे स हि लोकेषु पुण्यभाक् ॥ ४१ ॥
अधर्मेण न नो धर्मः संयुज्येत कथंचन ।
लोकश्चाऽयं वरारोहे धर्मोऽयमिति मंस्यते ॥ ४२ ॥

जितेन्द्रिय महर्षि वहां आये । मैंने उनको सर्वप्रकारके प्रयत्नसे सन्तुष्ट किया। उन भगवानने मुझको अभिचारयुक्त वर देकर एक मंत्र दे दिया और कहा, कि तुम इस मन्त्रसे जिन जिन देवोंको बुलाओगी, वह चाहे काम रहे वा नहीं रहे, उसीक्षण तुम्हारे वशमें हो जायंगे। ऐ रानि! उन देवोंकी कृपासे तुम्हारे पुत्र होंगे। (३२—३७)

हे भारत ! पिताके घरमें उन दुर्वासा ने मुझसे ऐसा कहा था। हे भूपाल! ब्राह्मणकी बात झूटी नहीं होती । अब उसका समय आ पहुंचा है ; अतएव हे राजर्षि ! आपकी आज्ञा होवे, तो उस मन्त्रसे किसी देवताको बुला सकती हूं, इससे हमे हितकरने वाला पुत्र प्राप्त होगा। हे सत्यकहनेवाले ! कहिये, हालमें किस देवको बुलाऊं आपहीकी आज्ञासे मैं इस कार्यमें दत्तचित्त होती हूं। (३८-४०)

पाण्डु बोले, कि ऐ सुन्दरि तुम आजही इस बातका यथाविधि प्रयत्न करो। ऐ शुभे ! धर्म को बुलाओ, क्योंकि वह देवोंमें पुण्यात्मा हैं। ऐ सुन्दरि ! धर्म हमको किसी प्रकारसे अधर्ममें डाल नहीं सकेंगे और लोकभी समझेंगे, यह काम धर्मयुक्त ही हुआ है। इसमें सन्देह नहीं

धार्मिकश्च कुरूणां स भविष्यति न संशयः।
धर्मेण चाऽपि दत्तस्य नाऽधर्मे रंस्यते मनः ॥ ४३ ॥
तस्माद्धर्मं पुरस्कृत्य नियता त्वं शुचिस्मिते।
उपचाराभिचाराभ्यां धर्ममावाहयस्व वै ॥ ४४ ॥
वैशम्पायन उवाच- सा तथोक्ता तथेत्युक्त्वा तेन भर्त्रा वराङ्गना।
अभिवाद्याऽभ्यनुज्ञाता प्रदक्षिणमवर्तत ॥४५॥ [४८८०]

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यामादिपर्वणि संभवपर्वणि
कुंतिपुत्रोत्पत्त्यनुज्ञाने द्वाविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १२२ ॥

वैशम्पायन उवाच—संवत्सरधृते गर्भे गान्धार्या जनमेजय ।
आह्वयामास वै कुंती गर्भार्थं धर्ममच्युतम्॥ १ ॥
सा बलिं त्वरिता देवी धर्मायोपजहार ह ।
जजाप विधिवज्जप्यं दत्तं दुर्वाससा पुरा ॥ २ ॥
आजगाम ततो देवो धर्मो मंत्रबलात्ततः ।
विमाने सूर्यसङ्काशे कुंती यत्र जपास्थिता ॥ ३ ॥
विहस्य तां ततो ब्रूयाः कुन्ति किं ते ददाम्यहम्।
सा तं विहस्यमानाऽपि पुत्रं देह्यब्रवीदिदम् ॥ ४ ॥
संयुक्ता सा हि धर्मेण योगमुर्तिधरेण ह ।

है, कि धर्मका दिया हुआ वह पुत्र कुरुओं में धार्मिक होगा और उसका मन कभी अधर्मसे डसा नहीं जायगा; सो ऐ सुन्दरि! तुम संयत होकर और धर्मको आश्रयकर अभिचार तथा उपचारसे धर्म-हीको बुलाओ। श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि अनन्तर वह श्रेष्ठ नारी कुन्ती भर्ता-की वह बात सुन उसको मान, पांव छू करके उनकी आज्ञा मानली। (४१-४५)

आदिपर्वमें एकसौ बाईस अध्याय समाप्त। [४८८०]

आदिपर्वमें एकसौ तेईस अध्याय।

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि हे जन-मेजय! जब गान्धारीने वर्ष भर गर्भधारण किया था, तब कुन्तीने गर्भके निमित्त अक्षर धर्मको बुला करके शीघ्र उनकी पूजा की और पहिले दुर्वासाने जो मन्त्र दिया था, उसको यथाविधि जपने लगी। अनन्तर मन्त्रके प्रभाव से धर्मराज सूर्य सदृश यानमें आरूढ होकर उस स्थानमें, जहां कुन्ती जप कर रही थी, आन पहुंचे और हंसते हुए बोले, कि ऐ कुन्ति! कहो, तुमको क्या देना होगा। कुन्ती कुछ हंसकर बोली, कि मुझको पुत्र दीजिये। (१—४)

लेभे पुत्रं वरारोहा सर्वप्राणभृतां हितम् ॥ ५ ॥
ऐन्द्रे चन्द्रसमायुक्ते मुहूर्तेऽभिजितेऽष्टमे ।
दिवामध्यगते सूर्ये तिथौ पूर्णेऽतिपूजिते ॥ ६ ॥
समृद्धयशसं कुंती सुषाव प्रवरं सुतम् ।
जातमात्रे सुते तस्मिन्वागुवाचाऽशरीरिणी ॥ ७ ॥
एष धर्मभृतां श्रेष्ठो भविष्यति नरोत्तमः ।
विक्रान्तः सत्यवाक्चैव राजा पृथ्व्यां भविष्यति॥८॥
युधिष्ठिर इति ख्यातःपाण्डोः प्रथमजः सुतः।
भाविता प्रथितो राजा त्रिषु लोकेषु विश्रुतः॥ ९ ॥
यशसा तेजसा चैव व्रतेन च समन्वितः ।
धार्मिकं तं सुतं लब्ध्वा पाण्डुस्तां पुनरब्रवीत्॥ १० ॥
प्राहुः क्षत्रं बलज्येष्ठं बलज्येष्ठं सुतं वृणु ।
ततस्तथोक्ता भार्या तु वायुमेवाऽऽजुहाव सा॥ ११ ॥
ततस्तामागतो वायुर्मृगारूढो महाबलः ।
किं ते कुन्ति ददाम्यद्य ब्रूहि यत्ते हृदि स्थितम्१२॥
सा सलज्जा विहस्याऽऽह पुत्रं देहि सुरोत्तम ।

अनन्तर सुन्दरी कुन्तीने योगीका स्वरूप लिये हुए धर्मसे मिलकर सर्वजीवों का हित करनेवाला पुत्र प्राप्त किया। इसके पश्चात् कार्तिक महीनेकी अति प्रशंसित पूर्णा तिथि अर्थात् शुक्ला पञ्चमी की चन्द्रयुक्त ज्येष्ठा नक्षत्रमें अभिजित् नामक आठवे मुहूर्तमें दिन दोपहर के समय कुन्तीने अति यशवन्त एक श्रेष्ठ पुत्र प्रसव किया। उस पुत्रके जन्म लेते ही आकाशवाणी हुई, कि पाण्डुका यह पहिला पुत्र धर्मशील जनोंमें श्रेष्ठ,विक्रमी नरोंमें उत्तम सत्य कहनेवाला,भूमण्डलका एकही अधिकारी,तीनों लोकोंमें प्रशंसित यशवन्त,तेजवन्त व्रतशील और युधिष्ठिर नामसे प्रसिद्ध होगा। (५—१०)

पाण्डु वह धार्मिक पुत्र पाकर फिर कुन्तीसे बोले कि पण्डित लोग क्षत्रिय को बलमें श्रेष्ठ कहते हैं, सो तुम एक बलमें प्रधान हो ऐसे पुत्रकी प्रार्थना करो। अनन्तर कुन्तीने पति की यह बात सुनकर पवनदेवको बुलाया। आगे महाबली पवनदेव मृग पर चढके उसके पास आये और बोले, कि ऐ कुन्ति तुम्हे क्या दूं ? तुम्हारे हृदयमें जो इच्छा हो, सो कहो। कुन्ती लज्जासे मुह नीचा-कर कुछ हंस कर बोली, कि हे देवोत्तम!

बलवन्तं महाकायं सर्वदर्पप्रभञ्जनम् ॥ १३ ॥
तस्माज्जज्ञे महाबाहुर्भीमो भीमपराक्रमः ।
तमप्यतिबलं जातं वागुवाचाऽशरीरिणी ॥ १४ ॥
सर्वेषां बलिनां श्रेष्ठो जातोऽयमिति भारत।
इदमत्यद्भुतं चाऽऽसीज्जातमात्रे वृकोदरे ॥ १५ ॥
यदङ्कात्पतितो मातुः शिलां गात्रैरचूर्णयत्।
कुन्ती व्याघ्रभयोद्विग्ना सहसोत्पतिता किल॥ १६ ॥
नाऽन्वबुध्यत संसुप्तमुत्सङ्गे स्वे वृकोदरम् ।
ततः स वज्रसंघातः कुमारो न्यपतद्गिरौ ॥ १७ ॥
पतता तेन शतधा शिला गात्रैर्विचूर्णिता ।
तां शिलां चूर्णितां दृष्ट्वा पाण्डुर्विस्मयमागतः॥ १८॥
यस्मिन्नहनि भीमस्तु जज्ञे भरतसत्तम ।
दुर्योधनोऽपि तत्रैव प्रजज्ञे वसुधाधिप ॥ १९ ॥
जाते वृकोदरे पाण्डुरिदं भूयोऽन्वचिन्तयत्।
कथं नु मे वरः पुत्रो लोकश्रेष्ठो भवेदिति॥ २० ॥
दैवे पुरुषकारे च लोकोऽयं संप्रतिष्ठितः ।
तत्र दैवं तु विधिना कालयुक्तेन लभ्यते ॥ २१ ॥

मुझको बडे शरीरधारी महाबली, सर्व अहङ्कारको हरनेहारा एक पुत्र दीजिये। अनन्तर पवनदेवसे महाभुज भीमपराक्रमी भीमका जन्म हुआ। हे भारत! उस महाबली पुत्रके जन्म लेतेही आकाश वाणी हुई, कि "यह जन्म लिया हुआ बालक सम्पूर्ण बलियोंमें श्रेष्ठ होगा।" (१०—१५)

वृकोदर के जन्म लेतेही यह एक आश्चर्य घटना हुई, कि उसने माताकी गोदसे गिरकर देहसे पत्थर तोड डाला। कुन्ती बाघके भयसे भय खाकर एकायक गिर पडी; यह समझ नहीं सकी, कि उसकी गोदमें वृकोदर सोता था, सो वह वज्र समान शरीरधारी कुमार पहाड पर गिर पडा, उसकी देहकी चोटसे पत्थर सैकडों भागोंमें चूर होगया। उस आश्चर्य लीलाको देखकर पाण्डुने अचरज माना। हे भरतश्रेष्ठ! जिस दिन भीमने जन्म लिया, उसी दिन पृथ्वीनाथ दुर्योधनका जन्म हुआ। (१५-१९)

वृकोदरका जन्म होनेपर पाण्डु फिर सोचने लगे, कि क्योंकर मेरे एक प्रधान

इन्द्रो हि राजा देवानां प्रधान इति नः श्रुतम् ।
अप्रमेयबलोत्साहो वीर्यवानमितद्युतिः ॥ २२ ॥
तं तोषयित्वा तपसा पुत्रं लप्स्ये महाबलम् ।
यं दास्यति स मे पुत्रं स वरीयान्भविष्यति ॥ २३ ॥
अमानुषान्मानुषांश्च संग्रामे स हनिष्यति ।
कर्मणा मनसा वाचा तस्मात्तप्स्ये महत्तपः ॥ २४ ॥
ततः पाण्डुर्महाराजो मन्त्रयित्वा महर्षिभिः।
दिदेश कुन्त्याः कौरव्यो व्रतं संवत्सरं शुभम् ॥२५॥
आत्मना च महाबाहुरेकपादस्थितोऽभवत् ।
उग्रं स तप आस्थाय परमेण समाधिना ॥ २६ ॥
आरिराधयिषुर्देवं त्रिदशानां तमीश्वरम् ।
सूर्येण सह धर्मात्मा पर्यतप्यत भारत ॥ २७ ॥
तं तु कालेन महता वासवः प्रत्यपद्यत ।
शक्र उवाच— पुत्रं तव प्रदास्यामि त्रिषु लोकेषु विश्रुतम् ॥ २८ ॥
ब्राह्मणानां गवां चैव सुहृदां चाऽर्थसाधकम् ।
दुर्हृदां शोकजननं सर्वबान्धवनन्दनम् ॥ २९ ॥

लोकश्रेष्ठ पुत्र पैदा होगा। यह भूमण्डल दैव और पुरुषकारसे पूरा प्रतिष्ठित है; उनमेंसे दैव कालके अनुसार विधि वश प्राप्त होता है । सुनता हूं, कि इन्द्र देवोंके राजा तथा प्रधान हैं; वह अपरिमित बल और उत्साहयुक्त हैं, और उनका वीर्य तथा प्रकाश भी अपरिमित है। तपस्यासे उनको प्रसन्न कर सकूं, तो महाबली पुत्र पा सकूंगा; वह मुझको जो पुत्र देंगे, वह अवश्यही सबोंसे श्रेष्ठ होगा और रणस्थलमें मर्त्य लोक तथा अमर्त्यलोक वालोंको हरा सकेगा, सो मैं कर्म, मन और वाक्यसे कठोर तप करूंगा । (२०—२४)

अनन्तर कौरवनन्दन महाराज पाण्डुने, महर्षियोंसे परामर्श कर कुन्तीको यह आज्ञा दी, कि वर्षभरमें पूर्ण होने, ऐसा कोई शुभ व्रतकरो और आपभी उस स्वर्गनाथकी उपासनाकी इच्छासे परम समाधिसे कठोर तपस्याको आश्रयकर एक पांवसे खडे हो सूर्यकी धूपमें उदयके कालसे अस्तकालतक तपने लगे । बहुतकाल बीतने पर देवराज उनके पास आपहुंचे और बोले, कि " मैं तुमको तीनों लोकोंमें प्रसिद्ध एक श्रेष्ठ पुत्र दूंगा; वह पुत्र गौ ब्राह्मण और मित्रोंका

सुतं तेऽग्र्यं प्रदास्यामि सर्वामित्रविनाशनम्।
इत्युक्तः कौरवो राजा वासवेन महात्मना ॥ ३० ॥
उवाच कुन्तीं धर्मात्मा देवराजवचः स्मरन् ।
उदर्कस्तव कल्याणि तुष्टो देवगणेश्वरः ॥ ३१ ॥
दातुमिच्छति ते पुत्रं यथा संकल्पितं त्वया ।
अतिमानुषकर्माणं यशस्विनमरिन्दमम् ॥ ३२ ॥
नीतिमन्तं महात्मानमादित्यसमतेजसम् ।
दुराधर्षं क्रियावन्तमतीवाऽद्भुतदर्शनम् ॥ ३३ ॥
पुत्रं जनय सुश्रोणि धाम क्षत्रियतेजसाम् ।
लब्धः प्रसादो देवेन्द्रात्तमाह्वय शुचिस्मिते ॥ ३४ ॥
वैशम्पायन उवाच –एवमुक्ता ततः शक्रमाजुहाव यशस्विनी ।
अथाऽऽजगाम देवेन्द्रो जनयामास चाऽर्जुनम्॥३५ ॥
जातमात्रे कुमारे तु वागुवाचाऽशरीरिणी ।
महागम्भीरनिर्घोषा नभो नादयती तदा ॥ ३६ ॥
शृण्वतां सर्वभूतानां तेषां चाऽऽश्रमवासिनाम्।
कुन्तीमाभाष्य विस्पष्टमुवाचेदं शुचिस्मिताम् ३७

हित करनेवाला, अमित्रोंको शोक पहुंचानेहारा, सब बान्धवोंका आनन्ददायी और सम्पूर्ण शत्रुकुलका नाश करनेवाला होगा। (२५—३०)

महात्मा इंद्रके यह बात कहनेपर, धर्मात्मा कौरव देवराज की उस बातको स्मरण कर कुन्तीसे बोले, कि ऐ कल्याणि! तुम्हारा कर्म सफल हुआ है। देवनाथ प्रसन्न होकर तुम्हें सङ्कल्पित पुत्रको देना चाहते हैं। ऐ सुन्दरी! अब एक और यशस्वी शत्रु दंसनेहारा, नीतियुक्त, महात्मा, सूर्य समान तेजपूर्ण, न हारनेवाला, क्रियावान्, देखनेमें अद्भुत, क्षत्रियतेजसे पूरित ऐसे कीर्त्तियुक्त जैसा मनुष्यों में दीख नहीं पडता, पुत्र उत्पन्न करो। ऐ सुन्दरी! मैंने देवराजको प्रसन्न कर लिया है, तुम उनको बुलाओ। (३०-३४)

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि यशस्विनी कुन्ती ने यह सुनकर इन्द्रको बुलाया। अनन्तर देवराजने आकर अर्जुनको जन्म दिया। कुमारके जन्म लेते ही बडे गंभीर शब्दसे आकाश गूंजकर आकाशवाणी हुई। उससे सम्पूर्ण आश्रम में रहनेवाले प्राणियोंके कानोंमें सुन्दरी कुन्तीकी पुकार सहित यह सुन पडा, कि ऐ कुन्ति! कार्त्तवीर्य सदृश वीर्यवान्,

कार्तवीर्यसमः कुन्ति शिवतुल्यपराक्रमः ।
एष शक्र इवाऽजय्यो यशस्ते प्रथयिष्यति ॥ ३८ ॥
अदित्या विष्णुना प्रीतिर्यथाऽभूदभिवर्धिता ।
तथा विष्णुसमः प्रीतिं वर्धयिष्यति तेऽर्जुनः ॥ ३९ ॥
एष मद्रान्वशे कृत्वा कुरूंश्च सह सोमकैः ।
चेदिकाशिकरूषांश्च कुरुलक्ष्मीं वहिष्यति ॥ ४० ॥
एतस्य भुजवीर्येण खाण्डवे हव्यवाहनः ।
मेदसा सर्वभूतानां तृप्तिं यास्यति वै पराम् ॥ ४१ ॥
ग्रामणीश्च महीपालानेष जित्वा महाबलः ।
भ्रातृभिः सहितो वीरस्त्रीन्मेधानाहरिष्यति ॥ ४२ ॥
जामदग्न्यसमः कुन्ति विष्णुतुल्यपराक्रमः ।
एष वीर्यवतां श्रेष्ठो भविष्यति महायशाः ॥ ४३ ॥
एष युद्धे महादेवं तोषयिष्यति शङ्करम् ।
अस्त्रं पाशुपतं नाम तस्मात्तुष्टादवाप्स्यति ॥ ४४ ॥
निवातकवचा नाम दैत्या विबुधविद्विषः ।
शक्राज्ञया महाबाहुस्तान्वधिष्यति ते सुतः ॥ ४५ ॥
तथा दिव्यानि चाऽस्त्राणि निखिलेनाऽऽहरिष्यति ।
विप्रनष्टां श्रियं चाऽयमाहर्ता पुरुषर्षभः ॥ ४६ ॥

शिबि समान पराक्रमी, इन्द्रवत् अजीत यह कुमार सर्वत्र तुम्हारा यश फैलावेगा। उपेन्द्रसे जिस प्रकार अदितिकी प्रीति बढी थी, वैसेही उपेन्द्रवत् यह पुत्र तुम्हारी प्रीति और भी बढावेगा। यह कुमार मद्र, कुरु, सोमक, चेदि, काशी, करुष आदि देशोंको वशमें लाकर कौरव वंशकी राजलक्ष्मी धारण करेगा। और इस पुत्रके भुजवीर्यसे अग्निदेव खाण्डवप्रस्थमें सर्वभूतोंके मेदसे बडा सन्तोष प्राप्त करेंगे। (३५–४१)

यह महाबली वीर पुरुष भाइयोंके सहित सम्पूर्ण महीपालोंको जीतकर तीन बार अश्वमेध यज्ञ करेगा। हे कुन्ति! यह अतियशवन्त पुत्र जामदग्न्य और विष्णु समान पराक्रमी और वीर्यवान् जनोंमें श्रेष्ठ होगा। यह युद्धमें महादेव शंकरको प्रसन्न कर उनसे पाशुपत अस्त्र प्राप्त करेगा और देवराजकी आज्ञासे देवोंके द्वेष करनेवाले निवातकवच नामक दैत्योंको वध करेगा। यह पुरुषों में श्रेष्ठ जन, सम्पूर्ण दिव्यास्त्र सीख कर बिगडी हुई राजलक्ष्मी को फिर सुधारेगा। (४२-४६)

एतामत्यद्भुतां वाचं कुन्ती शुश्राव सूतके ।
वाचमुच्चरितामुच्चैस्तां निशम्य तपस्विनाम् ॥ ४७ ॥
बभूव परमो हर्षः शतशृङ्गनिवासिनाम् ।
तथा देवनिकायानां सेन्द्राणां च दिवौकसाम् ॥४८॥
आकाशे दुन्दुभीनां च बभूव तुमुलस्वनः ।
उदतिष्ठन्महाघोषः पुष्पवृष्टिभिरावृतः ॥ ४९ ॥
समवेत्य च देवानां गणाः पार्थमपूजयन् ।
काद्रवेया वैनतेया गन्धर्वाप्सरसस्तथा ॥
प्रजानां पतयः सर्वे सप्त चैव महर्षयः ॥ ५० ॥
भरद्वाजः कश्यपो गौतमश्च विश्वामित्रो जमदग्निर्वसिष्ठः।
यश्चोदितो भास्करेऽभूत्प्रनष्टे सोऽप्यत्राऽत्रिर्भगवानाजगाम ॥ ५१ ॥
मरीचिरङ्गिराश्चैव पुलस्त्यः पुलहः क्रतुः ।
दक्षः प्रजापतिश्चैव गन्धर्वाप्सरसस्तथा ॥ ५२ ॥
दिव्यमाल्याम्बरधराः सर्वालङ्कारभूषिताः ।
उपगायन्ति बीभत्सुं नृत्यन्त्यप्सरसां गणाः ॥५३ ॥
तथा महर्षयश्चाऽपि जेपुस्तत्र समन्ततः ।
गन्धर्वैः सहितः श्रीमान्प्रागायत च तुम्बुरुः ॥ ५४ ॥

कुन्तीने पुत्रके विषयमें यह आश्चर्य वाणी सुनी। बडे वेगसे उच्चारी हुई उस वाणीको सुनकर शतशृङ्ग पर विराजते हुए, तपस्वियोंको बडा आनन्द हुआ और विमानपर आरूढ देवगण भी बडे प्रसन्न हुए। आकाशमें बडे घोर कोलाहलसे नगाडे बजने लगे, घोर शब्द होने लगा, विना रोक टोक फूल वर्षने लगे और सब देव मिलकर पार्थ की पूजा करने लगे। कद्रु और विनता के पुत्रगण, गन्धर्वगण, अप्सरागण और प्रजापतिगण, तथा भरद्वाज, कश्यप, गौतम, विश्वामित्र, जमदग्नि, वसिष्ठ और सूर्यके नष्टहोने पर जो उदित हुए थे, वह भगवान् अत्रि यह सात महर्षि वहां आये। (४७--५१)

मरीचि, अङ्गिरा, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु, प्रजापति दक्ष, गन्धर्व और अप्सरागण यह भी वहां आये। अप्सरावृन्द दिव्यमाला और दिव्यवस्त्र पहिनकर सर्व आभूषणोंसे बन ठन कर अर्जुनकी प्रशंसा के गीत गाने और नाचने लगीं। चारों ओर महर्षिलोग स्वस्त्ययनके मन्त्र जपने लगे; श्रीमान् तुम्बरुने गन्धर्वोंके साथ गीत आरंभ किया। हे नरेश! भीमसेन,

भीमसेनोग्रसेनौ च ऊर्णायुरनघस्तथा ।
गोपतिर्धृतराष्ट्रश्च सूर्यवर्चास्तथाऽष्टमः ॥ ५५ ॥
युगपस्तृणपः कार्ष्णिर्नन्दिश्चित्ररथस्तथा ।
त्रयोदशः शालिशिराः पर्जन्यश्च चतुर्दशः॥ ५६ ॥
कलिः पञ्चदशश्चैव नारदश्चाऽत्र षोडशः ।
ऋत्वा बृहत्वा बृहकः करालश्च महामनाः ॥ ५७ ॥
ब्रह्मचारी बहुगुणः सुवर्णश्चेति विश्रुतः ।
विश्वावसुर्भुमन्युश्च सुचन्द्रश्च शरुस्तथा ॥ ५८ ॥
गीतमाधुर्यसंपन्नौ विख्यातौ च हाहा हुहूः ।
इत्येते देवगन्धर्वा जगुस्तत्र नराधिप ॥५९ ॥
तथैवाऽप्सरसो हृष्टाः सर्वालङ्कारभूषिताः ।
ननृतुर्वै महाभागा जगुश्चाऽऽयतलोचनाः ॥६० ॥
अनूचानाऽनवद्या च गुणमुख्या गुणावरा ।
अद्रिका च तथा सोमा मिश्रकेशी त्वलम्बुषा॥६१॥
मरीचिः शुचिका चैव विद्युत्पर्णा तिलोत्तमा।
अम्बिका लक्षणा क्षेमा देवी रम्भा मनोरमा॥ ६२ ॥
असिता च सुबाहुश्च सुप्रिया च वपुस्तथा ।
पुण्डरीका सुगन्धा च सुरसा च प्रमाथिनी॥ ६३॥
काम्या शारद्वती चैव ननृतुस्तत्र सङ्घशः ।
मेनका सहजन्या च कार्णिका पुञ्जिकस्थला ॥ ६४॥

उग्रसेन, ऊर्णायु, अनघ, गोपति, धृतराष्ट्र, सूर्यवर्चा, युगप, तृणप, कार्ष्णी, नन्दि, चित्ररथ, शालिशिरा, पर्जन्य, कलि, नारद, ऋत्वा, बृहत्वा, बृहक, कराल, महामना, ब्रह्मचारी, बहुगण, विख्यात सुवर्ण, विश्वावसु, सुमन्यु, सुचन्द्र, शरु और ललित गीत गाने वाले प्रख्यात हाहा और हूहू यह देव और गन्धर्व गीत गाने लगे। (५२-५९)

प्रशस्तलोचना, महाभागा अप्सरायें सर्व आभूषणोंसे सज धजकर प्रसन्न चित्त से नाचने और गाने लगीं। अनूचाना, अनवद्या, गुणमुख्या, गुणावरा, अद्रिका, सोमा, मिश्रकेशी, अलम्बुषा, मरीचि, शुचिका, विद्युत्पर्णा, तिलोत्तमा, अम्बिका, लक्षणा, क्षेमा, देवी रंभा, मनोरमा, असिता, सुबाहु, सुप्रिया, वपु, पुण्डरीका सुगन्धा, सुरसा, प्रमाथिनी, काम्या

ऋतुस्थला घृताची च विश्वाची पूर्वचित्त्यपि।
उम्लोचेति च विख्याता प्रम्लोचेति च ता दश॥६५॥
उर्वश्येकादशी तासां जगुश्चाऽऽयतलोचनाः॥ ६६ ॥
धाताऽर्यमा च मित्रश्च वरुणोंऽशो भगस्तथा।
इन्द्रो विवस्वान्पूषा च त्वष्टा च सविता तथा ॥६७॥
पर्जन्यश्चैव विष्णुश्च आदित्या द्वादश स्मृताः।
महिमानं पाण्डवस्य वर्धयन्तोऽम्बरे स्थिताः॥ ६८॥
मृगव्याधश्च सर्पश्च निर्ऋतिश्च महायशाः ।
अजैकपादहिर्बुध्न्यः पिनाकी च परन्तप ॥ ६९ ॥
दहनोऽथेश्वरश्चैव कपाली च विशाम्पते ।
स्थाणुर्भगश्च भगवान्रुद्रास्तत्राऽवतास्थिरे ॥ ७० ॥
अश्विनौ वसवश्चाऽष्टौ मरुतश्च महाबलाः ।
विश्वेदेवास्तथा साध्यास्तत्राऽऽसन्परिसंस्थिताः७१।
कर्कोटकोऽथ सर्पश्च वासुकिश्च भुजङ्गमः ।
कच्छपश्चाऽथ कुण्डश्च तक्षकश्च महोरगः ॥ ७२ ॥
आययुस्तपसा युक्ता महाक्रोधा महाबलाः।
एते चाऽन्ये च बहवस्तत्र नागा व्यवस्थिताः॥ ७३ ॥

और शरद्वती यह सब अप्सरायें जुट बांध नाचने लगीं। (६०—६४)

और मेनका, सहजन्या, कर्णिका, पुंजिकस्थला, ऋतुस्थला, घृताची, विश्वाची, पूर्वचित्ती, उम्लोचा, प्रम्लोचा, उर्वशी, और विशालनेत्रा यह ग्यारह स्वर्गकी वेश्या एकत्र होकर गीत गाने लगीं । धाता, अर्यमा, मित्र, वरुण, अंश, भग, इन्द्र, विवस्वान्, पूषा, त्वष्टा, सविता और विष्णु यह बारह आदित्य और पर्जन्य तथा पावकगण आकाशमें विराजते हुए पाण्डुपुत्र की महिमा बढाने लगे। (६५—६८)

हे शत्रुनाशी पृथ्वीनाथ! मृग-व्याघ्र, सर्प; अति यशवन्त निर्ऋति, अजैकपात्, अहिर्बुध्न्य, पिनाकी, दहन, ईश्वर, कपाली, स्थाणु और भगवान् भग यह ग्यारह रुद्र वहां आये । दोनों अश्विनीकुमार आठों वसु, महाबली मरुद्गण, विश्वदेवगण और साध्यगण आनकर वहां विराजने लगे। कर्कोटक, वासुकी, कच्छप, कुण्ड और महोरग तक्षक, वह सब तपयुक्त बडे क्रोधी महाबली सर्प और दूसरे बहुत नाग वहां आपहुंचे। तार्क्ष्य,

ताक्ष्यश्चाऽरिष्टनेमिश्च गरुडश्चाऽसितध्वजः ।
अरुणश्चाऽऽरुणिश्चैव वैनतेया व्यवस्थिताः ॥ ७४ ॥
तांश्च देवगणान्सर्वांस्तपःसिद्धा महर्षयः ।
विमानगिर्यग्रगतान्ददृशुर्नेतरे जनाः ॥ ७५ ॥
तद् दृष्ट्वा महदाश्चर्यं विस्मिता मुनिसत्तमाः ।
अधिकां स्म ततो वृत्तिमवर्तन्पाण्डवान्प्रति ॥७६॥
पाण्डुस्तु पुनरेवैनां पुत्रलोभान्महायशाः ।
वक्तुमैच्छद्धर्मपत्नीं कुन्ती त्वेनमथाऽब्रवीत् ॥ ७७ ॥
नातश्चतुर्थं प्रसवमापत्स्वपि वदन्त्युत ।
अतः परं स्वैरिणी स्याद्बन्धकी पञ्चमे भवेत् ॥७८॥
स त्वं विद्वन्धर्ममिममधिगम्य कथं नु माम् ।
अपत्यार्थं समुत्क्रम्य प्रमादादिव भाषसे ॥ ७९ ॥ (४९५९)

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यामादिपर्वणि संभवपर्वणि पाण्डवोत्पत्तौ त्रयोविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १२३ ॥

वैशम्पायन उवाच—कुन्तीपुत्रेषु जातेषु धृतराष्ट्रात्मजेषु च ।
मद्रराजसुता पाण्डुं रहो वचनमब्रवीत् ॥ १ ॥
न मेऽस्ति त्वयि संतापो विगुणेऽपि परन्तप ।

अरिष्टनेमि, गरुड, असितध्वज, अरुण और आरुणि यह सब विनताके पुत्रभी वहां आ गये । (६९–७४)

विमानों पर चढे और पर्वत की चोटीपर टिके देवों को तपमें सिद्ध महर्षि लोग देखने लगे, किसी दूसरे ने नहीं देखा । मुनियोंने वह सब अति आश्चर्य लीला देखकर अचरज माना और भी श्रद्धा करने लगे, अति यशवन्त पाण्डुने पुत्रके लोभसे फिर धर्मपत्नी कुन्तीको नियोग करना चाहा । उसपर कुन्ती उनसे बोली, कि धर्म जाननेवाले लोग आपत्कालमें भी चौथे प्रसवकी प्रशंसा नहीं करते, क्योंकि चौथे पुरुषसे नारि स्वैरिणी होती है और पाचवें पुरुषसे मिलने से वेश्या होती है । हे विद्वन् ! आप यह धर्म जानने पर भी क्यों बावले के समान उसको नांघ कर फिर सन्तान के लिये मुझसे कहते हैं ? (७७—७९) [४९५९]

आदि पर्वमें एकसौ तेईस अध्याय समाप्त ।

आदिपर्वमें एकसौ चौवीस अध्याय ।

श्रीवैशम्पायनजी बोले कि अनन्तर कुन्ती और गान्धारीके पुत्रोंके पैदा होने पर माद्री निरालेमें पाण्डुसे बोली, कि हे

नाऽवरत्वे वराहायाः स्थित्वा चाऽनघ नित्यदा ॥ २ ॥
गान्धार्यांश्चैव नृपते जातं पुत्रशतं तथा ।
श्रुत्वा न मे तथा दुःखमभवत्कुरुनन्दन ॥ ३ ॥
इदं तु मे महद्दुःखं तुल्यतायामपुत्रता ।
दिष्ट्या त्विदानीं भर्तुर्मे कुन्त्यामप्यस्ति सन्ततिः ४॥
यदि त्वपत्यसन्तानं कुन्तिराजसुता मयि ।
कुर्यादनुग्रहो मे स्यात्तव चाऽपि हितं भवेत् ॥ ५ ॥
संरम्भो हि सपत्नीत्वाद्वक्तुं कुन्तिसुतां प्रति ।
यदि तु त्वं प्रसन्नो मे स्वयमेनां प्रचोदय ॥ ६ ॥

पाण्डुरुवाच— ममाऽप्येवं सदा माद्रि हृद्यर्थः परिवर्तते ।
न तु त्वां प्रसहे वक्तुमिष्टानिष्टविवक्षया ॥ ७ ॥
तव त्विदं मतं मत्वा प्रयतिष्याम्यतः परम् ।
मन्ये ध्रुवं मयोक्ता सा वचनं प्रतिपत्स्यते ॥ ८ ॥

वैशम्पायन उवाच—ततः कुन्तीं पुनः पाण्डुर्विविक्त इदमब्रवीत् ।
कुलस्य मम सन्तानं लोकस्य च कुरु प्रियम् ॥ ९ ॥

शत्रुनाशिन् ! आपके मुझपर कृपायुक्त न रहनेके कारण मुझे कोई विशेष दुःख नहीं है, हे अनघ! कुन्तीसे श्रेष्ठ होकर सदा अश्रेष्ठ मुझे बनी रहने परभी दुःख नहीं है, हे नरनाथ कुरुनन्दन! गान्धारीके सौ पुत्र भये सुनकरके भी मुझे कोई बडा क्लेश नहीं हुआ है, पर इसका मुझे बडा दुःख है, कि हम दोनों सौत समान हैं, पर तौभी मेरे सन्तान नहीं हुई, भाग्यवश कुन्तीसे आपके सन्तान हुई है, इस समय यदि कुन्तिराजपुत्री मेरे सन्तान होनेके उपाय कर दें, तो मुझपर बडी दया होवे और उससे आपकोभी हित हो सकता है। कुन्तिपुत्री मेरी सौत है, सो उससे स्वयं कहनेको अभिमान होता है, यदि आप मुझ पर प्रसन्न होवें, तो आपही उनको आज्ञा दीजिये। पाण्डु बोले, कि ऐ माद्रि ! इस विषयमें मैं सदा मनही मनमें आलोचना किया करता हूं, पर यह तुम्हारा इष्ट है, वा नहीं यही जानने की अपेक्षामें तुमसे कहनेका साहस नहीं हुआ था ; अब तुम्हारा मत जान लिया, सो उस विषयमें प्रयत्नभी करूंगा, जान पडता है, कि मेरे कहनेसे कुन्ती मान लेगी। (१—८)

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि अनन्तर पाण्डु फिर निरालेमें कुन्तीसे बोले, कि ऐ कल्याणि ! मेरी प्रीति के लिये लोकों

मम चाऽपिण्डनाशाय पूर्वेषामपि चाऽऽत्मनः।
मत्प्रियार्थं च कल्याणि कुरु कल्याणमुत्तमम्॥ १० ॥
यशसोऽर्थाय चैव त्वं कुरु कर्म सुदुष्करम्।
प्राप्याऽधिपत्यमिन्द्रेण यज्ञैरिष्टं यशोर्थिना ॥ ११ ॥
तथा मन्त्रविदो विप्रास्तपस्तप्त्वा सुदुष्करम्।
गुरूनभ्युपगच्छन्ति यशसोऽर्थाय भाविनि॥ १२ ॥
तथा राजर्षयः सर्वे ब्राह्मणाश्च तपोधनाः।
चक्रुरुच्चावचं कर्म यशसोऽर्थाय दुष्करम् ॥ १३ ॥
सा त्वं माद्रीं प्लवेनैव तारयैनामनिन्दिते।
अपत्यसंविभागेन परां कीर्तिमवाप्नुहि ॥ १४ ॥
एवमुक्त्वाऽब्रवीन्माद्रीं सकृच्चिन्तय दैवतम्।
तस्मात्ते भविताऽपत्यमनुरूपमसंशयम् ॥ १५ ॥
ततो माद्री विचार्यैव जगाम मनसाऽश्विनौ।
तावागम्य सुतौ तस्यां जनयामासतुर्यमौ॥ १६ ॥
नकुलं सहदेवं च रूपेणाऽप्रतिमौ भुवि।
तथैव तावपि यमौ वागुवाचाऽशरीरिणी ॥ १७ ॥
सत्त्वरूपगुणोपेतौ भवतोऽत्यश्विनाविति।

के प्रिय कल्याणयुक्त ऐसा काम करो, कि जिससे मेरा वंश न उखडे और मेरे, पितरोंके और तुम्हारेभी पिण्डलोप होने की संभावना न रहे। ऐ भामिनि ! तुम यशके लिये इस कठिन कार्यमें हाथ डालो देखो, देवोंके अधिकारी होने परभी केवल यशके लिये देवराजने यज्ञ किया था। मन्त्रजाननेवाले ब्राह्मणलोग यज्ञहीके लिये कठोर तप कर कर गुरुकी उपासना किया करते हैं और राजर्षि तथा तपोधन ब्राह्मण लोगोंने केवल यशहीके लिये नाना कठिन कर्म किये हैं, अतएव ऐ निन्दा वर्जित प्यारी ! तुम सन्तानरूप बेडेसे माद्रीका उद्धार करो। उसको पुत्रवती कर परम कीर्ति लो। (९-१४)

कुन्ती यह सुनकर माद्रीसे बोली, कि तुम एकबार किसी देव का स्मरण करो, इसमें सन्देह नहीं, कि उनसे तुम्हारे उनके सदृश पुत्र होगा। माद्रीने मनही मनमें विचार कर दोनों अश्विनी कुमारोंको स्मरण किया। दोनों अश्विनी कुमारोंने वहां आकर नकुल और सहदेव नामक अनुपम रूपवान् दो यमज पुत्रोंको जन्म दिया। तब आकाशवाणी हुई, कि

भासतस्तेजसाऽत्यर्थं रूपद्रविणसम्पदा ॥१८॥
नामानि चक्रिरे तेषां शतशृङ्गनिवासिनः ।
भक्त्या च कर्मणा चैव तथाऽऽशीर्भिर्विशाम्पते१९॥
ज्येष्ठं युधिष्ठिरेत्येवं भीमसेनेति मध्यमम् ।
अर्जुनेति तृतीयं च कुन्तीपुत्रानकल्पयन् ॥२०॥
पूर्वजं नकुलेत्येवं सहदेवेति चाऽपरम् ।
माद्रीपुत्रावकथयंस्ते विप्राः प्रीतमानसाः ॥२१॥
अनुसंवत्सरं जाता अपि ते कुरुसत्तमाः ।
पाण्डुपुत्रा व्यराजन्त पञ्चसंवत्सरा इव ॥२२॥
महासत्त्वा महावीर्या महाबलपराक्रमाः ।
पाण्डुर्दृष्ट्वा सुतांस्तांस्तु देवरूपान्महौजसः ॥२३॥
मुदं परमिकां लेभे ननन्द च नराधिपः ।
ऋषीणामपि सर्वेषां शतशृङ्गनिवासिनाम् ॥२४॥
प्रिया बभूवुस्तासां च तथैव मुनियोषिताम् ।
कुन्तीमथ पुनः पाण्डुर्माद्र्यर्थे समचोदयत् ॥२५॥
तमुवाच पृथा राजन्रहस्युक्ता तदा सती ।

"सत्यरूपी गुणयुक्त यह दो कुमार रूपसंपदमें दोनों अश्विनीकुमारोंसेभी अधिक प्रकाशित हुए हैं"।(१५-१८)

हे पृथ्वीनाथ ! अनन्तर शतशृंग पर रहनेवाले ब्राह्मणोंने कुमारोंके पुत्रोंमें आश्चर्य कर्म और भक्ति देखकर प्रसन्न चित्तसे अशीस देके नाम रख दिये । उन्होंने कुन्तीके पुत्रोंमें बडेका नाम युधिष्ठिर, मझलेका नाम भीमसेन, तीसरेका नाम अर्जुन और माद्रीके दो पुत्रोंमेंसे पहिले जन्म लिये हुए पुत्रका नाम नकुल और दूसरेका नाम सहदेव रखा । कुरु-वंशमें श्रेष्ठ पाण्डुपुत्रगण बालेपनमें महाबली, पराक्रमी, महासत्त्वयुक्त और बडे वीर्यवन्त हुए । उनकी आयु जब वर्ष भरकी हुई, तब वे पांच वर्ष की अवस्थावाले जान पडने लगे । (१९—२२)

नरनाथ पाण्डु उन पुत्रोंको देव समान और बडे तेजस्वी देखकर बडे आनन्दित हुए । पाण्डवगण शतशृङ्ग पर रहनेवाले मुनियोंके और उनकी स्त्रियोंकेभी प्यारे बने । अनन्तर पाण्डुने फिर निरालेमें माद्रीके लिये कुन्तीसे विनय की, तब कुन्तीने उत्तर दिया, कि मेरे एकबार कहने से माद्रीने दो पुत्र लाभ किया है, इससे मैं ठगी गयी हूं, सो अब उससे

उक्त्वा सकृद्द्वन्द्वमेषा लेभे तेनाऽस्मि वञ्चिता॥ २६ ॥
बिभेम्यस्याः परिभवात्कुस्त्रीणां गतिरीदृशी।
नाऽज्ञासिषमहं मूढा द्वन्द्वाह्वाने फलद्वयम् ॥ २७॥
तस्मान्नाऽहं नियोक्तव्या त्वयैषोऽस्तु वरो मम।
एवं पाण्डोः सुताः पञ्च देवदत्ता महाबलाः ॥ २८॥
संभूताः कीर्तिमन्तश्च कुरुवंशविवर्धनाः ।
शुभलक्षणसंपन्नाः सोमवत्प्रियदर्शनाः ॥ २९ ॥
सिंहदर्पा महेष्वासाः सिंहविक्रान्तगामिनः ।
सिंहग्रीवा मनुष्येन्द्रा ववृधुर्देवविक्रमाः ॥ ३० ॥
विवर्धमानास्ते तत्र पुण्ये हैमवते गिरौ ।
विस्मयं जनयामासुर्महर्षीणां समेयुषाम् ॥ ३१ ॥
ते च पञ्च शतं चैव कुरुवंशविवर्धनाः ।
सर्वे ववृधुरल्पेन कालेनाऽप्स्विव नीरजाः ॥ ३२ ॥ (४९९१)

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यामादिपर्वणि
पाण्डवोत्पत्तौ चतुर्विंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १२४ ॥

वैशम्पायन उवाच—दर्शनीयांस्ततः पुत्रान्पाण्डुः पञ्च महावने ।

हारनेका भय खाती हूं क्योंकि बुरी नारियोंका स्वभाव ऐसाही होता है । मैं मूर्ख हूं,पहिले नहीं जानती थी, कि एकही बार दो देवोंको बुलानेसे दो पुत्र पैदा होते हैं, सो आपसे यह वर मांगती हूं, कि आप इस विषयमें मुझे आज्ञा न कीजिये । (२३–२८)

महाराज ! इस प्रकारसे पाण्डुके देवों के दिये हुए महाबली कीर्त्तिशाली, कुरु-वंश बढानेवाले पांच पुत्र उत्पन्न हुए थे । वे मानवोंमें श्रेष्ठ पाण्डवलोग शुभलक्षण-युक्त, चन्द्रमाके समान देखनेमें प्रिय, बडे चापधारी, सिंह समान छातीवाले, सिंह-सत्वयुक्त, सिंहकीनाई आंखधारी, सिंहकी भांति सदृश विक्रमी, सिंहकी भांति गर्दन युक्त, सिंहके विक्रमसे पूरित स्थानमें जाने वाले और देवों के समान विक्रमयुक्त होकर दिन पर दिन बढने लगे। पवित्र हिमालयपर एकत्रित महर्षि लोगोंने उनको उस प्रकार बढते देखकर अचरज माना था। जिस प्रकार जलमें थोडे कालमें पद्मवन खिल उठता है, वैसे ही वे एक सौ पांच कौरव स्वल्प कालमें ही बढ उठे । (२८—३२) [४९९१]

आदि पर्वमें एकसौ चौवीस अध्याय समाप्त ।

तान्पश्यन्पर्वते रम्ये स्वबाहुबलमाश्रितः॥ १ ॥
सुपुष्पितवने काले कदाचिन्मधुमाधवे ।
भूतसंमोहने राजा सभार्यो व्यचरद्वनम्॥ २ ॥
पलाशैस्तिलकैश्चूतैश्चम्पकैः पारिभद्रकैः ।
अन्यैश्च बहुभिर्वृक्षैः फलपुष्पसमृद्धिभिः॥ ३ ॥
जलस्थानैश्च विविधैः पद्मिनीभिश्च शोभितम्।
पाण्डोर्वनं तत्संप्रेक्ष्य प्रजज्ञे हृदि मन्मथः॥ ४ ॥
प्रहृष्टमनसं तत्र विचरन्तं यथाऽमरम् ।
तं माद्र्यनुजगामैका वसनं बिभ्रती शुभम्॥ ५ ॥
समीक्ष्यमाणां स तु तां वयःस्थां तनुवाससम्।
तस्य कामः प्रववृते गहनेऽग्निरिवोद्गतः॥ ६ ॥
रहस्येकां तु तां दृष्ट्वा राजा राजीवलोचनाम् ।
शशाक न नियन्तुं तं कामं कामवशीकृतः॥ ७ ॥
तत एनां बलाद्राजा निजग्राह रहोगताम् ।

आदिपर्वमें एकसौ पचीस अध्याय।

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि अनंतर पाण्डु देखनेके योग्य उन पांच पुत्रोंको देखकर केवल अपने भुजबलके आश्रयसे उस पहाडपर भारी वनमें सुखसे कालकाटने लगे। एक समय प्राणियोंके मोहनेवाले वसंतके आने पर नाना फूलोंसे सजे सजाये वनमें राजा पाण्डु स्त्रीके साथ घूमने लगे। देखा, कि चारों ओर गूंजनेवाले भंवरोंमें ढपे हुए पलाश, तिल, आंम, चम्पा, पारिभद्रक, कर्णिकार, केशर, अतिमुक्त, अशोक, कुरुवक, खिले मान्दार वन और दूसरे पौधे नाना फल फूलोंसे सजे हैं; कोयल हर घडी कुलहलाय रही है; मधुमक्खी भनभनाती हुई, गीत गारही हैं; और नाना स्थानोंके ताल खिले पद्मवनोंसे सुशोभित हुए हैं। १—४

चित्तको मत्त करनेवाले उन वनोंको देखते हुए राजा पाण्डुके हृदयपर कामदेवका अधिकार प्रगट हुआ। अच्छा वस्त्र पहिरी हुई माद्री अकेली प्रफुल्लितचित्त और देवता समान घूमते हुए उन राजाके पीछे पीछे चलने लगी। तब पतला वस्त्र पहिरे हुई युवती माद्रीको देखकर राजाके हृदयमें इस प्रकार मदनकी आग सुलग उठी, कि जैसे वनमें आग बल उठती है। वह निरालेमें उस पद्मनेत्रा बालाको देखतेही एकबारही कामके वशमें होगये, किसी प्रकार कामको रोक नहीं सके। (५ —७)

वार्यमाणस्तया देव्या विस्फुरन्त्या यथाबलम्॥ ८ ॥
स तु कामपरीतात्मा तं शापं नाऽन्वबुध्यत ।
माद्रीं मैथुनधर्मेण सोऽन्वगच्छद्बलादिव ॥ ९ ॥
जीवितान्ताय कौरव्य मन्मथस्य वशंगतः ।
शापजं भयमुत्सृज्य विधिना संप्रचोदितः ॥ १० ॥
तस्य कामात्मनो बुद्धिः साक्षात्कालेन मोहिता ।
संप्रमथ्येन्द्रियग्रामं प्रनष्टा सह चेतसा ॥ ११ ॥
स तया सह संगम्य भार्यया कुरुनन्दनः ।
पाण्डुः परमधर्मात्मा युयुजे कालधर्मणा ॥ १२ ॥
ततो माद्री समालिङ्ग्य राजानं गतचेतसम्।
मुमोच दुःखजं शब्दं पुनः पुनरतीव हि ॥ १३ ॥
सह पुत्रैस्ततः कुन्ती माद्रीपुत्रौ च पाण्डवौ ।
आजग्मुः सहितास्तत्र यत्र राजा तथागतः ॥ १४ ॥
ततो माद्र्यब्रवीद्राजन्नार्ता कुन्तीमिदं वचः ।
एकैव त्वमिहाऽऽगच्छ तिष्ठन्त्वत्रैव दारकाः ॥ १५ ॥
तच्छ्रुत्वा वचनं तस्यास्तत्रैवाऽऽधाय दारकान्।

सो असहाया धर्मपत्नीको बलसे पकड लिया । तब देवी माद्री अपने पूरे बल और शक्तिसे रोकने लगी, पर राजा तब कामसे एकवार ही बावले बने थे, सो प्राणनाशी पूर्व कथित शापके भयको उनके चित्तमन्दिरमें स्थान नहीं मिला । हे कौरव ! उस कालमें मदनकी आज्ञा से चलते हुए, पाण्डु विधिवश शापके भयको भूलकर मानो जीवन छोडनेही के लिये बलसे माद्रीको पकडकर मैथुनधर्मके पथिक बने । उस कामयुक्त पुरुषकी बुद्धि साक्षात कालसे मोहित हो कर इन्द्रियोंको मंथनकर चेतना सहित जाती रही थी, सो वह परम धार्मिक कुरु-नन्दन पाण्डु स्त्रीसे मिलकर कालके धर्ममें नियुक्त हुए । (८—१२)

अनन्तर माद्री चेतना रहित भूपालसे लिपटी रह करकेही बार बार दुःखसे चिल्लाकर गला फाडने लगी । आगे पुत्रोंके साथ कुन्ती और माद्रीके दोनों पुत्र उस शोकयुक्त शब्दको सुनकर एकत्र हो करके वहां जाने लगे, जहां राजाकी वह दशा हुई थी । हे महाराज ! तब माद्री कातर स्वरसे कुन्तीसे बोली, कि तुम अकेलीही यहां आओ, लडके वहीं रहें । कुन्ती यह सुनकर लडकों को

हताऽहमिति विक्रुश्य सहसैवाऽऽजगाम सा॥ १६॥
दृष्ट्वा पाण्डुं च माद्रीं च शयानौ धरणीतले।
कुन्ती शोकपरीताङ्गी विललाप सुदुःखिता॥ १७॥
रक्ष्यमाणो मया नित्यं वीरः सततमात्मवान्।
कथं त्वामत्यतिक्रान्तः शापं जानन्वनौकसः॥ १८॥
ननु नाम त्वया माद्रि रक्षितव्यो नराधिपः।
सा कथं लोभितवती विजने त्वं नराधिपम्॥ १९॥
कथं दीनस्य सततं त्वामासाद्य रहोगताम्।
तं विचिन्तयतः शापं प्रहर्षः समजायत॥ २०॥
धन्या त्वमसि बाह्लीकि मत्तो भाग्यतरा तथा।
दृष्टवत्यसि यद्वक्त्रं प्रहृष्टस्य महीपतेः॥ २१॥

माद्र्युवाच— विलपन्त्या मया देवि वार्यमाणेन चाऽसकृत्।
आत्मा न वारितोऽनेन सत्यं दिष्टं चिकीर्षुणा॥ २२॥

कुन्त्युवाच— अहं ज्येष्ठा धर्मपत्नी ज्येष्ठं धर्मफलं मम।
अवश्यंभाविनो भावान्मा मां माद्रि निवर्तय॥२३॥
अन्विष्यामीह भर्तारमहं प्रेतवशं गतम्।

वहीं छोडकर यह कहके रोती हुई कि "मैं मारी गयी" उसीक्षण वहां आ पहुंची। (१३–१६)

वह माद्रीके साथ पाण्डुको धरतीपर लेटे हुए देखकर शोकसे विह्वल हुई और अति दुःखसे विलपती हुई बोली, कि इस जितेन्द्रिय वीरको मैं सदा बचाती फिरती थी, इन्होंने ऋषिके शापसे ज्ञात रह करकेभी क्योंकर तुझपर आक्रमण किया? री माद्रि! इस भूपालको तुझे बचाना उचित था, वह न करके तूने क्यों इनको निरालेमें लुभाया? यह शापसे ग्रसित होनेके कालसे सदा दुःखी चित्तसे उस शापके सोचमें रहते थे, फिर निरालेमें तुझे पाकर क्योंकर इनके चित्तमें हर्ष आन खडा हुआ? री बाह्लीकि! तू मुझसे धन्य और भाग्यवती है, क्योंकि तूने कामयुक्त भूपालका प्रफुल्ल मुख देखा है! (१७—२१)

माद्री बोली, कि ऐ देवि! मैं विलपती हुई, बार बार रोकने लगी, पर राजा शाप हेतु दुर्भाग्यता सफल करनेहीके लिये अपनेको नहीं रोक सके। अनन्तर कुन्ती बोली, कि मैं बडी धर्मपत्नी हूं, प्रधान धर्मफल मुझकोही मिलता है, सो री माद्री! अवश्यमेव होनेवाले विषयसे

उत्तिष्ठ त्वं विसृज्यैनमिमान्पालय दारकान्॥ २४॥

माद्र्युवाच-- अहमेवाऽनुयास्यामि भर्तारमपलायिनम्।
न हि तृप्ताऽस्मि कामानां ज्येष्ठा मामनुमन्यताम्॥२५॥
मां चाऽभिगम्य क्षीणोऽयं कामाद्भरतसत्तमः।
तमुच्छिन्द्यामस्य कामं कथं नु यमसादने॥ २६॥
न चाऽप्यहं वर्तयन्ती निर्विशेषं सुतेषु ते।
वृत्तिमार्ये चरिष्यामि स्पृशेदेनस्तथा च माम्॥ २७॥
तस्मान्मे सुतयोः कुन्ति वर्तितव्यं स्वपुत्रवत्।
मां च कामयमानोऽयं राजा प्रेतवशं गतः॥ २८॥
राज्ञः शरीरेण सह ममाऽपीदं कलेवरम्।
दग्धव्यं सुप्रतिच्छन्नमेतदार्ये प्रियं कुरु॥ २९॥
दारकेष्वप्रमत्ता च भवेथाश्च हिता मम।
अतोऽन्यं न प्रपश्यामि संदेष्टव्यं हि किंचन॥ ३०॥

वैशम्पायन उवाच--इत्युक्त्वा तं चिताग्निस्थं धर्मपत्नी नरर्षभम्।
मद्रराजसुता तूर्णमन्वारोहद्यशस्विनी॥ ३१॥ (५०२२)

इति श्रीमहाभारते शत० वैयासिक्यामादिपर्वणि संभवपर्वणि पाण्डूपरमे पञ्चविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः॥ १२५॥

मुझे मत रोक ; मैं परलोकको सिधारे हुए पतिके साथ ही जाऊं; तू इनको छोड कर इन लडकोंको पालना। (२२-२४)

माद्री बोली, कि मैंने पतिको पकड रखा है भागने नहीं दिया है, मैंही इनके साथ जाऊंगी, क्योंकि मैं काम रससे भली प्रकार तृप्त नहीं हुई हूं ; तुम बडी हो सो मुझे आज्ञा दो। यह भरत कुलके प्रदीप मुझसे मिलकरकेही कामसे च्युत हुए हैं, सो मैं यमराज के घरमें क्योंकर इनके उस कामको उखाड डालूंगी? ऐ आर्ये! ऐसा जान नहीं पडता है, कि मैं जीती रहकर तुम्हारे पुत्रोंको अपने पुत्रोंकी भांति पाल सकूंगी, सो उस हेतु मुझको पापकी आंच लग सकती है; अतएव ऐ कुन्ति! तुम मेरे इन दोनों पुत्रोंसे अपने पुत्रकी भांति बर्त्ताव करना, यह राजा मेरीही कामना करके परलोक को सिधारे हैं, सो इनके शरीरसे मेरे इस शरीरको ढांपकर फूंकना। ऐ आर्ये! मेरे इस प्रिय कार्यके करनेमें असंमत मत होना। फिरभी तुम मेरे हित चाहनेवाली होकर लडकों पर ध्यान रखना, इसके अतिरिक्त मैं नहीं समझती हूं, कि मुझे और कुछ कहनेको है। (२५-३०)

वैशम्पायनजी बोले, धर्मपत्नी यशयुक्ता

वैशम्पायन उवाच—पाण्डोरुपरमं दृष्ट्वा देवकल्पा महर्षयः ।
ततो मन्त्रविदः सर्वे मन्त्रयाञ्चक्रिरे मिथः ॥ १ ॥

तापसा ऊचुः-- हित्वा राज्यं च राष्ट्रं च स महात्मा महायशाः ।
अस्मिन्स्थाने तपस्तप्त्वा तापसाञ्शरणं गतः॥ २ ॥
स जातमात्रान्पुत्रांश्च दारांश्च भवतामिह ।
प्रदायोपनिधिं राजा पाण्डुः स्वर्गमितो गतः ॥ ३ ॥
तस्येमानात्मजान्देहं भार्यां च सुमहात्मनः ।
स्वराष्ट्रं गृह्य गच्छामो धर्म एष हि नःस्मृतः ॥ ४ ॥

वैशम्पायन उवाच- ते परस्परमामन्त्र्य देवकल्पा महर्षयः ।
पाण्डोः पुत्रान्पुरस्कृत्य नगरं नागसाह्वयम् ॥ ५ ॥
उदारमनसः सिद्धा गमने चक्रिरे मनः ।
भीष्माय पाण्डवान्दातुं धृतराष्ट्राय चैव हि॥ ६ ॥
तस्मिन्नेव क्षणे सर्वे तानादाय प्रतस्थिरे ।
पाण्डोर्दारांश्च पुत्रांश्च शरीरे ते च तापसाः॥ ७ ॥
सुखिनी सा पुरा भूत्वा सततं पुत्रवत्सला ।
प्रपन्ना दीर्घमध्वानं संक्षिप्तं तदमन्यत ॥ ८ ॥

मद्रराजकन्या यह कहकर बिना विलम्ब चिताकी आगमें स्थित पाण्डुके सङ्ग में गयी । (३१) [५०२२]

आदिपर्व में एकसौ पच्चीस अध्याय समाप्त।

आदि पर्वमें एकसौ छब्बीस अध्याय।

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि देवोंकी भांति युक्तिदाता महर्षि तपस्वीगण पाण्डु की मृत्युको देखकर आपसमें कहने लगे, कि अति यशस्वी महात्मा पाण्डुने राज्य को छोडके इन स्थानमें तप करते हुए तपस्वियोंकी शरण ली थी। वह स्त्री और बालकपुत्रोंको इस स्थानमें तुम्हारे पास निधिकी भांति रखकर यहींसे स्वर्ग को पधारे, सो चलो, हम उन महात्मा की स्त्री पुत्र और देहको लेकर उनके राज्यमें जांय, तभी हमारे धर्मकी रक्षा होगी। (१—४)

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि उदारचित्त सिद्ध और देवसदृश महर्षियोंने आपसमें ऐसी युक्तिकर भीष्म और धृतराष्ट्रके निकट सौंप देनेके लिये पाण्डवोंको आगे करके हास्तिनापुरको जाना चाहा। वे उसीक्षण पाण्डुकी स्त्री, पुत्र और दोनों मुर्दों को लेकर पधारे। पुत्र-प्रेमयुक्त कुन्तीने पहिले सदा सुखी रहने पर भी अब निज देशमें जानेके कौतूहलसे

सा त्वदीर्घेण कालेन संप्राप्ता कुरुजाङ्गलम्।
वर्धमानपुरद्वारमाससाद यशस्विनी ॥ ९ ॥
द्वारिणं तापसा ऊचू राजानं च प्रकाशय।
ते तु गत्वा क्षणेनैव सभायां विनिवेदिताः॥ १० ॥
तं चारणसहस्राणां मुनीनामागमं तदा।
श्रुत्वा नागपुरे नृणां विस्मयः समपद्यत ॥ ११ ॥
मुहूर्तोदित आदित्ये सर्वे बालपुरस्कृताः।
सदारास्तापसान्द्रष्टुं निर्ययुः पुरवासिनः ॥ १२ ॥
स्त्रीसङ्घाः क्षत्रसङ्घाश्च यानसंघसमास्थिताः।
ब्राह्मणैः सह निर्जग्मुर्ब्राह्मणानां च योषितः॥ १३ ॥
तथाऽविट्शूद्रसङ्घानां महान्व्यतिकरोऽभवत्।
न कश्चिदकरोदीर्ष्यामभवन्धर्मबुद्धयः ॥ १४ ॥
तथा भीष्मः शान्तनवः सोमदत्तोऽथ बाह्लिकः
प्रज्ञाचक्षुश्च राजर्षिः क्षत्ता च विदुरः स्वयम्॥ १५ ॥
सा च सत्यवती देवी कौसल्या च यशस्विनी।
राजदारैः परिवृता गान्धारी चापि निर्ययौ ॥ १६ ॥
धृतराष्ट्रस्य दायादा दुर्योधनपुरोगमाः।

उस दूर पथसे चलनेपर उसको स्वल्प जाना। उस यशस्विनीने स्वल्पकालके बीचहीमें कुरुजाङ्गलमें पहुंचकर नगरके प्रधान द्वारको प्राप्त किया। (५-९)

तब तपस्वीलोग द्वारवानोंसे बोले, कि राजासे हमारे आनेकी बात कहो। द्वारवानने उसीक्षण राजसभामें जाकर वह समाचार सुनाया। हस्तिनापुरमें सहस्रों गुह्यक और मुनियोंके आनेका समाचार सुन पुरवासी प्रजाओंने अचरज माना। अनन्तर सूर्य उगनेके क्षणभर पीछे पुरवासी लोग तपस्वियोंके दर्शनके निमित्त स्त्री पुत्रादिके साथ पहुंचने लगे। यानोंपर चढे स्त्री सहित क्षत्रियगण और ब्राह्मणों के साथ ब्राह्मणियां चलीं, वैश्य तथा शूद्रों कीभी बडी भीड लगी। उस समय किसीने किसी पर द्वेष प्रगट नहीं किया, सबोंकी बुद्धि धर्ममार्ग में बनी रही। (१०-१४)

शान्तनुपुत्र भीष्म, बाह्लीक, सोमदत्त, प्रज्ञानेत्र राजर्षि धृतराष्ट्र, विदुर, देवी सत्यवती, यशस्विनी काशीराजकन्या और राजराणियोंके साथ गान्धारीभी निकली। दुर्योधन आदि धृतराष्ट्रके सौ पुत्र भी नाना सुन्दर गहनोंसे सजकर

भूषिता भूषणैश्चित्रैः शतसङ्ख्या विनिर्ययुः॥ १७॥
तान्महर्षिगणान्दृष्ट्वा शिरोभिरभिवाद्य च ।
उपोपविविशुः सर्वे कौरव्याः सपुरोहिताः ॥ १८ ॥
तथैव शिरसा भूमावभिवाद्य प्रणम्य च ।
उपोपविविशुः सर्वे पौरजानपदा अपि ॥ १९ ॥
तमकूजमभिज्ञाय जनौघं सर्वशस्तदा ।
पूजयित्वा यथान्यायं पाद्येनाऽर्घ्येण च प्रभो ॥ २० ॥
भीष्मो राज्यं च राष्ट्रं च महर्षिभ्यो न्यवेदयत्॥ २१ ॥
तेषामथो वृद्धतमः प्रत्युत्थाय जटाजिनी ।
ऋषीणां मतमाज्ञाय महर्षिरिदमब्रवीत् ॥ २२ ॥
यः स कौरव्यदायादः पाण्डुर्नाम नराधिपः ।
कामभोगान्परित्यज्य शतशृङ्गमितो गतः ॥ २३ ॥
ब्रह्मचर्यव्रतस्थस्य तस्य दिव्येन हेतुना ।
साक्षाद्धर्मादयं पुत्रस्तत्र जातो युधिष्ठिरः ॥ २४ ॥
तथैनं बलिनां श्रेष्ठं तस्य राज्ञो महात्मनः ।
मातरिश्वा ददौ पुत्रं भीमं नाम महाबलम् ॥ २५ ॥
पुरुहूतादयं जज्ञे कुन्त्यामेव धनञ्जयः ।

आये। पुरोहितके साथ कौरवलोग उन सब महर्षियोंको देखकर सिर नायकर प्रणाम करके सामने आ बैठे। उस प्रकार नागरिक और ग्रामवासी सभी भूमिपर स्वागतकर सिर नाय करके प्रणाम पूर्वक उनके सामने जा बैठे (१५–१९)

हे प्रभो ! अनन्तर भीष्म चारों ओर सब लोगोंको चुप चाप देखकर पाद्य और अर्घ्यसे न्यायके अनुसार उन महर्षियोंकी पूजाकर राज्य और राजाका हाल कह सुनाया। इसके पश्चात् उनमें सबोंसे बूढे, जटा अजिन धरे हुए, एक महर्षि उठे और साथी ऋषियोंकी सम्मति लेकर यह बात बोले, कि कौरव–राज्यके अर्धांश पाण्डु नामक जो भूपाल कामके भोगको तजकर यहांसे शतशृङ्ग पर गये थे, उनके ब्रह्मचर्य व्रतके लेनेपर किसी दिव्य कारणसे उस शतशृङ्ग पर साक्षात् धर्मसे इस पुत्रका जन्म हुआ है, इनका नाम युधिष्ठिर है। (२०—२४)

फिरभी उस महात्मा राजाने पवनसे बलवानोंमें श्रेष्ठ, भीम नामक यह पुत्र प्राप्त किया है ! सत्य पराक्रमी इस बालकने देवराजसे कुन्तीके गर्भसे जन्म

यस्य कीर्तिर्महेष्वासान्सर्वानभिभविष्यति ॥ २६ ॥
यौ तु माद्री महेष्वासावसूत पुरुषोत्तमौ ।
आश्विभ्यां पुरुषव्याघ्राविमौ तावपि पश्यत ॥ २७ ॥
चरता धर्मनित्येन वनवासं यशस्विना ।
नष्टः पैतामहो वंशः पाण्डुना पुनरुद्धृतः ॥ २८ ॥
पुत्राणां जन्म वृद्धिं च वैदिकाध्ययनानि च ।
पश्यन्तः सततं पाण्डोः परां प्रीतिमवाप्स्यथ ॥ २९ ॥
वर्तमानः सतां वृत्ते पुत्रलाभमवाप्य च ।
पितृलोकं गतः पाण्डुरितः सप्तदशेऽहनि ॥ ३० ॥
तं चितागतमाज्ञाय वैश्वानरमुखे हुतम् ।
प्रविष्टा पावकं माद्री हित्वा जीवितमात्मनः ॥ ३१ ॥
सा गता सह तेनैव पतिलोकमनुव्रता ।
तस्यास्तस्य च यत्कार्यं क्रियतां तदनन्तरम् ॥ ३२ ॥
इमे तयोः शरीरे द्वे पुत्राश्चेमे तयोर्वराः ।
क्रियाभिरनुगृह्यन्तां सह मात्रा परन्तपाः ॥ ३३ ॥
प्रेतकार्ये निवृत्ते तु पितृमेधं महायशाः ।
लभतां सर्वधर्मज्ञः पाण्डुः कुरुकुलोद्वहः ॥ ३४ ॥

लिया है, इसकी कीर्त्ति संपूर्ण चाप धारियोंको पराजय करेगी। अन्य दोनों अश्विनी कुमारोंसे माद्रीने जो दो महा चापधारी पुरुष-श्रेष्ठोंको प्रसव किया है, उन पुरुषव्याघ्रोंकोभी यह देखो। यशस्वी पाण्डुने धार्मिक और वनचारी होकर के प्रायः नष्ट होनेवाले पितामह-वंशका फिर उद्धार किया है । तुम पाण्डुके पुत्रोंका जन्म, वृद्धि और वेद पठनकी भली प्रकार आलोचना करके सदा परम प्रीति प्राप्त करोगे। (२५—२९)

पाण्डु साधुओंकी पदवीमें चढकर और पुत्र प्राप्त कर आज सतरह दिन हुए पितृलोकको सिधारे हैं । पतिव्रता माद्री उनको चितापर स्थित और अग्निके मुखमें आहुति चढते देखकर उस अग्निमें प्रवेश करके अपना जीवन त्यागकर पतिके साथ पतिलोकमें गयी है। अब उनके परलोककी जो कुछ क्रिया करनी हो, करो! (३०—३२)

उनके यह दो शरीर और माताके साथ यह श्रेष्ठ पुत्रगण क्रियासे शुद्ध होवें। प्रेतक्रिया हो जानेपर अति यशस्वी सर्व-धर्म जाननेवाले कुरुवंशियोंमें श्रेष्ठ-

वैशम्पायन उवाच--एवमुक्त्वा कुरून्सर्वान्कुरूणामेव पश्यताम्।
क्षणेनाऽन्तर्हिताः सर्वे तापसा गुह्यकैः सह ॥ ३५ ॥
गन्धर्वनगराकारं तथैवाऽन्तर्हितं पुनः ।
ऋषिसिद्धगणान्दृष्ट्वा विस्मयं ते परं ययुः ॥ ३६ ॥ [५०५८]

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यामादिपर्वणि संभवपर्वणि
ऋषिसंवादे षड्विंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १२६ ॥

धृतराष्ट्र उवाच— पाण्डोर्विदुर सर्वाणि प्रेतकार्याणि कारय ।
राजवद्राजसिंहस्य माद्र्याश्चैव विशेषतः ॥ १ ॥
पशून्वासांसि रत्नानि धनानि विविधानि च।
पाण्डोः प्रयच्छ माद्र्याश्च येभ्यो यावच्च वाञ्छितम्॥२॥
यथा च कुन्ती सत्कारं कुर्यान्माद्र्यास्तथा कुरु ।
यथा न वायुर्नाऽऽदित्यः पश्येतां तां सुसंवृताम्॥ ३ ॥
न शोच्यः पाण्डुरनघः प्रशस्यः स नराधिपः ।
यस्य पञ्च सुता वीरा जाताः सुरसुतोपमाः ॥ ४ ॥

वैशम्पायन उवाच विदुरस्तं तथेत्युक्त्वा भीष्मेण सह भारत।

पुरुष पाण्डु पितृ-यज्ञको प्राप्त करें। श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि तपस्वीलोग यह कहकर उनके सामने ही गुह्यकोंके साथ क्षण भरमें अन्तर्हित हुए। उन ऋषि और सिद्धोंको गन्धर्वके नगरकी भांति अर्थात् भ्रमसे आकाशमें झुण्डादि युक्त जो नगर दीख पडता है, उसके समान उपस्थित होते और फिर अन्तर्हित होते देखकर सबोंने अचरज माना। (३३—३६) [५०५८]

आदि पर्वमें एकसौ छब्बीस अध्याय समाप्त।

आदिपर्वमें एकसौ सताईस अध्याय।

धृतराष्ट्र बोले, कि हे विदुर ! राज-विधिके अनुसार राजाओंमें सिंहरूपी पाण्डु और माद्री की सम्पूर्ण प्रेतक्रिया भले प्रकार निर्वाह करो। पाण्डु और माद्रीके नामसे पशु,वस्त्र, रत्न और नाना धन, जिनकी जितनी इच्छा हो, वह उनको दान कर दो। ऐसा करो, कि कुन्ती माद्रीका सत्कार करे और माद्रीको भले प्रकार ऐसे ताप ताप रखो, कि वह पवन और सूर्यसेभी न दीख पडे। निष्पाप पाण्डुकी दशा बुरी नहीं है, क्योंकि देवकुमार समान शूरतापूरित पांच पुत्र उत्पन्न हुए हैं। (१ –४)

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि हे भारत! विदुर उनको " जो आज्ञा हो " कह कर भीष्मके साथ परम पवित्र स्थानमें

पाण्डुं संस्कारयामास देशे परमपूजिते ॥ ५ ॥
ततस्तु नगरात्तूर्णमाज्यगन्धपुरस्कृताः ।
निर्हृताः पावका दीप्ताः पाण्डो राजन्पुरोहितैः॥ ६ ॥
अथैनमार्तवैः पुष्पैर्गन्धैश्च विविधैर्वरैः ।
शिबिकां तामलंकृत्य वाससाऽऽच्छाद्य सर्वशः ॥७॥
तां तथा शोभितां माल्यैर्वासोभिश्च महाधनैः ।
अमात्या ज्ञातयश्चैनं सुहृदश्चोपतस्थिरे ॥ ८ ॥
नृसिंहं नरयुक्तेन परमालंकृतेन तम् ।
अवहन्यानमुख्येन सह माद्र्या सुसंवृतम् ॥ ९ ॥
पाण्डुरेणाऽऽतपत्रेण चामरव्यजनेन च ।
सर्ववादित्रनादैश्च समलंचक्रिरे ततः ॥ १० ॥
रत्नानि चाऽप्युपादाय बहूनि शतशो नराः ।
प्रददुः काङ्क्षमाणेभ्यः पाण्डोस्तस्यौर्ध्वदेहिके ११॥
अथ च्छत्राणि शुभ्राणि चामराणि बृहन्ति च।
आजह्रुः कौरवस्याऽर्थे वासांसि रुचिराणि च॥ १२ ॥
याजकैः शुक्लवासोभिर्हूयमाना हुताशनाः ।
अगच्छन्नग्रतस्तस्य दीप्यमानाः स्वलंकृताः॥ १३ ॥
ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्याः शूद्राश्चैव सहस्रशः ।

पाण्डुके संस्कारमें प्रवृत्त हुए । राजपुरोहितलोग शीघ्रतापूर्वक राजपुरोंसे राजा पाण्डुके दाहने के लिये आज्यकी गन्धसे सुगन्धित प्रज्वालित अग्निको ले आये । अनन्तर मन्त्री, ज्ञाति और मित्रवर्ग वस्त्रस पाण्डुके शरीरको तोपकर और भांति भांतिके फूल , अच्छी गंधयुक्त पदार्थ मूल्यवान् वस्त्र और माला आदिसे पाल्कीमें सुशोभित कर उनके निकट जा पहुंचे । उसके पीछे उस सजे सजाये यानमें नरोंको जोत कर उसपर माद्रीसे लिपटे हुए भलीभांति ढंपे नरश्रेष्ठ पाण्डुको ले जाने लगे और शुक्ल छत्र धर कर चंवर हिला कर और अनेक बाजे बजा कर उनको बडी शोभा कर दी । (६—१०)

पाण्डुकी और्ध्वदेहिक क्रियाके लिये सैकडों मनुष्य बहुत रत्न लेकर मांगनेवालोंको बांटने लगे और पाण्डुके लिये शुक्ल छत्र बडा चंवर और मनोहर वस्त्र बटोरे । पुरोहित लोग शुक्लवस्त्र पहिन कर जलते हुए अलंकृत अग्निमें आहुति

रुदन्तः शोकसंतप्ता अनुजग्मुर्नराधिपम् ॥ १४ ॥
अयमस्मानपाहाय दुःखे चाऽऽधाय शाश्वते ।
कृत्वा चाऽस्माननाथांश्च क्व यास्यति नराधिपः॥१५॥
क्रोशन्तः पाण्डवाः सर्वे भीष्मो विदुर एव च ।
रमणीये वनोद्देशे गङ्गातीरे समे शुभे ॥ १६ ॥
न्यासयामासुरथ तां शिबिकां सत्यवादिनः ।
सभार्यस्य नृसिंहस्य पाण्डोरक्लिष्टकर्मणः ॥ १७ ॥
ततस्तस्य शरीरं तु सर्वगन्धाधिवासितम् ।
शुचिकालीयकादिग्धं दिव्यचन्दनरूषितम् ॥ १८ ॥
पर्यषिञ्चञ्जलेनाऽऽशु शातकुम्भमयैर्घटैः ।
चन्दनेन च शुक्लेन सर्वतः समलेपयन् ॥ १९ ॥
कालागुरुविमिश्रेण तथा तुङ्गरसेन च ।
अथैनं देशजैः शुक्लैर्वासोभिः समयोजयन् ॥ २० ॥
संछन्नः स तु वासोभिर्जीवन्निव नराधिपः ।
शुशुभे स नरव्याघ्रो महार्हशयनोचितः ॥ २१ ॥
याजकैरभ्यनुज्ञाते प्रेतकर्मण्यनुष्ठिते ।
घृतावसिक्तं राजानं सह माद्रया स्वलंकृतम् ॥ २२ ॥

चलाते हुए उनके आगे चलने लगे और सहस्रों ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र शोकयुक्त होकर रो रो कर यह कहते हुए राजाके पीछे चलने लगे, कि हे नराधिप ! आप हमको कठोर दुःखमें त्याग अनाथ कर कहां चले ?(११-१५)

अनन्तर पाण्डवगण भीष्म और विदुर ने रोते हुए चलकर मङ्गलमयी गङ्गातट के सुन्दर वनयुक्त खण्डमें समभूमि पर सत्यवादी सुकर्मी स्त्रीसहित नरसिंह पाण्डुकी पालकी धरी। उसके पीछे उन्होंने कृष्णअगुरूसे लिप्त, चन्दनसे चर्चित और सुगन्धसे सुगन्धित पाण्डुकी देहको सुवर्णके घडेमें लाये हुए जलसे नहलाकर चारों ओर श्वेत-चन्दन लगा दिया, आगे कृष्णअगुरूसे मिले हुए तुङ्गरस नामक सुगन्धी पदार्थसे लिप्त कर उनको देशीय शुक्लवस्त्रसे तोप दिया। मूल्यवान् विस्तर पर महाराज पांडु वस्त्रसे तोपे जाकर जीवितके समान शोभा पाने लगे। (१६—२१)

अनन्तर ऋत्विकोंकी आज्ञानुसार प्रेतक्रिया होजाने पर उन्होंने घृतमें नहाये और अलंकृत माद्री-सहित राजाको

तुङ्गपद्मकमिश्रेण चन्दनेन सुगन्धिना ।
अन्यैश्च विविधैर्गन्धैर्विधिना समदाहयन् ॥ २३ ॥
ततस्तयोः शरीरे द्वे दृष्ट्वा मोहवशं गता ।
हाहा पुत्रेति कौसल्या पपात सहसा भुवि ॥२४॥
तां प्रेक्ष्य पतितामार्तां पौरजानपदो जनः ।
रुरोद दुःखसंतप्तो राजभक्त्या कृपान्वितः ॥ २५ ॥
कुन्त्याश्चैवाऽऽर्तनादेन सर्वाणि च विचुक्रुशुः ।
मानुषैः सह भूतानि तिर्यग्योनिगतान्यपि ॥ २६ ॥
तथा भीष्मः शान्तनवो विदुरश्च महामतिः ।
सर्वशः कौरवाश्चैव प्राणदन्भृशदुःखिताः ॥ २७ ॥
ततो भीष्मोऽथ विदुरो राजा च सह पाण्डवैः ।
उदकं चक्रिरे तस्य सर्वाश्च कुरुयोषितः ॥ २८ ॥
चुक्रुशुः पाण्डवाः सर्वे भीष्मः शान्तनवस्तथा ।
विदुरो ज्ञातयश्चैव चक्रुश्चाप्युदकक्रियाः ॥ २९ ॥
कृतोदकांस्तानादाय पाण्डवाञ्छोककर्शितान् ।
सर्वाः प्रकृतयो राजञ्छोचमाना न्यवारयन् ॥ ३० ॥
यथैव पाण्डवा भूमौ सुषुपुः सह बान्धवैः ।

तुङ्ग और पद्मनामक सुगन्धि पदार्थोंसे मिली हुई सुगन्धी चन्दनकी लकडी, तथा दूसरे भांति भांतिके अच्छी गन्ध-युक्त पदार्थोंसे विधिपूर्वक दाहने लगे । तब काशीराजकी पुत्री कौशल्या मोहसे "हा पुत्र ! हा पुत्र !" यह बात कहती हुई एकायक धरती पर लोट गयी । नगर-वाले तथा जनपदवासी उनको शोक युक्त और गिरजाते देखकर राजभाक्ति से दया पूरित और दुःखी होकर रोने लगे । वहांकी तिर्यग्योनिसे उत्पन्न हुए सम्पूर्ण प्राणीभी उस रुलाईसे मानों कातर होकर मनुष्यके साथ रोने लगे । (२२-२७)

अनन्तर दाहकी क्रिया अन्त होने पर पाण्डवोंके साथ भीष्म, विदुर, धृतराष्ट्र और सम्पूर्ण कौरवी स्त्रियोंने पाण्डुकी जलक्रिया की । हे महाराज ! सम्पूर्ण मन्त्रीगण उन जल क्रिया किये हुए, शोकसे व्याकुल पाण्डवों को लेकर शोक करते हुए घरको लौट आये । हे महाराज ! पाण्डवोंने जिस प्रकार बन्धुओंके साथ मिट्टी पर सो सो कर बारह रात काटी, वैसेही ब्राह्मण आदि

तथैव नागरा राजञ्शिश्यिरे ब्राह्मणादयः ॥ ३१ ॥
तद्गतानन्दमस्वस्थमाकुमारमहृष्टवत् ।
बभूव पाण्डवैः सार्धं नगरं द्वादश क्षपाः ॥ ३२ ॥ [५०९०]

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यामादिपर्वणि संभवपर्वणि पाण्डुदाहे सप्तविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १२७ ॥

वैशम्पायन उवाच— ततः कुन्ती च राजा च भीष्मश्च सह बन्धुभिः।
ददुः श्राद्धं तदा पाण्डोः स्वधामृतमयं तदा॥ १ ॥
कुरूंश्च विप्रमुख्यांश्च भोजयित्वा सहस्रशः ।
रत्नौघान्विप्रमुख्येभ्यो दत्वा ग्रामवरांस्तथा ॥ २ ॥
कृतशौचांस्ततस्तांस्तु पाण्डवान्भरतर्षभान् ।
आदाय विविशुः सर्वे पुरं वारणसाह्वयम् ॥ ३ ॥
सततं चाऽन्वशोचन्तस्तमेव भरतर्षभम् ।
पौरजानपदाः सर्वे मृतं स्वमिव बान्धवम् ॥ ४ ॥
श्राद्धावसाने तु तदा दृष्ट्वा तं दुःखितं जनम् ।
संमूढां दुःखशोकार्तां व्यासो मातरमब्रवीत् ॥ ५ ॥
अतिक्रान्तसुखाः कालाः पर्युपस्थितदारुणाः ।
श्वः श्वः पापिष्ठदिवसाः पृथिवी गतयौवना ॥ ६ ॥

नगरवालेभी धरती पर सोये और नगर के लडकों तक सम्पूर्ण प्रजाओंसेभी पाण्डवोंके साथ साथ बिना हर्ष, बिना आनन्द, बिना स्वास्थ्य बारह रात गंवायी । (२८—३२)[५०९०]

आदि पर्वमें एकसौ सताइस अध्याय समाप्त।

आदिपर्वमें एकसौ अठाइस अध्याय ।

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि अनन्तर कुन्ती, धृतराष्ट्र और भीष्मने बन्धुओंके साथ सम्पूर्ण कौरव और सहस्रों अच्छे अच्छे विप्रोंको भोजन कराके और अच्छे अच्छे विप्रोंको रत्न और सुन्दर सुन्दर ग्राम दे दे कर पाण्डुको स्वधा और अमृतमय श्राद्ध दान किया । आगे भरतवंशियोंमें श्रेष्ठ शौच किये हुए पाण्डवोंको लेकर हस्तिनापुरमें प्रविष्ट हुए । नगर और जनपदवासी अपने मृत मित्रकी भांति उन पुरुषश्रेष्ठ पाण्डुके लिये सदा शोक करने लगे (१-४)

अनन्तर महर्षि व्यास आनकर श्राद्ध क्रियाके अन्तमें सब जनोंको दुःखी देख कर मोहयुक्त और दुःख शोकसे विह्वल माता सत्यवतीसे बोले, कि मा! सुखका दिन जाता रहा है,अब कठोर काल आ

बहुमायासमाकीर्णो नानादोषसमाकुलः ।
लुप्तधर्मक्रियाचारो घोरः कालो भविष्यति ॥ ७ ॥
कुरूणामनयाच्चाऽपि पृथिवी न भविष्यति ।
गच्छ त्वं योगमास्थाय युक्ता वस तपोधने ॥ ८ ॥
मा द्राक्षीस्त्वं कुलस्याऽस्य घोरं संक्षयमात्मनः।
तथेति समनुज्ञाय सा प्रविश्याऽब्रवीत्स्नुषाम् ॥ ९ ॥
अम्बिके तव पौत्रस्य दुर्नयात्किल भारताः ।
सानुबन्धा विनंक्ष्यन्ति पौराश्चैवेति नः श्रुतम्॥१० ॥
तत्कौशल्यामिमामार्तां पुत्रशोकाभिपीडिताम्।
वनमादाय भद्रं ते गच्छामि यदि मन्यसे ॥ ११॥
तथेत्युक्त्वा त्वम्बिकया भीष्ममामन्त्र्य सुव्रता।
वनं ययौ सत्यवती स्नुषाभ्यां सह भारत ॥१२॥
ताः सुघोरं तपस्तप्त्वा देव्यो भरतसत्तम।
देहं त्यक्त्वा महाराज गतिमिष्टां ययुस्तदा ॥ १३ ॥
वैशम्पायन उवाच—अथाऽऽप्नवन्तो वेदोक्तान्संस्कारान्पाण्डवास्तदा।
संव्यवर्धन्त भोगांस्ते भुञ्जानाः पितृवेश्मनि ॥ १४॥

पडा। दिन धीरे धीरे पापपूर्ण हो रहे हैं, पृथ्वीकी यौवन दशा जाती रही ; अब पूर्ववत् शस्यकी उपज नहीं होगी; उसके पीछे बडी भारी मायासे पूरित, धर्मक्रिया और आचारनाशी, नाना वेषयुक्त कठोर काल आपडेगा;कुरुओंकी बुरी नीतिसे धरती उजड जाने पर होगी; सो आप तपोवनमें जाकर चित्तकी वृत्तियोंको रोककर योगमें बैठिये! अपने वंशका घोर सर्वनाश न देखिये। (५-९)

सत्यवती "तथास्तु" कहके वह मानकर अन्तःपुरमें जाकर पुत्रवधूसे बोली, कि ऐ अम्बिके! मैंने सुना है, कि तुम्हारे पौत्रकी बुरी रीतिसे आत्मजनोंके साथ भरतवंशी और नगरवाले नष्ट हो जायंगे, सो यदि तुम चाहो, तो तुम्हारा मङ्गल होवे, चलो हम इस पुत्र शोकसे विह्वल अम्बालिकाको लेकर वनमें जांय। यह कह कर सुव्रतयुक्त सत्यव्रती अम्बिकाके साथ भीष्म को उस प्रकारसे सम्बोधन कर दोनों पुत्र वधुओंके साथ वनको पधारी। हे भरतश्रेष्ठ महाराज! उन देवियोंने वहां कठोर तप कर देह छोडकर के मनमानी सुगति प्राप्त की। (९-१३)

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि अनन्तर पाण्डव वेदानुसार संस्कारोंको पाकर

धार्तराष्ट्रैश्च सहिताः क्रीडन्तो मुदिताः सुखम्।
बालक्रीडासु सर्वासु विशिष्टास्तेजसाऽभवन्॥ १५॥
जवे लक्ष्याभिहरणे भोज्ये पांसुविकर्षणे।
धार्तराष्ट्रान्भीमसेनः सर्वान्स परिमर्दति ॥ १६॥
हर्षात्प्रक्रीडमानांस्तान्गृह्य राजन्निलीयते ।
शिरःसु विनिगृह्यैतान्योधयामास पाण्डवः॥ १७॥
शतमेकोत्तरं तेषां कुमाराणां महौजसाम्।
एक एव निगृह्णाति नातिकृच्छ्राद्वृकोदरः ॥ १८॥
कचेषु च निगृह्यैनान्विनिहत्य बलाद्बली ।
चकर्ष क्रोशतो भूमौ घृष्टजानुशिरोंसकान्॥ १९॥
दश बालाञ्जले क्रीडन्भुजाभ्यां परिगृह्य सः।
आस्ते स्म सलिले मग्नो मृतकल्पान्विमुञ्चति॥ २०॥
फलानि वृक्षमारुह्य विचिन्वन्ति च ते यदा।
तदा पादप्रहारेण भीमः कम्पयते द्रुमान्॥ २१॥
प्रहारवेगाभिहता द्रुमा व्याघूर्णितास्ततः ।

नाना भोगके पदार्थ भोग करते हुए पिताके घरमें बढने लगे। वे प्रसन्नचित्त होकर धृतराष्ट्रके पुत्रों के साथ परम सुखसे खेलते कूदते थे और सब लडकपनके खेलोंमें अपने तेजसे बढ चढ निकलते थे। वेगके विषयमें, निशानेकी वस्तु लानेमें, सबोंसे पहिले भोजनकी सामग्री लेने में और धूल फेंकने इत्यादि लडकपने के खेलोंमें भीमसेन सम्पूर्ण धृतराष्ट्र-कुमारोंको हरा कर सताया करते थे। हे महाराज! जब धृतराष्ट्रके लडके आनन्द से खेलते थे, तब उक्त पाण्डव उनको पकडकर एकसे दूसरेको अलग कर देते थे और उनके सिरोंको थाम थाम कर एक दूसरे से लडा देते थे। (१४—१७)

उन बडे तेजवन्त एकसौ एक कुमारों को वृकोदर अकेले सहजहीमें दिक किया करते थे। महाबली भीम बलसे उनके केश पकड मारते पीटते थे, मिट्टी पर लेटते, सिर और गर्दन आदि रगड कर घसीट लेजाते थे। वे कष्टके मारे चिल्लाकर रोते थे। वह जलमें खेलते हुए, दोनों भुजोंसे दस लडकोंको पकड कर जलमें डुबाये रहते थे, आगे उनके मरने पर होनेसे छोड देते थे। जब धृ-तराष्ट्रके पुत्र पेडों पर चढकर फल तोडते थे, तब भीम उन पेडोंमें लात मार मार हिलाते थे; उन लातोंके बलसे हिलने

सफलाः प्रपतन्ति स्म द्रुतं त्रस्ताः कुमारकाः ॥ २२ ॥
न ते नियुद्धे न जवे न योग्यासु कदाचन ।
कुमारा उत्तरं चक्रुः स्पर्धमाना वृकोदरम् ॥ २३ ॥
एवं स धार्तराष्ट्रांश्च स्पर्धमानो वृकोदरः ।
अप्रियेऽतिष्ठदत्यन्तं बाल्यान्न द्रोहचेतसा ॥ २४ ॥
ततो बलमतिख्यातं धार्तराष्ट्रः प्रतापवान् ।
भीमसेनस्य तज्ज्ञात्वा दुष्टभावमदर्शयत् ॥ २५ ॥
तस्य धर्मादपेतस्य पापानि परिपश्यतः ।
मोहादैश्वर्यलोभाच्च पापा मतिरजायत ॥ २६ ॥
अयं बलवतां श्रेष्ठः कुन्तीपुत्रो वृकोदरः ।
मध्यमः पाण्डुपुत्राणां निकृत्या संनिगृह्यताम् ॥ २७ ॥
प्राणवान्विक्रमी चैव शौर्येण महताऽन्वितः ।
स्पर्धते चाऽपि सहितानस्मानेको वृकोदरः ॥ २८ ॥
तं तु सुप्तं पुरोद्याने गङ्गायां प्रक्षिपामहे ।
अथ तस्मादवरजं श्रेष्ठं चैव युधिष्ठिरम् ॥ २९ ॥
प्रसह्य बन्धने बध्वा प्रशासिष्ये वसुन्धराम् ।

और डगमगाने पर लडके उसीक्षण पेडोंसे छूटकर फलके साथ गिर जाते थे । (१८—२२)

वास्तवमें वे लडके, चाहे बाहुयुद्धकी कहिये, चाहे वेगकी कहिये, चाहे शिक्षा-की कहिये किसी बातमें अहंकारपूर्वक वृकोदरसे बढ नहीं सकते थे । ऐसा नहीं, कि वृकोदर धृतराष्ट्रके पुत्रों की कोई हानि करनी चाहते थे, केवल लडकपन हीसे वह उस प्रकारसे अहंकार प्रगट कर उनके बडे अप्रिय कामोंमें हाथ डालते थे । अनन्तर प्रतापी धृतराष्ट्र-कुमार दुर्योधन भीमसेनका वैसा अति प्रख्यात बल देखकर बुरा भाव दिखाने लगा । धर्महीन, पापकर्मके देखनेवाले दुर्योधनका चित्त अज्ञानता और ऐश्वर्यके लोभसे पाप पर दौडा । (२३—२६)

उनको यह समझ आगयी, कि पाण्ड-वोंमें मझला यह कुन्तीपुत्र वृकोदर बलियों में श्रेष्ठ है, सो उसको कौशलसे मार डालना चाहिये । अत्यन्त बल विक्रमयुक्त महावीर वृकोदर अकेला ही हम सबोंसे अहङ्कार करता है, जब वह नगरकी फुलवाडीमें सो रहेगा तब उसे गंगामें डाल दूंगा, आगे उसके छोटे भाईयोंको और बडे युधिष्ठिरको बलसे बांधकर

एवं स निश्चयं पापः कृत्वा दुर्योधनस्तदा ।
नित्यमेवाऽन्तरप्रेक्षी भीमस्याऽऽसीन्महात्मनः ३०॥
ततो जलविहारार्थं कारयामास भारत ।
चैलकम्बलवेश्मानि विचित्राणि महान्ति च ॥ ३१ ॥
सर्वकामैः सुपूर्णानि पताकोच्छ्रायवन्ति च ।
तत्र संजनयामास नानागाराण्यनेकशः ॥ ३२ ॥
उदकक्रीडनं नाम कारयामास भारत ।
प्रमाणकोटयां तं देशं स्थलं किंचिदुपेत्य ह ॥ ३३ ॥
भक्ष्यं भोज्यं च पेयं च चोष्यं लेह्यमथाऽपि च ।
उपपादितं नरैस्तत्र कुशलैः सूदकर्मणि ॥ ३४ ॥
न्यवेदयंस्तत्पुरुषा धार्तराष्ट्राय वै तदा ।
ततो दुर्योधनस्तत्र पाण्डवानाह दुर्मतिः ॥ ३५ ॥
गङ्गां चैवाऽनुयास्याम उद्यानवनशोभिताम् ।
सहिता भ्रातरः सर्वे जलक्रीडामवाप्नुमः ॥ ३६ ॥
एवमस्त्विति तं चापि प्रत्युवाच युधिष्ठिरः ।
ते रथैर्नगराकारैर्देशजैश्च गजोत्तमैः ॥ ३७ ॥
निर्ययुर्नगराच्छूराः कौरवाः पाण्डवैः सह ।

पृथ्वीमें एकही राजा हूंगा, पापात्मा दुर्योधन यह निश्चय कर महात्मा भीमसेन को सदा ढूंढने लगा । (२७—३०)

हे भारत ! अनन्तर उस पापात्माने जलक्रीडार्थ गङ्गाजीके तटपर प्रमाण-कोटि नामक स्थानमें जल और स्थलपर वस्त्र और कम्बलका एक सुन्दर बडा भवन बनवाकर उसमें सम्पूर्ण कामके पदार्थोंसे भरे, फहराती हुई ध्वजासे शुभोभित नाना घर रचवाये । हे भारत-नन्दन! उस भवनका नाम उदक-क्रीडन भया; रसोई बनानेमें दक्ष रसोई वालोंने उसमें चबाने, चूसने, चाटने, पीनेकी नाना भोजनकी वस्तु बनवाकर रखीं । (३१–३४)

आगे सब ठीक होनेपर टहलुओंने दुर्योधनको वह समाचार सुनाया । आगे दुर्मति दुर्योधन ने पाण्डवों से कहा, कि चलो हम सब भाई मिलकर वन बगीचोंसे सुशोभित गङ्गाजीके किनारे जाकर जलमें खेलें । युधिष्ठिरके सम्मत होनेपर शूर कौरव लोग पाण्डवोंके साथ नगरके समान बडे रथ और बडे बडे शरीरयुक्त हाथियोंपर नगरसे निकले ।

उद्यानवनमासाद्य विसृज्य च महाजनम् ॥ ३८ ॥
विशन्ति स्म तदा वीराः सिंहा इव गिरेर्गुहाम्।
उद्यानमभिपश्यन्तो भ्रातरः सर्व एव ते ॥ ३९ ॥
उपस्थानगृहैः शुभ्रैर्वलभीभिश्च शोभितम्।
गवाक्षकैस्तथा जालैर्यन्त्रैः साञ्चारिकैरपि ॥ ४० ॥
संमार्जितं सौधकारैश्चित्रकारैश्च चित्रितम्।
दीर्घिकाभिश्च पूर्णाभिस्तथा पुष्करिणीभिर्हि॥ ४१ ॥
जलं तच्छुशुभे छन्नं फुल्लैर्जलरुहैस्तथा ।
उपच्छन्ना वसुमती तथा पुष्पैर्यथर्तुकैः ॥ ४२ ॥
तत्र प्रविष्टास्ते सर्वे पाण्डवाः कौरवाश्च ह ।
उपच्छन्नान्बहून्कामांस्ते भुञ्जन्ति ततस्ततः॥ ४३ ॥
अथोद्यानवरे तस्मिंस्तथा क्रीडागताश्च ते ।
परस्परस्य वक्त्रेभ्यो ददुर्भक्ष्यांस्ततस्ततः ॥ ४४ ॥
ततो दुर्योधनः पापस्तद्भक्ष्ये कालकूटकम् ।
विषं प्रक्षेपयामास भीमसेनजिघांसया ॥ ४५ ॥
स्वयमुत्थाय चैवाऽथ हृदयेन क्षुरोपमः ।
स वाचाऽमृतकल्पश्च भ्रातृवच्च सुहृद्यथा ॥ ४६ ॥

आगे वे वीर भाईवर्ग बगीचेमें पहुंचकर साथियोंको विदा करके उपवनकी शोभा देखते हुए सिंहके पर्वतकी कन्दरामें घुस नेकी नाई उसके भीतर जा घुसे।(३५-३९)

देखा, कि राजलोगोंसे साफ किये हुए, चित्र करनेवालोंसे चित्रित, सुफेद बैठकें और गृहकी चोटियां सुहा रही हैं। वहां जंगले, फौहारे अर्थात् जिनसे सैकडों धारोंसे जल निकलकर ओसकी भांति घरके भीतर भागको भर देता है, ऐसी ऐसी कलोंकी अपूर्व शोभा दीख पडती है; खिले पद्मके वनसे ढंपे जलभरे पोखरे और तालोंकी बडी शोभा हो रही है और ऋतुसे उपजे हुए फूलोंसे वहां की भूमिभी घिरी है। (४०—४२)

अनन्तर पाण्डव और कौरव वहां जा बैठे और नाना स्थानोंसे मंगाये हुए कामके पदार्थोंका स्वाद लेने लगे । वे सुन्दर फुलवाडीमें खेलते हुए एक दूसरे के मुहमें खानेकी वस्तु देने लगे। इस अवसरमें पापात्मा दुर्योधनने भीमसेनको मार डालनेकी इच्छासे भोजनकी वस्तुमें विष मिलाया; तब उस पापात्माने, जिस के हृदयमें अस्तुरा और बातमें अमृत

स्वयं प्रक्षिपते भक्ष्यं बहु भीमस्य पापकृत्।
प्रतीि तं स्म भीमेन तं वै दोषमजानता ॥ ४७ ॥
ततो दुर्योधनस्तत्र हृदयेन हसन्निव ।
कृतकृत्यमिवाऽऽत्मानं मन्यते पुरुषाधमः ॥ ४८ ॥
ततस्ते सहिताः सर्वे जलक्रीडामकुर्वत ।
पाण्डवा धार्तराष्ट्राश्च तदा मुदितमानसाः॥ ४९ ॥
क्रीडावसाने ते सर्वे शुचिवस्त्राः स्वलंकृताः।
दिवसान्ते परिश्रान्ता विहृत्य च कुरूद्वहाः॥ ५० ॥
विहारावसथेष्वेव वीरा वासमरोचयन् ।
खिन्नस्तु बलवान्भीमो व्यायम्याऽभ्यधिकं तदा५१॥
वाहयित्वा कुमारांस्ताञ्जलक्रीडागतांस्तदा।
प्रमाणकोट्यां वासार्थी सुष्वापाऽवाप्य तत्स्थलम्५२
शीतं वातं समासाद्य श्रान्तो मदविमोहितः।
विषेण च परीताङ्गो निश्चेष्टः पाण्डुनन्दनः ॥५३ ॥
ततो बध्वा लतापाशैर्भीमं दुर्योधनः स्वयम् ।
मृतकल्पं तदा वीरं स्थलाज्जलमपातयत् ॥ ५४॥

सा था, स्वयं उठकर भाई और मित्रवत् भीमसेनके मुखमें उस विषैली वस्तुका एक बडा भाग डाल दिया। भीमसेन ने भी कोई दोष न जानकर उसे भोजनके पदार्थके समान खा लिया। तब पुरुषोंमें बडा अधम दुर्योधन अपनी इच्छा पूरी हुई जानकर मानों मनहीमनमें हंसने लगा। (४३—४८)

आगे धृतराष्ट्रके लडके और पाण्डव लोग सब प्रसन्न चित्तसे एकत्र होकर जलमें खेलने लगे। जलमें खेलनेके पीछे कुरवंशियोंमें श्रेष्ठ वीरगण पवित्र वस्त्र पहिनकर अलंकृत हुए और खेलसे थक कर दिन बीतने पर होनेसे उस विहार के घरहीमें रहना चाहा। महाबली भीम जलमें खेलते हुए कुमारोंको बहुत लडा करके थककर आराम करनेकी इच्छासे उस प्रमाणकोटिके स्थलभागमें आकर-के ही सो गये। पाण्डुपुत्र भीम एक तो थके और विषके नशेमें अचेतन ही थे, फिर तिसपर ठंढी हवा पाकर और सर्व-शरीरमें विषके वर्त्ताव होनेके कारण एकबारही अज्ञान हो गये। तब दुर्योधन ने मरेके तुल्य हुए भीमको लताजाल से स्वयं बांधकर स्थलसे जलमें गिराया। (४९—५४)

स निःसंज्ञो जलस्याऽन्तमथ वै पाण्डवोऽविशत्।
आक्रामन्नागभवने तदा नागकुमारकान् ॥ ५५ ॥
ततः समेत्य बहुभिस्तदा नागैर्महाविषैः ।
अदश्यत भृशं भीमो महादंष्ट्रैर्विषोल्बणैः ॥ ५६ ॥
ततोऽस्य दश्यमानस्य तद्विषं कालकूटकम् ।
हतं सर्पविषेणैव स्थावरं जङ्गमेन तु ॥ ५७ ॥
दंष्ट्राश्च दंष्ट्रिणां तेषां मर्मस्वपि निपातिताः ।
त्वचं नैवाऽस्य बिभिदुः सारत्वात्पृथुवक्षसः ॥५८॥
ततः प्रबुद्धः कौन्तेयः सर्वं संछिद्य बन्धनम् ।
पोथयामास तान्सर्वान्केचिद्भीताः प्रदुद्रुवुः ॥५९ ॥
हतावशेषा भीमेन सर्वे वासुकिमभ्ययुः ।
ऊचुश्च सर्पराजानं वासुकिं वासवोपमम् ॥ ६० ॥
अयं नरो वै नागेन्द्र ह्यप्सु बध्वा प्रवेशितः।
यथा च नो मतिर्वीर विषपीतो भविष्यति ॥६१॥
निश्चेष्टोऽस्मानुप्राप्तः स च दष्टोऽन्वबुध्यत ।
ससंज्ञश्चाऽपि संवृत्तश्छित्वा बन्धनमाशु नः॥ ६२॥
पोथयन्तं महाबाहुं त्वं चैनं ज्ञातुमर्हसि ।

चेतना-रहित पाण्डव जलमें डूबकर नागोंके घरमें सर्पोंके बच्चोंपर जा गिरे ! अनन्तर अगणित, काटनेमें तेज विषैले सर्प मिलकर भीमको काटने लगे। तिन से काटे जाकर भीमसेनके शरीरका स्थायी विष चलते हुए सर्पविषसे दूर हो गया। उन सर्पोंके दांतोंसे भीमसेन-के मर्मस्थानमें चोट लगनेपरभी उन की बडी भारी छातीकी कठिनाई के कारण चमडा तक भी भेदा नहीं गया। (५३—५८)

अनन्तर कुन्तीपुत्र चेतना पाकर बन्धनोंको काटकर उन सर्पोंको गाडने लगे; उनमेंसे कुछ सर्प भय खाकर वेगसे भाग गये। उन मारसे बचे हुए सर्पोंने देवराजके समान सर्पराज वासुकिके पास जाकर कहा, कि हे वीर नागेन्द्र ! एक मनुष्य किसीसे बांधे जाकर जलमें गिरा-या गया था, हमको जान पडता है, कि उसने विष पिया था; क्योंकि जब हमारे आगे गिरा तब वह अचेत था, आगे जब हमने उसे काटना आरंभ कर दिया तब वह चेतना पाकरके, जगकर, अपने शरीरके बन्धन काटकर हमको मारने

ततो वासुकिरभ्येत्य नागैरनुगतस्तदा ॥ ६३ ॥
पश्यन्ति स्म महाबाहुं भीमं भीमपराक्रमम्।
आर्यकेण च दृष्टः स पृथाया आर्यकेण च ॥ ६४ ॥
तदा दौहित्रदौहित्रः परिष्वक्तः सुपीडितम्।
सुप्रीतश्चाऽभवत्तस्य वासुकिः सुमहायशाः॥ ६५ ॥
अब्रवीत्तं च नागेन्द्रः किमस्य क्रियतां प्रियम्।
धनौघो रत्ननिचयो वसु चाऽस्य प्रदीयताम्॥ ६६ ॥
एवमुक्तस्तदा नागो वासुकिं प्रत्यभाषत ।
यदि नागेन्द्र तुष्टोऽसि किमस्य धनसंचयैः॥ ६७ ॥
रसं पिबेत्कुमारोऽयं त्वयि प्रीते महाबलः ।
बलं नागसहस्रस्य यस्मिन्कुण्डे प्रतिष्ठितम्॥ ६८ ॥
यावात्पिबति बालोऽयं तावदस्मै प्रदीयताम्।
एवमस्त्विति तं नागं वासुकिः प्रत्यभाषत ॥ ६९ ॥
ततो भीमस्तदा नागैः कृतस्वस्त्ययनः शुचिः ।
प्राङ्मुखश्चोपविष्टः स रसं पिबति पाण्डवः ॥ ७० ॥
एकोच्छ्वासात्ततः कुण्डं पिबति स्म महाबलः।

लगा; आपको जानना चाहिये, कि वह महाभुज कौन है । (५९—६३)

अनन्तर वासुकिने साथी नागोंके साथ वहां आकर भारी पराक्रमी महाभुज भीम को देखा । तब कुन्तीके पिताके मातामह आर्यक नामक नागराजने नातीके नाती भीमको देखकर उनको गलेसे लगाया; इससे अति यशस्वो नागेन्द्र वासुकि उन पर प्रसन्न होकर नागराज आर्यकसे बोले, कि इनका क्या प्रियकार्य करना चाहिये ? इनको धनादि अनेक रत्न दो । (६३—६६)

वासुकिकी यह बात सुनकर आर्यक बोले, कि हे नागेन्द्र ! यदि आप प्रसन्न हुए हों, तो इसको धनरत्नकी आवश्यकताही क्या पडी है ? आप जब प्रसन्न हुए हैं तब यह कुमार रस पीकर बली होवे; उस कुण्डमें सहस्र हाथियोंका बल धरा है, सो यह बालक उस कुण्डेका जितना रस पी सके उतना इसको पीने दीजिये । नागराज वासुकिके सम्मत होने पर भीमसेन पवित्र होकर और नागोंसे मङ्गल आचरण किये जाने पर पूर्व ओर मुख करके बैठकर रस पीने लगे । महाबली भीमने एकही दममें कुण्डा भर रस पी लिया और इस प्रकारसे आठ

एवमष्टौ स कुण्डानि ह्यपिबत्पाण्डुनन्दनः ॥ ७१ ॥
ततस्तु शयने दिव्ये नागदत्ते महाभुजः ।
अशेत भीमसेनस्तु यथासुखमरिन्दमः ॥ ७२ ॥ [५१६२]

इति श्रीमहाभारते शत० वैयासिक्यामादिपर्वणि संभवपर्वणि भीमसेनरसपानेऽष्टाविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः १२८

वैशम्पायन उवाच—ततस्ते कौरवाः सर्वे विना भीमं च पाण्डवाः ।
वृत्तक्रीडाविहारास्तु प्रतस्थुर्गजसाह्वयम् ॥ १ ॥
रथैर्गजैस्तदा चाऽश्वैर्यानैश्चाऽन्यैरनेकशः ।
ब्रुवन्तो भीमसेनस्तु यातो ह्यग्रत एव नः ॥ २ ॥
ततो दुर्योधनः पापस्तत्राऽपश्यद्वृकोदरम् ।
भ्रातृभिः सहितो हृष्टो नगरं प्रविवेश ह ॥ ३ ॥
युधिष्ठिरस्तु धर्मात्मा ह्यविदन्पापमात्मनि ।
स्वेनाऽनुमानेन परं साधुं समनुपश्यति ॥ ४ ॥
सोऽभ्युपेत्य तदा पार्थो मातरं भ्रातृवत्सलः ।
अभिवाद्याऽब्रवीत्कुन्तीमम्ब भीम इहाऽऽगतः॥ ५ ॥
क्व गतो भविता मातर्नेह पश्यामि तं शुभे ।
उद्यानानि वनं चैव विचितानि समन्ततः ॥ ६ ॥
तदर्थं न च तं वीरं दृष्टवन्तो वृकोदरम् ।

कुण्डोंको खाली कर दिया । अनन्तर शत्रुनाशी महाभुज भीमसेन नागोंकी दी हुई दिव्य सेज पर परम सुखसे सो रहे । (६७—७२) [५१६२]

आदिपर्वमें एकसौ अठाईस अध्याय समाप्त ।

आदिपर्वमें एकसौ उनतीस अध्याय ।

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि अनन्तर संपूर्ण कौरव और भीमके विना पाण्डव गण खेल और विहार कर रथ, हाथी, घोडे और दूसरे यानों पर हस्तिनापुरको लौटे; जानेके कालमें कहने लगे, कि भीम हमारे पहिले गया होगा । पापात्मा दुर्योधनने उनमें भीमको न देख कर प्रसन्नचित्तसे नगरमें प्रवेश किया। धर्मात्मा युधिष्ठिर अपनेमें कोई पापबुद्धि नहीं रखते थे, अपने दृष्टान्तसे शत्रुकोभी साधु समझते थे । (१—४)

वह भ्रातृप्रेमी कुंतीपुत्र माता कुंतीके पास जाकर पांव छूकर बोले, कि क्यों मा ! भीम यहां आया है ? ऐ शुभ चाहने वाली ! वह अभी तक क्यों नहीं दीख पडता ? तब वह कहां गया होगा ? हम वनमें फुलवाडियोंमें चारों ओर उसकी खोज कर चुके,पर कहीं उस वीर वृकोदर

मन्यमानास्ततः सर्वे यातो नः पूर्वमेव सः ॥ ७ ॥
आगताः स्म महाभागे व्याकुलेनाऽन्तरात्मना ।
इहाऽऽगम्य क्व नु गतस्त्वया वा प्रेषितः क्व नु ॥ ८ ॥
कथयस्व महाबाहुं भीमसेनं यशस्विनि ।
न हि मे शुध्यते भावस्तं वीरं प्रति शोभने॥ ९ ॥
यतः प्रसुप्तं मन्येऽहं भीमं नेति हतस्तु सः ।
इत्युक्ता च ततः कुन्ती धर्मराजेन धीमता ॥ १० ॥
हाहेति कृत्वा संभ्रान्ता प्रत्युवाच युधिष्ठिरम् ।
न पुत्र भीमं पश्यामि न मामभ्येत्यसाविति ॥ ११ ॥
शीघ्रमन्वेषणे यत्नं कुरु तस्याऽनुजैः सह ।
इत्युक्त्वा तनयं ज्येष्ठं हृदयेन विदूयता ॥ १२ ॥
क्षत्तारमानाय्य तदा कुन्ती वचनमब्रवीत् ।
क्व गतो भगवन्क्षत्तर्भीमसेनो न दृश्यते ॥ १३ ॥
उद्यानान्निर्गताः सर्वे भ्रातरो भ्रातृभिः सह ।
तत्रैकस्तु महाबाहुर्भीमो नाऽभ्येति मामिह ॥ १४ ॥
न च प्रीणयते चक्षुः सदा दुर्योधनस्य सः ।
क्रूरोऽसौ दुर्मतिः क्षुद्रो राज्यलुब्धोऽनपत्रपः॥ १५ ॥

को नहीं देखा; अन्तमें सबोंने यह समझ लिया, कि भीम हमारे पहिले ही आया होगा। ऐ महाभागे यशस्विनी! हम व्याकुल हृदयसे आ रहे हैं, सो कहिये, कि महाभुज भीम यहां आकर कहां गया है? आपने उसको कहीं भेजा तो नहीं? ऐ शोभने! उस वीरके विषयमें मेरा चित्त हडबडा रहा है, क्योंकि स्मरण होता है, कि भीम सोता था, उसके पीछे फिर नहीं आया, सो मारा गया होगा। (५-१०)

धीमान् धर्मपुत्रकी यह बात सुनकर कुन्ती हाहाकार करती हुई दुःखसे उनसे बोली, कि बेटा! मैंने भीमको नहीं देखा है भीम मेरे पास नहीं आया, सो छोटे, भाइयोंको लेकर तुरन्त उसकी खोज का प्रयत्न करो, कुन्ती सन्तापित चित्त से ज्येष्ठ पुत्र युधिष्ठिरसे यह कहकर विदुरको बुलवाकर उनसे बोली, कि भगवान् क्षत्तः! भीमसेन कहां गया है, वह दीख नहीं पडता है। दूसरे भाईलोग भाइयोंके साथ फुलवाडीसे लौट आये हैं; केवल अकेला महाभुज भीम मेरे पास नहीं आया है; उसको देखकर दुर्योधन की आंखेंभी प्रसन्न नहीं होतीं, वह

निहन्यादपि तं वीरं जातमन्युः सुयोधनः।
तेन मे व्याकुलं चित्तं हृदयं दह्यतीव च ॥ १६॥

विदुर उवाच— मैवं वदस्व कल्याणि शेषसंरक्षणं कुरु।
प्रत्यादिष्टो हि दुष्टात्मा शेषेऽपि प्रहरेत्तव ॥ १७॥
दीर्घायुषस्तव सुता यथोवाच महामुनिः।
आगमिष्यति ते पुत्रः प्रीतिं चोत्पादयिष्यति॥१८॥

वैशम्पायन उवाच— एवमुक्त्वा ययौ विद्वान्विदुरः स्वं निवेशनम्।
कुन्ती चिन्तापरा भूत्वा सहाऽऽसीना सुतैर्गृहे॥१९॥
ततोऽष्टमे तु दिवसे प्रत्यबुध्यत पाण्डवः।
तस्मिंस्तदा स जीर्णे सोऽप्रमेयबलो बली॥ २०॥
तं दृष्ट्वा प्रतिबुध्यन्तं पाण्डवं ते भुजङ्गमाः।
सान्त्वयामासुरव्यग्र वचनं चेदमब्रुवन् ॥ २१॥
यत्ते पीतो महाबाहो रसोऽयं वीर्यसंभृतः।
तस्मान्नागायुतबलो रणेऽधृष्यो भविष्यसि॥ २२॥
गच्छाऽद्य स्वगृहं स्नातो दिव्यैरेभिः शुभैर्जलैः।
भ्रातरस्तेऽनुतप्यन्ति त्वां विना कुरुपुङ्गव ॥ २३॥
ततः स्नातो महाबाहुः शुचिः शुक्लाम्बरस्रजः।

सुयोधन बडा पेंचीला, दुर्मति, नीच राज्यलोभी और आंखों की लज्जासे वर्जित है, सो कहीं ऐसा न हो, कि उसने क्रोधवश उस वीरको मारडाला हो, इस भयसे मेरा चित्त विकल और हृदय जल रहा है। (११—१६)

विदुर बोले, कि ऐ कल्याणि! आप यह बात न प्रगट कीजिये, शेष पुत्रोंकी रक्षा कीजिये, क्यों कि वह दुरात्मा दुर्योधन लांछित होनेसे आपके शेष पुत्रों कोभी मार सकता है। महामुनिने कहा है, कि आपके पुत्रगण दीर्घजीवन पावेंगे, सो आपका पुत्र लौट आकर अवश्यही आपकी प्रीति बढावेगा। १७-१८

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि विद्वान् विदुर यह कहकर अपने घरको गये। कुन्ती सोचती हुई, पुत्रोंके साथ घरमें रहने लगी। अनन्तर आठवें दिन महाबली पाण्डुपुत्र भीमसेन जगे और उस समय उस रसके पच जानेसे अप्रमेय और बलवन्त बन गये। सर्पगण उस पाण्डवको जगते देखकर शीघ्रतापूर्वक समझाने लगे और यह बात बोले, कि हे महाभुज! तुमने जो वीर्य देनेहारा रस पी

ततो नागस्य भवने कृतकौतुकमङ्गलः ॥ २४ ॥
ओषधीभिर्विषघ्नीभिः सुरभीभिर्विशेषतः ।
भुक्तवान्परमान्नं च नागैर्दत्तं महाबलैः ॥ २५ ॥
पूजितो भुजगैर्वीर आशीर्भिश्चाऽभिनन्दितः।
दिव्याभरणसंछन्नो नागानामन्त्र्य पाण्डवः ॥ २६ ॥
उदतिष्ठत्प्रहृष्टात्मा नागलोकादरिन्दमः ।
उत्क्षिप्तः स तु नागेन जलाज्जलरुहेक्षणः ॥ २७ ॥
तस्मिन्नेव वनोद्देशे स्थापितः कुरुनन्दनः ।
ते चाऽन्तर्दधिरे नागाः पाण्डवस्यैव पश्यतः ॥ २८ ॥
तत उत्थाय कौन्तेयो भीमसेनो महाबलः ।
आजगाम महाबाहुर्मातुरन्तिकमञ्जसा ॥ २९ ॥
ततोऽभिवाद्य जननीं ज्येष्ठं भ्रातरमेव च ।
कनीयसः समाघ्राय शिरःस्वरिविमर्दनः ॥ ३० ॥
तैश्चाऽपि संपरिष्वक्तः सह मात्रा नरर्षभैः ।
अन्योन्यगतसौहार्दाद्दिष्टया दिष्टयेति चाऽब्रुवन् ३१।
ततस्तत्सर्वमाचष्ट दुर्योधनविचेष्टितम् ।

लिया है, उससे तुम दश सहस्र नाग के समान बली और रणस्थलमें अजीत योग्य होगे। हे कुरुश्रेष्ठ ! आज तुम इस दिव्य और शुभ जलसे स्नानकर अपने घरको लौट जाओ, तुमको न देखकर तुम्हारे भाईलोग दुःखी हुए हैं।(१९-२३)

अनन्तर महाभुज महाबली भीमने स्नानकर और शुचि होकर शुक्लवस्त्र और श्वेत माला पहिनकर नागोंका दिया हुआ परमान्न भोजन किया। आगे शत्रुनाशी पाण्डव सर्पोंसे आदर और असीस पाकर दिव्य आभूषण पहिनकर नागोंको संभाषण करके प्रसन्नचित्तसे नागलोकसे निकले। नागोंने उस कमलनेत्रवाले कुरुनन्दनको जलसे उठाकर उसी बन-खण्ड में छोड दिया, आगे उनके सम्मुखसे अन्तर्हित हुए। (२४—२८)

इसके अनन्तर महाभुज, महाबली कुन्तीपुत्र भीमसेन वहांसे उठकरके वेग पूर्वक चलकर माताके पास आगये। शत्रुनाशी वृकोदर माता और ज्येष्ठ भाइके पांव छूकर छोटे भाइयोंके सिर चूम कर के माता और भाइयोंके गले लगे और वे आपसमें मित्रता दिखा दिखाकर बार बार यह कहने लगे, कि "कैसा आनन्द है, कैसा आनन्द है!" आगे महाबल-पराक्रमी

भ्रातॄणां भीमसेनश्च महाबलपराक्रमः ॥ ३२ ॥
नागलोके च यद्वृत्तं गुणदोषमशेषतः ।
तच्च सर्वमशेषेण कथयामास पाण्डवः ॥ ३३ ॥
ततो युधिष्ठिरो राजा भीममाह वचोऽर्थवत् ।
तूष्णीं भव न ते जल्प्यमिदं कार्यं कथंचन ॥ ३४ ॥
इतः प्रभृति कौन्तेया रक्षताऽन्योन्यमादृता ॥ ३५ ॥
एवमुक्त्वा महाबाहुर्धर्मराजो युधिष्ठिरः ।
भ्रातृभिः सहितः सर्वैरप्रमत्तोऽभवत्तदा ॥ ३६ ॥
सारथिं चाऽस्य दयितमपहस्तेन जघ्निवान् ।
धर्मात्मा विदुरस्तेषां पार्थानां प्रददौ मतिम् ॥ ३७ ॥
भोजने भीमसेनस्य पुनः प्राक्षेपयद्विषम् ।
कालकूटं नवं तीक्ष्णं संभृतं लोमहर्षणम् ॥ ३८ ॥
वैश्यापुत्रस्तदाऽऽचष्ट पार्थानां हितकाम्यया ।
तत्राऽपि भुक्त्वाऽजरयदविकारं वृकोदरः ॥ ३९ ॥
विकारं न ह्यजनयत्सुतीक्ष्णमपि तद्विषम् ।
भीमसंहनने भीमे अजीर्यत वृकोदरे ॥ ४० ॥

भीमसेनने भाइयोंसे दुर्योधनके कार्योंको कह सुनाया और नागलोकमें भला वा बुरा जो कुछ हुआ था, वह सबभी भली भांति प्रकाश किया । (२९—३३)

अनन्तर राजा युधिष्ठिर उनसे यह अर्थयुक्त वाक्य बोले, कि तुम चुप हो जाओ, यह सब हाल कभी प्रकाश मत करना । हे कुन्तीपुत्रो! तुम अबसे यत्न पूर्वक आपसमें अपनी रक्षा करना । महा बाहु धर्मराज युधिष्ठिर यह कहकर भाइयोंके साथ सावधान बने रहे। धर्मात्मा विदुर उनको ऐसा परामर्श देते थे, कि जिस्से उन पृथापुत्रोंकी चूक न हो । जब उसका प्रिय सारथी गला घूंटके मारा गया, तबभी धर्मात्मा विदुरने उनको उत्तम सुमति प्रदान की । (३४—३७)

उसके अनन्तर दुर्योधनने भीमसेन के भोजनके पदार्थमें फिर नया तेज विष मिलाया। वैश्याकुमार युयुत्सुने पाण्डवोंके हितके लिये वह प्रकाश कर दिया, पर तौभी बिना विकार वृकोदरने उसे खाकर पचा लिया । वह विष तेज और भीमके नाशनेयोग्य होने परभी भीममें विकार उपजा नहीं सका, सो भीमने उनको पचा डाला । (३८—४०)

एवं दुर्योधनः कर्णः शकुनिश्चाऽपि सौबलः।
अनेकैरभ्युपायैस्ताञ्जिघांसन्ति स्म पाण्डवान्॥ ४१॥
पाण्डवा अपि तत्सर्वं प्रत्यजानन्नमर्षिताः ।
उद्भावनमकुर्वन्तो विदुरस्य मते स्थिताः ॥ ४२ ॥
कुमारान्क्रीडमानांस्तान्दृष्ट्वा राजाऽतिदुर्मदान्।
गुरुं शिक्षार्थमन्विष्य गौतमं तन्न्यवेदयत्॥ ४३ ॥
शरस्तम्बे समुद्भूतं वेदशास्त्रार्थपारगम् ।
अधिजग्मुश्च कुरवो धनुर्वेदं कृपात्तु ते ॥४४॥ (५२०६)

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यामादिपर्वणि संभवपर्वणि भीमप्रत्यागमने ऊनत्रिंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १२९ ॥

जनमेजय उवाच— कृपस्याऽपि मम ब्रह्मन्संभवं वक्तुमर्हसि ।
शरस्तम्बात्कथं जज्ञे कथं वाऽस्त्राण्यवाप्तवान्॥ १ ॥
वैशम्पायन उवाच- महर्षेर्गौतमस्याऽऽसीच्छरद्वान्नाम गौतमः ।
पुत्रः किल महाराज जातः सह शरैर्विभो॥ २ ॥
न तस्य वेदाध्ययने तथा बुद्धिरजायत ।
यथाऽस्य बुद्धिरभवद्धनुर्वेदे परंतप ॥ ३ ॥

इस प्रकार दुर्योधन, कर्ण और सुबल पुत्र शकुनिने नाना उपायोंसे पाण्डवोंको नष्ट करनेकी चेष्टा की थी। हे शत्रुनाशिन्! पाण्डवगण वह जानने परभी विदुरके मतमें रह कर उस बातपर क्रोध प्रगट नहीं करते थे। अस्तु। इधर ये सब कुमार अत्यंत दुष्ट हैं, ऐसा जब धृतराष्ट्रने देखा, तब उनके लिये एक गुरु चाहिये ऐसा निश्चय करके, शरस्तंभ में उत्पन्न, वेद और शास्त्रोंमें पारंगत भगवान् कृपाचार्य जीके अधीन उनको किया, और इस प्रकार कौरव कुमारों का धनुर्वेदका अध्ययन कृपाचार्यजीके पास हुआ। (४१—४४) [५२०६]

आदिपर्वमें एकसौ उनतीस अध्याय समाप्त।

आदिपर्वमें एकसौ तीस अध्याय।

जनमेजयजी बोले कि हे ब्रह्मन्! कृपके जन्मकी भी कथा कहिये। उन्होंने क्यों कर शरकण्डेकी लकडी से जन्म लिया था, और क्योंकर अस्त्रोंको लाभ किया था? श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि महाराज! महर्षि गौतमके शरद्वान नामक एक पुत्र थे; उन गौतमने शरकण्डेसे जन्म लिया था। हे शत्रुनाशिन् धनुर्वेदमें उनकी जैसी बुद्धि थी, वेद पठनमें वैसी बुद्धि नहीं हुई थी; जिस प्रकार ब्रह्म-

अधिजग्मुर्यथा वेदांस्तपसा ब्रह्मचारिणः ।
तथा स तपसोपेतः सर्वाण्यस्त्राण्यवाप ह ॥ ४ ॥
धनुर्वेदपरत्वाच्च तपसा विपुलेन च ।
भृशं संतापयामास देवराजं स गौतमः ॥ ५ ॥
ततो जानपदीं नाम देवकन्यां सुरेश्वरः ।
प्राहिणोत्तपसो विघ्नं कुरु तस्येति कौरव ॥ ६ ॥
सा हि गत्वाऽऽश्रमं तस्य रमणीयं शरद्वतः।
धनुर्बाणधरं बाला लोभयामास गौतमम् ॥ ७ ॥
तामेकवसनां दृष्ट्वा गौतमोऽप्सरसं वने ।
लोकेऽप्रतिमसंस्थानां प्रोत्फुल्लनयनोऽभवत् ॥ ८ ॥
धनुश्च हि शरास्तस्य कराभ्यामपतद्भुवि ।
वेपथुश्चाऽपि तां दृष्ट्वा शरीरे समजायत ॥ ९ ॥
स तु ज्ञानगरीयस्त्वात्तपसश्च समर्थनात् ।
अवतस्थे महाप्राज्ञो धैर्येण परमेण ह ॥ १० ॥
यस्तस्य सहसा राजन्विकारः समदृश्यत ।
तेन सुस्राव रेतोऽस्य स च तन्नाऽन्वबुध्यत॥ ११ ॥
धनुश्च सशरं त्यक्त्वा तथा कृष्णाजिनानि च।
स विहायाऽऽश्रमं तं च तां चैवाऽप्सरसं मुनिः १२॥

चारी लोग तपसे वेदको ज्ञात होते हैं, वैसेही उन्होंने तपहीसे सर्वास्त्रोंको प्राप्त किया था । उन गौतमने धनुर्वेदमें अपरिमित ज्ञान और अनन्त तपस्यासे देवराजकोभी बहुत डरपाया था । (१--५)

हे कौरव ! अनन्तर देवेन्द्रने जानपदी नाम्नी देवबालाको यह आज्ञा देकर उनके सामने भेजा,कि तुम गौतम की तपस्यामें विघ्न डालो। बाला जानपदी गौतमजीके सुन्दर आश्रममें जाकर धनुषबाण धारी उन शरद्वानको लुभाने लगी । उस वनमें अनुपम सुन्दरी एक वस्त्र पहिरे अप्सरा को देखकर गौतमके नेत्रोंमें प्रफुल्लता छा गयी; उनके हाथोंसे धनुषबाण धरती पर गिर पडे,और देह कांपने लगी । पर उन महाप्राज्ञ ऋषि कुमार के उत्तम ज्ञान और तपस्यामें दृढ प्रतिज्ञा रहनेसे वह परम धीरज धरे रहे । (६--१०)

महाराज ! उनमें एकायक जो विकार आन पहुंचा था, उसीसे उनका वीर्य गिर गया था । पर वह उस बातको नहीं जान सके थे । अनन्तर वह धनुर्बाण,

जगाम रेतस्तत्तस्य शरस्तम्बे पपात च।
शरस्तम्बे च पतितं द्विधा तदभवन्नृप ॥ १३ ॥
तस्याऽथ मिथुनं जज्ञे गौतमस्य शरद्वतः।
मृगयां चरतो राज्ञः शान्तनोस्तु यदृच्छया ॥ १४ ॥
कश्चित्सेनाचरोऽरण्ये मिथुनं तदपश्यत।
धनुश्च सशरं दृष्ट्वा तथा कृष्णाजिनानि च ॥ १५ ॥
ज्ञात्वा द्विजस्य चाऽपत्ये धनुर्वेदान्तगस्य ह।
स राज्ञे दर्शयामास मिथुनं सशरं धनुः ॥ १६ ॥
स तदादाय मिथुनं राजा च कृपयाऽन्वितः।
आजगाम गृहानेव मम पुत्राविति ब्रुवन् ॥ १७ ॥
ततः संवर्धयामास संस्कारैश्चाऽप्ययोजयत्।
प्रातिपेयो नरश्रेष्ठो मिथुनं गौतमस्य तत् ॥ १८ ॥
गौतमोऽपि ततोऽभ्येत्य धनुर्वेदपरोऽभवत्।
कृपया यन्मया बालाविमौ संवर्धिताविति ॥ १९ ॥
तस्मात्तयोर्नाम चक्रे तदेव स महीपतिः।
गोपितौ गौतमस्तत्र तपसा समविन्दत ॥ २० ॥

कृष्णसार मृगका चर्म और उस आश्रम और अप्सराको तजकर अन्य स्थानमें चले गये। उनका वीर्य शरकण्डे की लकडी पर गिरा था,इसलिये वह दो भाग होगया,उससे एक कन्या और एक पुत्रका जन्म हुआ। (११—१४)

अनन्तर मृगयाके लिये मनमाने घूमने वाले, नरनाथ शान्तनुके एक सैनिकने वनमें उस पुत्र और कन्याको देखा और वहां धनुर्वाण और मृगका चर्म देखकर समझा, कि यह दोनों धनुर्वेदमें दक्ष किसी ब्राह्मणकी सन्तान होंगी। तब उस सैनिकने धनुर्बाण और दोनों बच्चोंको लेजाकर नरनाथको दिखाया। नरनाथने कृपापूर्वक उन बच्चोंको लेलिया और यह कह कर, कि "यह मेरी सन्तान हुई" अपने स्थानको पधारे। (१४–१७)

अनन्तर प्रतीपके पुत्र नरश्रेष्ठ शान्तनुने गौतमके उस पुत्र और कन्याको सम्पूर्ण संस्कारसे सुधार और पाल पोषकर बढाया और गौतमभी उस आश्रमसे आनकर धनुर्वेदमें दत्तचित्त रहे। महीपाल शान्तनुने यह समझ कर, कि "मैने कृपापूर्वक इन बच्चों को जिलाया है" उनके कृप और कृपी यही नाम रख दिये। १८–२०

आगत्य तस्मै गोत्रादि सर्वमाख्यातवांस्तदा।
चतुर्विधं धनुर्वेदं शास्त्राणि विविधानि च ॥ २१ ॥
निखिलेनाऽस्य तत्सर्वं गुह्यमाख्यातवांस्तदा।
सोऽचिरेणैव कालेन परमाचार्यतां गतः ॥ २२ ॥
ततोऽधिजग्मुः सर्वे ते धनुर्वेदं महारथाः ।
धृतराष्ट्रात्मजाश्चैव पाण्डवाः सह यादवैः ॥
वृष्णयश्च नृपाश्चाऽन्ये नानादेशसमागताः॥ २३॥ [५२२९]

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यामादिपर्वणि संभवपर्वणि कृपोत्पत्तौ त्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १३० ॥

वैशम्पायन उवाच-विशेषार्थी ततो भीष्मः पौत्राणां विनयेप्सया।
इष्वस्त्रज्ञान्पर्यपृच्छदाचार्यान्वीर्यसंमतान् ॥ १ ॥
नाऽल्पधीर्नाऽमहाभागस्तथा नाऽनस्त्रकोविदः।
नाऽदेवसत्त्वो विनयेत्कुरूनस्त्रे महाबलान् ॥ २ ॥
इति संचिन्त्य गाङ्गेयः सदा भरतसत्तमः ॥ ३ ॥
द्रोणाय वेदविदुषे भारद्वाजाय धीमते ।
पाण्डवान्कौरवांश्चैव ददौ शिष्यान्नरर्षभ ॥ ४ ॥

गौतमजी तपके द्वारा यह जान सके थे, कि उस स्थानमें दोनों सन्तान रखी हुई हैं, सो तब वहां आनकर अपने गोत्रादि सब कह गये। उन्होंने कृपको चार प्रकारके धनुर्वेद, नाना शास्त्र-विद्या और दूसरे गुप्त विषयोंकी शिक्षा दी। कृप स्वल्प कालके ही बीचमें परम आचार्य बने। महारथी धृतराष्ट्र--पुत्रगण, महाबली पाण्डवगण, यादव, वृष्णि, और नानादेशोंसे आये हुए दूसरे भूपाल उनसे धनुर्वेद सीखने लगे।(२१-२३)[५२२९]

आदिपर्वमें एकसौ तीस अध्याय समाप्त।

—

आदिपर्वमें एकसौ इकतीस अध्याय।

श्रीवैशम्पायनजी बोले,कि अनन्तर भीष्म पौत्रोंको विशेष रूपसे विद्या पढाने और विनय सिखानेके लिये बाण चलानेमें दक्ष, अस्त्रविद्यामें पण्डित, वीर्यवन्त आचार्य ढूंढने लगे। यह समझकर, कि जो अच्छे बुद्धिमान् महाभाग नाना अस्त्रों के चलानेमें पण्डित और देवसमान महात्मा न होवें, उनसे कौरवोंको अस्त्र विद्या न सीखना चाहिये। भरत-वंशियों में श्रेष्ठपुरुष भीष्मने पाण्डव और कौरवोंको भरद्वाजके पुत्र वेदमें पण्डित धीमान् द्रोणके शिष्य बना दिया। अस्त्र

शास्त्रतः पूजितश्चैव सम्यक्तेन महात्मना ।
स भीष्मेण महाभागस्तुष्टोऽस्त्रविदुषां वरः ॥ ५ ॥
प्रतिजग्राह तान्सर्वाञ्शिष्यत्वेन महायशाः ।
शिक्षयामास च द्रोणो धनुर्वेदमशेषतः ॥ ६ ॥
तेऽचिरेणैव कालेन सर्वशास्त्रविशारदाः ।
बभूवुः कौरवा राजन्पाण्डवाश्चाऽमितौजसः ॥ ७ ॥
जनमेजय उवाच—कथं समभवद् द्रोणः कथं चाऽस्त्राण्यवाप्तवान् ।
कथं चाऽगात्कुरून्ब्रह्मन्कस्य पुत्रः स वीर्यवान्॥ ८ ॥
कथं चाऽस्य सुतो जातः सोऽश्वत्थामाऽस्त्रवित्तमः ।
एतदिच्छाम्यहं श्रोतुं विस्तरेण प्रकीर्तय ॥ ९ ॥
वैशम्पायन उवाच- गङ्गाद्वारं प्रति महान्बभूव भगवानृषिः ।
भरद्वाज इति ख्यातः सततं संशितव्रतः ॥ १० ॥
सोऽभिषेक्तुं ततो गङ्गां पूर्वमेवाऽगमन्नदीम्।
महर्षिभिर्भरद्वाजो हविर्धाने चरन्पुरा ॥ ११ ॥
ददर्शाऽप्सरसं साक्षाद् घृताचीमाप्लुतामृषिः।
रूपयौवनसंपन्नां मदृप्तां मदालसाम् ॥ १२ ॥
तस्याः पुनर्नदीतीरे वसनं पर्यवर्तत ।

चलानेवालोंमें श्रेष्ठ महाभाग और अति यशवन्त द्रोणाचार्यने महात्मा भीष्मसे शास्त्रानुसार भले प्रकार पूजे जाकर सन्तोषपूर्वक उन सबोंको शिष्य बनाया। आगे उन्होंने उनको विशेष प्रकारसे धनुर्वेद सिखाया। हे महाराज ! वे अनन्त तेजयुक्त पाण्डव और कौरवलोग स्वल्पकालहीमें सब शास्त्रोंमें पण्डित होगये। (१–७)

जनमेजयने पूछा, कि हे ब्राह्मण ! वह वीर्यवन्त द्रोण किसके पुत्र थे ? किस प्रकार उनका जन्म हुआ था ? क्योंकर उन्होंने शास्त्रोंको प्राप्त किया था ? और क्योंकर कौरवोंसे मिले ? फिर भी अश्व-त्थामा नामक सर्वशास्त्रोंमें दक्ष प्रधान उनके पुत्रने क्योंकर जन्म लिया था ? यह सब भले प्रकार सुनना चाहता हूं आप कहिये। (८–९)

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि गंगाद्वार के निकट भरद्वाज नामसे प्रख्यात सदा प्रशंसित व्रतयुक्त भगवान् महर्षि वसते थे। एक समय वह अग्निहोत्र करने के अभिप्रायसे पहिले ही महर्षियोंके साथ गंगाजीके किनारे नहाने गये थे;

व्यपकृष्टाम्बरां दृष्ट्वा तामृषिश्चकमे ततः ॥ १३ ॥
तत्र संसक्तमनसो भरद्वाजस्य धीमतः ।
ततोऽस्य रेतश्चस्कन्द तदृषिर्द्रोण आदधे ॥ १४ ॥
ततः समभवद् द्रोणः कलशे तस्य धीमतः ।
अध्यगीष्ट स वेदांश्च वेदाङ्गानि च सर्वशः ॥ १५ ॥
अग्निवेशं महाभागं भरद्वाजः प्रतापवान् ।
प्रत्यपादयदाग्नेयमस्त्रमस्त्रविदां वरः ॥ १६ ॥
अग्नेस्तु जातः स मुनिस्ततो भरतसत्तम ।
भरद्वाजं तदाग्नेयं महास्त्रं प्रत्यपादयत् ॥ १७ ॥
भरद्वाजसखा चाऽऽसीत्पृषतो नाम पार्थिवः ।
तस्याऽपि द्रुपदो नाम तदा समभवत्सुतः ॥ १८ ॥
स नित्यमाश्रमं गत्वा द्रोणेन सह पार्थिवः ।
चिक्रिडाऽध्ययनं चैव चकार क्षत्रियर्षभः ॥ १९ ॥
ततो व्यतीते पृषते स राजा द्रुपदोऽभवत् ।
पञ्चालेषु महाबाहुरुत्तरेषु नरेश्वरः ॥ २० ॥
भरद्वाजोऽपि भगवानारुरोह दिवं तदा ।

वहां देखा, कि रूप-यौवनवती, मद-गर्विता और मदसे झूमती हुई घृताची नाम्नी अप्सरा नहाकर उठी; फिर उस समय उसका वस्त्रभी गिर गया। धीमान् महर्षि उस विवस्त्रा अप्सरा को देखकर कामके वशमें होगये; उनका चित्त घृताची पर झुकनेसे वीर्य गिर गया। ऋषिने तब द्रोणनामक यज्ञके बर्तनमें उस वीर्यको रखा। (१०-१४)

धीमान् भरद्वाजके द्रोणमें रखे हुए उस वीर्यसे द्रोणका जन्म हुआ। उन्होंने वेद और वेदाङ्ग सब पढ लिये थे। अस्त्र विद्या जाननेवालोंमें प्रधान प्रतापी भरद्वाजने पहिले अग्निवेश नामक महाभाग महर्षिको अग्न्यस्त्र दिया था। हे भरतश्रेष्ठ! अग्निसे जन्म लिये हुए उन ऋषि अग्निवेशने अपने गुरुपुत्र द्रोणको वह अग्न्यस्त्र दे दिया। (१५-१७)

पृषत नामक एक राजा ऋषि भरद्वाजके मित्र थे, भरद्वाजके पुत्र होनेके कालमें उनको भी द्रुपद नामक एक पुत्र हुआ था। वह पृषत्पुत्र नित्य भरद्वाजके आश्रममें जाकर द्रोणके साथ खेलते और पढते थे। हे नरनाथ! अनन्तर राजा पृषतके परलोक सिधार जानेपर महाभुज द्रुपद उत्तर पाञ्चाल देशके राजा

तत्रैव च वसन्द्रोणस्तपस्तेपे महातपाः ॥ २१ ॥
वेदवेदाङ्गविद्वान्स तपसा दग्धकिल्बिषः ।
ततः पितृनियुक्तात्मा पुत्रलोभान्महायशाः॥ २२ ॥
शारद्वतीं ततो भार्यां कृपीं द्रोणोऽन्वविन्दत ।
अग्निहोत्रे च धर्मे च दमे च सततं रताम् ॥ २३ ॥
अलभद्गौतमी पुत्रमश्वत्थामानमेव च ।
स जातमात्रो व्यनदद्यथैवोच्चैःश्रवा हयः ॥ २४ ॥
तच्छ्रुत्वाऽन्तर्हितं भूतमन्तरिक्षस्थमब्रवीत् ।
अश्वस्येवाऽस्य यत्स्थाम नदतः प्रदिशो गतम् ॥२५॥
अश्वत्थामैव बालोऽयं तस्मान्नाम्ना भविष्यति ।
सुतेन तेन सुप्रीतो भारद्वाजस्ततोऽभवत् ॥ २६ ॥
तत्रैव च वसन्धीमान्धनुर्वेदपरोऽभवत् ।
स शुश्राव महात्मानं जामदग्न्यं परंतपम् ॥ २७ ॥
सर्वज्ञानविदं विप्रं सर्वशस्त्रभृतां वरम् ।
ब्राह्मणेभ्यस्तदा राजन्दित्सन्तं वसु सर्वशः॥ २८ ॥
स रामस्य धनुर्वेदं दिव्यान्यस्त्राणि चैव ह ।

हुए। उस समय भगवान् ऋषि भरद्वाज का स्वर्ग गमन हुआ और अतितपयुक्त द्रोण भी उसी स्थान में रह कर तप करने लगे। (१८—२१)

अनन्तर वेद वेदाङ्गोंमें पण्डित और तपस्याके बलसे निष्पापी उन अतियशवंत द्रोणने पिताके पहिलेके नियोगानुसार पुत्रके लोभसे शरद्वतकी कन्या कृपीसे विवाह किया! उसके अनन्तर अग्निहोत्र में वाक आदि बाहरी इन्द्रियोंके रोकनेमें और धर्ममें प्रेमी उस गौतम पुत्री कृपी ने अश्वत्थामा नामक पुत्र प्राप्त किया। पुत्रने जन्म लेतेही उच्चैःश्रवा अश्वकी भांति शब्द किया, वह सुनकर उसकालमें आकाश स्थित किसी बिन देखे प्राणीने कहा था, कि घोडेकी नाई शब्द करने-वाला इस बालकका स्थाम (शब्द) नाना दिशाओंमें पहुंचा है, इस कारण इसका नाम अश्वत्थामा होगा। (२२–२६)

उससे भरद्वाजपुत्र धीमान् द्रोणने उस पुत्रसे बडी प्रीति प्राप्त की, और स्थानहीमें रहकर धनुर्वेदमें सन्नद्ध रहे। हे महाराज! उन्होंने उस समय सुना, कि सर्वशस्त्र धरनेवालोंमें श्रेष्ठ, सर्व-ज्ञानयुक्त, शत्रुनाशी ब्राह्मण महात्मा जामदग्न्य रामने ब्राह्मणोंको सब धन

श्रुत्वा तेषु भनःश्चक्रे नीतिशास्त्रे तथैव च ॥ २९ ॥
ततः स व्रतिभिः शिष्यैस्तपोयुक्तैर्महातपाः ।
वृतः प्रायान्महाबाहुर्महेन्द्रं पर्वतोत्तमम् ॥ ३० ॥
ततो महेन्द्रमासाद्य भारद्वाजो महातपाः ।
क्षान्तं दान्तममित्रघ्नमपश्यद्भृगुनन्दनम् ॥ ३१ ॥
ततो द्रोणो वृतः शिष्यैरुपगम्य भृगूद्वहम् ।
आचख्यावात्मनो नाम जन्म चाङ्गिरसः कुले॥३२ ॥
निवेद्य शिरसा भूमौ पादौ चैवाऽभ्यवादयत् ।
ततस्तं सर्वमुत्सृज्य वनं जिगमिषुं तदा ॥ ३३ ॥
जामदग्न्यं महात्मानं भारद्वाजोऽब्रवीदिदम् ।
भरद्वाजात्समुत्पन्नं तथा त्वं मामयोनिजम् ॥ ३४॥
आगतं वित्तकामं मां विद्धि द्रोणं द्विजोत्तमम् ।
तमब्रवीन्महात्मा स सर्वक्षत्रियमर्दनः ॥ ३५ ॥
स्वागतं ते द्विजश्रेष्ठ यदिच्छसि वदस्व मे ।
एवमुक्तस्तु रामेण भारद्वाजोऽब्रवीद्वचः ॥ ३६ ॥
रामं प्रहरतां श्रेष्ठं दित्सन्तं विविधं वसु ।

बांट देनेकी इच्छा की है । रामके धनुर्वेद और दिव्यास्त्रों का समाचार पाकर उन्होंने वह सब और नीति शास्त्रोंको उन से सीखना चाहा । उसके अनुसार वह अति तपोयुक्त महाभुज भरद्वाज तपस्वी और व्रतयुक्त शिष्योंसे घिरे रहकर महेन्द्र पर्वत पर गये ।(२६—३०)

आगे वहां पहुंचकर शत्रुकुलनाशी क्षान्त और दान्त भृगुनन्दनको देखा । अनन्तर उसने शिष्योंके साथ उनके पास जाकर अपना नाम और अङ्गिराके कुलमें जन्म होनेकी बात आदि कही और भूमिपर सिर रगडकर उनके दोनों पांवों में प्रणाम किया । उसके पीछे द्रोण सब छोड छाड वनमें जानेकी इच्छा किये हुए महात्मा जामदग्न्यसे यह बोले, कि हे महामते ! मैं विन योनिसे जन्मा हुआ हूं, भरद्वाजसे द्रोणीमें उत्पन्न हुआ हूं, हालमें धनकी लालसासे यहां आया हूं । (३१—३५)

क्षत्रियकुलनाशी महात्मा परशुरामने उनसे कहा, कि हे द्विजश्रेष्ठ! तुम भले आये हो, जो चाहते हो, कहो ! रामके यह बात कहनेपर भरद्वाजपुत्र उन नाना धन दानके इच्छक योधोंमें प्रधान जामदग्न्य से बोले, हे महाभाग व्रतशील !

अहं धनमनन्तं हि प्रार्थये विपुलव्रत ॥ ३७॥

राम उवाच— हिरण्यं मम यच्चाऽन्यद्वसु किंचिदिह स्थितम् ।
ब्राह्मणेभ्यो मया दत्तं सर्वमेतत्तपोधन ॥ ३८ ॥
तथैवेयं धरा देवी सागरान्ता सपत्तना ।
कश्यपाय मया दत्ता कृत्स्ना नगरमालिनी ॥ ३९ ॥
शरीरमात्रमेवाऽद्य ममेदमवशेषितम् ।
अस्त्राणि च महार्हाणि शस्त्राणि विविधानि च॥४०॥
अस्त्राणि वा शरीरं वा वरयैतन्ममोद्यतम् ।
वृणीष्व किं प्रयच्छामि तुभ्यं द्रोण वदाऽऽशु तत् ॥४१ ॥

द्रोण उवाच— अस्त्राणि मे समग्राणि ससंहाराणि भार्गव ।
सप्रयोगरहस्यानि दातुमर्हस्यशेषतः ॥ ४२ ॥
तथेत्युक्त्वा ततस्तस्मै प्रादादस्त्राणि भार्गवः ।
सरहस्यव्रतं चैव धनुर्वेदमशेषतः ॥ ४३ ॥
प्रतिगृह्य तु तत्सर्वं कृतास्त्रो द्विजसत्तमः ।
प्रियं सखायं सुप्रीतो जगाम द्रुपदं प्रति ॥ ४४ ॥[५२७३]

इति श्री महाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यामादिपर्वणि संभवपर्वणि द्रोणस्य भार्गवास्त्रप्राप्तावेकत्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १३१ ॥

वैशम्पायन उवाच—ततो द्रुपदमासाद्य भारद्वाजः प्रतापवान् ।

मैं अपरिमित धन मांगता हूं। राम बोले, कि हे तपोधन ! मेरा सुवर्ण और दूसरा धन जो कुछ था, सब ब्राह्मणोंको दे चुका हूं, ग्राम और नगरोंकी मालासे सजी हुई, सागर तक चली गयी हुई, यह पृथ्वी भी कश्यपको दे दी है, अब मेरे केवल बडे मूल्यवान् अस्त्र शस्त्र और मेरा यह शरीरही शेष है, हे द्रोण ! अब अंस्त्र अथवा शरीर देनेको उद्यत हूं। शीघ्र कहो, कि इन दोनोंमेंसे क्या चाहते हो, वह तुमको दे देता हूं। (३५—४१)

द्रोण बोले, कि हे भार्गव ! प्रयोग,उपसंहार और रहस्योंके साथ सम्पूर्ण अस्त्रों को भले प्रकार मुझको दीजिये । भार्गव ने तथास्तु कहकर उनको सम्पूर्ण अस्त्र और रहस्य और नियमोंके साथ धनुर्वेद को विशेषरूपसे दे दिया। द्विजोंमें श्रेष्ठ द्रोण सब अस्त्र शस्त्रों को लेकर कृतार्थ होकरके प्रसन्नचित्तसे प्रिय मित्र दुरुपदके पास गये। (४२-४४) [५२७३]

आदिपर्वमें एकसौ इकतीस अध्याय समाप्त।

अब्रवीत्पार्थिवं राजन्सखायं विद्धि मामिह ॥ १ ॥
इत्येवमुक्तः सख्या स प्रीतिपूर्वं जनेश्वरः ।
भारद्वाजेन पाञ्चाल्यो नाऽमृष्यत वचोऽस्य तत् २ ॥
सक्रोधामर्षजिह्मभ्रूः कषायीकृतलोचनः ।
ऐश्वर्यमदसंपन्नो द्रोणं राजाऽब्रवीदिदम् ॥ ३ ॥

दूरुपद उवाच-- अकृतेयं तव प्रज्ञा ब्रह्मन्नाऽतिसमञ्जसा ।
यन्मां ब्रवीषि प्रसभं सखा तेऽहमिति द्विज ॥ ४ ॥
न हि राज्ञामुदीर्णानामेवं भूतैर्नरैः क्वचित् ।
सख्यं भवति मन्दात्मञ्श्रियाहीनैर्धनच्युतैः ॥ ५ ॥
सौहृदान्यपि जीर्यन्ते कालेन परिजीर्यतः ।
सौहृदं मे त्वया ह्यासीत्पूर्वं सामर्थ्यबन्धनम् ॥ ६ ॥
न सख्यमजरं लोके हृदि तिष्ठति कस्यचित् ।
कालो ह्येनं विहरति क्रोधो वैनं हरत्युत ॥ ७ ॥
मैवं जीर्णमुपास्स्व त्वं सख्यं भवत्वपाकृधि ।
आसीत्सख्यं द्विजश्रेष्ठ त्वया मेऽर्थनिबन्धनम् ॥ ८ ॥
न दरिद्रो वसुमतो नाऽविद्वान्विदुषः सखा ।

आदिपर्वमें एकसौ बत्तीस अध्याय ।

श्रीवैशम्पायनजी बोले, की अनन्तर प्रतापी भरद्वाजके पुत्र भूपाल द्रुपदके यहां जाकर बोले, कि हे महाराज ! मुझको मित्र करके जानो ! मित्र भारद्वाजके प्रेमसे समान कहनेपर नरनाथपाञ्चालराज वह बात सह नहीं सके । वह ऐश्वर्यके अहङ्कार स उन्मत्त थे, सो क्रोध अमर्षसे भौंहोंको बिगाड करके आंखे लालकर द्रोणसे यह बोले, कि हे विप्र ! तुम्हारी बुद्धि नहीं सुधरी और पक्की नहीं हुई है, क्योंकि तुमने एकायक मुझसे कहा, कि मैं तुम्हारा मित्र हूं । (१—४)

हे स्वल्पबुद्धे ! अनन्त ऐश्वर्ययुक्त भूपालोंकी कभी ऐसे श्रीवर्जित और निर्धनजनोंसे मित्रता नहीं होती; काल सब वस्तुओंको तोड फोड देता है, उससे मित्रता भी टूट जाती है; पहिले समान होनेके कारण तुमसे मेरी मित्रता हुई तो थी; पर भूमण्डलमें मित्रता कभी किसीके हृदयमें बनी नहीं रहती है, क्योंकि कालसे वह दूर हो जाती है, अथवा क्रोध से वह जडसहित उखड जाती है; सो तुम उस पुरानी मित्रताकी पूजा मत करो, ऐसा न समझो, कि वहभी बनी है । (५—८)

न शूरस्य सखा क्लीबः सखिपूर्वं किमिष्यते॥ ९ ॥
ययोरेव समं वित्तं ययोरेव समं श्रुतम्।
तयोर्विवाहः सख्यं च न तु पुष्टविपुष्टयोः ॥ १०॥
नाऽश्रोत्रियः श्रोत्रियस्य नाऽरथी रथिनः सखा।
नाऽराजा पार्थिवस्याऽपि सखिपूर्वं किमिष्यते॥११॥
वैशम्पायन उवाच—द्रुपदेनैवमुक्तस्तु भारद्वाजः प्रतापवान्।
मुहूर्तं चिन्तयित्वा तु मन्युनाऽभिपरिप्लुतः॥१२॥
स विनिश्चित्य मनसा पाञ्चाल्यं प्रति बुद्धिमान्।
जगाम कुरुमुख्यानां नगरं नागसाह्वयम्॥१३॥[५२८६]

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यामादिपर्वणि संभवपर्वणि द्रोणद्रुपदसंवादे द्वात्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १३२ ॥

वैशम्पायन उवाच—स नागपुरमागम्य गौतमस्य निवेशने।
भारद्वाजोऽवसत्तत्र प्रच्छन्नं द्विजसत्तमः ॥ १ ॥
भारद्वाजस्ततः पार्थान्कृपस्याऽनन्तरं प्रभुः।
अस्त्राणि शिक्षयामास नाऽबुध्यन्त च तं जनाः॥ २ ॥

हे द्विजोंमें श्रेष्ठजन! अवश्यही किसी प्रयोजनसे तुमसे मेरी मित्रता हुई थी; देखो, दरिद्र कभी धनीका मित्र नहीं होता; मूर्ख कभी पण्डितसे मित्रता नहीं कर सकता है, वीर्यवर्जित जन कभी वीर का मित्र नहीं हो सकता, फिर तुम क्यों पहिलेकी मित्रता चाहते हो? जिनका धन समान है, जिनका ज्ञान समान है, उनहींमें मित्रता और शादी हो सकती है, पुष्ट और अपुष्ट जनोंसे कभी मित्रता नहीं हो सकती है; जो श्रोत्रिय नहीं है, वह कभी श्रोत्रियका मित्र नहीं हो सकता है, रथवालेसे रथ वार्जितजन कभी मित्रता नहीं कर सकता है, राजा न होनेसे राजा के साथ मित्रता नहीं कर सकता है, सो तुम क्यों पहिलेकी मित्रता चाहते हो। (८-११)

वैशम्पायनजी बोले कि, प्रतापी भारद्वाजने द्रुपदकी यह सब बात सुनकर क्रोधसे जलकर क्षणभर सोचा; वह बुद्धिमान मनही मनमें पाञ्चाल राज की पराजयका उपाय निश्चयकर हस्तिनापुर नामक कौरवोंके नगरको गये। (१२—१४) [५२८६]

आदि पर्वमें एकसौ बत्तीस अध्याय।

आदिपर्वमें एकसौ तैंतिस अध्याय।

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि द्विजश्रेष्ठ भारद्वाज हस्तिनापुरमें जाकर कृपाचार्य के घरमें छिप कर रहनेलगे। वहां

एवं स तत्र गूढात्मा कंचित्कालमुवास ह।
कुमारास्त्वथ निष्क्रम्य समेता गजसाह्वयात् ॥ ३॥
क्रीडन्तो वीटया तत्र वीराः पर्यचरन्मुदा।
पपात कूपे सा वीटी तेषां वै क्रीडतां तदा॥ ४॥
ततस्ते यत्नमातिष्ठन्वीटामुद्धर्तुमादृताः।
न च ते प्रत्यपद्यन्त कर्म वीटोपलब्धये॥ ५॥
ततोऽन्योन्यमवैक्षन्त व्रीडयाऽवनताननाः।
तस्या योगमविन्दन्तो भृशं चोत्कण्ठिताऽभवन् ६॥
तेऽपश्यन्ब्राह्मणं श्याममापन्नं पलितं कृशम्।
कृत्यवन्तमदूरस्थमग्निहोत्रपुरस्कृतम्॥ ७॥
ते तं दृष्ट्वा महात्मानमुपगम्य कुमारकाः।
भग्नोत्साहक्रियात्मानो ब्राह्मणं पर्यवारयन्॥ ८॥
अथ द्रोणः कुमारांस्तान्दृष्ट्वा कृत्यवतस्तदा।
प्रहस्य मन्दं पैशल्यादभ्यभाषत वीर्यवान्॥ ९॥
अहो वो धिग्बलं क्षात्रं धिगेतां वः कृतास्त्रताम्।

द्रोणाचार्य कृपाचार्यके शिक्षा दे लेनेके पीछे, कुन्तीके पुत्रोंको अस्त्रकी शिक्षा देते थे, पर उनको कोई जान नहीं सका था। इस प्रकार भारद्वाज द्रोण कृपाचार्यके घरमें कुछ काल छिपकर बसे। (१—३)

अनन्तर एक समय युधिष्ठिर आदि वीर लडके मिलकर हस्तिनापुरसे निकल कर "बीटा" अर्थात् गेंदका खेल खेलते हुए प्रसन्न चित्तसे घूमने लगे। खेलने के काल उनकी वह गेंद कूपमें गिर गयी। अनन्तर लडकोंने ध्यान लगाकर उस गेंदके उठानेके लिये बडा प्रयत्न किया, पर किसी प्रकार मनोरथ सफल नहीं हो सका। इससे वे लज्जासे मुह नीचा कर एक दूसरेके मुखकी ओर ताकने लगे और उसके उठानेका उपाय न देखकर बडे सोचमें पडे। (३—६)

ऐसे समयमें उन्होंने देखा, कि श्याम बूढे, दुबले, अग्निहोत्र से पुरस्कृत, आह्निक किये हुए, एक ब्राह्मण पासही खडे हैं। तब उपस्थित कार्यमें विफल मनोरथ, सुतरां उत्साह खोये हुए, वे लडके उन महात्मा ब्राह्मणको देखकरके ही उनके पास जाकर चारों ओर घेर कर खडे हो गये। वीर्यवन्त द्रोण लडकों को विफल मनोरथ देखकर दक्षताके कारण कुछ हंसकर बोले, कि छि! तुम्हारे क्षत्रिय

भरतस्याऽन्वये जाता ये वीटां नाऽधिगच्छत ॥१०॥
वीटां च मुद्रिकां चैव ह्यहमेतदपि द्वयम् ।
उद्धरेयमिषीकाभिर्भोजनं मे प्रदीयताम् ॥ ११ ॥
एवमुक्त्वा कुमारांस्तान्द्रोणः स्वाङ्गुलिवेष्टनम् ।
कूपे निरुदके तस्मिन्नपातयदरिन्दमः ।
ततोऽब्रवीत्तदा द्रोणं कुन्तीपुत्रो युधिष्ठिरः ॥ १२ ॥

युधिष्ठिर उवाच— कृपस्याऽनुमते ब्रह्मन्भिक्षामाप्नुहि शाश्वतीम् ।
एवमुक्तः प्रत्युवाच प्रहस्य भरतानिदम् ॥ १३ ॥

द्रोण उवाच— एषा मुष्टिरिषीकाणां मयाऽस्त्रेणाऽभिमन्त्रिताः ।
अस्या वीर्यं निरीक्षध्वं यदन्यस्य न विद्यते ॥ १४ ॥
भेत्स्यामीषीकया वीटां तामिषीकां तथाऽन्यया।
तामन्यया समायोगे वीटाया ग्रहणं मम ॥ १५ ॥

वैशम्पायन उवाच-ततो यथोक्तं द्रोणेन तत्सर्वं कृतमञ्जसा ।
तदवेक्ष्य कुमारास्ते विस्मयोत्फुल्ललोचनाः ॥ १६ ॥
आश्चर्यमिदमत्यन्तमिति मत्वा वचोऽब्रुवन् ॥ १७ ॥

कुमारा ऊचुः— मुद्रिकामपि विप्रर्षे शीघ्रमेतां समुद्धर ।

बलपर धिक्कार है, तुम्हारे अस्त्र शिक्षा परभी धिक्कार है! क्योंकि तुम भरतकुल में जन्म लेकरके भी इस गेंदको उठा नहीं सके; अब यदि तुम मुझे खानेको दो, तो मैं गेंद और मुंदरी दोनों तिनके से उठा सकता हूं, (७–११)

शत्रुनाशी द्रोणने कुमारोंसे यह कहकर उस जलसे खाली कूपमें अपनी मुंदरी डाल दी। तब कुन्तीपुत्र युधिष्ठिर उनसे बोले, कि ब्रह्मन्! कृपाचार्यकी आज्ञासे आप हमारे पास सदा रहनेकी भिक्षा लीजिये। ऐसा कहे जाकर द्रोण हंसकर भरत-कुमारोंसे बोले, कि यह मुट्ठी भर इषीका अर्थात् सरकण्डेपर मैं अस्त्रका मन्त्र फूंक देता हूं, दूसरे अस्त्रमें जो वीर्य नहीं है, इसमें वही देखोगे। इस इषीकासे वह गेंद भेद कर दूसरी इषीका से इस इषीकाको भेद करूंगा फिर और इषीकासे उस दूसरेको भी विद्ध करूंगा, इस प्रकार क्रमसे इषीकाके योग से उस गेंदको थाम लूंगा। (१२–१५)

श्रीवैशंपायनजी बोले, कि अनन्तर द्रोणने जैसा कहा, ठीक वैसाही कर दिखाया। लडकोंने अचरजके मारे आंखे चढाकर वह लीला देखी और यह मानकर, कि यह बहुत आश्चर्य है, कहा कि

वैशम्पायन उवाच—ततः शरं समादाय धनुर्द्रोणो महायशाः ॥ १८ ॥
शरेण विद्ध्वा मुद्रां तामूर्ध्वमावाहयत्प्रभुः ।
सशरं समुपादाय कूपादङ्गुलिवेष्टनं ॥ १९ ॥
ददौ ततः कुमाराणां विस्मितानामविस्मितः।
मुद्रिकामुद्धृतां दृष्ट्वा तमाहुस्ते कुमारकाः ॥ २० ॥
कुमारा ऊचुः— अभिवादयामहे ब्रह्मन्नैतदन्येषु विद्यते ।
कोऽसि कस्याऽसि जानीमो वयं किं करवामहे॥२१ ॥
वैशम्पायन उवाच—एवमुक्तस्ततो द्रोणः प्रत्युवाच कुमारकान् ।
द्रोण उवाच— आचक्षध्वं च भीष्माय रूपेण च गुणैश्च माम्॥२२॥
स एव सुमहातेजाः सांप्रतं प्रतिपत्स्यते ।
वैशम्पायन उवाच—तथेत्युक्त्वा च गत्वा च भीष्ममूचुः कुमारकाः२३ ॥
ब्राह्मणस्य वचस्तथ्यं तच्च कर्म तथाविधम् ।
भीष्मः श्रुत्वा कुमाराणां द्रोणं च प्रत्यजानत॥ २४ ॥
युक्तरूपः स हि गुरुरित्येवमनुचिन्त्य च ।
अथैनमानीय तदा स्वयमेव सुसत्कृतम् ॥ २५ ॥
परिपप्रच्छ निपुणं भीष्मः शस्त्रभृतां वरः ।

हे विप्रर्षे । यह मुन्दरी भी तुरन्त निकालिये । अनन्तर अति यशस्वी प्रभु द्रोण ने शरासन लेकर बाणसे उस मुन्दरी को विद्धकर ऊपर उठा लिया । आगे बाण सहित उस मुन्दरीको लेकर विस्मय रहित चित्तसे विस्मययुक्त कुमारोंको दे दिया । (१६—२०)

कुमारोंने बाणसे उस मुंदरीको उठा देखकर कहा,कि ब्रह्मन्! यह विद्या दूसरों में दीख नहीं पडती, सो आपको प्रणाम करते हैं, जानना चाहते हैं, कि आप कौन, किसके पुत्र हैं; और यह भी कहिये कि हम आपका क्या उपकार करें

कुमारोंकी वह बात सुनकर द्रोणने उत्तर दिया, कि तुम भीष्मके पास जाकर मेरा आकार और गुणकी बात ठीक ठीक कहो । इससे वह बडे तेजस्वी भीष्म मुझ को पहिचान लेंगे । (२०—२३)

श्रीवैशम्पायनजी बोले, अनन्तर लडकोंने वह मानकर भीष्म के पास जाकर उन ब्राह्मणका ठीक ठीक हाल और उनके आश्चर्य कार्य की बात कह सुनायी। भीष्म कुमारोंके मुखसे सब सुनकर उन ब्राह्मणको द्रोण करके जाना । और सोचा, कि यही आचार्य कार्य के योग्य हैं । अनन्तर शस्त्रधारियोंमें श्रेष्ठ भीष्मने

हेतुमागमने तच्च द्रोणः सर्वं न्यवेदयत् ॥ २६ ॥

द्रोण उवाच—महर्षेरग्निवेशस्य सकाशमहमच्युत ।
अस्त्रार्थमगमं पूर्वं धनुर्वेदचिकीर्षया ॥ २७ ॥
ब्रह्मचारी विनीतात्मा जटिलो बहुलाः समाः ।
अवसं सुचिरं तत्र गुरुशुश्रूषणे रतः ॥ २८ ॥
पाञ्चाल्यो राजपुत्रश्च यज्ञसेनो महाबलः ।
इष्वस्त्रहेतोर्न्यवसत्तस्मिन्नेव गुरौ प्रभुः ॥ २९ ॥
स मे तत्र सखा चाऽऽसीदुपकारी प्रियश्च मे ।
तेनाऽहं सह संगम्य वर्तयन्सुचिरं प्रभो ॥ ३० ॥
बाल्यात्प्रभृति कौरव्य सहाऽध्ययनमेव च ।
स मे सखा तदा तत्र प्रियवादी प्रियंकरः ॥ ३१ ॥
अब्रवीदिति मां भीष्म वचनं प्रीतिवर्धनम् ।
अहं प्रियतमः पुत्रः पितुर्द्रोण महात्मनः ॥ ३२ ॥
अभिषेक्ष्यति मां राज्ये स पाञ्चाल्यो यदा तदा ।
तद्भोग्यं भविता तात सखे सत्येन ते शपे ॥ ३३ ॥
मम भोगाश्च वित्तं च त्वदधीनं सुखानि च ।

स्वयं उसीक्षण वहां जाकर उनको आदर पूर्वक लिवा लाकर आनेका कारण योग्य रूपसे पूछा। (२३—२६)

द्रोण आद्योपान्त सब सुनाकर बोले, कि हे आयुष्मन् ! मैं पहिले धनुर्वेद और अस्त्र शिक्षाके लिये महर्षि अग्निवेशके यहां गया था, वहां ब्रह्मचारी, नम्र जटाधारी और गुरुकी सेवामें उत्साहित होकर अनेक वर्ष गंवाये; उन दिनों पाञ्चालराज कुमार महाबली प्रभावी यज्ञसेन उन गुरुके निकट अस्त्र विद्या और धनुर्विद्या सीखनेके लिये रहते थे। हे प्रभो ! वहां वह मेरे उपकारी, मित्र और प्यारे थे, उनके साथ एकत्र रहकर मैं बहुत दिन सुखसे था, हे कौरव ! बालेपनसे उनके साथ एकत्र मैंने पढा था, इस लिये वह सदा मेरे प्रिय करनेवाले और प्रिय कहनेवाले मित्र थे। (२६–३१)

हे भीष्म ! वह मेरी प्रीति के लिये सदा मुझसे यह कहा करते थे, कि "हे द्रोण ! मैं महानुभव पिताका बडा प्यारा पुत्र हूं, सो मैं तुमसे यह सत्य प्रतिज्ञा करता हूं, कि जब पाञ्चालराज मुझको राज्यपर बैठावेंगे, तब वह राज्य तुम भोग करोगे, ऐ मित्र ! मेरा भोग, ऐश्वर्य और

एवमुक्त्वाऽथ वव्राज कृतास्त्रः पूजितो मया ॥ ३४॥
तच्च वाक्यमहं नित्यं मनसा धारयंस्तदा ।
सोऽहं पितुर्नियोगेन पुत्रलोभाद्यशस्विनीम् ॥ ३५ ॥
नातिकेशीं महाप्रज्ञामुपयेमे महाव्रताम् ।
अग्निहोत्रे च सत्ये च दमे च सततं रताम् ॥ ३६ ॥
अलभद्गौतमी पुत्रमश्वत्थामानमौरसम् ।
भीमविक्रमकर्माणमादित्यसमतेजसम् ॥ ३७ ॥
पुत्रेण तेन प्रीतोऽहं भरद्वाजो मया यथा ।
गोक्षीरं पिबतो दृष्ट्वा धनिनस्तत्र पुत्रकान् ॥ ३८ ॥
अश्वत्थामाऽरुदद्बालस्तन्मे संदेहयद्दिशः ।
न स्नातकोऽवसीदेत वर्तमानः स्वकर्मसु ॥ ३९ ॥
इति संचिन्त्य मनसा तं देशं बहुशो भ्रमन् ।
विशुद्धमिच्छन्गांगेय धर्मोपेतं प्रतिग्रहम् ॥ ४० ॥
अन्तादन्तं परिक्रम्य नाऽभ्यगच्छं पयस्विनीम् ।
अथ पिष्टोदकेनैनं लोभयन्ति कुमारकाः ॥ ४१ ॥

सुख सबतुम्हारे हाथ रहेंगे। " आगे जब उनकी अस्त्र-शिक्षा अन्त हुई, तब वह मुझसे सम्मान पाकर वहां से चले गये। मैंने तभीसे सदा उनकी वह बात मनमें रख ली। (३२—३५)

अनन्तर मैंने पिताके नियोगसे पुत्र पानेके लोभसे स्वल्प केशी अति बुद्धिमती व्रतशीला और अग्निहोत्र तथा याग करने और इन्द्रियोंके रोकनेमें सदा नियुक्त कृपीसे विवाह किया। कृपीने मेरे वीर्यसे अश्वत्थामा नामक भीमविक्रमी सूर्य समान तेजस्वी एक पुत्र प्राप्त किया। भरद्वाज मुझको पाकर जिस प्रकार प्रसन्न हुए थे, मैं भी उस सन्तानको प्राप्त कर उसी प्रकार कृतार्थ हुआ। अश्वत्थामा बालेपनमें एकदिन धनीके पुत्रोंको दूध पीते देखकर ऐसा रोने लगा, कि उससे मेरी सुध बुध जाती रही! यह सोचकर, अपने यागादि कर्म करनेवाले स्नातक जन अप्रसन्न न होवें अर्थात् यदि याग शील जनके थोडी गाय रहें, तो उनसे गायका प्रतिग्रह करने से उनका धर्म लोप हो सकता है, मैंने धर्मयुक्त विशुद्ध प्रतिग्रह करनेके लिये बहुत बार उस देशमें भ्रमण किया। (३६—४०)

हे गङ्गा नन्दन! देशके एक छोरसे दूसरे छोरतक घूमने परभी दूध देनेवाली एकभी गाय नहीं मिली। आगे दूसरे

पीत्वा पिष्टरसं बालः क्षीरं पीतं मयाऽपि च ।
ननर्तोत्थाय कौरव्य हृष्टो बाल्याद्विमोहितः॥ ४२ ॥
तं दृष्ट्वा नृत्यमानं तु बालैः परिवृतं सुतम् ।
हास्यतामुपसंप्राप्तं कश्मलं तत्र मेऽभवत् ॥ ४३ ॥
द्रोणं धिगस्त्वधनिनं यो धनं नाऽधिगच्छति ।
पिष्टोदकं सुतो यस्य पीत्वा क्षीरस्य तृष्णया ।
नृत्यति स्म मुदाविष्टः क्षीरं पीतं मयाऽप्युत॥ ४४ ॥
इति संभाषतां वाचं श्रुत्वा मे बुद्धिरच्यवत् ।
आत्मानं चाऽऽत्मना गर्हन्मनसेदं व्यचिन्तयम्॥४५॥
अपि चाऽहं पुरा विप्रैर्वर्जितो गर्हितो वसे ।
परोपसेवां पापिष्ठां न च कुर्यां धनेप्सया ॥ ४६ ॥
इति मत्वा प्रियं पुत्रं भीष्माऽऽदाय ततो ह्यहम् ।
पूर्वस्नेहानुरागित्वात्सदारः सौमकिं गतः ॥ ४७ ॥
अभिषिक्तं तु श्रुत्वैव कृतार्थोऽस्मीति चिन्तयन् ।
प्रियं सखायं सुप्रीतो राज्यस्थं समुपागमम् ॥ ४८ ॥

लडकोंने पिष्टोदक (चावलकी बुकनीके साथ मिले हुए जल) से उस लडकेको लुभाया। हे कुरुनन्दन ! बालक अश्वत्थामा उस पिष्टोदकको पीकर बालेपनके कारण मुग्ध होकर यह कह करके, कि मैंने दूध पी लिया है, उठकर आनन्दसे नाचने लगा। उस पुत्रको लडकोंसे घेरे जाकर और उनकी हँसीका विषय ज्ञात होकर नाचते देखकर मेरे हृदयमें अति दुःख छा गया; विशेष चिढानेवालोंसे यह बात सुन कर, कि "दरिद्र द्रोणपर धिक्कार है ! जो धनके विना पीनेका दूधका ठिकाना नहीं कर सकता, जिसका पुत्र दूधकी प्यासमे पिष्टोदक पीकर प्रसन्न हृदयसे मैं ने दूध पीया, कहके नाचा था" मेरी बुद्धि बिगड गयी। (४३—४५)

आगे आपही अपनी निन्दाकर सोचने लगा, कि मैं ब्राह्मणोंसे त्याग दिये जाने और निन्दा पाने परभी वसा रहूंगा, तौभी धनके लोभसे पापकर्म, परायी सेवा नहीं करूंगा। हे भीष्म ! पहिले ऐसा विचार करने परभी मैं प्यारे पुत्र और स्त्रीको लेकर, पहिलेके स्नेहके हेतु राजा द्रुपदके यहां गया; यह सुनकर, कि मेरे वह प्रिय मित्र राज्यपर बैठे हैं, अपनेको कृतार्थ जानकर प्रसन्नचित्त से उनके पास गया। (४५—४८)

संस्मरन्संगमं चैव वचनं चैव तस्य तत् ॥ ४९ ॥
ततो द्रुपदमागम्य सखिपूर्वमहं प्रभो ।
अब्रुवं पुरुषव्याघ्र सखायं विद्धि मामिति ॥ ५० ॥
उपस्थितस्तु द्रुपदं सखिवच्चाऽस्मि संगतः ।
स मां निराकारमिव प्रहसन्निदमब्रवीत् ॥ ५१ ॥
अकृतेयं तव प्रज्ञा ब्रह्मन्नाऽतिसमञ्जसा ।
यदात्थ मां त्वं प्रसभं सखा तेऽहमिति द्विज ॥ ५२ ॥
संगतानीह जीर्यन्ति कालेन परिजीर्यतः ।
सौहृदं मे त्वया ह्यासीत्पूर्वं सामर्थ्यबन्धनम् ॥ ५३ ॥
नाऽश्रोत्रियः श्रोत्रियस्य नाऽरथी रथिनः सखा ।
साम्याद्धि सख्यं भवति वैषम्यान्नोपपद्यते ॥ ५४ ॥
न सख्यमजरं लोके विद्यते जातु कस्यचित् ।
कालो वैनं विहरति क्रोधो वैनं रहत्युत ॥ ५५ ॥
मैवं जीर्णमुपास्व त्वं सख्यं भवत्वपाकृधि ।
आसीत्सख्यं द्विजश्रेष्ठ त्वया मेऽर्थनिबन्धनम् ॥ ५६ ॥

हे प्रभो ! उनसे एकत्र वास और उनकी प्रतिज्ञाको स्मरण करते हुए, मैंने उनके पास जाकर मित्रतामें कहा, कि हे पुरुष व्याघ्र ! मैं तुम्हारा मित्र हूं; यह कहकर मित्रवत् निकट जाकर उनसे मिला। इससे नीच मनुष्यकी भांति मुझपर हंसकर उन्होंने कहा, कि हे ब्रह्मन् ! तुम्हारी यह बात बुद्धिमानोंकीसी और सुधरी हुई नहीं है। (४९—५२)

हे द्विज ! क्योंकि तुमने एकायक मुझसे कहा, कि "मैं तुम्हारा मित्र हूं" कालसे सभी टूट फूट जाता है, सो मित्रता भी टूट फूट जाती है; तुमसे पहिले जो मेरी मित्रता हुई थी, वह उन दिनोंके सम्बन्धहीसे हुई थी; वास्तवमें अश्रोत्रिय जन श्रोत्रियसे, रथहीन जन रथयुक्तसे और राजा न होनेसे राजासे मित्रता नहीं कर सकता है, अतएव तुम क्यों पहिली मित्रताकी इच्छा करते हो ? दोनोंके समान होनेसे मित्रता होती है, पर आपसमें छोटे बडे होनेसे क्यों कर मित्रता हो सकती है ? इस भूमण्डलमें किसीकी मित्रता कभी सदा बनी नहीं रहती है, क्योंकि कालसे वह दूरी हो सकती है, अथवा क्रोधसे उखड जाती है; अत एव तुम उस पुरानी मित्रताकी इच्छा करनी छोड दो, अब उसे बनी-बनायी मत जानो। (५२—५६)

न ह्यनाढ्यः सखाऽऽढ्यस्य नाऽविद्वान्विदुषः सखा।
न शूरस्य सखा क्लीबः सखिपूर्वं किमिष्यते ॥ ५७॥
न हि राज्ञामुदीर्णानामेवंभूतैर्नरैः क्वचित् ।
सख्यं भवति मन्दात्मञ्छ्रियाहीनैर्धनच्युतैः ॥५८॥
नाऽश्रोत्रियः श्रोत्रियस्य नाऽरथी रथिनः सखा।
नाऽराजा पार्थिवस्याऽपि सखिपूर्वं किमिष्यते ॥५९॥
अहं त्वया न जानामि राज्यार्थे संविदं कृताम् ।
एकरात्रं तु ते ब्रह्मन्कामं दास्यामि भोजनम् ॥६०॥
एवमुक्तस्त्वहं तेन सदारः प्रस्थितस्तदा ।
तां प्रतिज्ञां प्रतिज्ञाय यां कर्ताऽस्म्यचिरादिव ॥६१ ॥
द्रुपदेनैवमुक्तोऽहं मन्युनाऽभिपरिप्लुतः ।
अभ्यागच्छं कुरून्भीष्म शिष्यैरर्थी गुणान्वितैः ६२॥
ततोऽहं भवतः कामं संवर्धयितुमागतः ।
इदं नागपुरं रम्यं ब्रूहि किं करवाणि ते ॥ ६३ ॥

वैशम्पायन उवाच—एवमुक्तस्तदा भीष्मो भारद्वाजमभाषत ।

भीष्म उवाच— अपज्यं क्रियतां चापं साध्वस्त्रं प्रतिपादय ।
भुङ्क्ष्व भोगान्भृशं प्रीतः पूज्यमानः कुरुक्षये॥ ६४॥

हे द्विजोमें श्रेष्ठ जन! किसी प्रयोजन हीसे तुमसे मेरी मित्रता हुई थी; देखो दरिद्रजन धनीका, मूर्ख पण्डितका, और वीर्य-वर्जित जन वीरका मित्र नहीं हो सकता है, सो तुम क्यों पहिली मित्रता की इच्छा कर रहे हो? स्वल्पबुद्धे! जो अनन्त ऐश्वर्ययुक्त भूपाल हैं, उनकी कभी ऐसे दरिद्रोंसे मित्रता नहीं हो सकती। मैंने राज्यके विषयमें तुमसे जो प्रतिज्ञा की थी, वह मुझको स्मरण नहीं होती, पर तुम एक रात जो कुछ खाना चाहो, वह मैं देनेको सम्मत हूं।(५६-६०)

उनकी वह बात सुनकर, ऐसी प्रतिज्ञा करके जोकि मैं बिनाविलम्ब पूर्ण कर सकूंगा स्त्रीके साथ लौट आया। हे भीष्म! मैं राजा द्रुपदसे इस प्रकार लज्जित होकर गुणवन्त शिष्योंकी खोजमें कुरुराज्यमें उपस्थित हुआ था, आगे आपकी इच्छानुरूप कार्य करनेके लिये इस सुन्दर नागपुरमें आया, कहिये इस समय क्या करना होगा?। (६१-६३)

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि द्रोणकी यह बात सुनकर भीष्मने उनसे कहा, कि शरासनके गुणको ठीलाकर लीजिये;

कुरूणामस्ति यद्वित्तं राज्यं चेदं सराष्ट्रकम् ।
त्वमेव परमो राजा सर्वे च कुरवस्तव ॥ ६५ ॥
यच्च ते प्रार्थितं ब्रह्मन्कृतं तदिति चिन्त्यताम् ।
दिष्ट्या प्राप्तोऽसि विप्रर्षे महान्मेऽनुग्रहः कृतः ॥ ६६॥ [५३५२]

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यामादिपर्वणि संभवपर्वणि भीष्मद्रोणसमागमे त्रयस्त्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १३३ ॥

वैशम्पायन उवाच—ततः संपूजितो द्रोणो भीष्मेण द्विपदां वरः ।
विशश्राम महातेजाः पूजितः कुरुवेश्मनि ॥ १ ॥
विश्रान्तेऽथ गुरौ तस्मिन्पौत्रानादाय कौरवान् ।
शिष्यत्वेन ददौ भीष्मो वसूनि विविधानि च ॥ २ ॥
गृहं च सुपरिच्छन्नं धनधान्यसमाकुलम् ।
भारद्वाजाय सुप्रीतः प्रत्यपादयत प्रभुः ॥ ३ ॥
स ताञ्छिष्यान्महेष्वासः प्रतिजग्राह कौरवान् ।
पाण्डवान्धार्तराष्ट्रांश्च द्रोणो मुदितमानसः ॥ ४ ॥
प्रतिगृह्य च तान्सर्वान्द्रोणो वचनमब्रवीत् ।
रहस्येकं प्रतीतात्मा कृतोपसदनांस्तथा ॥ ५ ॥

इन कुमारोंको भले प्रकार अस्त्रविद्या दान कीजिये। कुरुवोंके घरमें पूजे जाकर भोगके पदार्थ भोगिये; कुरुराजके इस राष्ट्रके साथ राज्य और जो कुछ ऐश्वर्य हैं, आप सबके राजाके समान बने रहिये; सम्पूर्ण कौरव आपहीके हुए। हे ब्रह्मन्! जान लीजिये, कि आपकी जो कुछ प्रार्थना थी, वह सब पूरी हो गयी है। विप्रर्षे! हमारे भाग्यसे आप महत् जन कृपासे यहां आ गये हैं। (६४—६६) [५३५२]

आदिपर्वमें एकसौ तैंतीस अध्याय समाप्त।

आदिपर्वमें एकसौ चौंतीस अध्याय।

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि अनन्तर अति तेजस्वी मनुष्योंमें श्रेष्ठजन द्रोण, भीष्मसे पूजे जाकर कुरुवोंके घरमें आदरपूर्वक रहने लगे। आगे आचार्यकी थकाई दूर होनेपर भीष्मने पौत्रोंको ले जाकर उनके शिष्य बना दिये और प्रसन्न होकर नाना धन देकर उनके रहनेके लिये धन-धान्य से भरा पूरा साफ एक गृह ठहरा दिया था। बडे धनुषधारी द्रोणने प्रसन्न चित्तसे उन कुरुपाण्डव और धृतराष्ट्रके पुत्रोंको शिष्य बना लिया। (१ —४)

अनन्तर द्रोण अकेले उन सब निकटके कौरवोंसे निरालेमें विश्वासपूर्वक बोले, कि हे अनघगण! कोई एक वाञ्छित विषय

द्रोण उवाच— कार्यं मे कांक्षितं किंचिद्धृदि संपरिवर्तते ।
कृतास्त्रैस्तत्प्रदेयं मे तदेतद्वदतानघाः ॥ ६ ॥

वैशम्पायन उवाच—तच्छ्रुत्वा कौरवेयास्ते तूष्णीमासन्विशांपते ।
अर्जुनस्तु ततः सर्वं प्रतिजज्ञे परंतप ॥ ७ ॥
ततोऽर्जुनं तदा मूर्ध्नि समाघ्राय पुनः पुनः ।
प्रीतिपूर्वं परिष्वज्य प्ररुरोद मुदा तदा ॥ ८ ॥
ततो द्रोणः पाण्डुपुत्रानस्त्राणि विविधानि च ।
ग्राहयामास दिव्यानि मानुषाणि च वीर्यवान् ॥ ९ ॥
राजपुत्रास्तथा चाऽन्ये समेत्य भरतर्षभ ।
अभिजग्मुस्ततो द्रोणमस्त्रार्थे द्विजसत्तमम् ॥ १० ॥
वृष्णयश्चाऽन्धकाश्चैव नानादेश्याश्च पार्थिवाः ।
सूतपुत्रश्च राधेयो गुरुं द्रोणमियात्तदा ॥ ११ ॥
स्पर्धमानस्तु पार्थेन सूतपुत्रोऽत्यमर्षणः ।
दुर्योधनं समाश्रित्य सोऽवमन्यत पाण्डवान् ॥ १२ ॥
अभ्ययात्स ततो द्रोणं धनुर्वेदचिकीर्षया ।
शिक्षाभुजबलोद्योगैस्तेषु सर्वेषु पाण्डवाः ॥ १३ ॥
अस्त्रविद्यानुरागाच्च विशिष्टोऽभवदर्जुनः ।

मेरे मनमें जग रहा है। सो वह सत्य कर बोलो, कि जब तुम लोग अस्त्र विद्यामें दक्ष बनोगे, तब मेरी वह इच्छा पूरी करना। हे पृथ्वीनाथ ! कौरवलोग यह सुनकर चुप हो रहे ! अनन्तर शत्रु दंसनेहारे अर्जुनने उनकी सब कामनाओंको पूरी करनेका प्रण ठाना। तब द्रोणने बार बार अर्जुनका सिर चूमकर प्रसन्नतासे उनको गलेसे लगाया और हर्षके मारे उनकी आंखोंसे आंसू गिरने लगे। अनन्तर वह वीर्यवन्त द्रोण पाण्डुनन्दनको दिव्य और मानवी नाना प्रकारके अस्त्रोंकी शिक्षा देने लगे। (५—९)

हे भरतश्रेष्ठ ! तब दूसरे अनेक राजकुमारभी आकर के अस्त्रशिक्षाके लिये द्विजोंमें श्रेष्ठ द्रोणाचार्यके पास एकात्रित होने लगे। वृष्णिवंशी, अन्धकवंशी और अनेक देशोंके भूपालपुत्र तथा राधाकुमार सूतपुत्र कर्ण द्रोणाचार्यके निकट आकर के शिष्य बने। सूतपुत्र अति द्वेषयुक्त होकर अर्जुनसे अहङ्कार दिखाकर दुर्योधनकी ओर झुककर पाण्डवोंका अनादर करने लगे। (१०—१३)

तुल्येष्वस्त्रप्रयोगेषु लाघवे सौष्ठवेषु च ॥ १४ ॥
सर्वेषामेव शिष्याणां बभूवाऽभ्यधिकोऽर्जुनः।
ऐन्द्रिमप्रतिमं द्रोण उपदेशेष्वमन्यत ॥ १५ ॥
एवं सर्वकुमाराणामिष्वस्त्रं प्रत्यपादयत् ॥ १६ ॥
कमण्डलुं च सर्वेषां प्रायच्छच्चिरकारणात् ।
पुत्राय च ददौ कुम्भमविलम्बनकारणात् ॥ १७ ॥
यावत्ते नोपगच्छन्ति तावदस्मै परां क्रियाम् ।
द्रोण आचष्ट पुत्राय तत्कर्म जिष्णुरौहत ॥ १८ ॥
ततः स वारुणास्त्रेण पूरयित्वा कमण्डलुम् ।
सममाचार्यपुत्रेण गुरुमभ्येति फाल्गुनः ॥ १९ ॥
आचार्यपुत्रात्तस्मात्तु विशेषोपचयेऽपृथक् ॥
न व्यहीयत मेधावी पार्थोऽप्यस्त्रविदां वरः ॥ २० ॥
अर्जुनः परमं यत्नमातिष्ठद्गुरुपूजने ।
अस्त्रे च परमं योगं प्रियो द्रोणस्य चाऽभवत् ॥ २१ ॥

अर्जुन धनुर्वेद सीखनेके लिये सदा द्रोणाचार्यके निकट रहते थे। वह शिक्षा, भुजबल, उद्योग और अस्त्र-विद्यामें यत्न रखनेके कारण सबोंसे विशेष बन गये। अस्त्र चलानेमें समान होनेपरभी उस विषयमें शीघ्र और काशलके विषयमें अर्जुनही सम्पूर्ण शिष्योंसे बढ कर निकल। तब द्रोणने समझा, कि कोईभी शिक्षा के विषयमें इस इन्द्रपुत्र अर्जुनके समान नहीं हो सकेगा; आचार्य द्रोण इस प्रकार बाण और अस्त्र विद्याकी शिक्षा देने लगे। इसलिये, कि जल लानेमें विलम्ब हो; वह सब शिष्योंको एक एक कमण्डलु अर्थात् छोटा मुहवाला जलका बर्तन देते थे, और शीघ्र कार्य पूरा करनेक लिये अपने पुत्र अश्वत्थामाको एक कलसा देते थे; इसका अभिप्राय यह है, कि अश्वस्थामाके शीघ्र जल लानेपर द्रोणाचार्य उसको किसी किसी श्रेष्ठ प्रकरण का उपदेश किया करते थे। पाण्डुपुत्र अर्जुनने तर्कसे उनके उस कामको जान लिया था; सो वह वरुणास्त्रसे कमण्डलु भरकर आचार्यके पुत्र अश्वत्थामाके साथ एकही समयमें गुरुके पास आ जाते थे; इससे अस्त्र पण्डित मेधायुक्त पार्थ किसी विशेष गुणके विषय में भी आचार्यके पुत्रसे अलग और कम नहीं हुए। (१३—२०)

वह गुरुकी सेवामें बडा यत्न और अस्त्रोंके सीखनेमें बडा ध्यान देने लगे,

तं दृष्ट्वा नित्यमुद्युक्तमिष्वस्त्रं प्रति फाल्गुनम्।
आहूय वचनं द्रोणो रहः सूदमभाषत ॥ २२ ॥
अन्धकारेऽर्जुनायाऽन्नं न देयं ते कदाचन ।
न चाऽऽख्येयमिदं चापि मद्वाक्यं विजये त्वया॥२३॥
ततः कदाचिद्भुञ्जाने प्रववौ वायुरर्जुने ।
तेन तत्र प्रदीपः स दीप्यमानो विलोपितः॥ २४ ॥
भुङ्क्त एव तु कौन्तेयो नाऽऽस्यादन्यत्र वर्तते।
हस्तस्तेजस्विनस्तस्य अनुग्रहणकारणात् ॥ २५ ॥
तदभ्यासकृतं मत्वा रात्रावपि स पाण्डवः।
योग्यां चक्रे महाबाहुर्धनुषा पाण्डुनन्दनः॥ २६ ॥
तस्य ज्यातलनिर्घोषं द्रोणः शुश्राव भारत।
उपेत्य चैनमुत्थाय परिष्वज्येदमब्रवीत् ॥ २७ ॥
द्रोण उवाच- प्रयतिष्ये तथा कर्तुं यथा नाऽन्यो धनुर्धरः।
त्वत्समो भविता लोके सत्यमेतद्ब्रवीमि ते ॥ २८ ॥
वैशम्पायन उवाच- ततो द्रोणोऽर्जुनं भूयो हयेषु च गजेषु च ।
रथेषु भूमावपि च रणशिक्षामशिक्षयत् ॥ २९ ॥

सो द्रोणाचार्यके बडे प्रिय बने। आचार्य द्रोण अर्जुनको अस्त्रोंकी शिक्षामें सदा सन्नद्ध देखकर रसोईदारको निराले में बुला कर बोले, कि तुम कभी अंधेरेमें अर्जुनको खानेके लिये अन्न मत देना और अर्जुनसे यह भी नहीं कहना, कि मैने तुमसे ऐसा कहा है। (२१-२३)

अनन्तर एक समय अर्जुन खा रहे थे, कि ऐसे समयमें हवा चलने लगी, इससे जलते हुए प्रदीपके बुझजाने पर भी तेजस्वी अर्जुन तब अंधेरेमें भोजन करने लगे; अभ्यासके कारण उनका हाथ मुखके किसी और स्थान में नहीं गया; इससे महाभुज पाण्डुनन्दन अर्जुन ने, यह समझ कर, कि अभ्याससेही ऐसा होता है, रातके समय न देखने योग्य निशानेसे बाण चलानेका अभ्यास आरम्भ कर दिया। हे भारत ! आचार्य द्रोण रात्रिके समय उनके बाणोंके छूटनेका शब्द सुनकर उठकरके वहां गये और गले लगाकर अर्जुनसे बोले, कि तुमसे कहता हूं, कि ऐसा प्रयत्न करूंगा, कि मर्त्य लोक भरमें कोई दूसरा धन्वा धरने वाला तुम्हारे समान न होवे। (२३-२८)

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि अनन्तर वीर्यवन्त द्रोणाचार्यने अर्जुन को घोडे

गदायुद्धेऽसिचर्यायां तोमरप्रासशक्तिषु ।
द्रोणः संकीर्णयुद्धे च शिक्षयामास कौरवान् ॥ ३० ॥
तस्य तत्कौशलं श्रुत्वा धनुर्वेदजिघृक्षवः ।
राजानो राजपुत्राश्च समाजग्मुः सहस्रशः ॥ ३१ ॥
ततो निषादराजस्य हिरण्यधनुषः सुतः ।
एकलव्यो महाराज द्रोणमभ्याजगाम ह ॥ ३२ ॥
न स तं प्रतिजग्राह नैषादिरिति चिन्तयन् ।
शिष्यं धनुषि धर्मज्ञस्तेषामेवाऽन्ववेक्षया ॥ ३३ ॥
स तु द्रोणस्य शिरसा पादौ गृह्य परंतपः ।
अरण्यमनुसंप्राप्य कृत्वा द्रोणं महीमयम् ॥ ३४ ॥
तस्मिन्नाचार्यवृत्तिं च परमामास्थितस्तदा ।
इष्वस्त्रे योगमातस्थे परं नियममास्थितः ॥ ३५ ॥
परया श्रद्धयोपेतो योगेन परमेण च ।
विमोक्षादानसंधाने लघुत्वं परमाप सः ॥ ३६ ॥
अथ द्रोणाभ्यनुज्ञाताः कदाचित्कुरुपाण्डवाः।
रथैर्विनिर्ययुः सर्वे मृगयामरिमर्दन ॥ ३७ ॥

पर, रथ पर, हाथी पर और भूमिपर युद्ध करनेकी विशेष शिक्षा दी और गदायुद्धमें, खड्ग चलानेमें तोमर,प्रास, शक्ति आदि विशेष विशेष अस्त्र फेंकनेमें और तंग युद्ध में अर्थात् एकही समय अनेक बाण चलाने अथवा एकबारही अनेक जनोंके संग युद्ध करनेमें सुशिक्षित किया। सहस्रों राजा और राजकुमार उनके उस कौशलकी बातको सुनकर धनुर्वेद सीखनेके लिये इकट्ठे होने लगे। (२९–३१)

हे महाराज! हिरण्यधनु नामक निषाद-राजाका कुमार एकलव्य द्रोणके पास आया। धर्मज्ञ द्रोण यह समझ कर,कि यह व्याधका पुत्र है,राजकुमारोंके चिढनेके भयसे उसको नहीं लिया। हे शत्रु नाशि! एकलव्यने द्रोणाचार्यके पावों पर सिर रखकर, वनमें जाकर मिट्टीसे द्रोणकी एक प्रतिमा गढी और उस प्रतिमूर्त्तिमें अच्छे आचार्यकी बुद्धि देकर नियमसे एकाचित्त होकर धनुर्वेद सीखने लगा। उसकी बडी श्रद्धा और एकचित्तताके कारण अस्त्रोंका विमोचन, आदान और सन्धान बडा सहज हो पडा। (३२–३६)

अनन्तर किसी समय शत्रुदंसने हार कुरुपाण्डव लोग द्रोणाचार्यकी आज्ञासे रथ पर आरूढ होकर मृगयाके लिये

तत्रोपकरणं गृह्य नरः कश्चिद्यदृच्छया ।
राजन्ननुजगामैकः श्वानमादाय पाण्डवान् ॥ ३८ ॥
तेषां विचरतां तत्र तत्तत्कर्मचिकीर्षया ।
श्वा चरन्स वने मूढो नैषादिं प्रति जग्मिवान् ३९॥
स कृष्णमलदिग्धाङ्गं कृष्णाजिनजटाधरम् ।
नैषादिं श्वा समालक्ष्य भषंस्तस्थौ तदन्तिके ॥४०॥
तदा तस्याऽथ भषतः शुनः सप्त शरान्मुखे ।
लाघवं दर्शयन्नस्त्रे मुमोच युगपद्यथा ॥ ४१ ॥
स तु श्वा शरपूर्णास्यः पाण्डवानाजगाम ह ।
तं दृष्ट्वा पाण्डवा वीराः परं विस्मयमागताः॥ ४२ ॥
लाघवं शब्दवेधित्वं दृष्ट्वा तत्परमं तदा ।
प्रेक्ष्य तं व्रीडिताश्चाऽऽसन्प्रशशंसुश्च सर्वशः॥ ४३ ॥
तं ततोऽन्वेषमाणास्ते वने वननिवासिनम् ।
ददृशुः पाण्डवा राजन्नस्यन्तमनिशं शरान्॥ ४४ ॥
न चैनमभिजानंस्ते तदा विकृतदर्शनम् ।
तथैनं परिपप्रच्छुः को भवान्कस्य वेत्युत ॥ ४५ ॥

गये। हे राजन्! तब एक मनुष्य मृगया के योग्य जालादि लेकर, एक कुत्तेको साथ लेकर, अपनी इच्छानुसार पाण्डवों के सङ्ग चलने लगा। आगे उस वनमें जब सब लोग अपना अपना काम पूरा करनेके लिये घूमघाम रहे थे, तब उनका साथी वह कुत्ता किसीसे न देखे जाकर व्याधकी ओर गया और उसको काला, मलीन कृष्णाजिन पहिने हुए और जटाधारी देखकर उसके सामने खडा होकर भोंकने लगा। (३७—४०)

व्याधपुत्रने अस्त्र चलानेमें शीघ्रता दिखा कर उस चिल्लाते हुए कुत्तेके मुह में एक बारही सात बाण चलाया। बाणों से मुह बन्द होने पर कुत्ता पाण्डवोंके पास आया। वीर पाण्डवोंने उसको उस दशामें देखकर बडा अचरज माना और सबलोग अस्त्र चलानेवालेकी बडी फुर्त्ती तथा शब्दवेधनेकी सामर्थ देखकर बडे लज्जित हुए और सब प्रकारसे उसकी प्रशंसा करने लगे ! (४१-४३)

हे राजन् तब पाण्डवोंने उस वनमें रहने वाले अस्त्र चलानेहारेको वनमें ढूंडते हुए देखा, कि वह हरघडी बाण चला रहा है; पर उन्होंने उस स्वरूप बिगाडे हुए व्याधको नहीं पहिचाना; अन्तमें पूछा,

एकलव्य उवाच— निषादाधिपतेर्वीरा हिरण्यधनुषः सुतम् ।
द्रोणशिष्यं च मां वित्त धनुर्वेदकृतश्रमम् ॥ ४६ ॥
वैशम्पायन उवाच—ते तमाज्ञाय तत्त्वेन पुनरागम्य पाण्डवाः ।
यथावृत्तं वने सर्वं द्रोणायाऽऽचख्युरद्भुतम् ॥ ४७ ॥
कौन्तेयस्त्वर्जुनो राजन्नेकलव्यमनुस्मरन् ।
रहो द्रोणं समासाद्य प्रणयादिदमब्रवीत् ॥ ४८ ॥
अर्जुन उवाच— तदाऽहं परिरभ्यैकः प्रीतिपूर्वमिदं वचः ।
भवतोक्तो न मे शिष्यस्त्वद्विशिष्टो भविष्यति ४९॥
अथ कस्मान्मद्विशिष्टो लोकादपि च वीर्यवान्।
अन्योऽस्ति भवतः शिष्यो निषादाधिपतेः सुतः ५०
वैशम्पायन उवाच—मुहूर्तमिव तं द्रोणश्चिन्तयित्वा विनिश्चयम्।
सव्यसाचिनमादाय नैषादिं प्रति जग्मिवान् ॥ ५१ ॥
ददर्श मलदिग्धाङ्गं जटिलं चीरवाससम् ।
एकलव्यं धनुष्पाणिमस्यन्तमनिशं शरान् ॥ ५२ ॥
एकलव्यस्तु तं दृष्ट्वा द्रोणमायान्तमन्तिकात्।
अभिगम्योपसंगृह्य जगाम शिरसा महीम् ॥ ५३ ॥

कि आप कोन हैं? किसके पुत्र हैं ?एकलव्य बोला कि,हे वीरगण ! मैं निषादराज हिरण्यधनु का पुत्र हूं,द्रोणाचार्यका शिष्य होकर के सदा धनुर्वेद सीखनेके लिये परिश्रम कर रहा हूं । (४४-४६)

श्रीवैशम्पायनजी बोले कि, अनन्तर पाण्डवोंने उसको ठीक पहिचानकर लौट कर वह सब आश्चर्य वृत्तान्त सच द्रोणाचार्यको कह सुनाया । हे राजन् ! कुन्तीपुत्र अर्जुन एकलव्यको स्मरण करते हुए द्रोणके पास पहुंच कर प्रेमसे निरालेमें बोले, कि हे आचार्य ! पहिले आपने अकेले मुझको गलेसे लगाकर प्रेमसे यह कहा था, कि,मेरा कोई शिष्य तुमसे श्रेष्ठ न होगा, फिर क्यों वीर्यवन्त निषाद राजका पुत्र आपका शिष्य होकर मुझसे, वरन सम्पूर्ण लोगोंसे श्रेष्ठ हुआ ? (४७—५०)

वैशम्पायन जी बोले, अनन्तर द्रोण उस बातको क्षणभर निश्चयरूपसे सोचकर सव्यसाची अर्जुन को साथ लेकर उस निषाद राजपुत्रके यहां गये और देखा, कि मलसे देह रङ्गा हुआ जटाधारी, चीर पहिने एकलव्य हाथोंसे चापको थामकर सदा बाण चला रहा है। एकलव्यने निकट आये हुए द्रोणाचार्यको देखकर निकट

पूजयित्वा ततो द्रोणं विधिवत्स निषादजः।
निवेद्य शिष्यमात्मानं तस्थौ प्राञ्जलिरग्रतः ॥ ५४ ॥
ततो द्रोणोऽब्रवीद्राजन्नेकलव्यमिदं वचः ।
यदि शिष्योऽसि मे वीर वेतनं दीयतां मम।
एकलव्यस्तु तच्छ्रुत्वा प्रीयमाणोऽब्रवीदिदम् ५५॥

एकलव्य उवाच—किं प्रयच्छामि भगवन्नाज्ञापयतु मां गुरुः ।
न हि किंचिददेयं मे गुरवे ब्रह्मवित्तम ॥५६॥

वैशम्पायन उवाच-तमब्रवीत्त्वयाऽङ्गुष्ठो दक्षिणो दीयतामिति ।
एकलव्यस्तु तच्छ्रुत्वा वचो द्रोणस्य दारुणम्५७॥
प्रतिज्ञामात्मनो रक्षन्सत्ये च नियतः सदा।
तथैव हृष्टवदनस्तथैवाऽदीनमानसः ॥५८॥
छित्त्वाऽविचार्य तं प्रादाद् द्रोणायाऽङ्गुष्ठमात्मनः५९
ततः शरं तु नैषादिरङ्गुलीभिर्व्यकर्षत ।
न तथा च स शीघ्रोऽभूद्यथा पूर्वं नराधिप ॥ ६० ॥
ततोऽर्जुनः प्रीतमना बभूव विगतज्वरः ।
द्रोणश्च सत्यवागासीन्नान्योऽभिभविताऽर्जुनम् ६१॥

आके पांव छूकर प्रणाम किया, विधिपूर्वक पूजकर तथा यह कहकर, कि मैं आपका शिष्य हूं, दोनों हाथ जोड सामने खडा रहा। (५१-५४)

हे राजन्! अनन्तर द्रोणने एकलव्यसे कहा, कि हे वीर! यदि तुम मेरे शिष्य हो, तो मुझको दक्षिणा दो। एकलव्यने सुनकर प्रसन्न चित्तसे कहा, कि भगवन्! आज्ञा कीजिये, कि क्या दूं? हे ब्रह्मज्ञोंमें उत्तम! आप मेरे गुरु हैं, गुरुको मुझे कुछभी अदेय नहीं है। द्रोणाचार्य बोले, कि यदि तुम अवश्य देनेपर हो, तो मुझको दाहिने हाथका अंगूठा देदो। (५५—५७)

एकलव्य सदा सत्य पर खडा था, सो आचार्य द्रोणकी वह कठोरवाणी सुनने पर भी चित्तमें दुःख न मानकर और मुखको प्रसन्न कर अपनी प्रतिज्ञा पूरी करके विना विचार अपने दाहिने अंगूठेको काट कर द्रोणाचार्यको दे दिया। हे नरेश! अनन्तर निषादराज--कुमार शेष उङ्गलियोंसे बाण चलाने लगा, पर पहिले की समान शीघ्रतासे काम न कर सका। तब अर्जुन प्रसन्न चित्त हुए, उनकी मनःपीडा जाती रही और आचार्य द्रोणने पहिले जैसे कहा था, कि

द्रोणस्य तु तदा शिष्यौ गदायोग्यौ बभूवतुः।
दुर्योधनश्च भीमश्च सदा संरब्धमानसौ ॥ ६२ ॥
अश्वत्थामा रहस्येषु सर्वेष्वभ्यधिकोऽभवत् ।
तथाऽतिपुरुषानन्यान्त्सारुकौ यमजावुभौ ॥ ६३ ॥
युधिष्ठिरो रथिश्रेष्ठः सर्वत्र तु धनञ्जयः ।
प्रथितः सागरान्तायां रथयूथपयूथपः ॥ ६४ ॥
बुद्धियोगबलोत्साहैः सर्वास्त्रेषु च निष्ठितः ।
अस्त्रे गुर्वनुरागे च विशिष्टोऽभवदर्जुनः ॥ ६५ ॥
तुल्येष्वस्त्रोपदेशेषु सौष्ठवेन च वीर्यवान् ।
एकः सर्वकुमाराणां बभूवाऽतिरथोऽर्जुनः ॥ ६६ ॥
प्राणाधिकं भीमसेनं कृतविद्यं धनञ्जयम् ।
धार्तराष्ट्रा दुरात्मानो नाऽमृष्यन्त परस्परम् ॥ ६७ ॥
तांस्तु सर्वान्समानीय सर्वविद्यास्त्रशिक्षितान् ।
द्रोणः प्रहरणज्ञाने जिज्ञासुः पुरुषर्षभः ॥ ६८ ॥
कृत्रिमं भासमारोप्य वृक्षाग्रे शिल्पिभिः कृतम् ।

कोईभी अर्जुनको परास्त नहीं कर सकेगा, अब वह बात सच्ची ठहरी । (५७-६१)

दुर्योधन और भीम द्रोणके यह दो शिष्य गदायुद्धमें दक्ष बने, उनमेंसे एक दूसरेपर सदा क्रोधित बना रहता था । अस्त्र चलानेके सब रहस्योंके जाननेमें अश्वत्थामा सबों से अच्छे निकले । नकुल और सहदेव खड्गका बेंट फकडने में सबोंको नांघ गये । युधिष्ठिर रथियोंमें प्रधान हुए । धनञ्जय हर बातमेंही श्रेष्ठ निकले थे । वह बुद्धि, उपाय, बल और उत्साहसे सम्पूर्ण अस्त्र चलानेमें दक्ष रथीदलके स्वामियोंके दलपति हो-कर समुद्रसे लेकर सम्पूर्ण धरतीमें प्रसिद्ध हुए । विशेष अस्त्रोंके चलाने और गुरुकी भक्ति करनेके विषयों में उनके समान कोई दूसरा नहीं था । (६२-६५)

सबों पर बराबर अस्त्रोपदेश होने परभी वीर्यवन्त अर्जुन सौष्ठव अर्थात् स्थिति मुष्टि आदिकी शुद्धिसे सब कुमारों में अद्वितीय अतिरथ करके गिने गये ! हे शत्रुनाशि ! दुरात्मा धृतराष्ट्रपुत्रगण बडे बली भीमसेन और विद्या सीखे हुए अर्जुनको देखकर द्वेषसे जलने लगे । हे पुरुषश्रेष्ठ ! एक समय द्रोणने अस्त्र सम्बन्धी सम्पूर्ण विद्याओंमें शिक्षित उन सब शिष्योंको एकत्रकर यह जानना चाहा कि किसने कैसी शिक्षा ली है । इससे

अविज्ञातं कुमाराणां लक्ष्यभूतमुपादिशत् ॥६९॥

द्रोण उवाच— शीघ्रं भवन्तः सर्वेऽपि धनूंष्यादाय सर्वशः।
भासमेतं समुद्दिश्य तिष्ठध्वं संधितेषवः ॥ ७० ॥
मद्वाक्यसमकालं तु शिरोऽस्य विनिपात्यताम्।
एकैकशो नियोक्ष्यामि तथा कुरुत पुत्रकाः ॥ ७१ ॥

वैशम्पायन उवाच- ततो युधिष्ठिरं पूर्वमुवाचाऽङ्गिरसां वरः ।
संधत्स्व बाणं दुर्धर्ष मद्वाक्यान्ते विमुञ्च तम् ॥ ७२ ॥
ततो युधिष्ठिरः पूर्वं धनुर्गृह्य परन्तपः ।
तस्थौ भासं समुद्दिश्य गुरुवाक्यप्रचोदितः॥ ७३ ॥
ततो विततधन्वानं द्रोणस्तं कुरुनन्दनम् ।
स मुहूर्तादुवाचेदं वचनं भरतर्षभ ॥ ७४ ॥
पश्यैनं त्वं द्रुमाग्रस्थं भासं नरवरात्मज ।
पश्यामीत्येवमाचार्यं प्रत्युवाच युधिष्ठिरः ॥ ७५ ॥
स मुहूर्तादिव पुनर्द्रोणस्तं प्रत्यभाषत ।

द्रोण उवाच— अथ वृक्षमिमं मां वा भ्रातॄन्वापि प्रपश्यसि॥ ७६ ॥
तमुवाच स कौन्तेयः पश्याम्येनं वनस्पतिम् ।

पहिले उन्होंने कुमारोंके न जाननेमें शिल्पकारसे बनवाकर एक कृत्रिम गिद्ध पक्षीको निशानेके लिये एक वृक्ष पर रख छोडा था। (६६—६९)

आगे शिष्योंसे बोले, कि कुमारो ! तुम शीघ्र धनुष लेकर उसमें बाण जोड करके उस देखे जाते हुए गिद्ध पर निशाना किये रहो, मेरी बातके सुनतेही उस पक्षीके सिरको काटना पडेगा। ऐ बेटे ! मैं एक एक कर तुम सबोंमें जब जिसे नियोग करूंगा, वह उसीक्षण वैसाही करे। (७०—७१)

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि अनन्तर अङ्गिरावंशियोंमें श्रेष्ठ द्रोण पहिले युधिष्ठिरसे बोले, कि हे दुर्द्धर्ष ! बाणसे निशाना करलो, मेरी बात पूरी होतेही उसको चलाना। आगे शत्रुतपनेहारे युधिष्ठिर गुरुकी आज्ञासे पहिले धन्वा लेकर पक्षी पर निशाना किये खडे रहे। हे भरतश्रेष्ठ ! द्रोणने धन्वा पर गुण चढाये हुए कुरुनन्दन युधिष्ठिरसे क्षण भर पीछे कहा, कि राजकुमार ! उस वृक्षपरके गिद्धको देखते हो ? युधिष्ठिर बोले, कि हां देखता हूं। (७२—७५)

द्रोणने कुछकाल पीछे फिर कहा, कि तुम इस वृक्षको, मुझको अथवा अपने

भवन्तं च तथा भ्रातृन्भासं चेति पुनः पुनः ॥ ७७ ॥
तमुवाचाऽपसर्पेति द्रोणोऽप्रीतमना इव ।
नैतच्छक्यं त्वया वेद्धुं लक्ष्यमित्येव कुत्सयन् ७८॥
ततो दुर्योधनादींस्तान्धार्तराष्ट्रान्महायशाः ।
तेनैव क्रमयोगेन जिज्ञासुः पर्यपृच्छत ॥ ७९ ॥
अन्यांश्च शिष्यान्भीमादीन्राज्ञश्चैवाऽन्यदेशजान्।
तथा च सर्वे तत्सर्वं पश्याम इति कुत्सिताः ॥ ८० ॥ [५४३२]

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यामादिपर्वणि संभवपर्वणि
द्रोणशिष्यपरीक्षायां चतुस्त्रिंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १३४ ॥

वैशम्पायन उवाच– ततो धनञ्जयं द्रोणः स्मयमानोऽभ्यभाषत ।
त्वयेदानीं प्रहर्तव्यमेतल्लक्ष्यं विलोक्यताम् ॥ १ ॥
मद्वाक्यसमकालं ते मोक्तव्योऽत्र भवेच्छरः ।
वितत्य कार्मुकं पुत्र तिष्ठ तावन्मुहूर्तकम् ॥ २ ॥
एवमुक्तः सव्यसाची मण्डलीकृतकार्मुकः ।
तस्थौ भासं समुद्दिश्य गुरुवाक्यप्रचोदितः ॥ ३ ॥
मुहूर्तादिव तं द्रोणस्तथैव समभाषत ।

भाइयोंको देखते हो ? युधिष्ठिर बोले, कि हां, मैं इस वृक्षको, भाइयोंको और उस पक्षीको देखता हूं । आचार्यसे बार बार यों पूछे जाने परभी उन्होंने बार बार वैसाही कहा । इससे द्रोण उन पर अप्रसन्नचित्त होकर लाञ्छन कर बोले, कि तुम चले जाओ, यह लक्ष्य विद्ध करना तुम्हारा काम नहीं है। (७६–७८)

अनन्तर अति यशवन्त द्रोणने सब शिष्योंकी शक्ति पूछनेके लिये दुर्योधन आदि धृतराष्ट्रके पुत्रोंसे और भीम, नकुल, सहदेव तथा अन्य देशोंके राजकुमारोंसेभी उस प्रकार बाणके निशाने सहित खडे रख रखकर पूछा, पर सब यह उत्तर दे देकर, कि वृक्षादि सब सब देखता हूं, आचार्यसे निन्दित हुए। (७९—८०) [५४३२]

आदिपर्वमें एकसौ चौतीस अध्याय समाप्त ।

आदिपर्वमें एकसौ पैंतीस अध्याय ।

श्री वैशम्पायनजी बोले, कि अनन्तर द्रोण कुछ हंसकर धनञ्जयसे बोले, कि बेटा ! अब तुमको यह लक्ष्य विद्ध करना पडेगा, सो वह लक्ष्यको देखो, मेरी बातके साथही साथ बाण जोडकर क्षण भर ठहरे रहो। सव्यसाची अर्जुन गुरुकी आज्ञासे शरासनमें बाण जोडकर

पश्यस्येनं स्थितं भासं द्रुमं मामपि चाऽर्जुन ॥ ४ ॥
पश्याम्येकं भासमिति द्रोणं पार्थोऽभ्यभाषत ।
न तु वृक्षं भवन्तं वा पश्यामीति च भारत ॥ ५ ॥
ततः प्रीतमना द्रोणो मुहूर्तादिव तं पुनः ।
प्रत्यभाषत दुर्धर्षः पाण्डवानां महारथम् ॥ ६ ॥
भासं पश्यसि यद्येनं तथा ब्रूहि पुनर्वचः ।
शिरः पश्यामि भासस्य न गात्रमिति सोऽब्रवीत् ७॥
अर्जुनेनैवमुक्तस्तु द्रोणो हृष्टतनूरुहः ।
मुञ्चस्वेत्यब्रवीत्पार्थं स मुमोचाऽविचारयन् ॥ ८ ॥
ततस्तस्य नगस्थस्य क्षुरेण निशितेन च ।
शिर उत्कृत्य तरसा पातयामास पाण्डवः ॥ ९ ॥
तस्मिन्कर्मणि संसिद्धे पर्यष्वजत पाण्डवम् ।
मेने च द्रुपदं सङ्ख्ये सानुबन्धं पराजितम् ॥ १० ॥
कस्यचित्त्वथ कालस्य सशिष्योऽङ्गिरसां वरः ।
जगाम गङ्गामभितो मज्जितुं भरतर्षभ ॥ ११ ॥
अवगाढमथो द्रोणं सलिले सलिलेचरः ।

पक्षी पर निशाना जमाकर खडे रहें। क्षणभर पीछे द्रोणने पहिलेकी नाईं कहा, कि अर्जुन ! तुम उस वृक्षपरके पक्षीको और मुझको देखते हो ? (१—४)

हे भारत ! पार्थने कहा, केवल पक्षीहीको देखता हूं, वृक्षको वा आपको नहीं देखता हूं। अनन्तर दुर्द्धर्ष द्रोण प्रसन्नचित्त होकर मुहूर्तभर पीछे पाण्डवोंमें महारथी उन अर्जुनसे बोले, कि यदि तुम पक्षीहीको देखते हो तो कहो, उसको कैसा देखते हो। अर्जुनने उत्तर दिया, कि मैं उस पक्षीका सिर मात्र देखता हूं, शरीर नही देखता। अर्जुनकी यह बात सुनकर हर्षके मारे उनकी देहके रोयें खडे हो गये और उनसे बोले, कि अब बाण छोडो। तब पाण्डुपुत्र अर्जुनने कोई विचार न करके बाणको मारा, उससे उसीक्षण उस तेज अस्तुरेकी नाईं बाणसे वृक्षपरके पक्षीका सिर कटकर नीचे गिरा। (५—९)

द्रोणाचार्यने वह काम पूरा होते देख कर प्रसन्नचित्त से अर्जुन को गले से लगाया और मनहीमनमें यह निश्चय किया, कि राजा द्रुपद सहायकोंके साथ युद्धमें हार जावेगा। हे भरतकुलमें श्रेष्ठ पुरुष ! उसके कुछदिन पीछे द्रोणने शिष्यों

ग्राहो जग्राह बलवाञ्जङ्घान्ते कालचोदितः ॥ १२ ॥
स समर्थोऽपि मोक्षाय शिष्यान्सर्वानचोदयत् ।
ग्राहं हत्वा मोक्षयध्वं मामिति त्वरयन्निव ॥ १३ ॥
तद्वाक्यसमकालं तु बीभत्सुर्निशितैः शरैः ।
अवार्यैः पञ्चभिर्ग्राहं मग्नमम्भस्यताडयत् ॥ १४ ॥
इतरे त्वथ संमूढास्तत्र तत्र प्रपेदिरे ।
तं तु दृष्ट्वा क्रियोपेतं द्रोणोऽमन्यत पाण्डवम् ॥ १५ ॥
विशिष्टं सर्वशिष्येभ्यः प्रीतिमांश्चाऽभवत्तदा ।
स पार्थबाणैर्बहुधा खण्डशः परिकल्पितः ॥ १६ ॥
ग्राहः पञ्चत्वमापेदे जङ्घां त्यक्त्वा महात्मनः ।
अथाऽब्रवीन्महात्मानं भारद्वाजो महारथम् ॥ १७ ॥
गृहाणेमं महाबाहो विशिष्टमतिदुर्धरम् ।
अस्त्रं ब्रह्मशिरो नाम सप्रयोगनिवर्तनम् ॥ १८ ॥
न च ते मानुषेष्वेतत्प्रयोक्तव्यं कथंचन ।
जगद्विनिर्दहेदेतदल्पतेजासि पातितम् ॥ १९ ॥
असामान्यमिदं तात लोकेष्वस्त्रं निगद्यते ।

के सङ्ग गंगा नहाने जाकर ज्योंही जलमें देह डुबायी, त्योंही एक बलवन्त घरियार ने मानो कालकी प्रेरणासे उनको उन की जाङ्घके भीतर तक काटा। द्रोण स्वयं उससे बचनेमें समर्थ होने परभी सब शिष्योंसे मानो उनकी शीघ्रता देखने के लिये बोले, कि तुम तुरन्त इस जलचरको नष्ट करके मेरी रक्षा करो। १०–१३

गुरु द्रोणके यह बात कहतेही अर्जुन ने पांच न रोकने योग्य बाणों से जलसे डुबे हुए जलचरको विद्ध किया। दूसरे शिष्य जो जहां थे, वह वहीं मूढवत खडे रहे। तब आचार्य द्रोणने अर्जुनको काम में उद्योगी देखकर सब शिष्योंसे उनको श्रेष्ठ समझा और उनपर बडे प्रसन्न हुए। घरियार महात्मा द्रोणकी जांघको तजकर पार्थके बाणोंसे टुकडे टुकडे होकर परलोक को सिधारा! (१४—१७)

अनन्तर महामति भरद्वाजपुत्र अर्जुन से बोले, कि हे महाभुज! ब्रह्मशिर नामक यह अति दुर्द्धर्ष श्रेष्ठ अस्त्र तुमको प्रयोग और उपसंहार सहित देता हूं, लो; मनुष्य पर कभी इसे न मारना, क्योंकि यह स्वल्पतेजस्वी मानव पर चलाये जानेसे जगन्मण्डलकोभी जला सकेगा। बेटा! तीनों लोकोंमें यह अस्त्र असाधारण

तद्धारयेथाः प्रयतः शृणु चेदं वचो मम ॥ २० ॥
बाधेताऽमानुषः शत्रुर्यदि त्वां वीर कश्चन ।
तद्वधाय प्रयुञ्जीथास्तदस्त्रमिदमाहवे ॥ २१ ॥
तथेति संप्रतिश्रुत्य बीभत्सुः स कृताञ्जलिः ।
जग्राह परमास्त्रं तदाह चैनं पुनर्गुरुः ॥ २२॥
भविता त्वत्समो नाऽन्यः पुमाँल्लोके धनुर्धरः।
अजेयः सर्वशत्रूणां कीर्तिमांश्च भविष्यसि ॥ २३ ॥ [५४५८]

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्त्र्यां संहितायां वैयासिक्यामादिपर्वणि संभवपर्वणि
द्रोणग्राहमोक्षणे पंचत्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १३५ ॥

वैशम्पायन उवाच— कृतास्त्रान्धार्तराष्ट्रांश्च पाण्डुपुत्रांश्च भारत ।
दृष्ट्वा द्रोणोऽब्रवीद्राजन्धृतराष्ट्रं जनेश्वरम् ॥ १ ॥
कृपस्य सोमदत्तस्य बाह्लीकस्य च धीमतः ।
गाङ्गेयस्य च सांनिध्ये व्यासस्य विदुरस्य च ॥ २ ॥
राजन्संप्राप्तविद्यास्ते कुमाराः कुरुसत्तम ।
ते दर्शयेयुः स्वां शिक्षां राजन्ननुमते तव ॥ ३ ॥
ततोऽब्रवीन्महाराजः प्रहृष्टेनाऽन्तरात्मना ।
धृतराष्ट्र उवाच— भारद्वाज महत्कर्म कृतं ते द्विजसत्तम ॥ ४ ॥

करके प्रख्यात है; सो तुम इसे यत्नसे रखना और मैं जो कहता हूं, सुनो। हे वीर! यदि कभी मनुष्यके विना कोई और शत्रु तुम्हारी विरुद्धता करे, तो युद्धस्थलमें उसको वध करने के लिये यह अस्त्र चलाना। बीभत्सुने दोनों हात जोडके, उस बातको मानकर उस परमास्त्रको ले लिया। तब गुरुने फिर उनसे कहा, कि इस भूमण्डल भरमें कोई जन तुम्हारे समान चापधारी नहीं होगा; तुम शत्रुओंसे जीते जानेके अयोग्य और यशवन्त होकर रहोगे। (१७—२३)

आदि पर्वमें एकसौ पैंतीस अध्याय समाप्त। [५४५५]

आदिपर्वमें एकसौ छत्तीस अध्याय।

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि हे राजन्! द्रोणाचार्य धृतराष्ट्रके पुत्रों और पाण्डवोंको अस्त्रशिक्षामें दक्ष देख कर कृप, सोमदत्त, बाह्लीक, व्यास, विदुर और धीमान् भीष्मके सामने राजा धृतराष्ट्रसे बोले, कि हे कुरुकुलके श्रेष्ठ महाराज! आपके कुमारोंने विद्या पढ ली है, अब आज्ञा हो, तो वे अपनी शिक्षा का परिचय दें? अनन्तर महाराज! उनसे प्रसन्नचित्त से बोले, कि हे ब्राह्मण कुलमें श्रेष्ठ

यदाऽनुमन्यसे कालं यस्मिन्देशे यथा यथा ।
तथा तथा विधानाय स्वयमाज्ञापयस्व माम् ॥ ५ ॥
स्पृहयाम्यद्य निर्वेदात्पुरुषाणां सचक्षुषाम् ।
अस्त्रहेतोः पराक्रान्तान्ये मे द्रक्ष्यन्ति पुत्रकान् ॥ ६ ॥
क्षत्तर्यद्गुरुराचार्यो ब्रवीति कुरु तत्तथा ।
न हीदृशं प्रियं मन्ये भविता धर्मवत्सल ॥ ७ ॥
ततो राजानमामन्त्र्य निर्गतो विदुरो बहिः ।
भरद्वाजो महाप्राज्ञो मापयामास मेदिनीम् ॥ ८ ॥
समामवृक्षां निर्गुल्मामुदक्प्रस्रवणान्विताम् ।
तस्यां भूमौ बलिं चक्रे तिथौ नक्षत्रपूजिते ॥ ९ ॥
अवघुष्टे समाजे च तदर्थं वदतां वरः ।
रङ्गभूमौ सुविपुलं शास्त्रदृष्टं यथाविधि ॥ १० ॥
प्रेक्षागारं सुविहितं चक्रुस्ते तस्य शिल्पिनः ।
राज्ञः सर्वायुधोपेतं स्त्रीणां चैव नरर्षभ ॥ ११ ॥
मञ्चांश्च कारयामासुस्तत्र जानपदा जनाः ।

भारद्वाज! आपसे अति महत् कार्य हुआ है, हालमें आप अस्त्र परीक्षाके लिये जो स्थान ठहरावें और जहां जिस प्रकार उसका निर्वाह होना निश्चय करें, उसके प्रबन्ध की आज्ञा मुझसे कीजिये । (१—५)

जो अस्त्र चलानेमें पराक्रमी लोग मेरे इन पुत्रोंको देखेंगे, आज मुझमें आखोंके बिना, देखने की अक्षमता हेतु उन लोगोंकी चाह उमड रही है। विदुर ! पूजनीय आचार्य जैसा कहें, वह सब करो। हे धर्मप्रेमी ! मैं समझता हूं, कि इससे मेरे लिये कोई कार्य प्रिय नहीं होगा। अनन्तर राजासे सम्भाषण करके विदुरके निकलने पर महाप्राज्ञ भारद्वाजने वृक्ष गुल्मादियोंसे रहित, जलके सोते-सहित समभूमि देखकर उसको मापा। अनन्तर समाजके सब लोगोंको सूचनाके द्वारा बुलाये जाने पर बोलनेमें तेज आचार्य अच्छे नक्षत्रयुक्त शुभ तिथिमें देवताके नामसे विधिपूर्वक उस स्थान में उपहार दिया। (६—१०)

हे नराधिप ! उनके नियुक्त किये हुए शिल्प करनेवालोंने उस अखाडेमें राजाके और नारियोंके लिये शास्त्रानुसार अच्छे सब प्रकारके अस्त्रोंसे सजे सजाये और लम्बे चौडे देखनेके घर बनाये और नगरवासी धनियोंनेभी वहां ऊंची

विपुलानुच्छ्रयोपेताञ्चिच्छबिकाश्च महाधनाः ॥ १२ ॥
तस्मिंस्ततोऽहनि प्राप्ते राजा ससचिवस्तदा ।
भीष्मं प्रमुखतः कृत्वा कृपं चाऽऽचार्यसत्तमम् ॥ १३ ॥
मुक्ताजालपरिक्षिप्तं वैदूर्यमणिशोभितम् ।
शातकुम्भमयं दिव्यं प्रेक्षागारमुपागमत् ॥ १४ ॥
गान्धारी च महाभागा कुन्ती च जयतां वर ।
स्त्रियश्च राज्ञः सर्वास्ताः सप्रेष्याः सपरिच्छदाः ॥ १५ ॥
हर्षादारुरुहुर्मञ्चान्मेरुं देवस्त्रियो यथा ।
ब्राह्मणक्षत्रियाद्यं च चातुर्वर्ण्यं पुराद् द्रुतम् ॥ १६ ॥
दर्शनेप्सु समभ्यागात्कुमाराणां कृतास्त्रताम् ।
क्षणेनैकस्थतां तत्र दर्शनेप्सु जगाम ह ॥ १७ ॥
प्रवादितैश्च वादित्रैर्जनकौतूहलेन च ।
महार्णव इव क्षुब्धः समाजः सोऽभवत्तदा ॥ १८ ॥
ततः शुक्लाम्बरधरः शुक्लयज्ञोपवीतवान् ।
शुक्लकेशः सितश्मश्रुः शुक्लमाल्यानुलेपनः ॥ १९ ॥
रङ्गमध्यं तदाऽऽचार्यः सपुत्रः प्रविवेश ह ।

और बडी बडी वेदी तथा मचान बनवा रखी। हे जयशील लोगोंमें श्रेष्ठ ! अनन्तर कुमारों के विक्रम दिखानेके निश्चय किये हुए दिनके आजाने पर राजा धृतराष्ट्र मन्त्रियोंके साथ और भीष्म तथा आचार्यश्रेष्ठ कृपको आगे करके चले और स्थानस्थानमें मोतियोंकी लडी लटकाये और वैदुर्य मणियोंसे सजे सजाये सुवर्णके, सुन्दर दर्शनभवनमें गये और बडी भाग्यवती गान्धारी और कुन्तीभी दर्शन गृहमें गयीं। दूसरी राजराणियां दासियोंके साथ अपूर्व वस्त्र पहिरे आनन्दकी उमंगमें वेदियों पर जा बैठीं, उस समय जान पडने लगा, कि मानों देवोंकी स्त्रियां सुमेरुकी चोटीपर चढी हैं। (११-१६)

ब्राह्मण क्षत्रिय आदि चारों वर्णके लोग कुमारोंकी अस्त्र विद्याकी योग्यता देखने के लिये नगरसे निकल कर बडे वेगसे वहां देखनेकी बडी चाहसे क्षण भरमें एकत्र हुए। तब सम्पूर्ण रूपसे बजते हुए बाजोंके शब्द और लोगोंके आश्चर्य पूरित कल रवसे समाज महासमुद्रके समान लहराने लगा। अनन्तर वस्त्र, यज्ञोपवीत, केश, दाढी, माला और चंदन श्वेत होनेसे शोभायमान, तेजवान् आचार्य द्रोण अपने पुत्रके साथ अखाडेमें आये। उस समय जान

नभो जलधरैर्हीनं साङ्गारक इवांऽशुमान् ॥ २० ॥
स यथासमयं चक्रे बलिं बलवतां वरः ।
ब्राह्मणांस्तु सुमन्त्रज्ञान्कारयामास मङ्गलम् ॥ २१ ॥
सुखपुण्याहघोषस्य पुण्यस्य समनन्तरम् ।
विविशुर्विविधं गृह्य शस्त्रोपकरणं नराः ॥ २२ ॥
ततो बद्धांगुलित्राणा बद्धकक्षा महारथाः ।
बद्धतूणाः सधनुषो विविशुर्भरतर्षभाः ॥ २३ ॥
अनुज्येष्ठं तु ते तत्र युधिष्ठिरपुरोगमाः ।
चक्रुरस्त्रं महावीर्याः कुमाराः परमाद्भुतम् ॥ २४ ॥
केचिच्छराक्षेपभयाच्छिरांस्यवननामिरे ।
मनुजा धृष्टमपरे वीक्षाञ्चक्रुः सुविस्मिताः ॥ २५ ॥
ते स्म लक्ष्याणि बिभिदुर्बाणैर्नामाङ्कशोभितैः ।
विविधैर्लाघवोत्सृष्टैरुह्यन्तो वाजिभिर्द्रुतम् ॥ २६ ॥
तत्कुमारबलं तत्र गृहीतशरकार्मुकम् ।
गन्धर्वनगराकारं प्रेक्ष्य ते विस्मिता भवन् ॥ २७ ॥
सहसा चुक्रुशुश्चाऽन्ये नराः शतसहस्रशः ।

पडा, कि मानो मङ्गल ग्रहके साथ प्रकाशमान चंद्रदेव बादलरहित आकाश को जा रहे हैं। (१९—२०)

महाबली आचार्यने उस स्थानमें उचित समयमें देव पूजन किया और मन्त्र जाननेवाले ब्राह्मणोंसे मङ्गलाचरण करवाया। अनन्तर पवित्र-पुण्य दिनकी कथा कही जाने पर नियुक्त किये हुए लोग नाना अस्त्रों और उनके उपकरण ले लेकर अखाडेमें जा घुसे। तब युधिष्ठिर आदि भरतवंशियोंमें श्रेष्ठ महारथी और वीर्यवन्त कुमार गण कमर कसके ऊंगली रक्षक, तूणीर और धनुषबाण धारणकर वहां प्रविष्ट हुए, वे बडे छोटे के क्रमसे अति आश्चर्य अस्त्रविद्या प्रगट करने लगे। (२१—२४)

तब देखनेवालोंमें कोई कोई तो बाणोंके गिरनेके भयसे सिर नीचे किये रहे और कोई कोई बिना भय आश्चर्य चित्तसे देखने लगे। कुमारगण शीघ्र लेजाने वाले घोडोंपर नामाङ्कसे शोभायमान नाना बाणोंको शीघ्रतापूर्वक चलाके लक्ष्य बेधने लगे! तब देखनेवालोंने धनुषबाण लिये हुए कुमारोंकी गन्धर्व नगरके समान वह आश्चर्य लीला देखकर अजरज माना। हे भारत! वहांके

विस्मयोत्फुल्लनयनाः साधु साध्विति भारत॥ २८॥
कृत्वा धनुषि ते मार्गान्रथचर्यासु चाऽसकृत्।
गजपृष्ठेऽश्वपृष्ठे च नियुद्धे च महाबलाः ॥ २९॥
गृहीतखड्गचर्माणस्ततो भूयः प्रहारिणः ।
त्सरुमार्गान्यथोद्दिष्टांश्चेरुः सर्वासु भूमिषु॥ ३०॥
लाघवं सौष्ठवं शोभां स्थिरत्वं दृढमुष्टिताम्।
ददृशुस्तत्र सर्वेषां प्रयोगं खड्गचर्मणोः ॥ ३१॥
अथ तौ नित्यसंहृष्टौ सुयोधनवृकोदरौ ।
अवतीर्णौ गदाहस्तावेकशृङ्गाविवाऽचलौ ॥ ३२॥
बद्धकक्षौ महाबाहू पौरुषे पर्यवस्थितौ ।
बृंहन्तौ वासिताहेतोः समदाविव कुञ्जरौ॥ ३३॥
तौ प्रदक्षिणसव्यानि मण्डलानि महाबलौ।
चेरतुर्निर्मलगदौ समदाविव कुञ्जरौ ॥ ३४॥
विदुरो धृतराष्ट्राय गान्धार्याः पाण्डवारणिः।
न्यवेदयेतां तत्सर्वं कुमाराणां विचेष्टितम्॥ ३५॥[५४९०]

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यामादिपर्वणि संभवपर्वण्य स्त्रदर्शने षट्त्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः॥१३६॥

सैकडों सहस्रों मनुष्य विस्मयसे प्रसन्न नेत्र होकर एकायक चिल्लाकर "साधु, साधु" ऐसी ध्वनि कर उठे ।(२५—२८)

महाबली कुमारगण शरासन और रथ चलानेमें, हाथीपर, घोडेपर चढने और हाथाबांहीमें नाना कौशल बार बार दिखाकर अन्तमें खड्ग चर्म लेकर फिर मारपीटमें लगकर निशानेके अनुसार नाना प्रकारसे अस्त्रोंका चलाना दिखा करके, अखाडेमें घूमने लगे । देखनेवाले उन वीर कुमारोंके असिचर्म प्रयोगमें तेज हाथ, कौशल धीरज, मूठोंकी दृढता और अपूर्व शोभा देखने लगे ।(२९-३१)

अनन्तर, सदाके अहङ्कारी दुर्योधन और वृकोदर गदा हाथमें लेकर एकही चोटी वाले पहाडोंके समान अखाडेमें उतरे ! एक हथनीके लोभसे दो उन्मत्त हाथी जिस प्रकार चिल्लाते रहते हैं। उसके समान बडाई चाहने वाले वे दो महाभुज वीर कमर कसकर गर्जने लगे। सदा गदा लिये हुए मदमत्त हस्तियोंके समान महाबली सुयोधन और भीम दहिनी पलट और बांयी पलटके अनुसार गोलाकार होकर अखाडेमें घूमने लगे । तब

Registered No. B. 1819.

अंक ८

महाभारत।

(भाषा--भाष्य--समेत)

संपादक — श्रीपाद दामोदर सातवळेकर.
स्वाध्याय मंडल, औंध (जि. सातारा)

१२अंकोंका मूल्य म.आ.से. ६) वी.पी.से ७) विदेशके लिये ८)

महाभारतके नियम

(१) महाभारत मूल और भाषांतर प्रति अंकमें सौ पृष्ठ प्रकाशित होगा।

(२) इसमें मूल श्लोक और उसका सरल भाषानुवाद होगा। मूलग्रंथ समाप्त होनेतक कोई टीका टिप्पणी लिखी नहीं जायगी। जो लिखना होगा वह ग्रंथसमाप्ति के पश्चात् विस्तृत लेखमें सविस्तर लिखा जायगा।

(३) भूमिका रूप इस विस्तृत लेखमें धार्मिक, सामाजिक, राजकीय तथा अन्य दृष्टियोंसे परिपूर्ण विवरण होगा, तात्पर्य यह भूमिका का विस्तृत लेख भारतकालीन वस्तुस्थितिका पूर्ण रीतिसे निदर्शक होगा। यह लेख मूलग्रंथ के छपने के पश्चात् छपेगा।

(४) संपूर्ण महाभारतके मुख्य प्रसंगों के सौ चित्र इस ग्रंथमें दिये जांयगे। उन में प्रतिपर्व एक चित्र रंगीन भी होगा। इसके अतिरिक्त उस समयकी भूगोलिक अवस्था बताने वाले कई नकशे दिये जांयगे।

(५) इसके अतिरिक्त ग्राम, नगर, प्रांत, और देशोंके नाम, जातिवाचक नाम, तथा अन्य नामोंका पूर्ण परिचय देनेवाली विविध सूचियां भी दी जांयगी।

मूल्य।

(६) बारह अंकोंका अर्थात् १२०० पृष्ठोंका मूल्य मनी आर्डरसे ६) छः रु. होगा और वी.पी.से ७) रु. होगा यहमूल्य वार्षिक मूल्य नहीं है, परंतु १२०० पृष्ठोंका मूल्य है।

(७) बहुधा प्रतिमास १०० पृष्ठोंका एक अंक प्रकाशित होगा, परंतु संभव हुआ तो अधिक अंक भी प्रसिद्ध होंगे।

(८) प्रत्येक अंक तैयार होते ही ग्राहकों के पास भेजा जायगा। यदि किसीको न मिला, तो सूचना १५ दिनोंके अंदर मिलनी चाहिये। जिनकी सूचना १५ दिनोंके अंदर आवेगी उनको ही वह न मिला हुआ अंक पुनः भेजा जायगा। परंतु जिनकी सूचना १५ दिनोंके अंदर न आवेगी उनको ।।।=)आनेका मूल्य आनेपर, संभव हुआ तो ही, अंक भेजा जायगा।

(९) सब ग्राहक अपने अपने अंक संभाल कर रखें और चार अथवा पांच महिनों के पश्चात् अपने अंकोंकी जिल्द बनवा लें, जिससे अंक गुम होनेकी संभावना नहीं होगी। दो मास के पश्चात् किसी पुराने ग्राहक को पिछला अंक मूल्य देनेपरभी मिलेगा नहीं क्योंकि एक अंक कम होनेसे

वैशम्पायन उवाच—कुरुराजे हि रङ्गस्थे भीमे च बलिनां वरे ।
पक्षपातकृतस्नेहः स द्विधेवाऽभवज्जनः ॥ १ ॥
हा वीर कुरुराजेति हा भीम इति जल्पताम् ।
पुरुषाणां सुविपुलाः प्रणादाः सहसोत्थिताः ॥ २ ॥
ततः क्षुब्धार्णवनिभं रङ्गमालोक्य बुद्धिमान् ।
भारद्वाजः प्रियं पुत्रमश्वत्थामानमब्रवीत् ॥ ३ ॥
द्रोण उवाच— वारयैतौ महावीर्यौ कृतयोग्यावुभावपि ।
मा भूद्रंगप्रकोपोऽयं भीमदुर्योधनोद्भवः ॥ ४ ॥
वैशम्पायन उवाच—ततस्तावुद्यतगदौ गुरुपुत्रेण वारितौ ।
युगान्तानिलसंक्षुब्धौ महावेलाविवार्णवौ ॥ ५ ॥
ततो रङ्गाङ्गणगतो द्रोणो वचनमब्रवीत् ।
निवार्य वादित्रगणं महामेघनिभस्वनम् ॥ ६ ॥
यो मे पुत्रात्प्रियतरः सर्वशस्त्रविशारदः ।
ऐन्द्रिरिन्द्रानुजसमः स पार्थो दृश्यतामिति ॥ ७ ॥
आचार्यवचनेनाऽथ कृतस्वस्त्ययनो युवा ।

विदुरने धृतराष्ट्रसे, और कुन्तीने गान्धारीके निकट कुमारोंसे किये जाते हुए सब वृत्तान्तको कह सुनाया । (३२—३९)

आदिपर्वमें एकसौ छत्तीस अध्याय समाप्त।[५४९०]

आदिपर्वमें एकसौ सैंतीस अध्याय ।

श्री वैशम्पायनजी बोले, कि कुरुराज दुर्योधन और महाबली भीमके अखाडेमें उतरने पर देखनेवाले पक्षपातसे स्नेह कर दो दलोंमें बंट गये। कोई कोई तो कहने लगे, कि कुरुराज कैसे अच्छे वीर हैं। और दूसरे कहने लगे, कि भीम कैसे अच्छे वीर हैं! चारों ओरसे इसी बातका घोर कोलाहल मच उठा; उसके अनन्तर बुद्धिमान भारद्वाज हिलोडते हुए समुद्र की भांति उस अखाडेको देखकर प्रिय पुत्र अश्वत्थामासे बोले, कि यह भीम और दुर्योधन दोनों बडे वीर्यवन्त और युद्धविद्यामें तेज हैं; सो इनसे कह दो, कि अखाडेमें इनमें क्रोध न उपजे। (१—४)

श्रीवैशंपायनजी बोले, कि अनन्तर प्रलयकालकी हवासे लहराते हुए, ऊंचे तटवाले समुद्रके समान उन्मत्त, गदा उठाये हुए भीम और सुयोधन गुरुकुमार से रोके गये । तब आचार्य द्रोण अखाडेमें जाकर घने बादलकी गडगडाहटके समान बाजों की ध्वनिको रोककर बोले, कि उपेन्द्रके सदृश सर्व शास्त्रोंमें प्रधान और मेरे पुत्रसेभी प्यारे

बद्धगोधांगुलित्राणः पूर्णतूणः सकार्मुकः ॥ ८ ॥
काञ्चनं कवचं बिभ्रत्प्रत्यदृश्यत फाल्गुनः ।
सार्कः सेन्द्रायुधतडित्ससन्ध्य इव तोयदः ॥ ९ ॥
ततः सर्वस्य रंगस्य समुत्पिञ्जलकोऽभवत् ।
प्रावाद्यन्त च वाद्यानि सशंखानि समन्ततः ॥ १० ॥
एष कुन्तीसुतः श्रीमानेष मध्यमपाण्डवः ।
एष पुत्रो महेन्द्रस्य कुरूणामेष रक्षिता ॥ ११ ॥
एषोऽस्त्रविदुषां श्रेष्ठ एष धर्मभृतां वरः ।
एष शीलवतां चापि शीलज्ञाननिधिः परः ॥ १२ ॥
इत्येवं तुमुला वाचः शुश्रुवुः प्रेक्षकेरिताः ।
कुन्त्याः प्रस्रवसंयुक्तैरस्रैः क्लिन्नमुरोऽभवत् ॥ १३ ॥
तेन शब्देन महता पूर्णश्रुतिरथाऽब्रवीत् ।
धृतराष्ट्रो नरश्रेष्ठो विदुरं हृष्टमानसः ॥ १४ ॥
क्षत्तः क्षुब्धार्णवनिभः किमेष सुमहास्वनः ।
सहसैवोत्थितो रङ्गे भिन्दन्निव नभस्तलम् ॥ १५ ॥
विदुर उवाच— एष पार्थो महाराज फाल्गुनः पाण्डुनन्दनः ।

वह इन्द्रपुत्र अब दिखाई देवें। तब आचार्यकी आज्ञासे तरुणअवस्थाके अर्जुन मङ्गलाचरण करनेके पश्चात् गुणकी चोट रोकनेवाली चमडेकी पट्टी और उंगली रक्षक कसके बाणसे पूरित तूण, धनुष और सोनेके कवच पहरकर मानों सूर्यप्रकाशके समान जलते हुए और इन्द्र-धनु तथा बिजलीकी चमककी भांति सुहाते हुए,सन्ध्याकालके बादलके सदृश दीख पडे। (५—९)

उससे अखाडेकी चारों ओरसे आनन्दकी ध्वनि उडने लगी और शंख तथा अनेक बाजे बजने लगे। यह श्रीमान् पुरुष कुन्तीके पुत्र हैं,यह मझले पाण्डव हैं, यही कुरुओंकी रक्षा करनेवाले हैं, यही अस्त्र धरनेवालोंमें श्रेष्ठ हैं, यही धार्मिकोंमें प्रधान हैं,यही सुशीलोंकी शीलता और ज्ञानके परम आदर्शरूपी हुए हैं; दर्शकोंकी ऐसी अनेक बातें सुनकर कुन्तीकी स्तनदुग्ध तथा आंसूसे छाती भीग गयी। (१०—१३)

उन सब बडे भारी शब्दोंसे नरोंमें श्रेष्ठ धृतराष्ट्रके कान भर जानेसे उन्होंने प्रसन्नचित्त होकर विदुरसे पूछा, कि हे क्षत्त ! अखाडेमें हिलोडे हुए समुद्र की ध्वनिकी भांति यह महाशब्द मानों

अवतीर्णः सकवचस्तत्रैष सुमहास्वनः ॥ १६ ॥

धृतराष्ट्र उवाच—— धन्योऽस्म्यनुगृहीतोऽस्मि रक्षितोऽस्मि महामते ।
पृथारणिसमुद्भूतैस्त्रिभिः पाण्डववह्निभिः ॥ १७ ॥

वैशम्पायन उवाच— तस्मिन्प्रमुदिते रङ्गे कथंचित्प्रत्युपस्थिते ।
दर्शयामास बीभत्सुराचार्यायाऽस्त्रलाघवम् ॥ १८ ॥
आग्नेयेनाऽसृजद्वह्निं वारुणेनाऽसृजत्पयः ।
वायव्येनाऽसृजद्वायुं पार्जन्येनाऽसृजद् घनान् ॥ १९ ॥
भौमेन प्राविशद्भूमिं पार्वतेनाऽसृजद्गिरीन् ।
अन्तर्धानेन चाऽस्त्रेण पुनरन्तर्हितोऽभवत् ॥ २० ॥
क्षणात्प्रांशुः क्षणाद्ध्रस्वः क्षणाच्च रथधूर्गतः ।
क्षणेन रथमध्यस्थः क्षणेनाऽवतरन्महीम् ॥ २१ ॥
सुकुमारं च सूक्ष्मं च गुरुं चापि गुरुप्रियः ।
सौष्ठवेनाऽभिसंक्षिप्तः सोऽविध्यद्विविधैः शरैः ॥ २२ ॥
भ्रमतश्च वराहस्य लोहस्य प्रमुखे समम् ।
पञ्चबाणानसंसक्तान्संमुमोचैकबाणवत् ॥ २३ ॥

आकाश फाडकेही क्यों एकायक उठा ? विदुर बोले, कि महाराज! यह पाण्डुनन्दन पार्थ अर्जुन कवच पहरकर अखाडे में उतरे हैं, उससे ऐसा घोर कोलाहल मच रहा है। धृतराष्ट्र बोले, कि हे महामते! कुन्तीरूपी वनसे उपजे हुए पाण्डवरूपी तीन अग्नियोंसे मैं धन्य, कृपायुक्त और रक्षित हुआ। (१४–१७)

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि अखाडेके उन हर्षयुक्त लोगोंके उत्साहित होकर कुछ शान्त होजानेपर अर्जुन आचार्यको अस्त्र चलानेकी दक्षता दिखाने लगे। उन्होंने अग्न्यस्त्रसे अग्नि, वारुणास्त्रसे जल, वायव्यास्त्रसे वायु और पार्जन्यास्त्रसे मेघ बनाया तथा भूम्यस्त्रसे भूमिमें प्रवेश किया, पर्वतास्त्रसे पर्वत बनाया और अन्तर्द्धान अस्त्रसे अन्तर्हित होगये। वह क्षणभरमें दीर्घ, क्षण भरमें ह्रस्व, क्षण भरमें रथ धूर्व्वीके निकट स्थित, फिर, क्षणभरमें रथके भीतर और क्षणभर में धरती पर उतरने लगे। (१८–२१)

गुरुप्रेमी अर्जुन बाणोंसे फूल आदि कोमल वस्तु, गुञ्जा और बाणाग्र आदि सूक्ष्म वस्तु और धातु पत्थर आदि भारी वस्तु कौशलसे फेकनेकी इच्छासे विद्ध करने लगे। उन्होंने चरते हुए, लोहेके बने सुवरके मुखमें मानों एक बाणकी भांति पांच बाणोंको जोडकर

गव्ये विषाणकोशे च चले रज्ज्ववलम्बिनि।
निचखान महावीर्यः सायकानेकविंशतिम् ॥ २४ ॥
इत्येवमादि सुमहत्खड्गे धनुषि चाऽनघ ।
गदायां शस्त्रकुशलो मण्डलानि प्रदर्शयन् ॥ २५ ॥
ततः समाप्तभूयिष्ठे तस्मिन्कर्मणि भारत ।
मन्दीभूते समाजे च वादित्रस्य च निःस्वने ॥ २६ ॥
द्वारदेशात्समुद्भूतो माहात्म्यबलसूचकः ।
वज्रनिष्पेषसदृशः शुश्रुवे भुजनिःस्वनः ॥ २७ ॥
दीर्यन्ते किं नु गिरयः किंस्विद्भूमिर्विदीर्यते।
किंस्विदापूर्यते व्योम जलधाराघनैर्घनैः ॥ २८ ॥
रंगस्यैवं मतिरभूत्क्षणेन वसुधाधिप ।
द्वारं चाऽभिमुखाः सर्वे बभूवुः प्रेक्षकास्तदा॥ २९ ॥
पञ्चभिर्भ्रातृभिः पार्थैर्द्रोणः परिवृतो बभौ ।
पञ्चतारेण संयुक्तः सावित्रेणेव चन्द्रमाः ॥ ३० ॥
अश्वत्थाम्ना च सहितं भ्रातॄणां शतमूर्जितम्।
दुर्योधनममित्रघ्नमुत्थितं पर्यवारयत् ॥ ३१ ॥

एकही कालमें उनको चलाया । उन महावीरने रस्सी पर लटके हिलते हुए गौके सींगके कोषको इक्कीस बाण छोड-कर विद्ध किया। हे अनघ ! शास्त्रमें पण्डित कुन्तीपुत्र इस प्रकारसे धनुर्वि-द्यामें, असि चलानेमें और गदा फेरनेमें नाना योग्यता दिखाने लगे। (२२—२५)

हे भारत वह कृत्रिम युद्ध अन्त होने पर था और लोगोंका कोलाहल और बाजोंकी ध्वनि घट गयी थी, कि ऐसे समयमें द्वारदेशसे उठती हुई शूरता और वीरतासूचक वज्रके गर्जन समान ललकार सुनी गयी। हे नरनाथ। सब अखाडेके लोग समझने लगे, कि यह क्या है ! कदाचित् पहाडोंकी पांति टूट रही है ! वा धरती फटी जाती है ! अथवा घने जलभरे बादल समूह आकाशमें छा रहे हैं ! दर्शक सब ऐसेही सन्देहसे उसक्षण द्वारकी ओर मुह फेरके देखने लगे। (२६—२९)

तब पञ्च ताराके समान हस्त नक्षत्रयुक्त चंद्रमाकी भांति आचार्यद्रोण युधिष्ठिर आदि पांच भाईयोंके बीच सुहाने लगे। शत्रुनाशी दुर्योधनके उठ खडे होने पर उनके उत्साही सौ भाई अश्वत्थामाके साथ उनको घेर कर खडे हुए। पूर्वकाल

स तैस्तदा भ्रातृभिरुद्यतायुधैर्गदाग्रपाणिः समवस्थितैर्वृतः।
बभौ यथा दानवसंक्षये पुरा पुरन्दरो देवगणैः समावृतः॥ ३२॥

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यामादिपर्वणि संभवपर्वण्यस्त्रदर्शने सप्तत्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः॥ १३७॥ [५५२२]

वैशम्पायन उवाच—दत्तेऽवकाशे पुरुषैर्विस्मयोत्फुल्ललोचनैः।
विवेश रंगं विस्तीर्णं कर्णः परपुरञ्जयः॥ १॥
सहजं कवचं बिभ्रत्कुण्डलोद्योतिताननः।
स धनुर्बद्धनिस्त्रिंशः पादचारीव पर्वतः॥ २॥
कन्यागर्भः पृथुयशाः पृथायाः पृथुलोचनः।
तीक्ष्णांशोर्भास्करस्यांऽशः कर्णोऽरिगणसूदनः॥३॥
सिंहर्षभगजेन्द्राणां बलवीर्यपराक्रमः।
दीप्तिकान्तिद्युतिगुणैः सूर्येन्द्वज्वलनोपमः॥ ४॥
प्रांशुः कनकतालाभः सिंहसंहननो युवा।
असंख्येयगुणः श्रीमान्भास्करस्याऽऽत्मसंभवः॥५॥
स निरीक्ष्य महाबाहुः सर्वतो रङ्गमण्डलम्।
प्रमाणं द्रोणकृपयोर्नात्याहतमिवाऽकरोत्॥ ६॥

में दानवोंको नष्ट करनेके लिये जिस प्रकार देवराज देवोंसे घेरे गये थे, वैसेही उस कालमें केवल गदाधारी दुर्योधन अस्त्र शस्त्रोंसे सुशोभित भाईयोंसे घेरे जाकर शोभा पाने लगे। (३०—३२)

आदिपर्वमें एकसौ सैंतीस अध्याय समाप्त।[५५२२]

आदिपर्वमें एकसौ अढतीस अध्याय।

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि अनन्तर देखने वालोंके विस्मय और प्रसन्न नेत्रोंसे प्रवेशका स्थान देनेपर शत्रुओंके नगरको जय करनेवाले कर्ण बडे भारी अखाडेमें प्रविष्ट हुए। जो सङ्ग में जन्मे हूए कवचको पहिरे थे; जिनका मुख स्वाभाविक कुण्डलोंसे सुशोभित था, जिन्होंने बडे प्रकाशयुक्त भास्करके अंशसे पृथाके कन्याकालिक गर्भसे जन्म लिया था; जिनका वीर्य और पराक्रम सिंह और गजेन्द्र समान है; जिनकी प्रभा सूर्यके समान चद्रमाकी भांति और तेज अग्नि सदृश है; जो सुवर्णके ताडके समान लम्बे हैं, उस सूर्य कुमार अति गुणवन्त सिंह सदृश शरीर धारी; विशाल नेत्र, शत्रुकुलनाशी युवा श्रीमान् महाभुज कर्णने खड्ग बांधकर धनुषबाण लेकर चलते हुए पर्वतकी भांति अखाडेमें घुस करके चारों ओर

स समाजजनः सर्वो निश्चलः स्थिरलोचनः ।
कोऽयमित्यागतक्षोभः कौतूहलपरोऽभवत् ॥ ७ ॥
सोऽब्रवीन्मेघगम्भीरस्वरेण वदतां वरः ।
भ्राता भ्रातरमज्ञातं सावित्रः पाकशासनिम् ॥ ८ ॥
पार्थ यत्ते कृतं कर्म विशेषवदहं ततः ।
करिष्ये पश्यतां नृणां माऽऽत्मानं विस्मयं गमः ॥९ ॥
असमाप्ते ततस्तस्य वचने वदतां वर ।
यन्त्रोक्षिप्त इवोत्तस्थौ क्षिप्रं वै सर्वतो जनः ॥ १० ॥
प्रीतिश्च मनुजव्याघ्र दुर्योधनमुपाविशत् ।
ह्रीश्च क्रोधश्च बीभत्सुं क्षणेनाऽन्वाविवेश ह ॥ ११ ॥
ततो द्रोणाभ्यनुज्ञातः कर्णः प्रियरणः सदा ।
यत्कृतं तत्र पार्थेन तच्चकार महाबलः ॥ १२ ॥
अथ दुर्योधनस्तत्र भ्रातृभिः सह भारत ।
कर्णं परिष्वज्य मुदा ततो वचनमब्रवीत् ॥ १३ ॥

दुर्योधन उवाच— स्वागतं ते महाबाहो दिष्ट्या प्राप्तोऽसि मानद ।

आँखें दौडा कर आचार्य द्रोण और कृपको मानो अनादरसे प्रणाम किया । (१–६)

तब अखाडे भरके सब लोग यह जाननेके लिये, कि यह कौन है, चुप हो और टकटकी लगाकर अप्रसन्न और आश्चर्ययुक्त हुए । सूर्यपुत्र सुन्दर बोलनेवाले कर्णने इन्द्रपुत्र अर्जुनको सगा, भाई करके न जानकर बादल सदृश गंभीर शब्दसे उनसे कहा, कि हे पार्थ ! तुमने जो कार्य किया है, मैं देखनेवालोंके सामने उससेभी विशेष कार्य करूंगा, सो तुम अपने कामको आश्चर्य करके मत जानना । (७—९)

हे बोलनेवालोंमें श्रेष्ठ राजन् ! सूर्यपुत्रकी इस बातके पूरी होते न होतेही सब मानो यंत्रसे उठाये जाने की भांति उसी समय निज निज स्थानमें जा बैठे । हे मानव श्रेष्ठ ! तब दुर्योधनके हृदयमें प्रीति प्राप्त हुई और अर्जुनका चित्त क्रोध और लज्जासे अधीर हुआ । उसके अनन्तर पार्थने उस अखाडेमें जो जो कर्म किया था, सदा युद्ध चाहनेवाले महाबली कर्णने द्रोणकी आज्ञासे वह सब कर दिखाया । (१०—१२)

हे भारत ! अनन्तर दुर्योधन भाईयोंके साथ कर्णको गले लगाकर बोले, कि हे महाभुज ! आप भले आये हैं, हे मान देनेवाले ! मेरे सौभाग्यसे आप आये हैं;

अहं च कुरुराज्यं च यथेष्टमुपभुज्यताम् ॥ १४ ॥

कर्ण उवाच— कृतं सर्वमहं मन्ये सखित्वं च त्वया वृणे।
द्वन्द्वयुद्धं च पार्थेन कर्तुमिच्छाम्यहं प्रभो ॥ १५ ॥

दुर्योधन उवाच— भुङ्क्ष्व भोगान्मया सार्धं बन्धूनां प्रियकृद्भव।
दुर्हृदां कुरु सर्वेषां मूर्ध्नि पादमरिन्दम ॥ १६ ॥

वैशम्पायन उवाच—ततः क्षिप्तमिवाऽऽत्मानं मत्वा पार्थोऽभ्यभाषत।
कर्णं भ्रातृसमूहस्य मध्येऽचलमिव स्थितम् ॥ १७ ॥

अर्जुन उवाच— अनाहूतोपसृष्टानामनाहूतोपजल्पिनाम्।
ये लोकास्तान्हतः कर्ण मया त्वं प्रतिपत्स्यसे॥ १८ ॥

कर्ण उवाच— रङ्गोऽयं सर्वसामान्यः किमत्र तव फाल्गुन।
वीर्यश्रेष्ठाश्च राजानो बलं धर्मोऽनुवर्तते ॥ १९ ॥
किं क्षेपैर्दुर्बलायासैः शरैः कथय भारत।
गुरोः समक्षं यावत्ते हराम्यद्य शिरः शरैः ॥ २० ॥

वैशम्पायन उवाच—ततो द्रोणाभ्यनुज्ञातः पार्थः परपुरञ्जयः।
भ्रातृभिस्त्वरयाऽऽश्लिष्टो रणायोपजगाम तम्॥२१॥

अब मैं आपका अधीन हूं, आप इस कुरु राज्यको मनमाने भोगिये। कर्ण बोले, कि मुझे और किसी बातकी आवश्यकता नहीं है, केवल मित्रताका प्रार्थी हूं, और पार्थसे एकबार द्वन्द्व युद्ध करना चाहता हूं। दुर्योधन बोले, कि हे शत्रु नाशि! आप मेरे साथ नाना भोगकी वस्तु भोगते रहिये और बन्धुओंके मङ्गलेच्छुक होकर सम्पूर्ण शत्रुओंको दबाइये। १३-१६

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि अनन्तर पार्थ अपनेको अपमानितसा जानकर भाइयोंमें पर्वत समान खडे हुए कर्णसे बोले, कि कर्ण! जो बिना बुलाये निकट आते हैं और न बुलाये जाकर अहितकी इच्छा करते हैं, उनकी जो गति होती है, मुझसे प्राण खोकर तुम उसको प्राप्त करोगे। कर्ण बोले, कि अर्जुन! यह अखाडा सबके लिये समान है, सो मेरे आनेसे तुम्हारी क्या हानि हुई? क्षत्रिय लोग बलहीसे प्रधान होते हैं, सो क्षत्रियोंका धर्म बलहीकी शरण लेता है, हे भारत दुर्बलकी चेष्टाकी नाई लाञ्छनकी क्या आवश्यकता है? जब तक इन गुरुके सम्मुख चोखे बाणसे तुम्हारा सिर नहीं काटता हूं, तबतक जो कुछ कहना हो, बाणहीसे प्रगट करो। १७-२०

श्रीवैशम्पायनजी बोले, अनन्तर शत्रुनगरको जीतनेवाले धनञ्जय द्रोणाचार्य

ततो दुर्योधनेनाऽपि सभ्रात्रा समरोद्यतः ।
परिष्वक्तः स्थितः कर्णः प्रगृह्य सशरं धनुः ॥ २२ ॥
ततः सविद्युत्स्तनितैः सेन्द्रायुधपुरोगमैः ।
आवृतं गगनं मेघैर्बलाकापंक्तिहासिभिः ॥ २३ ॥
ततः स्नेहाद्धरिहयं दृष्ट्वा रङ्गावलोकिनम् ।
भास्करोऽप्यनयन्नाशं समीपोपगतान्घनान्॥ २४ ॥
मेघच्छायोपगूढस्तु ततोऽदृश्यत फाल्गुनः ।
सूर्यातपपरिक्षिप्तः कर्णोऽपि समदृश्यत ॥ २५ ॥
धार्तराष्ट्रा यतः कर्णस्तास्मिन्देशे व्यवस्थिताः।
भारद्वाजः कृपो भीष्मो यतः पार्थस्ततोऽभवन् ॥२६॥
द्विधा रङ्गः समभवत्स्त्रीणां द्वैधमजायत ।
कुन्तिभोजसुता मोहं विज्ञातार्था जगाम ह ॥ २७ ॥
तां तथा मोहमापन्नां विदुरः सर्वधर्मवित् ।
कुन्तीमाश्वासयामास प्रेष्याभिश्चन्दनोदकैः ॥ २८॥
ततः प्रत्यागतप्राणा तावुभौ परिदंशितौ ।
पुत्रौ दृष्ट्वा सुसंभ्रान्ता नाऽवपद्यत किंचन ॥ २९ ॥

की आज्ञा पाकर और भाइयोंके गलेसे लग कर युद्धके लिये कर्ण के सामने गये। इधर कर्ण दुर्योधन और उनके भाइ-योंसे मिलकर बाणसहित शरासन लेकर-के युद्धके लिये खडे रहे। इससे इन्द्र धनुसे सोहते हुए, बिजली तथा गर्जन-से भरे और बगुलोंसे मानो हंसते हुए बादलदलसे आकाशमण्डल ढंप गया। अनन्तर इन्द्रको निजपुत्र अर्जुनपर स्नेहव-श अखाडेकी ओर ताकते देख कर सूर्यने अपने पुत्र कर्णके निकटके जलधरनेवाले बादलोंको नष्ट किया। तब अर्जुन मेघकी छांहसे ढंपे और कर्ण सूर्यके किरणसे घिरे दीख पडने लगे। (२१–२५)

जिधर कर्ण थे, उधर धृतराष्ट्रके पुत्र और जिधर अर्जुन थे; उधर द्रोण, कृप और भीष्म खडे रहे। अखाडा दो भागोंमें बंट गया और स्त्रियांभी दो दल हो गयीं। कुन्तीभोजकन्या पृथा अपने पुत्र कर्ण और अर्जुनका युद्धमें प्रवृत्त होना जानकर मोहसे विवश हुई। सर्वधर्मज्ञ विदुरने दासियोंकी सहायतासे चन्दनके जलसे उस मूर्च्छित हुई, कुन्तीको चेतन-युक्त किया। कुन्ती चेत पाकर युद्धके लिये सजे हुए दोनों पुत्रोंको देखकर भयभीत बनी रही, कुछ कर नहीं सकी। (२६–२९)

तावुद्यतमहाचापौ कृपः शारद्वतोऽब्रवीत् ।
द्वन्द्वयुद्धसमाचारे कुशलः सर्वधर्मवित् ॥ ३० ॥
अयं पृथायास्तनयः कनीयान्पाण्डुनन्दनः ।
कौरवो भवता सार्धं द्वन्द्वयुद्धं करिष्यति ॥ ३१ ॥
त्वमप्येवं महाबाहो मातरं पितरं कुलम् ।
कथयस्व नरेन्द्राणां येषां त्वं कुलभूषणः ॥ ३२ ॥
ततो विदित्वा पार्थस्त्वां प्रतियोत्स्यति वा न वा ।
वृथाकुलसमाचारैर्न युध्यन्ते नृपात्मजाः ॥ ३३ ॥
वैशम्पायन उवाच— एवमुक्तस्य कर्णस्य व्रीडावनतमाननम् ।
बभौ वर्षाम्बुविक्लिन्नं पद्ममागलितं यथा ॥ ३४ ॥
दुर्योधन उवाच— आचार्य त्रिविधा योनी राज्ञां शास्त्रविनिश्चये ।
सत्कुलीनश्च शूरश्च यश्च सेनां प्रकर्षति ॥ ३५ ॥
यद्ययं फाल्गुनो युद्धे नाऽराज्ञा योद्धुमिच्छति ।
तस्मादेषोऽङ्गविषये मया राज्येऽभिषिच्यते ॥ ३६ ॥
वैशम्पायन उवाच— ततस्तस्मिन्क्षणे कर्णः सलाजकुसुमैर्घटैः ।

अनन्तर सर्व धर्म जाननेवाले विशेष द्वन्द्वयुद्धकी रीतिको भले प्रकार जानते हुए शारद्वत उन दोनों वीरोंको बडे बडे शरासन उठाते देखकर कर्णसे बोले, कि यह अर्जुन कुरुवंशी राजा पाण्डुके पुत्र हैं, कुन्तीके तीसरे गर्भसे जन्म लिया है,यह तुमसे द्वन्द्वयुद्ध करेंगे। हे महाभुज! तुमभी जिस राज-वंशके अलङ्कार बने हो,उस कुलका वृत्तान्त और पिता माताके नाम कहो, उसके जान लेनेसे पार्थ यह निश्चय करेंगे, कि तुमसे लडेंगे वा नहीं, क्योंकि राजकुमारगण छोटे कुलसे जन्म लिये हुए, सदाचार वर्जित जनोंसे द्वन्द्वयुद्ध नहीं करते। (३०-३३)

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि आचार्य कृपके इसप्रकार कहनेपर कर्णका मुह लज्जा से नीचा होकर वर्षाजलसे धोये हुए पद्मकी नाई मलिन हो गया। तब दुर्योधन बोले, कि हे आचार्य ! शास्त्रोंमें यह निश्चय है, कि राजकुलमें जन्म लिये हुए, शूर और सेनापति यह तीन भूपाल हो सकते हैं, सो यदि अर्जुन भूपालके विना किसी अन्यसे न लडना चाहें, तो मैं अभी इन कर्णको अङ्गराज्यमें अभिषिक्त कर देता हूं। (३४-३६)

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि अनन्तर महाबलवन्त महारथी श्रीमान् कर्ण उसी क्षण सुवर्ण पीठपर स्थित होकर मन्त्रज्ञ

काञ्चनैः काञ्चने पीठे मन्त्रविद्भिर्महारथः ॥ ३७ ॥
अभिषिक्तोऽङ्गराज्यस्य श्रिया युक्तो महाबलः।
सच्छत्रबालव्यजनो जयशब्दोत्तरेण च ॥ ३८ ॥
उवाच कौरवं राजा वचनं स वृषस्तदा ।
अस्य राज्यप्रदानस्य सदृशं किं ददामि ते ॥ ३९ ॥
प्रब्रूहि राजशार्दूल कर्ता ह्यस्मि तथा नृप ।
अत्यन्तं सख्यमिच्छामीत्याह तं स सुयोधनः ॥४०॥
एवमुक्तस्ततः कर्णस्तथेति प्रत्युवाच तम् ।
हर्षाच्चोभौ समाश्लिष्य परां मुदमवापतुः ॥ ४१ ॥ [५५६३]

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यामादिपर्वणि संभवपर्वण्य-स्त्रदर्शनेऽष्टात्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १३८ ॥

वैशम्पायन उवाच-ततः स्रस्तोत्तरपटः सप्रस्वेदः सवेपथुः ।
विवेशाऽधिरथो रंगं यष्टिप्राणो ह्वयन्निव ॥ १ ॥
तमालोक्य धनुस्त्यक्त्वा पितृगौरवयन्त्रितः।
कर्णोऽभिषेकार्द्रशिराः शिरसा समवन्दत ॥ २ ॥
ततः पादाववच्छाद्य पटान्तेन ससंभ्रमः ।
पुत्रेति परिपूर्णार्थमब्रवीद्रथसारथिः ॥ ३ ॥

ब्राह्मणोंके द्वारा लाज, फूल और सुवर्ण घटसे अङ्गराज्यमें अभिषिक्त हुए। महाराज ! अनन्तर कर्ण जयके शब्दके साथ अच्छे छत्र और चंवरयुक्त होकर कुरुनन्दन दुर्योधनसे बोले, कि हे राजाओंमें व्याघ्र समान महाराज! आपने जो मुझको राज्य दिया, कहिये, मैं आपको इसके योग्य क्या दूं ? आप जैसा कहेंगे, मैं वैसाही करनेको सम्मत हूं। सुयोधन बोले, कि मैं आपसे अच्छी मित्रताकी प्रार्थना करता हूं, ऐसा कहे जाकर कर्णने प्रतिज्ञाके साथ उसको मान लिया और दोनों हर्षसे एक दूसरेको गले लगा कर बडे प्रसन्न हुए। (३७-४१)[५५६३]

आदिपर्वमें एकसौ अढतीस अध्याय समाप्त।

आदिपर्वमें एकसौ उन तालीस अध्याय ।

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि अनन्तर कांपता, पसीनेसे न्हाया, बूढा अधिरथ लाठी थामकर लटकते हुए चादरसे कर्णको बुलाता हुआ अखाडेमें आन पहुंचा, कर्णने उसको देखतेही पितृगौरव वश धनुषबाणको छोडकर अभिषेकके जलसे भिंगे हुए सिरसे प्रणाम किया। रथके सारथि अधिरथने सम्मानके साथ

परिष्वज्य च तस्याऽथ मूर्धानं स्नेहविक्लवः ।
अंगराज्याभिषेकार्द्रमश्रुभिः सिषिचे पुनः ॥ ४ ॥
तं दृष्ट्वा सूतपुत्रोऽयमिति संचिन्त्य पाण्डवाः ।
भीमसेनस्तदा वाक्यमब्रवीत्प्रहसन्निव ॥ ५ ॥
न त्वमर्हसि पार्थेन सूतपुत्र रणे वधम् ।
कुलस्य सदृशस्तूर्णं प्रतोदो गृह्यतां त्वया ॥ ६ ॥
अंगराज्यं च नाऽर्हस्त्वमुपभोक्तुं नराधम ।
श्वा हुताशसमीपस्थं पुरोडाशमिवाऽध्वरे ॥ ७ ॥
एवमुक्तस्ततः कर्णः किंचित्प्रस्फुरिताधरः ।
गगनस्थं विनिःश्वस्य दिवाकरमुदैक्षत ॥ ८ ॥
ततो दुर्योधनः कोपादुत्पपात महाबलः ।
भ्रातृपद्मवनात्तस्मान्मदोत्कट इव द्विपः ॥ ९ ॥
सोऽब्रवीद्भीमकर्माणं भीमसेनमवास्थितम् ।
वृकोदर न युक्तं ते वचनं वक्तुमीदृशम् ॥ १० ॥
क्षत्रियाणां बलं ज्येष्ठं योद्धव्यं क्षत्रबन्धुना ।
शूराणां च नदीनां च दुर्विदाः प्रभवाः किल ॥ ११ ॥

वस्त्रके अन्त भागसे अपने पावोंको ढांप कर राज्य पानेसे सफल मनोरथ कर्णको पुत्र कहके संभाषण किया और स्नेहसे चित्त गलजानेसे गले लगाकरके अङ्गराज्य में अभिषिक्त कर्णके भींगे सिरको आनन्दके आंसूसे फिर भिंगोया। (१-४)

भीमसेन उसको देखकरके कर्णको सूतका पुत्र जानकर मानो हंसीसे बोले; कि हे सूतपुत्र! तुम रणभूमिमें अर्जुनसे मारे जानेके योग्य नहीं हो; तुम शीघ्र घोडा चलानेके निमित्त अपने कुलके योग्य पैनेको थामो! रे नराधम! कुत्ता जैसे यज्ञीय अग्निके सामने स्थित घृत पीनेके योग्य नहीं है। वैसेही तूभी अङ्ग-राज्यको भोगनेके योग्य नहीं है। भीम-की इस बातसे कर्णके होंठ कांपने लगे। उन्होंने ऊंची सांस लेकर आकाशमें स्थित दिननाथ पर आंख फेरी! (५-८)

अनन्तर महाबली दुर्योधन क्रोधित होकर मदसे उन्मत्त हस्तीके समान भ्रातृ-वर्गरूपी पद्मवनसे उसीक्षण कूद उठे और निकट ठहरे हुए, भीमकर्म करनेवाले, भीमसेनसे बोले, कि वृकोदर! तुमको ऐसा कहना न चाहिये था; क्षत्रियोंका बलही श्रेष्ठ है, क्षत्रियके निन्दित होने-परभी उससे लडना चाहिये। ऐसा कहा

सलिलादुत्थितो वह्निर्येन व्याप्तं चराचरम् ।
दधीचस्याऽस्थितो वज्रं कृतं दानवसूदनम् ॥ १२ ॥
आग्नेयः कृत्तिकापुत्रो रौद्रो गाङ्गेय इत्यपि ।
श्रूयते भगवान्देवः सर्वगुह्यमयो गुहः ॥ १३ ॥
क्षत्रियेभ्यश्च ये जाता ब्राह्मणास्ते च ते श्रुताः ।
विश्वामित्रप्रभृतयः प्राप्ता ब्रह्मत्वमव्ययम् ॥ १४ ॥
आचार्यः कलशाज्जातो द्रोणः शस्त्रभृतां वरः ।
गौतमस्याऽन्ववाये च शरस्तम्बाच्च गौतमः ॥ १५ ॥
भवतां च यथा जन्म तदप्यागमितं मया ।
सकुण्डलं सकवचं सर्वलक्षणलक्षितम् ।
कथमादित्यसदृशं मृगी व्याघ्रं जनिष्यति ॥ १६ ॥
पृथिवीराज्यमर्होऽयं नाऽङ्गराज्यं नरेश्वरः ।
अनेन बाहुवीर्येण मया चाऽऽज्ञानुवर्तिना ॥ १७ ॥
यस्य वा मनुजस्येदं न क्षान्तं मद्विचेष्टितम् ।

है, कि नदी और वीरोंकी उत्पत्तिका वृत्तान्त जानने योग्य नहीं है। (९—११)

देखो अग्निने जलसे उठकर इस चराचर भुवनको छेंक लिया है और जिस वज्रसे दानव-वंश नष्ट हुआ है, वह वज्र मुनिवर दधीचिकी हड्डीसे बना है; जो भगवान् देवकार्तिक हैं, उनकी उत्पत्तिभी जानने योग्य नहीं है, क्योंकि वह अग्निके पुत्र, कृत्तिकाके पुत्र, रुद्रके पुत्र और गङ्गाके पुत्र कहकेभी प्रसिद्ध होते हैं। फिर यह भी तुमने सुना होगा, कि जिन्होंने पहिले क्षत्रियोंसे जन्म लिया था, वेभी ब्राह्मण हुए हैं। देखो, विश्वामित्र आदिने क्षत्रियकुलमें जन्म लेकर अनश्वर अव्यय ब्राह्मणका पद प्राप्त किया था। (१२—१४)

अस्त्रधारियोंमें श्रेष्ठ आचार्य द्रोण यज्ञके कलसेसे उत्पन्न हुए थे और आचार्य कृपने गौतमके वंशमें शरकण्डेकी लकडीसे जन्म लिया था; औरोंकी कथा कहनेका क्या प्रयोजन है, तुम्हाराही जन्म जिस प्रकारसे हुआ था, वहभी मैं जानता हूं; यह सम्भवही नहीं होता, कि कुण्डल कवच सहित जन्म लिये हुए सर्व लक्षणयुक्त सूर्यवत् इस पुरुषव्याघ्रने मृगीसे जन्म लिया हो; विशेष इन कर्णके भुजबल और आज्ञानुसारी मेरे विद्यमान रहते इन नरेश्वरको केवल अंगराज्य हीका भोगना क्या है, बल्कि यह भूमण्डल भरके एकही अधिकारी होने योग्य हैं। पर यदि मेरा यह कार्य किसी-

रथमारुह्य पद्भ्यां स विनामयतु कार्मुकम् ॥ १८ ॥
ततः सर्वस्य रङ्गस्य हाहाकारो महानभूत् ।
साधुवादानुसंबद्धः सूर्यश्चाऽस्तमुपागमत् ॥ १९ ॥
ततो दुर्योधनः कर्णमालम्ब्याऽग्रकरे नृपः ।
दीपिकाग्निकृतालोकस्तस्माद्रङ्गाद्विनिर्ययौ ॥ २० ॥
पाण्डवाश्च सहद्रोणाः सकृपाश्च विशाम्पते ।
भीष्मेण सहिताः सर्वे ययुः स्वं स्वं निवेशनम् ॥ २१ ॥
अर्जुनेति जनः कश्चित्कश्चित्कर्णेति भारत ।
कश्चिद् दुर्योधनेत्येवं ब्रुवन्तः प्रस्थितास्तदा ॥ २२ ॥
कुन्त्याश्च प्रत्यभिज्ञाय दिव्यलक्षणसूचितम् ।
पुत्रमङ्गेश्वरं स्नेहाच्छन्ना प्रीतिरजायत ॥ २३ ॥
दुर्योधनस्याऽपि तदा कर्णमासाद्य पार्थिव ।
भयमर्जुनसंजातं क्षिप्रमन्तरधीयत ॥ २४ ॥
स चापि वीरः कृतशस्त्रनिःश्रमः परेण साम्नाऽभ्यवदत्सुयोधनम् ।
युधिष्ठिरस्याऽप्यभवत्तदा मतिर्न कर्णतुल्योऽस्ति धनुर्धरः क्षितौ ॥ २५ ॥

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यामादिपर्वणि
संभवपर्वण्यस्त्रदर्शने ऊनचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १३९ ॥ [५५८८]

को असहन जान पडा हो, तो वह रथ-पर आरूढ होकर दोनों पाओंके सहारे शरासन नवावे। (१५—१८)

अनन्तर अखाडे भरमें साधुवादयुक्त बडा कोलाहल उठने लगा, ऐसे समयमें दिन-नाथ अस्ताचलको सिधारे। अनन्तर भूपाल दुर्योधन कर्णके हाथ पकड दीपकके उजालेमें उस अखाडेसे निकले। पृथ्वीनाथ! पाण्डवगण और आचार्य द्रोण, कृप और भीष्मके साथ सब उस समय अपने अपने घरको चलेगये। तब देखने वालोंमें कोई अर्जुनकी, कोई कर्ण तथा दुर्योधनकी बात कहता हुआ चला गया। कुन्ती दिव्य लक्षणयुक्त पुत्रको पहिचानकर और उसको अङ्गराज्यमें अभिषिक्त देखकर स्नेह के कारण गुप्त भावसे प्रसन्न हुई। हे पृथ्वीपते! तब कर्णको पाकर दुर्योधनके हृदयसे अर्जुनका भय जाता रहा। शस्त्र-विद्यामें परिश्रमी वीर कर्ण मीठी मीठी बातोंसे सुयोधनको प्रसन्न करने लगे और युधिष्ठिरकोभी समझ पडा, कि भू-मण्डल भरमें कर्णके समान धनुष्य-धारी कोई नहीं है। (१९-२५)[५५८८]

आदिपर्वमें एकसौ उन चालीस अध्याय समाप्त।

वैशम्पायन उवाच- पाण्डवान्धार्तराष्ट्रांश्च कृतास्त्रान्प्रसमीक्ष्य सः।
गुर्वर्थं दक्षिणाकाले प्राप्तेऽमन्यत वै गुरुः ॥ १ ॥
ततः शिष्यान्समानीय आचार्योऽर्थमचोदयत्।
द्रोणः सर्वानशेषेण दक्षिणार्थं महीपते ॥ २ ॥
पाञ्चालराजं द्रुपदं गृहीत्वा रणमूर्धनि ।
पर्यानयत भद्रं वः सा स्यात्परमदक्षिणा ॥ ३ ॥
तथेत्युक्त्वा तु ते सर्वे रथैस्तूर्णं प्रहारिणः ।
आचार्यधनदानार्थं द्रोणेन सहिता ययुः ॥ ४ ॥
ततोऽभिजग्मुः पाञ्चालान्निघ्नन्तस्ते नरर्षभाः।
ममृदुस्तस्य नगरं द्रुपदस्य महौजसः ॥ ५ ॥
दुर्योधनश्च कर्णश्च युयुत्सुश्च महाबलः ।
दुःशासनो विकर्णश्च जलसन्धः सुलोचनः ॥ ६ ॥
एते चान्ये च बहवः कुमारा बहुविक्रमाः।
अहं पूर्वमहं पूर्वमित्येवं क्षत्रियर्षभाः ॥ ७ ॥
ततो वररथारूढाः कुमाराः सादिभिः सह।
प्रविश्य नगरं सर्वे राजमार्गमुपाययुः ॥ ८ ॥
तस्मिन्काले तु पाञ्चालः श्रुत्वा दृष्ट्वा महद्बलम्।

आदिपर्वमें एकसौ चालीस अध्याय ।

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि अनन्तर आचार्य द्रोणने पाण्डुके तथा धृतराष्ट्रके पुत्रोंको अस्त्रविद्यामें शिक्षित देखकर गुरु-दक्षिणाके काल आनेपर दक्षिणाके योग्य विषयका निश्चय किया। अनन्तर शिष्योंको लिवा लाकर गुरु दक्षिणाके वह योग्य वस्तुकी आज्ञाकर बोले, कि तुम लड करके पाञ्चालराज द्रुपदको पराजय पूर्वक पकड कर मेरे पास ले आओ। तुम्हारा मङ्गल होवे, ऐसा करनेहीसे तुम अच्छी दक्षिणा दोगे। शिष्यगण सब वह मानकर गुरु दक्षिणाके लिये अस्त्र शस्त्र लेकर रथ पर चढके गुरु द्रोणके साथ वेगसे पधारे। वे नरश्रेष्ठगण सब पाञ्चाल देशमें मारते पीटते हुए चले, आगे बडे तेजस्वी द्रुपदके नगरको बिगाडने लगे। (१—५)

दुर्योधन, कर्ण महाबली युयुत्सु, दुःशासन,विकर्ण,जलसन्ध, सुलोचन और दूसरे बडे विक्रमी क्षत्रियोंमें श्रेष्ठ कुमारगण यह कहते हुए कि " मैं पहिले मैं पहिले " अच्छे रथ पर चढकरके घुड चढोंसे घेरे जाकर नगरमें घुसकर राजमार्ग

भ्रातृभिः सहितो राजंस्त्वरया निर्ययौ गृहात्॥ ९ ॥
ततस्तु कृतसन्नाहो यज्ञसेनो महीधरः ।
शरवर्षाणि मुञ्चन्तः प्रणेदुः सर्व एव ते ॥ १० ॥
ततो रथेन शुभ्रेण समासाद्य तु कौरवान्।
यज्ञसेनः शरान्घोरान्ववर्ष युधि दुर्जयः ॥ ११ ॥
वैशम्पायन उवाच–पूर्वमेव तु संमन्त्र्य पार्थो द्रोणमथाऽब्रवीत्।
दर्पोद्रेकात्कुमाराणामाचार्यं द्विजसत्तमम् ॥ १२ ॥
एषां पराक्रमस्याऽन्ते वयं कुर्याम साहसम्।
एतैरशक्तः पाञ्चालो ग्रहीतुं रणमूर्धनि ॥ १३ ॥
एवमुक्त्वा तु कौन्तेयो भ्रातृभिः सहितोऽनघः।
अर्धक्रोशे तु नगरादतिष्ठद्बहिरेव सः ॥ १४ ॥
द्रुपदः कौरवान्दृष्ट्वा प्राधावत समन्ततः।
शरजालेन महता मोहयन्कौरवीं चमूम् ॥ १५ ॥
तमुद्यतं रथेनैकमाशुकारिणमाहवे ।
अनेकमिव संत्रासान्मेनिरे तत्र कौरवाः ॥ १६ ॥
द्रुपदस्य शरा घोरा विचेरुः सर्वतो दिशम्।

से चलने लगे। हे राजन्! उस समय पाञ्चाल देशके, राजा यज्ञसेन वह सब बात सुनकर आयी हुई बडी भारी सेना देख करके युद्धके लिये सजकर भाइयोंके साथ भवनसे शीघ्र निकले। कौरवगण सब बडा शब्द करते हुये बाण वर्षाने लगे। तब दुर्जय यज्ञसेन श्वेत रथ पर चढकर रणमें पाण्डवोंके निकट आकर बहुत अधिक बाण वर्षाने लगे। (९-११)

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि अर्जुन कुमारोंको अहंकारसे कूदते देखकर पहिलेही परामर्श कर द्विजश्रेष्ठ आचार्य द्रोणसे बोले, कि इनके बल दिखा लेनेके पीछे हम साहस करेंगे, क्योंकि रणस्थल में यह कदापि भूपाल पाञ्चालको पकड नहीं पावेंगे। अनघ कुन्तीपुत्र यह कहकर भाइयोंके साथ नगरसे आधेकोस की दूरी पर जा रहे; इधर द्रुपद कौरवोंको देखकर अगणित बाणोंसे कौरवी सेनाको मोहित करके चारों ओर दौडने लगे। (१२-१५)

कौरवलोग युद्धस्थलमें रथ पर चढे हुए लडनेमें उद्यत अकेले द्रुपदकी शीघ्रता को देखकर भयके मारे मानों उस एक हीको अनेक समझने लगे। राजा द्रुपदके कठोर बाण चारों ओर फिरने लगे।

ततः शङ्खाश्च भेर्यश्च मृदङ्गाश्च सहस्रशः॥ १७॥
प्रावाद्यन्त महाराज पाञ्चालानां निवेशने।
सिंहनादश्च संजज्ञे पाञ्चालानां महात्मनाम्॥ १८॥
धनुर्ज्यातलशब्दश्च संस्पृश्य गगनं महान्।
दुर्योधनो विकर्णश्च सुबाहुर्दीर्घलोचनः॥ १९॥
दुःशासनश्च संक्रुद्धः शरवर्षैरवाकिरन्।
सोऽतिविद्धो महेष्वासः पार्षतो युधि दुर्जयः॥ २०॥
व्यधमत्तान्यनीकानि तत्क्षणादेव भारत।
दुर्योधनं विकर्णं च कर्णं चाऽपि महाबलम्॥ २१॥
नानानृपसुतान्वीरान्सैन्यानि विविधानि च।
अलातचक्रवत्सर्वं चरन्बाणैरतर्पयत्॥ २२॥
ततस्तु नागराः सर्वे मुसलैर्यष्टिभिस्तदा।
अभ्यवर्षन्त कौरव्यान्वर्षमाणा घना इव॥ २३॥
सबालवृद्धास्ते पौराः कौरवानभ्ययुस्तदा।
श्रुत्वा सुतुमुलं युद्धं कौरवानेव भारत॥ २४॥
द्रवन्ति स्म नदन्ति स्म क्रोशन्तः पाण्डवान्प्रति।
पाण्डवास्तु स्वनं श्रुत्वा आर्तानां लोमहर्षणम्॥२५॥

महाराज! अनन्तर पाञ्चालोंके घरमें सहस्रों शङ्ख,मृदङ्ग तथा नगाडे बजने लगे और उनके सिंह समान गर्जन तथा धन्वामें गुण चढानेके घोर शब्द आकाशमें गूंजने लगे। उससे दुर्योधन, विकर्ण, सुबाहु, दीर्घलोचन और दुःशासन यह क्रोधित होकर बाण वर्षाने लगे। (१९-२०)

हे भारत! लडाईमें दुर्जय बडे चापधारी पृषत्पुत्र द्रुपद बाणोंसे बहुत विद्ध होकर उसीक्षण विपक्षी सेनाको बडी कठोर पीडा पहुंचाने लगे। वह अकेले रथके पहियेके समान घूमघूमकर दुर्योधन, विकर्ण, महाबली कर्ण और नाना देशके वीर राजकुमारोंको तथा अनेक सेनाओंको बाणोंसे डाटने लगे, किसीको उसका स्वाद बिना दिये नहीं छोडा। अनन्तर नगरवालोंने वर्षनेवाले बादलोंके समान मूसल और लाटियोंसे कौरवोंको घेर लिया। (२१—२३)

हे भारत! तब पुरवासियोंमें बच्चोंसे लेकर बुड्ढोंतक घोर युद्धकी बात सुनकर कौरवों पर दौडे; इससे कौरवगण भागकर चिल्ला चिल्लाके रोते हुए पाण्डवों की ओर चले। तब पाण्डवगण रोये

अभिवाद्य ततो द्रोणं रथानारुरुहुस्तदा।
युधिष्ठिरं निवार्याऽऽशु मा युध्यस्वेति पाण्डवम्॥२६॥
माद्रेयौ चक्ररक्षौ तु फाल्गुनश्च तदाऽकरात्।
सेनाग्रगो भीमसेनः सदाऽभूद्गदया सह॥ २७॥
तदा शत्रुस्वनं श्रुत्वा भ्रातृभिः सहितोऽनघ।
आयाज्जवेन कौन्तेयो रथेनाऽनादयन्दिशः॥ २८॥
पाञ्चालानां ततः सेनामुद्धूतार्णवनिस्वनाम्।
भीमसेनो महाबाहुर्दण्डपाणिरिवाऽन्तकः॥ २९॥
प्रविवेश महासेनां मकरः सागरं यथा।
स्वयमभ्यद्रवद्भीमो नागानीकं गदाधरः॥ ३०॥
स युद्धकुशलः पार्थो बाहुवीर्येण चाऽऽत्मनः।
अहनत्कुञ्जरानीकं गदया कालरूपधृक्॥ ३१॥
ते गजा गिरिसंकाशाः क्षरन्तो रुधिरं बहु।
भीमसेनस्य गदया भिन्नमस्तकपिण्डकाः॥ ३२॥
पतन्ति द्विरदा भूमौ वज्रघातादिवाऽचलाः॥ ३३॥
गजानश्वान्रथांश्चैव पातयामास पाण्डवः।

खडे करनेवाली रुलाईके कोलाहलको सुनकर आचार्य द्रोणके पांव छूकर रथपर चढे। अर्जुनने शीघ्रतासे युधिष्ठिरसे यह कह कर मनाकरके कि "आप न लडिये" नकुल और सहदेवको चक्रकी रखवारीमें नियुक्त किया और सदा सेनाके आगे चलनेवाले भीमसेन हाथमें गदा लेकर चले। (२४–२७)

कुन्तीपुत्र अनघ अर्जुन शत्रुओंका शब्द सुनकर रथोंकी आहटसे दशों दिशा भरते हुए, भाईयोंके साथ बडे वेगसे रणभूमिमें आगये। जिस प्रकार मगर समुद्रमें प्रवेश करता है, वैसेही हाथमें दण्ड लिये यमराजके समान भीमसेन उछलते हुए समुद्रकी भांति शब्द करती हुई पाञ्चाल सेनामें प्रविष्ट हुए। अतुल भुजवीर्य युक्त, रणमें पण्डित पृथापुत्र भीम स्वयं गजपर चढी हुई सेनाकी ओर दौड कर और कालरूपी होकर गदाघातसे उसको नष्ट करने लगी। (२८—३१)

उन सब महीधर समान हास्तियोंके सिर भीमसेनकी गदाकी चोटसे टूट जानेपर वे रक्तकी धार बहाते हुए, वज्रकी चोट लगे हुए पर्वतकी भांति धरतीपर गिरने लगे। अर्जुनके बडे भाई वृकोदरने अगणित गज, घोडे और रथ धरती

पदातींश्च रथांश्चैव न्यवधीदर्जुनाग्रजः ॥ ३४ ॥
गोपाल इव दण्डेन यथा पशुगणान्वने ।
चालयन्रथनागांश्च संचचाल वृकोदरः ॥ ३५ ॥
वैशम्पायन उवाच—भारद्वाजप्रियं कर्तुमुद्यतः फाल्गुनस्तदा ।
पार्षतं शरजालेन क्षिपन्नागात्स पाण्डवः ॥ ३६ ॥
हयौघांश्च रथौघांश्च गजौघांश्च समन्ततः ।
पातयन्समरे राजन्युगान्ताग्निरिव ज्वलन् ॥ ३७ ॥
ततस्ते हन्यमाना वै पाञ्चालाः सृञ्जयास्तथा ।
शरैर्नानाविधैस्तूर्णं पार्थं संछाद्य सर्वशः ।
सिंहनादं मुखैः कृत्वा समयुध्यन्त पाण्डवम् ॥ ३८ ॥
तद्युद्धमभवद्घोरं सुमहाद्भुतदर्शनम् ।
सिंहनादस्वनं श्रुत्वा नामृष्यत्पाकशासनिः ॥ ३९ ॥
ततः किरीटी सहसा पाञ्चालान्समरेऽद्रवत् ।
छादयन्निषुजालेन महता मोहयन्निव ॥ ४० ॥
शीघ्रमभ्यस्यतो बाणान्संदधानस्य चाऽनिशम् ।
नाऽन्तरं ददृशे किंचित्कौन्तेयस्य यशस्विनः ॥ ४१ ॥

पर गिराये और असंख्य रथी और पैदलोंको यमराजके घर भेजने लगे। वनमें गौओंके रखवारे जिस प्रकार लकडीसे पशुदलको खदेडते हैं, वैसेही भीमसेन गज और रथियोंको गदासे भगाने लगे। (३२—३५)

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि तब पाण्डुपुत्र अर्जुनने आचार्य द्रोणके प्रिय कार्य करनेमें उद्यत होकर बाणोंके द्वारा हस्तीपर से पाञ्चालराजको गिराया। हे राजन् ! वह प्रलयकालके अग्निके समान जलकर चारों ओर घोडे रथ और गजोंको रणशय्यापर सुलाने लगे। अनन्तर मरते जाते हुए, सृञ्जय और पाञ्चाललोग मुखसे सिंहसमान गर्जनकर नाना बाणोंसे पार्थको घेरकर कठोर युद्ध करने लगे। तब देखने में वह घोर युद्ध बडाही विकराल हुआ। (३६—३९)

इन्द्रनन्दन अर्जुनसे वह सिंह-गर्जन सहा नहीं गया, वह उसीक्षण घोर बाणों से रणभूमिको चारों ओर घेरकर पाञ्चालोंको मोहित करके उनपर दौडे। यशस्वी कुन्तीपुत्र इतने शीघ्र बाण जोडने और चलाने लगे, कि उनका तुकभी अवसर दीख नहीं पडा। चारों ओर साधुवाद-साहित सिंह-गर्जन होने लगा ! शम्बर

सिंहनादश्च संजज्ञे साधुशब्देन मिश्रितः ।
ततः पाञ्चालराजस्तु तथा सत्यजिता सह ॥ ४२ ॥
त्वरमाणोऽभिदुद्राव महेन्द्रं शम्बरो यथा ।
महता शरवर्षेण पार्थः पाञ्चालमावृणोत् ॥ ४३ ॥
ततो हलहलाशब्द आसीत्पाञ्चालके बले ।
जिघृक्षति महासिंहो गजानामिव यूथपम् ॥ ४४ ॥
दृष्ट्वा पार्थं तदाऽऽयान्तं सत्यजित्सत्यविक्रमः ।
पाञ्चालं वै परिप्रेप्सुर्धनञ्जयमदुद्रवत् ॥ ४५ ॥
ततस्त्वर्जुनपाञ्चालौ युद्धाय समुपागतौ ।
व्यक्षोभयेतां तौ सैन्यमिन्द्रवैरोचनाविव ॥ ४६ ॥
ततः सत्यजितं पार्थो दशभिर्मर्मभेदिभिः ।
विव्याध बलवद्गाढं तदद्भुतमिवाऽभवत् ॥ ४७ ॥
ततः शरशतैः पार्थं पाञ्चालः शीघ्रमार्दयत् ।
पार्थस्तु शरवर्षेण छाद्यमानो महारथः ॥ ४८ ॥
वेगं चक्रे महावेगो धनुर्ज्यामवमृज्य च ।
ततः सत्याजितश्चापं छित्वा राजानमभ्ययात् ॥ ४९ ॥
अथाऽन्यद्धनुरादाय सत्यजिद्वेगवत्तरम् ।

असुर जिस प्रकार महेन्द्रपर दौडा था, वैसेही पाञ्चालराज तब सत्याजितके साथ शीघ्रता करके अर्जुनपर दौडे। अर्जुनने बडे बडे बाणोंकी वर्षा कर पाञ्चालराजको ढंप लिया। इससे उस समय पाञ्चालों में ऐसी हलहलावट उठने लगी, कि जैसी बडे सिंहके गजदलपतिके पकडने को चाहनेसे उठती है। (३९–४४)

तब सत्यविक्रमी सत्याजित अर्जुनको आते देखकर पाञ्चालराजकी रक्षाके लिये अर्जुन पर दौडे। इन्द्र और विरोचनके पुत्र के समान युद्धार्थ एकत्र भये। अर्जुन और सत्याजित दोनों एक दूसरेकी सेनामें हलचल मचाने लगे। आगे अर्जुनने मर्म भेद करने वाले बलपूर्वक कठिन रूपसे सत्याजितको विद्ध किया। वह लीला मानो आश्चर्यसी जान पडी। अनन्तर सत्याजितने उसीक्षण धनंजय को पीडा पहुंचाई। बडे वेगवान् महारथी धनञ्जयने बाण वृष्टिसे ढंपे जाकर धन्वाके गुणको मल कर फिर तेजको बढा लिया। आगे बाणोंसे सत्यजित का शरासन काटकर द्रुपदकी ओर चले। (४५—४९)

अनन्तर सत्यजितने शीघ्रतासे अधिक

साश्वंससूतं सरथं पार्थं विव्याध सत्वरः ॥ ५० ॥
स तं न ममृषे पार्थः पाञ्चालेनाऽर्दितो युधि ।
ततस्तस्य विनाशार्थं सत्वरं व्यसृजच्छरान् ॥ ५१ ॥
हयान्ध्वजं धनुर्मुष्टिमुभौ तौ पार्ष्णिसारथी ।
स तथा भिद्यमानेषु कार्मुकेषु पुनः पुनः ॥ ५२ ॥
हयेषु विनियुक्तेषु विमुखोऽभवदाहवे ।
स सत्यजितमालोक्य तथा विमुखमाहवे ॥ ५३ ॥
वेगेन महता राजन्नभ्यवर्षत पाण्डवम् ।
तदा चक्रे महद्युद्धमर्जुनो जयतां वरः ॥ ५४ ॥
तस्य पार्थो धनुश्छित्वा ध्वजं चोर्व्यामपातयत् ।
पञ्चभिस्तस्य विव्याध हयान्सूतं च सायकैः ॥ ५५ ॥
तत उत्सृज्य तच्चापमाददानं शरावरम् ।
खड्गमुद्धृत्य कौन्तेयः सिंहनादमथाऽकरोत् ॥ ५६ ॥
पाञ्चालस्य रथस्येषामाप्लुत्य सहसाऽपतत् ।
पाञ्चालरथमास्थाय अवित्रस्तो धनंजयः ॥ ५७ ॥
विक्षोभ्याऽम्भोनिधिं पार्थस्तं नागमिव सोऽग्रहीत् ।
ततस्तु सर्वे पाञ्चाला विद्रवन्ति दिशो दश ॥ ५८ ॥

वेगवान् दूसरे एक शरासनको लेकर घोडे, रथ और सारथिके साथ पार्थको विद्ध किया। पार्थने रण-स्थलमें उससे पीडा पाकर उसकी क्षमा नहीं की। वरन उसको नष्ट करनेके लिये वेगसे घोडे, झण्डे, धनु, मुट्ठी तथा पीठके रखवारे और सारथि पर कुछ बाण चलाये। अर्जुनसे इस प्रकार बार बार उनके धन्वा काटे और घोडे जोतसे निकाले जाने पर उन्होंने लडाईमें पीठ दिखाई। (५०—५३)

पाञ्चालराज सत्यजितको लडाईमें हार खाते देखकर अर्जुनपर बडे वेगसे बाण वर्षाने लगे। जययुक्त अर्जुनभी तब घोर युद्धमें प्रवृत्त हुए। उन्होंने उनके झण्डे और धनुषको काटकर धरती पर गिराया और पांच बाणों से उनके सारथि और घोडोंको विद्ध किया। अनन्तर द्रुपदराज उस टूटेधनुष्यको छोडकर दूसरा लेने लगे, इतनेहीमें कुन्ती-नन्दन खड्ग लेकर सिंह समान गर्जन करने लगे और एकायक कूदकर पांचाल राजके रथकी झण्डीपर जा गिरे। (५४—५७)

धनंजयने ऐसे निर्भय होकर द्रुपदकी रथपर चढकर पकड लिया, कि जैसे

दर्शयन्सर्वसैन्यानां स बाह्वोर्बलमात्मनः ।
सिंहनादस्वनं कृत्वा निर्जगाम धनञ्जयः ॥ ५९ ॥
आयान्तमर्जुनं दृष्ट्वा कुमाराः सहितास्तदा ।
ममृदुस्तस्य नगरं द्रुपदस्य महात्मनः ॥ ६० ॥

अर्जुन उवाच— संबन्धी कुरुवीराणां द्रुपदो राजसत्तमः ।
मा वधीस्तद्बलं भीम गुरुदानं प्रदीयताम् ॥ ६१ ॥

वैशम्पायन उवाच—भीमसेनस्तदा राजन्नर्जुनेन निवारितः ।
अतृप्तो युद्धधर्मेषु न्यवर्तत महाबलः ॥ ६२ ॥
ते यज्ञसेनं द्रुपदं गृहीत्वा रणमूर्धनि ।
उपाजह्रुः सहामात्यं द्रोणाय भरतर्षभ ॥ ६३ ॥
भग्नदर्पं हृतधनं तं तथा वशमागतम् ।
सवैरं मनसा ध्यात्वा द्रोणो द्रुपदमब्रवीत् ॥ ६४ ॥
विमृद्य तरसा राष्ट्रं पुरं ते मृदितं मया ।
प्राप्य जीवं रिपुवशं सखिपूर्वं किमिष्यते ॥ ६५ ॥
एवमुक्त्वा प्रहस्यैवं किंचित्स पुनरब्रवीत् ।
मा भैः प्राणभयाद्वीर क्षमिणो ब्राह्मणा वयम् ॥ ६६ ॥

लोग समुद्रमें हलचल मचाकर हस्तीको पकड लेते हैं; उसे देखकर सब पाञ्चाल दशों ओर भागने लगे।तब धनंजय सम्पूर्ण सेनाओंमें अपना भुजबल प्रगट करके सिंहगर्जनकर वहांसे लौट चले । कुमार लोग अर्जुनको लौटते देखकर सब एकत्र होकर उस समय महात्मा द्रुपदका नगर बिगाडने लगे । आगे अर्जुन बोले, कि हे भीम ! राजश्रेष्ठ द्रुपद कुरुवीरोंके सम्बन्धी हैं,सो उनकी सेनाको मत मारो, केवल गुरुदक्षिणाही दीजावे । (५७-६१)

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि हे राजन् ! महाबली भीमसेन तब अर्जुनसे रोकेजाकर युद्धमें भले प्रकार तृप्त न होने परभी निवृत्त हुए । हे भरतश्रेष्ठ ! कुमारलोगों ने रणभूमिसे यज्ञसेन द्रुपदको मन्त्रीके साथ पकड लेजाकर आचार्य द्रोणको भेंट किया । द्रोण उस प्रकार वशमें आये, अहङ्कार छोडे और धन खोये द्रुपदको देखकर पहिलेकी शत्रुताको स्मरणकर बोले, कि मैंने बलसे तुम्हारे राज्यको बिगाडकर पुरीको भय डाला है, क्या अपने जीवनको पाकर,जो अब इस विप्रके वशमें आ गया है, पहिली मित्रताको चाहते हो ? (६२-६५)

यह कह करके हंसकर फिर वह मनही

आश्रमे क्रीडितं यत्तु त्वया बाल्ये मया सह।
तेन संवर्धितः स्नेहः प्रीतिश्च क्षत्रियर्षभ ॥ ६७ ॥
प्रार्थयेयं त्वया सख्यं पुनरेव जनाधिप।
वरं ददामि ते राजन्राज्यस्याऽर्धमवाप्नुहि ॥ ६८ ॥
अराजा किल नो राज्ञः सखा भवितुमर्हति।
अतः प्रयतितं राज्ये यज्ञसेन मया तव ॥ ६९ ॥
राजासि दक्षिणे कूले भागीरथ्याऽहमुत्तरे।
सखायं मां विजानीहि पाञ्चाल यदि मन्यसे ॥ ७० ॥
द्रुपद उवाच— अनाश्चर्यमिदं ब्रह्मन्विक्रान्तेषु महात्मसु।
प्रीये त्वयाऽहं त्वत्तश्च प्रीतिमिच्छामि शाश्वतीम्॥७१॥
वैशम्पायन उवाच—एवमुक्तः स तं द्रोणो मोक्षयामास भारत।
सत्कृत्य चैनं प्रीतात्मा राज्यार्धं प्रत्यपादयत् ॥ ७२ ॥
माकन्दीमथ गङ्गायास्तीरेजनपदायुताम्।
सोऽध्यावसद्दीनमनाः काम्पिल्यं च पुरोत्तमम्॥७३ ॥
दक्षिणांश्चापि पाञ्चालान्यावच्चर्मण्वती नदी।
द्रोणेन चैवं द्रुपदः परिभूयाऽथ पालितः ॥ ७४ ॥

मनमें निश्चय कर उनसे बोले, कि हे वीर! तुम प्राणका भय मत करो, हम ब्राह्मण हैं, सो क्षमायुक्त हैं। हे क्षत्रियोंमें श्रेष्ठजन! बालेपनमें मुझसे खेलने कूदनेहीके हेतु तुम पर मेरा स्नेह और प्रेम बढा था, सो हे नराधिप! मैं फिर तुमसे मित्रता चाहता हूं। हे राजन्! तुमको वर देता हूं, कि तुम इस राज्यका आधा भाग पावोगे। हे यज्ञसेन! राजा न होनेसे कोई राजा का मित्र नहीं हो सकता है, इसी लिये मैं तुमको राज्यदेनेके कारण ऐसा प्रयत्न कर रहा हूं। हे पाञ्चाल! तुम भागीरथीके दक्षिण किनारेके राजा होगे और मैं उत्तर किनारेका राजा हूंगा, अब तुम चाहो तो मुझको मित्रकरके मानो। द्रुपद बोले, कि हे ब्रह्मन्! विक्रमी महात्मा पुरुषोंके लिये यह आश्चर्य नहीं है! मैं आपसे प्यार किया जाता हूं, और यह चाहता हूं, कि आपभी मुझसे सदा-स्थायी प्रीति लाभ कर सके। (६६-७१)

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि हे भारत! द्रुपदके ऐसा कहनेपर द्रोणने उनको बन्धनसे मुक्तकर प्रसन्नचित्तसे सत्कार करके राज्यका आधा भाग दिया। द्रुपद गङ्गातटके जनपदोंके सहित माक-न्दी देश और चर्मण्वती नदीतक दक्षिण

क्षात्रेण च बलेनाऽस्य नाऽपश्यत्स पराजयम्।
हीनं विदित्वा चाऽत्मानं ब्राह्मेण स बलेन तु ॥ ७५॥
पुत्रजन्म परीप्सन्वै पृथिवीमन्वसंचरत् ।
अहिच्छत्रं च विषयं द्रोणः समभिपद्यत ॥ ७६ ॥
एवं राजन्नहिच्छत्रा पुरी जनपदायुता ।
युधि निर्जित्य पार्थेन द्रोणाय प्रतिपादिता ॥७७ ॥ [५६६५]

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यामादिपर्वणि संभवपर्वणि द्रुपदशासने चत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १४० ॥

वैशम्पायन उवाच—ततः संवत्सरस्यान्ते यौवराज्याय पार्थिव ।
स्थापितो धृतराष्ट्रेण पाण्डुपुत्रो युधिष्ठिरः ॥ १ ॥
धृतिस्थैर्यसहिष्णुत्वादानृशंस्यात्तथाऽऽर्जवात् ।
भृत्यानामनुकम्पार्थं तथैव स्थिरसौहृदात् ॥ २ ॥
ततोऽदीर्घेण कालेन कुन्तीपुत्रो युधिष्ठिरः ।
पितुरन्तर्दधे कीर्तिं शीलवृत्तसमाधिभिः ॥ ३ ॥
असियुद्धे गदायुद्धे रथयुद्धे च पाण्डवः ।
संकर्षणादशिक्षद्वै शश्वच्छिक्षां वृकोदरः ॥ ४ ॥
समाप्तशिक्षो भीमस्तु द्युमत्सेनसमो बले ।

पाञ्चालपर अधिकार पाकर सुन्दर काम्पिल्य नगरमें मालिन चित्तसे बसने लगे। अनन्तर द्रोणकी शत्रुता उनसे सही नहीं गयी, उन्होंने क्षत्रियबलसे द्रोणका परास्त करना असंभव जाना, सो ब्राह्मण के बलसे अपनेको हीन जानकर पुत्र उत्पत्तिकी इच्छासे पृथ्वीके चारों ओर घूमने लगे। इधर द्रोणको अहिच्छत्र नामक राज्य मिल गया। हे राजन्! धनञ्जयने जनपद समेत अहिच्छत्रा पुरी को लडाईमें जीतकर आचार्य द्रोणको सौंप दिया था। (७२—७७) [५६६५]

आदिपर्वमें एकसौ चालीस अध्याय समाप्त।

आदिपर्वमें एकसौ एकतालीस अध्याय।

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि हे पृथ्वीनाथ! अनन्तर वर्षभर व्यतीत होनेपर धृतराष्ट्रने धीरता, स्थिरता, सहनशीलता अनिर्दयता, नौकरों पर दया, और स्थिर मित्रता गुणसे सुहावने पाण्डुनन्दन युधिष्ठिरको युवराजके पदपर बैठाया। कुन्ती कुमार ने शीलता, वृत्त और प्रजा समाधानसे पिताकी सुन्दर कीर्त्ति से ही अपना नाम बढाया। पाण्डुनन्दन वृकोदरकी बलदेव जीसे सदा असि, गदा, रथके युद्धके

पराक्रमेण सम्पन्नो भ्रातॄणामचरद्वशे ॥ ५ ॥
प्रगाढदृढमुष्टित्वे लाघवे वेधने तथा ।
क्षुरनाराचभल्लानां विपाटानां च तत्त्ववित् ॥ ६ ॥
ऋजुवक्रविशालानां प्रयोक्ता फाल्गुनोऽभवत् ।
लाघवे सौष्ठवे चैव नाऽन्यः कश्चन विद्यते ॥ ७ ॥
बीभत्सुसदृशो लोक इति द्रोणो व्यवस्थितः ।
ततोऽब्रवीद्गुडाकेशं द्रोणः कौरवसंसदि ॥ ८ ॥
अगस्त्यस्य धनुर्वेदे शिष्यो मम गुरुः पुरा ।
अग्निवेश इति ख्यातस्तस्य शिष्योऽस्मि भारत॥९॥
तीर्थात्तीर्थं गमयितुमहमेतत्समुद्यतः ।
तपसा यन्मया प्राप्तममोघमशनिप्रभम् ॥ १० ॥
अस्त्रं ब्रह्मशिरो नाम यद्दहेत्पृथिवीमपि ।
ददता गुरुणा चोक्तं न मनुष्येष्विदं त्वया॥ ११ ॥
भारद्वाज विमोक्तव्यमल्पवीर्येष्वपि प्रभो ।
त्वया प्राप्तमिदं वीर दिव्यं नाऽन्योऽर्हति त्विदम् १२
समयस्तु त्वया रक्ष्यो मुनिसृष्टो विशांपते ।

विषयमें अच्छी शिक्षा मिलती थी । द्युम-त्सेनके समान बली भीमसेन भली भांति शिक्षित होकर पराक्रमी भाइयोंके परम मित्र बने रहे। (१—५)

अर्जुन क्षुरा, नाराच, भाला, विपाट आदि सीधे तथा टेढे बडे बडे अस्त्रोंके चलानेमें और बडी दृढता तथा शीघ्रतासे लक्ष्यको विद्ध करनेमें अच्छे समर्थ हुए। द्रोणाचार्यने निश्चय किया था, कि शीघ्र-ता तथा सुनियमके विषयमें अर्जुनके समान जगत्में कोई दूसरा नहीं है। यह समझकर द्रोण कौरवोंकी सभामें गुडाकेश अर्जुनसे कहने लगे, कि हे भारत! पूर्व कालमें अग्निवेश नामसे प्रसिद्ध मुनि अग-स्त्यके शिष्य धनुर्वेदमें मेरे गुरु थे; मैंने उन अग्निवेशके शिष्य होकर शिक्षा पायी थी। मैंने तपोबलसे उन गुरुसे जो वज्रस-मान ब्रह्मशिर नामक अमोघ अस्त्र पाया था,जो कि सम्पूर्ण पृथ्वीको जला सकता है,उस अस्त्रको किसी दूसरेके हाथमें सौंप-कर उसके विरह न होनेके विषयमें प्रयत्न किया है। (६ - ११)

गुरुने जब मुझको वह अस्त्र दिया था,तब कहा था, कि " हे भारद्वाज ! तुम स्वल्प वीर्यवाले जन पर यह अस्त्र मत मारना। " हे वीर ! पीछे तुमने मुझसे वह दिव्य अस्त्र

आचार्यदक्षिणां देहि ज्ञातिग्रामस्य पश्यतः ॥ १३ ॥
ददानीति प्रतिज्ञाते फाल्गुनेनाऽब्रवीद्गुरुः ।
युद्धेऽहं प्रतियोद्धव्यो युद्ध्यमानस्त्वयाऽनघ ॥ १४ ॥
तथेति च प्रतिज्ञाय द्रोणाय कुरुपुङ्गवः ।
उपसंगृह्य चरणौ स प्रायादुत्तरां दिशम् ॥ १५ ॥
स्वभावादगमच्छब्दो महीं सागरमेखलाम् ।
अर्जुनस्य समो लोके नास्ति कश्चिद्धनुर्धरः ॥ १६ ॥
गदायुद्धेऽसियुद्धे च रथयुद्धे च पाण्डवः ।
पारगश्च धनुर्युद्धे बभूवाऽथ धनञ्जयः ॥ १७ ॥
नीतिमान्सकलां नीतिं विबुधाधिपतेस्तदा ।
अवाप्य सहदेवोऽपि भ्रातृणां ववृते वशे ॥ १८ ॥
द्रोणेनैव विनीतश्च भ्रातृणां नकुलः प्रियः ।
चित्रयोधी समाख्यातो बभूवाऽतिरथोदितः ॥१९ ॥
त्रिवर्षकृतयज्ञस्तु गन्धर्वाणामुपप्लवे ।
अर्जुनप्रमुखैः पार्थैः सौवीरः समरे हतः ॥ २० ॥

पाया है, कोई दूसरा इसके पानेको योग्य नहीं है, पर हे पृथ्वीनाथ! मुनिने जो नियम बना दिया था उनको मत लांघना, हालमें अपने स्वजनोंके सामने मुझको गुरुदक्षिणा दो। उसके अनन्तर उनके वाञ्छित दानको देनेमें अर्जुनके सम्मत होने पर गुरुजी बोले, कि हे अनघ! रणस्थलमें मेरे तुमसे लडनेको प्रवृत्त होनेसे तुम मेरे विरुद्ध लडना! कुरुश्रेष्ठ अर्जुन" तथास्तु"कहके वह बात मानकर उनके पावों पर प्रणाम कर योग्य उपदेश को प्राप्त हुआ।(११-१५)

समुद्रतक सम्पूर्ण धरतीमें आपही आप वह बात उडी, कि इस लोकमें अर्जुनके समान चापधारी कोई वीर नहीं है; चाहे गदायुद्ध वा असियुद्ध कहिये, चाहे रथयुद्ध वा धनुर्युद्ध कहिये, हर बातमें धनञ्जय दक्ष बने हैं। सहदेव देवाधिपति इन्द्ररूपी आचार्य द्रोणसे सम्पूर्ण नीति शिक्षा पाकर नीतिशील होकर भाईयोंके वशमें रहे। नकुल आचार्य द्रोणसे अच्छी शिक्षा पाकर चित्रयोधी और अतिरथ करके प्रख्यात और भाईयोंके प्यारे बने रहे। अर्जुन आदि पाण्डव इतने पराक्रमी हुए, कि उन्होंने उन सौवीरको जिन्होंनें गन्धर्वोंसे विद्रोह मचाना तुच्छ जानकर तीन वर्ष यज्ञ किया था, भयभीत नहीं हुए थे, रणशय्या पर सुलाया।(१६-२०)

न शशाक वशे कर्तुं यं पाण्डुरपि वीर्यवान्।
सोऽर्जुनेन वशं नीतो राजाऽऽसीद्यवनाधिपः॥ २१ ॥
अतीव बलसंपन्नः सदा मानी कुरून्प्रति।
विपुलो नाम सौवीरः शस्तः पार्थेन धीमता ॥ २२ ॥
दत्तामित्र इति ख्यातं सङ्ग्रामे कृतनिश्चयम्।
सुमित्रं नाम सौवीरमर्जुनोऽदमयच्छरैः ॥ २३ ॥
भीमसेनसहायश्च रथानामयुतं च सः।
अर्जुनः समरे प्राच्यान्सर्वानेकरथेऽजयत् ॥ २४ ॥
तथैवैकरथो गत्वा दक्षिणामजयद्दिशं।
धनौघं प्रापयामास कुरुराष्ट्रं धनञ्जयः ॥ २५ ॥
एवं सर्वे महात्मानः पाण्डवा मनुजोत्तमाः।
परराष्ट्राणि निर्जित्य स्वराष्ट्रं ववृधुः पुरा ॥ २६ ॥
ततो बलमतिख्यातं विज्ञाय दृढधन्विनाम्।
दूषितः सहसा भावो धृतराष्ट्रस्य पाण्डुषु ॥ २७ ॥
स चिन्तापरमो राजा न निद्रामलभन्निशि ॥२८॥ [५६९३]

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यामादिपर्वणि संभवपर्वणि धृतराष्ट्रचिन्तायामेकचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १४१ ॥

वीर्यवन्त पाण्डु जिस यवनराजको वशमें नहीं लासके थे, अर्जुनने उसको भी परास्त किया तथा आज्ञाधीन बनाया। उस सौवीर राज विपुलको जो अति बली होकर कुरुओंसे सदा अहंकार करते थे, धीमान् अर्जुनने गिराया। दत्तामित्र नामक प्रसिद्ध सुमित्र संज्ञायुक्त सौवीर देशी वीरके लडनेमें कटिबद्ध होने पर अर्जुनने बाणोंसे उसको रोका। अर्जुनने आप एक रथी होने परभी भीमके सहारे से दश सहस्र रथोंके साथ पूर्व देशीय सब राजाओं को परास्त किया और वैसेही रथपर चढकर दक्षिण ओर को परास्त कर कुरुराज्यमें अनेक धन भेजा। (२१-२५)

मानवोंमें श्रेष्ठ महात्मा पाण्डवोंमें पहिले इस प्रकार पराये राज्योंको परास्त कर कर निज राज्यको बढाया था। अनन्तर यह जानकर कि बडे भारी योद्धे पाण्डवोंका बलवीर्य बहुत प्रसिद्ध होगया, उनपर एकायक धृतराष्ट्रका भाव बिगड गया; वह बडे सोचके समुद्र में डूबे, इससे उन्हे रात्रिको नींद नहीं आतीथी। (२६—२८) [५६९३]

आदिपर्वमें एकसौ चालीस अध्याय समाप्त।

वैशम्पायन उवाच—श्रुत्वा पाण्डुसुतान्वीरान्बलोद्रिक्तान्महौजसः ।
धृतराष्ट्रो महीपालश्चिन्तामगमदातुरः ॥ १ ॥
तत आहूय मन्त्रज्ञं राजशास्त्रार्थवित्तमम् ।
कणिकं मन्त्रिणां श्रेष्ठं धृतराष्ट्रोऽब्रवीद्वचः ॥ २ ॥
धृतराष्ट्र उवाच —उत्सिक्ताः पाण्डवा नित्यं तेभ्योऽसूये द्विजोत्तम ।
तत्र मे निश्चिततमं संधिविग्रहकारणम् ॥
कणिक त्वं समाचक्ष्व करिष्ये वचनं तव ॥ ३ ॥
वैशम्पायन उवाच—स प्रसन्नमनास्तेन परिपृष्टो द्विजोत्तमः ।
उवाच वचनं तीक्ष्णं राजशास्त्रार्थदर्शनः ॥ ४ ॥
कणिक उवाच — शृणु राजन्निदं तत्र प्रोच्यमानं मयाऽनघ ।
न मेऽभ्यसूया कर्तव्या श्रुत्वैतत्कुरुसत्तम ॥ ५ ॥
नित्यमुद्यतदण्डः स्यान्नित्यं विवृतपौरुषः ।
अच्छिद्रश्छिद्रदर्शी स्यात्परेषां विवरानुगः ॥ ६ ॥
नित्यमुद्यतदण्डाद्धि भृशमुद्विजते जनः ।
तस्मात्सर्वाणि कार्याणि दण्डेनैव विधारयेत् ॥ ७ ॥
नाऽस्य च्छिद्रं परः पश्येच्छिद्रेण परमन्वियात् ।

आदिपर्वमें एकसौ बियालीस अध्याय ।

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि यह सुनकर कि वीर्यवन्त पाण्डवलोग बलसे बढ और बडे तेजस्वी हुए हैं, महाराज धृतराष्ट्र दुःखी चित्तसे सोचने लगे । वह राजशास्त्रार्थमें पण्डित मन्त्रज्ञ मुनियोंमें श्रेष्ठ कणिकको बुलवाकर बोले, कि हे द्विजराज ! पाण्डवोंको दिनों दिन बढते देखकर उन पर मुझे द्वेष हो रहा है, सो हे कणिक ! उनसे सन्धि वा युद्धके विना जो कुछ और उचित हो, सो निश्चय करके कहो, मैं उसके अनुसार काम करूंगा । (१—३)

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि द्विजोत्तम कणिक धृतराष्ट्रसे इस प्रकार पूछे जाकर प्रसन्न चित्तसे राजशास्त्रके प्रमाण सहित तेजभरी बातोंमें कहने लगे, कि महाराज! मैं जो कहता हूं, सुनिये । हे अनघ कुरुश्रेष्ठ ! यह सुनकर मुझपर क्रोध न करना । राजोंको सदा दण्ड देनेमें उद्यत होकर अपनी बडाई फैलाना और स्वयं दोषवर्जित होकर पराये दोषोंको ढूंढकर उसके पीछे रहना चाहिये । राजाके सदा दण्डदेनेमें उद्यत रहनेसे लोग उससे बहुत डरते हैं, सो सब काम दण्डहीसे पूराकर लेना । राजा शत्रुकी चूक देखकर उसके

गूहेत्कूर्म इवाऽङ्गानि रक्षेद्विवरमात्मनः ॥ ८ ॥
नाऽसम्यक्कृतकारी स्यादुपक्रम्य कदाचन ।
कण्टको ह्यपि दुश्छिन्न आस्रावं जनयेच्चिरम् ॥ ९ ॥
वधमेव प्रशंसन्ति शत्रूणामपकारिणाम् ॥ १० ॥
सुविदीर्णं सुविक्रान्तं सुयुद्धं सुपलायितम् ।
आपद्यापदि काले च कुर्वीत न विचारयेत् ॥ ११ ॥
नाऽवज्ञेयो रिपुस्तात दुर्बलोऽपि कथंचन ।
अल्पोऽप्यग्निर्वनं कृत्स्नं दहत्याश्रयसंश्रयात् ॥ १२ ॥
अन्धः स्यादन्धवेलायां बाधिर्यमपि चाऽऽश्रयेत् ।
कुर्यात्तृणमयं चापं शयीत मृगशायिकाम् ॥ १३ ॥
सान्त्वादिभिरुपायैस्तु हन्याच्छत्रुं वशे स्थितम् ।
दया न तस्मिन्कर्तव्या शरणागत इत्युत ॥ १४ ॥

पीछे चले, पर शत्रुगण उनकी चूक न देखने पावें। कछुआ जिस प्रकार अपना अङ्ग छुपा लेता है, वैसेही राजा सहायता, साधना और और उपाय आदिसे अपने अङ्गोंको छिपा रखें और ऐसा यत्न करना चाहिये जिससे शत्रुलोग उनकी चूकके पीछे चलने न पावें। (४–८)

कोई काम आरम्भकर उसकी कुछ अंश छोड कर पूरा कर लेना कभी उचित नहीं है। देखिये, पूरा न काट डालनेसे कांटेसेभी सदा चोट लग सकती है; हानि करनेहारे शत्रुओंको वध करनाही बहुत प्रशंसायोग्य है; यदि वह शत्रु बडा विक्रमी और योद्धा हो, तो उसकी विपतके समय, आनेसे उस पर चढकर नष्ट कर डालना, वा ऐसा करना, कि भाग जावे, इस विषयमें भला बुरा न बिचारना। ऐ बेटा! शत्रुके दुर्बल होनेसे भी उसको कभी कम न समझना चाहिये; देखिये, थोडीसी आग धीरे धीरे आसरा पाकर पूरे वनको जला सकती है। (९-१२)

कभी कभी राजाको अन्धे और बहिरेके समान बनना चाहिये, शत्रुओंके दोषको देख करके न देखना और सुनकरकेभी न सुनना चाहिये। तब अपने शरासनको तिनकेसे बना हुआ समझना; पर वनमें सोते हुए, मृग समूहके समान सदा सावधान रहना। आगे शत्रुको अपनी हथेलीके भीतर समझकर साम आदि उपायोंसे मरवा डालना। शरण ली है समझके, उस पर दया दिखानी नहीं चाहिये। स्वाभाविक शत्रुको दान दे करके वशमें लाकरभी मारना, शत्रुके नष्ट होनेसेभी चिन्ता जाती रहती है,

निरुद्विग्नो हि भवति न हताज्जायते भयम् ।
हन्याद्मित्रं दानेन तथा पूर्वापकारिणम् ॥ १५ ॥
हन्यात्त्रीन्पञ्च सप्तेति परपक्षस्य सर्वशः ।
मूलमेवाऽऽदितश्छिन्द्यात्परपक्षस्य नित्यशः॥ १६ ॥
ततः सहायांस्तत्पक्षान्सर्वांश्च तदनन्तरम् ।
छिन्नमूले ह्यधिष्ठाने सर्वे तज्जीविनो हताः ॥ १७ ॥
कथं नु शाखास्तिष्ठेरंश्छिन्नमूले वनस्पतौ ।
एकाग्रः स्याद्विवृतो नित्यं विवरदर्शकः ॥ १८ ॥
राजन्नित्यं सपत्नेषु नित्योद्विग्नः समाचरेत् ।
अग्न्याधानेन यज्ञेन काषायेण जटाजिनैः ॥ १९ ॥
लोकान्विश्वासयित्वैव ततो लुम्पेद्यथा वृकः ।
अङ्कुशं शौचमित्याहुरर्थानामुपधारणे ॥ २० ॥
आनाम्य फलितां शाखां पक्वं पक्वं प्रशातयेत् ।

क्योंकि मरे हुए जनसे किसी प्रकार भयकी संभावना नहीं रहती। यदि कोई पहिले हानिकारी रहकर पीछे मित्रता दिखावे,तो उसकोभी मारना।(१३-१५)

शत्रुओंके दुर्ग आदिपर चढकर ऐश्वर्य को, भेदिया लगाके मन्त्रको और बलसे उत्साहको इन तीनोंको नष्ट करना और सहाय,साधन, उपाय, देश और कालका विभाग तथा विपत्तिका प्रतिकार इन पांच अङ्गयुक्त नय अर्थात् नियमोंका और भेद, दण्ड, साम, दान, माया, ऐन्द्रजालिक कार्य और विपक्षियोंसे किये हुए उन विषयोंको तुच्छ समझना, इस सात प्रकारके राज्याङ्गको सब प्रकारसे नष्टकर डालना । पहिले काल और अकालका विचार न करके शत्रुकी जडहीको काट देना, आगे उसके सहाय और पक्षियोंको नष्ट करना। अवलम्बरूपी जडके सम्पूर्ण उखड जानेसे, इसमें सन्देह नहीं है, कि उसके भरोसेभी रहते हुए, सब मरेंगे, क्योंकि पेडकी जड कटनेसे उसकी शाखा कभी बनी नहीं रह सकतीं। (१६-१८)

राजन् ! शत्रुसे निश्चिन्त न रहकर छिप छिपके सदा उसके दोष ढूंढनेमें चित्तको नियुक्तकर राज्य करना चाहिये। अग्निसे तपके,यज्ञकरके,वृक्षकी छाल पहिनकर और जटा अजिन धरकेभी पहिले शत्रुओंमें विश्वास उपजाकर पीछे समय होने पर वृकके समान चढ जाना, क्योंकि कहा है, कि धन बटोरनेमें कुटिल होना बहुत ही शुद्ध उपाय है। जिस प्रकार

फलार्थोऽयं समारम्भो लोके पुंसां विपश्चिताम्॥२१॥
वहेदमित्रं स्कन्धेन यावत्कालस्य पर्ययः।
ततः प्रत्यागते काले भिन्द्याद्घटमिवाऽश्मनि॥२२॥
अमित्रो न विमोक्तव्यः कृपणं बह्वपि ब्रुवन्।
कृपा न तस्मिन्कर्तव्या हन्यादेवाऽपकारिणम्॥२३॥
हन्यादमित्रं सान्त्वेन तथा दानेन वा पुनः।
तथैव भेददण्डाभ्यां सर्वोपायैः प्रशातयेत्॥२४॥

धृतराष्ट्र उवाच— कथं सान्त्वेन दानेन भेदैर्दण्डेन वा पुनः।
अमित्रः शक्यते हन्तुं तन्मे ब्रूहि यथातथम्॥२५॥

कणिक उवाच— शृणु राजन्यथावृत्तं वने निवसतः पुरा।
जम्बुकस्य महाराज नीतिशास्त्रार्थदर्शिनः॥२६॥
अथ कश्चित्कृतप्रज्ञः शृगालः स्वार्थपण्डितः।
सखिभिर्न्यवसत्सार्धं व्याघ्राखुवृकबभ्रुभिः॥२७॥
तेऽपश्यन्विपिने तस्मिन्बलिनं मृगयूथपम्।

फलयुक्त शाखा को हिलाकर पक्के फल चुन लिये जाते हैं, वैसेही चुन चुन कर शत्रुओं को नष्ट करना; शत्रुओंके नाशके लिये पण्डितलोग ऐसाही किया करते हैं। (१८—२१)

जबतक समय न आवे तबतक शत्रु को कन्धे पर चढाये रहना, आगे समय आने पर पत्थर पर कलसेको फोडनेकी भांति नष्ट करना। हानि करने वाले शत्रु के अति कातर वाणी कहने परभी उसको मत छोडना, एकवारही मार डालना, उसपर दया दिखानी कभी उचित नहीं है। शान्ति बनाये रखनेके लिये साम वा दान अथवा भेद वा दण्ड, चाहे जिस किसी उपायसे हो शत्रुको नष्ट करना।(२२-२४)

धृतराष्ट्रने कहा,कि मुझको समझाके कहो, कि साम, दान, भेद अथवा दण्ड से क्योंकर शत्रु नष्ट किये जा सकते हैं। कणिक बोले, कि हे महाराज ! पहिले वनमें नीति शास्त्र जानने वाला एक सियार रहता था; उसकी कथा कहता हूं, सुनिये। (२५-२६)

स्वार्थमें तेज बुद्धिवाला एक सियार वाघ, मूसा, चीता, और नेवल इन चार मित्रोंके साथ वसता था। उन सबोंने वनमें एक बली मृगदलपतिको देखा और ऊपर चढनेमें असमर्थ होकर नाना परामर्ष करने लगे। पहिले सियार बोला, कि ऐ वाघ ! आपने इस मृगको मारनेको कई वार यत्न किया है, पर यह

अशक्ता ग्रहणे तस्य ततो मन्त्रममन्त्रयन् ॥ २८ ॥

जम्बुक उवाच — असकृद्यतितो ह्येष हन्तुं व्याघ्र वने त्वया।
युवा वै जवसंपन्नो बुद्धिशाली न शक्यते ॥ २९ ॥
मूषिकोऽस्य शयानस्य चरणौ भक्षयत्वयम्।
अथैनं भक्षितैः पादैर्व्याघ्रो गृह्णातु वै ततः ॥ ३० ॥
ततो वै भक्षयिष्यामः सर्वे मुदितमानसाः।
जम्बुकस्य तु तद्वाक्यं तथा चक्रुः समाहिताः॥ ३१ ॥
मूषिकाभक्षितैः पादैर्मृगं व्याघ्रोऽवधीत्तदा।
दृष्ट्वैवाऽचेष्टमानं तु भूमौ मृगकलेवरम् ।
स्नात्वाऽऽगच्छत भद्रं वो रक्षामीत्याह जम्बुकः ३२॥
शृगालवचनात्तेऽपि गताः सर्वे नदीं ततः।
स चिन्तापरमो भूत्वा तस्थौ तत्रैव जम्बुकः ॥ ३३ ॥
अथाऽजगाम पूर्वं तु स्नात्वा व्याघ्रो महाबलः।
ददर्श जम्बुकं चैव चिन्ताकुलितमानसम् ॥ ३४ ॥

व्याघ्र उवाच — किं शोचसि महाप्राज्ञ त्वं नो बुद्धिमतां वरः।
अशित्वा पिशितान्यद्य विहरिष्यामहे वयम् ॥३५॥

मृगनाथ बडा वेगवान और बुद्धिमान है, सो आप सफल मनोरथ नहीं हो सके हैं, अतएव मैं समझता हूं, कि वह मृग जब सोता रहेगा, तब मूष जाकर उसके पांवोंको खालेगा; उसके पांव खाये जानेपर, उस चलनेमें अशक्त मगको वाघजी पकड लेंगे; अनन्तर हम सब आनन्दसे उसको खायंगे। (२७-३१)

सियारकी यह बात सुनकर वे सब उनके अनुसार सावधान होकर काम करने लगे। पहिले मूषने मृगके पांव खालिये; उसके पीछे वाघने उस मृगको वध किया। तब सियारने उस मृगकी देहको धरती पर लोटते देखकर सबोंसे कहा, कि तुम लोगोंका मङ्गल होवे, तुम नहा आओ, मैं मृगदेह की रक्षा करता हूं। वाघादि सब सियारकी बातके अनुसार नहानेको नदीमें गये; सियार बडे सोचसे वहां बैठा रहा। (३२—३३)

अनन्तर सबसे पहिले महाबली वाघ नहा कर वहां आया और देखा कि सियार बडे सोचके साथ वहां बैठा है। वाघने तब उससे पूछा, कि ऐ बडे बुद्धिमान् ! तुम हमसे सबोंसे अधिक बुद्धि रखते हो, फिर क्यों सोचमें हो, आओ हम अब मांस खाकर आनन्द लूटें।

जम्बुक उवाच— शृणु मे त्वं महाबाहो यद्वाक्यं मूषिकोऽब्रवीत्।
धिग्बलं मृगराजस्य मयाऽद्याऽयं मृगो हतः ॥ ३६ ॥
मद्बाहुबलमाश्रित्य तृप्तिमद्य गमिष्यति ।
गर्जमानस्य तस्यैवमतो भक्ष्यं न रोचये ॥ ३७ ॥

व्याघ्र उवाच— ब्रवीति यदि स ह्येवं काले ह्यस्मिन्प्रबोधितः।
स्वबाहुबलमाश्रित्य हनिष्येऽहं वनेचरान् ॥ ३८ ॥
खादिष्ये तत्र मांसानि इत्युक्त्वा प्रस्थितो वनम्।
एतस्मिन्नेव काले तु मूषिकोऽप्याजगाम ह ॥ ३९ ॥
तमागतमभिप्रेक्ष्य शृगालोऽप्यब्रवीद्वचः ।

जम्बुक उवाच — शृणु मूषिक भद्रं ते नकुलो यदिहाऽब्रवीत् ॥ ४० ॥
मृगमांसं न खादेयं गरमेतन्न रोचते ।
मूषिकं भक्षयिष्यामि तद्भवाननुमन्यताम् ॥ ४१ ॥
तच्छ्रुत्वा मूषिको वाक्यं संत्रस्तः प्रगतो बिलम्।
ततः स्नात्वा स वै तत्र आजगाम वृको नृप ॥ ४२ ॥
तमागतमिदं वाक्यमब्रवीज्जम्बुकस्तदा ।
मृगराजो हि संक्रुद्धो न ते साधु भविष्यति ॥ ४३ ॥

सियार बोला, कि ऐ महाभुज ! आज मूषने जो बात कही है, वह सुनिये ! " मूषने कहा है, कि आज मैंने ही इस मृगको मारा है सो बाघ के बल पर धिक्कार है; कि वह मेरे भुजबलसे आज तृप्त होंगे । मूषके ललकारके ऐसा कहने पर इसे खानेको मेरा मन नहीं चलता है । " (३४—३७)

बाघ बोला, कि मूषके ऐसी बात कहने पर अब मुझको चेतना आगयी, आजसे अपने हाथके बलसे वनके जानवरोंको मारूंगा; और वही मांस खाऊंगा, यह कहकर वनमें चला गया । ऐसे समयमें मूष वहां आपहुंचा । सियार मूषको आया हुआ देखकर बोला, कि ऐ मूष ! तुम्हारा भला हो सुनो । आज नेवलने यह कहा है, कि यह मृग बाघसे मारे जानेके कारण इसका मांस विषके समान पचानेके अ-योग्य होगा, सो मैं इसे न खाऊंगा; मेरी इस पर चाह दौडती ही नहीं है, सो आज्ञा करिये, कि मैं मूषको खाजाऊं। (३८-४१)

यह सुनकर मूष वेगपूर्वक वहांसे गडहे-में जा घुसा। हे नृप! अनन्तर चीता नहाकर वहां आपहुंचा । तब सियार उसको आया हुआ देखकर बोला, कि आज बाघ तुम पर अप्रसन्न हुआ है, उससे यह समझ नहीं

सकलत्रास्त्विहाऽऽयाति कुरुष्व यदनन्तरम् ।
एवं संचोदितस्तेन जम्बुकेन तदा वृकः ॥ ४४ ॥
ततोऽवलुम्पनं कृत्वा प्रयातः पिशिताशनः ।
एतस्मिन्नेव काले तु नकुलोऽप्याजगाम ह ॥ ४५ ॥
तमुवाच महाराज नकुलं जम्बुको वने ।
स्वबाहुबलमाश्रित्य निर्जितास्तेऽन्यतो गताः ॥४६ ॥
मम दत्त्वा नियुद्धं त्वं भुङ्क्ष्व मांसं यथेप्सितम् ।
नकुल उवाच — मृगराजो वृकश्चैव बुद्धिमानपि मूषिकः ॥ ४७ ॥
निर्जिता यत्त्वया वीरास्तस्माद्वीरतरो भवान् ।
न त्वयाऽप्युत्सहे योद्धुमित्युक्त्वा सोऽप्यपागमत् ४८॥
कणिक उवाच— एवं तेषु प्रयातेषु जम्बुको हृष्टमानसः ।
खादति स्म तदा मांसमेकः सन्मन्त्रनिश्चयात् ॥४९ ॥
एवं समाचरन्नित्यं सुखमेधेत भूपतिः ।
भयेन भेदयेद्भीरुं शूरमंजालिकर्मणा ॥ ५० ॥
लुब्धमर्थप्रदानेन समं न्यूनं तथौजसा ।
एवं ते कथितं राजञ्शृणु चाऽप्यपरं तथा ॥ ५१ ॥

पडती, कि तुम्हे भलाई होगी; वह स्त्रीके साथ यहां आरहा है । मांस भक्षक चीता सियारकी यह बात सुन करकेही अपनी जातिके स्वभावके अनुसार देहको सिकोडकर भागा । हे महाराज ! उसके पीछे नेउलके वहां आने पर सियार उससे बोला, कि मैंने अपने हाथोंके बलसे वाघ, वृक आदिको परास्त किया है, वे और जगहको भाग गये हैं, अब तुम मुझसे लडकर मनमाना मांस खाओ । (४२—४७)

नेउल बोला, कि जब वाघ, वृक और बुद्धिमान मूष यह सब वीर तुमसे हार कर भाग गये, तुम बडे वीर हो, सो तुमसे लडनेके लिये मुझमें साहस नहीं है । यह कहकर नेउल भागा । इस प्रकार वाघादि सबोंके वहांसे चले जाने पर सियारने अपनी युक्ति पूरी होनेपर प्रसन्नचित्त होके अकेले मांस खाया । भूपाल लोग सदा ऐसा व्यवहार करनेसे सुखी हो सकते हैं । इस प्रकार भीत जनको डराकर, वीरसे हाथ जोडकर, लोभीको धन देकर, बराबर और हीनको तेजी दिखाकर, वशमें लाना । महाराज ! यह सब आपसे कह चुके औरभी कुछ कहता हूं, सुनिये । (४७ —५१)

पुत्रः सखा वा भ्राता वा पिता वा यदि वा गुरुः ।
रिपुस्थानेषु वर्तन्तो हन्तव्या भूतिमिच्छता॥ ५२॥
शपथेनाऽप्यरिं हन्यादर्थदानेन वा पुनः ।
विषेण मायया वापि नोपेक्षेत कथंचन ॥ ५३ ॥
उभौ चेत्संशयोपेतौ श्रद्धावांस्तत्र वर्धते ।
गुरोरप्यवलिप्तस्य कार्याकार्यमजानतः ॥ ५४ ॥
उत्पथप्रतिपन्नस्य न्याय्यं भवति शासनम्॥ ५५ ॥
क्रुद्धोऽप्यक्रुद्धरूपः स्यात्स्मितपूर्वाभिभाषिता।
न चाप्यन्यमपध्वंसेत्कदाचित्कोपसंयुतः ॥ ५६ ॥
प्रहरिष्यन्प्रियं ब्रूयात्प्रहरन्नपि भारत ।
प्रहृत्य च कृपायीत शोचेत च रुदेत च ॥ ५७ ॥
आश्वासयेच्चापि परं सान्त्वदानार्जववृत्तिभिः ।
अथास्य प्रहरेत्काले यदा विचलिते पथि ॥ ५८ ॥
अपि घोरापराधस्य धर्ममाश्रित्य तिष्ठतः ।
स हि प्रच्छाद्यते दोषः शैलो मेघैरिवासितः॥ ५९ ॥

पुत्र, मित्र, भाई, पिता, वा गुरु यदि शत्रुता करैं, तो हित चाहनेवालेको उन्हें-भी नष्ट करना उचित है। शपथ करके वा धन दानसे अथवा विष देकर मायाका जाल फैला कर शत्रुके नष्ट करनेमें कभी मत चूकना। दो विपक्षी आपसमें सहाय साधनोपाय आदिके हेतु शङ्कायुक्त होनेसे, जो जन श्रद्धा सहित मुझसे कही हुई नीतिके अनुसार काम करेगा उसीका सौभाग्य बढेगा। यदि बडा और मान्य पुरुषभी कर्त्तव्य और अकर्त्तव्यको न जानता हो, कुमार्गगामी और अहङ्कारी हो तो उसेभी दण्ड देना उचित है। (५२—५५)

क्रोध होनेसेभी क्रोध न होनेका ऐसा चेहरा दिखा करके हँसकर बात करना और क्रोधित होने परभी कभी लाञ्छन मत करना। मारनेके पहिले और मारनेके कालमेंभी मीठी बातें कहना, मारकर अन्तमें कृपा दिखानी, शोक प्रगट करना और रो भी देना। शत्रुको बहुकाल, सान्त्वना वाक्य, दान और सरलतासे ढाडस देवे, इस परभी यदि वह न्यायके मार्गसे विरुद्ध चले उसको मारना। किसीके बडा अपराध करने परभी वह धर्मका आश्रय ले, तो काले बादलसे ढंपे हुए पर्वतके सदृश उसका वह दोष छिप जाता है। जो राजाके दण्डसे

यः स्यादनुप्राप्तवधस्तस्याऽगारं प्रदीपयेत् ।
अधनान्नास्तिकांश्चौरान्विषये स्वे न वासयेत्॥ ६० ॥
प्रत्युत्थानासनाद्येन संप्रदानेन केनचित् ।
प्रतिविश्रब्धघाती स्यात्तीक्ष्णदंष्ट्रो निमग्नकः ॥ ६१ ॥
अशङ्कितेभ्यः शङ्केत शङ्कितेभ्यश्च सर्वशः ।
अशङ्क्याद्भयमुत्पन्नमपि मूलं निकृन्तति ॥ ६२ ॥
न विश्वसेदविश्वस्ते विश्वस्ते नाऽतिविश्वसेत् ।
विश्वासाद्भयमुत्पन्नं मूलान्यपि निकृन्तति ॥ ६३ ॥
चारः सुविहितः कार्य आत्मनश्च परस्य वा ।
पाषण्डांस्तापसादींश्च परराष्ट्रेषु योजयेत् ॥ ६४ ॥
उद्यानेषु विहारेषु देवतायतनेषु च ।
पानागारेषु रथ्यासु सर्वतीर्थेषु चाप्यथ ॥ ६५ ॥
चत्वरेषु च कूपेषु पर्वतेषु वनेषु च ।

मारा जावे, उसका घर जला देना और जो मनुष्य बुरी रीतिसे धनार्जन करते हैं, उनको और नास्तिक तथा चोरोंको राज्यमें न बसने देना। (५६–६०)

शत्रुको प्रत्युत्थान, आसन आदि युद्धके अङ्ग अथवा विषादि दान चाहे जिस किसी उपायसे हो बडे निष्ठुर और डुबोनेवाला बनकर मरवा डालना अर्थात् ऐसी मार मारना, कि वह फिर न उठ सके और उस-वधके विषयमें सन्देह न रहे। शङ्का देने योग्य हो वा न हो सब जनसे डरते रहना; क्योंकि किसीसे निर्भय बने रहनेसे पीछे उससे भय आ-जावे तो जडसे उखडनेकी बडी संभावना होती है। अविश्वासी जनका विश्वास मत करना, और विश्वासी होवे तो भी उसपर पूरा विश्वास करना उचित नहीं, क्योंकि विश्वासी जन से भय आजानेसे जडसे नष्ट होना पडता है। (६१—६३)

दूतलोगोंकी भले भांति परीक्षा करके निज राज्य और पराये राज्य में नियुक्त रखना। पराये राज्यमें पाषण्डी, तपस्वी, आदि ही की भरती करना। फुलवाडी, घूमनेका स्थान, देवमन्दीर, पानघर, मार्ग स्थान, कूप, पर्वत, बन, नदी और सब प्रकारके मनुष्य बटोरनेका स्थान, इन स्थानोंमें, और मन्त्री, पुरोहित, युव-राज, भूपाल, द्वारपाल, शिक्षक, कारागार, रखवारे, चीज वस्तु बटोरने वाले, भले बुरे कामोंके ठहरानेवाले नगरके स्वामी, काम बनानेहारे, धर्मस्वामी, सभापति,

समवायेषु सर्वेषु सरित्सु च विचारयेत् ॥ ६६ ॥
वाचा भृशं विनीतः स्याद्धृदयेन तथा क्षुरः।
स्मितपूर्वाभिभाषी स्यात्सृष्टो रौद्रेण कर्मणा॥ ६७॥
अञ्जलिः शपथःसान्त्वं शिरसा पादवन्दनम्।
आशाकरणमित्येवं कर्तव्यं भूतिमिच्छता ॥ ६८॥
सपुष्पितः स्यादफलः फलवान्स्याद्दुरारुहः।
आमः स्यात्पक्वसंकाशो न च जीर्येत कर्हिचित्॥६९॥
त्रिवर्गे त्रिविधा पीडा ह्यनुबन्धास्तथैव च।
अनुबन्धाः शुभा ज्ञेयाः पीडास्तु परिवर्जयेत् ७०॥
धर्मं विचरतः पीडा सापि द्वाभ्यां नियच्छति।
अर्थं चाऽप्यर्थलुब्धस्य कामस्याऽतिप्रवर्तिनः॥ ७१॥
आगर्वितात्मा युक्तश्च सान्त्वयुक्तोऽनसूयिता।
अवेक्षितार्थः शुद्धात्मा मन्त्रयीत द्विजैः सह॥७२॥

दण्डपाल, दुर्गपाल, अस्त्रपाल, राज्यके छोररक्षक और सेनापति, इन अठारहके पास गुप्त दूत नियुक्त कर भले बुरे काम-को देखना। (६४-६६)

सदा बातोंमें नम्र और हृदयमें छुरा रखना और अति कठोर काम करनेमें प्रवृत्त होकरकेभी हंसते हुए सम्भाषण करना। जो ऐश्वर्य चाहेंगे उनको हाथ जोडना, शपथ करना, खुसामद, पैरों पडना, आशा देना इन कामों का करना उचित है। नीतियुक्तजनरूपी पौधेका आशा दानादिरूपी सुन्दर फूलयुक्त पर बिलकुल फलसे खाली होना चाहिये। फल-युक्त जान पडनेसेभी चढनेके अयोग्य होना चाहिये, पक्के समान होनेपरभी बिन पक्के की नाईं जान पडना चाहिये; ऐसा होनेसे कभी वह टूटेगा नहीं। (६७—६९)

धर्म अर्थ और काम यह तीन वर्ग तीन प्रकार की पीडा और तीन प्रकारके फल हैं, तिनमें फलोंको शुभ जानना और पीडा ओंको त्याग देना। देखिये धर्म करनेमें बडे अभिलाषीजन अर्थ और कामकी पीडासे बहुत सताये जाते हैं; अर्थमें बडे आसक्तजन धर्म और कामकी पीडासे पीसे जाते हैं और काममें बहुत लगे जनकोभी धर्म और अर्थकी पीडा सताती रहती है,सो ऐसे धर्मार्थ काम करना, कि पीडादायी न होवें। अहङ्कारसे खाली, नियमयुक्त, शान्तिपूर्ण, द्वेषवर्जित, कार्य देनेहारे और शुद्धात्मा होकर ब्राह्मणोंके साथ परामर्श करना। (७०—७२)

कर्मणा येन केनैव मृदुना दारुणेन च ।
उद्धरेद्दीनमात्मानं समर्थो धर्ममाचरेत् ॥ ७३ ॥
न संशयमनारुह्य नरो भद्राणि पश्यति ।
संशयं पुनरारुह्य यदि जीवति पश्यति ॥ ७४ ॥
यस्य बुद्धिः परिभवेत्तमतीतेन सान्त्वयेत् ।
अनागतेन दुर्बुद्धिः प्रत्युत्पन्नेन पण्डितम् ॥ ७५ ॥
योऽरिणा सह संधाय शयीत कृतकृत्यवत् ।
स वृक्षाग्रे यथा सुप्तः पतितः प्रतिबुध्यते ॥ ७६ ॥
मन्त्रसंवरणे यत्नः सदा कार्योऽनसूयया ।
आकारमभिरक्षेत चारेणाऽप्यनुपालितः ॥ ७७ ॥
नाऽच्छित्त्वा परमर्माणि नाऽकृत्वा कर्मदारुणम्।
नाऽहत्वा मत्स्यघातीव प्राप्नोति महतीं श्रियम्॥७८॥
कर्शितं व्याधितं क्लीबमपानीयमघासकम् ।
परिविश्वस्तमन्दं च प्रहर्तव्यमरेर्बलम् ॥७९ ॥

जब आप बुरी दशामें आजावे सहज वा कठिन चाहे जिस किसी उपायसे हो अपनेको बचाना, आगे समर्थ होनेपर धर्माचरण करना। मनुष्य बिना संशय में पडे मङ्गल लाभ नहीं कर सकता है, पर शङ्कायुक्त होकर जीता रहे, तो बडा सौभाग्यवान हो सकता है, जिसकी बुद्धि शोकादिसे घेरी जाती है; उसको नलोपाख्यान आदि पुरानी कहानी सुना कर और बुरी बुद्धिवाले जनको समान आशा देकर, कि कुछ काल बीतनेपर तुम्हारा मङ्गल होगा और पण्डित को सन्तोष देनेवाले वर्त्तमान कामसे समझाना। (७३—७५)

जो जन शत्रुसे सन्धि करके सफल मनोरथके समान निश्चिन्त हो सो रहता है, वह ऐसे जनकी नाईं विपतमें पडकर चेतता है, कि जो वृक्षपर सोता हुआ नीचे गिर जाकर जग उठता है। राजाको असूयासे रहित होकर सदा परामर्श छुपानेका प्रयत्न करना और स्वयं चौकस होकर विपाक्षियोंके भेजे हुए छिपे दूतोंकी आशंकासे सदा भय और क्रोध आदिको रोके रहना चाहिये। मछुहा जिस प्रकार हिंसा न करके धन नहीं पा सकता है, वैसेही राजा कठोर कर्म और शत्रुका मर्म बिना नाश किये सौभाग्यवान् नहीं हो सकते। (७६-७८)

शत्रुका सैन्य जिस समय पीडित, व्याधिग्रस्त, अशक्त, तृषित, क्षुधित

नाऽर्थिकोऽर्थिनमभ्येति कृतार्थे नास्ति संगतम्
तस्मात्सर्वाणि साध्यानि सावशेषाणि कारयेत् ॥८०॥
संग्रहे विग्रहे चैव यत्नः कार्योऽनसूयता ।
उत्साहश्चापि यत्नेन कर्तव्यो भूतिमिच्छता ॥ ८१ ॥
नास्य कृत्यानि बुद्ध्येरन्मित्राणि रिपवस्तथा।
आरब्धान्येव पश्येरन्सुपर्यवसितान्यपि ॥ ८२ ॥
भीतवत्संविधातव्यं यावद्भयमनागतम् ।
आगतं तु भयं दृष्ट्वा प्रहर्तव्यमभीतवत् ॥ ८३ ॥
दण्डेनोपनतं शत्रुमनुगृह्णाति यो नरः ।
स मृत्युमुपगृह्णीयाद्गर्भमश्वतरी यथा ॥ ८४ ॥
अनागतं हि बुध्येत यच्च कार्यं पुरः स्थितम्।
न तु बुद्धिक्षयात्किंचिदतिक्रामेत्प्रयोजनम् ॥ ८५ ॥
उत्साहश्चापि यत्नेन कर्तव्यो भूतिमिच्छता।
विभज्य देशकालौ च दैवं धर्मादयस्त्रयः ।

और विश्वास से स्थित हो, उसीसमय उस पर हमला करना चाहिये। याचक की मित्रता याचक के साथ नहीं हो सकती, और प्रार्थी कृत कार्य होने परभी वह मित्र नहीं रहेगा। इस लिये दूसरों के लिये करनेके सब कार्य थोडे शेष रखकर ही करने चाहिये। अभ्युदय चाहने वालों को उचित है, कि वह असूया छोडकर संग्रह अर्थात् मित्रता और विग्रह अर्थात् युद्धविषयक यत्न किया करें। और सदा उत्साह धारण करें। नीतियुक्त जन ऐसे करें कि उनको कोईभी चाहे मित्र वा शत्रु हो पहिले समझने न पावें, पर जब काम हाथ लगे वा पूरा होजावे देख लें। जब तक भय न आन पडे, तब तक भीतजनके समान भयसे बचनेका उपाय सोचता रहै, पर भय आजाने पर निर्भयसा बनकर मारना उचित है। (७९–८३)

दण्डसे वशमें आये शत्रु पर जो कृपा करता है, वह खचरीके गर्भ धारणकी नाई अपनी मृत्युको आपही बुलाता है। अनागत कार्यको उपस्थित जानकर उचित विषयोंको करना, नहीं तो एकायक उपस्थित कामके समय बुद्धि नष्ट होनेसे कोई प्रयोजनीय कार्य बिगड सकता है। ऐश्वर्य चाहनेवाले भूपालको देशकालका विभागकर यत्नके सहित उत्साह करना चाहिये और दैवी कर्म, धर्म, अर्थ, काम यह सबभी देशकालके विभाग करके करने पडेंगे; क्योंकि ऐसा सिद्धान्त है, कि

नैःश्रेयसौ तु तौ ज्ञेयौ देशकालाविति स्थितिः॥८६॥
तालवत्कुरुते मूलं बालः शत्रुरुपेक्षितः ।
गहनेऽग्निरिवोत्सृष्टः क्षिप्रं संजायते महान्॥८७॥
अग्निं स्तोकमिवाऽऽत्मानं संधुक्षयति यो नरः।
स वर्धमानो ग्रसते महान्तमपि संचयम् ॥८८॥
आशां कालवतीं दद्यात्कालं विघ्नेन योजयेत्।
विघ्नं निमित्ततो ब्रूयान्निमित्तं वापि हेतुतः॥८९॥
क्षुरो भूत्वा हरेत्प्राणान्निशितः कालसाधनः।
प्रतिच्छन्नो लोमहारी द्विषतां परिकर्तनः ॥९०॥
पाण्डवेषु यथान्यायमन्येषु च कुरूद्वह ।
वर्तमानो न मज्जेस्त्वं तथा कृत्यं समाचर॥९१॥
सर्वकल्याणसंपन्नो विशिष्ट इति निश्चयः ।
तस्मात्त्वं पाण्डुपुत्रेभ्यो रक्षाऽऽत्मानं नराधिप॥९२॥

देश और काल यह दो बडे हितके देने वाले हैं। (८४–८६)

शत्रुके तुच्छ होने पर उसको तुच्छ समझनेसे वह ताडकी नाई धीरे धीरे जड फैलाता है और बनमें गिरी हुई आगकी नाई स्वल्प कालहीके बीचमें बहुत फैल जाता है, इस प्रकार थोडी आगको बढानेसे वह आग बडी बडी वस्तुओंको जला सकती है, वैसेही जो अपनेको सहायादिसे बढाता है, वह बढकर अपने विपक्षियोंके बहुत बडे होने परभी स्वल्प कालमें उन्हें उखाड देता है। शत्रुको ऐसी आशा देनी, कि वह बहुत दिनमें पूरी हो सके, आगे उस कालके आने पर कोई रुकावटका बहना बनाकर उसको चुपकर देना। उस रुकावटकाभी कोई हेतु दर्शाना और उस हेतुकाभी दूसरा एक हेतु दिखाकर उसको दबाये रहें। (८७—८९)

नीति जाननेवाले भूपको चमकीले म्यानसे ढके हुए और लोमहारी उचित समय पर काम निवटारनेवाले अस्तुरेकी भांति होकर अर्थात् निर्दय गुप्ताशय, विरुद्धजन संहारी और कालापेक्षी होकर शत्रुओंका प्राणान्त करना चाहिये। अतएव हे कुरुकुल भूषण! पाण्डव वा दूसरों पर न्यायके अनुसार व्यवहार कर ऐसा कामकरिये, कि पश्चात्तापमें डूबना न हो। हे नराधिप! मुझे यह निश्चय समझ है, कि आप धन पुत्रादि सर्व मङ्गलयुक्त और विशेष जानकार हैं, इसलिये पाण्डावोंसे अपनी रक्षा करिये। हे शत्रुनाशि नरनाथ! क्योंकि पाण्डवलोग

भ्रातृभ्यो बलिनो यस्मात्पाण्डुपुत्रा नराधिप।
ब्रवीमि तस्माद्विस्पष्टं यत्कर्तव्यमरिन्दम ॥ ९३ ॥
सपुत्रः शृणु तद्राजञ्श्रुत्वा च भव यत्नवान्।
यथा भयं न पाण्डुभ्यस्तथा कुरु नराधिप ॥ ९४ ॥
पश्चात्तापो यथा न स्यात्तथा नीतिर्विधीयताम्॥९५॥
वैशम्पायन उवाच-एवमुक्त्वा संप्रतस्थे कणिकः स्वगृहं गतः ।
धृतराष्ट्रोऽपि कौरव्यः शोकार्तः समपद्यत॥ ९६॥ [५७८९]

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यामादिपर्वणि संभवपर्वणि
कणिकवाक्ये द्विचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १४२ ॥
समाप्तं संभवपर्व । अथ जतुगृहपर्व ।

वैशम्पायन उवाच-ततः सुबलपुत्रस्तु राजा दुर्योधनश्च ह ।
दुःशासनश्च कर्णश्च दुष्टं मन्त्रममन्त्रयन् ॥ १ ॥
ते कौरव्यमनुज्ञाप्य धृतराष्ट्रं नराधिपम् ।
दहने तु सपुत्रायाः कुन्त्या बुद्धिमकारयन् ॥ २ ॥
तेषामिङ्गितभावज्ञो विदुरस्तत्त्वदर्शिवान् ।
आकारेण च तं मन्त्रं बुबुधे दुष्टचेतसाम् ॥ ३ ॥
ततो विदितवेद्यात्मा पाण्डवानां हिते रतः ।

भाईओंसे बडे बलवन्त होगये हैं । सो जैसा उचित है, स्पष्टरूपसे कह दिया, आप पुत्रके साथ वह सुनकर उचित विषयमें ऐसा प्रयत्न करिये, कि पाण्डवोंसे भय न रहे और पश्चात्ताप न हो, ऐसेही नीतिके पथपर चलिये। श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि कणिक ऐसा कहकर अपने घर पधारे, और कुरु नन्दन धृतराष्ट्र उसे सुनकर शोकयुक्त हुए। (९०-९६)

आदिपर्वमें एकसौ बियालीस अध्याय और संभवपर्व समाप्त। [५७८९]

आदिपर्व में एकसौ तैतालीस अध्याय। जतुगृह पर्व।

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि, अनन्तर सुबलपुत्र शकुनि,राजा दुर्योधन, दुःशासन और कर्णने एकत्र होकर एक बुरा परामर्श किया ! उन्होंने कौरवी राजा धृतराष्ट्र की आज्ञा लेकर पुत्र सहित कुन्तीको जला देना निश्चय किया। उन दुष्टात्मा-ओंका इशारा और अभिप्राय समझने वाले तत्त्वदर्शी विदुर निर्दय आंखोंकी सैन आदि चिह्नोंसे उस परामर्शको समझ गये। पाण्डवोंके हितैषी सम्पूर्ण जानने योग्य विषयोंके विशेष जानकार पापकी छूतसे खाली विदुरने यह समझा, कि

पलायने मतिं चक्रे कुन्त्याः पुत्रैः सहानघः ॥ ४ ॥
ततो वातसहां नावं यन्त्रयुक्तां पताकिनीम् ।
ऊर्मिक्षमां दृढां कृत्वा कुन्तीमिदमुवाच ह ॥ ५ ॥

विदुर उवाच— एष जातः कुलस्याऽस्य कीर्तिवंशप्रणाशनः ।
धृतराष्ट्रः परीतात्मा धर्मं त्यजति शाश्वतम् ॥ ६ ॥
इयं वारिपथे युक्ता तरङ्गपवनक्षमा ।
नौर्यया मृत्युपाशात्त्वं सपुत्रा मोक्ष्यसे शुभे ॥ ७ ॥

वैशम्पायन उवाच—तच्छ्रुत्वा व्यथिता कुन्ती पुत्रैः सह यशस्विनी ।
नावमारुह्य गङ्गायां प्रययौ भरतर्षभ ॥ ८ ॥
ततो विदुरवाक्येन नावं विक्षिप्य पाण्डवाः ।
धनं चादाय तैर्दत्तमरिष्टं प्राविशन्वनम् ॥ ९ ॥
निषादी पञ्चपुत्रा तु जातुषे तत्र वेश्मनि ।
कारणाभ्यागता दग्धा सह पुत्रैरनागसा ॥ १० ॥
स च म्लेच्छाधमः पापो दग्धस्तत्र पुरोचनः ।
वञ्चिताश्च दुरात्मानो धार्तराष्ट्राः सहानुगाः ॥ ११ ॥

पुत्रोंके सहित कुन्तीको भागना ही चाहिये। (१—४)

आगे हवाकी तेजी सहने योग्य, लहरोंमें न डूबनेवाली, यन्त्र लगी हुई, मजबूत और झण्डा फहराती हुई एक नाव बना कर कुन्तीसे बोले, कि ऐ शुभे! धृतराष्ट्र इस कुल की कीर्ति और सन्तानको नाशने वाले बने हैं। वह उलटी बुद्धिसे शाश्वत धर्मको विसार रहे हैं। चाहे जो कुछ हो, मैंने लहर और हवाके वेगको सहनेवाली यह नाव बना कर जलमें छोड दी है; इससे तुम पुत्रोंके साथ मृत्युके पाशसे बच सकोगी। (५—७)

हे भरतश्रेष्ठ यशस्विनी कुन्ती वह बात सुनकर पीडित चित्तसे पुत्रोंके साथ नाव पर चढ कर गङ्गाजीमें गई थी। पाण्डव लोग विदुरकी बातसे नाव छोड कर दुर्योधनादिका दिया हुआ धन लेकरके विना विघ्न वनको गये थे। इधर एक बहेलिन किसी कारणसे पांच बेटोंके सङ्ग उसही जतुगृहमें आके सो रही थी, जो पाण्डवोंके जलानेको बनाया गया था। वह बिचारी निर्दोष होने परभी पुत्रोंके सहित भस्म हो गई और वह म्लेच्छसे भी अधम पापात्मा पुरोचन भी जो जलानेके लिये नियुक्त हुआ था, जल भुन कर भस्म होगया, सो धृतराष्ट्र पुत्रों

अविज्ञाता महात्मानो जनानामक्षतास्तथा।
जनन्या सह कौन्तेया मुक्ता विदुरमन्त्रिताः॥ १२॥
ततस्तस्मिन्पुरे लोका नगरे वारणावते।
दृष्ट्वा जतुगृहं दग्धमन्वशोचन्त दुःखिताः॥ १३॥
राज्ञे च प्रेषयामासुर्यथावृत्तं निवेदितुम्।
संवृत्तस्ते महान्कामः पाण्डवान्दग्धवानसि॥ १४॥
सकामो भव कौरव्य भुङ्क्ष्व राज्यं सपुत्रकः।
तच्छ्रुत्वा धृतराष्ट्रस्तु सह पुत्रेण शोचयन्॥ १५॥
प्रेतकार्याणि च तथा चकार सह बान्धवैः।
पाण्डवानां तथा क्षत्ता भीष्मश्च कुरुसत्तमः॥ १६॥
जनमेजय उवाच–पुनर्विस्तरशः श्रोतुमिच्छामि द्विजसत्तम।
दाहं जतुगृहस्यैव पाण्डवानां च मोक्षणम्॥ १७॥
सुनृशंसमिदं कर्म तेषां क्रूरोपसंहितम्।
कीर्तयस्व यथावृत्तं परं कौतूहलं मम॥ १८॥
वैशम्पायन उवाच–शृणु विस्तरशो राजन्वदतो मे परंतप।
दाहं जतुगृहस्यैतत्पाण्डवानां च मोक्षणम्॥ १९॥

का अभीष्ट पूरा न होनेसे वे साथियोंके द्वारा ठगे गये। (८—११)

वहां वाले सब लोग यह न जान कर, कि महात्मा पाण्डव लोग माताके साथ विदुरके परामर्श से बचाये थे; वारणावतनगरके लोग जतुगृहको जलते देखकरके दुःखितचित्तसे शोक प्रगट करने लगे और उस वृत्तान्तसे जो, कि जाना गया था धृतराष्ट्रको ज्ञात करनेके लिये यह कह भेजा, कि हे कौरव! आपकी बडी इच्छा पूरी भई। आपने पाण्डवों को जला मारा है, अब अपनी आशा मिटावें-पुत्रके साथ राज्य भोगे। यह सुनकर धृतराष्ट्र, कुरुश्रेष्ठ भीष्म, विदुर और धृतराष्ट्रके बेटोंने बान्धवोंके साथ शोक करते हुए पाण्डवोंकी प्रेत क्रिया कर डाली। (१२—१६)

जनमेजय बोले, कि हे द्विजश्रेष्ठ! जतुगृहके जलने और पाण्डवोंके बचनेके वृत्तान्तको विस्तारसे फिर सुनना चाहता हूं। कुटिल जनके उपदेशसे उन्होंने जिस प्रकारसे उस कठोर निष्ठुर कार्यको किया था, वह कहें; सुननेकी मेरी बडी इच्छा होरही है। श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि हे शत्रुनाशी भूपाल! जतुगृहके जलने और पाण्डवोंके बचनेकी कथा मैं विस्तारसे

प्राणाधिकं भीमसेनं कृतविद्यं धनञ्जयम् ।
दुर्योधनो लक्षयित्वा पर्यतप्यत दुर्मनाः ॥ २० ॥
ततो वैकर्तनः कर्णः शकुनिश्चापि सौबलः ।
अनेकैरभ्युपायैस्ते जिघांसन्ति स्म पाण्डवान् ॥ २१ ॥
पाण्डवा अपि तत्सर्वं प्रतिचक्रुर्यथागतम् ।
उद्भावनमकुर्वन्तो विदुरस्य मते स्थिताः ॥ २२ ॥
गुणैः समुदितान्दृष्ट्वा पौराः पाण्डुसुतांस्तदा ।
कथयाञ्चक्रिरे तेषां गुणान्संसत्सु भारत ॥ २३ ॥
राज्यप्राप्तिं च संप्राप्तं ज्येष्ठं पाण्डुसुतं तदा ।
कथयन्ति स्म संभूय चत्वरेषु सभासु च ॥ २४ ॥
प्रज्ञाचक्षुरचक्षुष्ट्वाद्धृतराष्ट्रो जनेश्वरः ।
राज्यं न प्राप्तवान्पूर्वं स कथं नृपतिर्भवेत् ॥ २५ ॥
तथा शान्तनवो भीष्मः सत्यसन्धो महाव्रतः ।
प्रत्याख्याय पुरा राज्यं न स जातु ग्रहीष्यति ॥ २६ ॥
ते वयं पाण्डवज्येष्ठं तरुणं वृद्धशीलिनम् ।
अभिषिञ्चाम साध्वद्य सत्यकारुण्यवेदिनम् ॥ २७ ॥

कहता हूं, सुनिये । कुमति दुर्योधन भीम को अति बलवन्त और धनञ्जयको कृतविद्य देखकर अपार सन्तापमे जलने लगा । आगे सूर्यपुत्र और सुबलकुमार शकुनि नाना उपायों से पाण्डवों के प्राण लेने की चेष्टा करने लगे । (१७—२१)

जब जो विपत आ पडती थी, पाण्डव लोगभी उससे बचनेका उपाय करलेते थे; पर विदुरके मतसे उसको फिर प्रकट नहीं करते थे । हे भारत ! पुरवासी लोग पाण्डवोंको नाना गुणोंसे अलंकृत देख कर सब समाजोंमें उनके गुण गाने लगे । और सब मनुष्य सभामें और चबूतरों पर मिलकर पाण्डुके ज्येष्ठपुत्र युधिष्ठिर की राज्य पानेकी योग्यताके विषयमें कोलाहल मचाने लगे, और कहने लगे, कि प्रज्ञाचक्षु, जननाथ धृतराष्ट्रने अन्धे होने से पहिले राज्य प्राप्त नहीं किया था, अब वह क्योंकर राजा होगये ? और सत्यशील महाव्रत शान्तनुकुमार भीष्मने पहिले राज्य त्याग दिया था; वह फिर उसको नहीं लेंगे, अतएव आज हम लोग तरुण वयवाले रणप्यारे और सत्यनिष्ठ दयालु पाण्डपुत्र युधिष्ठिरको भली प्रकार राज्यमें बैठावें । (२२–२७)

स हि भीष्मं शान्तनवं धृतराष्ट्रं च धर्मवित्।
सपुत्रं विविधैर्भोगैर्योजयिष्यति पूजयन् ॥ २८ ॥
तेषां दुर्योधनः श्रुत्वा तानि वाक्यानि जल्पताम्।
युधिष्ठिरानुरक्तानां पर्यतप्यत दुर्मतिः ॥ २९ ॥
स तप्यमानो दुष्टात्मा तेषां वाचो न चक्षमे।
ईर्ष्यया चापि संतप्तो धृतराष्ट्रमुपागमत् ॥ ३० ॥
ततो विरहितं दृष्ट्वा पितरं प्रतिपूज्य सः ।
पौरानुरागसंतप्तः पश्चादिदमभाषत ॥ ३१ ॥
दुर्योधन उवाच— श्रुत्वा मे जल्पतां तात पौराणामशिवा गिरः।
त्वामनादृत्य भीष्मं च पतिमिच्छन्ति पाण्डवम् ३२॥
मतमेतच्च भीष्मस्य न स राज्यं बुभुक्षति ।
अस्माकं तु परां पीडां चिकीर्षन्ति पुरे जनाः॥ ३३ ॥
पितृतः प्राप्तवान्राज्यं पाण्डुरात्मगुणैः पुरा ।
त्वमन्धगुणसंयोगात्प्राप्तं राज्यं न लब्धवान्॥३४ ॥
स एष पाण्डोर्दायाद्यं यदि प्राप्नोति पाण्डवः।

वह धर्मात्मा युधिष्ठिर शान्तनुनन्दन भीष्म और पुत्रोंके सहित धृतराष्ट्रकी अवश्य पूजा कर भोगनेकी नाना वस्तु देवेंगे। अनन्तर युधिष्ठिरके बारे में प्रजाओंकी यह सब बात सुनकर दुर्योधन कुमतिसे बडा सन्तापित हुआ। वह दुष्टात्मा सन्तापयुक्त उनकी बात सह नहीं सका, सो द्वेषके मारे जलकर धृतराष्ट्र के पास गया। (२८-३०)

अनन्तर पिताको निरालेमें पाकर उचित नियमसे प्रणामकर दुःखी चित्तसे युधिष्ठिर पर पुरवासियोंके प्रेमके हेतु अनुचित चित्तसे कहने लगा, कि पिता! मैंने आन्दोलन करनेवाले पुरवासियों से अशुभ बातें सुनी हैं! पुरवालोंने आप का और भीष्मका अनादरकर पाण्डवको अधीश बनानेकी कल्पना की है; इसमें भीष्मका भी मत होगा, क्योंकि वह स्वयं राज्य भोगकी इच्छा नहीं रखते; पर पुरवासी लोग केवल हम सबोंहीको मर्म पीडा देनेमें उद्यत हुए हैं, पहिले राजा पाण्डुने अपने गुणहीसे राज्य प्राप्त किया था, यद्यपि आप ज्येष्ठतासे राज्याधिकारी होनेके सुयोग्य थे, पर अन्धताके हेतु राज्य पा नहीं सके, अब यदि उन पाण्डुका पुत्र उत्तराधिकारी होकर राज्य पावे, तो भविष्यतमें उसका पुत्र अवश्य ही अधिकारी होगा और उसी प्रकार

तस्य पुत्रो ध्रुवं प्राप्तस्तस्य तस्यापि चापरः ।। ३५ ॥
ते वयं राजवंशेन हीनाः सह सुतैरपि ।
अवज्ञाता भविष्यामो लोकस्य जगतीपते ॥ ३६ ॥
सततं निरयं प्राप्ताः परपिण्डोपजीविनः ।
न भवेम यथा राजंस्तथा नीतिर्विधीयताम् ॥ ३७ ॥
यदि त्वं हि पुरा राजन्निदं राज्यमवाप्तवान् ।
ध्रुवं प्राप्स्याम च वयं राज्यमप्यवशे जने ॥ ३८ ॥ [५८२७]

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यामादिपर्वणि जतुगृहपर्वणि दुर्योधनेर्ष्यायां त्रिचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १४३ ॥

वैशम्पायन उवाच–एवं श्रुत्वा तु पुत्रस्य प्रज्ञाचक्षुर्नराधिपः ।
कणिकस्य च वाक्यानि तानि श्रुत्वा स सर्वशः ॥१ ॥
धृतराष्ट्रो द्विधाचित्तः शोकार्तः समपद्यत ।
दुर्योधनश्च कर्णश्च शकुनिः सौबलस्तथा ॥ २ ॥
दुःशासनचतुर्थास्ते मन्त्रयामासुरेकतः ।
ततो दुर्योधनो राजा धृतराष्ट्रमभाषत ॥ ३ ॥
पाण्डवेभ्यो भयं न स्यात्तान्विवासयतां भवान् ।
निपुणेनाऽभ्युपायेन नगरं वारणावतम् ॥ ४ ॥

सिलसिलेवार उनके वंशवाले राजा हुआ करेंगे । (३१–३५)

हे जगत्पते ! ऐसा होनेसे हम सबोंकी पीढीके क्रमसे राजवंशियोंमें न गिने जाकर सबोंके अनादरके साथ जीना पडेगा । अतएव हे महाराज ! ऐसी कोई अच्छी नीति ठहरावें, कि हम सबोंकी पराई कृपापर पेट पालना न पडे । हे नरनाथ ! पहिले यदि आप राज्यको प्राप्ति करते, तो प्रजाओंके वशमें न रहने से भी हमारी राज्यप्राप्तिमें कोई सन्देह नहीं रहता । (३६-३८)

आदि पर्वमें एकसौ तैंतालीस अ० समाप्त । [५८२७]

आदिपर्वमें एकसौ चौवालिस अध्याय ।

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि प्रज्ञानेत्र, महीपाल धृतराष्ट्र पुत्रकी ऐसी बातें सुन और कणिकसे जो कथा सुनी थी, पूरी पूरी उसे यादकर चित्तमें दुविधा करने लगे और शोकयुक्त हुए । आगे दुर्योधन ने कर्ण, शकुनि, और दुःशासन, इन तीनोंसे सहमत होकर युक्तिपूर्वक राजा धृतराष्ट्रसे कहा, कि आप किसी चतुर उपायसे पाण्डवोंको वारणावतमें खदेड दीजिये, ऐसा करनेसे उनसे हमको फिर कोई भय नहीं रहेगा । (१—४)

धृतराष्ट्रस्तु पुत्रेण श्रुत्वा वचनमीरितम् ।
मुहूर्तमिव संचिन्त्य दुर्योधनमथाऽब्रवीत् ॥ ५ ॥

धृतराष्ट्र उवाच— धर्मनित्यः सदा पाण्डुस्तथा धर्मपरायणः ।
सर्वेषु ज्ञातिषु तथा मयि त्वासीद्विशेषतः ॥ ६ ॥
नाऽसौ किंचिद्विजानाति भोजनादि चिकीर्षितम्।
निवेदयति नित्यं हि मम राज्यं धृतव्रतः ॥ ७ ॥
तस्य पुत्रो यथा पाण्डुस्तथा धर्मपरायणः ।
गुणवाँल्लोकविख्यातः पौराणां सुसंमतः ॥ ८ ॥
स कथं शक्यतेऽस्माभिरपाकर्तुं बलादितः ।
पितृपैतामहाद्राज्यात्ससहायो विशेषतः ॥ ९ ॥
भृता हि पाण्डुनाऽमात्या बलं च सततं भृतम्।
भृताः पुत्राश्च पौत्राश्च तेषामपि विशेषतः॥ १० ॥
ते पुरा सत्कृतास्तात पाण्डुना नागरा जनाः।
कथं युधिष्ठिरस्यार्थे न नो हन्युः सबान्धवान्॥ ११ ॥

दुर्योधन उवाच —एवमेतन्मया तात भावितं दोषमात्मनि ।
दृष्ट्वा प्रकृतयः सर्वा अर्थमानेन पूजिताः ॥ १२ ॥
ध्रुवमस्मत्सहायास्ते भविष्यंति प्रधानतः ।

पुत्रकी बात सुनकर उन्होंने क्षणभर चिन्ता की, पीछे बोले, कि धर्मशील पांडु सम्पूर्ण ज्ञातियोंसे विशेष मुझसे सदा धर्म अनुसार व्यवहार किया करते थे ; उनको भोजन वस्त्र किसी विषयमें चाह नहीं थी। वह सदा व्रतधारी होकर मेरे हाथ सब राज्य सौंप दिये रहते थे। अब उनके पुत्र भी उनके समान धर्मशील गुणवन्त भूमण्डलमें प्रसिद्ध और पुर वासियोंके प्यारे हुए हैं, सो उस पाण्डुनन्दनको हम क्यों कर पैत्रिक राज्यसे खदेड सकते हैं ? विशेष वह सहाय वर्जित नहीं हैं; महाराजा पाण्डु मन्त्रियोंको, सेनाको और उनके बेटे पोतोंको सदा पालते पोषते थे; ऐ बेटा! जब नगरके सब लोग पाण्डुसे सत्कृत हुए हैं, तब उनके पुत्र युधिष्ठिरके लिये वे क्यों हमको और हमारे बान्धवोंको न बिगाडेगें ? (५–११)

दुर्योधन बोले, कि हे पिता ! आपकी बात ठीक तो है, पर मेरे आपके वर्त्तमान अहितको सोचकर सब प्रजाओंको धनमानसे पूजित करनेसे, वे हमारे बडे पनके लिये अवश्यही सहाय होंगी, क्योंकि

अर्थवर्गः सहामात्यो मत्संस्थोऽद्य महीपते ॥ १३ ॥
स भवान्पाण्डवानाशु विवासयितुमर्हति ।
मृदुनैवाऽभ्युपायेन नगरं वारणावतम् ॥ १४ ॥
यदा प्रतिष्ठितं राज्यं मयि राजन्भविष्यति ।
तदा कुन्ती सहापत्या पुनरेष्यति भारत ॥ १५ ॥

धृतराष्ट्र उवाच—दुर्योधन ममाऽप्येतद्धृदि संपरिवर्तते ।
अभिप्रायस्य पापत्वान्नैवं तु विवृणोम्यहम् ॥ १६ ॥
न च भीष्मो न च द्रोणो न च क्षत्ता न गौतमः।
विवास्यमानान्कौन्तेयाननुमंस्यन्ति कर्हिचित् १७ ॥
समा हि कौरवेयाणां वयं ते चैव पुत्रक ।
नैते विषममिच्छेयुर्धर्मयुक्ता मनस्विनः ॥ १८ ॥
ते वयं कौरवेयाणामेतेषां च महात्मनाम् ।
कथं न वध्यतां तात गच्छेम जगतस्तथा ॥ १९ ॥

दुर्योधन उवाच—मध्यस्थः सततं भीष्मो द्रोणपुत्रो मयि स्थितः।
यतः पुत्रस्ततो द्रोणो भविता नाऽत्र संशयः ॥ २० ॥
कृपः शारद्वतश्चैव यत एतौ ततो भवेत् ।

हालमें धनकोष और मन्त्रवर्ग हमारेही हाथमें हैं । अतएव हे पृथ्वीनाथ ! आप किसी कोमल उपायहीसे शीघ्र पाण्डवों को वारणावतमें भेजिये । हे राजन् जब कुछकाल पीछे राज्य मेरे हाथ लगेगा, तब पाण्डवगण कुन्तीके साथ फिर यहां लौटेंगे । (१२—१५)

धृतराष्ट्र बोले, कि हे दुर्योधन ! तुमने जो बात कही मैंभी चित्तमें उसका तर्क उठाये रहता हूं, पर इसे पाप अभिप्राय जानकर प्रकाश नहीं करता। भीष्म, द्रोण, कृप, विदुर इनमें कोईभी कदापि सम्मत नहीं होंगे, कि पाण्डवगण खदेडे जायं। बेटा ! कुरुवंशियोंमें हम और पाण्डव दोनों समान हैं, इसमें सन्देह नहीं है, सो वे महानुभाव लोग कभी दोनों पक्षोंमें किसीको घट बढ करना नहीं चाहेंगे ! सुतरां पाण्डवोंको भगाकर हम कौरवोंसे, उन महात्माओंसे यहां तक कि निःसन्देह पृथ्वी भरके लोगोंसे वध किये जानेके योग्य होंगे । (१६–१९)

दुर्योधन बोले, कि भीष्म हम दोनों पक्षोंको समान स्नेह करते हैं । द्रोणके पुत्र अश्वत्थामा मेरेही पक्षमें हैं, सो इसमें सन्देह नहीं है, कि आचार्य द्रोणको इसीपक्षमें रहना पडेगा, जिस पक्षमें उनके

द्रोणं च भागिनेयं च न स त्यक्ष्यति कर्हिचित् ॥ २१ ॥
क्षत्ताऽर्थबद्धस्त्वस्माकं प्रच्छन्नं संयतः परैः ।
न चैकः स समर्थोऽस्मान्पाण्डवार्थेऽधिबाधितुम् ॥२२॥
सुविश्रब्धः पाण्डुपुत्रान्सह मात्रा प्रवासय ।
वारणावतमद्यैव यथा यान्ति तथा कुरु ॥ २३ ॥
विनिद्रकरणं घोरं हृदि शल्यमिवाऽर्पितम् ।
शोकपावकमुद्भूतं कर्मणैतेन नाशय ॥ २४ ॥ [५८५१]

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यामादिपर्वणि जतुगृहपर्वणि दुर्योधनपरामर्शे चतुश्चत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १४४ ॥

वैशम्पायन उवाच–ततो दुर्योधनो राजा सर्वाः प्रकृतयः शनैः ।
अर्थमानप्रदानाभ्यां संजहार सहानुजः ॥ १ ॥
धृतराष्ट्रप्रयुक्तास्ते केचित्कुशलमन्त्रिणः ।
कथयाञ्चक्रिरे रम्यं नगरं वारणावतम् ॥ २ ॥
अयं समाजः सुमहान्रमणीयतमो भुवि ।
उपस्थितः पशुपतेर्नगरे वारणावते ॥ ३ ॥
सर्वरत्नसमाकीर्णे पुंसां देशे मनोरमे ।

पुत्र हैं; और जिस पक्षमें यह पिता पुत्र दोनों रहेंगे, शारद्वत कृपभी अवश्य उसी पक्षमें रहेंगे; क्योंकि वह कभी भाञ्जा और द्रोणको नहीं छोड सकेंगे। विदुर हमारे अर्थसे आबद्ध हैं, और छिपकर पाण्डवोंसे मिलभी जावें, तो वह अकेले पाण्डवोंके पक्षमें होकर हमारी कोई हानि नहीं कर सकेंगे; अतएव आप निःशङ्क चित्तसे पाण्डवोंको उनकी माताके सहित यहांसे दूर करिये। ऐसा प्रयत्न कीजिये, कि वे आजही वारणावतमें जांय; निद्रा-नाशी शोकाग्नि मानों कठोर शूलोंकी भांति मेरे हृदयमें गड गया है, आप यह काम कर उस को निकाल लीजिये। (२०-२४) [५८५१]

आदिपर्वमें एकसौ चौवालिस अध्याय समाप्त।

आदिपर्वमें एकसौ पैतालिस अध्याय।

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि अनन्तर राजा दुर्योधन अपने छोटे भाईयोंसे मिलकर सम्मान और धन देकर क्रमशः प्रजावर्गको वशमें लाये। कई एक कार्य-दक्ष मन्त्री धृतराष्ट्रकी आज्ञासे वारणावत नगरको सुन्दर कह कर यह प्रशंसा करने लगे, कि हालमें वारणावतमें बहुत सुन्दर पशुपतिका महोत्सव आ गया है, उस उत्सव में समाज नाना रत्नोंसे भर जायगा,

इत्येवं धृतराष्ट्रस्य वचनाच्चक्रिरे कथाः ॥ ४ ॥
कथ्यमाने तथा रम्ये नगरे वारणावते ।
गमने पाण्डुपुत्राणां जज्ञे तत्र मतिर्नृप ॥ ५ ॥
यदा त्वमन्यत नृपो जातकौतूहला इति ।
उवाचैतानेत्य तदा पाण्डवानम्बिकासुतः ॥ ६ ॥

धृतराष्ट्र उवाच— ममैते पुरुषा नित्यं कथयन्ति पुनः पुनः ।
रमणीयतमं लोके नगरं वारणावतम् ॥ ७ ॥
ते ताता यदि मन्यध्वमुत्सवं वारणावते ।
सगणाः सान्वयाश्चैव विहरध्वं यथाऽमराः ॥ ८ ॥
ब्राह्मणेभ्यश्च रत्नानि गायकेभ्यश्च सर्वशः ।
प्रयच्छध्वं यथाकामं देवा इव सुवर्चसः ॥ ९ ॥
कंचित्कालं विहृत्येवमनुभूय परां मुदम् ।
इदं वै हास्तिनपुरं सुखिनः पुनरेष्यथ ॥ १० ॥

वैशम्पायन उवाच—धृतराष्ट्रस्य तं काममनुबुद्ध्वा युधिष्ठिरः ।
आत्मनश्चासहायत्वं तथेति प्रत्युवाच तम् ॥ ११ ॥
ततो भीष्मं शान्तनवं विदुरं च महामतिम् ।
द्रोणं च बाह्लिकं चैव सोमदत्तं च कौरवम् ॥ १२ ॥

उस नगरको देखतेही उसपर हर मनुष्यका चित्त झुक जाता है। (१—४)

हे नरनाथ! वारणावत नगरकी सुन्दरता इस प्रकार कही जाने पर वहां जानेके लिये पाण्डवलोगोंका मन दौडा। अंबिका-पुत्र राजा धृतराष्ट्रने जब समझा, कि वारणावत नगरको देखनेको पाण्डवोंका मन चला है, तब उनसे बोले, कि पुत्रो! यह सब लोग मुझसे बार बार कहा करते हैं, कि भूमण्डलमें वारणावत नगर बडा सुन्दर है, तुम वहां उत्सव देखना चाहो, तो परिवार और साथियों समेत वहां जाकर देवोंकी भांति आनन्द लूटो और गवैयों और ब्राह्मणोंको मनमाना धन रत्नादि देते रहो। इस प्रकारसे परम तेजस्वी सुरोंके समान कुछ काल विहारकर अच्छी प्रीति लाभ करो और अन्तको कुशलसे इस हस्तिनापुरमें लौट आना। (५—१०)

श्रीवैशंपायनजी बोले, कि युधिष्ठिरने धृतराष्ट्रका अभिप्राय समझकर और अपनेको असहाय जानकर उनको यह उत्तर दिया, कि आप जैसी आज्ञा करते हैं, वही होगा। अनन्तर उन्होंने शान्तनु पुत्र भीष्म, महामति विदुर, द्रोण,

कृपमाचार्यपुत्रं च भूरिश्रवसमेव च ।
मान्यानन्यानमात्यांश्च ब्राह्मणांश्च तपोधनान् ॥ १३ ॥
पुरोहितांश्च पौरांश्च गान्धारीं च यशस्विनीम् ।
युधिष्ठिरः शनैर्दीन उवाचेदं वचस्तदा ॥ १४ ॥
रमणीये जनाकीर्णे नगरे वारणावते ।
सगणास्तत्र यास्यामो धृतराष्ट्रस्य शासनात् ॥ १५ ॥
प्रसन्नमनसः सर्वे पुण्या वाचो विमुञ्चत ।
आशीर्भिर्बृंहितानस्मान्न पापं प्रसहिष्यते ॥ १६ ॥
एवमुक्तास्तु ते सर्वे पाण्डुपुत्रेण कौरवाः ।
प्रसन्नवदना भूत्वा तेऽन्ववर्तन्त पाण्डवान् ॥ १७ ॥
स्वस्त्यस्तु वः पथि सदा भूतेभ्यश्चैव सर्वशः ।
मा च वोऽस्त्वशुभं किंचित्सर्वशः पाण्डुनन्दनाः ॥ १८ ॥
ततः कृतस्वस्त्ययना राज्यलम्भाय पार्थिवाः ।
कृत्वा सर्वाणि कार्याणि प्रत्ययुर्वारणावतम् ॥ १९ ॥ [५८७०]

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यामादिपर्वणि संभवपर्वणि वारणावतयात्रायां पञ्चचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १४५ ॥

वैशम्पायन उवाच—एवमुक्तेषु राज्ञा तु पाण्डुपुत्रेषु भारत ।

बाह्लीक, कौरव सोमदत्त, कृप, आचार्य का पुत्र अश्वत्थामा, भूरिश्रवा और दूसरे माननीय जनों और मन्त्रियों, ब्राह्मणों, तपोधनों, पुरोहितों, पुरवासियों और यशस्विनी गान्धारीसे दीनतापूर्वक कोमल भावसे कहा, कि हम राजा धृतराष्ट्रकी आज्ञासे साथियों समेत जनोंसे भरे अति सुन्दर वारणावत नगरमें जायंगे; आप प्रसन्न चित्तसे पुण्य वचन कहिये, कि आपके अशीस से हम बुद्धिको प्राप्त कर पापयुक्त न होवें। (११—१६)

सम्पूर्ण कौरव युधिष्ठिरकी यह बात सुनकर पाण्डवोंको इच्छानुरूप यह बोले, कि पथमें सर्वभूतोंसे सदा तुम लोगोंका मङ्गल होवे। हे पाण्डवो! तुमपर कोई अहित न होने पावे। अनन्तर पाण्डव स्वस्त्ययन करके राज्य लाभके लिये सम्पूर्ण कर्तव्य कर्मोंको पूराकर वारणावत नगरकी यात्राके लिये प्रस्तुत होने लगे। (१७–१९) [५८७०]

आदिपर्वमें एकसौ पैंतालिस अध्याय समाप्त।

आदिपर्व में एक सौ छियालिस अध्याय।

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि हे भारत! राजा धृतराष्ट्रके पाण्डवोंको ऐसी आज्ञा

दुर्योधनः परं हर्षमगच्छत्स दुरात्मवान् ॥ १ ॥
स पुरोचनमेकान्तमानीय भरतर्षभ ।
गृहीत्वा दक्षिणे पाणौ सचिवं वाक्यमब्रवीत् ॥ २ ॥
दुर्योधन उवाच —ममेयं वसुसंपूर्णा पुरोचन वसुन्धरा ।
यथेयं मम तद्वत्ते स तां रक्षितुमर्हसि ॥ ३ ॥
न हि मे कश्चिदन्योऽस्ति विश्वासिकतरस्त्वया।
सहायो येन संधाय मन्त्रयेयं यथा त्वया ॥ ४ ॥
संरक्ष तात मन्त्रं च सपत्नांश्च ममोद्धर ।
निपुणेनाऽभ्युपायेन यद्ब्रवीमि तथा कुरु ॥ ५ ॥
पाण्डवा धृतराष्ट्रेण प्रेषिता वारणावतम् ।
उत्सवे विहरिष्यन्ति धृतराष्ट्रस्य शासनात् ॥ ६ ॥
स त्वं रासभयुक्तेन स्यन्दनेनाऽऽशुगामिना ।
वारणावतमद्यैव यथा यासि तथा कुरु ॥ ७ ॥
तत्र गत्वा चतुःशालं गृहं परमसंवृतम् ।
नगरोपान्तमाश्रित्य कारयेथा महाधनम् ॥ ८ ॥
शाणसर्जरसादीनि यानि द्रव्याणि कानिचित् ।
आग्नेयान्युत संतीह तानि तत्र प्रदापय ॥ ९ ॥
सर्पिस्तैलवसाभिश्च लाक्षया चाऽप्यनल्पया ।

देनेपर दुरात्मा दुर्योधनको हर्ष हुआ। आगे पुरोचन नामक मन्त्रीको निरालेमें बुलाकर उसका दहिना हाथ थाम करके बोला, कि पुरोचन ! यह धन भरी धरती मेरे वशमें है, इसपर मेरा जितना अधिकार है, तुम्हारा भी उतनाही है, सो तुमको उसकी रक्षा करनी चाहिये; देखो, तुमसे अधिक विश्वासी सहायक मेरा कोई दूसरा नहीं है, कि जिससे मिलकर ऐसा परामर्ष करूं, जैसा तुमसे कर सकता हूं; सो तुम इस परामर्शको भले प्रकार छुपाकर मेरे शत्रुको नष्ट कर डालो, मैं जो कुछ कहता हूं, वह कौशलयुक्त अच्छे उपायोंसे पूरा करो। (१–५)

राजा धृतराष्ट्रने पाण्डवोंको वारणावत नगरमें जानेकी आज्ञा दी है, वे धृतराष्ट्रकी आज्ञा से पाशुपत उत्सवमें वहां विराजेंगे; अतएव तुम ऐसा करो, कि आजही खेचरयुक्त शीघ्रगामी रथ पर वारणावत में जासको ! वहां जाकर नगर के छोरमें अनेक अर्थ खर्च कर भले प्रकार घेरा हुआ एक चौपाल घर बनवाओ; सन,

मृत्तिकां मिश्रयित्वा तं लेपं कुड्येषु दापय॥ १०॥
शणं तैलं घृतं चैव जतु दारूणि चैव हि।
तस्मिन्वेश्मनि सर्वाणि निक्षिपेथाः समन्ततः११॥
यथा च तन्न पश्येरन्परीक्षन्तोऽपि पाण्डवाः।
आग्नेयमिति तत्कार्यमपि चान्येऽपि मानवाः१२॥
वेश्मन्येवं कृते तत्र गत्वा तान्परमार्चितान्।
वासयेथाः पाण्डवेयान्कुन्तीं च ससुहृज्जनाम्॥१३॥
आसनानि च दिव्यानि यानानि शयनानि च।
विधातव्यानि पाण्डूनां यथा तुष्येत वै पिता॥ १४॥
यथा च तन्न जानन्ति नगरे वारणावते।
तथा सर्वं विधातव्यं यावत्कालस्य पर्ययः॥ १५॥
ज्ञात्वा च तान्सुविश्वस्ताञ्शयानानकुतोभयान्।
अग्निस्त्वया ततो देयो द्वारतस्तस्य वेश्मनः॥ १६॥
दह्यमाने स्वके गेहे दग्धा इति ततो जनाः।
न गर्हयेयुरस्मान्वै पाण्डवार्थाय कर्हिचित्॥ १७॥
स तथेति प्रतिज्ञाय कौरवाय पुरोचनः।

धूपआदि जितनी आग बालनेवाली वस्तु हैं, उनसेही वह घर बनवाना; आगे घृत, तैल, चर्बी और अधिक लाहके साथ कुछ मिट्टी मिलाकर उसकी भीतोंको पोतवा रखना; और सन, तेल, घृत, लाह और लकडी यह सब वस्तु उस घरमें गिरा रखना। (९–११)

पर ऐसा करना, कि पाण्डवलोग वा कोई दूसरे विशेष परीक्षासे यह समझ न पावें, कि वह गृह आगसे जलनेवाला है। इस प्रकार गृह बनवा करके पाण्डवों और मित्रोंके साथ कुन्तीको आदर पूर्वक वहां पाण्डवोंके लिये सुन्दर शय्या, आसन और यान इस प्रकार बनवा रखना, कि पिता सन्तुष्ट होवें। और यह करना, कि वारणावत नगरका कोई भी मनुष्य इस विषयमें कुछ जानने न पावे। आगे ठीक समय आनेपर अर्थात् पाण्डवोंको उस गृहमें अच्छे विश्वास पूर्वक सोते और निःशङ्क होते देखने पर उस गृहके द्वारमें आग लगाना; इसमें सन्देह नहीं, कि उससे पाण्डव जल मरेंगे। अनन्तर प्रजा समझेगी, कि पाण्डव उनके घरमें आग लगनेहीसे जल मरे; सो पाण्डवोंके लिये वह कभी हमारी निन्दा नहीं कर सकेगी।(१२-१७)

प्रायाद्रासभयुक्तेन स्यन्दनेनाऽऽशुगामिना ॥ १८ ॥
स गत्वा त्वरितं राजन्दुर्योधनमते स्थितः ।
यथोक्तं राजपुत्रेण सर्वं चक्रे पुरोचनः ॥ १९ ॥ [५८८९]

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यामादिपर्वणि जतुगृहपर्वणि पुरोचनोपदेशे षट्चत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १४६ ॥

वैशम्पायन उवाच—पाण्डवास्तु रथान्युक्त्वा सदश्वैरनिलोपमैः ।
आरोहमाणा भीष्मस्य पादौ जगृहुरार्तवत् ॥ १ ॥
राज्ञश्च धृतराष्ट्रस्य द्रोणस्य च महात्मनः ।
अन्येषां चैव वृद्धानां कृपस्य विदुरस्य च ॥ २ ॥
एवं सर्वान्कुरून्वृद्धानभिवाद्य यतव्रताः ।
समालिङ्ग्य समानान्वै बालैश्चाऽप्यभिवादिताः ॥ ३ ॥
सर्वा मातॄस्तथाऽऽपृच्छय कृत्वा चैव प्रदक्षिणम् ।
सर्वाः प्रकृतयश्चैव प्रययुर्वारणावतम् ॥ ४ ॥
विदुरश्च महाप्राज्ञस्तथाऽन्ये कुरुपुङ्गवाः ।
पौराश्च पुरुषव्याघ्रानन्वयुः शोककर्शिताः ॥ ५ ॥
तत्र केचिद् ब्रुवन्ति स्म ब्राह्मणा निर्भयास्तदा ।

पुरोचन दुर्योधनसे उस बातकी प्रतिज्ञा कर अच्छे अच्छे खच्चरयुक्त शीघ्रगामी रथ पर चला । हे राजन् ! पुरोचन दुर्योधन की आज्ञासे शीघ्रतापूर्वक वारणावतमें पहुंचकर राजकुमार दुर्योधनके कहे हुए सब काम पूरा करने लगा । (१८—१९) [५८८९]

आदिपर्वमें एकसौ छियालिस अध्याय समाप्त ।

आदिपर्वमें एकसौ सैंतालीस अध्याय ।

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि अनन्तर व्रतशील पाण्डव लोग कुछ रथोंमें पवन समान वेगवान् अच्छे अच्छे घोडे जोतवाकर चढनेके काल कातर होकर भीष्म, राजा धृतराष्ट्र, महात्मा द्रोण, विदुर, कृप दूसरे वृद्धोंके पांव छूने लगे; इस प्रकार अपनेसे बडे सब कौरवोंको प्रणाम किया और अपने जोडियोंको गलेसे लगाया । आगे बालकोंका प्रमाण लेकर सब माताओंकी आज्ञासे और उनको सम्भाषण पूर्वक वारणावत नगरको चले। महाप्राज्ञ विदुर तथा दूसरे कौरवोंमें प्रधान लोग और पुरवासीवृन्द शोकाकुल होकर पुरुषोंमें व्याघ्ररूपी पाण्डवोंके पीछे पीछे चले । (१—५)

उनमेंसे कुछ पुरवासी और जनपद वासी पाण्डवोंके चित्तको मलिन देखकर

दीनान्दृष्ट्वा पाण्डुसुतानतीव भृशदुःखिताः॥ ६ ॥
विषमं पश्यते राजा सर्वथा स सुमन्दधीः।
कौरव्यो धृतराष्ट्रस्तु न च धर्मं प्रपश्यति॥ ७ ॥
न हि पापमपापात्मा रोचयिष्यति पाण्डवः।
भीमो वा बलिनां श्रेष्ठः कौन्तेयो वा धनञ्जयः॥ ८ ॥
कुत एव महात्मानौ माद्रीपुत्रौ करिष्यतः।
तान्राज्यं पितृतः प्राप्तान्धृतराष्ट्रो न मृष्यते॥ ९ ॥
अधर्म्यमिदमत्यन्तं कथं भीष्मोऽनुमन्यते।
विवास्यमानानस्थाने नगरे योऽभिमन्यते॥ १० ॥
पितेव हि नृपोऽस्माकमभूच्छान्तनवः पुरा।
विचित्रवीर्यो राजर्षिः पाण्डुश्च कुरुनन्दनः॥ ११ ॥
स तस्मिन्पुरुषव्याघ्रे देवभावं गते सति।
राजपुत्रानिमान्बालान्धृतराष्ट्रो न मृष्यते॥ १२ ॥
वयमेतदनिच्छन्तः सर्व एव पुरोत्तमात्।
गृहान्विहाय गच्छामो यत्र गन्ता युधिष्ठिरः॥ १३ ॥
तांस्तथावादिनः पौरान्दुःखितान्दुःखकर्शितः।

अति दुःखसे कहने लगे, कि कुरुवंशी राजा धृतराष्ट्र दुष्टबुद्धिवश सब प्रकारसे पक्षपात कर रहे हैं, वह एकबार भी धर्मकी ओर दृष्टि नहीं देते हैं। पापरहित पाण्डुपुत्र कुन्तीनन्दन युधिष्ठिर, महाबली भीम और धनञ्जय, यह कभी विद्रोह रूपी पाप कर्मकी इच्छा नहीं करते, सो महात्मा माद्रीकुमार भी चुप रहेंगे। हाय! कैसा गहरा दुःख है! पाण्डवोंका पितृराज्यका पाना भी धृतराष्ट्रसे सहा नहीं जाता! इस अति अधर्मयुक्त कर्ममें फिर भीष्महीने क्योंकर अनुमति दी? ऐसे अन्याय पूर्वक पाण्डवोंको दूर करनेमें क्योंकर उनकी संमति हुई? (६-१०)

पहिले शान्तनुनन्दन राजर्षि विचित्रवीर्य और कुरुपुल पाण्डुने हमको पिताके समान पाला था। उन पुरुषव्याघ्र पाण्डुके स्वर्गको सिधारने पर अब धृतराष्ट्र इन बालक राजकुमारों पर द्वेषयुक्त हो गये। क्या ऐसे अत्याचार पर हमारी संमति हो सकती है? चाहे जो कुछ हो, युधिष्ठिर जहां जायंगे, हम सब गृहको तज कर इस नगर से वहीं जायंगे। (११-१३)

पुरवासीलोग दुःखित होकर ऐसा आन्दोलन कर रहे थे, कि धर्मराज युधिष्ठिर

उवाच मनसा ध्यात्वा धर्मराजो युधिष्ठिरः ॥ १४ ॥
पिता मान्यो गुरुः श्रेष्ठो यदाह पृथिवीपतिः ।
अशङ्कमानैस्तत्कार्यमस्माभिरिति नो व्रतम् १५ ॥
भवन्तः सुहृदोऽस्माकमस्मान्कृत्वा प्रदक्षिणम् ।
प्रतिनन्द्य तथाऽऽशीर्भिर्निवर्तध्वं यथागृहम् ॥ १६ ॥
यदा तु कार्यमस्माकं भवद्भिरुपपत्स्यते ।
तदा करिष्यथाऽस्माकं प्रियाणि च हितानि च ॥१७॥
एवमुक्तास्ततः पौराः कृत्वा चापि प्रदक्षिणम्।
आशीर्भिश्चाऽभिनन्द्यैताञ्जग्मुर्नगरमेव हि ॥ १८ ॥
पौरेषु विनिवृत्तेषु विदुरः सर्वधर्मवित् ।
बोधयन्पाण्डवश्रेष्ठमिदं वचनमब्रवीत् ॥ १९ ॥
प्राज्ञः प्राज्ञप्रलापज्ञः प्रलापज्ञमिदं वचः ।
प्राज्ञं प्राज्ञः प्रलापज्ञः प्रलापज्ञं वचोऽब्रवीत् ॥ २० ॥
यो जानाति परप्रज्ञां नीतिशास्त्रानुसारिणीम्।
विज्ञायेह तथा कुर्यादापदं निस्तरेद्यथा ॥ २१ ॥

मनहीमन में कुछकाल सोच कर दुःखयुक्त चित्तसे उनसे बोले, कि पृथ्वीनाथ धृतराष्ट्र हमारे पिता, माननीय, तथा गुरु हैं, और वही प्रधान हैं; हमारा व्रत यह है, कि उन्होंने जो कुछ कहा है, उसे हम विना शङ्का पूरा करेंगे। आप हमारे हितकारी हैं, हमपर कृपा करके अशीस दे दे कर निज निज घरको लौट जावें। जब आप लोगोंसे हम लोगोंका कोई आवश्यकीय काम आ पडेगा, तब आप हमारे उस कामको प्रिय और हितयुक्त जानकर करना।(१४-१७)

पुरवासी लोग युधिष्ठिरकी यह बात सुनकर प्रदक्षिण पूर्वक आशीस दे देकर कातरभावसे नगरको पधारे। उनके सम्पूर्ण रूपसे लौटनेपर सर्व नीतियोंके जानकार विदुर पाण्डवों में प्रधान युधिष्ठिरको सावधान करनेके लिये कहने लगे। इसलिये, कि दूसरे समझ न सकें, म्लेच्छ भाषाको जाननेवाले विदुर म्लेच्छ भाषाको समझते हुए युधिष्ठिरसे म्लेच्छ भाषामें इशारेसे बोले, कि जो शत्रुके चेष्टित विषयको नीति शास्त्रके अनुसार ज्ञात हो सकें, उनको समझकर ऐसा करना चाहिये, कि विपदसे बच सकें। जो लोग ऐसे अस्त्रोंको, कि जो विना लोहेसे बना हो पर शरीरको नष्ट कर देता हो और उससे बचनेके उपायको जाननेमें

अलोहं निशितं शस्त्रं शरीरपरिकर्तनम् ।
यो वेत्ति न तु तं घ्नन्ति प्रतिघातविदं द्विषः ॥ २२ ॥
कक्षघ्नः शिशिरघ्नश्च महाकक्षे बिलौकसः ।
न दहेदिति चाऽऽत्मानं यो रक्षति स जीवति॥ २३ ॥
नाऽचक्षुर्वेत्ति पन्थानं नाऽचक्षुर्विन्दते दिशः ।
नाऽधृतिर्बुद्धिमाप्नोति बुद्ध्यस्वैवं प्रबोधितः॥ २४॥
अनाप्तैर्दत्तमादत्ते नरः शस्त्रमलोहजम् ।
श्वाविच्छरणमासाद्य प्रमुच्येत हुताशनात् ॥ २५ ॥
चरन्मार्गान्विजानाति नक्षत्रैर्विन्दते दिशः ।
आत्मना चात्मनः पञ्च पीडयन्नाऽनुपीड्यते ॥ २६ ॥
एवमुक्तः प्रत्युवाच धर्मराजो युधिष्ठिरः ।
विदुरं विदुषां श्रेष्ठं विज्ञातमिति पाण्डवः ॥ २७ ॥
अनुशिक्ष्याऽनुगम्यैतान्कृत्वा चैव प्रदक्षिणम् ।
पाण्डवानभ्यनुज्ञाय विदुरः प्रययौ गृहान् ॥ २८ ॥
निवृत्ते विदुरे चापि भीष्मे पौरजने तथा ।

समर्थ हैं, उनको शत्रु बिगाड नहीं सकते । कक्षघ्न अर्थात् तृणनाशी और हिमनाशी वस्तु महाकक्षमें अर्थात् बडे वनके भीतर बिलमें रहलेवाले जीवोंको जला नहीं सकती हैं, इस नियमको आश्रयकर जो अपनी रक्षा करते हैं, वही जीते रहते हैं। जो आखोंसे नहीं देखते हैं, वह न तो पथ जान सक्ते हैं, और न दिशा निश्चयकर सकते हैं; जिनको धीरज नहीं है, वह विवेक बुद्धि नहीं प्राप्तकर सकते हैं। (१८-२४)

तुम मेरे इस उपदेशको भली भांति स्मरण रखना। जो पुरुष शत्रुओंके विना लोहेके बने शस्त्रके वशमें नहीं हैं, वह साहसीके घरकी भांति दोनों ओरसे निकलनेके पथयुक्त बिलोंके द्वारा आगसे बच सकते हैं और घूमने घामनेहीसे पथ जाने जा सकते हैं, नक्षत्रसेभी दिशाओं का निश्चय हो सकता है, और जो मनुष्य अपनी पांच वस्तुओंको बुद्धिपूर्वक बचा सकते हैं, वह शत्रुओंसे पीसे नहीं जाते। पाण्डुपुत्र धर्मराज युधिष्ठिर विज्ञवर विदुरकीयह बात सुनकर बोले, कि मैं समझ गया। २४-२७)

विदुर पाण्डवोंको उक्त उपदेश देकर कुछ दूर पीछे चल प्रदक्षिण पूर्वक सम्भाषण कर गृहको लोटे। भीष्म, विदुर और पुरवासी सबोंके लौट जाने पर कुन्ती अजातपुत्र युधिष्ठिरके निकट जाकर

अजातशत्रुमासाद्य कुन्ती वचनमब्रवीत् ॥ २९ ॥
क्षत्ता यदब्रवीद्वाक्यं जनमध्येऽब्रुवन्निव ।
त्वया च स तथेत्युक्तो जानीमो न च तद्वयम् ॥ ३० ॥
यदीदं शक्यमस्माभिर्ज्ञातुं न च सदोषवत्।
श्रोतुमिच्छामि तत्सर्वं संवादं तव तस्य च ॥ ३१ ॥

युधिष्ठिर उवाच—गृहादग्निश्च बोद्धव्य इति मां विदुरोऽब्रवीत्।
पन्थाश्च वो नाऽविदितः कश्चित्स्यादिति धर्मधीः ३२॥
जितेन्द्रियश्च वसुधां प्राप्स्यतीति च मेऽब्रवीत्।
विज्ञातमिति तत्सर्वं प्रत्युक्तो विदुरो मया ॥ ३३ ॥

वैशम्पायन उवाच—अष्टमेऽहनि रोहिण्यां प्रयाताः फाल्गुनस्य ते।
वारणावतमासाद्य ददृशुर्नागरं जनम् ॥ ३४ ॥ [५९२३]

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यामादिपर्वणि जतुगृहपर्वणि
वारणावतगमने सप्तचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १४७ ॥

वैशम्पायन उवाच—ततः सर्वाः प्रकृतयो नगराद्वारणावतात् ।
सर्वमङ्गलसंयुक्ता यथाशास्त्रमतन्द्रिताः ॥ १ ॥
श्रुत्वाऽऽगतान्पाण्डुपुत्रान्नानायानैः सहस्रशः।

बोली, कि विदुरने सबोंके सामने अप्रकाशित अर्थयुक्त जो बात कही. और तुमनेभी उनसे जैसी बात कही मैं उसे समझ नहीं सकी; यदि वह हमारे जानने योग्य हो और यदि उसे जाननेसे हानि न होनेवाली हो, तो तुम दोनोंमें जो बात हुई. उसका अभिप्राय मैं जानना चाहती हूं। (२८-३१)

युधिष्ठिर बोले, कि विदुरने कहा है, कि गृहसे आग जल उठेगी. तुम यह जानकर पहिलेसे सावधान होओ; कोई पथ तुम्हारा अनजाना नहीं है। जो जितेन्द्रिय होंगे, वही भूमण्डल भरका अधिकार पावेंगे। धर्मशील विदुरके मुझसे इतना कहने पर मैंने उनसे कहा है, कि मैं सब समझ गया। श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि उसके अनन्तर पाण्डवोंने फाल्गुनके महीनेके आठवें दिनको रोहिणी नक्षत्रमें वारणावतकी यात्रा की। आगे वहां पहुंचे हुए पाण्डवोंसे नगर-वाले जनोंकी भेंट हुई। (३२-३४) [५९२३]

आदि पर्वमें एकसौ सैंतालिस अध्याय समाप्त।

आदिपर्व में एक सौ अडतालिस अध्याय।

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि अनन्तर वारणावत नगरी की सब प्रजा पाण्डवों के शुभ आगमनको सुनकर सुखीको

अभिजग्मुर्नरश्रेष्ठाञ्छ्रुत्वैव परया मुदा ॥ २ ॥
ते समासाद्य कौन्तेयान्वारणावतका जनाः।
कृत्वा जयाशिषः सर्वे परिवार्याऽवतस्थिरे ॥ ३ ॥
तैर्वृतः पुरुषव्याघ्रो धर्मराजो युधिष्ठिरः।
विबभौ देवसङ्काशो वज्रपाणिरिवाऽमरैः ॥ ४ ॥
सत्कृताश्चैव पौरैस्ते पौरान्सत्कृत्य चाऽनघ।
अलंकृतं जनाकीर्णं विविशुर्वारणावतम् ॥ ५ ॥
ते प्रविश्य पुरीं वीरास्तूर्णं जग्मुरथो गृहान्।
ब्राह्मणानां महीपाल रतानां स्वेषु कर्मसु ॥ ६ ॥
नगराधिकृतानां च गृहाणि रथिनां तदा।
उपतस्थुर्नरश्रेष्ठा वैश्यशूद्रगृहाण्यपि ॥ ७ ॥
अर्चिताश्च नरैः पौरैः पाण्डवा भरतर्षभ।
जग्मुरावसथं पश्चात्पुरोचनपुरःसराः ॥ ८ ॥
तेभ्यो भक्ष्याणि पानानि शयनानि शुभानि च।
आसनानि च मुख्यानि प्रददौ स पुरोचनः ॥ ९ ॥
तत्र ते सत्कृतास्तेन सुमहार्हपरिच्छदाः।
उपास्यमानाः पुरुषैरूषुः पुरनिवासिभिः ॥ १० ॥

छोड शास्त्रके अनुसार माङ्गल्य पदार्थ लेकर नाना प्रकारके अगणित यानों पर चढ उनके निकट जा पहुंची। वे पाण्डवोंके निकट जाकर जय जयकारके साथ अशीस देते हुए चारों ओर खडे हुए। देव सदृश पुरुषव्याघ्र धर्मराज युधिष्ठिर तब नगरके जनोंसे घेरे जाकर सुरनाथके समान शोभा पाने लगे। निष्पाप पाण्डवलोग पुरवासियोंसे सत्कार पाकर उनकी यथायोग्य अभ्यर्थना और नाना अलङ्कारोंसे सत्कार पाकर उनका यथोचित सत्कार कर नाना अलङ्कारोंसे अलंकृत जनोंसे भरे वारणावत नगरमें जा पहुंचे। (१—५)

वीर पाण्डवनन्दन पुरमें प्रवेश कर पहिले वेद पठन आदि स्वकर्ममें नियुक्त ब्राह्मणोंके घरोंमें गये। आगे क्रमसे नगरपाल, रथी, वैश्य और शूद्रोंके घरोंमें भी गये। हे भरतश्रेष्ठ! पाण्डुपुत्रगण पुरवासियोंसे पूजे जाकर पीछे अगुया पुरोचनके साथ घरमें गये। पुरोचन उनको अच्छी अच्छी भोजन और पीनेकी वस्तु, शय्या, उत्तम आसनादि देने लगा। बहुत मूल्ययुक्त पहिरावा पहिरे हुए

दशरात्रोषितानां तु तत्र तेषां पुरोचनः ।
निवेदयामास गृहं शिवाख्यमशिवं तदा ॥ ११ ॥
तत्र ते पुरुषव्याघ्रा विविशुः सपरिच्छदाः ।
पुरोचनस्य वचनात्कैलासमिव गुह्यकाः ॥ १२ ॥
तच्चाऽगारमभिप्रेक्ष्य सर्वधर्मभृतां वरः ।
उवाचाऽऽग्नेयमित्येवं भीमसेनं युधिष्ठिरः ॥ १३ ॥
युधिष्ठिर उवाच—जिघ्राणोऽस्य वसागन्धं सर्पिर्जतुविमिश्रितम् ।
कृतं हि व्यक्तमाग्नेयमिदं वेश्म परंतप ॥ १४ ॥
शणसर्जरसं व्यक्तमानीय गृहकर्मणि ।
मुञ्जबल्वजवंशादि द्रव्यं सर्वं घृतोक्षितम् ॥ १५ ॥
शिल्पिभिः सुकृतं ह्याप्तैर्विनीतैर्वेश्मकर्मणि ।
विश्वस्तं मामयं पापो दग्धुकामः पुरोचनः ॥ १६ ॥
तथा हि वर्तते मन्दः सुयोधनवशे स्थितः ।
इमां तु तां महाबुद्धिर्विदुरो दृष्टवांस्तदा ॥ १७ ॥
आपदं तेन मां पार्थ स संबोधितवान्पुरा ।
ते वयं बोधितास्तेन नित्यमस्मद्धितैषिणा ॥ १८ ॥

पाण्डवगण पुरोचनकी सेवा और पुरवासियोंकी उपासना पाकर वहां वसने लगे । (६—१०)

इस प्रकार दश दिनोंके व्यतीत होनेपर पुरोचनने उनको शिव नामक उस अशिव गृहकी बात सुनायी । गुह्यक लोग जिस प्रकार कैलासकी चोटी पर चढते हैं, वैसेही पाण्डव-लोग पहिरावेसे सुशोभित होकर पुरोचनके वचन सुनकर उस गृहमें प्रविष्ट हुए । परम धार्मिक युधिष्ठिर उस गृहको भले प्रकार देखकर भीमसेनसे बोले, कि यही गृह आग लगनेवाली वस्तुओंसे बना होगा । हे शत्रुनाशि ! घृत और लाहसे मिली हुई चर्बीकी गन्धको सूंघनेसे स्पष्ट प्रकाश होता है, कि यह गृह आग लगनेवाली वस्तुओंसे बना है । घर बनानेमें दक्ष और विपक्षियोंके विश्वासी शिल्पियोंने सन, धूप, सरकण्डा, तृण और बांस आदि को बटोर करके घृतमें डुबा कर उनसे यह घर बनाया है । सुयोधनका वशीभूत कुमति पुरोचन यह समझे हुआ है, कि मुझमें विश्वास आते देखकर हमको जलावेगा । (११-१७)

हे पार्थ ! महामति विदुर जान सके थे, कि यह विपत आपडेगी ; इस लिये

पित्रा कनीयसा स्नेहाद् बुद्धिमन्तोऽशिवं गृहम्।
अनार्यैः सुकृतं गूढैर्दुर्योधनवशानुगैः ॥ १९ ॥

भीमसेन उवाच— यदीदं गृहमाग्नेयं विहितं मन्यते भवान्।
तत्रैव साधु गच्छामो यत्र पूर्वोषिता वयम् ॥ २० ॥

युधिष्ठिर उवाच— इह यत्तैर्निराकारैर्वस्तव्यमिति रोचये।
अप्रमत्तैर्विचिन्वद्भिर्गतिमिष्टां ध्रुवामितः ॥ २१ ॥
यदि विन्देत चाऽऽकारमस्माकं स पुरोचनः।
क्षिप्रकारी ततो भूत्वा प्रसह्याऽपि दहेत नः ॥ २२ ॥
नाऽयं बिभेत्युपक्रोशादधर्माद्वा पुरोचनः।
तथा हि वर्तते मन्दः सुयोधनवशे स्थितः ॥ २३ ॥
अपि चायं प्रदग्धेषु भीष्मोऽस्मासु पितामहः।
कोपं कुर्यात्किमर्थं वा कौरवान्कोपयीत सः ॥ २४ ॥
अथवाऽपीह दग्धेषु भीष्मोऽस्माकं पितामहः।
धर्म इत्येव कुप्येरन्ये चान्ये कुरुपुङ्गवाः ॥ २५ ॥
वयं तु यदि दाहस्य बिभ्यतः प्रद्रवेम हि।

उन्होंने पहिले मुझको सावधान कर दिया था। उन छोटे चचाजीने स्नेहसे हमारे हितेच्छुक होकर जताया था, कि दुर्योधन के वशीभूत नीच स्वभावके लोगोंने इस अहित गृहको भले प्रकार बनाया है। भीमसेन बोले, कि जब कि आपने जान लिया है, कि यह गृह आग बालने वाली वस्तुओंसे बना है, तब हम पहिले जहां बसे थे, वहीं जायं तो हमारा मङ्गल हो सकता है। (१८-२०)

युधिष्ठिर बोले, कि हम यत्नसे सावधान हो यहीं रहकर बाहिरी देखनेमें कोई चेष्टा न करके बाहर निकलनेका पथ ढूढेंगे। पुरोचन हमारे आकार वा किसी भावसे जान जायगा, तो उसी क्षण शीघ्रतापूर्वक एकायक हमको जला मारेगा; क्योंकि पुरोचन लोकनिन्दा वा अधर्म से भय खानेवाला नहीं है, वह बुरी बुद्धियुक्त दुर्योधन की आज्ञासे ऐसा अनिष्ट करनेको प्रवृत्त हुआ है। फिरभी हमारे यहां जल जानेसे पितामह भीष्म क्यों क्रोधमें होने चले, क्रोधित वह होकर क्यों कौरवोंको क्रोधयुक्त करेंगे; हां, ऐसा हो सकता है, कि जितने दूसरे कौरवश्रेष्ठ हैं, वे धर्मके नाम से क्रोध प्रकाश कर सकते हैं; और हम जलनेके भयसे भय खाकर भाग जावें, तो राज्यलोभी सुयोधन दूतोंके द्वारा हम सबोंको मरवा सकता है; क्योंकि

स्पर्शैर्नो घातयेत्सर्वान्राज्यलुब्धः सुयोधनः ॥ २६ ॥
अपदस्थान्पदे तिष्ठन्नपक्षान्पक्षसंस्थितः ।
हीनकोशान्महाकोशः प्रयोगैर्घातयेद् ध्रुवम् ॥ २७ ॥
तदस्माभिरिमं पापं तं च पापं सुयोधनम् ।
वञ्चयद्भिर्निवस्तव्यं छन्नावासं क्वचित्क्वचित् ॥ २८ ॥
ते वयं मृगयाशीलाश्चराम वसुधामिमाम् ।
तथा नो विदिता मार्गा भविष्यन्ति पलायताम् २९
भौमं च बिलमद्यैव करवाम सुसंवृतम् ।
गूढोच्छ्वासान्न नस्तत्र हुताशः संप्रधक्ष्यति ॥ ३० ॥
वसतोऽत्र यथा चास्मान्न बुध्येत पुरोचनः ।
पौरो वापि जनः कश्चित्तथा कार्यमतन्द्रितैः ॥ ३१ ॥ [५९५४]

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यामादिपर्वणि जतुगृहपर्वणि भीमसेनयुधिष्ठिरसंवादेऽष्टचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १४८ ॥

वैशम्पायन उवाच— विदुरस्य सुहृत्कश्चित्खनकः कुशलो नरः ।
विविक्ते पाण्डवान्राजन्निदं वचनमब्रवीत् ॥ १ ॥
प्रहितो विदुरेणाऽस्मि खनकः कुशलो ह्यहम् ।

वह दुरात्मा राजपदपर बना, सहाययुक्त और बडे ऐश्वर्यका अधिकारी है; और हम पदके बाहर, सहाय रहित और ऐश्वर्य वर्जित हैं; सो इसमें सन्देह नहीं है, कि वह हमको नाना उपायोंसे नष्ट कर सकेगा। (२३—२७)

अतएव हम पापात्मा पुरोचन और सुयोधनको ठगकर अनेक स्थानोंमें इस प्रकार छिपकर वास करेंगे, और मृगया करते हुए पृथ्वीपर भ्रमण करेंगे जिससे, कि भागनेके काल हमारा पथ अज्ञात नहीं रहेगा, बडेही गुप्त भावसे आज ही धरतीके नीचे एक बिल खोदेंगे। गुप्त रूपसे ऐसा करनेसे हमको आशङ्का नहीं रहेगी; अतएव हम सजग होकर ऐसा करेंगे, कि पुरोचन वा कोई दूसरे पुरवासी हमारा अभिप्राय न जान सकें। (२८-३१) [५९५४]

आदि पर्वमें एकसौ अडतालीस अध्याय समाप्त ।

आदिपर्वमें एकसौ उनपचास अध्याय ।

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि हे महीपाल ! एक मनुष्य जो विदुरका मित्र और मिट्टी खोदनेमें दक्ष था, आनके निरालेमें पाण्डवोंसे बोला, कि मैं खनिक हूं, भूमि भली भांतिसे खोद सकता हूं, विदुरजीने मुझको यह कह भेजा है, कि

पाण्डवानां प्रियं कार्यमिति किं करवाणि वः॥ २ ॥
प्रच्छन्नं विदुरेणोक्तः श्रेयस्त्वमिह पाण्डवान्।
प्रतिपाद्य विश्वासादिति किं करवाणि वः ॥ ३ ॥
कृष्णपक्षे चतुर्दश्यां रात्रावस्यां पुरोचनः ।
भवनस्य तव द्वारि प्रदास्यति हुताशनम् ॥ ४ ॥
मात्रा सह प्रदग्धव्याः पाण्डवाः पुरुषर्षभाः।
इति व्यवसितं तस्य धार्तराष्ट्रस्य दुर्मतेः ॥ ५ ॥
किंचिच्च विदुरेणोक्तो म्लेच्छवाचाऽसि पाण्डव।
त्वया च तत्तथेत्युक्तमेतद्विश्वासकारणम् ॥ ६ ॥
उवाच तं सत्यधृतिः कुन्तीपुत्रो युधिष्ठिरः।
अभिजानामि सौम्य त्वां सुहृदं विदुरस्य वै॥ ७ ॥
शुचिमाप्तं प्रियं चैव सदा च दृढभक्तिकम् ।
न विद्यते कवेः किंचिदविज्ञातं प्रयोजनम्॥ ८ ॥
यथा तस्य तथा नस्त्वं निर्विशेषा वयं त्वयि।
भवतश्च यथा तस्य पालयाऽस्मान्यथा कविः॥ ९ ॥
इदं शरणमाग्नेयं मदर्थमिति मे मतिः ।

तुम जाकर पाण्डवोंका प्रिय कार्य करो; सो पूछता हूं, कि आपका कौनसा काम करना पडेगा? उन्होंने मेरा विश्वास कर कहा है, कि तुम पाण्डवोंका हित करो, अब आज्ञा कीजिये, कि क्या करना है। हे पाण्डव! पुरोचन आपके इस गृहके द्वारपर कृष्णपक्षकी चतुर्दशीकी रात्रिको आग लगा देगा। (१—४)

कुमति दुर्योधनने निश्चय किया है, कि पुरुषश्रेष्ठ पाण्डवोंको माताके साथ जला मारेंगे। विदुरने म्लेच्छ भाषामें आपसे कुछ कहा था, उससे आपनेभी उनको वैसाही उत्तर दिया था;यह बात ही मुझपर आपके विश्वास होनेका कारण है। (५—६)

सत्यशील कुन्तीनन्दन युधिष्ठिर बोले, कि हे सौम्य! मैं जान गया, कि तुम विदुरके प्रिय मित्र, शुद्ध स्वभावी और विश्वासी हो, और उनपर सदा तुम्हारी बडी भक्ति है; वह सब जानते हैं, कोई काम उनका अनजाना नहीं है; तुम विदुरके जैसे प्यारे हो, हमारेभी वैसेही प्रिय हो, इसमें कुछ विशेष नहीं है। अतएव तुम उनको जैसा समझते हो, हमकोभी वैसाही समझकर हमारी रक्षा इस प्रकारसे करो, कि जैसे वह करते थे।(७-९)

पुरोचनेन विहितं धार्तराष्ट्रस्य शासनात् ॥ १० ॥
स पापः कोशवांश्चैव ससहायश्च दुर्मतिः ।
अस्मानपि च पापात्मा नित्यकालं प्रबाधते ॥ ११ ॥
स भवान्मोक्षयत्वस्मान्यत्नेनाऽस्माद्धुताशनात्।
अस्मास्विह हि दग्धेषु सकामः स्यात्सुयोधनः॥१२॥
समृद्धमायुधागारमिदं तस्य दुरात्मनः ।
वप्रान्तं निष्प्रतीकारमाश्रित्येदं कृतं महत् ॥ १३ ॥
इदं तदशुभं नूनं तस्य कर्म चिकीर्षितम् ।
प्रागेव विदुरो वेद तेनाऽस्मानन्वबोधयत् ॥ १४ ॥
सेयमापदनुप्राप्ता क्षत्ता यां दृष्टवान्पुरा ।
पुरोचनस्याऽविदितानस्मांस्त्वं प्रतिमोचय ॥ १५ ॥
स तथेति प्रतिश्रुत्य खनको यत्नमास्थितः ।
परिखामुत्किरन्नाम चकार च महद्बिलम् ॥ १६ ॥
चक्रे च वेश्मनस्तस्य मध्येनाऽतिमहद्बिलम् ।
कपाटयुक्तमज्ञातं समं भूम्याश्च भारत ॥ १७ ॥
पुरोचनभयादेव व्यदधात्संवृतं मुखम् ।

मुझको भी समझ आ गयी, कि दुर्योधनके मतसे पुरोचनने हमारे लिये ही यह अग्निघर बनवाया है; यह पापात्मा कुमति दुर्योधन धनयुक्त और सहाय सहित है, सो सदा हमको नष्ट करनेकी चेष्टा करता है। अब तुम यत्नपूर्वक हमको इस अग्नि-घरसे बचाओ। और भी इसमें सन्देह नहीं है, कि हम यहां जल मरें, तो सुयोधनकी आशा पूरी होगी। देखो, यह उस दुरात्माकी बडी भारी अस्त्रशाला है। इसे आश्रयकर यह बडा गृह ऐसा बना है, कि भीतकी जडसे अन्ततक बाहर निकलनेका कोई पथ नहीं है। विदुरने दुर्योधनके जिस सङ्कल्पित अनुचित कर्मको पहिले निश्चय रूपसे जानकर हमको सावधान किया था, अब वही विपद आ पडी है; अतएव ऐसा करो, कि हम पुरोचनसे गुप्तभावसे भाग सकें। (१०-१५)

खनकने वैसी प्रतिज्ञाकर खंदक खोदने के मिषसे बिल खोदना आरम्भ किया। हे भारत! उस गृहके भीतर औरोंका अनजाना एक बडा बिल खोदकर उसमें ऐसा दार लगाया, कि भूमिसे समान हो गया और पुरोचनके भयसे उस बिलका मुह तोप दिया। हे भूपाल!

स तस्य तु गृहद्वारि वसत्यशुभधीः सदा ॥ १८ ॥
तत्र ते सायुधाः सर्वे वसन्ति स्म क्षपां नृप ।
दिवा चरन्ति मृगयां पाण्डवेया वनाद्वनम् ॥ १९ ॥
विश्वस्तवदविश्वस्ता वञ्चयन्तः पुरोचनम् ।
अतुष्टास्तुष्टवद्राजन्नूषुः परमविस्मिताः ॥ २० ॥
न चैनानन्वबुध्यन्त नरा नगरवासिनः ।
अन्यत्र विदुरामात्यात्तस्मात्खनकसत्तमात् ॥ २१ ॥[५९७५]

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यामादिपर्वणि जतुगृहपर्वणि
जतुगृहवास ऊनपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १४९ ॥

वैशम्पायन उवाच–तांस्तु दृष्ट्वा सुमनसः परिसंवत्सरोषितान् ।
विश्वस्तानिव संलक्ष्य हर्षं चक्रे पुरोचनः ॥ १ ॥
पुरोचने तथा हृष्टे कौन्तेयोऽथ युधिष्ठिरः ।
भीमसेनार्जुनौ चोभौ यमौ प्रोवाच धर्मवित् ॥ २ ॥
युधिष्ठिर उवाच––अस्मानयं सुविश्वस्तान्वेत्ति पापः पुरोचनः ।
वञ्चितोऽयं नृशंसात्मा कालं मन्ये पलायने ॥ ३ ॥
आयुधागारमादीप्य दग्ध्वा चैव पुरोचनम् ।

अहित बुद्धियुक्त पुरोचन उस गृहके द्वारपर सदा रहा करता था । पाण्डव गणभी रात्रिको अस्त्र शस्त्र लेकर उस गृहके भीतर रहते और दिनको वनमें घूम घाम मृगया करते फिरते थे ! हे राजन्! वे पुरोचनको ठगनेके लिये टुक-भी विश्वास न रख करके भी विश्वासीके समान,सदा असन्तुष्ट हो करकेभी सन्तुष्ट की भांति और अति विस्मित होकर वहां वसने लगे । पर विदुरके मन्त्री उस खनिकके विना किसी नगरवासीने उनका अभिप्राय नहीं जाना। (१६–२१)

आदिपर्वमें एकसौ उनपचास अ० समाप्त [५९७५]

आदिपर्वमें एकसौ पचास अध्याय।

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि अनन्तर उनके उसप्रकार वर्षभर वहां वस जानेपर पुरोचन उनको विश्वास रखनेवालोंकी नाईं निःशङ्क जानकर मन ही मनमें आनन्द करने लगा । कुन्तीपुत्र धर्मवीर युधिष्ठिर उसको प्रसन्न देखकर भीम, अर्जुन, नकुल और सहदेवसे बोले , कि इस पापात्मा पुरोचनने समझ लिया है, कि हममें पूरा विश्वास आगया है, सो इस कुटिलको हमने ठग लिया है; अब हमारे भागनेका काल आगया है । हम अस्त्रशालामें आग लगा करके पुरोचन

षट्प्राणिनो निधायेह द्रवामोऽनभिलक्षिताः॥ ४ ॥
वैशम्पायन उवाच–अथ दानापदेशेन कुन्ती ब्राह्मणभोजनम् ।
चक्रे निशि महाराज आजग्मुस्तत्र योषितः ॥ ५ ॥
ता विहृत्य यथाकामं भुक्त्वा पीत्वा च भारत ।
जग्मुर्निशि गृहानेव समनुज्ञाप्य माधवीम् ॥ ६ ॥
निषादी पञ्चपुत्रा तु तस्मिन्भोज्ये यदृच्छया ।
अन्नार्थिनी समभ्यागात्सपुत्रा कालचोदिता ॥ ७ ॥
सा पीत्वा मदिरां मत्ता सपुत्रा मदविह्वला ।
सह सर्वैः सुतै राजंस्तस्मिन्नेव निवेशने ॥ ८ ॥
सुष्वाप विगतज्ञाना मृतकल्पा नराधिप ।
अथ प्रवाते तुमुले निशि सुप्ते जने तदा ॥ ९ ॥
तदुपादीपयद्भीमः शेते यत्र पुरोचनः ।
ततो जतुगृहद्वारं दीपयामास पाण्डवः ॥ १० ॥
समन्ततो ददौ पश्चादग्निं तत्र निवेशने ।
ज्ञात्वा तु तद्गृहं सर्वमादीप्तं पाण्डुनन्दनाः ॥ ११ ॥
सुरुङ्गां विविशुस्तूर्णं मात्रा सार्धमरिंदमाः ।

को जलाके यहां छः मनुष्योंको छोडकर लोगोंसे छुपकर भागेंगे। (१-४)

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि महाराज ! अनन्तर कुन्तीने एक दिन दान देनेके, मिषसे रात्रिको ब्राह्मणोंको भोजन कराया, इस कामके लिये वहां की बहुत स्त्रियां वहां आई थीं। हे भारत ! स्त्रियां रात्रि को वहां पूरे सुखसे खा पीकर आनन्द पूर्वक कुन्तीकी आज्ञासे निज निज घरको पधारीं, दैववश कालकी प्रेरणासे एक बहेलिन पांच पुत्रोंके साथ मनमाने उस भोजमें खानेकी इच्छासे आई थी। हे पृथ्वीनाथ ! वह बहेलिन अपने बेटोंके साथ मदिरा पीकर उन्मत्त और नशेसे विह्वल होकर उस घरहीमें सो गयी। एकबारही अचेत होकर मरीसी वहां पडी थी। (५—९)

अनन्तर रात्रिको बडी हवा वह रही थी, और नगरके लोग सोगये थे, कि ऐसे समयमें भीमसेनने उस गृहमें जहां पुरोचन सोता था आग लगायी, आगे क्षण भरमें जतुगृहके द्वारको जलाकर अन्तमें उस गृहके चारों ओर आग लगायी। शत्रुनाशी पाण्डव चारों ओरसे गृहको जलते हुए देखकर माताके साथ बिलमें जा घुसे। अनन्तर जलती हुई

ततः प्रतापः सुमहाञ्छब्दश्चैव विभावसोः ॥ १२ ॥
प्रादुरासीत्तदा तेन बुबुधे स जनव्रजः ।
तदवेक्ष्य गृहं दीप्तमाहुः पौरा कृशाननाः ॥ १३ ॥

पौरा ऊचुः — दुर्योधनप्रयुक्तेन पापेनाऽकृतबुद्धिना ।
गृहमात्मविनाशाय कारितं दाहितं च तत्॥ १४ ॥
अहो धिग्धृतराष्ट्रस्य बुद्धिर्नातिसमञ्जसा ।
यः शुचीन्पाण्डुदायादान्दाहयामास शत्रुवत्॥१५॥
दिष्ट्या त्विदानीं पापात्मा दग्धोऽयमतिदुर्मतिः ।
अनागसः सुविश्वस्तान्यो ददाह नरोत्तमान् ॥ १६ ॥

वैशम्पायन उवाच–एवं ते विलपन्ति स्म वारणावतका जनाः ।
परिवार्य गृहं तच्च तस्थू रात्रौ समन्ततः ॥ १७ ॥
पाण्डवाश्चाऽपि ते सर्वे सह मात्रा सुदुःखिताः।
बिलेन तेन निर्गत्य जग्मुर्द्रुतमलक्षिताः ॥ १८ ॥
तेन निद्रोपरोधेन साध्वसेन च पाण्डवाः ।
न शेकुःसहसा गन्तुं सह मात्रा परंतपाः ॥ १९ ॥
भीमसेनस्तु राजेन्द्र भीमवेगपराक्रमः ।

आगका कठोर तेज और घोर शब्द फैलने लगा। उससे पुरवाले जन उस गृहको जलते देखकर मलिनमुखसे कहने लगे, कि दुर्योधनके रखे हुए कुमति पापात्मा पुरोचनने स्वजनोंको नष्ट करनेके लिये ही यह गृह बनवाया था, अब उसमें आग लगायी। हाय! धृतराष्ट्रकी बुद्धि कैसी कच्ची है! उनकी उस बुद्धिपर धिक्कार है, बुद्धिसे उन्होंने निष्पापी पाण्डु-पुत्रोंको शत्रुके सदृश जला दिया! पर जिस पापिष्ठ पुरोचनने विश्वासयुक्त और निर्दोषी नरोत्तम पाण्डवोंको जलाया, अब वह दुरात्मा अपने कर्मफलसेही जल मरा है। (९—१६)

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि वारणावतवाले इस प्रकार विलपते हुए उस रात्रिको गृहको चारों ओरसे घेरकर खडे रहे। इधर शत्रुनाशी पाण्डवलोग माताके साथ अति दुःखी चित्त होकर लोगोंसे छिपकर उस बिलसे निकलकर दृढताके साथ शीघ्र चलने लगे; पर वे सब निद्राके झोकों और भयके कारण माताके साथ एकायक शीघ्र नहीं चल सके। हे राजेन्द्र! तब भीमवेगी तथा भीम पराक्रमी भीमसेन माता और सम्पूर्ण भाईयोंको लेकर चलने लगे।

जगाम भ्रातॄनादाय सर्वान्मातरमेव च ॥ २० ॥
स्कन्धमारोप्य जननीं यमावङ्केन वीर्यवान् ।
पार्थौ गृहीत्वा पाणिभ्यां भ्रातरौ स महाबलः॥ २१ ॥
उरसा पादपान्भञ्जन्महीं पद्भ्यां विदारयन् ।
स जगामाऽऽशु तेजस्वी वातरंहा वृकोदरः ॥२२॥ [५९९७]

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यामादिपर्वणि जतुगृहपर्वणि जतुगृहदाहे पञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १५० ॥

वैशम्पायन उवाच—एतस्मिन्नेव काले तु यथासंप्रत्ययं कविः ।
विदुरः प्रेषयामास तद्वनं पुरुषं शुचिम् ॥ १ ॥
स गत्वा तु यथोद्देशं पाण्डवान्ददृशे वने ।
जनन्या सह कौरव्य मापयानान्नदीजलम् ॥ २ ॥
विदितं तन्महाबुद्धेर्विदुरस्य महात्मनः ।
ततस्तस्याऽपि चारेण चेष्टितं पापचेतसः ॥ ३ ॥
ततः प्रवासितो विद्वान्विदुरेण नरस्तदा ।
पार्थानां दर्शयामास मनोमारुतगामिनीम् ॥ ४ ॥
सर्ववातसहां नावं यन्त्रयुक्तां पताकिनीम् ।
शिवे भागीरथीतीरे नरैर्विस्रम्भिभिः कृताम् ॥ ५ ॥

अति बल वीर्यवन्त और हवाकी नाई वेगवान् तेजस्वी वृकोदर जानेके कालमें माताको कन्धेपर, नकुल और सहदेव को गोदमें और युधिष्ठिर तथा अर्जुनके हाथ पकडकर, छातीसे पेडोंको तोडते और पावोंसे धरतीको फोडते हुए चले। (१७—२२) [५९९७]

आदि पर्वमें एकसौ पचास अध्याय समाप्त

आदिपर्वमें एकसौ एकावन अध्याय ।

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि अनन्तर इस समय सर्वज्ञ विदुरने एक पवित्र मनुष्यको इस प्रकारसे, कि पाण्डवोंके मनमें उसपर विश्वास हो, उस वनको भेजा। हे कुरुनन्दन! वनमें जहां पाण्डव लोग माताके साथ नदीके जलको नाप रहे थे, विदुरके भेजे हुए पुरुषने वहां जाकर उनको देखा। अति बुद्धिमान् महात्मा विदुर गुप्त दूतके सहारे पापिष्ठ दुर्योधनके चेष्टित उन सब कामोंसे ज्ञात हुए थे, इसी हेतु उन्होंने उस विद्वज्जनको वहां भेजा था। (१—४)

उस पुरुषने तब मङ्गलमय भागीरथीके तट पर विश्वासी जनोंसे बनी, पवनके सहन हारी, यन्त्रवाली, झण्डोंसे सुहावनी

ततः पुनरथोवाच ज्ञापकं पूर्वचोदितम् ।
युधिष्ठिर निबोधेदं संज्ञार्थं वचनं कवेः ॥ ६ ॥
कक्षघ्नः शिशिरघ्नश्च महाकक्षे बिलौकसः ।
न हन्तीत्येवमात्मानं यो रक्षति स जीवति ॥ ७ ॥
तेन मां प्रेषितं विद्धि विश्वस्तं संज्ञयाऽनया ।
भूयश्चैवाऽह मां क्षत्ता विदुरः सर्वतोऽर्थवित्॥ ८ ॥
कर्णं दुर्योधनं चैव भ्रातृभिः सहितं रणे ।
शकुनिं चैव कौन्तेय विजेताऽसि न संशयः॥ ९ ॥
इयं वारिपथे युक्ता नौरप्सु सुखगामिनी ।
मोचयिष्यति वः सर्वानस्माद्देशान्न संशयः॥ १० ॥
अथ तान्व्यथितान्दृष्ट्वा सह मात्रा नरोत्तमान् ।
नावमारोप्य गङ्गायां प्रस्थितानब्रवीत्पुनः ॥ ११ ॥
विदुरो मूर्ध्न्युपाघ्राय परिष्वज्य वचो मुहुः ।
अरिष्टं गच्छताऽव्यग्राः पन्थानामिति चाऽब्रवीत्॥१२॥
इत्युक्त्वा स तु तान्वीरान्पुमान्विदुरचोदितः ।
तारयामास राजेन्द्र गंगां नावा नरर्षभान् ॥ १३ ॥

और मन या हवाकी नाईं शीघ्रगामिनी पूर्व कथित नावको उन्हें दिखाया और विश्वासके लिये कहा, कि हे युधिष्ठिर! विदुरने इशारेसे जो कुछ कहा था, वह सुनिये। कक्षनाशी और हिमनाशी वस्तु महाकक्षके बिल भीतर स्थित जनको नष्ट नहीं कर सकती हैं, इसप्रकार जो जन अपनी रक्षा कर सकता है, वह जीता रहता है। हे पाण्डव! मैं विदुरका विश्वासी और कामोंका जानकार हूं। उन्होंने मुझको इशारेकी उस बातको कहकर यहां भेज दिया है। उस बहुत देखेभाले महाशयने यहभी कह दिया है, कि हे कुन्ती-पुत्र! तुम रण स्थलमें कर्ण, भाइयों-समेत दुर्योधन तथा शकुनिको अवश्यही परास्त करोगे। अब इस में सन्देह नहीं है, कि जलमें रखी हुई, सुखसे जानेवाली इस नावपर आप इस स्थानसे बच जायंगे। (६—१०)

आगे उस पुरुषने नरोत्तम पाण्डवोंको माताके साथ दुःखीचित्त देखकर नावपर चढा करके गङ्गाजीसे उनके साथ चलने लगा और फिर बोला, कि विदुरने आपके नाम लेकर सिर चूमकर गले लगाकर बार बार कहा है, कि तुम पथमें न घबडाकर बिना विघ्न मङ्गलपूर्वक जाओ।

तारयित्वा ततो गंगां पारं प्राप्तांश्च सर्वशः।
जयाशिषः प्रयुज्याऽथ यथागतमगाद्धि सः॥ १४॥
पाण्डवाश्च महात्मानः प्रतिसंदिश्य वै कवेः।
गंगामुत्तीर्य वेगेन जग्मुर्गूढमलक्षिताः॥ १५॥ [६०१२]

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यामादिपर्वणि जतुगृहपर्वणि गंगोत्तरण एकपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः॥ १५१॥

वैशम्पायन उवाच— अथ रात्र्यां व्यतीतायामशेषो नागरो जनः।
तत्राऽऽजगाम त्वरितो दिदृक्षुः पाण्डुनन्दनान्॥ १॥
निर्वापयन्तो ज्वलनं ते जना ददृशुस्ततः।
जातुषं तद् गृहं दग्धममात्यं च पुरोचनम्॥ २॥
नूनं दुर्योधनेनेदं विहितं पापकर्मणा।
पाण्डवानां विनाशायेत्येवं ते चुक्रुशुर्जनाः॥ ३॥
विदिते धृतराष्ट्रस्य धार्तराष्ट्रो न संशयः।
दग्धवान्पाण्डुदायादान्न ह्येनं प्रतिषिद्धवान्॥ ४॥
नूनं शान्तनवोऽपीह न धर्ममनुवर्तते।
द्रोणश्च विदुरश्चैव कृपश्चाऽन्ये च कौरवाः॥ ५॥

हे राजेन्द्र! विदुरके भेजे हुए उस पुरुषने नरश्रेष्ठ वीर पाण्डवोंसे वह बात कहते हुए नावपर गङ्गाजीको पार किया; आगे उनके अन्य पारमें पहुंचनेपर वह जय जयकारके साथ उनको अशीस देकर अपने स्थानको गया। महात्मा पाण्डव लोग गङ्गाजीको पारकर उस पुरुषहीसे विदुरके यहां पलटा समाचार देकर किसीसे न देखे जाकर वेग पूर्वक जाने लगे। (११-१५) [६०१२]

आदिपर्वमें एकसौ एकावन अध्याय समाप्त।

आदिपर्वमें एकसौ बावन अध्याय।

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि अनन्तर रात्रि बीतनेपर संपूर्ण नगरवाले पाण्डवों की भेंटके लिये शीघ्रता से वहां आये! उन्होंने आग बुझाकर मंत्री पुरोचनको जतुगृहके साथ जला हुआ पाया। आगे रोते हुए चिल्लाकर कहने लगे, कि निश्चय जान पडता है, कि पापात्मा दुर्योधनने केवल पाण्डवोंको नष्ट करनेके लियेही ऐसा किया है। इसमें संदेह नहीं है, कि दुर्योधनके पाण्डवोंको जलानेके विषयमें धृतराष्ट्रकी संमति थी, उनकी संमति नहीं रहती, तो वह मना करते। और शान्तनुनन्दन भीष्म, द्रोण, विदुर, कृप और दूसरे कौरवोंनेभी इस विषयमें धर्मपर

ते वयं धृतराष्ट्रस्य प्रेषयामो दुरात्मनः ।
संवृत्तस्ते परः कामः पाण्डवान्दग्धवानसि ॥ ६ ॥
ततो व्यपोहमानास्ते पाण्डवार्थे हुताशनम् ।
निषादीं ददृशुर्दग्धां पञ्चपुत्रामनागसम् ॥ ७ ॥
खनकेन तु तेनैव वेश्म शोधयता बिलम् ।
पांसुभिः पिहितं तच्च पुरुषैस्तैर्न लक्षितम् ॥ ८ ॥
ततस्ते ज्ञापयामासुर्धृतराष्ट्रस्य नागराः ।
पाण्डवानग्निना दग्धानमात्यं च पुरोचनम् ॥ ९ ॥
श्रुत्वा तु धृतराष्ट्रस्तद्राजा सुमहदप्रियम् ।
विनाशं पाण्डुपुत्राणां विललाप सुदुःखितः ॥ १० ॥
अद्य पाण्डुर्मृतो राजा मम भ्राता महायशाः ।
तेषु वीरेषु दग्धेषु मात्रा सह विशेषतः ॥ ११ ॥
गच्छन्तु पुरुषाः शीघ्रं नगरं वारणावतम् ।
सत्कारयन्तु तान्वीरान्कुन्तिराजसुतां च ताम् ॥ १२ ॥
कारयन्तु च कुल्यानि शुभानि च बृहन्ति च ।
ये च तत्र मृतास्तेषां सुहृदो यान्तु तानपि ॥ १३ ॥

दृष्टि नहीं दी है। अब हम दुरात्मा धृतराष्ट्रसे कहे भेजते हैं, कि तुम्हारी बडी आशा पूरी हुई, तुमने पाण्डवोंको जला मारा। (१—६)

अनन्तर उन्होंने पाण्डवोंको ढूंढनेके लिये अग्निको उठा कर बुझाते हुए, पांचों पुत्रके सहित जलीभुनी बहेलिनको देखा। उस समय विदुरके भेजे हुए, उस पूर्वोक्त खनिकने उस गृहके साफ करनेके मिषसे दूसरोंके न देखनेमें उस बिलका द्वार तोप दिया। इसके अनन्तर नगरवालोंने धृतराष्ट्रके निकट जाकर यह कह सुनाया, कि पाण्डवगण मंत्री पुरोचनके साथ जल मरे हैं। राजा धृतराष्ट्र पाण्डवोंके विनाश रूपी अति अप्रिय समाचार को सुनकर दुःखीचित्तसे विलपते हुए कहने लगे, कि हाय! आज उन सब वीरोंके माता समेत जल जानेसे मेरे भाई बडे यशस्वी पाण्डु सत्यही मरे! (७—११)

कौरवलोग वारणावतमें जाकर उन वीरों और कुंतीराजपुत्रीका अग्नि संस्कार करें; मेरे कुलकी प्रथाके अनुसार जितने शुभ तथा बडे बडे कर्म हैं, उनकोभी भले प्रकार करें और जिन जिन लोगोंने वहां पर देह छोडी है, उनके बांधवभी वहां जावें। इस दशामें पाण्डव और कुंतीके

एवं गते मया शक्यं यद्यत्कारयितुं हितम्।
पाण्डवानां च कुन्त्याश्च तत्सर्वं क्रियतां धनैः॥१४॥
एवमुक्त्वा ततश्चक्रे ज्ञातिभिः परिवारितः।
उदकं पाण्डुपुत्राणां धृतराष्ट्रोऽम्बिकासुतः॥ १५॥
रुरुदुः सहिताः सर्वे भृशं शोकपरायणाः।
हा युधिष्ठिर कौरव्य हा भीम इति चाऽपरे॥१६॥
हा फाल्गुनेति चाप्यन्ये हा यमाविति चापरे।
कुन्तीमार्तांश्च शोचन्त उदकं चक्रिरे जनाः॥ १७॥
अन्ये पौरजनाश्चैवमन्वशोचन्त पाण्डवान्।
विदुरस्त्वल्पशश्चक्रे शोकं वेद परं हि सः॥ १८॥
पाण्डवाश्चाऽपि निर्गत्य नगराद्वारणावतात्।
नदीं गङ्गामनुप्राप्ता मातृषष्ठा महाबलाः॥ १९॥
दाशानां भुजवेगेन नद्याः स्रोतोजवेन च।
वायुना चाऽनुकूलेन तूर्णं पारमवाप्नुवन्॥ २०॥
ततो नावं परित्यज्य प्रययुर्दक्षिणां दिशम्।
विज्ञाय निशि पन्थानं नक्षत्रगणसूचितम्॥ २१॥
यतमाना वनं राजन्गहनं प्रतिपेदिरे।

लिये जितने हितकार्य हो सकें, सब धनके सहारे कर डालें। (१२-१४)

अम्बिका पुत्रने ऐसा कहकर ज्ञातियोंके साथ पाण्डवोंकी जलक्रिया की। सब कौरव एकत्र मिलकर अति शोकसे हाय हाय कर रोने लगे। किसीने हा कुल भूषण युधिष्ठिर! किसीने हा भीम! किसीने हा फाल्गुन! किसीने हा नकुल! हा सहदेव! अथवा किसीने हा कुंति! इस प्रकार कातर स्वरसे शोक करते हुए, उदकक्रिया पूरी की और दूसरे पुरवासी पाण्डवोंके शोकसे बहुत कातर हुए। विदुर अल्पशोक दिखाने लगे, क्योंकि वह सच्चे समाचार जानते थे। (१५-१८)

इधर महाबली पाण्डवगण माताके साथ वारणावत नगरसे निकल करके गङ्गाजीके किनारे जाकर मल्लाहोंके भुजबल, सोतेके वेग और सहाय वायुके सहारे बडे शीघ्र अन्यपारको जा पहुंचे। वे नौकाको छोड कर रात्रिको तारोंके सहारे पथ जानकर दक्षिण ओर चलने लगे। हे राजन्! उनकी बडी बडी चेष्टासे अन्तको एक गहन वन मिला।

ततः श्रान्ताः पिपासार्ता निद्रान्धाः पाण्डुनन्दनाः २२
पुनरूचुर्महावीर्यं भीमसेनामिदं वचः ।
इतः कष्टतरं किं नु यद्वयं गहने वने ॥
दिशश्च न विजानीमो गन्तुं चैव न शक्नुमः ॥ २३ ॥
तं च पापं न जानीमो यदि दग्धः पुरोचनः ।
कथं तु विप्रमुच्येम भयादस्मादलक्षिताः ॥ २४ ॥
पुनरस्मानुपादाय तथैव व्रज भारत ।
त्वं हि नो बलवानेको यथा सततगस्तथा ॥ २५ ॥
इत्युक्तो धर्मराजेन भीमसेनो महाबलः ।
आदाय कुन्तीं भ्रातृंश्च जगामाऽऽशु महाबलः २६ [६०३८]

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यामादिपर्वणि जतुगृहपर्वणि
पाण्डववनप्रवेशे द्विपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १५२ ॥

वैशम्पायन उवाच—तेन विक्रममाणेन ऊरुवेगसमीरितम् ।
वनं सवृक्षविटपं व्याघूर्णितमिवाऽभवत् ॥ १ ॥
जङ्घावातो ववौ चाऽस्य शुचिशुक्रागमे यथा ।
आवर्जितलतावृक्षं मार्गं चक्रे महाबलः ॥ २ ॥

तब नींदसे अन्धे थके और प्यासे पाण्डवोंने भीमसेनसे कहा, कि देखो इससे अधिक और क्या कष्ट हो सकता है, कि हम इस सघन वनमें आपडे हैं, अब न तो दिशा निश्चय होती हैं और न चल सकते हैं। नहीं जानते वह पापात्मा पुरोचन जला वा नहीं;वह जलभी गया हो, तो हम औरोंके विना देखे क्योंकर इस गहरी विपतसे पार होंगे? हे भारत! अकेले तुम्ही हम सबोंसे बली और पवनसम वेगवान हो. सो फिर हम सबोंको पूर्ववत ले चलो। धर्मराजके ऐसा कहनेपर महाबली भीमसेन कुंती और भ्राताओंको लेकर शीघ्र चलने लगे। (१९ —२६) [६०३८]

आदिपर्वमें एकसौ बावनअध्याय समाप्त

आदिपर्वमें एकसौ तिरपन अध्याय।

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि महाबली भीमसेनके जानेके कालमें शाखापल्लवोंसे भरा हुआ, वह वन उनकी उरुकी चोटसे डोलता हुआ, मानो घूमने लगा। जिस प्रकार जेठ और आषाढ महीनोंमें प्रबल हवा बहती रहती है, वैसेही उन महाबली की जांघकी चोटसे पवन सनसनाने लगी; इससे निकटकी लता और वृक्ष टूट फूटकर अच्छा पथ बनने लगा।

स मृद्नन्पुष्पितांश्चैव फलितांश्च वनस्पतीन् ।
अवरुज्य ययौ गुल्मान्पथस्तस्य समीपजान्॥ ३ ॥
सरोषित इव क्रुद्धो वने भञ्जन्महाद्रुमान् ।
त्रिः प्रस्रुतमदः शुष्मी षष्टिवर्षी मतङ्गराट् ॥ ४ ॥
गच्छतस्तस्य वेगेन तार्क्ष्यमारुतरंहसः ।
भीमस्य पाण्डुपुत्राणां मूर्च्छेव समजायत ॥ ५ ॥
असकृच्चाऽपि संतीर्य दूरपारं भुजप्लवैः ।
पथि प्रच्छन्नमासेदुर्धार्तराष्ट्रभयात्तदा ॥ ६ ॥
कृच्छ्रेण मातरं चैव सुकुमारीं यशस्विनीम् ।
अवहत्स तु पृष्ठेन रोधःसु विषमेषु च ॥ ७ ॥
अगमच्च वनोद्देशमल्पमूलफलोदकम् ।
क्रूरपक्षिमृगं घोरं सायाह्ने भरतर्षभ ॥ ८ ॥
घोरा समभवत्सन्ध्या दारुणा मृगपक्षिणः।
अप्रकाशा दिशः सर्वा वातैरासन्ननार्तवैः ॥ ९ ॥
शीर्णपर्णफलै राजन्बहुगुल्मक्षुपैर्द्रुमैः ।
भग्नावभुग्नभूयिष्ठैर्नानाद्रुमसमाकुलैः ॥ १० ॥
ते श्रमेण च कौरव्यास्तृष्णया च प्रपीडिताः।

वह उस पथके निकटके फूल फलवाले वनस्पति और लतायोंको खूंदते हुए, चलने लगे। गर्दन आदि तीन प्रकारके अङ्गोंसे गलित अहंकृत साठ वर्ष अवस्थायुक्त, क्रोधित गजराज जिस प्रकार वनके बडे बडे पेडोंको तोडता हुआ चला जाता है, वैसेही वह बडे बडे पेडोंको तोडते हुए, चलने लगे। (१--४)

गरुड और पवन समान वेगवान भीमसेनकी गतिके वेगसे युधिष्ठिर आदि अचेतनकी भांति होगये थे। वह दोनों भुजरूपी पल्लवोंसे पथमें गङ्गाजीकी बहती धारको बार बार पार कर दुर्योधनके भयसे छिपकर गये थे। नदीतटके ऊंचे नीचे स्थानमें यशस्विनी कोमलाङ्गी माताको पीठपर लेकर वह अति कष्टसे चले। हे भरतश्रेष्ठ! अनन्तर ऐसे निर्जन वनमें जहां फलफूल जल मिलते नहीं हैं और हिंसक प्राणी हैं,संध्याके समय आन पहुंचे। वहां गाढी अंधेरीसे भरी सन्ध्या-आयी। भयावने पशुपक्षियोंके शब्द सुनाई देने लगे और दिशायें देखी नहीं गयीं, और बडी प्रचण्ड अकालिक पवन बह रही थी; उससे वहांके गले सडे

नाऽशक्नुवंस्तदा गन्तुं निद्रया च प्रवृद्धया ॥ ११ ॥
न्यविशन्त हि ते सर्वे निरास्वादे महावने ।
ततस्तृषापरिक्लान्ता कुन्ती पुत्रानथाऽब्रवीत्॥ १२ ॥
माता सती पाण्डवानां पञ्चानां मध्यतः स्थिता ।
तृष्णया हि परीतास्मि पुत्रान्भृशमथाऽब्रवीत्॥१३॥
तच्छ्रुत्वा भीमसेनस्य मातृस्नेहात्प्रजल्पितम् ।
कारुण्येन मनस्तप्तं गमनायोपचक्रमे ॥ १४ ॥
ततो भीमो वनं घोरं प्रविश्य विजनं महत् ।
न्यग्रोधं विपुलच्छायं रमणीयं ददर्श ह ॥ १५ ॥
तत्र निक्षिप्य तान्सर्वानुवाच भरतर्षभः ।
पानीयं मृगयामीह विश्रमध्वमिति प्रभो ॥ १६ ॥
एते रुवन्ति मधुरं सारसा जलचारिणः ।
ध्रुवमत्र जलस्थानं महच्चेति मतिर्मम ॥ १७ ॥
अनुज्ञातः स गच्छेति भ्रात्रा ज्येष्ठेन भारत ।
जगाम तत्र यत्र स्म सारसा जलचारिणः ॥ १८ ॥
स तत्र पीत्वा पानीयं स्नात्वा च भरतर्षभ ।

पत्ते और सूखे फलवाले छोटे बडे पेड तथा लता कुछ टूटने और कुछ नीचे गिरने लगीं; तब कौरवलोग नींदसे जकडे थके और प्यासे बने, आगे चल नहीं सके, पानभोजन— रहित हो कर उस बडे भारी वन ही में बैठ गये । (५–१२)

आगे कुन्ती प्यासके मारे विकल पुत्रोंसे बोली, कि मैं पांच पाण्डवोंकी माता होकर पांचों पाण्डवोंके बीचमें रह करके भी जल की प्याससे कातर हो गयी ! कुन्ती बार बार यह कहने लगी। भीमसेनका हृदय उसे सुनकर मातृस्नेह तथा करुण भावसे पूरित हुआ । वह फिर चलने लगे । उसके अनन्तर निर्जन घोर महावनमें प्रवेशकर दूरतक छांह देनेवाले एक सुन्दर बडको देखा । हे प्रभो ! भरतश्रेष्ठ भीमसेन उन सबों को वहां उतारकर बोले, कि आप यहां विराजें मैं जल ढूंढ लाऊं । यहां जलमें चरनेवाले सारस पक्षियों का मीठा शब्द सुन पडता है, मुझको जान पडता है, कि यहां बडा जलाशय होगा । आगे वह बडे भाईकी आज्ञासे उधरको चले, जिधर जलमें चलनेवाले पक्षियोंकी ध्वनि सुनी जाती थी । (१२—१८)

तेषामर्थे च जग्राह भ्रातॄणां भ्रातृवत्सलः ।
उत्तरीयेण पानीयमानयामास भारत ॥ १९ ॥
गव्यूतिमात्रादागत्य त्वरितो मातरं प्रति ।
शोकदुःखपरीतात्मा निश्शश्वासोरगो यथा ॥ २० ॥
स सुप्तां मातरं दृष्ट्वा भ्रातॄंश्च वसुधातले ।
भृशं शोकपरीतात्मा विललाप वृकोदरः ॥ २१ ॥
अतः कष्टतरं किं नु द्रष्टव्यं हि भविष्यति ।
यत्पश्यामि महीसुप्तान्भ्रातॄनद्य सुमन्दभाक् ॥२२॥
शयनेषु पराध्र्येषु ये पुरा वारणावते ।
नाऽधिजग्मुस्तदा निद्रां तेऽद्य सुप्ता महीतले ॥२३॥
स्वसारं वसुदेवस्य शत्रुसङ्घावमर्दिनः ।
कुन्तिराजसुतां कुन्तीं सर्वलक्षणपूजिताम् ॥ २४ ॥
स्नुषां विचित्रवीर्यस्य भार्यां पाण्डोर्महात्मनः ।
तथैव चाऽस्मज्जननीं पुण्डरीकोदरप्रभाम् ॥ २५ ॥
सुकुमारतरामेनां महार्हशयनोचिताम् ।
शयानां पश्यताऽद्येह पृथिव्यामतथोचिताम् ॥ २६ ॥

हे भरतश्रेष्ठ ! उन्होंने वहां जाकर नहा करके जल पीया । आगे भ्रातृप्रिय भीम भाइयोंके लिये दुपट्टे में जल लेकर लौट चले । अनन्तर वेगसे उन दो कोसोंकी दूरीसे लौट आकर माताकी ओर देखकर शोक और दुःखके मारे विह्वल होकर उरग की भांति लम्बी शांस छोडी । वृकोदर माता और भाई-योंको धरती पर पडे और सोये देखकर अतिशोकसे विलपने लगे, कि इससे और अधिक कष्ट क्या होना है, कि मुझ दुर्भाग्यको भाईयोंको धरती पर सोते हुए देखना पडता है ! (१९–२२)

पहिले वारणावत नगरमें बडे बडे मूल्यके बिस्तरोंपर जिनको नींद नहीं आती थी, आज वे मिट्टी पर पडकर सोते हैं । देखो जो शत्रुदल के नाशने-वाले वसुदेवकी बहिन राजा कुन्तीराज की बेटी, विचित्रवीर्यकी पुत्रवधू, महा-त्मा राजा पाण्डुकी स्त्री और हमारी माता हैं, जो सर्व अच्छे लक्षणोंसे सुशो-भित पद्म-गर्भ सदृश रूपवती, बडी को-मलाङ्गी और बडे मूल्यवान बिस्तरों पर सोने योग्य हैं, क्या उस कुन्तीको आज मिट्टी पर सोना सजता है ? जिन्होंने धर्म, इन्द्र और पवन इन सब

धर्मादिन्द्राच्च वाताच्च सुषुवे या सुतानिमान् ।
सेयं भूमौ परिश्रान्ता शेते प्रासादशायिनी॥ २७ ॥
किं नु दुःखतरं शक्यं मया द्रष्टुमतःपरम् ।
योऽहमद्य नरव्याघ्रान्सुप्तान्पश्यामि भूतले॥ २८ ॥
त्रिषु लोकेषु यो राज्यं धर्मनित्योऽर्हते नृपः।
सोऽयं भूमौ परिश्रान्तः शेते प्राकृतवत्कथम्॥ २९ ॥
अयं नीलाम्बुदश्यामो नरेष्वप्रतिमोऽर्जुनः ।
शेते प्राकृतवद्भूमौ ततो दुःखतरं नु किम् ॥ ३० ॥
अश्विनाविव देवानां याविमौ रूपसंपदा ।
तौ प्राकृतवदद्येमौ प्रसुप्तौ धरणीतले ॥ ३१ ॥
ज्ञातयो यस्य वै न स्युर्विषमाः कुलपांसनाः ।
स जीवेत सुखं लोके ग्रामद्रुम इवैकजः ॥ ३२ ॥
एको वृक्षो हि यो ग्रामे भवेत्पर्णफलान्वितः ।
चैत्यो भवति निर्ज्ञातिरर्चनीयः सुपूजितः ॥ ३३ ॥
येषां च बहवः शूरा ज्ञातयो धर्ममाश्रिताः ।
ते जीवन्ति सुखं लोके भवन्ति च निरामयाः॥ ३४ ॥

देवोंसे यह सब सन्तान प्राप्त की हैं और सदासे बडे बडे भवनोंमें सोती आई हैं, वह आज थकावटके मारे धरती पर लौटती हैं! फिर इससे मेरे लिये और कौन दुःख देखा जायगा, कि मैं आज इन पुरुषोत्तमोंको मिट्टी के बिछौने पर पडे हुए देखता हूं। (२३-२८)

धार्मिकवर राजा युधिष्ठिर जो तीनों लोकों के अकेले अधिकारी होनेके योग्य हैं, हाय! वह आज क्यों कर सामान्य जनकी भांति थकावटके मारे मिट्टी पर सोते हैं! इससे और क्या अधिक दुःख होना है कि, नीले बादल समान श्रीमान अर्जुन, जिनकी बराबरी करने वाला इस मर्त्यलोकमें कोई नहीं है, आज छोटेसे मनुष्यकी नाई मिट्टी पर पडे हैं! और यह दो जिल्हे भाई जो रूप सम्पदमें देवोंमें अश्विनीकुमारोंके सदृश द्युतिमान् हैं, वे साधारण लोगों की भांति धरती पर लोट रहे हैं! जिसके कुल नाशी भयानक ज्ञाति अर्थात् पटैत नहीं हैं, वह ग्रामके वृक्ष ऐसा अकेला सुखसे दिन काट सकता है। (२९-३२)

देखो, ग्राम भरमें ज्ञातियोंसे खाली फल पत्रोंसे सुशोभित एकही वृक्ष रहे तो, वह वृक्ष चैत्य करके भले प्रकार पूजा

बलवन्तः समृद्धार्था मित्रबान्धवनन्दनाः ।
जीवन्त्यन्योन्यमाश्रित्य द्रुमाः काननजा इव ॥३५॥
वयं तु धृतराष्ट्रेण सपुत्रेण दुरात्मना ।
विवासिता न दग्धाश्च कथंचिद्दैवसंश्रयात्॥ ३६ ॥
तस्मान्मुक्ता वयं दाहादिमं वृक्षमुपाश्रिताः ।
कां दिशं प्रतिपत्स्यामः प्राप्ताः क्लेशमनुत्तमम्॥३७॥
सकामो भव दुर्बुद्धे धार्तराष्ट्राऽल्पदर्शन ।
नूनं देवाः प्रसन्नास्ते नाऽनुज्ञां मे युधिष्ठिरः ॥३८॥
प्रयच्छन्ति वधे तुभ्यं तेन जीवसि दुर्मते ।
नन्वद्य ससुतामात्यं सकर्णानुजसौबलम् ॥ ३९ ॥
गत्वा क्रोधसमाविष्टः प्रेषयिष्ये यमक्षयम् ।
किं तु शक्यं मया कर्तुं यत्ते न क्रुध्यते नृपः ॥४०॥
धर्मात्मा पाण्डवश्रेष्ठः पापाचार युधिष्ठिरः ।
एवमुक्त्वा महाबाहुः क्रोधसंदीप्तमानसः ॥ ४१ ॥
करं करेण निष्पिष्य निःश्वसन्दीनमानसः ।
पुनर्दीनमना भूत्वा शान्तार्चिरिव पावकः ॥ ४२॥

जाता है, अथवा इस भूलोकमें जिनके धार्मिक वीर वर बहुत ज्ञाति रहते हैं, वे भी विना क्लेश सुखसे काल काटते हैं और बहुतेरेभी बली ऐश्वर्ययुक्त और मित्र बान्धवोंको आनन्द देते हुए वनमें उपजे हुए वृक्षोंकी भांति एक दूसरेके सहारे परम सुखसे काल व्यतीत करते हैं,पर कुबुद्धि धृतराष्ट्र और दुर्योधनने हमको खदेडा है ; किन्तु दैववश हम किसी तरह जलनेसे बचे। उस आगसे बचकर कठोर क्लेश भोगते हुए इस वृक्ष के आसरेमें आये हैं, अब फिर किधर जावें ! (३३—३७)

रे कुबुद्धे ! अल्पदर्शिन् ! धृतराष्ट्रपुत्र! तू अब अपनी आशा पूरीकर। सन्देह नहीं है, कि तुझपर देवगण प्रसन्न हैं। रे कुमते ! युधिष्ठिर तुझे मार डालनेकी आज्ञा नहीं देते, इस लिये तू जीता है ! क्या आजही मैं कोपाविष्ट होकर तुझको बेटा, मन्त्री, कर्ण, छोटे भाईलोग और शकुनिके साथ यमराजके घर नहीं भेज सकता ? पर क्या करूं, धर्मात्मा पाण्डवोंमें श्रेष्ठ राजा युधिष्ठिर तुझ पर क्रोधित नहीं होते हैं ! (३८-४१)

महाभुज वृकोदरने इस प्रकार क्रोधके मारे चित्तको मलिन करके हाथसे हाथ

भ्रातॄन्महीतले सुप्तानवेक्षत वृकोदरः ।
विश्वस्तानिव संविष्टान्पृथग्जनसमानिव ॥ ४३ ॥
नाऽतिदूरेण नगरं वनादस्माद्धि लक्षये ।
जागर्तव्ये स्वपन्तीमे हन्त जागर्म्यहं स्वयम्॥ ४४ ॥
पास्यन्तीमे जलं पश्चात्प्रतिबुद्धा जितक्लमाः ।
इति भीमो व्यवस्यैव जजागार स्वयं तदा॥ ४५ ॥ [६०८३]

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यामादिपर्वणि जतुगृहपर्वणि भीमजलाहरणे त्रिपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः ॥१५३॥ समाप्तं च जतुगृहपर्व ।

अथ हिडिम्बवधपर्व ।

तत्र तेषु शयानेषु हिडिम्बो नाम राक्षसः ।
अविदूरे वनात्तस्माच्छालवृक्षं समाश्रितः ॥ १ ॥
क्रूरो मानुषमांसादो महावीर्यपराक्रमः ।
प्रावृड्जलधरश्यामः पिङ्गाक्षो दारुणाकृतिः॥ २ ॥
दंष्ट्राकरालवदनः पिशितेप्सुः क्षुधार्दितः ॥
लम्बस्फिग्लम्बजठरो रक्तश्मश्रुशिरोरुहः ॥ ३ ॥
महावृक्षगलस्कन्धः शंकुकर्णो बिभीषणः ।

रगड दुखके मारे लम्बी श्वांस छोडी ; आगे बुझी हुई आगकी नाई फिर दीन चित्तसे भाइयोंकी ओर देखकर सोचने लगे, कि यह लोग विश्वाससे साधारण जनोंकी भांति सो रहे हैं। मुझको जान पडता है, कि इस वनके पासही नगर है, जो जागना चाहिये ; पर ये सोगये हैं, सो मैं जग रहूं। इनकी थकावट दूर होनेसे जब यह जागंगे, तब जल पीयें-गे ! भीमसेन तब ऐसा निश्चय कर स्वयं जागने लगे। (४१—४५) [६०८३]

आदिपर्वमें एकसौ तिरपन अध्याय और जतुगृहपर्व समाप्त।

आदिपर्वमें एकसौचौवन अध्याय। हिडिंबवधपर्व।

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि वे जहां सोते थे, वहांसे थोडी दूर पर एक सालके वृक्षपर नरमांस पर जीता हुआ बडा वीर्यवन्त अति पराक्रमी वर्षाके बादलकी भांति काला, देखने में भयानक और भूखा हिडिम्ब नामक एक कुटिल राक्षस था। उस मांसभोजीका जङ्घामूल और पेट बहुत बडा, दोनों नेत्र पिघले, दाढी और केश लाल, मुख बडे बडे दांतोंसे बडा विकराल, गला और गर्दन बडे वृक्षके कन्धेकी नाई और दोनों कान शङ्कुकी भांति थे। देखनेमें बडा भयानक

यदृच्छया तानपश्यत्पाण्डुपुत्रान्महारथान् ॥ ४ ॥
विरूपरूपः पिङ्गाक्षः करालो घोरदर्शनः ।
पिशितेप्सुः क्षुधार्तश्च तानपश्यद्यदृच्छया ॥ ५ ॥
ऊर्ध्वाङ्गुलिः स कण्डूयन्धुन्वन्रूक्षाञ्शिरोरुहान्।
जृम्भमाणो महावक्त्रः पुनः पुनरवेक्ष्य च ॥ ६ ॥
हृष्टो मानुषमांसस्य महाकायो महाबलः ।
मेघसंघातवर्ष्मा च तीक्ष्णदंष्ट्रोज्ज्वलाननः ॥ ७ ॥
आघ्राय मानुषं गन्धं भगिनीमिदमब्रवीत् ॥ ८ ॥
उपपन्नश्चिरस्याऽद्य भक्ष्योऽयं मम सुप्रियः।
स्नेहस्रवान्प्रस्रवति जिह्वा पर्येति मे मुखम् ॥ ९ ॥
अष्टौ दंष्ट्राः सुतीक्ष्णाग्राश्चिरस्याऽऽपातदुःसहाः ।
देहेषु मज्जयिष्यामि स्निग्धेषु पिशितेषु च॥ १० ॥
आक्रम्य मानुषं कण्ठमाच्छिद्य धमनीमपि ।
उष्णं नवं प्रपास्यामि फेनिलं रुधिरं बहु ॥ ११ ॥
गच्छ जानीहि के त्वेते शेरते वनमाश्रिताः ।
मानुषो बलवान्गन्धो घ्राणं तर्पयतीव मे ॥ १२ ॥

उस बेढब पिंगल आंखयुक्त मांसखोर भूखे करालरूप राक्षसकी दृष्टि एकायक सोते हुए पाण्डवों पर जापडी । बडा भारी, अति बली, घने बादलके समान, कटीले दांत वाला और जलता हुआ मुखयुक्त वह मांसखोर मनुष्योंकी गन्ध सूंघकर उंगली उठाकर सिर खुजलाता रूखे केश डुलाता लम्बा चौडा मुह खोल बार बार उनको देखता हुआ नरमांस खानेकी आशासे बहिनसे बोला, कि बहुत दिन पर आज मेरा बडा प्यारा खाना आ पहुंचा है ; मांसखानेका सुख आने पर मेरी जीभसे रस गिर रहा है । मेरे आठ दातोंका अगला भाग बडा तेज है ; यह बडे दांत जिस पर जा लगते हैं, इनकी चोट उससे सही नहीं जाती ; उन दातोंको आज बहुत दिनपर कोमल मांसवाली देहमें धुसाऊंगा । आज मैं मनुष्यका गला पकड नसें निकाल बहुत गर्म घना रक्त पीऊंगा । तुम वहां जाओ और जानो, कि वे कौन,क्यों इस वनमें सोते हैं ? मुझको निश्चय जान पडता है, कि वे मनुष्य होंगे ; क्योंकि मनुष्यकी तेज गन्ध मेरी नाकको सुख पहुंचा रही है, सो तुम उन मनुष्योंको मार कर मेरे पास लेती आओ । वे मेरे

हत्वैतान्मानुषान्सर्वानानयस्व ममाऽन्तिकम्।
अस्मद्विषयसुप्तेभ्यो नैतेभ्यो भयमस्ति ते ॥ १३ ॥
एषामुत्कृत्य मांसानि मानुषाणां यथेष्टतः।
भक्षयिष्याव सहितौ कुरु तूर्णं वचो मम ॥ १४ ॥
भक्षयित्वा च मांसानि मानुषाणां प्रकामतः।
नृत्याव सहितावावां दत्ततालावनेकशः ॥ १५ ॥
एवमुक्ता हिडिम्बा तु हिडिम्बेन तदा वने।
भ्रातुर्वचनमाज्ञाय त्वरमाणेव राक्षसी ॥
जगाम तत्र यत्र स्म पाण्डवा भरतर्षभ ॥ १६ ॥
ददर्श तत्र सा गत्वा पाण्डवान्पृथया सह।
शयानान्भीमसेनं च जाग्रतं त्वपराजितम् ॥ १७ ॥
दृष्ट्वैव भीमसेनं सा शालपोतमिवोद्गतम्।
राक्षसी कामयामास रूपेणाऽप्रतिमं भुवि ॥ १८ ॥
अयं श्यामो महाबाहुः सिंहस्कन्धो महाद्युतिः।
कम्बुग्रीवः पुष्कराक्षो भर्ता युक्तो भवेन्मम ॥ १९ ॥
नाऽहं भ्रातुर्वचो जातु कुर्यां क्रूरोपसंहितम्।
पतिस्नेहोऽतिबलवान्न तथा भ्रातृसौहृदम् ॥ २० ॥
मुहूर्तमेव तृप्तिश्च भवेद्भ्रातुर्ममैव च ।

अधिकारमें सो रहे हैं, उनसे तुम कुछ भय मत खाना। हम दोनों एकत्र होकर उन मनुष्योंकी देहसे मांस चुन चुन कर मन माना खावेंगे, तुम तुरन्त मेरी बात मानकर काम करो। आज हम मन माना मांस खाकर दोनों एकत्र होकर भांति भांतिके ताल देते हुए नाचेंगे। (१—१५)

तब राक्षसी हिडिम्बा हिडिम्बकी यह बात सुनकर जहां पाण्डवलोग विराजते थे, वहां झट चली गयी और पहुंचकर देखा, कि पाण्डवलोग और पृथा सोती हैं और अपराजित भीमसेन जागते हैं। राक्षसी नये सालवृक्षके समान उदित और धरती भरमें अनुपम रूप सौन्दर्य युक्त सुन्दर पुरुष भीमसेन को देखते ही कामदेवके वशमें हो गयी और समझा; कि यह श्यामवर्ण महाभुज सिंह गर्दन अति द्युतिमान शङ्खग्रीव पद्मनेत्र पुरुष मेरे पति होनेके योग्य हैं। मैं कभी निष्ठुर भाईकी बात न मानूंगी, क्योंकि पतिपर स्नेह जितना बल करता है, उतना

हतैरेतैरहत्वा तु मोदिष्ये शाश्वतीः समाः ॥ २१ ॥
सा कामरूपिणी रूपं कृत्वा मानुषमुत्तमम् ।
उपतस्थे महाबाहुं भीमसेनं शनैः शनैः ॥ २२ ॥
लज्जमानेव ललना दिव्याभरणभूषिता ।
स्मितपूर्वमिदं वाक्यं भीमसेनमथाऽब्रवीत् ॥ २३ ॥
कुतस्त्वमसि संप्राप्तः कश्चाऽसि पुरुषर्षभ ।
क इमे शेरते चेह पुरुषा देवरूपिणः ॥ २४ ॥
केयं वै बृहती श्यामा सुकुमारी तवाऽनघ ।
शेते वनमिदं प्राप्य विश्वस्ता स्वगृहे यथा ॥ २५ ॥
नेदं जानाति गहनं वनं राक्षससेवितम् ।
वसति ह्यत्र पापात्मा हिडिम्बो नाम राक्षसः ॥२६ ॥
तेनाऽहं प्रेषिता भ्रात्रा दुष्टभावेन रक्षसा ।
बिभक्षयिषता मांसं युष्माकममरोपमाः ॥ २७ ॥
साऽहं त्वामभिसंप्रेक्ष्य देवगर्भसमप्रभम् ।
नाऽन्यं भर्तारमिच्छामि सत्यमेतद्ब्रवीमि ते ॥ २८ ॥
एतद्विज्ञाय धर्मज्ञ युक्तं मयि समाचर ।

भाईपर कभी नहीं करता, और इनकोमार-नेसेभी भइया और मुझको क्षणभर सुख मिलेगा, पर न मारनेसे सदा इनसे आनन्द की उमङ्गमें बडा सुख पा सकूंगी। १५–२१

ऐसा समझकर कामरूपी राक्षसी सुन्दर मानवीरूप धरकर महाभुज भीम-सेनके पास धीरे धीरे जा पहुंची । आगे सुन्दर आभूषणोंसे सजी हुई वह राक्षसी नम्र भावसे लज्जिता सी कुछ मुसकिराती हुई भीमसेनसे बोली, कि हे पुरुषश्रेष्ठ ! आप कौन हैं, कहांसे आये हैं ! और जो यह देवरूपी पुरुषगण सोये हैं, वे कौन हैं ? हे अनघ ! यह जो तप्त सुवर्णके रङ्गकी कोमलांगी रमणी घरमें रहनेकी भांति विश्वास पूर्वक इस वनमें लेटकर सो रही हैं, यह आपकी कौन लगती हैं ! क्या वह नहीं जानती, कि इस वनमें राक्षस रहते हैं, यहां हिडिम्ब नामक पापात्मा राक्षस वसाता है, वह राक्षस मेरा भाई है । (२२—२६)

हे देववत् मनुष्यगण ! उस मांस भोजीने आपके मांस भोजन करनेके लिये बुरे अभिप्रायसे मुझे भेज दिया है, पर मैं आपसे सच कहती हूं, कि देववत् आपको देखकर आपके बिना किसी दूसरेको पति बनाना नहीं चाहती । हे

कामोपहतचित्ताङ्गीं भजमानां भजस्व माम् ॥ २९ ॥
त्रास्यामि त्वां महाबाहो राक्षसात्पुरुषादकात्।
वत्स्यावो गिरिदुर्गेषु भर्ता भव ममाऽनघ ॥ ३० ॥
अन्तरिक्षचरी ह्यस्मि कामतो विचरामि च ।
अतुलामाप्नुहि प्रीतिं तत्र तत्र मया सह ॥ ३१ ॥

भीमसेन उवाच मातरं भ्रातरं ज्येष्ठं सुखसुप्तान्कथं त्विमान् ।
परित्यजेत को न्वद्य प्रभवन्निह राक्षसि ॥ ३२ ॥
को हि सुप्तानिमान्भ्रातॄन्दत्त्वा राक्षसभोजनम्।
मातरं च नरो गच्छेत्कामार्त इव मद्विधः ॥ ३३ ॥

राक्षस्युवाच —यत्ते प्रियं तत्करिष्ये सर्वानेतान्प्रबोधय ।
मोक्षयिष्याम्यहं कामं राक्षसात्पुरुषादकात् ॥ ३४ ॥

भीम उवाच — सुखसुप्तान्वने भ्रातॄन्मातरं चैव राक्षसि ।
न भयाद्बोधयिष्यामि भ्रातुस्तव दुरात्मनः ॥ ३५ ॥
न हि मे राक्षसा भीरु सोढुं शक्ताः पराक्रमम् ।
न मनुष्या न गन्धर्वा न यक्षाश्चारुलोचने ॥ ३६ ॥

धर्मशील ! इसपर ध्यान देकर मुझपर यथोचित व्यवहार करिये, मेरा मन और अंग सब कामके बाणसे घायल हुए हैं। मैं आपको भज रही हूं, आप मुझपर कृपा करो। हे महाभुज ! मैं आपको इस पुरुष-भोजी राक्षससे बचाऊंगी । हे अनघ ! आप मेरे पति होवें। हम दोनों पहाड पर दुर्ग में रहेंगे । मैं आकाशमें उडनेवाली हूं; इच्छानुसार आकाशादि सब स्थानोंमें चलती फिरती हूं, आप मेरे सङ्ग उन सब स्थानोंमें घूमकर अपार आनन्द लूटेंगे। (२७–३१)

भीमसेन बोले, कि राक्षसि ! इन्द्रिय निग्रहवाले मुनिके समान कौन माता और बडे तथा छोटे भाईयोंको त्याग कर सकता है ? और मेरे सदृश कौन मनुष्य कामसे पीडितकी भांति सुखसे छोटे भाई और माताको राक्षसके भोजनके लिये छोडकर चला जा सकता है ? राक्षसी बोली, कि आप जैसा चाहेंगे मैं वही करूंगी; आप इनको जगावैं, मैं सहजही में सबोंको मनुष्यखोर राक्षसके हाथसे मुक्त कर दूंगी। भीमसेन बोले, कि हे राक्षसि ! तुम्हारे दुरात्मा भाई के भयसे इस वनमें सुखसे सोये हुए भाइयों और माताको नहीं जगा सकूंगा। हे भीरु सुनेत्रे ! मनुष्य, गन्धर्व, यक्ष वा राक्षसमें कोईभी मेरा पराक्रम सह नहीं सकता

गच्छ वा तिष्ठ वा भद्रे यद्वाऽपीच्छसि तत्कुरु ।
तं वा प्रेषय तन्वाङ्गि भ्रातरं पुरुषादकम्॥ ३७ ॥ [६१२०]

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यामादिपर्वणि हिडिम्बवधपर्वणि
हिडिम्बाभीमसंवादे चतुःपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १५४ ॥

वैशम्पायन उवाच—तां विदित्वा चिरगतां हिडिम्बो राक्षसेश्वरः।
अवतीर्य द्रुमात्तस्मादाजगामाऽऽशु पाण्डवान्॥ १ ॥
लोहिताक्षो महाबाहुरूर्ध्वकेशो महाननः ।
मेघसङ्घातवर्ष्मा च तीक्ष्णदंष्ट्रो भयानकः ॥ २ ॥
तमापतन्तं दृष्ट्वैव तथा विकृतदर्शनम् ।
हिडिम्बोवाच वित्रस्ता भीमसेनमिदं वचः ॥ ३ ॥
आपतत्येष दुष्टात्मा संक्रुद्धः पुरुषादकः ।
साऽहं त्वां भ्रातृभिः सार्धं यद्ब्रवीमि तथा कुरु॥ ४ ॥
अहं कामगमा वीर रक्षोबलसमन्विता ।
आरुहेमां मम श्रोणिं नेष्यामि त्वां विहायसा॥ ५ ॥
प्रबोधयैतान्संसुप्तान्मातरं च परंतप ।
सर्वानेव गमिष्यामि गृहीत्वा वो विहायसा ॥ ६ ॥

है । हे भद्रे ! तुम चाहे जाओ वा रहो, अथवा तुम जो चाहती हो करो, किंवा हे सुन्दरि ! तुम अपने उस पुरुषभोजी भाईको भेजो; मैं न तो कोई विधि कहूंगा और न मना करूंगा।(३२-३७)[६१२०]

आदि पर्वमें एकसौ चौवन अध्याय समाप्त ।

आदिपर्वमें एकसौ पचपन अध्याय ।

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि अनन्तर लालनेत्र; महाभुज, केश ऊपर चढाया हुआ, लम्बे चौडे मुहवाला, घने बादल-समान काला और तेज दांतवाला वह विकराल आकारयुक्त राक्षसनाथ हिडिम्ब हिडिम्बाकी बडीदेरी देख उस वृक्षसे नीचे उतर पाण्डवोंके पास शीघ्र आने लगा। हिडिम्बा वैसे निकट राक्षसको गिरते देखकरकेही भयसे घबराकर भीमसेनसे बोली, कि वह देखो, दुष्टात्मा पुरुष नाशी क्रोधित होकर उतर रहा है; अब मैं जैसा कहती हूं, आप भाइयोंके साथ वह करें। हे वीर ! मैं अपनी जातिके बलवीर्य रखनेके हेतु मनमाने सर्वत्र जा सकती हूं । आप मेरी कमरपर चढलें, आपको आकाशमें लेती जाऊं । हे शत्रुनाशि ! आप इन सोती हुई माता और भाइयों-को जगावें, मैं सबोंको लेकर आकाश मार्गमें जाऊंगी । (१–६)

भीम उवाच— मा भैस्त्वं पृथुसुश्रोणि नैव काश्चिन्मयि स्थिते।
हिंसितुं शक्नुयाद्रक्ष इति मे निश्चिता मतिः॥
अहमेनं हनिष्यामि प्रेक्षन्त्यास्ते सुमध्यमे ॥ ७ ॥
नाऽयं प्रतिबलो भीरु राक्षसापसदो मम ।
सोढुं युधि परिस्पन्दमथवा सर्वराक्षसाः ॥ ८ ॥
पश्य बाहू सुवृत्तौ मे हस्तिहस्तनिभाविमौ।
ऊरू परिघसङ्काशौ संहतं चाप्युरो महत् ॥ ९ ॥
विक्रमं मे यथेन्द्रस्य साऽद्य द्रक्ष्यसि शोभने।
माऽवमंस्थाः पृथुश्रोणि मत्वा मामिह मानुषम् १० ॥

हिडिम्बोवाच— नाऽवमन्ये नरव्याघ्र त्वामहं देवरूपिणम् ।
दृष्टप्रभावस्तु मया मानुषेष्वेव राक्षसः ॥ ११ ॥

वैशम्पायन उवाच— तथा संजल्पतस्तस्य भीमसेनस्य भारत ।
वाचः शुश्राव ताः क्रुद्धो राक्षसः पुरुषादकः ॥ १२ ॥
अवेक्षमाणस्तस्याश्च हिडिम्बो मानुषं वपुः ।
स्रग्दामपूरिताशिखं समग्रेन्दुनिभाननम् ॥ १३ ॥
सुभ्रूनासाक्षिकेशान्तं सुकुमारनखत्वचम् ।

भीमसेन बोले, कि ऐ सुन्दरी ! तुम भय मत खाओ; मुझको निश्चय जान पडता है, कि मेरे लिये वह राक्षस बडा तुच्छ है; मेरी हिंसा नहीं कर सकेगा। ऐ सुन्दरी ! तुम देखलो, तुम्हारे सामने ही मैं उसको नष्ट करता हूं। री भीरु ! उस नीच राक्षसकी क्या कहती हो; जितने भी राक्षस हैं, सब भी आवें तो मेरे साथ लडनेमें समान होकर नाश होने से नहीं बचेंगे। हस्तीकी सूंडसे भुज, यह दो लोहेके मुद्गर समान दो जांघ और बडी विशाल छातीको देखो। ऐ सुन्दरि ! तुम आज महेन्द्रकी भांति मेरे विक्रमको देखोगी। ऐ चौडी कमरवाली ! तुम मुझको मनुष्य मानकर कम न समझना। हिडिम्बा बोली, कि हे नरव्याघ्र आप देवरूपी हैं, मैं आपका अनादर नहीं करती, पर मनुष्यपर राक्षसका जितना प्रभाव है, वह मैं देख चुकी हूं। (७-११)

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि हे भारत ! भीमसेन हिडिम्बासे यह बातें कर रहे थे, कि ऐसे समय मनुष्यखोर हिडिम्बने क्रोधपूर्वक आनकर वह बातें सुन लीं और देखा, कि हिडिम्बाने सुन्दर मनुष्य-का स्वरूप लिया है। उसके केशोंमें

सर्वाभरणसंयुक्तं सुसूक्ष्माम्बरवाससम् ॥ १४ ॥
तां तथा मानुषं रूपं बिभ्रतीं सुमनोहरम् ।
पुंस्कामां शङ्कमानश्च चुक्रोध पुरुषादकः ॥ १५ ॥
संक्रुद्धो राक्षसस्तस्या भगिन्याः कुरुसत्तम ।
उत्फाल्य विपुले नेत्रे ततस्तामिदमब्रवीत् ॥ १६ ॥
को हि मे भोक्तुकामस्य विघ्नं चरति दुर्मतिः ।
न बिभेषि हिडिम्बे किं मत्कोपाद्विप्रमोहिता ॥१७॥
धिक्त्वामसति पुंस्कामे मम विप्रियकारिणि ।
पूर्वेषां राक्षसेन्द्राणां सर्वेषामयशस्करि ॥ १८ ॥
यानि मानाश्रिताऽकार्षीर्विप्रियं सुमहन्मम ।
एष तानद्य वै सर्वान्हनिष्यामि त्वया सह ॥ १९ ॥
एवमुक्त्वा हिडिम्बां स हिडिम्बो लोहितेक्षणः ।
वधायाऽभिपपातैनान्दन्तैर्दन्तानुपस्पृशन् ॥ २० ॥
तमापतन्तं संप्रेक्ष्य भीमः प्रहरतां वरः ।
भर्त्सयामास तेजस्वी तिष्ठ तिष्ठेति चाऽब्रवीत् २१॥

फूलहार लगे हैं, मुह पूर्ण चन्द्रमासा शोभायमान है, भौंहे नाक नेत्र और केश सब सुशोभित हैं, नख और त्वचा कोमल हुए हैं और सुन्दर पतला वस्त्र तथा सम्पूर्ण आभूषणोंसे सर्व शरीर बने ठने हैं। उसको ऐसा सुन्दर मानवी स्वरूप लिये देखकर पुरुष चाहनेवाली जान करके वह बडा कोपाविष्ट हुआ। (१२—१५)

हे कुरुश्रेष्ठ ! तब वह क्रोधके मारे अपनी बडी आखोंको निकाल कर बहिन से बोला, कि मैं भोजन चाहता हूं, किसकी ऐसी कुमति हुई, कि मेरी उस इच्छामें विघ्न डालना चाहता है ? हिडिम्बे ! तू मोहित हो गयी क्या? मेरे क्रोधसे भय नहीं खाती ? री असति ! तू पुरुषकी चाहसे मेरे अप्रिय काममें हाथ डालती है ? तुझ पर धिक्कार है ! तुझसे पहिलेके श्रेष्ठ राक्षसोंके यशरूपी चन्द्रमा पर कलङ्कके धब्बे लगे। तू जिसके भरोसे मेरा बडा अप्रिय करने पर उद्यत हुई है, आज मैं अभी तेरे सहित उसका काम पूरा कर देता हूं। राक्षसश्रेष्ठ हिडिम्ब आंखें लालकर हिडिम्बासे उस प्रकार कह करके दांतसे दांत पसिता हुआ पाण्डवोंके वधके लिये दौडा। मारनेमें दक्ष तेजस्वी भीमसेन उसको आते देखकर लाञ्छनके साथ "तिष्ठ तिष्ठ" ऐसा बोले। (१६-२१)

वैशम्पायन उवाच– भीमसेनस्तु तं दृष्ट्वा राक्षसं प्रहसन्निव ।
भगिनीं प्रति संक्रुद्धमिदं वचनमब्रवीत् ॥ २२ ॥
किं ते हिडिम्ब एतैर्वा सुखसुप्तैः प्रबोधितैः।
मामासादय दुर्बुद्धे तरसा त्वं नराशन ॥ २३ ॥
मय्येव प्रहरैहि त्वं न स्त्रियं हन्तुमर्हसि ।
विशेषतोऽनपकृते परेणाऽपकृते सति ॥ २४ ॥
न हीयं स्ववशा बाला कामयत्यद्य मामिह ।
चोदितैषा ह्यनङ्गेन शरीरान्तरचारिणा ॥ २५ ॥
भगिनी तव दुर्वृत्त रक्षसां वै यशोहर ।
त्वन्नियोगेन चैवेयं रूपं मम समीक्ष्य च ॥ २६ ॥
कामयत्यद्य मां भीरुस्तव नैषाऽपराध्यति ।
अनङ्गेन कृते दोषे नेमां गर्हितुमर्हसि ॥ २७ ॥
मयि तिष्ठति दुष्टात्मन्न स्त्रियं हन्तुमर्हसि ॥ २८ ॥
संगच्छस्व मया सार्धमेकेनैको नराशन ।
अहमेको नयिष्यामि त्वामद्य यमसादनम् ॥ २९ ॥
अद्य मद्बलनिष्पिष्टं शिरो राक्षस दीर्यताम्।

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि भीमसेन उस राक्षसको बहिन पर क्रोधित होते देखकर हंसते हुए बोलने लगे, कि रे कुमति नरखोर ! तुझे हिडिम्बासे क्या प्रयोजन है और इन सब सुखसे सोये भाइयोंके जगाने ही की भी क्या आवश्यकता है ? तू तुरन्त मेरे पास आ और मुझको मार। स्त्रीको मारना तुझे नहीं सोहता। विशेष एकके दोषसे दूसरेको मारना ठीक नहीं है; इस बालाने आज अपने वशमें रहकर मुझे कामना नहीं की है। कामदेवने इसके शरीरमें घुसकरकेही इस ओर झुकाया है। रे राक्षसकुलके यशनाशी दुराचारी अधम राक्षस ! तेरी बहिनने तेरेही नियोगसे यहां आनकर मेरा रूप देखके मुझे कामना की है, सो यह भीरु अबला तेरे पास दोषी नहीं बन सकती, कामदेवने ही यह दोष किया है, अतएव तुझे इस सुन्दरी को लाञ्छन करना नहीं चाहिये। (२२—२७)

रे दुष्टात्मन् ! मेरे रहते तू इस नारीको मार नहीं सकेगा। रे नरभोजी ! तू अकेला है, अकले मेरेही साथ तू लड, मैं अकेलाही आज तुझको यमराजके पाहुना बनाऊंगा। आज तेरा सिर मेरे भुजबल

कुञ्जरस्येव पादेन विनिष्पिष्टं बलीयसः ॥ ३० ॥
अद्य गात्राणि ते कङ्काः श्येना गोमायवस्तथा।
कर्षन्तु भुवि संहृष्टा निहतस्य मया मृधे ॥ ३१ ॥
क्षणेनाऽद्य करिष्येऽहमिदं वनमराक्षसम् ।
पुरा यद्दूषितं नित्यं त्वया भक्षयता नरान् ॥ ३२ ॥
अद्य त्वां भगिनी रक्षः कृष्यमाणं मयाऽसकृत्।
द्रक्ष्यत्यद्रिप्रतीकाशं सिंहेनेव महाद्विपम् ॥ ३३ ॥
निराबाधास्त्वयि हते मया राक्षसपांसन ।
वनमेतच्चरिष्यन्ति पुरुषा वनचारिणः ॥ ३४ ॥
हिडिम्ब उवाच— गर्जितेन वृथा किं ते कत्थितेन च मानुष ।
कृत्वैतत्कर्मणा सर्वं कत्थेथा मा चिरं कृथाः ॥ ३५ ॥
बलिनं मन्यसे यच्चाऽप्यात्मानं सपराक्रमम् ।
ज्ञास्यस्यद्य समागम्य मयाऽऽत्मानं बलाधिकम् ॥ ३६ ॥
न तावदेतान्हिंसिष्ये स्वपन्त्वेते यथासुखम् ।
एष त्वामेव दुर्बुद्धे निहन्म्यद्याऽप्रियंवदम् ॥ ३७ ॥
पीत्वा तवाऽसृग्गात्रेभ्यस्ततः पश्चादिमानपि ।

से ऐसे पीसे जाकर चूर हो जायगा, कि मानो बलवन्त हाथीके पांवोंसे कुचल गया हो। आज रणभूमिमें तेरे मारे जानेसे कङ्क, श्येन, और गोमायु आनन्दसे नीचे उतरकर तेरे शरीरको खींचने लगेंगे। पहिले तूने सदा मनुष्य खाकर जिस वनको दूषित किया था, आज मैं क्षणभरमें राक्षससे उस वनको खाली बना दूंगा। रे राक्षस! सिंह जिस प्रकार बडे गजपर चढ जाता है, वैसेही आज पर्वतवत् तुझको तेरी बहिनके देखनेमें मैं बार बार खेचूंगा। रे राक्षस-कुलमें अधम! तेरे मारे जाने से इस वनमें रहनेवाले लोग बिना बाधा इस वनमें रहेंगे। (२८—३४)

हिडिम्ब बोला, कि रे मनुष्य! तेरे इस व्यर्थ गर्जन और व्यर्थ बातोंके कहने से क्या होना है? जैसा कह रहा है उसे कर दिखाके अपनी बडाईको प्रगट कर, देर मत कर। तू अपनेको बली और पराक्रमी समझता है; पर तू कितना बल और वीर्यवाला है, वह आज मुझसे मिलनेहीसे समझ सकेगा। मैं इस समय उनको नहीं मारूंगा, वे सुखसे सोये रहें। रे कुबुद्धे! हालमें तेरे समान कडी बात कहनेवालेहीको नष्ट करूं।

हनिष्यामि ततः पश्चादिमां विप्रियकारिणीम् ३८॥

वैशम्पायन उवाच—एवमुक्त्वा ततो बाहुं प्रगृह्य पुरुषादकः ।
अभ्यद्रवत संक्रुद्धो भीमसेनमरिन्दमम् ॥ ३९ ॥
तस्याऽभिद्रवतस्तूर्णं भीमो भीमपराक्रमः ।
वेगेन प्रहितं बाहुं निजग्राह हसन्निव ॥ ४० ॥
निगृह्य तं बलाद्भीमो विस्फुरन्तं चकर्ष ह ।
तस्माद्देशाद्धनूंष्यष्टौ सिंहः क्षुद्रमृगं यथा ॥ ४१ ॥
ततः स राक्षसः क्रुद्धः पाण्डवेन बलार्दितः ।
भीमसेनं समालिङ्ग्य व्यनदद्भैरवं रवम् ॥ ४२ ॥
पुनर्भीमो बलादेनं विचकर्ष महाबलः ।
मा शब्दः सुखसुप्तानां भ्रातॄणां मे भवेदिति॥ ४३ ॥
अन्योन्यं तौ समासाद्य विचकर्षतुरोजसा ।
हिडिम्बो भीमसेनश्च विक्रमं चक्रतुः परम्॥ ४४ ॥
बभञ्जतुस्तदा वृक्षाँल्लताश्चाऽऽकर्षतुस्तदा ।
मत्ताविव च संरब्धौ वारणौ षष्टिहायनौ ॥ ४५ ॥
तयोः शब्देन महता विबुधास्ते नरर्षभाः ।

पहिले तेरी देहसे रक्त पीऊंगा; फिर आगे उनको मारूंगा; अन्तमें इस अत्यंत अप्रिय करनेवालीको भी मार डालूंगा।(२५-३८)

श्री वैशम्पायन जी बोले, कि नरमांस खाने वाला राक्षस यह बात कहके हाथ बढाकर क्रोधसे शत्रुनाशी भीमसेनपर दौडा। भीम-पराक्रमी भीमने हंसते हुए, उसीक्षण दौडे आते हुए उस राक्षसके वेगसे चलाये हुए हाथोंको पकड लिया। वह बलपूर्वक उन फैलाये हुए हाथोंको थामके तथा उसको इस प्रकार खैंचके, कि जैसा सिंह छोटे मृगको पकडता है, वहां से आठ धनु अर्थात् बत्तीस हाथकी दूरीपर ले गये। (३९—४१)

अनन्तर राक्षस बलपूर्वक पाण्डव भीमसेनसे पीडित होकर उनको कसके लपेटकर बडे शब्दसे चिल्लाने लगा। कहीं उस शब्दको सुनके सुखसे सोये हुए भाइयों की नींद न टूटे, इस लिये महाबली भीमसेनने फिर बलपूर्वक उसे पकडा। तब हिडिम्ब और भीमसेन दोनों दोनों पर विक्रम प्रकाश करते हुए बलसे एक दुसरेको पकडने लगे। (४२—४४)

वे दोनों साठ वर्षके क्रोधित गजोंके समान वृक्षोंको तोडने तथा लताओं को उखाडने लगे। उनके उस बडे

सह मात्रा च ददृशुर्हिडिम्बामग्रतः स्थिताम् ॥ ४६ ॥ [६१६६]

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यामादिपर्वणि हिडिम्बवधपर्वणि हिडिम्बभीमयुद्धे पञ्चपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १५५ ॥

वैशम्पायन उवाच– प्रबुद्धास्ते हिडिम्बाया रूपं दृष्ट्वाऽतिमानुषम् ।
विस्मिताः पुरुषव्याघ्रा बभूवुः पृथया सह ॥ १ ॥
ततः कुन्ती समीक्ष्यैनां विस्मिता रूपसम्पदा ।
उवाच मधुरं वाक्यं सान्त्वपूर्वमिदं शनैः ॥ २ ॥
कस्य त्वं सुरगर्भाभे का वाऽसि वरवर्णिनि ।
केन कार्येण संप्राप्ता कुतश्चाऽऽगमनं तव ॥ ३ ॥
यदि वाऽस्य वनस्य त्वं देवता यदि वाऽप्सराः ।
आचक्ष्व मम तत्सर्वं किमर्थं चेह तिष्ठसि ॥ ४ ॥
हिडिम्बोवाच —यदेतत्पश्यसि वनं नीलमेघनिभं महत् ।
निवासो राक्षसस्यैव हिडिम्बस्य ममैव च ॥ ५ ॥
तस्य मां राक्षसेन्द्रस्य भगिनीं विद्धि भाविनि ।
भ्रात्रा संप्रेषितामार्ये त्वां सपुत्रां जिघांसितुम् ॥ ६ ॥
क्रूरबुद्धेरहं तस्य वचनादागता त्विह ।
अद्राक्षं नवहेमाभं तव पुत्रं महाबलम् ॥ ७ ॥

कोलाहलसे नरश्रेष्ठ पाण्डवोंने माताके साथ जगकर सामने खडी हिडिम्बाको देखा। (४३–४६) [६१६६]

आदि पर्वमें एकसौ पचपन अध्याय समाप्त।

आदिपर्वमें एकसौ छप्पन अध्याय ।

श्री वैशम्पायनजी बोले, कि कुन्ती और पुरुषश्रेष्ठ पाण्डवोंने जगकर हिडिम्बा का अलौकिक रूप देखकर अचरज माना। आगे कुन्ती उसकी ओर भली भांति ताकके रूपकी शोभा देखकर अचरज मान शान्त और मीठी बातोंमें धीरे धीरे बोली, कि ऐ देवकन्या समान सुन्दरी ! तुम कौन हो ? ऐ वरवर्णिनि ! तुम किसकी स्त्री हो ? तुम किस कामके लिये और कहांसे यहां आयी हो ? यदि तुम इस वनकी देवी वा अप्सरा हो, तो मुझसे कहो कि क्यों यहां खडी हो ? (१-४)

हिडिम्बा बोली, कि नीले बादलकी भांति जो यह हिडिम्ब नामक राक्षसके और मेरे बसनेका स्थान है, ऐ भामिनि ! मैं उस राक्षस–नाथ हिडिम्बकी बहिन हूं। मेरे भाईने आपको और आपके पुत्रोंको हिंसा करनेको मुझको भेजा था। ऐ आर्ये ! मैंने उस कुटिलबुद्धि भाईकी

ततोऽहं सर्वभूतानां भावे विचरता शुभे ।
चोदिता तव पुत्रस्य मन्मथेन वशानुगा ॥ ८ ॥
ततो वृतो मया भर्ता तव पुत्रो महाबलः ।
अपनेतुं च यतितो न चैव शकितो मया ॥ ९ ॥
चिरायमाणां मां ज्ञात्वा ततः स पुरुषादकः ।
स्वयमेवाऽऽगतो हन्तुमिमान्सर्वांस्तवाऽऽत्मजान् १०
स तेन मम कान्तेन तव पुत्रेण धीमता ।
बलादितो विनिष्पिष्य व्यपनीतो महात्मना॥ ११ ॥
विकर्षन्तौ महावेगौ गर्जमानौ परस्परम् ।
पश्य त्वं युधि विक्रान्तावेतौ च नरराक्षसौ॥ १२ ॥
वैशम्पायन उवाच—तस्याः श्रुत्वैव वचनमुत्पपात युधिष्ठिरः ।
अर्जुनो नकुलश्चैव सहदेवश्च वीर्यवान् ॥ १३ ॥
तौ ते ददृशुरासक्तौ विकर्षन्तौ परस्परम् ।
काङ्क्षमाणौ जयं चैव सिंहाविव बलोत्कटौ॥१४ ॥
अथान्योन्यं समाश्लिष्य विकर्षन्तौ पुनः पुनः।
दावाग्निधूमसदृशं चक्रतुः पार्थिवं रजः ॥ १५ ॥

बातसे यहां आके नव सुवर्ण समान अङ्गयुक्त आपके महाबली पुत्रको देखा। ऐ शुभे! जो सर्वजीवोंके मन मन्दिरमें घूमा फिरा करते हैं, मैं आपके पुत्रको देखतेही उसी मन्मथके वशमें होगयी हूं। मैंने मदनवाणको मनसे निकालना चाहा, पर किसी प्रकार समर्थ नहीं हुई; अतएव आपके महाबली पुत्रको मैंने मनही मनमें भर्त्ता करके वरण किया है। अनन्तर उस राक्षसपातिने मुझको जिस काममें भेजा था, उसकी देरी देखकर आपके इन पुत्रोंको नष्ट करनेको स्वयंही आ गया है। आगे मेरे प्रिय धीमान् महात्मा आपके वह पुत्र बलपूर्वक उसको घसीटकर यहांसे कुछ दूर लेगये हैं। युद्धमें विक्रम दिखाकर ललकारते हुए एक दूसरेको बडे वेगसे पकड रहे हैं! (५—१२)

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि उसकी यह बात सुन करकेही वीर्यवन्त युधिष्ठिर, अर्जुन, नकुल और सहदेव ये एकायक उठकर उस युद्धस्थानके निकट गये। उन्होंने देखा, कि राक्षस और भीम दोनों जयकी आशासे एक दूसरेको पकडकर अति बली सिंह समान खैंच रहे हैं, और वे एक दूसरेसे लपटकर बार बार खैंचके

वसुधारेणुसंवीतौ वसुधाधरसंनिभौ ।
विभ्राजतुर्यथा शैलौ नीहारेणाऽभिसंवृतौ ॥ १६ ॥
राक्षसेन तदा भीमं क्लिश्यमानं निरीक्ष्य च।
उवाचेदं वचः पार्थः प्रहसञ्छनकैरिव ॥ १७ ॥
भीम मा भैर्महाबाहो न त्वां बुध्यामहे वयम्।
समेतं भीमरूपेण रक्षसा श्रमकर्शितम् ॥ १८ ॥
साहाय्येऽस्मि स्थितः पार्थ पातयिष्यामि राक्षसम्।
नकुलः सहदेवश्च मातरं गोपयिष्यतः॥ १९ ॥

भीम उवाच-- उदासीनो निरीक्षस्व न कार्यः संभ्रमस्त्वया।
न जात्वयं पुनर्जीवेन्मद्बाह्वन्तरमागतः ॥ २० ॥

अर्जुन उवाच-- किमनेन चिरं भीम जीवता पापरक्षसा ।
गन्तव्ये न चिरं स्थातुमिह शक्यमरिन्दम॥ २१ ॥
पुरा संरज्यते प्राची पुरा सन्ध्या प्रवर्तते ।
रौद्रे मुहूर्ते रक्षांसि प्रबलानि भवन्त्युत ॥ २२ ॥
त्वरस्व भीम मा क्रीड जहि रक्षो विभीषणम्।

दावाग्निके धूंएकी नाई धूंआ उठा रहे हैं, तथा पर्वतवत धुएंसे ढंपे जाकर हिमसे ढंपे पर्वतकी भांति प्रगट होते हैं। अनन्तर अर्जुन भीमसेनको राक्षससे पीडित होते देखकर हंसते हुए धीरेंसेबोले, कि हे महाभुज भीम! आप भय मत खाना। हम थके मादे थे, सो नहीं जान सके, कि आप ऐसे घोररूप राक्षस से भिड गये हैं। पार्थ! मैं आपको सहारा देनेको खडा होगया हूं, मैं ही इस राक्षसको नष्ट करूंगा, नकुल और सहदेव माताकी रक्षा करेंगे। (१३-१७)

भीम बोले, कि तुम्हारे इसमें मिलने-का प्रयोजन नहीं होगा। देखो मत हडबडाओ। जब यह राक्षस मेरे दोनों हाथों के तले आ गया है, तब कभी जीता नहीं रहेगा। अर्जुन बोले, कि हे भीम! इस पापात्मा राक्षस को देरतक जीवित रखनेका क्या प्रयोजन है? यदि मुझको जान पडे, तो यहां अब अधिक काल रहा नहीं जाता है। आगे पूर्वदिशा लाल और प्रातः संध्याका काल आ जायगा। रौद्र मुहूर्तमें अर्थात् ब्राह्ममुहूर्त के पूर्व दो दण्डकाल राक्षस प्रबल होते हैं; अतएव हे भीम! आप शीघ्र काम पूर्ण करिये, अब इसे लेकर खेलते न रहिये; इस भीषण मांसभोजी राक्षसको त्याग दीजिये। इसके पीछे वह माया

पुरा विकुरुते मायां भुजयोः सारमर्पय ॥ २३ ॥

वैशम्पायन उवाच—अर्जुनेनैवमुक्तस्तु भीमो रोषाज्ज्वलन्निव ।
बलमाहारयामास यद्वायोर्जगतः क्षये ॥ २४ ॥
ततस्तस्याऽम्बुदाभस्य भीमो रोषात्तु रक्षसः ।
उत्क्षिप्याऽभ्रामयद्देहं तूर्णं शतगुणं तदा ॥ २५ ॥

भीम उवाच—वृथामांसैर्वृथापुष्टो वृथावृद्धो वृथामतिः ।
वृथामरणमर्हस्त्वं वृथाऽद्य न भविष्यसि ॥ २६ ॥
क्षेममद्य करिष्यामि यथा वनमकण्टकम् ।
न पुनर्मानुषान्हत्वा भक्षयिष्यसि राक्षस ॥ २७ ॥

अर्जुन उवाच—यदि वा मन्यसे भारं त्वमिमं राक्षसं युधि ।
करोमि तव साहाय्यं शीघ्रमेष निपात्यताम् ॥ २८ ॥
अथ वाऽप्यहमेवैनं हनिष्यामि वृकोदर ।
कृतकर्मा परिश्रान्तः साधु तावदुपारम ॥ २९ ॥
तस्य तद्वचनं श्रुत्वा भीमसेनोऽत्यमर्षणः ।
निष्पिष्यैनं बलाद्भूमौ पशुमारममारयत् ॥ ३० ॥

फैला सकता है, सो भुजबल प्रगट करिये। (१८—२३)

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि भीमने अर्जुनकी उस बातसे क्रोधके मारे जलकर प्रलयकालिक हवाका बल सञ्चय किया और उसीक्षण कोप प्रगटकर बादलके रङ्गकी उस राक्षसकी देहको सौ बार से भी अधिक ऊपर उठाकर घुमाया तथा उसका नाम लेकर बोले, कि तू वृथा मांससे वृथाही पुष्ट और बढा हुआ है; तेरा बढनाभी व्यर्थही है; इस लिये तू व्यर्थ मृत्युके अर्थात् जिस बाहु-युद्धमें मरनेसे स्वर्ग नहीं मिलता है, उसकेही योग्य है, इससे तू व्यर्थ मृत्युको प्राप्त करेगा! रे राक्षस! आज मैं इस वनको शान्तियुक्त और कंटकरहित करूंगा। तू फिर मनुष्य मारकर खा नहीं सकेगा। अर्जुन बोले, कि आपने यदि युद्धमें इस राक्षसको भार समझा हो, तो मैं आपकी सहायता करूं; आप इसका तुरन्त अन्त कीजिये। हे वृकोदर! अथवा कहिये तो मैंही अकेला इसका काम पूरा करूं; आप कार्य कर थक गये हैं, अब निवृत्त होना ठीक है। (२४—२९)

श्रीवैशम्पायनजी बोले; कि भीमसेन ने उनकी उस बातको सुनके बडे क्रोधित हो बलसे राक्षसको मिट्टी पर पीसकर पशु मारनेकी भांति नष्ट किया। राक्षस

स मार्यमाणो भीमेन ननाद विपुलं स्वनम्।
पूरयंस्तद्वनं सर्वं जलार्द्र इव दुन्दुभिः ॥ ३१ ॥
बाहुभ्यां योक्त्रयित्वा तु बलवान्पाण्डुनन्दनः ।
मध्ये भङ्क्त्वा महाबाहुर्हर्षयामास पाण्डवान् ३२।
हिडिम्बं निहतं दृष्ट्वा संहृष्टास्ते तरस्विनः ।
अपूजयन्नरव्याघ्रं भीमसेनमरिंदमम् ॥ ३३ ॥
अभिपूज्य महात्मानं भीमं भीमपराक्रमम्।
पुनरेवाऽर्जुनो वाक्यमुवाचेदं वृकोदरम् ॥ ३४ ॥
न दूरे नगरं मन्ये वनादस्मादहं विभो ।
शीघ्रं गच्छाम भद्रं ते न नो विद्यात्सुयोधनः ॥३५॥
ततः सर्वे तथेत्युक्त्वा मात्रा सह महारथाः ।
प्रययुः पुरुषव्याघ्रा हिडिम्बा चैव राक्षसी ॥ ३६ ॥ [६२०२]

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यामादिपर्वणि हिडिम्बवध--पर्वणि हिडिम्बवधे षट्पञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १५६ ॥

भीमसेन उवाच — स्मरान्ति वैरं रक्षांसि मायामाश्रित्य मोहिनीम्।
हिडिम्बे व्रज पन्थानं त्वमिमं भ्रातृसेवितम् ॥ १ ॥
युधिष्ठिर उवाच--क्रुद्धोऽपि पुरुषव्याघ्र भीम मा स्म स्त्रियं वधीः ।

ने मरनेके समय जलसे भीजे हुए नगाडे की नाई घोर शब्दसे चिल्ला कर उस वनको पूरित किया। बलवन्त महाभुज पाण्डुनन्दनने राक्षसको हाथोंसे पकड कर उसके मझले भागको तोडकर पाण्डवोंको आनन्दित किया ! बलशाली पाण्डुओंने हिडिम्बको नष्ट होते देखकर प्रसन्न चित्तसे नरश्रेष्ठ शत्रुनाशी भीमसेन की बडी प्रशंसा की। (३०-३३)

अनन्तर अर्जुन महात्मा भीमपराक्रमी वृकोदरका आदर कर बोले, कि हे विभो! मुझको जान पडता है कि इस वनसे नगर बडी दूर नहीं है। चलिये हम उस स्थानमें शीघ्र जायं, जहां सुयोधन हमारा समाचार नहीं पावेगा। अनन्तर कुन्ती और महारथी पुरुषोत्तम पांडवगण उसपर संमत हो वहां से चलनेलगे और हिडिम्बाभी उनके साथ चली। (३४-३६) [६७०२]

आदिपर्वमें एकसौ छप्पन अध्याय समाप्त।

आदि पर्वमें एकसौ सतावन अध्याय।

भीमसेन हिडिम्बाको साथ आतेदेखकर बोले, कि हिडिम्बे! राक्षसगण मोहिनी माया धारणकर पहिली शत्रुताको स्मरण किये रहते हैं; सो तुम्हारा भाई जिस पथमें

शरीरगुप्त्यभ्यधिकं धर्मं गोपाय पाण्डव ॥ २ ॥
वधाभिप्रायमायान्तमवधीस्त्वं महाबलम् ।
रक्षसस्तस्य भगिनी किं नः क्रुद्धा करिष्यति॥ ३ ॥

वैशम्पायन उवाच—हिडिम्बा तु ततः कुन्तीमभिवाद्य कृताञ्जलिः।
युधिष्ठिरं तु कौन्तेयमिदं वचनमब्रवीत् ॥ ४ ॥
आर्ये जानासि यद्दुःखमिह स्त्रीणामनङ्गजम् ।
तदिदं मामनुप्राप्तं भीमसेनकृतं शुभे ॥ ५ ॥
सोढं तत्परमं दुःखं मया कालप्रतीक्षया ।
सोऽयमभ्यागतः कालो भविता मे सुखोदयः॥ ६ ॥
मया ह्युत्सृज्य सुहृदः स्वधर्मं स्वजनं तथा।
वृतोऽयं पुरुषव्याघ्रस्तव पुत्रः पतिः शुभे ॥ ७ ॥
वीरेणाऽहं तथाऽनेन त्वया वापि यशस्विनि।
प्रत्याख्याता न जीवामि सत्यमेतद्ब्रवीमि ते॥ ८ ॥
तदर्हसि कृपां कर्तुं मयि त्वं वरवर्णिनि ।
मत्वा मूढेति तन्मां त्वं भक्ता वाऽनुगतेति वा॥ ९ ॥
भर्त्राऽनेन महाभागे संयोजय सुतेन ते ।

गया है, तुम उसी पथमें जाओ। युधिष्ठिर यह सुनकर बोले, कि हे पुरुषव्याघ्र भीम ! तुम क्रोधित हुए हो, तो भी स्त्री को मत वधो। हे पाण्डव ! शरीर से धर्म बडा है, सो धर्मको पालन करो। जब तुमने उस महाबली राक्षसको जो हमको मारने आया था, मार डाला है, अब उसकी बहिन क्रोधकर हमारा क्या कर लेगी ? (१—३)

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि अनन्तर हिडिम्बा कुन्ती और युधिष्ठिरको प्रणाम कर कुन्तीसे बोली, कि ऐ आर्ये! आप जानती हैं, कि स्त्रियोंको अनङ्गसे कितना दुःख होता है। ऐ शुभे ! भीमसेनसे इस अनङ्गपीडाके द्वारा मैं सतायी जाती हूं। मैंने कालकी ओर ताककर उस गहिरे दुःखको सह लिया था, अब सुखका समय आपहुंचा है। ऐ शुभे! मैंने स्वधर्म, मित्रों और स्वजनोंको तजकर आपके पुरुषश्रेष्ठ पुत्रको पतिके पद पर बैठाया है। ऐ सुन्दरी यशस्विनी ! मैं सच कहती हूं,कि यदि यह वीर वा आप मेरी बातको न सुनेंगी,तो मैं न जीऊंगी; अतएव आप-चाहे मूढा समझकर वा भक्त अथवा कृपा पात्र जान कर मुझ पर कृपा दिखावें। (४—९)

तमुपादाय गच्छेयं यथेष्टं देवरूपिणम् ॥
पुनश्चैवाऽऽनयिष्यामि विस्रम्भं कुरु मे शुभे ॥ १० ॥
अहं हि मनसा ध्याता सर्वान्नेष्यामि वः सदा।
वृजिनात्तारयिष्यामि दुर्गेषु विषमेषु च ॥ ११ ॥
पृष्ठेन वो वहिष्यामि शीघ्रां गतिमभीप्सतः ।
यूयं प्रसादं कुरुत भीमसेनो भजेत माम् ॥ १२ ॥
आपदस्तरणे प्राणान्धारयेद्येन तेन वा ।
सर्वमाहृत्य कर्तव्यं तं धर्ममनुवर्तता ॥ १३ ॥
आपत्सु यो धारयति धर्मं धर्मविदुत्तमः ।
व्यसनं ह्येव धर्मस्य धर्मिणामापदुच्यते ॥ १४ ॥
पुण्यं प्राणान्धारयति पुण्यं प्राणदमुच्यते ।
येन येनाऽऽचरेद्धर्मं तस्मिन्गर्हा न विद्यते ॥ १५ ॥
युधिष्ठिर उवाच —एवमेतद्यथाऽऽत्थ त्वं हिडिम्बे नाऽत्र संशयः ।
स्थातव्यं तु त्वया सत्ये यथा ब्रूयां सुमध्यमे ॥ १६ ॥
स्नातं कृताह्निकं भद्रे कृतकौतुकमङ्गलम् ।

ऐ महाभागे ! आपके पुत्र, मेरे पति इन भीमसेनसे मुझको मिलावें, मैं इन देवरूपी पतिको लेकर जहां मन चाहे, जाऊं । आगे फिर इनको लाऊंगी । ऐ शुभे ! आप मेरा विश्वास करें । आपके मुझे स्मरण करने पर मैं उसी क्षण आकर आप लोगोंको मनमाने स्थानमें ले जाउंगी । फिरभी आप कहीं शीघ्र जाना चाहें, तो आप लोगोंको उसीक्षण पीठपर चढकर लेती जाऊंगी । आप प्रसन्न होवे, कि भीमसेन मेरी भजना करें । (१०–१२)

विपतसे बचनेके लिये चाहे जिस किसी उपायसे क्यों नहीं अपनी रक्षा करनी चाहिये, और उस एक धर्मकी शरण ले करके सब कुछ दशा मान लेनी उचित है; धर्मशील जनोंके लिये विपतही धर्मको रोकनेवाली है, सो जो जन विपत्कालमें भी धर्मकी रक्षा करते हैं, वही धार्मिकोंमें उत्तम हैं । प्राण धरने के लिये पुण्य है, पुण्यहीको पण्डितोंने प्राण देनेवाला कहा है; अतएव हर किसी मना किये हुए कर्मकोभी करके प्राण बचाना चाहिये, उससे निन्दा नहीं होती । (१३–१५)

युधिष्ठिर बोले कि ऐ सुन्दरी हिडिम्बे! इसमें सन्देह नहीं, कि तुमने जो कहा, वह ठीक है ; पर तुमने जैसा कहा,

भीमसेनं भजेथास्त्वं प्रागस्तगमनाद्रवेः ॥ १७ ॥
अहःसु विहराऽनेन यथाकामं मनोजवा ।
अयं त्वानयितव्यस्ते भीमसेनः सदा निशि ॥ १८ ॥
वैशम्पायन उवाच– तथेति तत्प्रतिज्ञाय भीमसेनोऽब्रवीदिदम् ।
शृणु राक्षसि सत्येन समयं ते वदाम्यहम् ॥ १९ ॥
यावत्कालेन भवति पुत्रस्योत्पादनं शुभे ।
तावत्कालं गमिष्यामि त्वया सह सुमध्यमे ॥ २० ॥
वैशम्पायन उवाच–तथेति तत्प्रतिज्ञाय हिडिम्बा राक्षसी तदा ।
भीमसेनमुपादाय सोर्ध्वमाचक्रमे ततः ॥ २१ ॥
शैलशृङ्गेषु रम्येषु देवतायतनेषु च ।
मृगपक्षिविघुष्टेषु रमणीयेषु सर्वदा ॥ २२ ॥
कृत्वा च रूपं परमं सर्वाभरणभूषिता ।
सञ्जल्पन्ती सुमधुरं रमयामास पाण्डवम् ॥ २३ ॥
तथैव वनदुर्गेषु पुष्पितद्रुमसानुषु ।
सरःसु रमणीयेषु पद्मोत्पलयुतेषु च ॥ २४ ॥
नदीद्वीपप्रदेशेषु वैदूर्यसिकतासु च ।

तुमको उसी सत्यमें आबद्ध रहना पडेगा। भद्रे! भीमसेनके नहाने, आह्निक करलेने, और कौतुकमङ्गल कर चूकनेपर सूर्यास्त के पूर्वतक तुम उनकी भजना कर सकोगी। ऐ मनोवेगके अनुसार चलनेवाली ! दिनको इस भीमसेनसे जहां मन चले, विहार कर नित्य रात्रिको उन्हें लाय देना। (१६ – १८)

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि भीमसेन उस पर सम्मत होकर हिडिम्बासे बोले, कि ऐ निशाचरि ! सुनो, मैं सत्य करके तुमसे एक नियम करता हूं। ऐ शुभे सुन्दरि ! जबतक तुमको पुत्र नहीं होगा, तबतक तुम्हारे साथ मिलूंगा। श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि अनन्तर राक्षसी हिडिम्बा वह मानकर भीमसेनको ले करके उसी क्षण आकाशमार्गको चली गयी। आगे मनके समान तेज चलनेवाली वह राक्षसी परम मनोहर रूप धारणकर सर्व आभूषणोंसे बनठन कर और मीठी बोली बोलती हुई समय समय पर नाना स्थानों में भीमसेनके साथ आनन्द लूटने लगी। कभी सुन्दर पहाडकी चोटी पर, कभी मृग पक्षियोंके शब्दसे गूंजते हुए मनोहर देवमन्दिरमें, कभी वन दुर्गमें, कभी फूले वृक्षोंसे सुहावनी सानुमें, कभी

[Registered No. B. 1819.]

अंक ९

महाभारत।

(भाषा--भाष्य--समेत)

संपादक — श्रीपाद दामोदर सातवळेकर.
स्वाध्याय मंडल, औंध (जि. सातारा)

१२अंकोंका मूल्य म.आ.से. ६) वी.पी.से ७) विदेशके लिये ८)

महाभारतके नियम।

(१) महाभारत मूल और भाषांतर प्रति अंकमें सौ पृष्ठ प्रकाशित होगा।

(२) इसमें मूल श्लोक और उसका सरल भाषानुवाद होगा । महाभारत की समालोचना प्रतिमास वैदिक धर्म मासिक में प्रकाशित होती रहेगी और पर्व समाप्तिके पश्चात् पुस्तक रूपसेभी वह ग्राहकों को मिल जायगी ।

(३) भूमिका रूप इस विस्तृत लेखमें धार्मिक, सामाजिक, राजकीय तथा अन्य दृष्टियोंसे परिपूर्ण विचरण होगा, तात्पर्य यह भूमिका का विस्तृत लेख भारतकालीन वस्तुस्थितिका पूर्ण रीतिसे निदर्शक होगा। यह लेख हरएक पर्व छपनेके पश्चात ही ग्राहकों को मिल जायगा।

(४) संपूर्ण महाभारतके मुख्य प्रसंगों के सौ चित्र इस ग्रंथमें दिये जांयगे । उन में प्रतिपर्व एक चित्र रंगीन भी होगा। इसके अतिरिक्त उस समयकी भूगोलिक अवस्था बताने वाले कई नकशे दिये जांयगे।

(५) इसके अतिरिक्त ग्राम,नगर,प्रांत, और देशोंके नाम, जातिवाचक नाम, तथा अन्य नामोंका पूर्ण परिचय देनेवाली विविध सूचियां भी दी जांयगी।

मूल्य ।

(६) बारह अंकोंका अर्थात १२०० पृष्ठोंका मूल्य मनी आर्डर से ६) छः रु. होगा और वी.पी.से ७.) रु. होगा, यह मूल्य वार्षिक मूल्य नहीं है, परंतु १२०० पृष्ठोंका मूल्य है।

(७) बहुधा प्रतिमास १०० पृष्ठोंका एक अंक प्रकाशित होगा, परंतु संभव हुआ तो अधिक अंक भी प्रसिद्ध होंगे।

(८) प्रत्येक अंक तैयार होते ही ग्राहकों के पास भेजा जायगा। यदि किसीको न मिला, तो उनकी सूचना अगला अंक मिलते ही आनी चाहिये । जिनकी सूचना अगला अंक मिलते ही आ जायगी उनको ही वह न मिला हुआ अंक पुनः भेजा जायगा । परंतु जिनकी सूचना उक्त समयमें नहीं आवेगी उनको ॥।=) आनेका मूल्य आनेपर, संभव हुआ तो ही अंक भेजा जायगा ।

(९) सब ग्राहक अपने अपने अंक संभाल कर रखें और चार अथवा पांच महिनों के पश्चात् अपने अंकोंकी जिल्द बनवा लें, जिससे अंक गुम होनेकी संभावना नहीं होगी। दो मास के पश्चात् किसी पुराने ग्राहक को पिछला अंक मूल्य देनेपरभी मिलेगा नहीं क्योंकि एक अंक कम होनेसे

सुतीर्थवनतोयासु तथा गिरिनदीषु च ॥ २५ ॥
काननेषु विचित्रेषु पुष्पितद्रुमवल्लिषु ।
हिमवद्गिरिकुञ्जेषु गुहासु विविधासु च ॥ २६ ॥
प्रफुल्लशतपत्रेषु सरःस्वमलवारिषु ।
सागरस्य प्रदेशेषु मणिहेमचितेषु च ॥ २७ ॥
पत्तनेषु च रम्येषु महाशालवनेषु च ।
देवारण्येषु पुण्येषु तथा पर्वतसानुषु ॥ २८ ॥
गुह्यकानां निवासेषु तापसायतनेषु च ।
सर्वर्तुफलरम्येषु मानसेषु सरःसु च ॥ २९ ॥
बिभ्रती परमं रूपं रमयामास पाण्डवम् ।
रमयन्ती तथा भीमं तत्र तत्र मनोजवा ॥ ३० ॥
प्रजज्ञे राक्षसी पुत्रं भीमसेनान्महाबलम् ।
विरूपाक्षं महावक्त्रं शङ्कुकर्णं बिभीषणम् ॥ ३१ ॥
भीमनादं सुताम्रोष्ठं तीक्ष्णदंष्ट्रं महारवम् ।
महेष्वासं महावीर्यं महासत्त्वं महाभुजम् ॥ ३२ ॥
महाजवं महाकायं महामायमरिंदमम् ।
दीर्घघ्राणं महोरस्कं विकटोद्बद्धपिण्डिकम् ॥ ३३ ॥

नी[illegible]था लाल पद्मसे सुशोभित सुन्दर सर[illegible]में, कभी वैदूर्यमाणि और नदीके वा[illegible]रित द्वीपमें कभी सुन्दर वन और अ[illegible]समान जलसे सुशोभित अच्छे तीर्थ पह[illegible] नदीमें, कभी फलवाले पौधे और लत[illegible] सुहावने वनमें, कभी हिमाचलके कुञ्[illegible], कभी खिले कमलोंके समान सोहते हुए अमल जल भरे तालमें, कभी म[illegible]सुवर्ण पूर्ण सागर खण्डमें, कभी मनो-हर[illegible]गर और उपवनमें, कभी पहाडोंकी कन्[illegible]र में, कभी गुह्यकोंकी वासभूमिमें कर[illegible] तपस्वियोंके स्थानमें, अथवा कभी सदासे फलफूलयुक्त मनमोहन मानस सरोवरमें क्रीडाकर पाण्डव भीमसेनको आनन्द देने लगी। (२९—३०)

आगे उस राक्षसीने भीमसेनसे भीमा-कार, बडा भारी, अति बलवीर्यवन्त, बडा चापधारी, महान् सत्ववान्, बडे बडे हाथ-युक्त, अति वेगवान, बडी माया रचनेवा-ला, शत्रुनाशी अमनुष्य पर मनुष्य वीर्यसे उत्पन्न एक पुत्र प्रसव किया। उस पुत्रकी आंखें बडी विकट, मुह बडा भारी, कान शंकुके समान, स्वर अति भयानक, होठों का रंग तामेकी भांति, दांत कटीले, नाक

अमानुषं मानुषजं भीमवेगं महाबलम् ।
यः पिशाचानतीत्याऽन्यान्बभूवाऽतीव राक्षसान् ॥
बालोऽपि यौवनं प्राप्तो मानुषेषु विशाम्पते ।
सर्वास्त्रेषु परं वीरः प्रकर्षमगमद्बली ॥ ३५
सद्यो हि गर्भान्राक्षस्यो लभन्ते प्रसवन्ति च ।
कामरूपधराश्चैव भवन्ति बहुरूपिकाः ॥ ३६
प्रणम्य विकचः पादावगृह्णात्स पितुस्तथा ।
मातुश्च परमेष्वासस्तौ च नामाऽस्य चक्रतुः ॥ ३७ ॥
घटो हास्योत्कच इति माता तं प्रत्यभाषत ।
अब्रवीत्तेन नामाऽस्य घटोत्कच इति स्म ह ॥ ३८ ॥
अनुरक्तश्च तानासीत्पाण्डवान्स घटोत्कचः ।
तेषां च दयितो नित्यमात्मनित्यो बभूव ह ॥ ३९ ॥
संवाससमयो जीर्ण इत्याभाष्य ततस्तु तान् ।
हिडिम्बा समयं कृत्वा स्वां गतिं प्रत्यपद्यत ॥ ४० ॥

लम्बी, छाती चौडी और पिण्डिका अर्थात् पावोंके डिम् ढढे और ऊंचे हुए थे ! वह कुमार सम्पूर्ण पिशाच और राक्षसोंमें बडा विक्रमी हुआ । (३१—३४)

हे राजन् ! उस बलवन्त वीरपुत्रने बालक होने परभी यौवनको प्राप्त किया और उसकी मनुष्य लोकमें प्रचलित सम्पूर्ण अस्त्रोंमें अति उन्नति हुई । राक्षसी जिस दिन गर्भ धरती है, उसी दिन प्रसव करती है और प्रसव किया हुआ बालकभी जन्म लेतेही बहुरूपी होकर मनमाना रूप धर सकता है । कमर, गर्दन, मुख, कान, और केश इन सब अङ्गोंके बेढब होने परभी अनेक प्रभायुक्त और बडा चापधारी हिडिम्बाकुमार जन्म लेतेही प्रणाम करनेको पिता [म]ाके पांवों पर गिरा; उन्होंनेभी उस[का न]ाम रख दिया । उस बालकके घट[सा] ऐसे उत्कच अर्थात् खडे केश थे, सो [हि]डिम्बाने उसको देखकर ऐसा कह[ा] कि " इसके उत्कच घटकी भांति है " इस लिये भीमसेनने उसका नाम "घटोत्कच" रखा; घटोत्कच स्वाधीन [हो]ने परभी पाण्डवोंका बडा प्रेमी था, पा[ण्डव]से लोगभी उसका बडा स्नेह [क]रते थे । (३५—३९)

आगे हिडिम्बाने नियम के अ[नुसा]र कामकर यह कहके, " कि पतिसे न[िवास] का काल बीता" पाण्डवोंको सम्भाद-पूर्वक अपने स्थान को चली गई [।]

घटोत्कचो महाकायः पाण्डवान्पृथया सह ।
अभिवाद्य यथान्यायमब्रवीच्च प्रभाष्य तान् ॥ ४१ ॥
किं करोम्यहमार्याणां निःशङ्कं वदताऽनघाः ।
तं ब्रुवन्तं भैमसेनिं कुन्ती वचनमब्रवीत् ॥ ४२ ॥
त्वं कुरूणां कुले जातः साक्षाद्भीमसमो ह्यसि ।
ज्येष्ठः पुत्रोऽसि पञ्चानां साहाय्यं कुरु पुत्रक ॥ ४३ ॥
वैशम्पायन उवाच--पृथयाऽप्येवमुक्तस्तु प्रणम्यैव वचोऽब्रवीत् ॥ ४४ ॥
यथा हि रावणो लोके इन्द्रजिच्च महाबलः ।
वर्ष्मवीर्यसमो लोके विशिष्टश्चाऽभवं नृषु ॥ ४५ ॥
कृत्यकाल उपस्थास्ये पितॄनिति घटोत्कचः ।
आमन्त्र्य रक्षसां श्रेष्ठः प्रतस्थे चोत्तरां दिशम् ॥ ४६ ॥
स हि सृष्टो मघवता शक्तिहेतोर्महात्मना ।
कर्णस्याऽप्रतिवीर्यस्य प्रतियोद्धा महारथः ॥४७॥ [६२४९]

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यामादिपर्वणि हिडिम्बवधपर्वणि घटोत्कचोत्पत्तौ सप्तपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १५७ ॥

वैशम्पायन उवाच--ते वनेन वनं गत्वा घ्नन्तो मृगगणान्बहून् ।

शरीरवाला घटोत्कच भी कुंती के साथ पांडवों को यथायोग्य रीतिसे प्रणाम करके उनसे बोला, कि "आप आर्यों के हित के लिये मैं क्या करूं, इसकी आज्ञा आप विना संदेह मुझे करें।" इस प्रकार प्रार्थना करनेवाले भीम के पुत्रसे कुंती बोली, कि "हे बालक! तू कौरवोंके कुलमें उत्पन्न साक्षात् भीम जैसाही बलवान् श्रेष्ठ पुत्र है, इस लिये तू पांचों पांडवों की सहायता कर। (४०—४२)

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कुंतीसे इस प्रकार कहा जानेपर वह प्रणाम करके बोलने लगा, कि "जिस प्रकार लोगोंमें रावण और इन्द्रजित शरीर और वीर्यमे महा बलाढ्य थे, उसी प्रकार मानवों में मैं अधिक बलवान् हुआ हूं। जब कार्य उपस्थित होगा आपके समीप आ पहुंचूगा।" इस प्रकार राक्षसोंमें श्रेष्ठ घटोत्कचभी पितरोंसे कह कर उत्तर ओर पधारा। महात्मा महेन्द्रने विरुद्धवीर्य वार्जित कर्णकी एक पुरुष मारनेवाली शक्तिके लिये इस महारथी घटोत्कचको विरोधी योद्धा बनाया था। (४३–४७) [६२४९]

आदि पर्वमें एकसौ सतावन अध्याय समाप्त

अपक्रम्य ययू राजंस्त्वरमाणा महारथाः ॥ १ ॥
मत्स्यांस्त्रिगर्तान्पञ्चालान्कीचकानन्तरेण च।
रमणीयान्वनोद्देशान्प्रेक्षमाणाः सरांसि च ॥ २ ॥
जटाः कृत्वाऽऽत्मनः सर्वे वल्कलाजिनवाससः।
सह कुन्त्या महात्मानो बिभ्रतस्तापसं वपुः॥ ३ ॥
क्वचिद्वहन्तो जननीं त्वरमाणा महारथाः ।
क्वचिच्छन्देन गच्छन्तस्ते जग्मुः प्रसभं पुनः॥ ४ ॥
ब्राह्मं वेदमधीयाना वेदाङ्गानि च सर्वशः ।
नीतिशास्त्रं च सर्वज्ञा ददृशुस्ते पितामहम्॥ ५ ॥
तेऽभिवाद्य महात्मानं कृष्णद्वैपायनं तदा ।
तस्थुः प्राञ्जलयः सर्वे सह मात्रा परंतपाः ॥ ६ ॥
व्यास उवाच— मयेदं व्यसनं पूर्वं विदितं भरतर्षभाः ।
यथा तु तैरधर्मेण धार्तराष्ट्रैर्विवासिताः ॥ ७ ॥
तद्विदित्वाऽस्मि संप्राप्तश्चिकीर्षुः परमं हितम्।
न विषादोऽत्र कर्तव्यः सर्वमेतत्सुखाय वः॥ ८ ॥

आदिपर्वमें एकसौ अठावन अध्याय १।

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि अनन्तर वे महारथी महात्मा वीर पाण्डवगण जटाधारी होकर मृगचर्म तथा वल्कल पहिन कर माता कुन्तीके साथ तपस्वी-का वेष लेकर शीघ्रतासे मृगया करते हुए एक वनसे अन्यवनको,फिर उस वन-से वनान्तरमें गमन करने लगे। जानेके समय पथमें मत्स्य,त्रिगर्त्त,पाञ्चाल, और कीचक देशोंके भीतरके सुन्दर सुन्दर वनखण्ड और नाना प्रकारके तालतालाव देखने लगे। वे कहीं कहीं शीघ्रताके लिये कुन्तीको उठा लेते थे; और कहीं कहीं सहज चालमें सुखसे चलकर पीछे शीघ्र चलते थे। (१—४)

एक समय वे सम्पूर्ण वेद वेदाङ्ग और नीतिशास्त्र पढ रहे थे, ऐसे समयमें पि-तामह व्यासजीको देखा। महात्मा कृष्णद्वैपायनको देखतेही शत्रुनाशी पा-ण्डवगण माताके साथ उनको प्रणाम कर दोनों हाथ जोडके सामने खडे हुए। व्यासजी बोले, कि राजगण! मैंने पहिले ही जाना है, कि धृतराष्ट्रके पुत्रोंने अधर्मसे तुमको निकाल बाहर किया है। इसी लिये तुम्हारे परम मङ्गलके निमित्त यहां आया हूं! तुम उस विषयमें दुःखी मत होओ, यह सब तुम्हारे सुखके लियेही होरहे हैं। इसमें सन्देह नहीं, कि

समास्ते चैव मे सर्वे यूयं चैव न संशयः ।
दीनतो बालतश्चैव स्नेहं कुर्वन्ति मानवाः ॥ ९ ॥
तस्मादभ्यधिकः स्नेहो युष्मासु मम सांप्रतम्।
स्नेहपूर्वं चिकीर्षामि हितं वस्तन्निबोधत ॥ १० ॥
इदं नगरमभ्याशे रमणीयं निरामयम् ।
वसतेह प्रतिच्छन्ना ममाऽऽगमनकांक्षिणः ॥ ११ ॥

वैशम्पायन उवाच- एवं स तान् समाश्वास्य व्यासः सत्यवतीसुतः ।
एकचक्रामभिगतः कुन्तीमाश्वासयत्प्रभुः ॥ १२ ॥

व्यास उवाच— जीवत्पुत्रि सुतस्तेऽयं धर्मनित्यो युधिष्ठिरः ।
धर्मेण पृथिवीं जित्वा महात्मा पुरुषर्षभः ॥
पृथिव्यां पार्थिवान्सर्वान्प्रशासिष्यति धर्मराट्॥१३॥
पृथिवीमखिलां जित्वा सर्वां सागरमेखलाम् ।
भीमसेनार्जुनबलाद्भोक्ष्यते नाऽत्र संशयः ॥ १४ ॥
पुत्रास्तव च माद्र्याश्च सर्व एव महारथाः ।
स्वराष्ट्रे विहरिष्यन्ति सुखं सुमनसः सदा ॥ १५ ॥
यक्ष्यन्ति च नरव्याघ्र निर्जित्य पृथिवीमिमाम्।

धृतराष्ट्रके बेटे और तुम, दोनों पक्ष मेरे समान स्नेहके पात्र हो, पर जो पक्ष दीन और बालक होता है, मानवलोग उस परही अधिक स्नेह प्रगट करते हैं । इस हेतु तुम पर इस समय मेरा अधिक स्नेह हो गया है। सुनो, इसीसे मैं तुम्हारा हित कार्य करना चाहता हूं। वह सामने सुन्दर विनारोगका नगर दीख पडता है, वहां हमारे लौटनेकी बाट ताकते हुए छिपकर वसे रहना। (९—११)

वैशम्पायनजी बोले, कि सत्यवतीसुत धर्मात्मा प्रभु व्यासजी पाण्डवोंको भली भांति ढाढस देकर संग लेकर उस देखी जाती हुई एकचक्रा नगरीको जाने लगे और कुन्तीसे भी फिर समझा कर बोले कि ऐ बेटि ! जीती रहो, तेरे पुत्र धर्मशील महात्मा पुरुषोत्तम धर्मराज युधिष्ठिर धर्मानुसार धरतीमण्डलको जय कर पृथ्वी भरके सब भूपोंका शासन करेंगे। इसमें सन्देह नहीं है, कि वह भीमसेन और अर्जुनके भुजबलसे सागरतक भूमण्डलको जीतकर भोग करेंगे । तुम्हारे महारथी पुत्र और माद्रीके कुमारगण सदा अपने राज्यमें प्रसन्न मन होकर सुखसे आनन्द करेंगे। यह राजसिंहगण धरतीमण्डलको जयकर राजसूय और

राजसूयाश्वमेधाद्यैः क्रतुभिर्भूरिदक्षिणैः ॥ १६ ॥
अनुगृह्य सुहृद्वर्गं भोगैश्वर्यसुखेन च ।
पितृपैतामहं राज्यमिमं भोक्ष्यन्ति ते सुताः ॥ १७ ॥
वैशम्पायन उवाच–एवमुक्त्वा निवेश्यैतान्ब्राह्मणस्य निवेशने।
अब्रवीत्पाण्डवश्रेष्ठमृषिर्द्वैपायनस्तदा ॥ १८ ॥
इह मासं प्रतीक्षध्वमागमिष्याम्यहं पुनः ।
देशकालौ विदित्वैव लप्स्यध्वं परमां मुदम् ॥ १९ ॥
स तैः प्राञ्जलिभिः सर्वैस्तथेत्युक्तो नराधिप।
जगाम भगवान्व्यासो यथागतमृषिः प्रभुः॥२०॥[६२७९]

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यामादिपर्वणि हिडिम्बवधपर्वणि व्यासदर्शनेऽष्टपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः ॥१५८॥ समाप्तं च हिडिम्बवधपर्व।

अथ बकवधपर्व।

जनमेजय उवाच– एकचक्रां गतास्ते तु कुन्तीपुत्रा महारथाः।
अत ऊर्ध्वं द्विजश्रेष्ठ किमकुर्वत पाण्डवाः ॥ १ ॥
वैशम्पायन उवाच–एकचक्रां गतास्ते तु कुन्तीपुत्रा महारथाः।
ऊषुर्नातिचिरं कालं ब्राह्मणस्य निवेशने ॥ २ ॥
रमणीयानि पश्यन्तो वनानि विविधानि च।

अश्वमेधादि अनेक प्रचुर दक्षिणायुक्त यज्ञ करेंगे और भोग, ऐश्वर्य तथा सुखसे मित्रवर्गको कृपा दिखाकर परम आनन्दपूर्वक पितामहका राज्य भोगेंगे । (१२-१७)

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि महर्षि द्वैपायन यह कहकर उनको एक ब्राह्मण के घरमें बसाकर युधिष्ठिरसे बोले, कि तुम यहां मेरी अपेक्षामें रहो, मैं फिर आऊंगा। तुम देश कालको समझकर काम करते रहोगे, तो परम हर्ष प्राप्त करोगे। हे नराधिप! उन सबोंने हाथ जोड जोड उनकी बात मान ली। अनन्तर भगवान् महर्षि व्यास जहांसे आये थे, वहांसे पधारे। (१८—२०) [६२६९]

आदिपर्वमें एकसौ अठावन अध्याय और हिडिम्बवध पर्व समाप्त।

आदिपर्वमें एकसौ उनसठ अध्याय और बकवधपर्व।

जनमेजय बोले, कि हे द्विजश्रेष्ठ! उसके पीछे महारथी कुन्तीपुत्र पाण्डवों-ने एकचक्रा नगरीमें रहकर क्या किया? वैशम्पायनजी बोले, कि महारथी कुन्तीपुत्र गण एकचक्रा नगरीमें ब्राह्मणके घर कुछ काल बसे। हे पृथ्वीनाथ!

पार्थिवानपि चोद्देशान्सरितश्च सरांसि च ॥ ३ ॥
चेरुर्भैक्षं तदा ते तु सर्व एव विशाम्पते ।
बभूवुर्नागराणां च स्वैर्गुणैः प्रियदर्शनाः ॥ ४ ॥
निवेदयन्ति स्म तदा कुन्त्या भैक्षं सदा निशि।
तया विभक्तान्भागांस्ते भुञ्जते स्म पृथक्पृथक्॥५ ॥
अर्धं ते भुञ्जते वीराः सह मात्रा परंतपाः ।
अर्धं सर्वस्य भैक्षस्य भीमो भुङ्क्ते महाबलः ॥ ६ ॥
तथा तु तेषां वसतां तस्मिन्राष्ट्रे महात्मनाम् ।
अतिचक्राम सुमहान्कालोऽयं भरतर्षभ ॥ ७ ॥
ततः कदाचिद्भैक्षाय गतास्ते पुरुषर्षभाः ।
संगत्या भीमसेनस्तु तत्राऽऽस्ते पृथया सह ॥ ८ ॥
अथाऽऽर्तिजं महाशब्दं ब्राह्मणस्य निवेशने।
भृशमुत्पतितं घोरं कुन्ती शुश्राव भारत ॥ ९ ॥
रोरूयमाणांस्तान्दृष्ट्वा परिदेवयतश्च सा ।
कारुण्यात्साधुभावाच्च कुन्ती राजन्न चक्षमे ॥ १० ॥
मथ्यमानेन दुःखेन हृदयेन पृथा तदा ।
उवाच भीमं कल्याणी कृपान्वितमिदं वचः ॥ ११ ॥

उन दिनो वे नित्य नाना सुन्दर प्रदेश सरोवर और नदी देखते हुए भिक्षावृत्ति से वहां रहते थे । क्रमशः वे अपने गुणसे नगरवालोंके प्रिय बने । वे दिनको जो भिक्षा पाते थे । कुन्ती उनको उस भिक्षासे मिली हुई वस्तुको अलग अलग बांट देतीथी, तब वे भोजन करते थे। भिक्षासे जो कुछ मिल जाता था, उसका आधा भाग युधिष्टिर अर्जुन, नकुल, सहदेव, और कुन्ती भोजन करते थे और आधाभाग भीमसेन खा लेते थे। (१-६)

हे भरतश्रेष्ठ ! महात्मा पाण्डवोंके इस प्रकार उस राज्यमें वसते हुए कुछ काल बीत गया । अनन्तर एकदिन युधिष्ठिर आदि सब भिक्षाको गये; दैववशसे भीमसेन भिक्षाको न जाकर कुन्ती के साथ घरमें रहे। अनन्तर कुन्तीने उस ब्राह्मणके घरसे अति कटीली रुलाई उठते सुना । हे राजन् ! कुन्ती उनको अत्यन्त रोते और विलपते सुनकर अच्छे स्वभावके कारण चुपचाप बैठे नहीं रह सकी; उसका हृदय दुःखसे पूरित हुआ। (७—११)

वसाम सुसुखं पुत्र ब्राह्मणस्य निवेशने ।
अज्ञाता धार्तराष्ट्रस्य सत्कृता वीतमन्यवः ॥ १२ ॥
सा चिन्तये सदा पुत्र ब्राह्मणस्याऽस्य किं न्वहम् ।
प्रियं कुर्यामिति गृहे यत्कुर्युरुषिताः सुखम् ॥ १३ ॥
एतावान्पुरुषस्तात कृतं यस्मिन्न नश्यति ।
यावच्च कुर्यादन्योऽस्य कुर्यादभ्यधिकं ततः ॥ १४ ॥
तदिदं ब्राह्मणस्याऽस्य दुःखमापतितं ध्रुवम्।
तत्राऽस्य यदि साहाय्यं कुर्यामुपकृतं भवेत्॥ १५ ॥

भीमसेन उवाच— ज्ञायतामस्य यद्दुःखं यतश्चैव समुत्थितम् ।
विदित्वा व्यवसिष्यामि यद्यपि स्यात्सुदुष्करम् १६

वैशम्पायन उवाच—एवं तौ कथयन्तौ च भूयः शुश्रुवतुः स्वनम् ।
आर्तिजं तस्य विप्रस्य सभार्यस्य विशांपते ॥ १७ ॥
अन्तःपुरं ततस्तस्य ब्राह्मणस्य महात्मनः ।
विवेश त्वरिता कुन्ती बद्धवत्सेव सौरभी ॥ १८ ॥

तब कल्याणी कुन्ती भीमसेनसे करुणा भरी बातोंमें बोली, कि बेटा ! हम लोग धृतराष्ट्रके पुत्रोंसे छिपकर इस ब्राह्मणसे सत्कार पाये और शोकरहित होकर सुखसे बस रहे हैं; इससे मैं सदा इस सोचमें रहा करती हूं, कि जिस प्रकार श्रेष्ठ श्रेष्ठ महात्मालोग जिसके घरमें वसते हैं, उसका कोई हित काम कर देते हैं, वैसेही मैं क्योंकर इस ब्राह्मणका पलटेमें उपकार करूं । बेटा ! उपकार करनेसे जो उसके पलटेमें उपकार करता है, वही पुरुष है; और जो जितना उपकार करता है, पलटेमें उसका उतना अधिक उपकार करना चाहिये । मुझको निश्चय जान पडता है, कि इस ब्राह्मणके घरमें कोई दुःख आपडा होगा, उस दुःखके दूर करनेके लिये इनकी कुछ सहायता कर सकें, तौभी पलटेसे उपकार करना होगा । भीमसेन बोले, कि इस ब्राह्मण पर जिस कारण दुःख आ खडा हुआ है; उससे आप ज्ञात होवें; आगे मैं जानलेने पर कठिन भी हो, तो उसके दूर करनेका प्रयत्न करूंगा । (११–१६)

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि हे पृथ्वीनाथ! वे इस प्रकार बात चीत कर रहे थे, कि ऐसे समयमें फिर उस ब्राह्मण और ब्राह्मणी कि कातर रुलाईकी ध्वनि सुन पडी । अनन्तर कुन्तीने इसप्रकार वेगसे कि कामधेनु अपने बछडेके बंधे रहनेसे जिस प्रकार उसके पास जाती है, उस महात्मा ब्राह्मण

ततस्तं ब्राह्मणं तत्र भार्यया च सुतेन च ।
दुहित्रा चैव सहितं ददर्शाऽवनताननम् ॥ १९ ॥

ब्राह्मण उवाच—— धिगिदं जीवितं लोके गतसारमनर्थकम् ।
दुःखमूलं पराधीनं भृशमप्रियभागि च ॥ २० ॥
जीविते परमं दुःखं जीविते परमो ज्वरः ।
जीविते वर्तमानस्य दुःखानामागमो ध्रुवः ॥ २१ ॥
आत्मा ह्येको हि धर्मार्थौ कामं चैव निषेवते।
एतैश्च विप्रयोगोऽपि दुःखं परमनन्तकम् ॥ २२ ॥
आहुः केचित्परं मोक्षं स च नास्ति कथंचन ।
अर्थप्राप्तौ तु नरकः कृत्स्न एवोपपद्यते ॥ २३ ॥
अर्थेप्सुता परं दुःखमार्थप्राप्तौ ततोऽधिकम् ।
जातस्नेहस्य चाऽर्थेषु विप्रयोगे महत्तरम् ॥ २४ ॥
न हि योगं प्रपश्यामि येन मुच्येयमापदः ।
पुत्रदारेण वा सार्धं प्राद्रवेयमनामयम् ॥ २५ ॥
यतितं वै मया पूर्वं वेत्थ ब्राह्मणि तत्तथा ।

के अन्तःपुरमें जाकर देखा, कि ब्राह्मण महाराज मलिन मुख किये बैठे हैं और स्त्री, पुत्र तथा कन्याके सहित कहते हैं, कि यह संसार केवल दुःखकी जड, अन्याधीन और अति हानिकारी है; अतएव ऐसे व्यर्थ जीवन पर धिक्कार है ! देखो, जीने हीसे परम दुःख और परम पीडा भोगनी पडती है, क्यों कि जीते हुए मनुष्यको निश्चय ही दुःख घेर लेता है, एकही आत्मा धर्म अर्थ और काम, इन तीनोंकी एक दूसरेसे विना विरोध किये सेवा नहीं कर सकता है, सो इनके बुरा प्रयोग होने ही से अनन्त दुःख आ गिरता है । (१७–२२)

कोई कोई पण्डित कहते हैं, कि मोक्ष ही श्रेष्ठ है; पर हम संसारके प्रेमी हैं, हमसे वह किसी प्रकार होनेकी संभावना नहीं है, फिर अर्थ पानेके विषयमें भी सब प्रकारसे दुःख भोगना पडता है, देखो उपार्जन की चाह बडी दुःखदायी होती है,और उपार्जन हुआ भी तो औरभी दुःख भोगना पडता है; क्योंकि प्राप्त किये हुए धन पर स्नेह बढ जाता है, सो यदि किसी प्रकार वह अर्थ नष्ट हुआ, तो पूर्वोक्त दुःख से भी अधिक दुःख घेर लेता है । ऐसा कोई उपायभी नहीं दीखता, कि इस विपतसे बचें; अथवा स्त्री पुत्र लेकर कहीं भाग जावें । (२३—२५)

क्षेमं यतस्ततो गन्तुं त्वया तु मम न श्रुतम् ॥ २६ ॥
इह जाता विवृद्धास्मि पिता चापि ममेति वै।
उक्तवत्यासि दुर्मेधे याच्यमाना मयाऽसकृत् ॥ २७ ॥
स्वर्गतोऽपि पिता वृद्धस्तथा माता चिरं तव ।
बान्धवा भूतपूर्वाश्च तत्र वासे तु का रतिः ॥ २८ ॥
सोऽयं ते बन्धुकामाया अशृण्वन्त्या वचो मम।
बन्धुप्रणाशः संप्राप्तो भृशं दुःखकरो मम ॥ २९ ॥
अथवा मद्विनाशोऽयं न हि शक्ष्यामि कंचन।
परित्यक्तुमहं बन्धुं स्वयं जीवन्नृशंसवत् ॥ ३० ॥
सहधर्मचरीं दान्तां नित्यं मातृसमां मम ।
सखायं विहितां देवैर्नित्यं परमिकां गतिम् ॥ ३१ ॥
पित्रा मात्रा च विहितां सदा गार्हस्थ्यभागिनीम्।
वरयित्वा यथान्यायं मन्त्रवत्परिणीय च ॥ ३२ ॥
कुलीनां शीलसंपन्नामपत्यजननीमपि ।
त्वामहं जीवितस्यार्थे साध्वीमनपकारिणीम् ॥ ३३ ॥

ब्राह्मणि ! स्मरण करके देखो, कि जहां जहां मङ्गल होना था, मैं तहां जानेका प्रयत्न किया करता था, उस समय तुम मेरी बात पर ध्यान नहीं धरती थी। वह कुबुद्धि तुम्हारी ही है, कि जब कि मेरे बार बार अन्य स्थानमें जानेको चाहने परभी तुमने कहा था, कि "यह मेरी पैत्रिक भूमि है, यहां मैं जन्म लेकर बुढिया होगयी हूं, इसको त्याग नहीं सकती" प्यारी! तुम्हारे पिता, माता और पहिलेके बान्धवोंके स्वर्ग पाने पर बहुत दिन बीत गये थे, तिस परभी क्यों तुमने यहां वसना चाहा था ? (२६—२८)

तुमने जिस प्रकार बन्धुकी कामनासे मेरी बात पर ध्यान नहीं दिया था, वैसेही अब तुम्हारे बन्धुनाशका समय आ पहुंचा है, इससे मुझको बडा दुःख हो रहा है, यहां तक, कि इस समय मेराही नाश उपस्थित हुआ है; क्योंकि मैं स्वयं जीता रहकर किसी प्रकार बन्धुको त्याग नहीं सकूंगा। तुम मेरी सहधर्मचारिणी, नित्य माता समान स्नेहकरनेवाली, गुणवती और परमागति हुई हो। देवोंने तुम्हें मेरी मित्र सदृश निश्चय कर दिया है; पिता माताने तुमको गार्हस्थ्य धर्मभागिनी बनाया है, और तुम कुलीना, शीलवती, सन्तान की जननी साध्वी,

परित्यक्तुं न शक्ष्यामि भार्यां नित्यमनुव्रताम्।
कुत एव परित्यक्तुं सुतं शक्ष्याम्यहं स्वयम्॥ ३४ ॥
बालमप्राप्तवयसमजातव्यञ्जनाकृतिम् ।
भर्तुरर्थाय निक्षिप्तां न्यासं धात्रा महात्मना॥ ३५ ॥
यथा दौहित्रजाँल्लोकानाशंसे पितृभिः सह।
स्वयमुत्पाद्य तां बालां कथमुत्स्रष्टुमुत्सहे ॥ ३६ ॥
मन्यन्ते केचिदधिकं स्नेहं पुत्रे पितुर्नराः ।
कन्यायां केचिदपरे मम तुल्यावुभौ स्मृतौ॥ ३७॥
यस्यां लोकाः प्रसूतिश्च स्थिता नित्यमथो सुखम्।
अपापां तामहं बालां कथमुत्स्रष्टुमुत्सहे ॥ ३८ ॥
आत्मानमपि चोत्सृज्य तप्स्यामि परलोकगः।
त्यक्ता ह्येते मया व्यक्तं नेह शक्ष्यन्ति जीवितुम्॥३९॥
एषां चान्यतमत्यागो नृशंसो गर्हितो बुधैः।
आत्मत्यागे कृते चेमे मरिष्यन्ति मया विना॥ ४० ॥

श्रमकारिणी और सदा व्रत-शीला भार्या हो; पहिले वरणपूर्वक यथा-विधि तुम्हारा पाणिग्रहण कर इस समय अपने जीवन की रक्षाके हेतु क्योंकर त्याग दूंगा ? २९-३४

फिर जिस बालककी आज तक दाढी मूछ नहीं निकली है,ऐसे अल्प अवस्था-के पुत्रहीको वा क्योंकर मैं स्वयं त्याग दे सकता हूं? महात्मा विधाताने सुयोग्य भर्त्ताके हाथमें सौंपनेके लिये जिस कन्याको न्यायपूर्वक मेरे पास रख दिया है, जिस कन्यासे मैं पितरोंके साथ दौहित्रज लोकके पानेकी आशा रखता हूं, उस बालिकाको जन्मा कर क्योंकर स्वयं त्याग देनेको उद्यत होऊं। कोई कहा करते हैं, कि पिताका पुत्रहीं पर अधिक स्नेह होता है, और कोई कोई कहते हैं, कि कन्याही पर अधिक स्नेह होता है, पर मेरे लिये दोनों समान हैं। जिससे सुगति मिलती है, जिससे वंशकी रक्षा होती है, और जिससे नित्य सुख मिलता है, उस पापकी छूतसे रहित बालिकाको क्योंकर त्याग देनेका साहस करूं। (३४-३८)

मैं यदि अपने जीवनकी बलि चढाके परलोकको सिधारूं,तौभी दुःखी होऊंगा; क्योंकि मेरे इनको छोड जानेसे यह कभी नहीं जी सकेंगे। इसमेंसे किसी एकको भी त्याग देना बडा अनुचित और निष्ठुर काम होगा; और अपना जीवन त्यागने से भी यह मेरे बिना जीवन देंगे; अतएव

स कृच्छ्रामहमापन्नो न शक्तस्तर्तुमापदम् ।
अहो धिक्कां गतिं त्वद्य गमिष्यामि सबान्धवः॥४१॥
सर्वैः सह मृतं श्रेयो न च मे जीवितं क्षमम् ॥ ४२ ॥ [६३११]

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यामादिपर्वणि बकवधपर्वणि ब्राह्मणचिन्तायामूनषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १५९ ॥

ब्राह्मण्युवाच— न संतापस्त्वया कार्यः प्राकृतेनेव कर्हिचित् ।
न हि संतापकालोऽयं वैद्यस्य तव विद्यते ॥ १ ॥
अवश्यं निधनं सर्वैर्गन्तव्यमिह मानवैः ।
अवश्यं भाविन्यर्थे वै संतापो नेह विद्यते ॥ २ ॥
भार्या पुत्रोऽथ दुहिता सर्वमात्मार्थमिष्यते ।
व्यथां जहि सुबुध्या त्वं स्वयं यास्यामि तत्र च॥ ३ ॥
एतद्धि परमं नार्याः कार्यं लोके सनातनम् ।
प्राणानपि परित्यज्य यद्भर्तृहितमाचरेत् ॥ ४ ॥
तच्च तत्र कृतं कर्म तवाऽपीदं सुखावहम् ।
भवत्यमुत्र चाऽक्षय्यं लोकेऽस्मिंश्च यशस्करम्॥ ५ ॥
एष चैव गुरुर्धर्मो यं प्रवक्ष्याम्यहं तव ।

मैं गहरी विपतमें पडा हूं। हाय! विपत से बचनेका उपाय नहीं दीखता! अहो मुझपर धिक्कार है! आज परिवार सहित मेरी कोई गति नहीं है, सो परिवार सहित जीवन छोडनाही मेरे लिये मङ्गलदायी है; मेरा जीवित रहना कभी उचित नहीं है। (३९-४२) [६३११]

आदिपर्वमें एकसौ उनसठ अध्याय समाप्त।

आदिपर्वमें एकसौ साठ अध्याय ।

ब्राह्मणी बोली, कि हे ब्राह्मण! साधारण मनुष्यकी भांति शोक करना कदापि आपको नहीं सोहता है; क्योंकि आप विद्वान हैं।। अब दुःख करनेका समय नहीं है। भूमण्डल परके सब लोगोंको अवश्यही मरना पडेगा, अतएव अवश्य होनेवाले विषयका दुःख करना उचित नहीं है। लोग अपने सुखके लिये ही स्त्री, पुत्र, कन्या, इन सबोंकी प्रार्थना करते हैं, अतएव अपनी सुबुद्धिसे मनःपीडा त्याग देवें,मैं स्वयं वहां जाऊंगी। संसारमें नारीके लिये सनातन धर्म यही है, कि वह प्राण दे करकेभी पतिका हित करेगी; अतएव उस कर्मके किये जाने पर वह इस लोकमें यशदेनेवाला और परलोकमें अक्षय तथा आपका भी सुखदायी होगा। (१—५)

अर्थश्च तव धर्मश्च भूयानत्र प्रदृश्यते ॥ ६ ॥
यदर्थमिष्यते भार्या प्राप्तः सोऽर्थस्त्वया मयि।
कन्या चैका कुमारश्च कृताऽहमनृणा त्वया ॥ ७ ॥
समर्थः पोषणे चापि सुतयो रक्षणे तथा ।
न त्वहं सुतयोः शक्ता तथा रक्षणपोषणे ॥ ८ ॥
मम हि त्वद्विहीनायाः सर्वप्राणधनेश्वर ।
कथं स्यातां सुतौ बालौ भवेयं च कथं त्वहम् ॥ ९ ॥
कथं हि विधवाऽनाथा बालपुत्रा विना त्वया।
मिथुनं जीवयिष्यामि स्थिता साधुगते पथि ॥ १० ॥
अहंकृतावलिप्तैश्च प्रार्थ्यमानामिमां सुताम्।
अयुक्तैस्तव संबन्धे कथं शक्ष्यामि रक्षितुम् ॥ ११ ॥
उत्सृष्टमामिषं भूमौ प्रार्थयन्ति यथा खगाः ।
प्रार्थयन्ति जनाः सर्वे पतिहीनां तथा स्त्रियम् ॥ १२ ॥
साहं विचाल्यमाना वै प्रार्थ्यमाना दुरात्मभिः।
स्थातुं पथि न शक्ष्यामि सज्जनेष्टे द्विजोत्तम ॥ १३ ॥
कथं तव कुलस्यैकामिमां बालामनागसम् ।
पितृपैतामहे मार्गे नियोक्तुमहमुत्सहे ॥ १४ ॥

हे द्विजश्रेष्ठ ! मैं जो कहती हूं, वह श्रेष्ठ धर्म है ; ऐसा करनेसे आपके लिये भी प्रचुर धर्म और अर्थका कार्य होगा। देखिये, जिस अभिप्रायसे स्त्रीकी प्रार्थना की जाती है, वह मुझसे आपको सिद्ध होगयी है; मैं आपसे पुत्र और कन्या प्रसव कर उऋण हो चुकी हूं । आप इस पुत्र और कन्याके पालने पोषने और देखने भालनेको समर्थ हैं ; मुझसे वह भली प्रकार सिद्ध होना कदापि संभव नहीं है । आप मेरे प्राण और धन सबके ईश्वर हैं, आपके बिना मैं क्योंकर जीऊंगी ? और आपके न रहनेसे क्योंकर दो शिशु सन्तान जी सकेंगी ? आपके बिना मैं विधवा और अनाथ होकर जीती रहनेसे भी क्योंकर सुपथमें रहकर इन दो बच्चोंको जिला सकूंगी ? (६–१०)

आपके साथ वैवाहिक सम्बन्धके अयोग्य कलङ्कित और गर्वित जन यदि आपकी इस कन्याकी प्रार्थना करें, तो मैं क्योंकर उसकी रक्षा कर सकूंगी ? जिस प्रकार पक्षी मिट्टीपर पडी हुई मछली को चाहते हैं, वैसेही मनुष्यगण पतिहीना रमणीकी कामना करते हैं । हे द्विजश्रेष्ठ

कथं शक्ष्यामि बालेऽस्मिन्गुणानाधातुमीप्सितान्।
अनाथे सर्वतो लुप्ते यथा त्वं धर्मदर्शिवान्॥ १५॥
इमामपि च ते बालामनाथां परिभूय माम्।
अनर्हाः प्रार्थयिष्यन्ति शूद्रा वेदश्रुतिं यथा॥ १६॥
तां चेदहं न दित्सेयं त्वद्गुणैरुपबृंहिताम्।
प्रमथ्यैनां हरेयुस्ते हविर्ध्वांक्षा इवाऽध्वरात्॥ १७॥
संप्रेक्षमाणा पुत्रं ते नाऽनुरूपमिवाऽऽत्मनः।
अनर्हवशमापन्नामिमां चापि सुतां तव॥ १८॥
अवज्ञाता च लोकेषु तथाऽऽत्मानमजानती।
अवलिप्तैर्नरैर्ब्रह्मन्मरिष्यामि न संशयः॥ १९॥
तौ च हीनौ मया बालौ त्वया चैव तथाऽऽत्मजौ।
विनश्येतां न सन्देहो मत्स्याविव च लक्षये॥ २०॥
त्रितयं सर्वथाऽप्येवं विनशिष्यत्यसंशयम्।
त्वया विहीनं तस्मात्त्वं मां परित्यक्तुमर्हसि॥ २१॥

मेरे पतिहीना होनेसे दुरात्मा लोग मेरी कामना कर मेरे चित्तको टाल सकते हैं, ऐसा होनेसे मैं क्योंकर साधुओं के अभीष्ट पथमें रह सकूंगी ? और क्योंकर आपके वंशकी एकही कन्या इस निर्दोषी बालाको पितृ पितामहोंके पथमें नियोग कर सकूंगी और क्योंकर फिर उस पूरे अभावके कालमें इस पितृहीन अनाथ बालकको आप जैसे धर्मज्ञ हैं,उसके योग्य वाञ्छित विद्या पढा सकूंगी ? (११-१५)

अयोग्य जन, मुझको हरा कर, शूद्रों के वेद सुनानेकी प्रार्थनाके सदृश इस अनाथ बालाको मांगेगे, तिस पर आपके गुणोंसे सुहावनी इस कन्याको यदि मैं अयोग्य वरको देना चाहूं, तो कौआ जैसे यज्ञकी वस्तु लूट खाता है, तैसेही वे लूट कर इसको बलपूर्वक हर ले जायंगे। हे ब्रह्मन् ! तब मैं लोकोंमें अनादर की पात्री होऊंगी, और नहीं कह सकती, कि मेरी कैसी कुगति होगी; ऐसी दशामें आपके पुत्रको आपके असदृश होते और आपकी कन्याको अयोग्य जनके वशमें जाते देखकर, इसमें सन्देह नहीं हैं, कि मैं प्राण छोडूंगी अब कुछभी सन्देह नहीं कि आपके और मेरे विना यह दो बच्चे बिन जलकी मछलीकी भांति प्राण छोडेंगे;अतएव समझलेव कि आपके न रहने से मैं और दो बच्चे इन तीनों हीके जीवन निश्चय नष्ट होंगे;सो मेरी समझमें मुझको त्याग देनाही आपको उचित है। १६-२१

व्युष्टिरेषा परा स्त्रीणां पूर्वं भर्तुः परां गतिम् ।
गन्तुं ब्रह्मन्सपुत्राणामिति धर्मविदो विदुः ॥ २२ ॥
परित्यक्तः सुतश्चाऽयं दुहितेयं तथा मया ।
बान्धवाश्च परित्यक्तास्त्वदर्थं जीवितं च मे ॥ २३ ॥
यज्ञैस्तपोभिर्नियमैर्दानैश्च विविधैस्तथा ।
विशिष्यते स्त्रिया भर्तुर्नित्यं प्रियहिते स्थितिः॥२४॥
तदिदं यच्चिकीर्षामि धर्मं परमसंमतम् ।
इष्टं चैव हितं चैव तव चैव कुलस्य च ॥ २५ ॥
इष्टानि चाप्यपत्यानि द्रव्याणि सुहृदः प्रियाः।
आपद्धर्मप्रमोक्षाय भार्या चापि सतां मतम् ॥ २६ ॥
आपदर्थे धनं रक्षेद्दारान्रक्षेद्धनैरपि ।
आत्मानं सततं रक्षेद्दारैरपि धनैरपि ॥ २७ ॥
दृष्टादृष्टफलार्थं हि भार्या पुत्रो धनं गृहम् ।
सर्वमेतद्विधातव्यं बुधानामेष निश्चयः ॥ २८ ॥
एकतो वा कुलं कृत्स्नमात्मा वा कुलवर्धन ।
न समं सर्वमेवेति बुधानामेष निश्चयः ॥ २९ ॥

हे ब्रह्मन्! धर्म जाननेवाले लोग कहा करते हैं, कि पुत्रवाली स्त्रियां यदि पतिके पहिले परलोक को सिधारें, तो वह उनके लिये बडा भारी सौभाग्य है। मैं आपके हित केलिये पुत्र, कन्या, बान्धव और जीवन सब त्यागनेको उद्यत हुई हूं। स्त्रियोंकेलिये नाना यज्ञ, तप, नियम और दान इन सब कामों से सदा पतिका प्रिय और हित करनाही अधिक फल दायी है; सो मैंने जिसका, करना ठान लिया है, वही इष्ट परमधर्म और आपके तथा आपके वंशका मंगल करनेवाला है; पंण्डितोंका मत यह है, कि स्त्री, पुत्र, प्यारे मित्र और अर्थ चाहे जितनी इष्ट वस्तु क्यों न हो, वह सब विपतसे बचनेके लिये रखी जाती हैं; और विपतसे बचनेके लिये धनको रखना चाहिये; धनके द्वारा स्त्रीको बचाना और आत्माको चाहे धनके द्वारा हो वा स्त्रीके द्वारा हो, सदा रक्षा करनी चाहिये। (२२—२७)

पण्डितोंने निश्चय किया है, कि दृष्ट और अदृष्ट दोनों फलों हीके लिये स्त्री, पुत्र धन और गृह यह सब करना चाहिये एक ओर सम्पूर्ण कुलको और दूसरी ओर आत्माको रखकर तौल करनेसे, सम्पूर्ण कुलभी आत्माके समान नहीं होते;अतएव

स कुरुष्व मया कार्यं तारयाऽऽत्मानमात्मना।
अनुजानीहि मामार्य सुतौ मे परिपालय ॥ ३० ॥
अवध्यां स्त्रियमित्याहुर्धर्मज्ञा धर्मनिश्चये।
धर्मज्ञाद्राक्षसानाहुर्न हन्यात्स च मामपि॥ ३१ ॥
निःसंशयो वधः पुंसां स्त्रीणां संशयितो वधः।
अतो मामेव धर्मज्ञ प्रस्थापयितुमर्हसि॥ ३२ ॥
भुक्तं प्रियाण्यवाप्तानि धर्मश्च चरितो महान्।
त्वत्प्रसूतिः प्रिया प्राप्ता न मां तप्स्यत्यजीवितम्३३॥
जातपुत्रा च वृद्धा च प्रियकामा च ते सदा।
समीक्ष्यैतदहं सर्वं व्यवसायं करोम्यतः ॥ ३४ ॥
उत्सृज्याऽपि हि मामार्य प्राप्स्यस्यन्यामपि स्त्रियम्।
ततः प्रतिष्ठितो धर्मो भविष्यति पुनस्तव॥ ३५ ॥
न चाऽप्यधर्मः कल्याण बहुपत्नीकता नृणाम्।
स्त्रीणामधर्मः सुमहान्भर्तुः पूर्वस्य लङ्घने ॥ ३६ ॥
एतत्सर्वं समीक्ष्य त्वमात्मत्यागं च गर्हितम्।

हे आर्य! आप मुझसे काल पूरा कर लीजिये। बुद्धिके अनुसार अपनी रक्षा कीजिये मुझको जानेकी आज्ञा दीजिये; आप इन दो सन्तानों का पालन करना। (२८—३०)

धर्म जाननेवालोंने कहा है,कि स्त्रियोंका वध नहीं करना चाहिये और राक्षस लोग धर्मके जानकार होते हैं, सो वह राक्षस मुझको न मारकर त्यागभी दे सकता है। हे धर्मज्ञ! जब कि वहां पुरुषका वध निश्चय है और स्त्रीके वधके विषयमें सन्देह है, तब मुझकोही भेजना योग्य है। मैंने बहुत सुख कर लिया है, मेरे बहुत कुछ प्रियकार्य हो गये हैं, मैंने बहुत धर्मार्जन किया है, और आपसे प्यारी सन्तानभी पाचुकी हूं, अब जीवन छोडनेमें मुझे दुःख नहीं है। मेरी सन्तान हुई हैं, मैं बुढाय गयी हूं, और आपके प्रिय कार्य करनेमें सदासे मेरी चेष्टा है, इन सबोंकी आलोचना करके ही ऐसा निश्चय कर किया है। (३१-३४)

आप मुझको त्याग देकर दूसरी स्त्री पा सकेंगे; ऐसा करनेसे आपका धर्मभी फिर प्रतिष्ठित होगा; हे मङ्गलमय! पुरुष को अधिक स्त्री कर लेनेमे भी अधर्म नहीं होता। पर स्त्रीके पूर्वपतिको छोडकर अन्य पुरुषके वशमें जानेसे बडा अधर्म होता है। आप इन सबोंकी भली

आत्मानं तारयाऽस्याऽऽशु कुलं चेमौ च दारकौ॥३७॥

वैशम्पायन उवाच—एवमुक्तस्तया भर्ता तां समालिङ्ग्य भारत।
मुमोच बाष्पं शनकैः सभार्यो भृशदुःखितः॥३८॥[६२३९]

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यामादिपर्वणि बकवधपर्वणि
ब्राह्मणीवाक्ये षष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १६० ॥

वैशम्पायन उवाच—तयोर्दुःखितयोर्वाक्यमतिमात्रं निशम्य तु।
ततो दुःखपरीताङ्गी कन्या तावभ्यभाषत॥ १ ॥
किमेवं भृशदुःखार्तौ रोरूयेतामनाथवत्।
ममापि श्रूयतां वाक्यं श्रुत्वा च क्रियतां क्षमम्॥२॥
धर्मतोऽहं परित्याज्या युवयोर्नाऽत्र संशयः।
त्यक्तव्यां मां परित्यज्य त्रातं सर्वं मयैकया॥ ३ ॥
इत्यर्थमिष्यतेऽपत्यं तारयिष्यति मामिति।
अस्मिन्नुपस्थिते काले तरध्वं प्लववन्मया॥ ४ ॥
इह वा तारयेद्दुर्गादुत वा प्रेत्य भारत।
सर्वथा तारयेत्पुत्रः पुत्र इत्युच्यते बुधैः॥ ५ ॥
आकाङ्क्षन्ते च दौहित्रान्मयि नित्यं पितामहाः।

प्रकार आलोचना करके अपना नाश करना अनुचित मानकर अपने कुल, इन दो बच्चे और आत्माकी रक्षा करो। वैशम्पायनजी बोले, कि हे भारत! वह ब्राह्मण ब्राह्मणीकी यह बातें सुनकर इसको गले लगाकरके उसके साथ अति दुःखी चित्तसे आंसू बहाने लगा। (३५—३८)[६२४९]

आदिपर्वमें एकसौ साठ अध्याय समाप्त।

आदिपर्वमें एकसौ एकसठ अध्याय।

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि अनन्तर कन्या उन दुःखी पितामाताकी बात आद्योपान्त सुनकर खेदयुक्त चित्तसे बोली, कि आप क्यों अति दुःखी होकर अनाथके समान रो रहे हैं? संप्रति मेरी बात सुनकर जो उचित हो, करें। इसमें सन्देह नहीं है, कि आप धर्म के अनुसार मुझको कभी न कभी अवश्य त्याग देंगे, सो मेरे समान अवश्य छोडी जानेवाली को त्याग देकर सबकी रक्षा करें। "सन्तानसे तरेंगे" ऐसा समझ करके ही लोग सन्तान की कामना करते हैं; अतएव आप इस कन्या रूपी नावसे वर्तमान विपतके समुद्र को पार करें। (१—४)

आत्मजसे लोग इस लोक और परलोक सर्वत्र विपतसे उद्धार होजाते हैं,

तत्स्वयं वै परित्रास्ये रक्षन्ती जीवितं पितुः ॥ ६ ॥
भ्राता च मम बालोऽयं गते लोकममुं त्वयि।
अचिरेणैव कालेन विनश्येत न संशयः ॥ ७ ॥
तातेऽपि हि गते स्वर्गं विनष्टे च ममाऽनुजे।
पिण्डः पितॄणां व्युच्छिद्येत्तत्तेषां विप्रियं भवेत् ॥८॥
पित्रा त्यक्ता तथा मात्रा भ्रात्रा चाऽहमसंशयम्।
दुःखाद्दुःखतरं प्राप्य म्रियेयमतथोचिता ॥ ९ ॥
त्वयि त्वरोगे निर्मुक्ते माता भ्राता च मे शिशुः।
सन्तानश्चैव पिण्डश्च प्रतिष्ठास्यत्यसंशयम् ॥ १० ॥
आत्मा पुत्रः सखा भार्या कृच्छ्रं तु दुहिता किल।
स कृच्छ्रान्मोचयाऽऽत्मानं मां च धर्मे नियोजय ११॥
अनाथा कृपणा बाला यत्र क्वचन गामिनी।
भविष्यामि त्वया तात विहीना कृपणा सदा॥१२॥
अथवाऽहं करिष्यामि कुलस्याऽस्य विमोचनम्।
फलसंस्था भविष्यामि कृत्वा कर्म सुदुष्करम् ॥१३॥
अथवा यास्यसे तत्र त्यक्त्वा मां द्विजसत्तम।

इस लिये पण्डित लोग उसको पुत्र कहा करते हैं, पितृलोकोंके उद्धारके निमित्त ही मुझसे नाती की आशा करते हैं, पर मैं नाती की अपेक्षा न करके स्वयं पिताका जीवन बचा कर उनका उद्धार करूंगी! हे पिता! यदि आप परलोकको सिधारें, तो इसमें सन्देह नहीं है; कि मेरा शिशु भाई स्वल्प कालहीके बीचमें कालके वशमें होजायगा, आपके और भाईके न रहनेसे एक बारही पितरोंका पिण्डा लोप होकर बडा अनिष्ट होगा; और मैं तब पिता और भ्राताके बिना बडी दुःखी हूंगी। मैं तब दुःख पाकर अनुचित मृत्युके वशमें हो जाऊंगी। (५–९)

आपके स्वस्थ होकर इस विपतसे एकबारही मुक्त होनेसे माता, शिशु, भ्राता, वंश और सब रक्षित होंगे। विचारिये, कि पुत्र अपना स्वरूप, स्त्री मित्रका स्वरूप और कन्या कष्टका स्वरूप है। सो कष्टके स्वरूप कन्याके द्वारा अपनी रक्षा करें, मुझको धर्ममें नियुक्त कर देवें। हे पिता! मैं बालिका हूं, सो आपके बिना अनाथ और दीन होकर सदा जहां तहां जाना पडेगा; अतएव मैं इस कठिन कामको कर कुलकी रक्षा पूर्वक फल प्राप्त करुंगी। हे द्विजश्रेष्ठ! यदि आप मुझे

पीडिताऽहं भविष्यामि तदवेक्षस्व मामपि ॥ १४ ॥
तदस्मदर्थं धर्मार्थं प्रसवार्थं च सत्तम　।
आत्मानं परिरक्षस्व त्यक्तव्यां मां च संत्यज ॥१५ ॥
अवश्यकरणीये च मा त्वां कालोऽत्यगादयम् ।
किं त्वतः परमं दुःखं यद्वयं स्वर्गते त्वयि ॥ १६ ॥
याचमानाः परादन्नं परिधावेमहि श्ववत्　।
त्वयि त्वरोगे निर्मुक्ते क्लेशादस्मात्सबान्धवे ।
अमृतेव सती लोके भविष्यामि सुखान्विता ॥ १७॥
इतः प्रदाने देवाश्च पितरश्चेति नः श्रुतम्　।
त्वया दत्तेन तोयेन भविष्यन्ति हिताय वै ॥ १८ ॥
वैशम्पायन उवाच—एवं बहुविधं तस्या निशम्य परिदेवितम्　।
पिता माता च सा चैव कन्या प्ररुरुदुस्त्रयः॥ १९ ॥
ततः प्ररुदितान्सर्वान्निशम्याऽथ सुतस्तदा　।
उत्फुल्लनयनो बालः कलमव्यक्तमब्रवीत्　॥ २० ॥
मा पितः रुन्द मा मातर्मा स्वसस्त्विति चाऽब्रवीत् ।

छोडकर उस राक्षसके आगे जांय, तो मैं बडी कातर हूंगी, अतएव मुझ पर कृपा-दृष्टि करें। (१०—१४)

हे श्रेष्ठ ! मुझको, धर्म और वंशको बचानेके लिये अपनी रक्षा करें। एक समय मुझको तो त्यागनाही पडेगा, फिर अबही त्याग देनेमें क्या हानि है। अवश्य किये जानेवाले कामके लिये काल गंवाना उचित नहीं है। इससे अधिक दुःखकी बात क्या होगी, कि आपके स्वर्गको सिधारने पर हमको सदा अन्न मांग मांग कर कुत्तोंकी नाई फिरना पडेगा, और आपके बान्धवोंके समेत इस दुःखसे मुक्त और स्वस्थ होनेसे अमर लोकमें सुखसे बस सकूंगी। यह भी हमारा सुना हुआ है, कि ऐसे अनुचित काममें कन्या देदेने परभी पितरोंको जल देनेसे वे हित करनेवाले बने रहते हैं; अतएव आप इस काममें मुझको सौंप देकर स्वयं जीवित रहके यदि पितरोंको जल दें, तो वे हित करनेवाले होंगे। (१५-१८)

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि उस कन्याकी इस प्रकार नाना दुःखभरी बातें सुनकर पिता, माता और कन्या तीनों रोने लगे। अनन्तर बालक पुत्र उन सबोंको रोते देखकर प्रसन्न नेत्र और हंसते हुए मुखसे मीठी और अस्पष्ट बातोंमें कहने लगा, कि बाबा ! मत

प्रहसन्निव सर्वांस्तानेकैकमनुसर्पति ॥ २१ ॥
ततः स तृणमादाय प्रहृष्टः पुनरब्रवीत् ।
अनेनाऽहं हनिष्यामि राक्षसं पुरुषादकम् ॥ २२ ॥
तथापि तेषां दुःखेन परीतानां निशाम्य तत् ।
बालस्य वाक्यमव्यक्तं हर्षः समभवन्महान् ॥ २३ ॥
अयं काल इति ज्ञात्वा कुन्ती समुपसृत्य तान् ।
गतासूनमृतेनेव जीवयन्तीदमब्रवीत् ॥ २४ ॥ [६३६३]

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यामादिपर्वणि बकवधपर्वणि ब्राह्मणकन्यापुत्रवाक्ये एकषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १६१ ॥

कुन्त्युवाच— कुतोमूलमिदं दुःखं ज्ञातुमिच्छामि तत्त्वतः।
विदित्वाऽप्यपकर्षेयं शक्यं चेदपकर्षितुम् ॥ १ ॥

ब्राह्मण उवाच— उपपन्नं सतामेतद्यद्ब्रवीषि तपोधने ।
न तु दुःखमिदं शक्यं मानुषेण व्यपोहितुम् ॥ २ ॥
समीपे नगरस्याऽस्य बको वसति राक्षसः ।
ईशो जनपदस्याऽस्य पुरस्य च महाबलः ॥ ३ ॥
पुष्टो मानुषमांसेन दुर्बुद्धिः पुरुषादकः ।
रक्षत्यसुरराट् नित्यमिमं जनपदं बली ॥ ४ ॥

रोओ। मायी! मत रो। बहिन! मत रो। यह कहता हुआ इरेकके पास एक एक बार जाने लगा। आगे एक तृण उठाकर आनन्दसे फिर बोला, कि इनसे मैं उस राक्षस को मारूंगा। उसके पिता, माता और बहिन यद्यपि बडे दुःखसे कातर थीं, तौभी उस समय उस बालककी अस्पष्ट बात सुनकर उनको बडा हर्ष हुआ। अनन्तर कुन्ती यह समझकर, कि " यह अभिप्राय प्रकाश करनेका समय है " उनके निकट जा पहुंची। अनन्तर मरे हुओंको अमृतसे जिलाने की नाई उनसे बोलने लगी। (१९-२४) [६३७३]

आदि पर्वमें एकसौ एकसठ अध्याय समाप्त।

आदि पर्वमें एकसौ बासठ अध्याय।

कुन्ती बोली, मैं जानना चाहती हूं, कि ऐसे दुःखका कारण क्या है? क्योंकि यदि उससे पार पानेका उपाय बन पडे, तो करूंगी। ब्राह्मण बोले, कि ऐ तपोधने! तुम जो कहती हो, वह साधुओंके योग्यही है; पर यह दुःख दूर करना मनुष्यकी शक्तिके बाहर है। इस नगरके निकट बक नामक एक महाबली राक्षस रहता है; वह पुरुषादक इस नगर और प्रदेश का

नगरं चैव देशं च रक्षोबलसमन्वितः ।
तत्कृते परचक्राच्च भूतेभ्यश्च न नो भयम् ॥ ५ ॥
वेतनं तस्य विहितं शालिवाहस्य भोजनम्।
महिषौ पुरुषश्चैको यस्तदादाय गच्छति ॥ ६ ॥
एकैकश्चापि पुरुषस्तत्प्रयच्छति भोजनम् ।
स वारो बहुभिर्वर्षैर्भवत्यसुकरो नरैः ॥ ७ ॥
तद्विमोक्षाय ये केचिद्यतन्ति पुरुषाः क्वचित् ।
सपुत्रदारांस्तान्हत्वा तद्रक्षो भक्षयत्युत ॥ ८ ॥
वेत्रकीयगृहे राजा नाऽयं नयमिहाऽऽस्थितः ।
उपायं तं न कुरुते यत्नादपि स मन्दधीः ॥ ९ ॥
अनामयं जनस्याऽस्य येन स्यादद्य शाश्वतम्॥१० ॥
एतदर्हा वयं नूनं वसामो दुर्बलस्य ये ।
विषये नित्यमुद्विग्नाः कुराजानमुपाश्रिताः ॥ ११ ॥
ब्राह्मणाः कस्य वक्तव्याः कस्य वा छन्दचारिणः ।
गुणैरेते हि वत्स्यन्ति कामगाः पक्षिणो यथा ॥१२॥

अधीश है, मनुष्य मांससे पुष्ट, बली और दुष्टबुद्धि वह असुरराज सदा इस देशकी रक्षा करता है। इस देशके राक्षसी बलसे रक्षित होनेके कारण अन्य देश वा किसी प्राणीसे हमारे भयकी सम्भावना नहीं है। (१—५)

एक गाडी अन्न और दो भैंसे और वह मनुष्य जो उन्हें ले जाता है, यह सब उस राक्षसके भोजनके लिये वेतनके स्वरूपमें निर्दिष्ट हैं, इस देश का हरेक गृहस्थ अपनी अपनी बारीमें एक एक दिनके हिसाबसे नित्य वह भोजन पहुंचाता है। बहुत वर्षोंके पीछे एक एक गृहस्थके लिये यह कठोर बारी आजाती है। यदि कभी कोई इससे बचनेकी चेष्टा करता है, तो वह राक्षस स्त्री पुत्रोंके साथ उसको मार कर खाजाता है। (६-८)

इस स्थलमें वेत्रकीय गृह नामक स्थान में एक राजा है, वह बुद्धिहीन भूप नीतिको आश्रय नहीं करता; यद्यपि राक्षसके वधके लिये वह स्वयं असमर्थ है, पर यत्नसे ऐसा कोई उपाय नहीं ढूंढता, कि इन सब लोगोंके लिये सदा कुशल हो जाय। हमलोग जब उस दुर्बल बुरे राजाके भरोसे सदा भयभीत होकर के भी उसके अधिकारमें रहते हैं, तब अवश्य ही इस दुःखके भोगनेके योग्य हैं। देखो, ब्राह्मणको कोई अपनी भूमिमें

राजानं प्रथमं विन्देत्ततो भार्यां ततो धनम्।
त्रयस्य संचयेनाऽस्य ज्ञातीन्पुत्रांश्च तारयेत् ॥ १३॥
विपरीतं मया चेदं त्रयं सर्वमुपार्जितम्।
तदिमामापदं प्राप्य भृशं तप्यामहे वयम् ॥ १४॥
सोऽयमस्माननुप्राप्तो वारः कुलविनाशनः।
भोजनं पुरुषश्चैकः प्रदेयं वेतनं मया ॥ १५॥
न च मे विद्यते वित्तं संक्रेतुं पुरुषं क्वचित्।
सुहृज्जनं प्रदातुं च न शक्ष्यामि कदाचन ॥ १६॥
गतिं चैव न पश्यामि तस्मान्मोक्षाय रक्षसः।
सोऽहं दुःखार्णवे मग्नो महत्यसुकरे भृशम् ॥ १७॥
सहैवैतैर्गमिष्यामि बान्धवैरद्य राक्षसम्।
ततो नः सहितान्क्षुद्रः सर्वानेवोपभोक्ष्यति॥ १८॥ [६३८१]

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यामादिपर्वणि बककधपर्वणि कुन्तीप्रश्ने द्विषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः ॥१६२॥
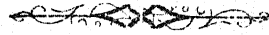
बसा नहीं सकता, क्योंकि वे किसीकी इच्छासे नहीं चलते। वे अपने गुणसे कामचारी पक्षीके सदृश मनमाना वास करते हैं, पर मैंने उसका विपरीत काम किया है और कहाभी है, कि "पहिले भूप, तब स्त्री और पीछे धनार्जन करना, इन तीन विषयोंके सञ्चित होने पर ज्ञाति और पुत्रोंका उद्धार होता है।" इन तीन विषयोंके उपार्जनके विषयमें भी मैंने बडा विपरीत काम किया है; सो अब इस विपतके समुद्रमें गिरकर बडा दुःखी हो रहा हूं। (९-१४)

आज हमारी कुलनाशी वह बारी आयी है, राक्षसके भोजनके लिये वेतनके स्वरूपमें एक मनुष्य मुझको देना पडेगा। पर मेरे पास इतना धन नहीं है, कि किसी स्थानसे एक मनुष्यको मोल लेकर दूं, और किसी स्वजनकोभी नहीं दे सकूंगा, सो ऐसा कोई उपाय नहीं दीखता, कि जिसमें उस राक्षसके हाथसे बच सकूं; इस लिये अति अपार दुःखके समुद्रमें डूबा हूं। अतएव समझता हूं, कि मैं सब बान्धवोंके साथ उस राक्षसके पास जाऊंगा, कि जिससे वह नीचाशय राक्षस एक साथ हम सबोंको खा ले। (१५—१८) [६३९१]

आदिपर्वमें एकसौ बासठ अध्याय समाप्त।

कुन्त्युवाच— न विषादस्त्वया कार्यो भयादस्मात्कथंचन ।
उपायः परिदृष्टोऽत्र तस्मान्मोक्षाय रक्षसः ॥ १ ॥
एकस्तव सुतो बालः कन्या चैका तपस्विनी ।
न चैतयोस्तथा पत्न्या गमनं तव रोचये ॥ २ ॥
मम पञ्च सुता ब्रह्मंस्तेषामेको गमिष्यति ।
त्वदर्थं बलिमादाय तस्य पापस्य रक्षसः ॥ ३ ॥
ब्राह्मण उवाच— नाऽहमेतत्करिष्यामि जीवितार्थे कथंचन ।
ब्राह्मणस्याऽतिथेश्चैव स्वार्थे प्राणवियोजनम् ॥ ४ ॥
न त्वेतदकुलीनासु नाऽधर्मिष्ठासु विद्यते ।
यद्ब्राह्मणार्थं विसृजेदात्मानमपि चाऽऽत्मजम् ॥ ५ ॥
आत्मनस्तु मया श्रेयो बोद्धव्यमिति रोचये ।
ब्रह्मवध्याऽऽत्मवध्या वा श्रेयानात्मवधो मम ॥ ६ ॥
ब्रह्मवध्या परं पापं निष्कृतिर्नाऽत्र विद्यते ।
अबुद्धिपूर्वं कृत्वाऽपि वरमात्मवधो मम ॥ ७ ॥
न त्वहं वधमाकांक्षे स्वयमेवाऽऽत्मनः शुभे ।

आदिपर्वमें एकसौ तिरसठ अध्याय ।

कुन्ती बोली, कि ब्रह्मन् ! तुम इस भयसे दुःख मत मानो, मैंने उस राक्षस से बचनेका उपाय निश्चय किया है। तुम्हारा एक शिशु पुत्र और एकही व्रतशीला कन्या है, उनमेंसे किसीका, तुम्हारी स्त्रीका अथवा स्वयं तुम्हारा जाना मेरी समझमें उचित नहीं है। मेरे पांच पुत्र हैं, उनमेंसे एक तुम्हारे उपकार के लिये उस पापी राक्षसके यहां जायगा। (१—३)

ब्राह्मण बोले, कि मैं अपना जीवन बचानेके लिये कभी ऐसा काम नहीं कर सकूंगा, मैं अपने लिये ब्राह्मण और अतिथिके प्राण लेनेका साहस नहीं कर सकता; जो नीच वंशसे उत्पन्न और अधार्मिक हैं, वेभी ऐसे काममें हाथ नहीं डालते हैं। ब्राह्मणके उपकारके लिये यह विधि है, कि अपनेको अथवा आत्मज को त्याग देना, मुझको वही मङ्गल-दायी समझना चाहिये; और मैं वैसाही करना चाहता हूं। ब्राह्मणवध और आत्महत्या इन दोनोंमें आत्महत्या ही मङ्गलयुक्त है। क्योंकि,ब्रह्म-वध बडा पाप है, उसके करनेसे फिर बचनेका उपाय नहीं रह जाता। मैं समझता हूं, कि अनिच्छासे ब्रह्मवध करनेसे अनिच्छासे आत्महत्या करना मेरे लिये अच्छा है।

परैः कृते वधे पापं न किंचिन्मयि विद्यते ॥ ८ ॥
अभिमान्धिकृते तस्मिन्ब्राह्मणस्य वधे मया।
निष्कृतिं न प्रपश्यामि नृशंसं क्षुद्रमेव च ॥ ९ ॥
आगतस्य गृहं त्यागस्तथैव शरणार्थिनः ।
याचमानस्य च वधो नृशंसो गर्हितो बुधैः ॥ १० ॥
कुर्यान्न निन्दितं कर्म न नृशंसं कथंचन ।
इति पूर्वे महात्मान आपद्धर्मविदो विदुः ॥ ११ ॥
श्रेयांस्तु सहदारस्य विनाशोऽद्य मम स्वयम्।
ब्राह्मणस्य वधं नाऽहमनुमंस्ये कदाचन ॥ १२ ॥

कुन्त्युवाच— ममाप्येषा मतिर्ब्रह्मन्विप्रा रक्ष्या इति स्थिरा।
न चाऽप्यनिष्टः पुत्रो मे यदि पुत्रशतं भवेत्॥ १३ ॥
न चाऽसौ राक्षसः शक्तो मम पुत्रविनाशने।
वीर्यवान्मन्त्रसिद्धश्च तेजस्वी च सुतो मम ॥ १४ ॥
राक्षसाय च तत्सर्वं प्रापयिष्यति भोजनम् ।
मोक्षयिष्यति चात्मानमिति मे निश्चिता मतिः१५ ॥
समागताश्च वीरेण दृष्टपूर्वाश्च राक्षसाः ।

और मैं स्वयं कुछ आत्महत्यामें हाथ नहीं डाल रहा हूं, अन्य जन मुझको मारेगा, इसका पाप नहीं लग सकता है; जान नहीं पडता, कि बुद्धिसे अथवा छलपूर्वक ब्रह्मवध करके सहजमें पार पा सकूंगा। (४—९)

पाण्डितोंने कहा है, कि अतिथि वा शरण लिये हुएको त्याग देना और मांगने वाले को मारडालना अति निष्ठुर अनुचित कार्य है। और आपद्धर्मके जानकार पहिलेके महात्माओंने कहा है,कि निन्दित और निष्ठुर कर्म कभी मत करना; अतएव आज मैं स्त्रीके साथ प्राण छोडूंगा, मेरे लिये यही अच्छा है; मैं किसी प्रकारसे ब्राह्मण हत्या की सम्मति नहीं दे सकता। (१०—१२)

कुन्ती बोली, कि हे ब्रह्मन्! मेरा भी यह निश्चय किया हुआ है,कि ब्राह्मणों की अवश्य रक्षा करनी पडेगी। सौ पुत्र भी होवें, तौभी पुत्र कभी मेरे अनादरकी सामग्री नहीं होते। मेरे पुत्र वीर्यवन्त, तेजस्वी और मन्त्रमें सिद्ध हैं, सो वह राक्षस उनको नष्ट करनेमें समर्थ नहीं होगा। मुझको निश्चय जान पडता है, कि मेरा पुत्र राक्षसको वह सब खाने की वस्तु पहुंचाभी देगा और अपनी रक्षा

बलवन्तो महाकाया निहताश्चाऽप्यनेकशः ॥ १६ ॥
न त्विदं केषुचिद्ब्रह्मन्व्याहर्तव्यं कथंचन ।
विद्यार्थिनो हि मे पुत्रान्विप्रकुर्युः कुतूहलात्॥ १७ ॥
गुरुणा चाऽननुज्ञातो ग्राहयेद्यत्सुतो मम ।
न स कुर्यात्तथा कार्यं विद्ययेति सतां मतम् ॥ १८ ॥
एवमुक्तस्तु पृथया स विप्रो भार्यया सह ।
हृष्टः संपूजयामास तद्वाक्यममृतोपमम् ॥ १९ ॥
ततः कुन्ती च विप्रश्च सहितावनिलात्मजम् ।
तमब्रूतां कुरुष्वेति स तथेत्यब्रवीच्च तौ ॥ २० ॥ [६४०१]

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यामादिपर्वणि बकवधपर्वणि भीमबकवधाङ्गीकारे त्रिषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १६३ ॥

वैशम्पायन उवाच—करिष्य इति भीमेन प्रतिज्ञातेऽथ भारत ।
आजग्मुस्ते ततः सर्वे भैक्ष्यमादाय पाण्डवाः॥ १ ॥
आकारेणैव तं ज्ञात्वा पाण्डुपुत्रो युधिष्ठिरः ।
रहः समुपविश्यैकस्ततः पप्रच्छ मातरम् ॥ २ ॥
युधिष्ठिर उवाच—किं चिकीर्षत्ययं कर्म भीमो भीमपराक्रमः ।

भी करेगा। मैंने पहिले देखा है, कि बडे बडे बली बहुत राक्षस आकर मेरे पुत्रोंसे यमराजके घर भेजे गये। (१३—१६)

हे ब्रह्मन्! यह बात तुम किसीसे किसी प्रकार प्रकाश मत करना; प्रकाश होनेसे विद्यार्थी लोग बडी इच्छासे इस विद्याके सीखने के लिये मेरे पुत्रोंको सदा दिक करेंगे! मेरे पुत्र गुरु की आज्ञा विना अन्य किसीको जो विद्या देंगे, उस विद्यासे फिर काम नहीं कर सकेंगे। ब्राह्मणने कुन्तीकी यह बात सुनकर स्त्रीके साथ अति प्रसन्न होकर अमृत सदृश उस बातको आदर पूर्वक मान लिया। आगे कुन्ती और ब्राह्मणने एकत्र होकर पवननन्दन भीमको वह कठोर कार्य करनेको कहा। भीमसेननेभी उसमें संमति देकर प्रत्युत्तर किया था। (१७-२०) [६४११]

आदिपर्वमें एकसौ तिरसठ अध्याय समाप्त।

आदिपर्वमें एकसौ चौसठ अध्याय।

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि हे भारत! भीमसेनके उस कामके करने की प्रतिज्ञा करने पर सम्पूर्ण पाण्डव भिक्षाकी वस्तु लेकर गृहको लौट आये। अनन्तर युधिष्ठिरने आकार द्वारा वह सब ब्यौरा जान कर निरालेमें बैठकर मातासे पूछा, कि माता! भीम पराक्रमी भीम किस कामको

भवत्यनुमते किंचित्स्वयं वा कर्तुमिच्छति ॥ ३ ॥

कुन्त्युवाच — ममैव वचनादेष करिष्यति परंतपः ।
ब्राह्मणार्थे महत्कृत्यं मोक्षाय नगरस्य च ॥ ४ ॥

युधिष्ठिर उवाच —किमिदं साहसं तीक्ष्णं भवत्या दुष्करं कृतम् ।
परित्यागं हि पुत्रस्य न प्रशंसन्ति साधवः ॥ ५ ॥
कथं परसुतस्यार्थे स्वसुतं त्यक्तुमिच्छसि ।
लोकवेदविरुद्धं हि पुत्रत्यागात्कृतं त्वया ॥ ६ ॥
यस्य बाहू समाश्रित्य सुखं सर्वे शयामहे ।
राज्यं चापहृतं क्षुद्रैराजिहीर्षामहे पुनः ॥ ७ ॥
यस्य दुर्योधनो वीर्यं चिन्तयन्नमितौजसः ।
न शेते रजनीः सर्वा दुःखाच्छकुनिना सह॥ ८ ॥
यस्य वीरस्य वीर्येण मुक्ता जतुगृहाद्वयम् ।
अन्येभ्यश्चैव पापेभ्यो निहतश्च पुरोचनः ॥ ९ ॥
यस्य वीर्यं समाश्रित्य वसुपूर्णां वसुन्धराम् ।
इमां मन्यामहे प्राप्तां निहत्य धृतराष्ट्रजान्॥ १० ॥

जा रहा है ? क्या आपने इसमें आज्ञा दी है ? अथवा भीमने स्वयंही इसके करनेकी इच्छा की है ? कुन्ती बोली, कि यह शत्रुनाशी वृकोदर मेरी ही बातसे ब्राह्मणके उपकार और इस नगरको मुक्त करनेके लिये यह भारी काम पूरा करेगा। (१—४)

युधिष्ठिर बोले, कि आपने यह कैसा कठिन भयानक साहस किया है ? साधुगण कभी पुत्र त्यागनेकी प्रसंसा नहीं करते। और दूसरेके पुत्र बचानेके लिये अपना पुत्र त्यागना क्योंकर उचित हो सकता है?आज आपने पुत्र तजकर लोकाचारके विपरीत और वेदके विरुद्ध कर्म किया है! जिनके भुजबलके आसरे में हम सुखसे सो रहे हैं;जिनके भुजबलके भरोसे हम नीचाशय दुर्योधनादिसे लूट लिये हुए राज्यको लौटा पानेकी आशामें हैं, जिसके अपरिमित वीर्यको स्मरणकर दुर्योधन और शकुनिको दुःखके मारे रात्रिको निद्रा नहीं आती; जिस वीरके भुजवीर्यसे हम जतुगृहसे और दूसरी विपदोंसे पार पागये हैं और जिससे पुरोचन यमराजके घर भेजा गया;यहां तक कि जिसके भुजवीर्यकी आशासे हमको ऐसा विश्वास है, कि मानो हम धृतराष्ट्रके पुत्रोंको मारकर इस हरी हुई धरतीको पा चुके हैं ; आपने कैसी बुद्धिसे उन भीमसेनको

तस्य व्यवसितस्त्यागो बुद्धिमास्थाय कां त्वया ।
कच्चिन्नु दुःखैर्बुद्धिस्ते विलुप्ता गतचेतसः ॥ ११ ॥

कुन्त्युवाच— युधिष्ठिर न संतापस्त्वया कार्यो वृकोदरे ।
न चायं बुद्धिदौर्बल्याद्व्यवसायः कृतो मया ॥ १२ ॥
इह विप्रस्य भवने वयं पुत्र सुखोषिताः ।
अज्ञाता धार्तराष्ट्राणां सत्कृता वीतमन्यवः ।
तस्य प्रतिक्रिया पार्थ मयेयं प्रसमीक्षिता ॥ १३ ॥
एतावानेव पुरुषः कृतं यस्मिन्न नश्यति ।
यावच्च कुर्यादन्योऽस्य कुर्याद्बहुगुणं ततः ॥ १४ ॥
दृष्ट्वा भीमस्य विक्रान्तं तदा जतुगृहे महत् ।
हिडिम्बस्य वधाच्चैव विश्वासो मे वृकोदरे ॥ १५ ॥
बाह्वोर्बलं हि भीमस्य नागायुतसमं महत् ।
येन यूयं गजप्रख्या निर्व्यूढा वारणावतात् ॥ १६ ॥
वृकोदरेण सदृशो बलेनाऽन्यो न विद्यते ।
यो व्यतीयाद्युधि श्रेष्ठमपि चक्रधरं स्वयम् ॥ १७ ॥
जातमात्रः पुरा चैव ममाऽङ्कात्पतितो गिरौ ।

त्याग देना निश्चय किया है ? क्या आप ने अपना ज्ञान खो दिया है ? क्या दुःखसे आपकी बुद्धि जाती रहीं है ? (५—११)

कुन्ती बोली, कि हे युधिष्ठिर ! तुम वृकोदरके लिये दुःख मत करो;मैंने बुद्धिकी अल्पतासे इस काममें हाथ नहीं डाला है। बेटा ! उस कामके पलटेमें उपकार करनेके लिये,कि ब्राह्मणके घरमें धृतराष्ट्रके पुत्रोंके न जाननेमें सत्कारके साथ हम विना कष्ट वस रहे हैं, मैंने इस कामका करना निश्चय कर लिया है, क्योंकि उपकार करनेसे जो लोग पटलेमें उपकार करते हैं, वास्तवमें वही पुरुष हैं, विशेष जो जितना उपकार करता है, पलटेमें उसका उससे अधिक उपकार करना ही उचित है । जतुगृहमें भीमसेनका जितना विक्रम देखा है, और उसने जैसे हिडिम्बको मारडाला है, उससे मुझको विश्वास हो गया है, कि उसके दोनों हाथोंका बल दश सहस्र हाथीके समान है ! (१२-१६)

जिस वृकोदरने हाथीकी भांति तुमको वारणावत नगरसे निकाला था, उस भीमके समान बली इस धरती भरमें दीख नहीं पडता। जान पडता है, कि मेरा भीम योद्धोंमें श्रेष्ठ चक्रधरने वाले

शरीरगौरवादस्य शिला गात्रैर्विचूर्णिता ॥ १८ ॥
तदहं प्रज्ञया ज्ञात्वा बलं भीमस्य पांडव ।
प्रतिकार्ये च विप्रस्य ततः कृतवती मतिम् ॥ १९ ॥
नेदं लोभान्न चाऽज्ञानान्न च मोहाद्विनिश्चितम्।
बुद्धिपूर्वं तु धर्मस्य व्यवसायः कृतो मया ॥ २० ॥
अर्थौ द्वावपि निष्पन्नौ युधिष्ठिर भविष्यतः।
प्रतीकारश्च वासस्य धर्मश्च चरितो महान् ॥ २१ ॥
यो ब्राह्मणस्य साहाय्यं कुर्यादर्थेषु कर्हिचित्।
क्षत्रियः स शुभाँल्लोकान्प्राप्नुयादिति मे मतिः॥२२॥
क्षत्रियस्यैव कुर्वाणः क्षत्रियो वधमोक्षणम् ।
विपुलां कीर्तिमाप्नोति लोकेऽस्मिंश्च परत्र च॥ २३ ॥
वैश्यस्याऽर्थे च साहाय्यं कुर्वाणः क्षत्रियो भुवि।
स सर्वेष्वपि लोकेषु प्रजा रञ्जयते ध्रुवम् ॥ २४ ॥
शूद्रं तु मोचयेद्राजा शरणार्थिनमागतम् ।
प्राप्नोतीह कुले जन्म सद्द्रव्ये राजपूजिते ॥ २५ ॥
एवं मां भगवान्व्यासः पुरा पौरवनन्दन ।

विष्णुकोभी युद्धमें परास्त कर सकता है ! हे पाण्डवश्रेष्ठ ! भीमसेन जन्म लेतेही मेरी गोदसे पहाड पर गिर गया था, उससे उसके शरीरकी रगडसे पत्थरके टुकडे पिसकर चूर चूर होगये थे, इस कारणसेभी मैं भीमका बल जानती हूं, इस लिये ब्राह्मणके शत्रुको नष्ट करनेका संकल्प किया है। मैंने लोभ, अज्ञानता वा मोहसे इस काममें हाथ नहीं डाला है, बुद्धिसेही इस धर्मकार्यमें प्रवृत्त हुई हूं। (१६—२०)

हे युधिष्ठिर ! इस कार्यसे दो प्रयोजन सिद्ध होंगे; एक यह है, कि यहां वसानेसे पलटेमें दूसरा उपकार और महाधर्म। क्यों कि जो क्षत्रिय प्रसंग प्राप्त होनेपर ब्राह्मणकी सहायता करेगा वह निःसंदेह शुभलोकोंको प्राप्त होगा, ऐसा मेरा मत है ! मैं निश्चय जानती हूं, कि जो क्षत्रिय क्षत्रियका प्राण बचाते हैं, वह इस लोक और परलोकमें अत्यन्त यश प्राप्त करते हैं; इसमें सन्देह नहीं है, कि क्षत्रिय होकर वैश्यकी सहायता करे,तो भूमण्डलमें सर्वत्र प्रजा इसकी प्रेमी होती है। क्षत्रिय शूद्र वा शरण लिये हुए जनको विपतसे बचावे, तो वह ऐश्वर्ययुक्त राजोंसे पूजे जाने वाले वंशमें जन्म लेता है। पौरवनन्दन !

प्रोवाचाऽसुकरप्रज्ञस्तस्मादेवं चिकीर्षितम् ॥२६॥ [६४२७]

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यामादिपर्वणि बकवधपर्वणि
कुन्तीयुधिष्ठिरवाक्ये चतुःषष्ट्यधिक शततमोऽध्यायः ॥ १६४ ॥

युधिष्ठिर उवाच—उपपन्नमिदं मातस्त्वया यद् बुद्धिपूर्वकम् ।
आर्तस्य ब्राह्मणस्यैतदनुक्रोशादिदं कृतम् ॥ १ ॥
ध्रुवमेष्यति भीमोऽयं निहत्य पुरुषादकम् ।
सर्वथा ब्राह्मणस्यार्थे यदनुक्रोशवत्यसि ॥ २ ॥
यथा त्विदं न विन्देयुर्नरा नगरवासिनः ।
तथाऽयं ब्राह्मणो वाच्यः परिग्राह्यश्च यत्नतः ॥ ३ ॥

वैशम्पायन उवाच--ततो रात्र्यां व्यतीतायामन्नमादाय पाण्डवः ।
भीमसेनो ययौ तत्र यत्राऽसौ पुरुषादकः ॥ ४ ॥
आसाद्य तु वनं तस्य रक्षसः पाण्डवो बली ।
आजुहाव ततो नाम्ना तदन्नमुपपादयन् ॥ ५ ॥
ततः स राक्षसः क्रुद्धो भीमस्य वचनात्तदा ।
आजगाम सुसंक्रुद्धो यत्र भीमो व्यवस्थितः ॥ ६ ॥
महाकायो महावेगो दारयन्निव मेदिनीम् ।

पूर्वकालमें अति तेज बुद्धिमान् भगवान् व्यासदेवने मुझको यह सब उपदेश किये थे, इसी लिये मैंने इस कामको करनेकी इच्छा की है। (२१—२६) [६४२७]

आदिपर्वमें एकसौ चौसठ अध्याय समाप्त ।

आदिपर्वमें एकसौ पैंसठ अध्याय ।

माताकी यह बातें सुनकर युधिष्ठिर बोले, कि ऐ माता ! आपने इस विपत में पडे हुए ब्राह्मण पर कृपा दिखाकर बुद्धिसे जो यह कार्य किया है, वह बहुत ही अच्छा हुआ है। इसीसे, कि आप ब्राह्मण पर दयावती हुई हैं, इसमें सन्देह नहीं है, कि भीमसेन मनुष्य-भोजी राक्षस का नाश कर लौट आवेगा। आप यत्न पूर्वक ब्राह्मणसे कहकर यह स्वीकार करा लेना, कि नगरवाले यह बात न जान सके। (१—३)

वैशम्पायनजी बोले, कि रात्रि बीतने पर भीमसेनने भोजनकी सामग्री लेकर वहांकी यात्रा की, जहां वह राक्षस था ! अनन्तर उस राक्षसके वसनेके वनमें घुस-कर वह सब भोजनकी सामग्री आपही खाते हुए उसका नाम लेकर पुकारने लगे, इससे बडा भारी और अति तेजस्वी वह राक्षस भीमकी बातसे क्रोधित होकर, भूमि विदारण करता हुआ वहां

लोहिताक्षः करालश्च लोहितश्मश्रुमूर्धजः ॥ ७ ॥
आकर्णाद्भिन्नवक्त्रश्च शंकुकर्णो बिभीषणः ।
त्रिशिखां भ्रुकुटीं कृत्वा संदश्य रदनच्छदम् ॥ ८ ॥
भुञ्जानमन्नं तं दृष्ट्वा भीमसेनं स राक्षसः ।
विवृत्य नयने क्रुद्ध इदं वचनमब्रवीत् ॥ ९ ॥
कोऽयमन्नामिदं भुङ्क्ते मदर्थमुपकल्पितम् ।
पश्यतो मम दुर्बुद्धिर्यियासुर्यमसादनम् ॥ १० ॥
भीमसेनस्ततः श्रुत्वा प्रहसन्निव भारत ।
राक्षसं तमनादृत्य भुङ्क्त एव पराङ्मुखः ॥ ११ ॥
रवं स भैरवं कृत्वा समुद्यम्य करावुभौ ।
अभ्यद्रवद्भीमसेनं जिघांसुः पुरुषादकः ॥ १२ ॥
तथापि परिभूयैनं प्रेक्षमाणो वृकोदरः ।
राक्षसं भुङ्क्त एवान्नं पाण्डवः परवीरहा ॥ १३ ॥
अमर्षेण तु संपूर्णः कुन्तीपुत्रं वृकोदरम् ।
जघान पृष्ठे पाणिभ्यामुभाभ्यां पृष्ठतः स्थितः ॥१४॥
तथा बलवता भीमः पाणिभ्यां भृशमाहतः ।
नैवाऽवलोकयामास राक्षसं भुङ्क्त एव सः ॥ १५ ॥

आगया, जहां भीम बैठे थे। उस राक्षस की आंखें, दाढी और केश लाल, मुह कान तक फैला हुआ और कान शंकुके समान थे। ऐसा बिकट भयानक वह राक्षस भीमसेनको अन्न खाते देखकर दांतोंसे होठोंको काटता हुआ तीन रेखाओंके साथ भौंहको ऊपर चढाय दोनों आखें फैलाके क्रोधसे बोला, कि किस पर यह कुबुद्धि चढी है, कि यम-राजके घरको जानेको मेरे भोजनके लिये मंगाया हुआ अन्न मेरे सामनेही खा रहा है? (४—१०)

हे भारत! भीमसेन यह बात सुनने परभी हंसतेही हंसते राक्षसका अनादर कर मुहको फेर कर भोजन करने लगे; उसकी ओर आंख तक नहीं फेरी, तब वह मांसभोजी भयानक शब्दसे दोनों हाथ उठाकर भीमसनेको मार डालनेके लिये दौडा। शत्रुनाशी वृकोदर तब राक्षसको अनादरसे एक बार देखकर भोजन करने लगे। राक्षसने तब क्रोधसे जलकर भीमसेनके पीछे खडा होके दोनों मुट्ठियोंसे पीठ पर मारा! भीम-सेनने उस बली राक्षसके दोनों भुजाको

ततः स भूयः संक्रुद्धो वृक्षमादाय राक्षसः ।
ताडयिष्यंस्तदा भीमं पुनरभ्यद्रवद्बली ॥ १६ ॥
ततो भीमः शनैर्भुक्त्वा तदन्नं पुरुषर्षभः ।
वार्युपस्पृश्य संहृष्टस्तस्थौ युधि महाबलः ॥ १७ ॥
क्षिप्तं क्रुद्धेन तं वृक्षं प्रतिजग्राह वीर्यवान् ।
सव्येन पाणिना भीमः प्रहसन्निव भारत ॥ १८ ॥
ततः स पुनरुद्यम्य वृक्षान्बहुविधान्बली ।
प्राहिणोद्भीमसेनाय तस्मै भीमश्च पाण्डवः ॥ १९ ॥
तद्वृक्षयुद्धमभवन्महीरुहविनाशनम् ।
घोररूपं महाराज नरराक्षसराजयोः ॥ २० ॥
नाम विश्राव्य तु बकः समभिद्रुत्य पाण्डवम् ।
भुजाभ्यां परिजग्राह भीमसेनं महाबलम् ॥ २१ ॥
भीमसेनोऽपि तद्रक्षः परिरभ्य महाभुजः ।
विस्फुरन्तं महाबाहुं विचकर्ष बलाद्बली ॥ २२ ॥
स कृष्यमाणो भीमेन कर्षमाणश्च पाण्डवम् ।
समयुज्यत तीव्रेण क्लमेन पुरुषादकः ॥ २३ ॥

चोटसे बहुत घायल होने परभी उसपर आंखें नहीं फेरी; एकमनसे भोजनमें प्रवृत्त रहे। (११—१५)

आगे महाबली राक्षस अति क्रोधसे अन्धेके समान होकर मारनेके लिये वृक्ष उखाडकर फिर उनपर दौडा । उसके अनन्तर महाबली पुरुषेन्द्र भीमसेन धीरे धीरे वह अन्न खा लेकर मुह धो करके प्रसन्न चित्तसे युद्धके लिये खडे होगये। क्रोधके वशमें होकर राक्षसके भीमसेन पर उस वृक्षको फेंकनेसे वीर्यवन्त भीमसेनने हंस करके उसी क्षण बांये हाथसे उसको थाम लिया। यह देखकर बलवन्त राक्षस भांति भांतिके वृक्ष उखाड कर भीम पर फेंकने लगा और भीम भी वैसेही वृक्ष उठा कर उस पर फेंकने लगे। महाराज! तब मनुष्यके साथ उस राक्षसराजका ऐसा भयानक वृक्षयुक्त होने लगा, कि उससे वहांके वृक्ष नष्ट होने लगे। (१६—२०)

आगे मांसभोजी बकने अपना नाम कह कह कर कूदता हुआ महाबली भीमसेनको दोनों हाथोंसे पकड लिया। तब महाभुज बलवन्त भीमसेन इस महावेगवान फुर्तीवाले राक्षसको पूरा बल प्रगट करते देखकर बलसे उसे खैंचने लगे।

तयोर्वेगेन महता पृथिवी समकम्पत ।
पादपांश्च महाकायांश्चूर्णयामासतुस्तदा ॥ २४ ॥
हीयमानं तु तद्रक्षः समीक्ष्य पुरुषादकम् ।
निष्पिष्य भूमौ जानुभ्यां समाजघ्ने वृकोदरः ॥ २५ ॥
ततोऽस्य जानुना पृष्ठमवपीड्य बलादिव ।
बाहुना परिजग्राह दक्षिणेन शिरोधराम् ॥ २६ ॥
सव्येन च कटीदेशे गृह्य वाससि पाण्डवः ।
तद्रक्षो द्विगुणं चक्रे रुवन्तं भैरवं रवम् ॥ २७ ॥
ततोऽस्य रुधिरं वक्त्रात्प्रादुरासीद्विशाम्पते ।
भज्यमानस्य भीमेन तस्य घोरस्य रक्षसः ॥ २८ ॥ [६४७८]

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्त्र्यां संहितायां वैयासिक्यामादिपर्वणि बकवधपर्वणि बकभीमयुद्धे पञ्चषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १६५ ॥

वैशम्पायन उवाच–ततः स भग्नपार्श्वाङ्गो नदित्वा भैरवं रवम् ।
शैलराजप्रतीकाशो गतासुरभवद्बकः ॥ १ ॥
तेन शब्देन वित्रस्तो जनस्तस्याऽथ रक्षसः ।
निष्पपात गृहाद्राजन्सहैव परिचारिभिः ॥ २ ॥
तान्भीतान्विगतज्ञानान्भीमः प्रहरतां वरः ।

राक्षस भीमसे खींचे जाने परभी उनको बलसे खींचने लगा; इससे मनुष्यभोजीही बहुत थकने लगा। उस दोनोंके वेगसे धरती डोली और निकटके बडे बडे वृक्ष टूटे। (२१—२४)

अनन्तर वृकोदर राक्षसको बल खोते देखकर घुटनोंसे धरती पर पीस पीस कर मारने लगे। आगे उसकी पीठपर घुटनोंको लगा कर पीस करके दहिने हाथसे गलेको और बांये हाथसे कमरको पकडा तथा उसको द्विगुणित अर्थात् दो भागोमें तोड डाला; तब राक्षस घोर शब्द करने लगा। हे पृथ्वीनाथ ! जब भीमसेनसे विकट राक्षस तोडा गया, तब उसके मुखसे रक्त वमन होने लगा। (२५—२८) [६४७८]

आदिपर्वमें एकसौ पैंसठ अध्याय समाप्त।

आदिपर्वमें एकसौ छासठ अध्याय।

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि महाराज ! बडे भारी पहाड समान राक्षस बक ने देह टूटने पर बडा कोलाहल मचाता हुआ प्राण छोडा। उसके परित्रारवर्ग उस शब्दसे भय खाकर नौकर चाकरोंके साथ घरसे निकलकर भीमके पास आ-

सान्त्वयामास बलवान्समये च न्यवेशयत् ॥ ३ ॥
न हिंस्या मानुषा भूयो युष्माभिरिति कर्हिचित् ।
हिंसतां हि वधः शीघ्रमेवमेव भवेदिति ॥ ४ ॥
तस्य तद्वचनं श्रुत्वा तानि रक्षांसि भारत ।
एवमस्त्विति तं प्राहुर्जगृहुः समयं च तम् ॥ ५ ॥
ततः प्रभृति रक्षांसि तत्र सौम्यानि भारत ।
नगरे प्रत्यदृश्यन्त नरैर्नगरवासिभिः ॥ ६ ॥
ततो भीमस्तमादाय गतासुं पुरुषादकम् ।
द्वारदेशे विनिक्षिप्य जगामाऽनुपलक्षितः ॥ ७ ॥
दृष्ट्वा भीमबलोद्धूतं बकं विनिहतं तदा ।
ज्ञातयोऽस्य भयोद्विग्नाः प्रतिजग्मुस्ततस्ततः ॥ ८ ॥
ततः स भीमस्तं हत्वा गत्वा ब्राह्मणवेश्म तत् ।
आचचक्षे यथावृत्तं राज्ञः सर्वमशेषतः ॥ ९ ॥
ततो नरा विनिष्क्रान्ता नगरात्कल्यमेव तु ।
ददृशुर्निहतं भूमौ राक्षसं रुधिरोक्षितम् ।
तमद्रिकूटसदृशं विनिकीर्णं भयानकम् ॥ १० ॥
दृष्ट्वा संहृष्टरोमाणो बभूवुस्तत्र नागराः ।
एकचक्रां ततो गत्वा प्रवृत्तिं प्रददुः पुरे ॥ ११ ॥

गये । मारनेमें तेज महाबली भीमसेनने उनको भयभीत और ज्ञान रहित देखकर समझाया और यह कहकर, उनसे प्रतिज्ञा करा ली, कि तुम फिर कभी मनुष्य न मारना, यदि मारोगे, तो तुमकोभी तुरन्त इसी प्रकार नष्ट होना पडेगा । राक्षसोंने वृकोदरकी यह बात सुनकर उस पर संमति प्रकाश करके उस नियम को मान लिया । (१–५)

हे भारत! तबसे नगरवाले उस नगर में राक्षसोंको शान्तस्वभावी देखते थे । अनन्तर भीमसेन उस मरे हुए राक्षसको लेकर नगरके द्वारपर डाल करके लोगोंके न देखनेमें चले गये । राक्षस बकके ज्ञातिवर्ग भीमसे बल पूर्वक उसको मारे जाते देखकर भयसे चित्तको मलिन कर इधर उधर भागे । भीमसेनसे उस राक्षस राजको मारकर ब्राह्मणके घरमें जाकर आद्योपान्त संपूर्ण कथा कह सुनायी । (६-१०)

अनन्तर उस प्रातःकालही में नगर वाले नगरसे निकलतेही पर्वतकी चोटीके समान बडे भारी राक्षस बकको रक्तसे

ततः सहस्रशो राजन्नरा नगरवासिनः ।
तत्राऽऽजग्मुर्बकं द्रष्टुं सस्त्रीवृद्धकुमारकाः ॥ १२ ॥
ततस्ते विस्मिताः सर्वे कर्म दृष्ट्वाऽतिमानुषम् ।
दैवतान्यर्चयांचक्रुः सर्व एव विशांपते ॥ १३ ॥
ततः प्रगणयामासुः कस्य वारोऽद्य भोजने ।
ज्ञात्वा चाऽऽगम्य तं विप्रं पप्रच्छुः सर्व एव ते॥ १४ ॥
एवं पृष्टः स बहुशो रक्षमाणश्च पाण्डवान् ।
उवाच नागरान्सर्वानिदं विप्रर्षभस्तदा ॥ १५ ॥
आज्ञापितं मामशने रुदन्तं सह बन्धुभिः ।
ददर्श ब्राह्मणः कश्चिन्मन्त्रसिद्धो महामनाः॥ १६ ॥
परिपृच्छ्य स मां पूर्वं परिक्लेशं पुरस्य च ।
अब्रवीद्ब्राह्मणश्रेष्ठो विश्वास्य प्रहसन्निव ॥ १७ ॥
प्रापयिष्याम्यहं तस्मा अन्नमेतद्दुरात्मने ।
मन्निमित्तं भयं चापि न कार्यमिति चाऽब्रवीत्॥१८ ॥
स तदन्नमुपादाय गतो बकवनं प्रति ।
तेन नूनं भवेदेतत्कर्म लोकहितं कृतम् ॥ १९ ॥

न्हाये मारे गये और गिरे हुए देखकर रोमाञ्चित हुए; और एकचक्रानगरीके पुरमें जाकर वह समाचार दिया । हे राजन् ! तब सहस्रों नगरवाले बक राक्षस को देखनेके लिये एकत्रित हुए। हे पृथ्वी नाथ ! उन सबोंने अलौकिक कार्य देखकर अजरज माना और सब लोग देवतों की उपासना करने लगे । आगे यह पूछने लगे; कि "आज राक्षसको भोजन देनेकी किसकी बारी थी" अन्तमें सब ठीक जान कर सबोंने उस ब्राह्मण के पास जाकर विशेष समाचार पूछा। (११-१४)

सम्पूर्ण नगरवालोंके ब्राह्मणसे बार बार पूछने पर विप्रेन्द्र पाण्डवोंको गोपन करनेके लिये बोले, कि मैं राक्षसका भोजन देनेकी आज्ञा पाकर बन्धुओंके साथ रो रहा था, कि ऐसे समयमें एक मन्त्रज्ञ सिद्ध महात्मा ब्राह्मण मुझको उस दशामें देखकर प्रश्न करके इस नगरके घोर क्लेशके वृत्तान्तसे ज्ञात होकर ढाढस देकर हंसते हुए बोले, कि मैं उस दुरात्मा के निकट यह अन्न ले जाऊंगा, मेरे लिये कुछ भय मत करना। यह कहकर वह अन्न लेकर राक्षस बकके वनमें गये थे । इसमें सन्देह नहीं है, कि उन्होंनेही लोकोंके हित के निमित्त वह काम किया होगा ।१५-१९

ततस्ते ब्राह्मणाः सर्वे क्षत्रियाश्च सुविस्मिताः ।
वैश्याः शूद्राश्च मुदिताश्चक्रुर्ब्रह्ममहं तदा ॥ २० ॥
ततो जानपदाः सर्वे आजग्मुर्नगरं प्रति ।
तदद्भुततमं दृष्ट्वा पार्थास्तत्रैव चाऽवसन् ॥ २१ ॥ [६४७६]

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्त्र्यां संहितायां वैयासिक्यामादिपर्वणि बकवधपर्वणि
बकवधे षट्षष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १६६ ॥
समाप्तं चेदं बकवधपर्व ।

अथ चैत्ररथपर्व ।

जनमेजय उवाच—ते तथा पुरुषव्याघ्रा निहत्य बकराक्षसम् ।
अत ऊर्ध्वं ततो ब्रह्मन्किमकुर्वत पाण्डवाः ॥ १ ॥
वैशम्पायन उवाच-तत्रैव निवसन्राजन्निहत्य बकराक्षसम् ।
अधीयानाः परं ब्रह्म ब्राह्मणस्य निवेशने ॥ २ ॥
ततः कतिपयाहस्य ब्राह्मणः संशितव्रतः ।
प्रतिश्रयार्थी तद्वेश्म ब्राह्मणस्याऽऽजगाम ह ॥ ३ ॥
स सम्यक्पूजयित्वा तं विप्रं विप्रर्षभस्तदा ।
ददौ प्रतिश्रयं तस्मै तदा सर्वातिथिव्रतः ॥ ४ ॥
ततस्ते पाण्डवाः सर्वे सह कुन्त्या नरर्षभाः ।

अनन्तर यह वृत्तान्त सुनकर ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र सब अचरज मान के और प्रसन्न होकर ब्रह्ममहोत्सव करने लगे। नगरवाले उस आश्चर्य बृहत लीला की बात ज्ञात होकर नगरको लौट गये। पाण्डवलोग वहीं बसे रहे। (२०-२१)

आदिपर्वमें एकसौ छासठ अध्याय और बकवधपर्व समाप्त। [६४७६]

आदिपर्वमें एकसौ सासठ अध्याय और चैत्ररथ पर्व ।

जनमेजय बोले, कि हे ब्रह्मन् ! सुनना चाहता हूं, कि पुरुषसिंह पाण्डवोंने राक्षस बकके मारनेके पीछे क्या किया था। (१)

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि हे राजन् ! पाण्डवगण राक्षस बककी बध कर उस ब्राह्मणके घरमें रहकर वेद पढा करते थे। अनन्तर कुछ दिनोंके पीछे एक व्रतशील ब्राह्मण वसनेके लिये उस ब्राह्मणके घरको आये। नित्य अतिथियोंकी सेवा करने वाले उस ब्राह्मणने उस अतिथि ब्राह्मणकी भलीभांति पूजा कर वसनेको घर दिया। वह अभ्यागत द्विज वहां टिके रह कर बातही बातमें भांति भांति की शुभ कथायें कहने लगे। नरश्रेष्ठ पाण्डवगण और कुन्तीने वह

उपासाञ्चक्रिरे विप्रं कथयन्तः कथाः शुभाः ॥ ५ ॥
कथयामास देशांश्च तीर्थानि सरितस्तथा ।
राज्ञश्च विविधाश्चर्यान्देशांश्चैव पुराणि ॥ ६ ॥
स तत्राऽकथयद्विप्रः कथान्ते जनमेजय ।
पाञ्चालेष्वद्भुताकारं याज्ञसेन्याः स्वयंवरम् ॥ ७ ॥
धृष्टद्युम्नस्य चोत्पत्तिमुत्पत्तिं च शिखण्डिनः ।
अयोनिजत्वं कृष्णाया द्रुपदस्य महामखे ॥ ८ ॥
तदद्भुततमं श्रुत्वा लोके तस्य महात्मनः ।
विस्तरेणैव पप्रच्छुः कथान्ते पुरुषर्षभाः ॥ ९ ॥
पाण्डवा ऊचुः— कथं द्रुपदपुत्रस्य धृष्टद्युम्नस्य पावकात् ।
वेदीमध्याच्च कृष्णायाः संभवः कथमद्भुतः ॥ १० ॥
कथं द्रोणान्महेष्वासात्सर्वाण्यस्त्राण्यशिक्षत ।
कथं विप्र सखायौ तौ भिन्नौ कस्य कृतेन वा ॥ ११ ॥
वैशंपायन उवाच—एवं तैश्चोदितो राजन्स विप्रः पुरुषर्षभैः ।
कथयामास तत्सर्वं द्रौपदीसंभवं तदा ॥ १२ ॥ [६४८८]

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यामादिपर्वणि चैत्ररथपर्वणि द्रौपदीसंभवे सप्तषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १६७ ॥

सब कथा सुननेके अभिलाषी होकर उन का आदर किया। (२–५)

वह भांति भांतिके आश्चर्य देश, नगर, तीर्थ, सरोवर, अनेक आश्चर्य राजोंके वृत्तान्त और नाना नगरोंकी कथा सुनाने लगे। हे जनमेजय ! उस ब्राह्मणने कथा पूरी होनेके कालमें पाञ्चाल देशमें याज्ञसेनीके अलौकिक स्वयंवर, धृष्टद्युम्न तथा शिखण्डिका जन्म और राजा द्रुपद के महायज्ञमें कृष्णा की उत्पति इन सब बातोंका समाचार दिया। (६–८)

पुरुष-श्रेष्ठ पाण्डवगण ब्राह्मणसे उन महात्माकी अलौकिक लीलाओंको सुनकर कथा अन्त होने पर उसको प्रशस्तरूपसे सुनना चाहा और कहा कि, हे विप्र ! अग्निसे क्योंकर द्रुपद कुमार धृष्टद्युम्नकी उत्पति हुई ? क्योंकर वेदीमेंसे कृष्णाका अद्भुत जन्म हुआ ? फिर क्योंकर धृष्टद्युम्नने बडे चापधारी आचार्य द्रोणसे सर्वास्त्रोंकी शिक्षा पायी ? और क्योंकर राजा द्रुपदसे द्रोणकी जो मित्रता थी, वह टूटी ? श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि हे राजन् ! पुरुषोंमें प्रधान पाण्डवोंसे यह बात सुन कर वह ब्राह्मण द्रौपदीकी

ब्राह्मण उवाच— गङ्गाद्वारं प्रति महान्बभूवर्षिर्महातपाः ।
भरद्वाजो महाप्राज्ञः सततं संशितव्रतः ॥ १ ॥
सोऽभिषेक्तुं गतो गङ्गां पूर्वमेवाऽऽगतां सतीम्।
ददर्शाऽप्सरसं तत्र घृताचीमाप्लुतामृषिः ॥ २ ॥
तस्या वायुर्नदीतीरे वसनं व्यहरत्तदा ।
अपकृष्टाम्बरां दृष्ट्वा तामृषिश्चकमे तदा ॥ ३ ॥
तस्यां संसक्तमनसः कौमारब्रह्मचारिणः ।
चिरस्य रेतश्चस्कन्द तदृषिर्द्रोण आदधे ॥ ४ ॥
ततः समभवद् द्रोणः कुमारस्तस्य धीमतः ।
अध्यगीष्ट स वेदांश्च वेदाङ्गानि सर्वशः ॥ ५ ॥
भरद्वाजस्य तु सखा पृषतो नाम पार्थिवः ।
तस्यापि द्रुपदो नाम तदा समभवत्सुतः ॥ ६ ॥
स नित्यमाश्रमं गत्वा द्रोणेन सह पार्षतः ।
चिक्रीडाऽध्ययनं चैव चकार क्षत्रियर्षभः ॥ ७ ॥
ततस्तु पृषतेऽतीते स राजा द्रुपदोऽभवत् ।

जन्म कथा कहने लगे । (९-१२)

आदिपर्वमें एकसौ सड़सठ अध्याय समाप्त ।(६४८८)

आदिपर्वमें एकसौ अडसठ अध्याय।

ब्राह्मण महाराज बोले, कि गङ्गाद्वारके निकट भरद्वाज नामक सदा व्रतशील महाप्राज्ञ,महातपस्वी एक महर्षि रहते थे। एक समय उन्होंने गङ्गा नहानेको जाकर देखा, कि उनके आनेके पहिले घृताची नाम्नी अप्सरा आकर नदीतट पर खडी है ! उस समय पवन से उसका वस्त्र उडने पर ऋषि उसको नङ्गी देखकर उसी क्षण कामके वशमें होगये । कौमार दशासे ब्रह्मचारी उस महर्षि का चित्त घृताची पर चलते ही उनका सदाका बटोरा हुआ वीर्य गिर गया । उन्होंने उसीक्षण उसको द्रोण नामक पात्रमें रख लिया । (१-४)

इस प्रकार उस धीमान ऋषिसे द्रोण नामक कुमारने जन्म लिया । वह कुमार सम्पूर्ण वेद और वेदाङ्गको पढने लगा। उस समय पृषत नामक एक राजा भरद्वाज के मित्र थे । उनसे द्रुपद नामक एक पुत्र हुआ। वह क्षत्रिय पृषत्पुत्र द्रुपद नित्य भरद्वाजके आश्रममें जाकर द्रोण के साथ खेलता और पढता था । आगे राजा पृषतके स्वर्गको सिधारने पर राजा द्रुपद राज्यपर बैठे । द्रोणने सुना, कि परशुरामजी अपना सब धन दान कर

द्रोणोऽपि रामं शुश्राव दित्सन्तं वसु सर्वशः॥ ८ ॥
वनं तु प्रस्थितं रामं भरद्वाजसुतोऽब्रवीत् ।
आगतं वित्तकामं मां विद्धि द्रोणं द्विजोत्तम॥ ९ ॥

राम उवाच— शरीरमात्रमेवाऽद्य मया समवशेषितम् ।
अस्त्राणि वा शरीरं वा ब्रह्मन्नेकतमं वृणु ॥ १० ॥

द्रोण उवाच— अस्त्राणि चैव सर्वाणि तेषां संहारमेव च ।
प्रयोगं चैव सर्वेषां दातुमर्हति मे भवान् ॥ ११ ॥

ब्राह्मण उवाच— तथेत्युक्त्वा ततस्तस्मै प्रददौ भृगुनन्दनः ।
प्रतिगृह्य तदा द्रोणः कृतकृत्योऽभवत्तदा ॥ १२ ॥
संप्रहृष्टमना द्रोणो रामात्परमसंमतम् ।
ब्रह्मास्त्रं समनुज्ञाप्य नरेष्वभ्यधिकोऽभवत् ॥ १३ ॥
ततो द्रुपदमासाद्य भारद्वाजः प्रतापवान् ।
अब्रवीत्पुरुषव्याघ्रः सखायं विद्धि मामिति ॥ १४ ॥

द्रुपद उवाच— नाऽश्रोत्रियः श्रोत्रियस्य नाऽरथी रथिनः सखा ।
नाऽराजा पार्थिवस्यापि सखिपूर्वं किमिष्यते ॥ १५ ॥

रहे हैं ; आगे जब राम सब कुछ देकर वनमें जानेको उद्यत हुए थे, तब भरद्वाज-पुत्र वहां जाकर बोले, कि हे द्विजोत्तम! मेरा नाम द्रोण है, मैं धनकी प्रार्थनासे आपके पास आया हूं। (५—९)

राम बोले, कि हे ब्रह्मन् ! मैं सब कुछ दान कर चुका हूं, अब मेरा शरीर और अस्त्र ही शेष हैं, अतएव चाहे मेरे संपूर्ण अस्त्र वा शरीर इन दोनोंमेंसे एककी प्रार्थना करो। द्रोण बोले, कि आप प्रयोग और उपसंहारके साथ सम्पूर्ण अस्त्र मुझको दे देवें; ब्राह्मण बोले, कि अनन्तर भृगुनन्दनने "तथास्तु" कह कर उन को सम्पूर्ण अस्त्र दे दिये। द्रोणने उनको लेकर अपनेको कृतार्थ समझा। वह रामसे परम संमत ब्रह्मास्त्र पाकर और सब अस्त्रोंके पानेसे अधिक प्रसन्न हुए। (१०—१३)

अनन्तर प्रतापी पुरुषेन्द्र भरद्वाजनन्दनने द्रुपदके निकट जाकर कहा, कि मैं तुम्हारा मित्र हूं, द्रुपदने उत्तर दिया कि जो श्रोत्रिय नहीं है, वह कभी श्रोत्रियका मित्र नहीं हो सकता ; जो रथी नहीं है, वह कभी रथीका मित्र नहीं हो सकता ; और जो स्वयं राजा नहीं है, वह कभी राजाका मित्र नहीं हो सकता अतएव तुम क्यों मित्र कहकर पुकार रहे हैं ? (१३-१५)

ब्राह्मण उवाच-- स विनिश्चित्य मनसा पाञ्चाल्यं प्रति बुद्धिमान्।
जगाम कुरुमुख्यानां नगरं नागसाह्वयम् ॥ १६ ॥
तस्मै पौत्रान्समादाय वसूनि विविधानि च ।
प्राप्ताय प्रददौ भीष्मः शिष्यान्द्रोणाय धीमते॥१७॥
द्रोणः शिष्यांस्ततः पार्थानिदं वचनमब्रवीत् ।
समानीय तु तान्शिष्यान्द्रुपदस्याऽसुखाय वै॥१८॥
आचार्यवेतनं किंचिद्धृदि यद्वर्तते मम ।
कृतास्त्रैस्तत्प्रदेयं स्यात्तदृतं वदताऽनघाः ॥ १९ ॥
सोऽर्जुनप्रमुखैरुक्तस्तथास्त्विति गुरुस्तदा ॥ २० ॥
यदा च पाण्डवाः सर्वे कृतास्त्राः कृतनिश्चयाः।
ततो द्रोणोऽब्रवीद्भूयो वेतनार्थमिदं वचः ॥ २१ ॥
पार्षतो द्रुपदो नाम च्छत्रवत्यां नरेश्वरः ।
तस्मादाकृष्य तद्राज्यं मम शीघ्रं प्रदीयताम् ॥ २२ ॥
ततः पाण्डुसुताः पञ्च निर्जित्य द्रुपदं युधि ।
द्रोणाय दर्शयामासुर्बद्ध्वा ससचिवं तदा ॥ २३ ॥
द्रोण उवाच-- प्रार्थयामि त्वया सख्यं पुनरेव नराधिप ।
अराजा किल नो राज्ञः सखा भवितुमर्हति ॥ २४ ॥

ब्राह्मण बोले, कि द्रोणजी पाञ्चाल द्रुपदकी वह बात सुनकर मनही मनमें बदला लेनेका निश्चय कर कौरवोंके हस्तिनापुर नामक नगरको गये । अनन्तर भीष्मने उन आये हुए द्रोणके निकट पौत्रोंको शिष्य बनानेको दे दिया और नाना धन देकर उनका आदर किया । अनन्तर द्रोण द्रुपदकी हानिके निमित्त शिष्य पाण्डवोंको बुलवाकर सबसे बोले, कि हे निष्पाप राजकुमारो ! सत्य कर बोलो, कि तुम्हारे अस्त्रविद्यामें पंडित होने पर तुम वह गुरु दक्षिणा दोगे, कि जिसके लिये मैंने मनमें निश्चय कर रखा है। उसको अर्जुन आदि शिष्योंने तथास्तु कहके मान दिया । (१६-२०)

जब प्रण ठाने हुए पाण्डवोंने अस्त्रविद्या भली भांति सीख लिया, तब आचार्य द्रोणने उनसे गुरुदक्षिणाके लिये यह कहा, कि द्रुपद नामक राजा पृषतके पुत्र अहिछत्र देशके अर्धांश हैं, तुम शीघ्र उनसे उस राज्यको छीन कर मुझको दे दो । अनन्तर पाण्डवोंने द्रुपदको युद्धमें परास्त करके मंत्रियोंके साथ बांधकर द्रोणकी भेंट करी । तब द्रोण द्रुपदसे बोले,

अतः प्रयतितं राज्ये यज्ञसेन त्वया सह ।
राजासि दक्षिणे कूले भागीरथ्याऽहमुत्तरे ॥ २५ ॥

ब्राह्मण उवाच— एवमुक्तो हि पाञ्चाल्यो भारद्वाजेन धीमता ।
उवाचाऽस्त्रविदां श्रेष्ठो द्रोणं ब्राह्मणसत्तमम् ॥ २६ ॥
एवं भवतु भद्रं ते भारद्वाज महामते ।
सख्यं तदेव भवतु शश्वद्यदभिमन्यसे ॥ २७ ॥
एवमन्योन्यमुक्त्वा तौ कृत्वा सख्यमनुत्तमम् ।
जग्मतुर्द्रोणपाञ्चाल्यौ यथागतमरिन्दमौ ॥ २८ ॥
असत्कारः स तु महान्मुहूर्तमपि तस्य तु ।
नापैति हृदयाद्राज्ञो दुर्मनाः स कृशोऽभवत् ॥ २९ ॥ [६५१७]

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यामादिपर्वणि चैत्ररथपर्वणि द्रौपदीसंभवेऽष्टषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः॥ १६८ ॥

ब्राह्मण उवाच— अमर्षी द्रुपदो राजा कर्मसिद्धान्द्विजर्षभान् ।
अन्विच्छन्परिचक्राम ब्राह्मणावसथान्बहून् ॥ १ ॥
पुत्रजन्म परीप्सन्वै शोकोपहतचेतनः ।

कि हे नरनाथ! मैं फिर तुमसे मित्रता चाहता हूं, पर इस समय मैं राजा हूं, तुम राजा नहीं हो, राजा न होनेसे राजासे मित्रता नहीं हो सकती, इस लिये तुम्हारे साथ एकत्र राज्य करनेके विषयमें यह निश्चय किया है, कि तुम भी भागीरथीके दक्षिण किनारेका राजा होओ और मैं उत्तर किनारेका होऊं। (२१—२५)

ब्राह्मण बोले, कि तब पाञ्चालराज, अस्त्रविद्यामें पण्डित, द्विजवर धीमान् द्रोण की वह बात सुनकर बोले, कि हे महामति भारद्वाज! तुम्हारा मंगल होवे, तुमने जैसा समझ लिया है, वही हो, कि मेरे साथ तुम्हारी मित्रता सदा बनी रहे।

शत्रुनाशी द्रोण और राजा पाञ्चाल एक दूसरे से ऐसा कहकर अनुत्तम मित्रता निश्चय कर निज निज स्थानको चले गये पर राजा द्रुपदके हृदयसे वह बडा अपमान क्षणभरके लियेभी दूर नहीं हुआ, वह उसके सोचसे अति दुःखी और दुबले होने लगे। (२६—२९) [६५१७]

आदिपर्वमें एकसौ अढसठ अध्याय समाप्त।

आदिपर्वमें एकसौ उनहत्तर अध्याय।

ब्राह्मण बोले, कि राजा द्रुपद दुःख और शोकसे विकल होकर योग्य पुत्र पानेकी अभिलाषासे, कर्ममें सिद्ध अच्छे ब्राह्मणोंको ढूंढते हुए एक आश्रमसे दूसरेमें जाने लगे। यह चिंता, कि मेरी अच्छी

नास्ति श्रेष्ठमपत्यं मे इति नित्यमचिन्तयत् ॥ २ ॥
जातान्पुत्रान्स निर्वेदाद्धिग्बन्धूनिति चाऽब्रवीत् ।
निःश्वासपरमश्चाऽऽसीद् द्रोणं प्रतिचिकीर्षया ॥ ३ ॥
प्रभावं विनयं शिक्षां द्रोणस्य चरितानि च ।
क्षात्रेण च बलेनाऽस्य चिन्तयन्नाऽध्यगच्छत ।
प्रतिकर्तुं नृपश्रेष्ठो यतमानोऽपि भारत ॥ ४ ॥
अभितः सोऽथ कल्माषीं गङ्गाकूले परिभ्रमन् ।
ब्राह्मणावसथं पुण्यमाससाद महीपतिः ॥ ५ ॥
तत्र नाऽस्नातकः कश्चिन्न चाऽऽसीदव्रती द्विजः ।
तथैव च महाभागः सोऽपश्यत्संशितव्रतौ ॥ ६ ॥
याजोपयाजौ ब्रह्मर्षी शाम्यन्तौ परमेष्ठिनौ ।
संहिताध्ययने युक्तौ गोत्रतश्चापि काश्यपौ ॥ ७ ॥
तारणेयौ युक्तरूपौ ब्राह्मणावृषिसत्तमौ ।
स तावामन्त्रयामास सर्वकामैरतन्द्रितः ॥ ८ ॥
बुद्ध्वा बलं तयोस्तत्र कनीयांसमुपह्वरे ।
प्रपेदे छन्दयन्कामैरुपयाजं धृतव्रतम् ॥ ९ ॥

सन्तान नहीं है उनके हृदयमें सदा जगती थी। वह अपने अनादरके कारण अपने पुत्रों और मित्रोंको धिक्कारते हुए द्रोणका बदला लेनेके लिये सदा लंबी शांस छोडा करते थे। वह बदला लेनेको चाहने पर भी सोचकर निश्चय नहीं कर सके, कि क्षत्रिय बलसे क्योंकर द्रोणके प्रभाव,नम्रता,शिक्षा और चरित्रसे बढ सकते हैं। (१—४)

अनन्तर घूमते घामते गङ्गाके किनारे कल्माषपाद नामक राजाकी पुरीके निकट ब्राह्मणोंके पवित्र स्थान में जा पहुंचे। वहां जो सब ब्राह्मण थे, वे सबके सब स्नातक, व्रतशील और महाभाग थे। उन में याज और उपयाज नामक व्रतशील, शमगुणी, ब्रह्मप्रेमी, संहिता पाठमें नियुक्त, काश्यप गोत्रवाले, सूर्य के उपासक, सुंदर रूपवाले ऋषियों में श्रेष्ठ दो ब्रह्मर्षियोंको देखकर उनकी इच्छानुरूप कार्य पूरा करानेके योग्य समझा। (५—८)

आगे वह आलस्यको विसार कर सम्पूर्ण कामनाओंसे उनकी उपासना करने लगे। (८)

अनन्तर उन दोनोंमें कनिष्ठको शक्तिमान् जानकर एकान्तमें उनकी शरण ली। वह संपूर्ण कामकी वस्तुओंका लोभ

पादशुश्रूषणे युक्तः प्रियवाक्सर्वकामदः ।
अर्चयित्वा यथान्यायमुपयाजमुवाच सः ॥ १० ॥
येन मे कर्मणा ब्रह्मन्पुत्रः स्याद् द्रोणमृत्यवे।
उपयाज कृते तस्मिन्गवां दाताऽस्मि तेऽर्बुदम्॥ ११
यदा तेऽन्यद् द्विजश्रेष्ठ मनसः सुप्रियं भवेत् ।
सर्वं तत्ते प्रदाताऽहं न हि मेऽत्राऽस्ति संशयः॥ १२ ॥
इत्युक्तो नाऽहमित्येवं तमृषिः प्रत्यभाषत ।
आराधयिष्यन्द्रुपदः स तं पर्यचरत्पुनः ॥ १३ ॥
ततः संवत्सरस्यान्ते द्रुपदं स द्विजोत्तमः।
उपयाजोऽब्रवीत्काले राजन्मधुरया गिरा ॥ १४ ॥
ज्येष्ठो भ्राता ममाऽगृह्णाद्विचरन्गहने वने ।
अपरिज्ञातशौचायां भूमौ निपतितं फलम्॥ १५ ॥
तदपश्यमहं भ्रातुरसांप्रतमनुव्रजन् ।
विमर्शं संकरादाने नाऽयं कुर्यात्कदाचन ॥ १६ ॥
दृष्ट्वा फलस्य नाऽपश्यद्दोषान्पापानुबन्धकान्।
विविनक्ति न शौचं यः सोऽन्यत्रापि कथं भवेत् १७॥

दिखा, पांव दाब, मीठी बात कह, अभिलाषा पूरी कर इत्यादि उपायोंसे उन व्रतशील उपयाजको प्रसन्न करने लगे; एक समय द्रुपद विधिपूर्वक उपयाजको पूजा कर बोले, कि हे ब्रह्मन् उपयाज! यदि आप यह कर्म करें, कि जिसके करनेसे मेरे द्रोणनाशी पुत्रका जन्म हो, तो मैं आपको एक अर्बुद गौ दूंगा। हे द्विजश्रेष्ठ! यदि आपकी और किसी वस्तुकी अभिलाषा हो, तो इसमें संदेह नहीं है, कि उसेभी पूराकर दूंगा। (९—१२)

ऋषि बोले, कि मैं यह काम नहीं कर सकूंगा। द्रुपद तिस परभी उन ऋषिकी उपासनाके लिये फिर सेवा करने लगे। अनन्तर एक वर्ष बीतने पर एकदिन द्विजोत्तम उपयाजने राजा द्रुपदको मीठी बातोंसे कहा, कि एक समय मेरे ज्येष्ठ भाईने घने वनमें चलते समय ऐसे स्थानसे गिरा हुआ फल उठा लिया, कि वह नहीं जानते थे, कि वह स्थान पवित्र है वा नहीं। मैं उनके पीछे चलता था, सो उन्हें उस अयोग्य कामको करते देखा था। (१३–१६)

हे राजन! उन्होंने उस दोषयुक्त वस्तुके लेनेमें कोई विचार नहीं किया। उस फलको देखतेही उसके पापयुक्त

संहिताध्ययनं कुर्वन्वसन्गुरुकुले च यः ।
भैक्ष्यमुत्सृष्टमन्येषां भुङ्क्ते स्म च यदा तदा १८ ॥
कीर्तयन्गुणमन्नानामघृणी च पुनः पुनः ।
तं वै फलार्थिनं मन्ये भ्रातरं तर्कचक्षुषा ॥ १९ ॥
तं वै गच्छस्व नृपते स त्वां संयाजयिष्यति ।
जुगुप्समानो नृपतिर्मनसेदं विचिन्तयन् ॥ २० ॥
उपयाजवचः श्रुत्वा याजस्याऽऽश्रममभ्यगात् ।
अभिसंपूज्य पूजार्हमथ याजमुवाच ह ॥ २१ ॥
अयुतानि ददान्यष्टौ गवां याजय मां विभो ।
द्रोणवैराभिसंतप्तं प्रह्लादयितुमर्हसि ॥ २२ ॥
स हि ब्रह्मविदां श्रेष्ठो ब्रह्मास्त्रे चाऽप्यनुत्तमः ।
तस्माद् द्रोणः पराजैष्ट मां वै स सखिविग्रहे २३ ॥
क्षत्रियो नास्ति तस्याऽस्यां पृथिव्यां कश्चिदग्रणीः ।
कौरवाचार्यमुख्यस्य भारद्वाजस्य धीमतः ॥ २४ ॥

दोषको समझ उनकी बुद्धिमें एकबार भी नहीं आयी; अतएव जिन्होंने एक स्थानमें शौचका विचार नहीं किया, वह अन्य स्थानमें क्योंकर दोष-दर्शी होयंगे, अर्थात् वह तुम्हारे अभीष्ट विषयमें दोष नहीं देख पावेंगे! औरभी जब वह गुरुकुलमें रहकर संहिता पढते थे, तब बहुधा औरोंकी जूठी की हुई वस्तुभी खा लेते थे, इसमें उनको घृणा नहीं थी; वह सदा अन्नहीका गुण गाया करते थे। उनके उस प्रकार कामोंको देखनेके कारण मैं तर्करूपी आंखोंसे उनको फलार्थी समझ रहा हूं! हे महाराज! तुम उनके पास जाओ; वह तुम्हारे याजनकार्य करनेमें संमत होंगे। (१७—२०)

राजा द्रुपद याजके चरित्रको सुन निंदा करनेकी इच्छा होने परभी मनही मनमें अपने कार्यके सोचमें उपयाजकी बातसे उनके आश्रमको गये। वहां पहुंचकर पूजनीय याजको सब प्रकारसे पूज कर बोले, कि हे विभो! मैं आपको अस्सी सहस्र गौ दान करूंगा, आप मेरा याजन कार्य करें। मैं द्रोणकी शत्रुतारूपी आगसे जल रहा हूं, आप कृपारूपी जल सींचकर मुझको शीतल करें। द्रोण ब्रह्मविद्या और ब्रह्मास्त्र दोनोंमें दक्ष हैं; इस लिये मित्रता की लढ में मुझको परास्त किया है। वह बुद्धिमान् और कौरवोंके प्रधान आचार्य हैं; इस भूमण्डलमें कोई क्षत्रिय उनसे श्रेष्ठ नहीं है। (२०--२४)

द्रोणस्य शरजालानि प्राणिदेहहराणि च ।
षडरत्नि धनुश्चास्य दृश्यते परमं महत् ॥ २५ ॥
स हि ब्राह्मणवेषेण क्षात्रं वेगमसंशयम् ।
प्रतिहन्ति महेष्वासो भारद्वाजो महामनाः ॥ २६ ॥
क्षत्रोच्छेदाय विहितो जामदग्न्य इवाऽऽस्थितः ।
तस्य ह्यस्त्रबलं घोरमप्रधृष्यं नरैर्भुवि ॥ २७ ॥
ब्राह्मं संधारयंस्तेजो हुताहुतिरिवाऽनलः ।
समेत्य स दहत्याजौ क्षात्रधर्मपुरःसरः ॥ २८ ॥
ब्रह्मक्षत्रे च विहिते ब्राह्मं तेजो विशिष्यते ।
सोऽहं क्षात्रबलाद्धीनो ब्राह्मं तेजः प्रपेदिवान् ॥ २९ ॥
द्रोणाद्विशिष्टमासाद्य भवन्तं ब्रह्मवित्तमम् ।
द्रोणान्तकमहं पुत्रं लभेयं युधि दुर्जयम् ॥ ३० ॥
तत्कर्म कुरु मे याज वितराम्यर्बुदं गवाम् ।
तथेत्युक्त्वा तु तं याजो याज्यार्थमुपकल्पयत् ॥ ३१ ॥
गुर्वर्थ इति चाऽकाममुपयाजमचोदयत् ।
याजो द्रोणविनाशाय प्रतिजज्ञे तथा च सः ॥ ३२ ॥

उसका धनुष छः अरत्निके समान बडा है; उनका बाण जाल सर्व जीवोंकेही शरीर का नाश कर सकता है। इसमें संदेह नहीं है, कि वह महानुभव भारद्वाज ब्राह्मण के वेशमें बडे चापधारी होकर क्षत्रिय-तेजका सत्यानाश कर रहे हैं। वह क्षत्रिय नाशके लिये मानो दूसरे परशुराम बने हैं। इस पृथ्वीभरमें कोईभी उनके कठोर अस्त्रबलको घटा नहीं सकता है। वह आहुतियुक्त प्रज्वलित अग्निकी भांति ब्राह्म-तेजके साथ साथ क्षत्रियतेजको मिलाकर शत्रुको जला मारते हैं। (२५–२८)

उनका ब्राह्मतेज क्षत्रियतेजसे मिलकर श्रेष्ठ होने परभी आपका ब्राह्मतेज उनसे श्रेष्ठ है, और केवल क्षत्रियबलधारी मैं उनसे हीन बना हूं; अतएव मैं आपको जो द्रोणसे श्रेष्ठ और वेदके अच्छे जान-कार हैं, प्राप्त होकर आपके ब्राह्मतेजकी शरण लेता हूं। हे याज! यह काम करें, कि जिससे मैं लडाईमें जयके अयोग्य और द्रोणनाशी पुत्र लाभ कर सकूं; आपको दश कोटि गौदान करनेको प्रस्तुत हूं। (२९—३१)

याज तथास्तु कहकर यागके प्रयोगके विषयमें मनही मनमें ध्यान करने लगे; और उस कार्यको कठिन जानके निष्काम

ततस्तस्य नरेन्द्रस्य उपयाजो महातपाः ।
आचख्यौ कर्म वैतानं तदा पुत्रफलाय वै ॥ ३३ ॥
स च पुत्रो महावीर्यो महातेजा महाबलः ।
इष्यते यद्विधो राजन्भविता ते तथाविधः ॥ ३४ ॥
भारद्वाजस्य हन्तारं सोऽभिसंधाय भूपतिः ।
आजह्रे तत्तथा सर्वं द्रुपदः कर्मसिद्धये ॥ ३५ ॥
याजस्तु हवनस्यान्ते देवीमाज्ञापयत्तदा ।
प्रैहि मां राज्ञि पृषति मिथुनं त्वामुपस्थितम् ॥ ३६ ॥

राज्युवाच — अवलिप्तं मुखं ब्रह्मन्दिव्यान्गन्धान्बिभर्मि च ।
सुतार्थं नोपलब्धास्मि तिष्ठ याज मम प्रिये ॥ ३७ ॥

याज उवाच— याजेन श्रपितं हव्यमुपयाजाभिमन्त्रितम् ।
कथं कामं न संदध्यात्सा त्वं विप्रैहि तिष्ठ वा॥ ३८ ॥

ब्राह्मण उवाच— एवमुक्त्वा तु याजेन हुते हविषि संस्कृते ।
उत्तस्थौ पावकात्तस्मात्कुमारो देवसंनिभः ॥ ३९ ॥

उपयाजसे सहायता करनेको कहा। महर्षि याजने जब द्रोणनाशके लिये प्रतिज्ञा करी तब महातपा उपयाजने नरेन्द्र द्रुपदके निकट उनके पुत्र फलके लिये श्रौताग्नि-साध्य कर्मकी कथा कह सुनायी और कहा, कि हे द्रुपद! आप जैसे यशस्वी और बल-वीर्यवंत पुत्रकी कामना करेंगे, आपको वैसाही पुत्र मिलेगा। (३१-३४)

अनन्तर भूपाल द्रुपदने जब द्रोण-विनाशी पुत्र पानेकी युक्ति निश्चयकर कार्य साधनेके लिये उस यज्ञके योग्य संपूर्ण सामग्री इकट्ठी कर दी, तब उन्होंने यज्ञ आरंभ कर दिया। आगे याजने हवनके होजाने पर राणीको यह आज्ञा करी, कि ऐ राज्ञी! पृषतराज वधू! तुम हवि लेनेके लिये शीघ्र मेरे पास आओ; तुम्हारे पुत्र, कन्या उपस्थित हैं। रानी बोली, कि हे ब्रह्मन्! मेरा मुंह कुंकुमादि गन्धके पदार्थोंसे पूरित है, अङ्गरागोंसे भूषितभी हूं, अतएव मेरे अभीष्ट पुत्रके लिये आप कुछ काल विलंब करें; मैं शुचि हो आती हूं। याज बोले, कि हवनके पदार्थ उपयाजसे मंत्रयुक्त होकर याजके द्वारा पकाये गये हैं तुम चाहे आओ वा न आओ, अवश्यही उससे कामना पूरी होगी। (३५—८३)

ब्राह्मण बोले, कि याजने यह कहके अग्निसे संस्कार किये हुए हव्यकी आहुति ज्योंही दी, त्योंही उस अग्निसे ज्वाला-वर्ण भीमाकृति किरीटसे सुशोभित सुन्दर

ज्वालावर्णो घोररूपः किरीटी वर्म चोत्तमम् ।
बिभ्रत्सखड्गः सशरो धनुष्मान्विनदन्मुहुः ॥ ४० ॥
सोऽध्यारोहद्रथवरं तेन च प्रययौ तदा ।
ततः प्रणेदुः पाञ्चालाः प्रहृष्टाः साधुसाध्विति ॥ ४१ ॥
हर्षाविष्टांस्ततश्चैतान्नेयं सेहे वसुंधरा ।
भयापहो राजपुत्रः पाञ्चालानां यशस्करः ॥ ४२ ॥
राज्ञः शोकापहो जात एष द्रोणवधाय वै ।
इत्युवाच महद्भूतमदृश्यं खेचरं तदा ॥ ४३ ॥
कुमारी चापि पाञ्चाली वेदीमध्यात्समुत्थिता ।
सुभगा दर्शनीयाङ्गी स्वसितायतलोचना ॥ ४४ ॥
श्यामा पद्मपलाशाक्षी नीलकुञ्चितमूर्धजा ।
ताम्रतुङ्गनखी सुभ्रूश्चारुपीनपयोधरा ॥ ४५ ॥
मानुषं विग्रहं कृत्वा साक्षादमरवर्णिनी ।
नीलोत्पलसमो गन्धो यस्याः क्रोशात्प्रधावति ॥ ४६ ॥
या बिभर्ति परं रूपं यस्या नाऽस्त्युपमा भुवि ।

कवचयुक्त धनुषबाणधारी और देवसदृश एक कुमार उत्पन्न हुआ। वह कुमार जन्म लेतेही बार बार सिंह-गर्जन करता हुआ प्रधान रथ पर चढ गया और उस रथ पर इधर उधर जाने लगा। यह देखकर पाञ्चाललोग आनन्दित होके इतना चिल्ला कर "साधु साधु" कहके ऐसा भारी शब्द करने लगे, कि मानों धरती उन हर्षयुक्त पाञ्चालोंका भार संभालनेको असमर्थ होगयी। (३९-४२)

तब आकाशवाणी हुई, कि "इस राजकुमारने द्रोणवधके लिये जन्म लिया है। यह पुत्र पाञ्चालोंका यश बढानेवाला, भयनाशी और राजाका शोक दूर करनेवाला होगा।" आगे वेदीके मध्यसे पाञ्चालराजकुमारी सौभाग्यवती श्यामाङ्गी एक कुमारी उठी। उस कन्याके अङ्गोंकी शोभा बहुत सुन्दर, दोनों आंखे नीली, चौडी और पद्मपलाशके समान, केश काले और घुंघराले, नख ऊंचे और तामेके रङ्गके, दोनों भौंहें बडी शोभा देनेवाली, और स्तन बडे तथा शोभायुक्त थे; उसकी शोभा देखकर समझ पडती थी, कि मानों साक्षात् देवकन्या मानवीके स्वरूपमें प्रगट हुई थी। उसकी नीलपद्म समान देहकी गन्ध कोस भरकी दूरीतक पहुंचने लगी। वह देवरूपिणी कन्या ऐसी अनुपम रूप-

देवदानवयक्षाणामीप्सितां देवरूपिणीम् ॥ ४७ ॥
तां चापि जातां सुश्रोणीं वागुवाचाऽशरीरिणी ।
सर्वयोषिद्वरा कृष्णा निनीषुः क्षत्रियान्क्षयम् ॥ ४८ ॥
सुरकार्यमियं काले करिष्यति सुमध्यमा ।
अस्या हेतोः कौरवाणां महदुत्पत्स्यते भयम् ॥ ४९ ॥
तच्छ्रुत्वा सर्वपाञ्चालाः प्रणेदुः सिंहसङ्घवत् ।
न चैतान्हर्षसंपूर्णानियं सेहे वसुन्धरा ॥ ५० ॥
तौ दृष्ट्वा पार्षती याजं प्रपेदे वै सुतार्थिनी ।
न वै मदन्यां जननीं जानीयातामिमाविति ॥ ५१ ॥
तथेत्युवाच तां याजो राज्ञः प्रियचिकीर्षया ।
तयोश्च नामनी चक्रुर्द्विजाः संपूर्णमानसाः ॥ ५२ ॥
धृष्टत्वादत्यमर्षित्वाद् द्युम्नाद् द्युत्संभवादपि ।
धृष्टद्युम्नः कुमारोऽयं द्रुपदस्य भवत्विति ॥ ५३ ॥
कृष्णेत्येवाऽब्रुवन्कृष्णां कृष्णाऽभूत्सा हि वर्णतः ।
तथा तन्मिथुनं जज्ञे द्रुपदस्य महामखे ॥ ५४ ॥

वती हुई कि देव, दानव, यक्ष आदिभी उसकी प्रार्थना करें । (४२–४७)

उस सुन्दरी कन्याके जन्म लेने परभी आकाश वाणी हुई, कि "यह कृष्णा सम्पूर्ण नारियोंमें श्रेष्ठ और बहुत क्षत्रिय-कुलोंका नाश चाहनेवाली होगी । इस सुन्दरीसे उचित समय पर देवता का कार्य पूरा होगा । इसके लियेही कौरवों में बडा भय उपस्थित होगा ।" संपूर्ण पाञ्चाल उसे सुनकर हर्षके मारे सिंहोंकी नाई ऐसी ध्वनि करने लगे, कि मानो धरती उन हर्षित पाञ्चालोंका भार संभालनेको असमर्थ हुई । (४८—५०)

पुत्रचाहनेवाली राजा द्रुपदकी रानी उस पुत्र कन्याको देखकर याजके निकट जा पहुंची और बोली, आप ऐसा करें, कि यह पुत्र कन्या मेरे अतिरिक्त किसी दूसरीको माता करके जान न सकें । याज राजाके प्रिय कार्यको करनेके लिये "तथास्तु" बोले, आगे ब्राह्मणगण सफल मनोरथ होके बोले, कि राजा द्रुपदका यह कुमार धृष्ट अर्थात प्रगल्भ, अति धृष्ट अर्थात् विपक्षियोंकी उन्नति न सहनेवाला और द्युम्नादि अर्थात् कवच कुण्डल आदिके साथ उत्पन्न हुआ है, सो इसका नाम धृष्टद्युम्न हुआ, और यह कुमारी काली हुई है, सो इसका नाम कृष्णा रहा । राजा द्रुपदके महायज्ञसे

धृष्टद्युम्नं तु पाञ्चाल्यमानीय स्वं निवेशनम् ।
उपाकरोदस्त्रहेतोर्भारद्वाजः प्रतापवान् ॥ ५५ ॥
अमोक्षणीयं दैवं हि भावि मत्वा महामतिः ।
तथा तत्कृतवान्द्रोण आत्मकीर्त्यनुरक्षणात् ॥५६॥ [६५७३]

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यामादिपर्वणि
चैत्ररथपर्वण्यूनसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १६९ ॥

वैशम्पायन उवाच—एतच्छ्रुत्वा तु कौन्तेयाः शल्यविद्धा इवाऽभवन् ।
सर्वे चाऽस्वस्थमनसो बभूवुस्ते महाबलाः ॥ १ ॥
ततः कुन्ती सुतान्दृष्ट्वा सर्वांस्तद्गतचेतसः ।
युधिष्ठिरमुवाचेदं वचनं सत्यवादिनी ॥ २ ॥

कुन्त्युवाच— चिररात्रोषिताः स्मेह ब्राह्मणस्य निवेशने ।
रममाणाः पुरे रम्ये लब्धभैक्ष्या महात्मनः ॥ ३ ॥
यानीह रमणीयानि वनान्युपवनानि च ।
सर्वाणि तानि दृष्टानि पुनः पुनररिंदम ॥ ४ ॥
पुनर्द्रष्टुं हि तानीह प्रीणयन्ति न नस्तथा ।
भैक्ष्यं च न तथा वीर लभ्यते कुरुनन्दन ॥ ५ ॥

ऐसे पुत्र और कन्याकी उत्पत्ति हुई थी। (५१—५४)

अनन्तर प्रतापी भारद्वाज द्रोणने पाञ्चालराजके पुत्र धृष्टद्युम्नको अपने घरमें लाकर अस्त्रोंकी शिक्षा देकर पहिले लिये हुए आधे राज्यको लेनेके पलटेमें उपकार किया। महामति द्रोणने यह समझ कर, कि दैवीभाव लङ्घनयोग्य नहीं है, अपनी कीर्तिकी रक्षाके लिये ऐसा कार्य किया। (५५–५६) [६५७३]

आदिपर्वमें एकसौ उनहत्तर अध्याय समाप्त।

आदिपर्वमें एकसौ सत्तर अध्याय।

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि अनन्तर महाबली पाण्डवगण वह वृत्तान्त सुनकर शूलीसे विंधे जानेकी भांति दुःखी भये। सत्य कहनेवाली कुन्ती पुत्रोंको अनमन देख कर युधिष्ठिरसे बोली, कि हमको इस ब्राह्मणके घर रहे बहुत दिन बीते। इस सुन्दरनगरमें महात्माओंसे भिक्षा ले ले कर खेल कूदकर काल गंवाया है, यहां जितने सुन्दर सुन्दर बन और उपवन हैं, वह सभी बार बार देख चुके हैं। हे वीर कुरुनन्दन! उन स्थानोंको फिर देखनेकी अब वैसी प्रीति नहीं होती, और एक स्थानमें रहनेसे वैसी भिक्षा मिलनेकी भी संभावना

ते वयं साधु पञ्चालान्गच्छाम यदि मन्यसे ।
अपूर्वदर्शनं वीर रमणीयं भविष्यति ॥ ६ ॥
सुभिक्षाश्चैव पञ्चालाः श्रूयन्ते शत्रुकर्शन ।
यज्ञसेनश्च राजाऽसौ ब्रह्मण्य इति शुश्रुम ॥ ७ ॥
एकत्र चिरवासश्च क्षमो न च मतो मम ।
ते तत्र साधु गच्छामो यदि त्वं पुत्र मन्यसे ॥ ८ ॥

युधिष्ठिर उवाच– भवत्या यन्मतं कार्यं तदस्माकं परं हितम् ।
अनुजांस्तु न जानामि गच्छेयुर्नेति वा पुनः ॥ ९ ॥

वैशम्पायन उवाच– ततः कुन्ती भीमसेनमर्जुनं यमजौ तथा ।
उवाच गमनं ते च तथेत्येवाऽब्रुवंस्तदा ॥ १० ॥
तत आमन्त्र्य तं विप्रं कुन्ती राजन्सुतैः सह ।
प्रतस्थे नगरीं रम्यां द्रुपदस्य महात्मनः ॥ ११ ॥ [६५८४]

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यामादिपर्वणि चैत्ररथपर्वणि पाञ्चालदेशयात्रायां सप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १७० ॥

वैशम्पायन उवाच– वसत्सु तेषु प्रच्छन्नं पाण्डवेषु महात्मसु ।
आजगामाऽथ तान्द्रष्टुं व्यासः सत्यवतीसुतः ॥ १ ॥

बनी नहीं रहती; अतएव यदि तुम्हारा मत होवे, तो हम सुखसे पाञ्चाल देशको जायं, वह स्थान पहिले नहीं देखा है, उसके देखनेसे सुख प्राप्त होगा। (१-६)

हे शत्रुनाशि! सुना है, कि पाञ्चाल-देश अन्नसे भरा पूरा है और वहांके राजा यज्ञसेनभी ब्रह्मपरायण हैं। फिर-भी एक स्थानमें सदा रहना मेरा अभीष्ट नहीं है, यह उचितभी नहीं है। यदि तुम्हारा मत होवे, तो हम उस स्थान को सुख पूर्वक पधारें। युधिष्ठिर बोले, कि आपकी जैसी इच्छा होगी, वही हम करेंगे, और वही हमारी मङ्गल-दायी होगी; पर नहीं जानते भाईलोग क्या चाहते हैं। वैशम्पायनजी बोले, कि अनन्तर कुन्तीने जब भीम, अर्जुन, नकुल और सहदेवसे वहां जानेकी इच्छा पूछी, तब वेभी उस पर स्वीकृत हुए। महाराज! अनन्तर कुन्ती और उनके बेटे ब्राह्मणसे मिल कर महात्मा भूपाल द्रुपदके सुन्दर नगरको गये। (७—११) [६५८४]

आदिपर्वमें एकसौ सत्तर अध्याय समाप्त।

आदिपर्वमें एकसौ एकहत्तर अध्याय।

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि जब महात्मा पाण्डवलोग ब्राह्मणके घरमें छिप

तमागतमभिप्रेक्ष्य प्रत्युद्गम्य परंतपाः ।
प्रणिपत्याऽभिवाद्यैनं तस्थुः प्राञ्जलयस्तदा ॥ २ ॥
समनुज्ञाप्य तान्सर्वानासीनान्मुनिरब्रवीत् ।
प्रच्छन्नं पूजितः पार्थैः प्रीतिपूर्वमिदं वचः ॥ ३ ॥
अपि धर्मेण वर्तध्वं शास्त्रेण च परंतपाः ।
अपि विप्रेषु पूजा वः पूजार्हेषु न हीयते ॥ ४ ॥
अथ धर्मार्थवद्वाक्यमुक्त्वा स भगवानृषिः ।
विचित्राश्च कथास्तास्ताः पुनरेवेदमब्रवीत् ॥ ५ ॥
व्यास उवाच— आसीत्तपोवने काचिदृषेः कन्या महात्मनः ।
विलग्नमध्या सुश्रोणी सुभ्रूः सर्वगुणान्विता ॥ ६ ॥
कर्मभिः स्वकृतैः सा तु दुर्भगा समपद्यत ।
नाऽध्यगच्छत्पतिं सा तु कन्या रूपवती सती ॥ ७ ॥
तपस्तप्तुमथाऽऽरेभे पत्यर्थमसुखा ततः ।
तोषयामास तपसा सा किलोग्रेण शंकरम् ॥ ८ ॥
तस्याः स भगवांस्तुष्टस्तामुवाच यशस्विनीम् ।
वरं वरय भद्रं ते वरदोऽस्मीति शंकरः ॥ ९ ॥

कर वस रहे थे, तब एक दिन सत्यवती के पुत्र व्यासजी उनकी भेटके लिये आये। शत्रुनाशी पाण्डव गण उनको आते देखकर उठकरके प्रणाम दण्डवत पूर्वक दोनों हाथ जोड करके खडे रहे। आगे उनकी आज्ञासे वे सब बैठ गये। वह उनसे पूजे जाकर प्रीतिपूर्वक यह बोले, कि हे शत्रुनाशियो ! तुम धर्ममार्ग में रहकर शास्त्रके अनुसार अपनी जीविका कर लेते हो न? पूजनीय ब्राह्मण लोग तुमसे पूजे तो जाते हैं? (१-४)

अनन्तर भगवान् कृष्णद्वैपायन धर्मार्थयुक्त भांति भांतिकी विचित्र कथा कह कर फिर यह कहने लगे, कि एक तपोवनमें किसी महात्मा ऋषिकी एक कन्या थी; उसकी कमर पतली और भौंह अच्छी थीं और वह बडी सुंदरी और सर्व गुणोंसे सुहावनी थी ! ऋषि-कन्या अपने कर्मवश अभागी भई थी, सती और रूपवती होने पर भी पति नहीं मिला, अनन्तर वह चित्तमें दुःख मान कर पति पानेके लिये तप करने लगी। आगे कडी तपस्यासे भगवान् शंकरको संतुष्ट करने पर शङ्कर प्रसन्न होकर बोले, कि हे भद्रे ! मैं, शंकर तुमको वर देनेको उद्यत हुआ हूं, वर

अथेश्वरमुवाचेदमात्मनः सा वचो हितम् ।
पतिं सर्वगुणोपेतमिच्छामीति पुनः पुनः ॥ १० ॥
तामथ प्रत्युवाचेदमीशानो वदतां वरः ।
पञ्च ते पतयो भद्रे भविष्यन्तीति भारताः ॥ ११ ॥
एवमुक्त्वा ततः कन्या देवं वरदमब्रवीत् ।
एकमिच्छाम्यहं देव त्वत्प्रसादात्पतिं प्रभो ॥ १२ ॥
पुनरेवाऽब्रवीद्देव इदं वचनमुत्तमम् ॥ १३ ॥
पञ्चकृत्वस्त्वया ह्युक्तः पतिं देहीत्यहं पुनः ।
देहमन्यं गतायास्ते यथोक्तं तद्भविष्यति ॥ १४ ॥
द्रुपदस्य कुले जज्ञे सा कन्या देवरूपिणी ।
निर्दिष्टा भवतां पत्नी कृष्णा पार्षत्यनिन्दिता ॥ १५ ॥
पाञ्चालनगरे तस्मान्निवसध्वं महाबलाः ।
सुखिनस्तामनुप्राप्य भविष्यथ न संशयः ॥ १६ ॥
एवमुक्त्वा महाभागः पाण्डवान्स पितामहः ।
पार्थानामन्त्र्य कुन्तीं च प्रातिष्ठत महातपाः ॥ १७ ॥ [६६०१]

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यामादिपर्वणि चैत्ररथपर्वण्येक-सप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १७१ ॥

मांगो, तुम्हारा मङ्गल होगा (५—९)

ऋषिकन्या अपने हितके निमित्त ईश्वर से बार बार बोली, कि मैं सर्वगुणोंसे भूषित पति मांगती हूं ! वाक्पति ईशान उससे बोले, कि ऐ भद्रे ! तुमको पांच भरतवंशी पति मिलेंगे। कन्या वरदाता महादेवजी की यह बात सुनकर बोली, कि हे देव ! हे विभो ! मैं आपकी कृपासे एक ही पति मांगती हूं। तब देवदेव फिर यह सुन्दर वाणी बोले, कि तुमने यह बात कि "पति दो" पांच बार मुझसे कही हैं, सो अन्य जन्म में तुम्हारे पांच पति होंगे। (१०-१४)

हे भरतकुलभूषणो ! उस कन्याने इन दिनों द्रुपदकुलमें जन्म लिया है। देवता समान अनिन्दनीया कृष्णा नाम्नी वह द्रौपदी तुम्हारी पत्नी बननेकी बाट देख रही है; सो अब तुम पाञ्चाल नगर में जाकर वहां टिके रहो। महाबली पाण्डवो ! तुम निःसंदेह उस कृष्णाको पाकर सुख पाओगे। पाण्डवोंके दादा महातपस्वी, महाभाग व्यासदेव पृथा और पार्थोंसे यह कह कर सम्भाषण पूर्वक चले गये। (१५—१७) [६६०१]

आदिपर्वमें एकसौ एकहत्तर अध्याय समाप्त।

वैशम्पायन उवाच— गते भगवति व्यासे पाण्डवा हृष्टमानसाः ।
ते प्रतस्थुः पुरस्कृत्य मातरं पुरुषर्षभाः ॥ १ ॥
आमन्त्र्य ब्राह्मणं पूर्वमभिवाद्याऽनुमान्य च ।
समैरुदङ्मुखैर्मार्गैर्यथोद्दिष्टं परंतपाः ॥ २ ॥
ते त्वगच्छन्नहोरात्रात्तीर्थं सोमाश्रयायणम् ।
आसेदुः पुरुषव्याघ्रा गङ्गायां पाण्डुनन्दनाः॥ ३ ॥
उल्मुकं तु समुद्यम्य तेषामग्रे धनञ्जयः ।
प्रकाशार्थं ययौ तत्र रक्षार्थं च महारथः ॥ ४ ॥
तत्र गङ्गाजले रम्ये विविक्ते क्रीडयन्स्त्रियः ।
ईर्ष्युर्गन्धर्वराजो वै जलक्रीडामुपागतः ॥ ५ ॥
शब्दं तेषां स शुश्राव नदीं समुपसर्पताम् ।
तेन शब्देन चाऽविष्टश्चुक्रोध बलवद्बली ॥ ६ ॥
स दृष्ट्वा पाण्डवांस्तत्र सह मात्रा परन्तपान् ।
विस्फारयन्धनुर्घोरमिदं वचनमब्रवीत् ॥ ७ ॥
सन्ध्या संरज्यते घोरा पूर्वरात्रागमेषु या ।
अशीतिभिर्लवैर्हीनं तन्मुहूर्तं प्रचक्षते ॥ ८ ॥
विहितं कामचाराणां यक्षगन्धर्वरक्षसाम् ।

आदिपर्वमें एकसौ बहत्तर अध्याय ।

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि भगवान् व्यासके चले जाने पर पुरुषश्रेष्ठ शत्रुनाशी पाण्डवगण ब्राह्मणको नमस्कार पूर्वक सत्कार करके प्रसन्न चित्तसे माताको आगे करके पांचाल नगरकी ओर चले। वे अपने उद्देशके अनुसार सीधे उत्तर ओर को चलकर, उस सोमाश्रयायण नामक तीर्थमें जा पहुंचे कि जहां भगवान् चंद्र शेखर विराजते हैं। वहां दिन बीतने पर महारथी धनञ्जय पथ दिखाने और रक्षा के लिये एक जलती हुई लकड़ी उठाकर आगे आगे चले, आगे पुरुषव्याघ्र पाण्डव लोग गङ्गा तट पर जा पहुंचे। वहां ईर्षासे भरा हुआ एक गंधर्वराज जलक्रीडाके लिये आकर सुंदर भागीरथी जलमें स्त्रियों के संग निरालेमें खेल रहा था। (१-५)

पाण्डवगण उस नदीमें उतर रहे थे, कि उस महाबली गन्धर्वराजको उनका शब्द मिला और वह क्रोधसे जल उठे। अनन्तर शत्रुनाशी पाण्डवोंको माताके साथ आते देखकर कठोर शरासनको फैलाकर बोले, कि रात्रि आनेके पहिले जो घोर लाल सन्धाकाल होता है

शेषमन्यन्मनुष्याणां कर्मचारेषु वै स्मृतम् ॥ ९ ॥
लोभात्प्रचारं चरतस्तासु वेलासु वै नरान् ।
उपक्रान्ता निगृह्णीमो राक्षसैः सह बालिशान् १०॥
अतो रात्रौ प्राप्नुवतो जलं ब्रह्मविदो जनाः ।
गर्हयन्ति नरान्सर्वान्बलस्थान्नृपतीनपि ॥ ११ ॥
आरात्तिष्ठत मा मह्यं समीपमुपसर्पत ।
कस्मान्मां नाभिजानीत प्राप्तं भागीरथीजलम् १२॥
अङ्गारपर्णं गन्धर्वं वित्त मां स्वबलाश्रयम् ।
अहं हि मानी चेर्ष्युश्च कुबेरस्य प्रियः सखा १३॥
अङ्गारपर्णमित्येवं ख्यातं चेदं वनं मम ।
अनुगंगां चरन्कामांश्चित्रं यत्र रमाम्यहम् ॥ १४ ॥
न कौणपाः शृंगिणो वा न देवा न च मानुषाः ।
इदं समुपसर्पन्ति तत्किं समुपसर्पथ ॥ १५ ॥

अर्जुन उवाच — समुद्रे हिमवत्पार्श्वे नद्यामस्यां च दुर्मते ।
रात्रावहनि सन्ध्यायां कस्य गुप्तः परिग्रहः ॥ १६॥

उसके अस्सी लवके अतिरिक्त शेष सब मुहूर्तही कामचारी यक्ष, गन्धर्व और राक्षसोंके विचरनेका काल निर्दिष्ट है; इसके सिवाय शेष संपूर्ण काल मनुष्योंके कर्माचरणके निमित्त निश्चय है। (६-९)

यदि मनुष्यगण लोभवश घूमते घामते हुए हमारे उस निर्दिष्ट कालमें आते हैं, तो हम उन मूर्खोंको नष्ट कर डालते हैं। इस लिये जो लोग रात्रिको जलाशयमें जाते हैं, वे बली भूपालभी होवें, तो वेदज्ञ ब्राह्मण उनकी निन्दा करते हैं; अतएव तुम दूर रहो, मेरे पास मत आओ! क्या तुम नहीं जानते हो, कि मैं भागीरथीके जलमें देह डुबा रहा हूं? मैं मानी और कुबेरका मित्र अङ्गारपर्ण नामक गन्धर्व हूं; मैं अपने भुजबलहीसे काम पूरा कर लेता हूं, किसीको क्षमा नहीं करता हूं; मेरे अधिकारका यह वन अङ्गारपर्ण नामसे प्रसिद्ध है। मैं इस बनके भीतर गङ्गा नदी में भांति भांति की क्रीडा करता हुआ विचरता हूं। मैं बलवान होनेके कारण कुबेर का बडा प्रिय हूं; लक्षणोंसे जान पडता है, कि तुम राक्षस, शृङ्गी, गन्धर्व अथवा यक्ष नहीं हो, फिर क्योंकर मेरे पास आनेका साहस किया। (१०—१५)

अर्जुन बोले, कि-रे दुर्मते! समुद्र,

मुक्तो वाप्यथ वाऽभुक्तो रात्रावहनि खेचर ।
न कालनियमो ह्यस्ति गङ्गां प्राप्य सरिद्वराम् १७॥
वयं च शक्तिसंपन्ना अकाले त्वामधृष्णुम ।
अशक्ता हि रणे क्रूर युष्मानर्चन्ति मानवाः ॥१८॥
पुरा हिमवतश्चैषा हेमशृङ्गाद्विनिःसृता ।
गङ्गा गत्वा समुद्राम्भः सप्तधा समपद्यत ॥ १९ ॥
गङ्गां च यमुनां चैव प्लक्षजातां सरस्वतीम् ।
रथस्थां सरयूं चैव गोमतीं गण्डकीं तथा ॥ २० ॥
अपर्युषितपापास्ते नदीः सप्त पिबन्ति ये ।
इयं भूत्वा चैकवप्रा शुचिराकाशगा पुनः ।
देवेषु गङ्गा गन्धर्व प्राप्नोत्यलकनन्दताम् ॥ २१ ॥
तथा पितॄन्वैतरणी दुस्तरा पापकर्मभिः ।
गंगा भवति वै प्राप्य कृष्णद्वैपायनोऽब्रवीत् ॥ २२ ॥
असंबाधा देवनदी स्वर्गसंपादनी शुभा ।
कथमिच्छसि तां रोद्धुं नैष धर्मः सनातनः ॥ २३ ॥
अनिवार्यमसंबाधं तव वाचा कथं वयम् ।

हिमाचलका पार्श्व और गंगाजी यह सब स्थान, चाहे दिन रात वा सन्ध्या समय हो, किसके लिये रुके रह सकते हैं ? ऐ व्योमचर ! चाहे पेटभरा वा पेट खाली हो, किसीके लिये दिन वा रात्रि किसी समय जलभरी गंगाजी पर आनेका प्रतिबंध नहीं है। विशेष कुसमयमें तुमको चिढानेसे हमको क्या हो सकता है?क्योंकि हममें शक्ति है। रे कुटिल! जो लोग लडने में असमर्थ हैं, वे ही तुम्हारी पूजा करते हैं। पूर्वकालमें यह गङ्गा हिमाचलकी सुवर्ण चोटीसे निकल कर सात भागोंमें बंटके समुद्र-जलसे मिल गयी हैं। जो लोग गङ्गा, यमुना, प्लक्षजाता, सरस्वती, रथस्था, शरयू, गोमती और गण्डकी इन सात नदियोंका जल पीते हैं, उसके सब पाप कट जाते हैं। (१६—२१)

ऐ गन्धर्व ! आकाशमें बहने वाली पवित्र यह गङ्गा आकाशमें जाकर देवलोक में अलकनन्दा नामसे और पितृलोकमें पापात्माओं को तारने वाली वैतरणी नाम से प्रसिद्ध हुई हैं। कृष्णद्वैपायनने कहा है, कि स्वर्ग तथा शुभदेनेवाले इस सुर-सोतेमें जानेकी किसीको मनाही नहीं है; तुम उस बिनबाधाकी गङ्गाजीको क्या रोकना चाहते हो? यह सनातन धर्म नहीं है,

न स्पृशेम यथाकामं पुण्यं भागीरथीजलम्॥ २४ ॥

वैशम्पायन उवाच—अंगारपर्णस्तच्छ्रुत्वा क्रुद्ध आयम्य कार्मुकम् ।
मुमोच बाणान्निशितानहीनाशीविषानिव ॥ २५ ॥
उल्मुकं भ्रामयंस्तूर्णं पाण्डवश्चर्म चोत्तमम् ।
व्यपोहत शरांस्तस्य सर्वानेव धनञ्जयः ॥ २६ ॥

अर्जुन उवाच— बिभीषिका वै गन्धर्व नाऽस्त्रज्ञेषु प्रयुज्यते ।
अस्त्रज्ञेषु प्रयुक्तेयं फेनवत्प्रविलीयते ॥ २७ ॥
मानुषानतिगन्धर्वान्सर्वान्गन्धर्व लक्षये ।
तस्मादस्त्रेण दिव्येन योत्स्येऽहं न तु मायया ॥ २८ ॥
पुराऽस्त्रमिदमाग्नेयं प्रादात्किल बृहस्पतिः ।
भरद्वाजाय गन्धर्व गुरुर्मान्यः शतक्रतोः ॥ २९ ॥
भरद्वाजादग्निवेश्य अग्निवेश्याद्गुरुर्मम ।
साध्विदं मह्यमददद् द्रोणो ब्राह्मणसत्तमः ॥ ३० ॥

वैशम्पायन उवाच—इत्युक्त्वा पाण्डवः क्रुद्धो गन्धर्वाय मुमोच ह ।
प्रदीप्तमस्त्रमाग्नेयं ददाहाऽस्य रथं तु तत् ॥ ३१ ॥
विरथं विप्लुतं तं तु स गन्धर्वं महाबलम् ।

अतएव हम क्यों तुम्हारी बात सुनकर उस बाधारहित बिन मनाहीके पवित्र गंगा जलको नहीं छूयेंगे ? (२१-२४)

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि अङ्गारपर्ण यह बात सुनकर क्रोधके मारे शरासन चढाकर अति विषयुक्त सर्पके समान तेज बाणोंको वर्षाने लगा! पाण्डुपुत्र धनञ्जय ने उस जलती हुई लकडी और उत्तम चर्मको घुमाकर उनके सब बाणोंको व्यर्थ किया और बोले, कि गन्धर्व ! जो लोग अस्त्रोंके जानकार हैं, उनको बिभीषिका दर्शाना उचित नहीं है, क्योंकि उनके निकट वह फेनकी भांति क्षण भरमें लोप होजाती है। हे गंधर्व ! मैं समझता हूं, कि गंधर्व मनुष्यकी जातिसे पराक्रमी हैं, सो मैं तुमसे दिव्य अस्त्रोंके सहारे लडूंगा, कपटयुक्ति नहीं करूंगा। पूर्वकालमें देव-राजके गुरु सबोंके माननीय बृहस्पति जीने अग्न्यस्त्र भरद्वाजको दिया था। आगे भरद्वाजसे अग्निवेश्यको मिला, अग्निवेश्य से मेरे गुरु ब्राह्मणोंमें श्रेष्ठ द्रोणको मिला उन्होंने यह सुन्दर अस्त्र मुझको दिया है। (२५—३०)

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि पाण्डुनन्द-न अर्जुनने यह कहकर क्रोधसे गंधर्व पर उस प्रज्वलित अग्न्यस्त्रको छोडकर उनके

अस्त्रतेजःप्रमूढं च प्रपतन्तमवाङ्मुखम् ॥ ३२ ॥
शिरोरुहेषु जग्राह माल्यवत्सु धनञ्जयः ।
भ्रातॄन्प्रति चकर्षाऽथ सोऽस्त्रपाताद्चेतसम् ॥ ३३ ॥
युधिष्ठिरं तस्य भार्या प्रपेदे शरणार्थिनी ।
नाम्ना कुम्भीनसी नाम पतित्राणमभीप्सती॥ ३४ ॥

गन्धर्व्युवाच— त्रायस्व मां महाभाग पतिं चेमं विमुञ्च मे।
गन्धर्वी शरणं प्राप्ता नाम्ना कुम्भीनसी प्रभो ॥ ३५॥

युधिष्ठिर उवाच—युद्धे जितं यशोहीनं स्त्रीनाथमपराक्रमम् ।
को निहन्याद्रिपुं तात मुञ्चेमं रिपुसूदन ॥ ३६ ॥

अर्जुन उवाच— जीवितं प्रतिपद्यस्व गच्छ गन्धर्व मा शुचः ।
प्रदिशत्यभयं तेऽद्य कुरुराजो युधिष्ठिरः ॥ ३७ ॥

गन्धर्व उवाच— जितोऽहं पूर्वकं नाम मुञ्चाम्यंगारपर्णताम् ।
न च श्लाघे बलेनांग न नाम्ना जनसंसदि ॥ ३८ ॥
साध्विमं लब्धवाँल्लाभं योऽहं दिव्यास्त्रधारिणम् ।

प्रसिद्ध रथको भस्म किया। वह महाबली गन्धर्व अग्न्यस्त्रके प्रभावसे रथसे च्युत होकर नीचे मुहकर धरती पर गिर रहे थे, कि अर्जुनने उनके मालाओंसे सजे सजाये केश पकड लिये; और अस्त्रकी चोटसे अचेत उस गन्धर्वको खींच कर भाइयोंके पास ले आये। अनन्तर उस गन्धर्वकी कुंभीनसी नाम्नी स्त्री पतिकी रक्षाके लिये युधिष्ठिरकी शरण लेकर बोली, हे महाभाग! मेरी रक्षा करें, मेरे पतिको छोड दें। हे प्रभो! मेरा नाम कुम्भीनसी है, मैं गन्धर्वी हूं; आपकी शरण लेती हूं। (३०-३५)

तब युधिष्ठिर अर्जुनसे बोले, कि हे शत्रुमथनेहारे! जो शत्रु युद्धमें हार कर पराक्रम और यशसे रहित होकर स्त्रीसे बचाया जाता है, उसको कौन मार सकता है? भैया! तुम इसको छोड दो। अनन्तर अर्जुन गन्धर्वसे बोले, कि गन्धर्व! तुमको जविन मिल गया, चले जाओ, शोक मत करना। आज कुरुराज युधिष्ठिरने तुमको बचानेकी आज्ञा दी है। गन्धर्व बोले, कि मेरा पर्ण अर्थात् वाहन प्रज्वलित अङ्गारकी भांति दूसरोंके छूनेके अयोग्य था, इस लिये मैं अङ्गारपर्ण नामसे प्रख्यात था; अब तुमसे हार कर यह अङ्गारपर्ण नाम छोड देता हूं, क्योंकि जब जनसमाजमें बल और वीर्यका मानही नहीं रहा, तब केवल नामके माननीय बने रहनेसे प्रयोजन ही क्या है? (३६-३८)

आज मुझे यह एक परम लाभ हुआ,

गान्धर्व्या माययेच्छामि संयोजयितुमर्जुनम् ॥ ३९॥
अस्त्राग्निना विचित्रोऽयं दग्धो मे रथ उत्तमः ।
सोऽहं चित्ररथो भूत्वा नाम्ना दग्धरथोऽभवम् ४० ॥
संभृता चैव विद्येयं तपसेह मया पुरा ।
निवेदयिष्ये तामद्य प्राणदाय महात्मने ॥ ४१ ॥
संस्तम्भयित्वा तरसा जितं शरणमागतम् ।
यो रिपुं योजयेत्प्राणैः कल्याणं किं न सोऽर्हति॥४२॥
चाक्षुषी नाम विद्येयं यां सोमाय ददौ मनुः ।
ददौ स विश्वावसवे मम विश्वावसुर्ददौ ॥ ४३ ॥
सेयं कापुरुषं प्राप्ता गुरुदत्ता प्रणश्यति ।
आगमोऽस्या मया प्रोक्तो वीर्यं प्रति निबोध मे॥४४॥
यच्चक्षुषा द्रष्टुमिच्छेत् त्रिषु लोकेषु किंचन ।
तत्पश्येद्यादृशं चेच्छेत्तादृशं द्रष्टुमर्हति ॥ ४५ ॥
एकपादेन षण्मासान्स्थितो विद्यां लभेदिमाम् ।
अनुनेष्याम्यहं विद्यां स्वयं तुभ्यं व्रते कृते॥ ४६ ॥

मुझको दिव्यास्त्र धरनेवाला मित्र मिल-गया, आज मुझे मित्र अर्जुनको गान्धर्वी मायाकी विद्या देनेकी इच्छा हो रही है। मेरा उत्तम विचित्र रथ था,सो मैं चित्र-रथ करके प्रसिद्ध था, अब वह रथ अ-स्त्राग्निसे जल गया,अतएव चित्ररथ होने पर भी,अब मुझको दग्धरथ नाम मिला। हे मित्र ! मैंने पहिले तपस्यासे जो गां-धर्वी विद्या लाभ की थी, आज वह विद्या तुमको देता हूं, क्यों कि तुम मेरे प्राणदाता और महात्मा हो । जो बलसे शत्रुको हराते मोहित करते और उस हारे हुए मोहित शत्रुके शरण लेने पर उसका प्राण दे देते हैं, वह अ-वश्यही कल्याण पानेके योग्य हैं । (३९—४२)

उस विद्याका नाम चाक्षुषी है;भगवान मनुने वह विद्या सोमको दी थी, सोमने विश्वावसुको दी और मुझको विश्वावसुसे मिली । पर वह गुरुकी दी हुई विद्या बुरे मनुष्य के हाथसे नष्ट हो जाती है। इस चाक्षुषी विद्याके गुरुओंका सिलसिलेवार आगम-वृत्तान्त कहा, अब उसके वीर्यकी बात कहता हूं, सुनो। त्रिलोकभरमें चाहे जिस किसी पदार्थको आंखोंसे देखना चाहोगे, वही दीख पडेगा और उस पदार्थका स्वभाव और दशा जैसी है, वह भी देखना चाहो तो देख लोगे।

विद्यया ह्यनया राजन्वयं नृभ्यो विशेषिताः ।
अविशिष्टाश्च देवानामनुभावप्रदर्शिनः ॥ ४७ ॥
गन्धर्वजानामश्वानामहं पुरुषसत्तम ।
भ्रातृभ्यस्तव तुभ्यं च पृथग्दाता शतं शतम्॥४८॥
देवगन्धर्ववाहास्ते दिव्यवर्णा मनोजवाः ।
क्षीणाक्षीणा भवन्त्येते न हीयन्ते च रंहसः॥४९॥
पुराकृतं महेन्द्रस्य वज्रं वृत्रनिबर्हणम् ।
दशधा शतधा चैव तच्छीर्णं वृत्रमूर्धनि ॥ ५० ॥
ततो भागीकृतो देवैर्वज्रभाग उपास्यते ।
लोके यशोधनं किंचित्सा वै वज्रतनुः स्मृता॥५१॥
वज्रपाणिर्ब्राह्मणः स्यात्क्षत्रं वज्ररथं स्मृतम् ।
वैश्या वै दानवज्राश्च कर्मवज्रा यवीयसः ॥ ५२ ॥
क्षत्रवज्रस्य भागेन अवध्या वाजिनः स्मृताः ।

छःमास एक पांवके बल खडे रह कर तप करनेसे वह विद्या मिलती है, पर तुम्हारे उस व्रतको न किये रहने परभी मैं उसे तुमको दूंगा। (४२–४६)

हे महाराज! हमलोग उस विद्याहीके बलसे अनुभवदर्शी हो कर मनुष्योंसे विशिष्ट और देवोंके सदृश हुए हैं। हे पुरुषश्रेष्ठ! फिर मैं तुम और तुम्हारे भाइयोंमें हरेकको सौ सौ गन्धर्वज घोडे देता हूं; सुन्दर वर्ण और मन समान वेगवान वे घोडे देवता और गन्धर्वोंके वाहन हैं; उनको युवावस्था वा बुढापा नहीं है; वे कभी वेग रहित नहीं होते। पूर्वकालमें वृत्तासुरके मारनेके लिये देवराज महेन्द्रका वज्र बना था। वह वज्र वृत्रासुर के सिर पर गिर कर सहस्र भागोंमें बंट गया। (४७–५०)

देवगण वज्रके उन अनेक भागोंकी उपासना किया करते हैं। इन तीनों लोकोंमें यशरूपी धन उस वज्रका एक भाग है; ब्राह्मण गण जिस हाथसे अग्निमें आहुति चढाते हैं, उनका वह हाथ उस वज्रका एक भाग है; क्षत्रियगण जिस रथ पर चढकर लडाईमें देवता और ब्राह्मणोंके शत्रु नष्ट करते हैं, उनका रथ उस वज्रका एक भाग है; वैश्यगण देवता और ब्राह्मणोंको जो दान देकर सुखी होते हैं, उनका वह दानभी उस वज्रका एक भाग है; और शूद्रगण ब्राह्मणोंकी जो सेवा कर निज धर्मकी रक्षा करते हैं, उनकी वह सेवाभी उस वज्रका एक भाग है; अतएव घोडे क्षत्रियों

रथाङ्गं वडवा सूते शूराश्चाऽश्वेषु ये मताः ॥ ५३ ॥
कामवर्णाः कामजवाः कामतः समुपस्थिताः ।
इति गन्धर्वजाः कामं पूरयिष्यन्ति मे हयाः ५४॥

अर्जुन उवाच — यदि प्रीतेन मे दत्तं संशये जीवितस्य वा ।
विद्याधनं श्रुतं वापि न तद्गन्धर्व रोचये ॥ ५५ ॥

गन्धर्व उवाच— संयोगो वै प्रीतिकरो महत्सु प्रतिदृश्यते ।
जीवितस्य प्रदानेन प्रीतो विद्यां ददामि ते ॥ ५६ ॥
त्वत्तोऽप्यहं ग्रहीष्यामि अस्त्रमाग्नेयमुत्तमम् ।
तथैव योग्यं बीभत्सो चिराय भरतर्षभ ॥ ५७ ॥

अर्जुन उवाच— त्वत्तोऽस्त्रेण वृणोम्यश्वान्संयोगः शाश्वतोऽस्तु नौ ।
सखे तद् ब्रूहि गन्धर्व युष्मभ्यो यद्भयं भवेत् ॥ ५८ ॥
कारणं ब्रूहि गन्धर्व किं तद्येन स्म धर्षिताः ।
यान्तो वेदविदः सर्वे सन्तो रात्रावरिन्दमाः ॥ ५९ ॥

गन्धर्व उवाच— अनग्नयोऽनाहुतयो न च विप्रपुरस्कृताः ।

के वज्ररूपी रथके अङ्ग होनेके हेतु मारनेके अयोग्य करके कहे गये हैं। पर रथके अङ्ग घोडे, घोडियोंसे उपजते हैं; उनमें जो घोडे गन्धर्व लोकमें जन्म लेते हैं, वे सब शूर हैं और उन का वर्ण इच्छाधीन है, तथा वे मनमाने वेग-वान और वशीभूत होते हैं, इस लिये मेरे उन घोडोंसे तुम्हारा मनोरथ पूर्ण होगा। (५०-५४)

अर्जुन बोले, कि हे गन्धर्व ! तुम जीवन नष्ट होनेके भयसे बच जाने पर प्रसन्न होकर मुझको विद्या वा घोडे देनेको उद्यत हुए हो, सो मैं उन्हें नहीं लेना चाहता। गन्धर्व बोले, महानुभाव जनोंसे मिलनाही प्रीतियुक्त होता है, विशेष मैं जीवन पानेसे प्रसन्नभी हुआ हूं, इस लिये तुमको वह विद्या देता हूं! हे भरतश्रेष्ठ विभत्सो ! मैं जिस प्रकार तुमको वह विद्या दूंगा, वैसेही पलटेमें तुमसे सनातन उत्तम अग्न्यस्त्र लूंगा। अर्जुन बोले, कि हे गन्धर्व ! मैं अस्त्र देकर तुमसे घोडे मांगता हूं, हमारी मित्रता बनी रहे। हे मित्र गन्धर्व ! बोलो, कि गन्धर्वकी जातिसे मनुष्य की जातिको क्यों भय आ पहुंचता है; और यहभी कहो, कि हम सब शत्रुनाशी साधु और वेदज्ञ होने परभी रात्रिको चलते हुए क्यों तुमसे लाञ्छित हुए। (५५—५९)

गन्धर्व बोले, कि हे पाण्डवो ! तुम गुरुकुलसे लौट आये, पर तौभी विवाह

यूयं ततो धर्षिताः स्थ मया वै पाण्डुनन्दनाः ॥६०॥
यक्षराक्षसगन्धर्वाः पिशाचोरगदानवाः ।
विस्तरं कुरुवंशस्य धीमन्तः कथयन्ति ते ॥ ६१ ॥
नारदप्रभृतीनां तु देवर्षीणां मया श्रुतम् ।
गुणान्कथयतां वीर पूर्वेषां तव धीमताम् ॥ ६२ ॥
स्वयं चापि मया दृष्टश्चरता सागराम्बराम् ।
इमां वसुमतीं कृत्स्नां प्रभावः सुकुलस्य ते ॥ ६३ ॥
वेदे धनुषि चाऽऽचार्यमभिजानामि तेऽर्जुन ।
विश्रुतं त्रिषु लोकेषु भारद्वाजं यशस्विनम्॥ ६४ ॥
धर्मं वायुं च शक्रं च विजानाम्यश्विनौ तथा ।
पाण्डुं च कुरुशार्दूल षडेतान्कुरुवर्धनान् ॥ ६५ ॥
पितॄनेतानहं पार्थ देवमानुषसत्तमान् ॥ ६६ ॥
दिव्यात्मानो महात्मानः सर्वशस्त्रभृतां वराः ।
भवन्तो भ्रातरः शूराः सर्वे सुचरितव्रताः ॥ ६७ ॥
उत्तमां च मनोबुद्धिं भवतां भावितात्मनाम् ।
जानन्नपि च वः पार्थ कृतवानिह धर्षणाम् ॥ ६८ ॥

नहीं किया है, सो बिन आश्रम हो; और तुम्हारे सङ्ग ब्राह्मणभी नहीं हैं, इसी लिये, मैंने तुम पर चढाई की थी। यक्ष, राक्षस, गन्धर्व, पिशाच, उरग और दानव यह सब धीमान हैं, और कुरुवंशकी कथा कहते हैं। हे वीर! मैंनेभी नारदादि देवर्षियोंसे तुम्हारे ज्ञानशील अगले पुरुषोंके गुणकी कहानी सुनी है, और स्वयं इस सागर वेष्टित संपूर्ण धरतीमें घूमता हुआ तुम्हारे सुवंशका प्रभाव प्रत्यक्ष देखा है। हे अर्जुन! वेद और धनुर्विद्यामें त्रिलोक भरमें प्रशंसित यशोवन्त तुम्हारे आचार्य को भली प्रकार जानता हूं। (६०--६४)

हे कुरुव्याघ्र! तुम्हारे ज्ञानशील पितृपुरुष कुरुवंश बढानेहारे देवोंमें श्रेष्ठ धर्म, पवन, इन्द्र और दोनों अश्विनीकुमार और मानवोंमें श्रेष्ठ पाण्डु इन छओंसे विशेष रूपसे ज्ञात हूं। तुम पांचों भाई सम्पूर्ण शस्त्र विद्याओंमें दक्ष, अच्छे स्वभावी, महात्मा, सुचरित्रवान, व्रतशील और शूर हो, तुम्हारे मन और बुद्धि बडी अच्छी और स्वभाव अति शुद्ध हैं। हे पार्थ! मैं यह सब जानने परभी तुमको लाञ्छन किया था; क्योंकि भुजबल युक्त कोई पुरुष स्त्रीके सामने अपने

स्त्रीसकाशे च कौरव्य न पुमान्क्षन्तुमर्हति ।
धर्षणामात्मनः पश्यन्बाहुद्रविणमाश्रितः ॥ ६९ ॥
नक्तं च बलमस्माकं भूय एवाऽभिवर्धते ।
यतस्ततो मां कौन्तेय सादरं मन्युराविशत् ॥ ७० ॥
सोऽहं त्वयेह विजितः संख्ये तापत्यवर्धन ।
येन तेनेह विधिना कीर्त्यमानं निबोध मे ॥ ७१ ॥
ब्रह्मचर्यपरो धर्मः स चापि नियतस्त्वयि ।
यस्मात्तस्मादहं पार्थ रणेऽस्मिन्विजितस्त्वया ॥७२ ॥
यस्तु स्यात्क्षत्रियः कश्चित्कामवृत्तः परन्तप ।
नक्तं च युधि युध्येत न स जीवेत्कथंचन ॥ ७३ ॥
यस्तु स्यात्कामवृत्तोऽपि पार्थ ब्रह्मपुरस्कृतः ।
जयेन्नक्तंचरान्सर्वान्स पुरोहितधूर्गतः ॥ ७४ ॥
तस्मात्तापत्य यत्किंचिन्नृणां श्रेय इहेप्सितम् ।
तस्मिन्कर्माणि योक्तव्या दान्तात्मानः पुरोहिताः ७५
वेदे षडङ्गे निरताः शुचयः सत्यवादिनः ।
धर्मात्मानः कृतात्मानः स्युर्नृपाणां पुरोहिताः ॥७६ ॥

अपमानको सहन नहीं कर सकता है; विशेष रात्रिकालमें हमारा बल बहुत बढ जाता है, इस लिये मैं स्त्रीके सहित क्रोधके वशमें होगया था। ६५-७०

हे तापत्यवंशवर्द्धन ! मैं जिस विधि के अनुसार तुमसे युद्धमें परास्त होगया हूं, वह कहता हूं, सुनो; हे पार्थ ! ब्रह्मचर्य परम धर्म है; तुम उस धर्मको अवलम्बन किये हुए हो, इस लिये तुमसे हार गया। हे शत्रुनाशि ! कोई विवाह किया हुआ क्षत्रिय रात्रिकालमें हम लोगोंसे लडे, तो वह किसी प्रकार जीवित नहीं रह सकता है । हे पार्थ ! विवाह कर लेने परभी जो क्षत्रिय वेदसे अलंकृत होकर पुरोहित पर सब कार्योंका भार सौंप देता है, वह युद्धमें निशाचरोंको परास्त कर सकता है; हे तापत्य ! इस लिये मनुष्योंको मनमाना हरेक शुभ कर्ममें दमगुणयुक्त पुरोहित नियुक्त करना चाहिये। हे मित्र जो वेद और शिक्षादि षडङ्गोंमें पण्डित पवित्र-वंशी, सत्यवादी, धर्मात्मा और जितेन्द्रिय हैं, वही राजपुरोहित होनेके योग्य हैं।७१-७५

जिस राजाके धर्मज्ञ वाक्निपुण सुशील सुवंशी पुरोहित रहते हैं, उनको इस लोकमें सदा जय और परलोकमें स्वर्ग-

जयश्च नियतो राज्ञः स्वर्गश्च तदनन्तरम् ।
यस्य स्याद्धर्मविद्वाग्मी पुरोधाः शीलवाञ्शुचिः ७७॥
लाभं लब्धुमलब्धं वा लब्धं वा परिरक्षितुम् ।
पुरोहितं प्रकुर्वीत राजा गुणसमन्वितम् ॥ ७८॥
पुरोहितमते तिष्ठेद्य इच्छेद्भूतिमात्मनः ।
प्राप्तुं वसुमतीं सर्वां सर्वशः सागराम्बराम् ॥ ७९॥
न हि केवलशौर्येण तापत्याभिजनेन च ।
जयेदब्राह्मणः कश्चिद्भूमिं भूमिपतिः क्वचित् ॥ ८०॥
तस्मादेवं विजानीहि कुरूणां वंशवर्धन ।
ब्राह्मणप्रमुखं राज्यं शक्यं पालयितुं चिरम् ॥ ८१॥ [६६८२]

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यामादिपर्वणि चैत्ररथपर्वणि
गंधर्वपराभवे द्विसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १७२ ॥

अर्जुन उवाच— तापत्य इति यद्वाक्यमुक्तवानसि मामिह ।
तदहं ज्ञातुमिच्छामि तापत्यार्थं विनिश्चितम् ॥ १ ॥
तपती नाम का चैषा तापत्या यत्कृते वयम् ।
कौन्तेया हि वयं साधो तत्त्वमिच्छामि वेदितुम् ॥ २॥
वैशम्पायन उवाच-एवमुक्तः स गन्धर्वः कुन्तीपुत्रं धनञ्जयम् ।

प्राप्ति होती है। राजाको अनमिले पदार्थ के मिलने और मिले हुए पदार्थकी रक्षाके लिये गुणवान पुरोहित नियुक्त करना चाहिये। जो राजा अपने लिये ऐश्वर्यकी इच्छा करते हैं, उनको सागर-सहित संपूर्ण धरतीको प्राप्त करनेके निमित्त सब प्रकारसे पुरोहितके मतानुसार रहना चाहिये! हे तापत्य! कोई राजा ब्राह्मण वर्जित होकर केवल शूरता वा आभिजात्यसे धरतीको जीत नहीं सकता? अतएव निश्चय जानना, कि जिस राज्यकी कार्य-चिन्तामें ब्राह्मणकी प्रधानता रहती है, उस राज्यकी सदा रक्षा होती है। (७६—८१) [६६८२]

आदिपर्वमें एकसौ बहत्तर अध्याय समाप्त।

आदिपर्वमें एकसौ तिहत्तर अध्याय।

अर्जुन बोले, कि हे मित्र! तुमने मुझको तापत्य करके पुकारा, मैं जानना चाहता हूं, कि तापत्य शब्दका अर्थ क्या है। हे साधो! हम कुन्तीकी सन्तान हैं, इस हेतु कौन्तेय करके प्रख्यात हैं, पर तापत्य किसका नाम है, कि तापत्य कह के पुकारे जा सकें। इसका सच्चा तत्त्व जाननेकी इच्छा हो रही है। (१-२)

विश्रुतां त्रिषु लोकेषु श्रावयामास वै कथाम् ॥ ३॥

गन्धर्व उवाच— हन्त ते कथयिष्यामि कथामेतां मनोरमाम् ।
यथावदखिलां पार्थ सर्वबुद्धिमतां वर ॥ ४ ॥
उक्तवानस्मि येन त्वां तापत्य इति तद्वचः ।
तत्तेऽहं कथयिष्यामि शृणुष्वैकमना भव ॥ ५ ॥
य एष दिवि धिष्ण्येन नाकं व्याप्नोति तेजसा ।
एतस्य तपती नाम बभूव सदृशी सुता ॥ ६ ॥
विवस्वतो वै देवस्य सावित्र्यवरजा विभो ।
विश्रुता त्रिषु लोकेषु तपती तपसा युता ॥ ७ ॥
न देवी नासुरी चैव न यक्षी न च राक्षसी ।
नाऽप्सरा न च गन्धर्वी तथा रूपेण काचन ॥ ८ ॥
सुविभक्ताऽनवद्याङ्गी स्वसितायतलोचना ।
स्वाचारा चैव साध्वी च सुवेषा चैव भामिनी ॥ ९ ॥
न तस्याः सदृशं कंचित्त्रिषु लोकेषु भारत ।
भर्तारं सविता मेने रूपशीलगुणश्रुतैः ॥ १० ॥
संप्राप्तयौवनां पश्यन्देयां दुहितरं तु ताम् ।

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि गन्धर्वराज कुन्तीपुत्र धनञ्जयकी वह बात सुनकर उनके निकट तीनों लोकोंमें प्रसिद्ध कथाको कहने लगे। गन्धर्व बोले, कि हे सुधीवर ! मैं यह मनोहर कथा तुमसे आद्योपान्त सब कहता हूं, जिस कारण तुमको तापत्य कहके पुकारा, उसकी कथा विस्तृत रूपसे कहता हूं, ध्यान लगाकर सुनो। इन देवता की, जिन्होंने अपने तेजसे आकाशमण्डल को भर लिया है, उनकी तीनों लोकोंमें प्रशंसित तपस्विनी तपतीनाम्नी एक कन्या थी, वह सावित्री की छोटी बहिन थी। तपनदेव जिस प्रकार रूपवान हैं, वह तपती वैसी ही रूपवती थी। (३-७)

कोई उसके रूपकी शोभासे जान नहीं सकता था, कि वह देवकन्या, असुरकन्या, यक्ष-कन्या, गन्धर्व कन्या, राक्षस-कन्या, अथवा अप्सरा थी; उस बालाकी दोनों आंखे अच्छी काली और बडी थीं और सब अंग यथायोग्य बंटे बंटाये और निन्दाके अयोग्य थे ! हे भारत ! उसके पिता सविताने उस भाविनी अति रूपवती, और सुचारिणी देखकर जाना, कि उससे सदृश रूपगुणशील और विद्या युक्त योग्य वर तीनों लोकमें नहीं हैं, अनन्तर यथा कालमें कन्याको यौवन पर

नोपलेभे ततः शान्तिं संप्रदानं विचिन्तयन् ॥ ११ ॥
अथर्क्षपुत्रः कौन्तेय कुरूणामृषभो बली ।
सूर्यमाराधयामास नृपः संवरणस्तदा ॥ १२ ॥
अर्घ्यमाल्योपहाराद्यैर्गन्धैश्च नियतः शुचिः ।
नियमैरुपवासैश्च तपोभिर्विविधैरपि ॥ १३ ॥
शुश्रूषुरनहंवादी शुचिः पौरवनन्दनः ।
अंशुमन्तं समुद्यन्तं पूजयामास भक्तिमान्॥ १४ ॥
ततः कृतज्ञं धर्मज्ञं रूपेणाऽसदृशं भुवि ।
तपत्याः सदृशं मेने सूर्यः संवरणं पतिम् ॥ १५ ॥
दातुमैच्छत्ततः कन्यां तस्मै संवरणाय ताम् ।
नृपोत्तमाय कौरव्य विश्रुताभिजनाय च ॥ १६ ॥
यथा हि दिवि दीप्तांशुः प्रभासयति तेजसा ।
तथा भुवि महीपालो दिप्त्या संवरणोऽभवत्॥ १७॥
यथाऽर्चयन्ति चाऽऽदित्यमुद्यन्तं ब्रह्मवादिनः।
तथा संवरणं पार्थ ब्राह्मणावरजाः प्रजाः ॥ १८ ॥
स सोममतिकान्तत्वादादित्यमतितेजसा ।

चढते देखकर सन्धान करनेके लिये योग्य वरकी चिन्ता करने लगे, किसी प्रकार स्थिर नहीं रह सके। (८—११)

हे कौन्तेय! उन दिनों ऋक्षपुत्र कुरु श्रेष्ठ बलवान राजा संवरण सूर्यकी उपासना किया करते थे। विना अहंकार पौरव-नन्दन संवरण सेवाशील, नियमयुक्त और शुचि होकर शुद्ध चित्तसे भक्तिपूर्वक नाना तपस्या, उपवास और नियम, तथा अर्घ्य, माला, गन्ध और दूसरे उपहार देकर दीप्यमान सूर्यकी नित्य उपासना करते थे। सूर्यदेवने उनको कृतज्ञ, धर्मज्ञ, और अप्रतिम रूपवान जानकर तपतीके योग्य पति समझा। हे कौरव्य! उसके अनन्तर उन्होंने उस प्रख्यात कुलीन नृपोत्तम संवरणहीको, कन्या सम्प्रदान करनेकी इच्छा की। (१२—१६)

हे पार्थ! जिस प्रकार प्रकाशित किरण युक्त दिवाकर अपने प्रकाशसे आकाश-मण्डलको प्रकाशित करते हैं, वैसेही भूपाल संवरणने अपने तेजसे मही मण्डलको उज्वल किया था। और जिस प्रकार सूर्यके उगने पर ब्राह्मणगण उनकी उपासना करते हैं, वैसेही ब्राह्मण, क्षत्रिय आदि प्रजा भूपाल संवरणकी

बभूव नृपतिः श्रीमान्सुहृदां दुर्हृदामपि ॥ १९ ॥
एवंगुणस्य नृपतेस्तथावृत्तस्य कौरव ।
तस्मै दातुं मनश्चक्रे तपतीं तपनः स्वयम् ॥ २० ॥
स कदाचिदथो राजा श्रीमानमितविक्रमः ।
चचार मृगयां पार्थ पर्वतोपवने किल ॥ २१ ॥
चरतो मृगयां तस्य क्षुत्पिपासासमन्वितः ।
ममार राज्ञः कौन्तेय गिरावप्रतिमो हयः ॥ २२ ॥
स मृताश्वश्चरन्पार्थ पद्भ्यामेव गिरौ नृपः ।
ददर्शाऽसदृशीं लोके कन्यामायतलोचनाम्॥ २३ ॥
स एक एकामासाद्य कन्यां परबलार्दनः ।
तस्थौ नृपतिशार्दूलः पश्यन्नविचलेक्षणः ॥ २४ ॥
स हि तां तर्कयामास रूपतो नृपतिः श्रियम् ।
पुनः संतर्कयामास रवेर्भ्रष्टामिवप्रभाम् ॥ २५ ॥
वपुषा वर्चसा चैव शिखामिव विभावसोः ।
प्रसन्नत्वेन कान्त्या च चन्द्ररेखामिवाऽमलाम्॥२६ ॥
गिरिपृष्ठे तु सा यस्मिन्स्थिता स्वसितलोचना।

उपासना करती थी । वही श्रीमान भूप मित्र पर कोमल होकर सोमसे और शत्रु पर तेजवन्त होकर आदित्यसे बढ चढ निकले थे । हे कौरव ! ऐसे गुणशील और चरित्रवान उस भूपालको सूर्यदेव ने तपती नाम्नी कन्याको दान करना चाहा था । (१७—२०)

हे पार्थ ! एक समय अति विक्रमी श्रीमान भूपाल संवरण मृगयाके लिये पर्वतके निकटके वनमें टहल रहे थे, कि ऐसे समय उनके अनुपम अश्वने भूख प्यासके मारे कातर होकर प्राण छोडा । तब वह वाहनके विना पैदलही पर्वत पर चलने लगे । आगे प्रशस्तनेत्रा अनुपम रूपवती एक कन्या उनकी आखोंके सामने दीख पडी । शत्रुबल मथनेहारे भूपश्रेष्ठ उस कन्याको देखकर उस पर एकटक लगाये खडे रहे । और उसकी सुन्दरता देखकर समझा, कि वह हरिकी प्यारी लक्ष्मी होगी अथवा प्रभाकरकीप्रभा प्रभाकरसे पृथ्वी पर गिरकर उस कन्याके स्वरूपमें प्रकाश हुई होगी । (२१–२५)

उस बालाकी तेज-भरी देहसे मानो अग्निकी शिखा और प्रसन्नता तथा कान्तिसे मानो अमल चन्द्रकी रेखा प्रकाश हो रही थी । वास्तवमें वह सुलोचना

विभ्राजमाना शुशुभे प्रतिमेव हिरण्मयी ॥ २७ ॥
तस्या रूपेण स गिरिर्वेषेण च विशेषतः ।
स सवृक्षक्षुपलतो हिरण्मय इवाऽभवत् ॥ २८ ॥
अवमेने च तां दृष्ट्वा सर्वलोकेषु योषितः ।
अवाप्तं चाऽऽत्मनो मेने स राजा चक्षुषः फलम्॥ २९ ॥
जन्मप्रभृति यत्किंचिद् दृष्टवान्स महीपतिः।
रूपं न सदृशं तस्यास्तर्कयामास किंचन ॥ ३० ॥
तया बद्धमनश्चक्षुः पाशैर्गुणमयैस्तदा ।
न चचाल ततो देशाद् बुबुधे न च किंचन॥ ३१ ॥
अस्या नूनं विशालाक्ष्याः सदेवासुरमानुषम्।
लोकं निर्मथ्य धात्रेदं रूपमाविष्कृतं कृतम्॥ ३२ ॥
एवं संतर्कयामास रूपद्राविणसंपदा ।
कन्यामसदृशीं लोके नृपः संवरणस्तदा ॥ ३३ ॥
तां च दृष्ट्वैव कल्याणीं कल्याणाभिजनो नृपः।
जगाम मनसा चिन्तां कामबाणेन पीडितः ॥ ३४ ॥
दह्यमानः स तीव्रेण नृपतिर्मन्मथाग्निना ।
अप्रगल्भां प्रगल्भस्तां तदोवाच मनोहराम् ॥ ३५ ॥

जिस पर्वत पर खडी रहकर प्रकाशमयी सुवर्णप्रतिमासी शोभा दे रही थीं, तरु लता और गुल्मादि सहित वह पर्वत उस कन्याकी अनुपम शोभा और वेशकी बनावटसे सुवर्णका प्रतीत होने लगा। राजा उसको देखकर मनही मनमें तीनों लोकोंकी स्त्रियोंका अनादर करने लगे, और दर्शनेन्द्रियको कृतार्थ समझा। विचार कर देखा, कि जन्मसे पश्चात् जो सब सुन्दर पदार्थ देखे थे,उनमेंसे एकभी इस कन्याके समान रूपयुक्त नहीं है। २६-३०

उस सुन्दरीको देखतेही उसके गुण जालमें महीपालका चित्त और नेत्र फंस गये, सो उनको वहांसे टलनेकी सामर्थ नहीं रही और वह कुछभी समझ नहीं सके। फिर यह समझा, कि विधाताने सुर, असुर और मनुष्य, सबोंको मंथन करके इस विशालाक्षी का रूप आविष्कार किया है ; क्योंकि त्रिलोक भरमें इसके रूपकी शोभा की उपमा नहीं है। उस कल्याणीको देखतेही सुकुलीन राजा काटनेवाले मदन बाणसे घायल होकर सोचने लगे। (३१—३४)

वह कठोर कामाग्निसे जल कर दम्भ-

कासि कस्यासि रम्भोरु किमर्थं चेह तिष्ठसि ।
कथं च निर्जनेऽरण्ये चरस्येका शुचिस्मिते ॥ ३६ ॥
त्वं हि सर्वानवद्याङ्गी सर्वाभरणभूषिता ।
विभूषणमिवैतेषां भूषणानामभीप्सितम् ॥ ३७ ॥
न देवीं नाऽसुरीं चैव न यक्षीं न च राक्षसीम् ।
न च भोगवतीं मन्ये न गन्धर्वीं न मानुषीम् ॥ ३८ ॥
या हि दृष्टा मया काश्चिच्छ्रुता वापि वराङ्गनाः ।
न तासां सदृशीं मन्ये त्वामहं मत्तकाशिनि ॥ ३९ ॥
दृष्ट्वैव चारुवदने चन्द्रात्कान्ततरं तव ।
वदनं पद्मपत्राक्षं मां मथ्नातीव मन्मथः ॥ ४० ॥
एवं तां स महीपालो बभाषे न तु सा तदा ।
कामार्तं निर्जनेऽरण्ये प्रत्यभाषत किंचन ॥ ४१ ॥
ततो लालप्यमानस्य पार्थिवस्याऽऽयतेक्षणा ।
सौदामिनीव चाऽभ्रेषु तत्रैवाऽन्तरधीयत ॥ ४२ ॥
तामन्वेष्टुं स नृपतिः परिचक्राम सर्वतः ।
वनं वनजपत्राक्षीं भ्रमन्नुन्मत्तवत्सदा ॥ ४३ ॥

भावयुक्त उस मनोहरकन्यासे समझानेकी बातोंमें बोले, कि ऐ रम्भोरु ! तुम कौन ? किसकी बेटी हो ? यहां क्यों खडी हो ? ऐ सुन्दरि ! तुम इस निर्जन वनमें क्योंकर अकेली रहा करती हो ? तुमको सर्वाङ्ग सुन्दरी और सर्व आभूषणोंसे बनीठनी देखता हूं । ऐ सुन्दरि ! तुम्ही इन सब आभूषणोंकी प्रार्थना योग्य आभूषणकी भांति हुई हो । तुम देव-कन्या, यक्षकन्या, राक्षसकन्या, नागक-न्या, गन्धर्वकन्या, वा मानवकन्या, जान नहीं पडती हो । ऐ मदगर्विते ! मैंने जितनी स्त्रियां देखीं वा जिनकी कथा सुनी है, उनमें कोईभी तुम्हारे सदृश जान नहीं पडती । ऐ सुमुखी ! पद्म पलाश समान दो आंखोंसे सुशोभित और चन्द्र-मासे भी कोमल तुम्हारे मुखको देखकर मैं मदनसे मंथा जाता हूं । (३५—४०)

महीपाल काम पीडित होकर निर्जन वनमें उस बालासे इस प्रकार बोले, पर उस कन्याने कुछभी उत्तर नहीं दिया । पृथ्वीनाथके बार बार उस प्रकार कहने पर वह प्रशस्तनयना इस प्रकार अन्त-र्हित हुई, कि जिस प्रकार बिजली मेघके भीतर छिप जाती है । भूपाल उस पद्म-

अपश्यमानः स तु तां बहु तत्र विलप्य च ।
निश्चेष्टः पार्थिवश्रेष्ठो मुहूर्तं स व्यतिष्ठत ॥ ४४ ॥ [६७२६]

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यामादिपर्वणि चैत्ररथपर्वणि
तपत्युपाख्याने त्रिसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १७३ ॥

गन्धर्व उवाच— अथ तस्यामदृश्यायां नृपतिः काममोहितः ।
पातनः शत्रुसङ्घानां पपात धरणीतले ॥ १ ॥
तस्मिन्निपतिते भूमावथ सा चारुहासिनी ।
पुनः पीनायतश्रोणी दर्शयामास तं नृपम् ॥ २ ॥
अथाऽऽबभाषे कल्याणी वाचा मधुरया नृपम् ।
तं कुरूणां कुलकरं कामाभिहतचेतसम् ॥
उवाच मधुरं वाक्यं तपती प्रहसन्निव ॥ ३ ॥
उत्तिष्ठोत्तिष्ठ भद्रं ते न त्वमर्हस्यरिन्दम ।
मोहं नृपतिशार्दूल गन्तुमाविष्कृतः क्षितौ ॥ ४ ॥
एवमुक्तोऽथ नृपतिर्वाचा मधुरया तदा ।
ददर्श विपुलश्रोणीं तामेवाऽभिमुखे स्थिताम् ॥ ५ ॥
अथ तामसितापाङ्गीमाबभाषे स पार्थिवः ।
मन्मथाग्निपरीतात्मा संदिग्धाक्षरया गिरा ॥ ६ ॥

पलाश लोचना बालाको ढूंडनेके लिये बावलेकी भांति उस वनके चारों ओर घूमने लगे। इसके अनन्तर वह उसको न देखकर अनेक प्रकारसे विलपनेके पीछे क्षण भर चुप हो रहे। (४१-४४) [६७२६]

आदिपर्वमें एकसौ तिहत्तर अध्याय समाप्त ।

आदिपर्वमें एकसौ चौहत्तर अध्याय ।

गंधर्व बोले, कि अनंतर उस नारीके अदृश्य होने पर शत्रुकुलनाशी भूपाल काम मोहित होकर धरती पर गिर पडे। तब सुंदर हासिनी प्रशस्त पृथुल-नितम्बिनी तपती नाम्नी वह कन्या फिर उनको दिखाई दी और कामवश कुरुवंशी श्रेष्ठ भूपालसे मुसकिराती हुई मीठी बातोंमें बोली, कि हे शत्रुनाशि ! उठो, उठो, तुम्हारा मङ्गल होवे, तुम भूमण्डल भरमें प्रसिद्ध प्रधान भूप हो, तुमको मोह वश होना नहीं चाहिये। (१-४)

तब राजाने यह मीठी बात सुनकर उस नितम्बिनी को ही सामने देखा। अनंतर मदनकी जलनसे जला चित्त यह भूपाल श्यामल अपाङ्गयुक्त उस कामिनी से तुतली बोलीमें बोले, कि ऐ नील-नेत्रे ! मैं कामवश होकर तुम्हारी भजना

साधु त्वमसितापाङ्गि कामार्तं मत्तकाशिनि ।
भजस्व भजमानं मां प्राणा हि प्रजहन्ति माम्॥७॥
त्वदर्थं हि विशालाक्षि मामयं निशितैः शरैः ।
कामः कमलगर्भाभे प्रतिविध्यन्न शाम्यति ॥ ८ ॥
दष्टमेवमनाक्रन्दे भद्रे काममहाहिना ।
सा त्वं पीनायतश्रोणि मामाप्नुहि वरानने ॥ ९ ॥
त्वदधीना हि मे प्राणाः किंनरोद्गीतभाषिणि ।
चारुसर्वानवद्याङ्गि पद्मेन्दुप्रतिमानने ॥ १० ॥
न ह्यहं त्वदृते भीरु शक्ष्यामि खलु जीवितुम् ।
कामः कमलपत्राक्षि प्रतिविध्यति मामयम् ॥११॥
तस्मात्कुरु विशालाक्षि मय्यनुक्रोशमङ्गने ।
भक्तं मामसितापाङ्गि न परित्यक्तुमर्हसि ॥ १२ ॥
त्वं हि मां प्रीतियोगेन त्रातुमर्हसि भाविनि ।
त्वद्दर्शनकृतस्नेहं मनश्चलति मे भृशम् ॥ १३ ॥
न त्वां दृष्ट्वा पुनरन्यां द्रष्टुं कल्याणि रोचये ।
प्रसीद वशगोऽहं ते भक्तं मां भज भाविनि ॥ १४ ॥
दृष्ट्वैव त्वां वरारोहे मन्मथो भृशमंगने ।

कर रहा हूं, तुम मुझ पर साधु भावसे प्रसन्न होओ, मेरा प्राण निकल रहा है। हे कमल गर्भभूते विशालाक्षि! मदन मुझको तुम्हारे लिये ही तेज पांच बाणों से विद्ध कर रहा है, किसी प्रकार शान्त नहीं होता है। हे भद्रे! प्रफुल्लचित्ते अनङ्गरूपी घोर भुजङ्ग मुझको काट रहा है। हे वरानने पीनायतश्रोणि! तुम उस कठोर सर्प विषसे मेरी रक्षा करो। हे किन्नर गीतानुरूप भाषिणी! मनोहर सर्वाङ्ग सुन्दरी पङ्कजानने चन्द्रवदने! अब मेरा जीवन तुम्हारे हाथमें है। (७—१०)

ऐ भीरु! तुम्हारे विना मैं जी नहीं सकूंगा। ऐ पद्मपत्राक्षि! रतिपति मुझको बहुत विद्ध कर रहा है। ऐ विशालाक्षि! मुझ पर कृपा प्रगट करो। हे असित अपाङ्गि! मैं तुम्हारा भक्त हूं,हे अङ्गने! मुझको त्याग देना तुमको नहीं चाहिये; हे भाविनि प्रीति योगसे मेरी रक्षा करना तुमको अत्यन्त उचित है, क्योंकि तुम्हें देखकर स्नेह आजानेसे मेरा चित्त डोल रहा है। (११—१४)

ऐ कल्याणि! तुम्हारी सुन्दरता देख करके दूसरी स्त्री देखनेकी मेरी अभिलाषा

अन्तर्गतं विशालाक्षि विध्यति स्म पतत्रिभिः॥१५॥
मन्मथाग्निसमुद्भूतं दाहं कमललोचने ।
प्रीतिसंयोगयुक्ताभिरद्भिः प्रह्लादयस्व मे ॥ १६ ॥
पुष्पायुधं दुराधर्षं प्रचण्डशरकार्मुकम् ।
त्वद्दर्शनसमुद्भूतं विध्यन्तं दुःसहैः शरैः ॥ १७ ॥
उपशामय कल्याणि आत्मदानेन भाविनि॥१८॥
गान्धर्वेण विवाहेन मामुपैहि वरांगने ।
विवाहानां हि रम्भोरु गान्धर्वः श्रेष्ठ उच्यते॥१९॥

तपत्युवाच — नाऽहमीशाऽऽत्मनो राजन्कन्या पितृमती ह्यहम् ।
मयि चेदस्ति ते प्रीतिर्याचस्व पितरं मम ॥ २० ॥
यथा हि ते मया प्राणाः संगृहीता नरेश्वर ।
दर्शनादेव भूयस्त्वं तथा प्राणान्ममाऽहरः ॥ २१ ॥
न चाऽहमीशा देहस्य तस्मान्नृपतिसत्तम ।
समीपं नोपगच्छामि न स्वतन्त्रा हि योषितः॥२२॥
का हि सर्वेषु लोकेषु विश्रुताभिजनं नृपम् ।
कन्या नाऽभिलषेन्नाथं भर्तारं भक्तवत्सलम् ॥ २३ ॥

नहीं होती । हे भाविनि ! मैं तुम्हारे वशमें हो जाता हूं, तुम प्रसन्न होओ, इस अधीन भक्त जनकी भजना करो । ऐ वरारोहे विशालाक्षि अङ्गने ! मदनने कठोरबाणोंसे मेरा मर्मभेद किया है । ऐ कमललोचने ! मेरा शरीर कामाग्निसे जल रहा है, तुम प्रेमसंयोगके जलसे उसको ठण्डाकर दो । ऐ भाविनि ! तुम्हारे दर्शनसे उपजा हुआ कठिन कामदेव कठोर पञ्चबाणोंसे मुझको विद्ध कर रहा है, तुम आत्मदान कर उसको आरोग्य करो । ऐ वराङ्गने ! गन्धर्व विधिके अनुसार मुझसे विवाह कर लो। ऐ रंभोरु ! कहा है, कि सब विवाहोंसे गान्धर्व विवाह ही श्रेष्ठ है । (१५-१९)

तपती बोली, कि हे महाराज ! आत्मदानमें मेरी प्रभुताई नहीं है। क्योंकि मेरे पिता विद्यमान हैं । यदि मुझपर तुम्हारे चित्तकी प्रीति हो, तो पितासे प्रार्थना करो । हे नरनाथ ! मैं ने जिस प्रकार तुम्हारा चित्त चुरा लिया है, तुमनेभी देखतेही वैसेही मेरे हृदय पर कोमल बर्त्ताव किया है। हे नृपश्रेष्ठ ! स्त्री मात्रही स्वाधीन नहीं हैं, सो अपनी देह पर अधिकार न रहनेसे मैं तुम्हारे पास नहीं गयी; नहीं तो जिनकी कुलीनता सर्वलोकोंमें

तस्मादेवंगते काले याचस्व पितरं मम ।
आदित्यं प्रणिपातेन तपसा नियमेन च ॥ २४ ॥
स चेत्कामयते दातुं तव मामरिसूदन ।
भविष्याम्यहं ते राजन्सततं वशवर्तिनी ॥ २५ ॥
अहं हि तपती नाम सावित्र्यवरजा सुता ।
अस्य लोकप्रदीपस्य सवितुः क्षत्रियर्षभ ॥ २६ ॥ [६७५२]

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यामादिपर्वणि चैत्ररथपर्वणि तपत्युपाख्याने चतुःसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १७४ ॥

गन्धर्व उवाच — एवमुक्त्वा ततस्तूर्णं जगामोर्ध्वमनिन्दिता ।
स तु राजा पुनर्भूमौ तत्रैव निपपात ह ॥ १ ॥
अन्वेषमाणः सबलस्तं राजानं नृपोत्तमम् ।
अमात्यः सानुयात्रश्च तं ददर्श महावने ॥ २ ॥
क्षितौ निपतितं काले शक्रध्वजमिवोच्छ्रितम् ।
तं हि दृष्ट्वा महेष्वासं निरस्तं पतितं भुवि ॥ ३ ॥
बभूव सोऽस्य सचिवः संप्रदीप्त इवाऽग्निना ।
त्वरया चोपसंगम्य स्नेहादागतसंभ्रमः ॥ ४ ॥
तं समुत्थापयामास नृपतिं काममोहितम् ।

प्रशंसित है, उन भक्तप्यारे लोकनाथ भूपालकी कौन कन्या पति प्राप्त करना न चाहती होगी ? अतएव तुम योग्य समय आने पर मेरे पिता आदित्यको प्रणाम और नियम पूर्वक उपासना कर उनसे मुझे मांगना ! हे शत्रुनाशी महाराज ! यदि पिता मुझको तुम्हें दान करनेको सम्मत होवें, तो मैं सदा तुम्हारी वशीभूत बनी रहूंगी । हे क्षत्रियवर ! मेरा नाम तपती है । मैं इन लोक प्रकाशक आदित्यकी कन्या और सावित्रीकी छोटी बहिन हूं । (२०—२६) [६७५२]

आदिपर्वमें एकसौ चौहत्तर अध्याय समाप्त ।

आदिपर्व में एकसौ पचहत्तर अध्याय ।

गन्धर्व बोले, कि अनिन्दितरूपवती तपती यह कहकर उसी क्षण ऊंचेको चढ गयी । राजा फिर उस भूमि पर गिर पडे । इधर मंत्री उनके सहगामी और संपूर्ण सेना योधोंके साथ राजाको ढूंढते हुए उस बडे वनके भीतर उनको इंद्रध्वजकी भांति धरती पर पडे पाया । उस बडे चापधारी भूपालको गिरे और भूतलपर लोटते देखकर मानो आगसे भुज गये । आगे सम्मान पूर्वक वेगसे

भूतलाद्भूमिपालेशं पितेव पतितं सुतम् ॥ ५ ॥
प्रज्ञया वयसा चैव वृद्धः कीर्त्या नयेन च ॥
अमात्यस्तं समुत्थाप्य बभूव विगतज्वरः ॥ ६ ॥
उवाच चैनं कल्याण्या वाचा मधुरयोत्थितम्।
मा भैर्मनुजशार्दूल भद्रमस्तु तवाऽनघ ॥ ७ ॥
क्षुत्पिपासापरिश्रान्तं तर्कयामास वै नृपम्।
पतितं पातनं संख्ये शात्रवाणां महीतले ॥ ८ ॥
वारिणा च सुशीतेन शिरस्तस्याऽभ्यषेचयत् ।
अस्पृशन्मुकुटं राज्ञः पुण्डरीकसुगन्धिना ॥ ९ ॥
ततः प्रत्यागतप्राणस्तद्बलं बलवान्नृपः ।
सर्वं विसर्जयामास तमेकं सचिवं विना ॥ १० ॥
ततस्तस्याऽऽज्ञया राज्ञो विप्रतस्थे महद्बलम्।
स तु राजा गिरिप्रस्थे तस्मिन्पुनरुपाविशत्॥ ११ ॥
ततस्तस्मिन्गिरिवरे शुचिर्भूत्वा कृताञ्जलिः।
आरिराधयिषुः सूर्यं तस्थावूर्ध्वमुखः क्षितौ॥ १२ ॥
जगाम मनसा चैव वसिष्ठमृषिसत्तमम् ।
पुरोहितममित्रघ्नस्तदा संवरणो नृपः ॥ १३ ॥

निकट जाकर काममोहित भूपाल-श्रेष्ठको इस प्रकार भूमि परसे उठा लिया, कि जैसे पिता पुत्रको उठावे।(१–५)

प्रज्ञा, अवस्था, कीर्ति और नीतिमें वृद्ध उन मंत्रीने उनको उठाकर अपनी पीडा दूर की। अनन्तर वह उठे हुए पृथ्वीनाथसे कल्याणयुक्त मीठी बातोंमें बोले, कि हे अनघ मनुजशार्दूल ! आपका मङ्गल होवे, आप भय न मानें। आगे उन भूपालको जो रणभूमिमें शत्रुओंको गिराते हैं, थके मादे और भूखे प्यासे समझा; वह पद्मगन्धयुक्त ठण्डे जलसे उनकी धूलसे रंगी हुई और मुकुटसे खाली देहको धोने लगे। अनन्तर बलिष्ठ भूपने एक उन मंत्रीके विना औरोंको विदा कर दिया। सब सेनाओंके राजाकी आज्ञासे चले जाने पर राजा फिर उस पर्वत पर बैठे। (६—११)

अनन्तर वह शत्रुदमन महाराज पर्वतवर शुद्धआचारके साथ सूर्यकी उपासना करनेके लिये दोनों हाथ जोडके सिर ऊंचा कर खडे रहे और मनही मनमें ऋषिश्रेष्ठ वसिष्ठको स्मरण करने लगे। हे नराधिप ! अनन्तर दिनों रात

नक्तंदिनमथैकत्र स्थिते तस्मिञ्जनाधिपे ।
अथाऽजगाम विप्रर्षिस्तदा द्वादशमेऽहनि ॥ १४ ॥
स विदित्वैव नृपतिं तपत्या हृतमानसम् ।
दिव्येन विधिना ज्ञात्वा भावितात्मा महानृषिः१५॥
तथा तु नियतात्मानं तं नृपं मुनिसत्तमः ।
आबभाषे स धर्मात्मा तस्यैवाऽर्थचिकीर्षया ॥ १६ ॥
स तस्य मनुजेन्द्रस्य पश्यतो भगवानृषिः ।
ऊर्ध्वमाचक्रमे द्रष्टुं भास्करं भास्करद्युतिः ॥ १७ ॥
सहस्रांशुं ततो विप्रः कृताञ्जलिरुपस्थितः ।
वसिष्ठोऽहामिति प्रीत्या स चाऽऽत्मानं न्यवेदयत्१८॥
तमुवाच महातेजा विवस्वान्मुनिसत्तमम् ।
महर्षे स्वागतं तेऽस्तु कथयस्व यथेप्सितम् ॥ १९ ॥
यदिच्छसि महाभाग मत्तः प्रवदतां वर ।
तत्ते दद्यामभिप्रेतं यद्यपि स्यात्सुदुष्करम् ॥ २० ॥
एवमुक्तः स तेनर्षिर्वसिष्ठः प्रत्यभाषत ।
प्रणिपत्य विवस्वन्तं भानुमन्तं महातपाः ॥ २१ ॥
वसिष्ठ उवाच— यैषा ते तपती नाम सावित्र्यवरजा सुता ।

इस प्रकार खडे रहने पर बारहवें दिनको वसिष्ठजी वहां आये।विशुद्धात्मा धर्मशील महर्षि योगबलसे उन संयतचित्त भूपाल का चित्त तपतीसे हरा गया जान कर उनका कार्य पूरा करनेके लिये संभाषण पूर्वक समझाया। (१२—१६)

अनन्तर सूर्यप्रकाशधारी भगवान् ऋषि सूर्यसे मिलनेके लिये भूपाल के सामनेही ऊपरको चढ गये; दोनों हाथ जोडके सहस्रांशु के निकट पहुंच कर यह कहके प्रेमसे अपना परिचय दिया, कि मैं वसिष्ठ हूं। अति तेजस्वी विवस्वान्, मुनिवरसे बोले, कि हे महर्षे! तुम्हारा आना शुभ होवे, कहो, क्या चाहते हो। हे महाभाग वाग्मीवर! तुम मुझसे जो कुछ प्रार्थना करोगे, वह बडी दुर्लभ भी होवे, तो मैं तुम्हारी उस वाञ्छित वस्तु को दे दूंगा। (१७–२०)

महातपस्वी ऋषि वसिष्ठ सहस्रांशु विवस्वान की वह बात सुनकर उनको प्रणाम करके बोले, कि हे विभावसो! सावित्रीसे छोटी आपकी जो तपती नाम्नी कन्या है, मैं उसको राजा संवरणके निमित्त प्रार्थना करता हूं। हे

तां त्वां संवरणस्याऽर्थे वरयामि विभावसो॥ २२॥
स हि राजा बृहत्कीर्तिर्धर्मार्थविदुदारधीः।
युक्तः संवरणो भर्ता दुहितुस्ते विहङ्गम॥ २३॥
इत्युक्तः स तदा तेन ददानीत्येव निश्चितः।
प्रत्यभाषत तं विप्रं प्रतिनन्द्य दिवाकरः॥ २४॥
वरः संवरणो राज्ञां त्वमृषीणां वरो मुने।
तपती योषितां श्रेष्ठा किमन्यदपवर्जनात्॥ २५॥
ततः सर्वानवद्याङ्गीं तपतीं तपनः स्वयम्।
ददौ संवरणस्यार्थे वसिष्ठाय महात्मने॥ २६॥
प्रतिजग्राह तां कन्यां महर्षिस्तपतीं तदा।
वसिष्ठोऽथ विसृष्टस्तु पुनरेवाऽऽजगाम ह॥ २७॥
यत्र विख्यातकीर्तिः स कुरूणामृषभोऽभवत्।
स राजा मन्मथाविष्टस्तद्गतेनान्तरात्मना॥ २८॥
दृष्ट्वा च देवकन्यां तां तपतीं चारुहासिनीम्।
वसिष्ठेन सहाऽऽयान्तीं संहृष्टोऽभ्यधिकं बभौ॥२९॥
रुरुचे साऽधिकं सुभ्रूरापतन्ती नभस्तलात्।
सौदामिनीव विभ्रष्टा द्योतयन्ती दिशस्त्विषा॥३०॥

आकाशपते वह राजा अति कीर्तिशाली धर्मार्थ तत्त्वोंके जानकार और उदारबुद्धि हैं, सो वह आपकी पुत्रीके पति होनेके योग्य वर हैं। सूर्य ऋषिकी यह बात सुनकर सम्प्रदान करना ठान कर आदरपूर्वक उस विप्रसे बोले, कि हे मुने! राजा संवरण भूपों में श्रेष्ठ हैं, तुम मुनियोंमें श्रेष्ठ हो, और तपती भी नारियोंमें श्रेष्ठा है, अतएव सम्प्रदानके विना और क्या विचार हो सकता है? अनन्तर सूर्यदेवने स्वयं ही संवरणके निमित्त महात्मा वसिष्ठके निकट सर्वाङ्गसुन्दरी तपतीको दे दिया। (२१-२६)

महर्षि वसिष्ठ तपतीको लेकरके सूर्यसे बिदा होकर उस स्थानको लौट गये, जहां प्रख्यात कीर्तिशाली कुरुश्रेष्ठ संवरण थे। वह कामसे जले भुने और तपती के कारण हृदय जलाये राजा देवबाला के समान सुन्दरहासिनी तपतीको वसिष्ठके संग आते देखकर अति प्रसन्न होकर शोभा पाने लगे। बादलसे गिरी हुई बिजली जिस प्रकार दशों दिशाको उजालेसे छा देती है, वैसेही सुन्दरी तपतीने आकाशसे उतरकर अपनी शोभासे दिशाओंको सुशोभित किया। (२७-३०)

कृच्छ्राद् द्वादशरात्रे तु तस्य राज्ञः समाहिते
आजगाम विशुद्धात्मा वसिष्ठो भगवानृषिः॥ ३१॥
तपसाऽऽराध्य वरदं देवं गोपतिमीश्वरम् ।
लेभे संवरणो भार्यां वसिष्ठस्यैव तेजसा ॥ ३२॥
ततस्तस्मिन्गिरिश्रेष्ठे देवगन्धर्वसेविते ।
जग्राह विधिवत्पाणिं तपत्याः स नरर्षभः॥ ३३॥
वसिष्ठेनाऽभ्यनुज्ञातस्तस्मिन्नेव धराधरे ।
सोऽकामयत राजर्षिर्विहर्तुं सह भार्यया ॥ ३४॥
ततः पुरे च राष्ट्रे च वनेषूपवनेषु च ।
आदिदेश महीपालस्तमेव सचिवं तदा ॥ ३५॥
नृपतिं त्वभ्यनुज्ञाप्य वसिष्ठोऽथाऽपचक्रमे ।
सोऽथ राजा गिरौ तस्मिन्विजहाराऽमरो यथा॥३६॥
ततो द्वादश वर्षाणि काननेषु वनेषु च ।
रेमे तस्मिन्गिरौ राजा तथैव सह भार्यया॥ ३७॥
तस्य राज्ञः पुरे तस्मिन्समा द्वादश सत्तम ।
न ववर्ष सहस्राक्षो राष्ट्रे चैवाऽस्य भारत ॥ ३८॥
ततस्तस्यामनावृष्ट्यां प्रवृत्तायामरिन्दम ।

राजाका बारह रात्रियोंका कठोर नियम अन्त होने पर विशुद्धात्मा भगवान ऋषि वसिष्ठ वहां आये। भूपाल संवरणने इस प्रकार तपस्यासे वरदाता ईश्वर सूर्यदेवकी उपासना कर महर्षि वसिष्ठके तेजोबलसे तपनपुत्री तपतीको स्त्री प्राप्त किया; अनन्तर उन नरसिंहने वसिष्ठकी आज्ञासे देव गन्धर्वोंसे सेवा किये जाते हुए उस श्रेष्ठ पर्वतही पर तपतीसे विधिपूर्वक विवाह किया। आगे उस पहाडही पर विहार करनेके अभिलाषी होकर मन्त्री पर नगर राज्य वाहन और सेना आदिके रक्षाकी आज्ञा की। अनन्तर वसिष्ठ उनको जता करके निज स्थानको पधारे। (३१–३६)

नरदेव संवरण देवोंकी भांति उस पर्वत पर विहार करने लगे। उन्होंने बारह वर्षतक उस पर्वतके वन और उपवनोंमें भार्याके साथ विहार किया था। हे भारतश्रेष्ठ! सहस्रनेत्र इन्द्रने उनकी राजधानी और राज्यमें बारह वर्षतक वर्षा नहीं की। हे शत्रुनाशि! तब वृष्टि न होनेसे स्थावर जङ्गम और सब प्रजा क्षय पाने लगी। विना वृष्टि ऐसा कठोर

प्रजाः क्षयमुपाजग्मुः सर्वाः सस्थाणुजङ्गमाः ३९
तस्मिंस्तथाविधे काले वर्तमाने सुदारुणे ।
नाऽवश्यायः पपातोर्व्यां ततः सस्यानि नारुहन्४०॥
ततो विभ्रान्तमनसो जनाः क्षुद्भयपीडिताः ।
गृहाणि संपरित्यज्य बभ्रमुः प्रदिशो दिशः ॥ ४१ ॥
ततस्तस्मिन्पुरे राष्ट्रे त्यक्तदारपरिग्रहाः ।
परस्परममर्यादाः क्षुधार्ता जघ्निरे जनाः ॥ ४२ ॥
तत्क्षुधार्तैर्निराहारैः शवभूतैस्तथा नरैः ।
अभवत्प्रेतराजस्य पुरं प्रेतैरिवाऽऽवृतम् ॥ ४३ ॥
ततस्तु तादृशं दृष्ट्वा स एव भगवानृषिः ।
अभ्यवर्षत धर्मात्मा वसिष्ठो मुनिसत्तमः ॥ ४४ ॥
तं च पार्थिवशार्दूलमानयामास तत्पुरम् ।
तपत्या सहितं राजन्व्युषितं शाश्वतीः समाः।
ततः प्रवृष्टस्तत्राऽऽसीद्यथापूर्वं सुरारिहा ॥ ४५ ॥
तस्मिन्नृपतिशार्दूले प्रविष्टे नगरं पुनः ।
प्रववर्ष सहस्राक्षः सस्यानि जनयन्प्रभुः ॥ ४६ ॥
ततः सराष्ट्रं मुमुदे तत्पुरं परया मुदा ।

काल आन पडा, कि उन दिनों पृथ्वी पर हिम तक नहीं गिरा, सो भला अनाज उपजनेकी कौनसी संभावना रहेगी ? प्रजा भूखसे विकल और भूली भटकीसी बनकर गृहोंको त्यागकर इधर उधर घूमने फिरने लगी। (३९-४१)

राज्य और राजधानीके लोग सदा भूखे रहनेके कारण आपसकी मर्यादा खोकर स्त्री पुत्र आदि परिवारोंको छोडने लगे। वह देश भूखे तथा मुर्झाए हुए जनोंसे पूरित होकर प्रेत-राजके नगरके समान प्रेत-पूरित प्रतीत होने लगा। हे राजन्! मुनिश्रेष्ठ भगवान् वसिष्ठने उनके राज्यको उस दशामें देखकर उस राज्य में पर्जन्य की वृष्टि कराई। बहुत वर्षोंतक तपतीके साथ अन्यत्र रहते हुए उस पृथ्वीनाथको लिवाय लाये। अनन्तर नृपशार्दूलके पुरमें प्रविष्ट होने पर असुरनाशी प्रभु इन्द्रने उस राज्यपर कृपादृष्टि करी। यथानियम जल वृष्टि कर अनाज उपजाने लगे। (४२—४६)

जितेन्द्रिय भूपश्रेष्ठके राज्यकी मङ्गल-चिन्तामें नियुक्त रहने पर सम्पूर्ण प्रजा अति प्रसन्न हुई। अनन्तर नरपति संवरण

तेन पार्थिवमुख्येन भावितं भावितात्मना ॥ ४७ ॥
ततो द्वादश वर्षाणि पुनरीजे नराधिपः ।
तपत्या सहितः पत्न्या यथा शच्या मरुत्पतिः ॥ ४८ ॥
गन्धर्व उवाच— एवमासीन्महाभागा तपती नाम पौर्विकी ।
तव वैवस्वती पार्थ तापत्यस्त्वं यथा मतः ॥ ४९ ॥
तस्यां संजनयामास कुरुं संवरणो नृपः ।
तपत्यां तपतां श्रेष्ठ तापत्यस्त्वं ततोऽर्जुन ॥ ५० ॥ [६८०२]

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यामादिपर्वणि चैत्ररथपर्वणि तपत्युपाख्यानसमाप्तौ पञ्चसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १७५ ॥

वैशम्पायन उवाच—स गन्धर्ववचः श्रुत्वा तत्तदा भरतर्षभ ।
अर्जुनः परया भक्त्या पूर्णचन्द्र इवाऽऽबभौ ॥ १ ॥
उवाच च महेष्वासो गन्धर्वं कुरुसत्तमः ।
जातकौतूहलोऽतीव वसिष्ठस्य तपोबलात् ॥ २ ॥
वसिष्ठ इति यस्यैतदृषेर्नाम त्वयेरितम् ।
एतदिच्छाम्यहं श्रोतुं यथावत्तद्वदस्व मे ॥ ३ ॥
य एष गन्धर्वपते पूर्वेषां नः पुरोहितः ।
आसीदेतन्ममाऽऽचक्ष्व क एष भगवानृषिः ॥ ४ ॥

ने स्त्री तपतीके साथ बारह वर्ष तक ऐसा यज्ञ किया, कि जैसा शचीपतिने शचीके साथ किया था। हे पार्थ! उस तपती नाम्नी तपनकन्याके वंशमें तुमने जन्म किया है, इसी लिये तुमको तापत्य कहके पुकारा है। हे शत्रुसन्तापन! राजा संवरणने उस तपतीसे कुरु नामक पुत्रका जन्म दिया था। उस कुरुवंशमें तुम्हारे जन्म लेनेके कारण तुम तापत्य कहे जा सकते हो। (४७–५०) [६८०२]

आदिपर्वमें एकसौ पचहत्तर अध्याय समाप्त।

आदिपर्वमें एकसौ छिहत्तर अध्याय।

वैशम्पायनजी बोले, कि हे भरतवंश-श्रेष्ठ! अर्जुन गन्धर्वसे वह कथा सुनकर परम भक्ति पूर्वक पूर्ण चन्द्रमाकी भांति शोभा पाने लगे। महा चापधारी कुरु-श्रेष्ठ, अर्जुन वसिष्ठके तपोबलसे अचरज मानकर गन्धर्वसे बोले, कि मित्र! तुमने जिन ऋषिका नाम वसिष्ठ करके कहा है, मैं उनका वृत्तान्त सुनना चाहता हूं, तुम आद्योपान्त कहके सुनाओ। हे गन्धर्वनाथ! सुखसे बोलो, कि वह भगवान् ऋषि, जो हमारे अगले पुरुषोंके पुरोहित थे, कौन थे। (१–४)

गन्धर्वउवाच— ब्रह्मणो मानसः पुत्रो वसिष्ठोऽरुन्धतीपतिः।
तपसा निर्जितौ शश्वदजेयावमरैरपि ॥ ५ ॥
कामक्रोधावुभौ यस्य चरणौ संववाहतुः ।
इन्द्रियाणां वशकरो वासिष्ठ इति चोच्यते ॥ ६ ।
यस्तु नोच्छेदनं चक्रे कुशिकानामुदारधीः ।
विश्वामित्रापराधेन धारयन्मन्युमुत्तमम् ॥ ७ ॥
पुत्रव्यसनसंतप्तः शक्तिमानप्यशक्तवत् ।
विश्वामित्रविनाशाय न चक्रे कर्म दारुणम् ॥ ८ ॥
मृतांश्च पुनराहर्तुं शक्तः पुत्रान्यमक्षयात् ।
कृतान्तं नाऽतिचक्राम वेलामिव महोदधिः ॥ ९ ॥
यं प्राप्य विजितात्मानं महात्मानं नराधिपाः ।
इक्ष्वाकवो महीपाला लेभिरे पृथिवीमिमाम् ॥१०॥
पुरोहितमिमं प्राप्य वसिष्ठमृषिसत्तमम् ।
ईजिरे क्रतुभिश्चैव नृपास्ते कुरुनन्दन ॥ ११ ॥
स हि तान्याजयामास सर्वान्नृपतिसत्तमान्।
ब्रह्मर्षिः पाण्डवश्रेष्ठ बृहस्पतिरिवाऽमरान् ॥ १२ ॥
तस्माद्धर्मप्रधानात्मा वेदधर्मविदीप्सितः ।

गन्धर्व बोले,कि ऋषि वसिष्ठ ब्रह्माके मानस पुत्र हैं ; उनकी पत्नीका नाम अरुन्धती है, जिस काम और क्रोध पर देवों ने भी जय नहीं पायी है, वे दोनों उनकी तपस्यासे परास्त हो सदा पांव दाबकर फिरते थे। इन्द्रियों को वश करने के कारण उनका नाम वसिष्ठ हुआ । अति क्रोधित होने परभी उन उदार चित्त महर्षिने कुशिक वंशको उखाड नहीं डाला था। वह महात्मा विश्वामित्रसे पुत्र नाश रूपी खेद पाकर शक्ति होने पर भी शक्ति न रहनेके समान कठोर कार्यमें प्रवृत्त नहीं हुए थे; उन्होंने यमालयसे मृतपुत्रोंको न लौटा लाकर यमराज की मर्यादाको इस प्रकार रक्षा की थी, कि जैसे समुद्र अपने तटको नष्ट नहीं करता है । इक्ष्वाकुवंशके भूपालोंने उन जितेन्द्रिय महात्मा को प्राप्त कर इस धरती भरका पूरा अधिकार लाभ किया था । (५—१०)

हे कुरुनन्दन ! उन सब राजाओंने ऋषिश्रेष्ठ वसिष्ठको पुरोहित पाकरकेही नाना यज्ञ किये थे ! हे पाण्डव श्रेष्ठ ! उन्होंने उन महाराजोंकी यज्ञक्रिया इस

ब्राह्मणो गुणवान्कश्चित्पुरोधाः प्रतिदृश्यताम्॥१३॥
क्षत्रियेणाऽभिजानेन पृथिवीं जेतुमिच्छता।
पूर्वं पुरोहितः कार्यः पार्थ राज्याभिवृद्धये ॥ १४ ॥
महीं जिगीषता राज्ञा ब्रह्म कार्यं पुरःसरम् ॥१५॥
तस्मात्पुरोहितः कश्चिद्गुणवान्विजितेन्द्रियः।
विद्वान्भवतु वो विप्रो धर्मकामार्थतत्त्ववित् ॥१६॥ [६८१८]

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यामादिपर्वणि चैत्ररथपर्वणि पुरोहितकरणकथने षट्सप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १७६ ॥

अर्जुन उवाच— किंनिमित्तमभूद्वैरं विश्वामित्रवसिष्ठयोः ।
वसतोराश्रमे दिव्ये शंस नः सर्वमेव तत् ॥ १ ॥
गन्धर्व उवाच— इदं वासिष्ठमाख्यानं पुराणं परिचक्षते ।
पार्थ सर्वेषु लोकेषु यथावत्तन्निबोध मे ॥ २ ॥
कान्यकुब्जे महानासीत्पार्थिवो भरतर्षभ ।
गाधीति विश्रुतो लोके कुशिकस्याऽऽत्मसंभवः॥३॥
तस्य धर्मात्मनः पुत्रः समृद्धबलवाहनः ।
विश्वामित्र इति ख्यातो बभूव रिपुमर्दनः ॥ ४ ॥

प्रकार निर्वाह करायी थी, कि जिस प्रकार बृहस्पति देवोंका यज्ञ कराते हैं ! अतएव तुम भी धार्मिकवर वैदिक धर्मके जानकार कोई पुरोहित ढूंढो । हे पार्थ! पृथ्वी जय करनेकी इच्छा रखने वाले क्षत्रियको राज्य वृद्धिके लिये पाहिले पुरोहित नियुक्त करना चाहिये,क्योंकि पृथ्वीजयेच्छुक राजा का ब्राह्मणको सामने रखना उचित है। अत एव धर्म, काम और अर्थके तत्त्वज्ञ जितेन्द्रिय विद्वान् और गुणवान कोई ब्राह्मण तुम्हारे पुरोहित होवें।(११—१६) [६८१८]

आदिपर्वमें एकसौ छिहत्तर अध्याय समाप्त।

आदिपर्वमें एकसौ सतहत्तर अध्याय।

अर्जुन बोले,कि,निज निज दिव्याश्रमों में रहनेवाले विश्वामित्र और वसिष्ठमें क्योंकर आपसमें शत्रुता उभडी, वह सब हमसे कहा । गन्धर्व बोले, कि हे पार्थ यह वासिष्ठकी कथा सर्वलोकोंमें पुराण करके कही जाती है, मैं यथार्थ रीतिसे कहता जाता हूं, सुनो । हे भरतश्रेष्ठ ! कान्यकुब्ज देशमें कुशिक पुत्र गाधिके नामसे प्रख्यात एक राजा थे; उन धर्मात्माके विश्वामित्र नामक एक पुत्र थे ; उन विश्वामित्रकी अनगनित सेना तथा वाहन थे और वह शत्रुओंके मथनेहारे

स चचार सहामात्यो मृगयां गहने वने ।
मृगान्विध्यन्वराहांश्च रम्येषु मरुधन्वसु ॥ ५ ॥
व्यायामकर्शितः सोऽथ मृगालिप्सुः पिपासितः।
आजगाम नरश्रेष्ठ वसिष्ठस्याऽऽश्रमं प्रति ॥ ६ ॥
तमागतमभिप्रेक्ष्य वसिष्ठः श्रेष्ठभागृषिः ।
विश्वामित्रं नरश्रेष्ठं प्रतिजग्राह पूजया ॥ ७ ॥
पाद्यार्घ्याचमनीयैस्तं स्वागतेन च भारत ।
तथैव परिजग्राह वन्येन हविषा तथा ॥ ८ ॥
तस्याऽथ कामधुग्धेनुर्वसिष्ठस्य महात्मनः ।
उक्ता कामान्प्रयच्छेति सा कामान्दुह्यते सदा॥ ९ ॥
ग्राम्यारण्याश्चौषधीश्च दुदुहे पय एव च ।
षड्रसं चाऽमृतनिभं रसायनमनुत्तमम् ॥ १० ॥
भोजनीयानि पेयानि भक्ष्याणि विविधानि च।
लेह्यान्यमृतकल्पानि चोष्याणि च तथाऽर्जुन ॥
रत्नानि च महार्हाणि वासांसि विविधानि च ११॥

थे। वह एक समय मन्त्रीके साथ घने वनमें और सुंदर निराली तथा वृक्षोंसे खाली भूमि पर मृग और वराह विद्ध करते हुए मृगया करते फिरने लगे।(१-५)

हे नृपश्रेष्ठ! वह मृग पानेकी चेष्टामें थककर और प्यासे बनकर वसिष्ठके आश्रममें जा पहुंचे। ऋषिश्रेष्ठ वसिष्ठने नरश्रेष्ठ विश्वामित्रको आते देखकर, अतिथिकी सेवाके लिये स्वागत किया। हे भारत! उन ऋषिने कुशलक्षेम पूछ करके पाद्य, अर्घ, आचमनीय; वनके फल फूल आदि पवित्र भोजनकी सामग्री देकर उनका आतिथ्य सत्कार किया। (६-८)

हे अर्जुन! महात्मा वसिष्ठकी कामदुधा एक गौ थी; ऋषि जब उस गौको कुछ कामनाकी वस्तु देनेको कहकर दूहते थे, उसीक्षण उसे पाते थे। उस दिन वसिष्ठको कामनाके अनुसार कामधेनुको दोहनेपर ग्राम तथा वनकी औषधि, दुग्ध, अमृत समान छओं रस, उन रसयुक्त विशेष वस्तुओंमेंसे अमृत समान सुमिष्ट बहुविध भोजनकी, पीनेकी, चबानेकी, चाटनेकी, चूसनेकी सामग्री और बडे बडे मूल्यवान् वस्त्र और रत्नादि प्राप्त हुए। मन्त्री और सेनाके साथ भूपालने उन सब सम्पूर्ण काम्य वस्तुओंसे सत्कृत होकर अति सन्तोष

तैः कामैः सर्वसंपूर्णैः पूजितश्च महीपतिः ।
सामात्यः सबलश्चैव तुतोष स भृशं तदा ॥ १२ ॥
षडुन्नतां सुपार्श्वोरुं पृथुपञ्चसमावृताम् ।
मण्डूकनेत्रां स्वाकारां पीनोधसमनिन्दिताम्॥ १३ ॥
सुवालधिं शङ्कुकर्णां चारुशृङ्गां मनोरमाम् ।
पुष्टायतशिरोग्रीवां विस्मितः सोऽभिवीक्ष्य ताम्।१४
अभिनन्द्य स तां राजन्नन्दिनीं गाधिनन्दनः ।
अब्रवीच्च भृशं तुष्टः स राजा तमृषिं तदा ॥ १५ ॥
अर्बुदेन गवां ब्रह्मन्मम राज्येन वा पुनः ।
नन्दिनीं संप्रयच्छस्व भुङ्क्ष्व राज्यं महामुने ॥१६॥
वसिष्ठ उवाच — देवतातिथिपित्रर्थं याज्यार्थं च पयस्विनी ।
अदेया नन्दिनीयं वै राज्येनाऽपि तवाऽनघ ॥ १७ ॥
विश्वामित्र उवाच --क्षत्रियोऽहं भवान्विप्रस्तपःस्वाध्यायसाधनः ।
ब्राह्मणेषु कुतो वीर्यं प्रशान्तेषु धृतात्मसु ॥ १८ ॥
अर्बुदेन गवां यस्त्वं न ददासि ममेप्सितम् ।
स्वधर्मं न प्रहास्यामि नेष्यामि च बलेन गाम् १९ ॥

प्राप्त किया। और उस मनोरमा कामधेनुको देखकर बडा अचरज माना। (९—१२)

कामधेनुके शरीरकी बनावट बहुत सुन्दर थी, उसका मेरुदण्ड, पूंछ और चारों स्तन ऊंचे, पार्श्व और उरुदेश सुन्दर, कान और लिलार स्थूल, आखें स्थूल और मेढककी नाई ऊंची, थन चौडा, पूछ मनोहर, दोनों कान कीलोंकी समान, सींग देखनेमें बहुतही सुन्दर और सिर तथा गला मोटा और चौडा था । हे राजन् ! ऐसी सुंदर नन्दिनी नाम्नी उस कामधेनुको देखकर भूपाल गाधिकुमार अति सन्तुष्ट चित्तसे उसकी प्रशंसा कर ऋषिसे बोले, कि हे ब्रह्मन् ! तुम मुझसे दश क्रोड गौ लेकर मुझको यह नन्दिनी दो; अथवा हे महामुने ! तुम नन्दिनीको देकरके मेरे राज्यको लेकर भोगो । (१३–१६)

वसिष्ठ बोले,कि हे अनघ ! यह दुधारी नन्दिनी देवता, अतिथि, पितर और यज्ञके लिये रखी गयी है, सो तुम्हारे राज्यको ले करके भी मैं इसको नहीं दे सकता । विश्वामित्र बोले, कि मैं क्षत्रिय तुम तपस्वी और वेद पढनेवाले ब्राह्मण हो, प्रशान्तचित्त संयत ब्राह्मणका सामर्थ कहां ? अतएव यदि तुम दश क्रोड गौ

वसिष्ठ उवाच— बलस्थश्चाऽसि राजा च बाहुवीर्यश्च क्षत्रियः ।
यथेच्छसि तथा क्षिप्रं कुरु मा त्वं विचारय ॥२०॥

गन्धर्व उवाच — एवमुक्तस्तथा पार्थ विश्वामित्रो बलादिव ।
हंसचन्द्रप्रतीकाशां नन्दिनीं तां जहार गाम् ॥२१॥
कशादण्डप्रणुदितां काल्यमानामितस्ततः ।
हंभायमाना कल्याणी वसिष्ठस्याऽथ नन्दिनी ॥२२॥
आगम्याऽभिमुखी पार्थ तस्थौ भगवदुन्मुखी ।
भृशं च ताड्यमाना वै न जगामाऽऽश्रमात्ततः ॥२३॥

वसिष्ठ उवाच — शृणोमि ते रवं भद्रे विनदन्त्याः पुनः पुनः ।
ह्रियसे त्वं बलाद्भद्रे विश्वामित्रेण नन्दिनि ॥२४॥
किं कर्तव्यं मया तत्र क्षमावान्ब्राह्मणो ह्यहम् ॥२५॥

गन्धर्व उवाच — सा भयान्नन्दिनी तेषां बलानां भरतर्षभ ।
विश्वामित्रभयोद्विग्ना वसिष्ठं समुपागमत ॥२६॥

गौरुवाच — कशाग्रदण्डाभिहतां क्रोशन्तीं मामनाथवत् ।
विश्वामित्रबलैर्घोरैर्भगवन्किमुपेक्षसे ॥२७॥

लेकर मुझे इच्छा की हुइ गौ नहीं दोगे, तो मैं अपना धर्म नहीं छोडूंगा, बलसे छीन ले जाऊंगा । वसिष्ठ बोले, कि तुम बलिष्ठ क्षत्रिय राजा और भुजवीर्ययुक्त हो, अत एव तुम जैसा चाहो वैसाही करो, अधिकविचारका प्रयोजन नहीं है।१७-२०

गन्धर्वराज बोले, कि हे पार्थ ! विश्वामित्र उनकी उस बातको सुनकर सूर्य चन्द्रमा सी प्रकाशमती उस नन्दिनी को कोडोंकी मारसे कातर कर और इधर उधर बांध बांध कर बलसे हर ले जानेको उद्यत हुए । हे पार्थ! कल्याणी नन्दिनी हम्बा शब्द करती हूई भगवान् ऋषि वसिष्ठके सामने आकर ऊंचे मुंह करके खडी रही और बहुत खदेडी जाकरके भी उस आश्रमसे नहीं गयी ! तब वसिष्ठ बोले, कि ऐ भद्रे नन्दिनि ! तुम बार बार जो चिल्लाती हो, वह मैं सुनता हूं, पर ऐ भद्रे ! जब राजा विश्वामित्र तुम को बलसे हर रहे हैं, तब मैं क्या करूंगा! क्योंकि मैं क्षमाशील ब्राह्मण हूं । २१-२५

गन्धर्वराज बोले, कि हे भरतश्रेष्ठ ! नन्दिनी विश्वामित्र और उनकी सेनाओं के भयसे घबराकर वसिष्ठके बहुत निकट आगयी और बोली, कि हे भगवन्! मैं विश्वामित्र की भयानक सेनाओंके कोडों की मारसे घायल होकर अनाथके समान रो रही हूं, आप मेरी क्यों उपेक्षा कर

गन्धर्व उवाच— नन्दिन्यामेवं क्रन्दन्त्यां धर्षितायां महामुनिः।
न चुक्षुभे तदा धैर्यान्न चचाल धृतव्रतः ॥ २८ ॥
वसिष्ठ उवाच— क्षत्रियाणां बलं तेजो ब्राह्मणानां क्षमा बलम्।
क्षमा मां भजते यस्माद् गम्यतां यदि रोचते॥२९॥
नन्दिन्युवाच— किं नु त्यक्ताऽस्मि भगवन्यदेवं त्वं प्रभाषसे।
अत्यक्ताऽहं त्वया ब्रह्मन्नेतुं शक्या न वै बलात्॥३०॥
वसिष्ठ उवाच— न त्वां त्यजामि कल्याणि स्थीयतां यदि शक्यते।
दृढेन दाम्ना बद्धैष वत्सस्ते ह्रियते बलात्॥ ३१ ॥
गन्धर्व उवाच— स्थीयतामिति तच्छ्रुत्वा वसिष्ठस्य पयस्विनी।
ऊर्ध्वाञ्चितशिरोग्रीवा प्रबभौ रौद्रदर्शना ॥ ३२ ॥
क्रोधरक्तेक्षणा सा गौर्हम्भारवघनस्वना ।
विश्वामित्रस्य तत्सैन्यं व्यद्रावयत सर्वशः॥ ३३ ॥
कशाग्रदण्डाभिहता काल्यमाना ततस्ततः।
क्रोधरक्तेक्षणा क्रोधं भूय एव समादधे ॥ ३४ ॥
आदित्य इव मध्याह्ने क्रोधदीप्तवपुर्बभौ ।
अङ्गारवर्षं मुञ्चन्ती मुहुर्वालधितो महत् ॥ ३५ ॥

रहे हैं ? गन्धर्वराज बोले, कि नन्दिनी कातर होकर इस प्रकार रोने लगी, पर नियमशील महामुनि तिस परभी क्षुब्ध वा अधीर नहीं हुए। वह नन्दिनी से बोले, कि क्षत्रियका बल तेज और ब्राह्मणका बल क्षमा है; सो मैं क्षमा गुण से आकृष्ट हो रहा हूं, सो यदि तुम चाहो, तो जाओ। नन्दिनी बोली, कि हे भगवन् ! क्या आपने मुझको त्याग दिया, कि ऐसा कहते हैं ? हे ब्रह्मन् ! आपके न त्यागनेसे मुझ को कोई बलपूर्वक नहीं लेजा सकेगा; वसिष्ठ बोले, कि हे कल्याणि ! मैं तुमको नहीं त्यागता हूं, यदि तुम रह सको तो रह जाओ, वह तुम्हारे बछडेको कठिन रस्सीसे बांध कर ले जा रहा है। (२८-३१)

गन्धर्वराज बोले, कि दुधारी नन्दिनी तब वसिष्ठकी "रह जाओ" यह बात सुनतेही सिर और गला ऊपर उठा कर भयानक मूर्ति धरकर क्रोधके मारे नेत्र लालकर बार बार हम्बारव करती हुई विश्वामित्रकी सेनाओंको चारों ओर ख-देडने लगी। तब फिर सेनाओंके कोडोंकी मारसे घायल होकर और चारों ओरसे बांधी जाकर अति क्रोधित होकर जलती हुई देहको दुपहरके सूर्यकी भांति देखनेके

असृजत्पह्लवान्पुच्छात्प्रस्रवाद् द्राविडाञ्छकान्।
योनिदेशाच्च यवनाञ्छकृतः शबरान्बहून् ॥ ३६ ॥
मूत्रतश्चाऽसृजत्कांश्चिच्छबरांश्चैव पार्श्वतः ।
पौण्ड्रान्किरातान्यवनान्सिंहलान्बर्बरान्खसान् ३७ ॥
चिबुकांश्च पुलिन्दांश्च चीनान्हूणान्सकेरलान् ।
ससर्ज फेनतः सा गौर्म्लेच्छान्बहुविधानपि॥ ३८ ॥
तैर्विसृष्टैर्महासैन्यैर्नानाम्लेच्छगणैस्तदा ।
नानावरणसंछन्नैर्नानायुधधरैस्तथा ॥ ३९ ॥
अवाकीर्यत संरब्धैर्विश्वामित्रस्य पश्यतः ।
एकैकश्च तदा योधः पञ्चभिः सप्तभिर्वृतः ॥ ४० ॥
अस्त्रवर्षेण महता वध्यमानं बलं तदा ।
प्रभग्नं सर्वतस्त्रस्तं विश्वामित्रस्य पश्यतः ॥ ४१ ॥
न च प्राणैर्वियुज्यन्ते केचित्तत्रास्य सैनिकाः ।
विश्वामित्रस्य संक्रुद्धैर्वासिष्ठैर्भरतर्षभ ॥ ४२ ॥
सा गौस्तत्सकलं सैन्यं कालयामास दूरतः ।
विश्वामित्रस्य तत्सैन्यं काल्यमानं त्रियोजनम् ४३
क्रोशमानं भयोद्विग्नं त्रातारं नाऽध्यगच्छत।
दृष्ट्वा तन्महदाश्चर्यं ब्रह्मतेजोभवं तदा ॥ ४४ ॥

अयोग्य बनाया और पूंछसे बार बार बडे बडे अङ्गारोंकी वृष्टि करने लगी; आगे पूंछसे पह्लवगण, थनसे द्राविड और शकगण, योनिसे यवन, गोबरसे शबरगण, मूत्र और पार्श्वभागसे भी कई शबर गण और फेनसे पौण्ड्र, किरात, यवन, सिंहल, बर्बर, खस, चिबुक, पुलिन्द, चीन, हुन, केरल आदि नाना म्लेच्छोंको बनाया। (३२-३८)

नाना वेष पहिनने वाले, नाना अस्त्र धरे हुए, वह सब उपजे हुए म्लेच्छोंकी सेना उस क्षण उत्साहित होकर विश्वामित्र के सामनेही इधर उधर फैल गयी; और उनमें से पांच पांच वा सात सातने विश्वामित्रके एक एक योद्धेको घेर लिया। आगे विश्वामित्रके देखतेही देखते उनकी सेना उन लोगोंकी गहरी अस्त्रवृष्टिसे घायल होकर और भय खाकर इधर उधर भागने लगी। हे भरतश्रेष्ठ! वसिष्ठकी सेनाने युद्धमें पूर्ण क्रोधित होने परभी विश्वामित्र की सेनामें किसीके प्राण नष्ट नहीं किये; नन्दिनी ने केवल उनको दूरको खदेडा। वे तीन योजन दूर भगायी जाकर घबराहटके मारे रोने

विश्वामित्रः क्षत्रभावान्निर्विण्णो वाक्यमब्रवीत् ।
धिग्बलं क्षत्रियबलं ब्रह्मतेजोबलं बलम् ॥ ४५ ॥
बलाबलं विनिश्चित्य तप एव परं बलम् ।
स राज्यं स्फीतमुत्सृज्य तां च दीप्तां नृपश्रियम् ॥ ४६ ॥
भोगांश्च पृष्ठतः कृत्वा तपस्येव मनो दधे ।
स गत्वा तपसा सिद्धिं लोकान्विष्टभ्य तेजसा ४७
ततापं सर्वान्दीप्तौजा ब्राह्मणत्वमवाप्तवान् ।
अपिबच्च ततः सोममिन्द्रेण सह कौशिकः ॥ ४८ ॥ [६८६६]

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यामादिपर्वणि चैत्ररथपर्वणि
वासिष्ठे विश्वामित्रपराभवे सप्तसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १७७ ॥

गन्धर्व उवाच— कल्माषपाद इत्येवं लोके राजा बभूव ह ।
इक्ष्वाकुवंशजः पार्थ तेजसाऽसदृशो भुवि ॥ १ ॥
स कदाचिद्वनं राजा मृगयां निर्ययौ पुरात् ।
मृगान्विध्यन्वराहांश्च चचार रिपुमर्दनः ॥ २ ॥
तस्मिन्वने महाघोरे खड्गांश्च बहुशोऽहनत् ।
हत्वा च सुचिरं श्रान्तो राजा निववृते ततः ॥ ३ ॥

लगीं और ऐसा किसीकोभी नहीं देखा, कि उनकी रक्षा करे । (३९—४४)

तब विश्वामित्रने ब्रह्मतेजकी उस बडी आश्चर्यलीला को देख कर क्षत्रियधर्मसे विरक्त होकर यह कहा, कि क्षत्रिय-बलपर धिक्कार है, ब्रह्मतेज का बल ही बल है, बलाबल निश्चय करना हो तो तपस्याही उत्कृष्ट कही जायगी। अनन्तर उन्होंने बडे भारी राज्य और प्रज्वलित राजलक्ष्मी को छोड करके भोगसे विरत होकर तपमें मन लगाया। आगे तपमें सिद्ध और प्रदीप्त तेजस्वी होकर अपने तेजसे तीनों लोकोंको छापकर सम्पूर्ण लोकोंको तापित करके ब्राह्मण बने। आगे उन कुशिकनंदनने इन्द्रके साथ सोमरस पान भी किया था। (४४--४८) [६८६६]

आदिपर्वमें एकसौ सतहत्तर अध्याय समाप्त ।

आदिपर्वमें एकसौ अठहत्तर अध्याय ।

गन्धर्वराज बोले, कि हे पार्थ ! कल्माषपाद नामक अनुपम तेजोपूर्ण इक्ष्वाकुवंशी एक राजा थे। एक समय वह मृगयाके निमित्त नगरसे बनको गये। शत्रु मंथनेहारे भूपाल घोर वनमें मृग और वराहोंको काटकूट कर घूमने लगे। वह देरतक ऐसा करके थककर मृगयासे निवृत्त हुए। इसके पहिले प्रतापी विश्वा-

अकामयत्तं याज्यार्थे विश्वामित्रः प्रतापवान् ।
स तु राजा महात्मानं वासिष्ठमृषिसत्तमम् ॥ ४ ॥
तृषार्तश्च क्षुधार्तश्च एकायनगतः पथि ।
अपश्यदजितः संख्ये मुनिं प्रतिमुखागतम् ॥ ५ ॥
शक्तिं नाम महाभागं वसिष्ठकुलवर्धनम् ।
ज्येष्ठं पुत्रं पुत्रशताद्वसिष्ठस्य महात्मनः ॥ ६ ॥
अपगच्छ पथोऽस्माकमित्येवं पार्थिवोऽब्रवीत्।
तथा ऋषिरुवाचैवं सान्त्वयञ्श्लक्ष्णया गिरा ॥ ७ ॥
मम पन्था महाराज धर्म एष सनातनः ।
राज्ञा सर्वेषु धर्मेषु देयः पन्था द्विजातये ॥ ८ ॥
एवं परस्परं तौ तु पथोऽर्थं वाक्यमूचतुः ।
अपसर्पाऽपसर्पेति वागुत्तरमकुर्वताम् ॥ ९ ॥
ऋषिस्तु नाऽपचक्राम तस्मिन्धर्मपथे स्थितः ।
नापि राजा मुनेर्मानात्क्रोधाच्चाऽथ जगाम ह ॥ १० ॥
अमुञ्चन्तं तु पन्थानं तमृषिं नृपसत्तमः ।
जघान कशया मोहात्तदा राक्षसवन्मुनिम् ॥ ११ ॥
कशाप्रहाराभिहतस्ततः स मुनिसत्तमः ।

मित्रने उनको यजमान बनाना चाहा था। युद्धमें अजेय राजा कल्माषपाद भूख प्यासके मारे विकल होकर एकही मनुष्य-के चलने योग्य सङ्कीर्ण पथसे चल रहे थे, कि सामने आते हुए ऋषिश्रेष्ठ वसिष्ठ पुत्र महात्मा मुनि शक्तिको देखा। १-६

वसिष्ठकुलके बढाने वाले महाभाग शक्ति महात्मा वसिष्ठके सौ पुत्रोंमेंसे बडे थे। राजा उनसे बोले, कि तुम मेरे पथ से हट जाओ। ऋषि मीठी बातोंमें उन-को समझा कर बोले, कि महाराज! यह मेरा पथ है। सम्पूर्ण धर्मशास्त्रोंमें यह सनातन धर्म करके कहा है, कि ब्राह्मणों को पथ देना राजाका कर्त्तव्य है। वे पथके लिये आपसमें इस प्रकार बकवाद करने लगे और एक दूसरे को "हटो" यह कहने लगे। ऋषि धर्मके पथिक होकर पथसे नहीं हटे,राजाने भी मान और क्रोध के वश मुनिको पथ नहीं दिया। (७-१०)

अनन्तर ऋषिके पथ न छोडने पर राजा ने मोह से राक्षसकी भांति मुनिको कोडे मारे। तब मुनिश्रेष्ठ वसिष्ठपुत्रने कोडोंकी चोटसे घायल और क्रोधसे अचेत होकर यह कहके उन भूपालको शाप दिया,कि

तं शशाप नृपश्रेष्ठं वासिष्ठः क्रोधमूर्च्छितः ॥ १२ ॥
हंसि राक्षसवद्यस्माद्राजापसद तापसम् ।
तस्मात्त्वमद्यप्रभृति पुरुषादो भविष्यसि ॥ १३ ॥
मनुष्यपिशिते सक्तश्चरिष्यसि महीमिमाम्।
गच्छ राजाधमेत्युक्तः शक्तिना वीर्यशक्तिना॥१४॥
ततो याज्यनिमित्तं तु विश्वामित्रवसिष्ठयोः।
वैरमासीत्तदा तं तु विश्वामित्रोऽन्वपद्यत ॥ १५ ॥
तयोर्विवदतोरेवं समीपमुपचक्रमे ।
ऋषिरुग्रतपाः पार्थ विश्वामित्रः प्रतापवान् ॥ १६ ॥
ततः स बुबुधे पश्चात्तमृषिं नृपसत्तमः ।
ऋषेः पुत्रं वसिष्ठस्य वसिष्ठमिव तेजसा ॥ १७ ॥
अन्तर्धाय ततोत्मानं विश्वामित्रोऽपि भारत।
तावुभावतिचक्राम चिकीर्षन्नात्मनः प्रियम् ॥ १८ ॥
स तु शप्तस्तदा तेन शक्तिना वै नृपोत्तमः।
जगाम शरणं शक्तिं प्रसादयितुमर्हयन् ॥ १९ ॥
तस्य भावं विदित्वा स नृपतेः कुरुसत्तम ।
विश्वामित्रस्ततो रक्ष आदिदेश नृपं प्रति ॥ २० ॥

रे नराधम! जोंकि मुझ तपस्वीको तूने राक्षस समान मारा, तू आजसे राक्षस होगा, तू नरमांस पर आसक्त होकर पृथ्वी पर टहला करेगा; रे क्षत्रियाधम ! अब जा। तपोबलयुक्त शक्तिने यह कह कर पथ छोड दिया। इससे पहिले उस कल्माषपाद राजाकी याजन क्रियाके विषयमें विश्वामित्र और वसिष्ठमें आपसकी शत्रुता हो गयी थी; इसलिये विश्वामित्र वसिष्ठको लक्ष्य कर राजाके निकट गये। हे पार्थ! राजा और शक्ति उस प्रकार झगड रहे थे, कि ऐसे समय कठोर तपस्वी प्रतापी विश्वामित्र उनके समीप जा पहुंचे। (११—१६)

अनन्तर नृपश्रेष्ठ कल्माषपादने वसिष्ठ के समान तेजस्वी ऋषि शक्तिको वसिष्ठपुत्र करके जाना। हे भारत! आगे विश्वामित्र अपनी प्रिय इच्छा को सिद्ध करनेके लिये अपनेको अन्तर्हित करके उन दोनोंको नांघ गये। नृपोत्तम कल्माषपादने शक्तिसे शापग्रसित होकर उनको प्रसन्न करनेके लिये उनकी उपासना कर शरण ली। हे कुरुश्रेष्ठ! विश्वामित्रने उन राजाके भावको समझकर राक्षसको उन

शापात्तस्य तु विप्रर्षेर्विश्वामित्रस्य चाऽऽज्ञया।
राक्षसः किंकरो नाम विवेश नृपतिं तदा ॥ २१ ॥
रक्षसा तं गृहीतं तु विदित्वा मुनिसत्तमः ।
विश्वामित्रोऽप्यपक्रामत्तस्माद्देशादरिन्दम ॥ २२ ॥
ततः स नृपतिस्तेन रक्षसाऽन्तर्गतेन च ।
बलवत्पीडितः पार्थ नाऽन्वबुध्यत किंचन ॥ २३ ॥
ददर्शाऽथ द्विजः कश्चिद्राजानं प्रस्थितं वनम्।
अयाचत क्षुधापन्नः समांसं भोजनं तदा ॥ २४ ॥
तमुवाचाऽथ राजर्षिर्द्विजं मित्रसहं तदा ।
आस्स्व ब्रह्मंस्त्वमत्रैव मुहूर्तं प्रतिपालयन् ॥ २५ ॥
निवृत्तः प्रतिदास्यामि भोजनं ते यथेप्सितम्।
इत्युक्त्वा प्रययौ राजा तस्थौ स द्विजसत्तमः॥२६॥
ततो राजा परिक्रम्य यथाकामं यथासुखम्।
निवृत्तोऽन्तःपुरं पार्थ प्रविवेश महामनाः ॥ २७ ॥
ततोऽर्धरात्र उत्थाय सूदमानाय्य सत्वरम् ।
उवाच राजा संस्मृत्य ब्राह्मणस्य प्रतिश्रुतम् ॥ २८ ॥
गच्छामुष्मिन्वनोद्देशे ब्राह्मणो मां प्रतीक्षते।

के शरीरमें घुसनेकी आज्ञा दी। किङ्कर नामक राक्षस उन विप्रर्षिके शाप और विश्वामित्रकी आज्ञासे राजाके शरीर में जा घुसा। हे शत्रुदमन! मुनिश्रेष्ठ विश्वामित्र राजाको राक्षस गृहीत जानकर वहां से चले गये। हे पार्थ! राजा शरीर स्थित राक्षससे अत्यन्त पीडित होकरके कुछ समझ नहीं सके (१७—२३)

अनन्तर वह वनको लौट जा रहे थे, कि ऐसे समयमें भूखे एक ब्राह्मणने उनको देखकर उनसे मांसयुक्त भोजन की सामग्री मांगी। मित्र पालनेवाले राजा उनसे बोले, कि हे ब्रह्मन्। मुहूर्त भर यहां ठहर कर मेरे लौटनेकी बाट देखते रहें, मैं लौट कर आपकी इच्छानुरूप भोजन दे दूंगा। राजा यह कह कर चले गये। ब्राह्मण वहां राजाकी प्रतीक्षामें ठहरे रहे। हे पार्थ! महानुभव महाराज ने सुखसे मनमाना घूमघाम कर लौट करके अन्तःपुरमें प्रवेश किया। आगे वह आधी रातको उठकर ब्राह्मणसे स्वीकार किये हुए विषयको स्मरण कर उसी क्षण रसोइयेको बुलवाकर बोले, कि उस वनमें एक ब्राह्मण भोजनकी इच्छासे मेरी बाट

अन्नार्थी तं त्वमन्नेन समांसेनोपपादय ॥ २९ ॥

गन्धर्व उवाच — एवमुक्तस्ततः सूदः सोऽनासाद्याऽऽमिषं क्वचित्।
निवेदयामास तदा तस्मै राज्ञे व्यथान्वितः ॥३०॥
राजा तु रक्षसाऽऽविष्टः सूदमाह गतव्यथः।
अप्येनं नरमांसेन भोजयेति पुनः पुनः ॥ ३१ ॥
तथेत्युक्त्वा ततः सूदः संस्थानं वध्यघातिनाम्।
गत्वाऽऽजहार त्वरितो नरमांसमपेतभीः ॥ ३२ ॥
स तत्संस्कृत्य विधिवदन्नोपहितमाशु वै।
तस्मै प्रादाद्ब्राह्मणाय क्षुधिताय तपस्विने ॥ ३३ ॥
स सिद्धचक्षुषा दृष्ट्वा तदन्नं द्विजसत्तमः।
अभोज्यमिदमित्याह क्रोधपर्याकुलेक्षणः ॥ ३४ ॥

ब्राह्मण उवाच — यस्मादभोज्यमन्नं मे ददाति स नृपाधमः।
तस्मात्तस्यैव मूढस्य भविष्यत्यत्र लोलुपा ॥ ३५ ॥
सक्तो मानुषमांसेषु यथोक्तः शक्तिना पुरा।
उद्वेजनीयो भूतानां चरिष्यति महीमिमाम् ॥३६॥
द्विरनुव्याहृतो राज्ञः स शापो बलवानभूत्।
रक्षोबलसमाविष्टो विसंज्ञश्चाऽभवन्नृपः ॥ ३७ ॥

ताकते हैं, तुम अब वहां जाकर उनको मांस सहित अन्न दे आओ। (२४–२९)

गन्धर्व बोले, कि रसोइयेने राजाकी आज्ञाको सुनकर कहीं मांस न पाकरके पीडिताचित्त होके उनसे वह बात कह सुनायी। राजा राक्षसयुक्त थे, सो विना सोच समझके बार बार कहा, कि तुम नरमांस लाकर उस ब्राह्मणको खिलाओ। रसोइया "तथास्तु" कहकर वेगसे बिना भय वध्यघातियोंके घरमें जाकर नरमांस लाया। आगे अन्नके साथ उस नरमांसको विधिपूर्वक पका कर बिना विलंब उन भूके तपस्वी ब्राह्मणके निकट जाकर उनको दे दिया। (३०—३३)

ब्राह्मणने सिद्ध नेत्रोंसे उस अन्नको देखकर क्रोधयुक्त नेत्रोंसे कहा, कि यह अन्न भेजना योग्य नहीं है; जिस नृपाधम ने मुझको भोजनके अयोग्य अन्न दिया है, उस मूर्खको नरमांस पर लालसा होगी; पहिले ऋषि शक्तिने जैसा कहा था, वैसाही होगा। यह राजा नरमांस पर आसक्त होकर जीवोंमें घबराहट लाकर इस पृथ्वीपर घूमा करेगा। इस प्रकार राजा पर दूसरी बार शाप लगनेसे

ततः स नृपतिश्रेष्ठो रक्षसाऽपहृतेन्द्रियः ।
उवाच शक्तिं तं दृष्ट्वा न चिरादिव भारत ॥ ३८ ॥
यस्मादसदृशः शापः प्रयुक्तोऽयं मयि त्वया ।
तस्मात्त्वत्तः प्रवर्तिष्ये खादितुं पुरुषानहम् ॥ ३९ ॥
एवमुक्त्वा ततः सद्यस्तं प्राणैर्विप्रयुज्य च ।
शक्तिं तं भक्षयामास व्याघ्रः पशुमिवेप्सितम् ॥४०॥
शक्तिं तं तु मृतं दृष्ट्वा विश्वामित्रः पुनः पुनः ।
वसिष्ठस्यैव पुत्रेषु तद्रक्षः संदिदेश ह ॥ ४१ ॥
स तान्शक्त्यवरान्पुत्रान्वसिष्ठस्य महात्मनः ।
भक्षयामास संक्रुद्धः सिंहः क्षुद्रमृगानिव ॥ ४२ ॥
वसिष्ठो घातितान्श्रुत्वा विश्वामित्रेण तान्सुतान्।
धारयामास तं शोकं महाद्रिरिव मेदिनीम् ॥४३॥
चक्रे चाऽऽत्मविनाशाय बुद्धिं स मुनिसत्तमः।
नत्वेव कौशिकोच्छेदं मेने मतिमतां वरः ॥ ४४ ॥
स मेरुकूटादात्मानं मुमोच भगवानृषिः ।

वह शाप अति बलयुक्त हुआ; उससे राजाने शरीरमें घुसे हुए राक्षसके बलसे चेत खो दिया। (३४—३७)

हे भारत! अनन्तर राक्षससे इन्द्रियोंके चुराये जाने पर नृपश्रेष्ठ कुछ काल पीछे शक्तिको देखकर बोले, कि तुमने मुझ-को अनुचित शाप दिया है, सो मैं पहिले तुम्हींसे आरम्भ कर मनुष्य खानेको प्रवृत होता हूं। राजा यह कह कर उसी क्षण उनके प्राण नष्ट कर उनको इस प्रकार खागये, कि जैसे व्याघ्र मन माने पशुको खा लेता है। विश्वामित्र वसिष्ठ-पुत्र शक्तिको मरते देख कर बार बार राक्षसको वसिष्ठ ही के पुत्रोंको खानेकी आज्ञा देने लगे। वह राक्षसयुक्त राजा क्रोधित होकर महात्मा वसिष्ठके दूसरे पुत्रोंको क्रमसे इस प्रकार खा गये, कि जैसे सिंह छोटे मृगको खाले। (३४-४२

वसिष्ठने विश्वामित्रके द्वारा उन पुत्रों के नष्ट होनेकी बात सुनकर पुत्र—वियोगके कठोर शोकको इस प्रकारसे सहन किया, कि जैसे महाद्रिका भार धरती सम्भाले। उन महामति मुनिश्रेष्ठने आत्मघात करना निश्चय किया, पर तौ भी कौशिक वंशके उखाडनेकी चेष्टा नहीं की। उन्होंने सुमेरुकी चोटी परसे अपने को गिराया पर उससे उनको कोई क्लेश नहीं पहुंचा; उनका पर्वतपरके

गिरेस्तस्य शिलायां तु तूलराशाविवाऽपतत्॥४५॥
न ममार च पातेन स यदा तेन पाण्डव ।
तदाऽग्निमिद्धं भगवान्संविवेश महावने ॥ ४६ ॥
तं तदा सुसमिद्धोऽपि न ददाह हुताशनः।
दीप्यमानोऽप्यमित्रघ्न शीतोऽग्निरभवत्ततः॥ ४७ ॥
स समुद्रमभिप्रेक्ष्य शोकाविष्टो महामुनिः ।
बद्ध्वा कण्ठे शिलां गुर्वीं निपपात तदाऽम्भसि।
स समुद्रोर्मिवेगेन स्थले न्यस्तो महामुनिः ॥ ४८ ॥
न ममार यदा विप्रः कथंचित्संशितव्रतः ।
जगाम स ततः खिन्नः पुनरेवाऽऽश्रमं प्रति ॥ ४९ ॥[६९१५]

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यामादिपर्वणि चैत्ररथपर्वणि वासिष्ठे वसिष्ठशोकेऽष्टसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १७८ ॥

गन्धर्व उवाच— ततो दृष्ट्वाऽऽश्रमपदं रहितं तैः सुतैर्मुनिः ।
निर्जगाम सुदुःखार्तः पुनरप्याश्रमात्ततः ॥ १ ॥
सोऽपश्यत्सरितं पूर्णां प्रावृट्काले नवाम्भसा।
वृक्षान्बहुविधान्पार्थ हरन्तीं तीरजान्बहून् ॥ २ ॥
अथ चिन्तां समापेदे पुनः कौरवनन्दन ।

पत्थर की ढेर पर गिरना मानों रूईके फाहे पर गिरनेके सदृश हुआ।(४३–४५)

हे पाण्डव! वह भगवान् महर्षि पहाड की चोटी परसे गिरकर न मरनेके हेतु महावनमें आग बाल कर उसमें जा घुसे। परन्तु तब जलती हुई आगने तेजसे जलने परभी उनको नहीं जलाया। हे शत्रु-नाशि! उनको वह आग ठण्डी जान पडी। अनन्तर पुत्रशोकसे विकल महामुनि समुद्र देखकर अपने गलेमें भारी पत्थर बांध करके उसके जलमें जा गिरे, उस-परभी न डूब कर समुद्रकी लहरके बलसे तट पर उठाये गये। तब किसी प्रकार उन की मृत्यु न होने पर वह दुःखी चित्तसे आश्रमको लौट गये।(४६-४९)[६९१५]

आदिपर्वमें एकसौ अठहत्तर अध्याय समाप्त।

आदिपर्वमें एकसौ उनासी अध्याय।

गन्धर्व बोले, कि अनन्तर भगवान् मुनि अपने आश्रमको पुत्रोंसे खाली देख कर अति दुःखी चित्तसे फिर आश्रमसे निकले। हे कौरवनन्दन पार्थ! वह शोकयुक्त ऋषि वर्षामें नये जलसे भरी हुई एक बहती हुई नदीको तट परके नाना वृक्षोंको हरते देखकर फिर सोचने

अम्भस्यस्यां निमज्जेयमिति दुःखसमन्वितः॥ ३ ॥
ततः पाशैस्तदाऽऽत्मानं गाढं बद्ध्वा महामुनिः।
तस्या जले महानद्या निममज्ज सुदुःखितः ॥ ४ ॥
अथ छित्त्वा नदी पाशांस्तस्याऽरिबलसूदन।
स्थलस्थं तमृषिं कृत्वा विपाशं समवासृजत् ॥ ५ ॥
उत्ततार ततः पाशैर्विमुक्तः स महानृषिः।
विपाशेति च नामाऽस्या नद्याश्चक्रे महानृषिः ॥६॥
शोके बुद्धिं तदा चक्रे न चैकत्र व्यतिष्ठत।
सोऽगच्छत्पर्वतांश्चैव सरितश्च सरांसि च ॥ ७ ॥
दृष्ट्वा स पुनरेवर्षिर्नदीं हैमवतीं तदा।
चण्डग्राहवतीं भीमां तस्याः स्रोतस्यपातयत्॥ ८ ॥
सा तमग्निसमं विप्रमनुचिन्त्य सरिद्वरा।
शतधा विद्रुता यस्माच्छतद्रुरिति विश्रुता ॥ ९ ॥
ततः स्थलगतं दृष्ट्वा तत्राऽप्यात्मानमात्मना।
मर्तुं न शक्यमित्युक्त्वा पुनरेवाऽऽश्रमं ययौ॥१०॥
स गत्वा विविधाञ्शैलान्देशान्बहुविधांस्तथा।
अदृश्यन्त्याख्यया वध्वाऽथाऽऽश्रमेऽनुसृतोऽभवत् ११॥

लगे; कि मैं इस जल में डूबकर प्राण छोडूं। आगे उन्होंने रस्सीसे अपनेको दृढरूपसे बांधकर उस बडी नदीके जल में डुबाया। हे शत्रुबल--मथनेहारे! तब उस नदीने उनकी रस्सीको काटकर बंधनको तोडके स्थल पर छोड दिया; इस से उन्होंने बन्धनसे मुक्तहो और उठ कर उस नदीका "विपाशा" नाम रखा। १-६

अनन्तर वह शोकसे विकल एक स्थान पर रह नहीं सके; पर्वत, नदी और तालामें घूमने फिरने लगे। एक समय हैमवती नाम्नी नदीको अति क्रोधी हिंसक जलजन्तुओंसे भरी हुई और भीषणाकार देखकर उसके सोतेमें जा गिरे। वह बडी नदी विप्रवरको अग्निवत् अनुभव कर सैकडों भागोंमें द्रुतवेगसे बह चली, इस लिये तभीसे उस नदीका नाम "शतद्रू" प्रसिद्ध हुआ है। महर्षि उस भयानक नदीमें गिरकेभी अपनेको स्थल पर उठाये जाते देखकर यह समझ कर के कि "इच्छानुसार प्राणत्याग नहीं कर सका" आश्रम की ओर चले। (७-१०

वह भांति भांतिके पर्वत और देशोंसे होकर अन्तमें आश्रमको जा रहे थे, कि

अथ शुश्राव संगत्या वेदाध्ययननिस्वनम् ।
पृष्ठतः परिपूर्णार्थं षड्भिरङ्गैरलंकृतम् ॥ १२ ॥
अनुव्रजति को न्वेष मामित्येवाऽथ सोऽब्रवीत् १३॥
अहमित्यदृश्यन्तीमं सा स्नुषा प्रत्यभाषत ।
शक्तेर्भार्या महाभाग तपोयुक्ता तपस्विनी ॥ १४ ॥

वसिष्ठ उवाच — पुत्रि कस्यैष साङ्गस्य वेदस्याऽध्ययनस्वनः ।
पुरा साङ्गस्य वेदस्य शक्तेरिव मया श्रुतः ॥ १५ ॥

अदृश्यन्त्युवाच — अयं कुक्षौ समुत्पन्नः शक्तेर्गर्भः सुतस्य ते ।
समा द्वादश तस्येह वेदानभ्यस्यतो मुने ॥ १६ ॥

गन्धर्व उवाच — एवमुक्तस्तया हृष्टो वसिष्ठः श्रेष्ठभागृषिः ।
अस्ति संतानमित्युक्त्वा मृत्योः पार्थ न्यवर्तत॥१७॥
ततः प्रतिनिवृत्तः स तया वध्वा सहाऽनघ ।
कल्माषपादमासीनं ददर्श विजने वने ॥ १८ ॥
स तु दृष्ट्वैव तं राजा क्रुद्ध उत्थाय भारत ।
आविष्टो रक्षसोग्रेण इयेषाऽत्तुं तदा मुनिम् ॥ १९ ॥
अदृश्यन्ती तु तं दृष्ट्वा क्रूरकर्माणमग्रतः ।

ऐसे समयमें अदृश्यन्ती नाम्नी उनकी पुत्रवधु उनके पीछे जा रही थी । तब उन ऋषिने निकट होनेके कारण पीछेसे षडङ्गोंसे अलंकृत पूर्णार्थयुक्त वेदपठनकी ध्वनि सुनकर पूछा, कि कौन मेरे पीछे आ रहा है । पुत्रवधू बोली, कि हे महाभाग ! मैं शक्तिकी तपोयुक्ता तपस्विनी स्त्री अदृश्यन्ती, आपकी पुत्रवधू हूं । वसिष्ठ बोले, कि पुत्रि ! मैंने पहिले शक्तिके मुखसे जिस प्रकार साङ्गवेदकी ध्वनि सुनी थी । अब किसके मुखसे वेद पठनकी वैसी ध्वनि सुन पडी ? (११-१५)

अदृश्यन्ती बोली, कि हे मुने ! तुम्हारे पुत्र शक्तिके वीर्यसे मेरे गर्भमें एक सन्तान है; वह पुत्र बारह वर्षसे ऐसा वेदाभ्यास कर रहा है; आपने उसीसे वेदकी ध्वनि सुनी है । गन्धर्व बोले, कि हे पार्थ ! श्रेष्ठ भाग्यवान् ऋषिश्रेष्ठ वसिष्ठ अदृश्यन्ती की उस बातको सुनकर प्रसन्न होकर यह समझ कर, कि "मेरा वंश है," मृत्युकी इच्छासे निवृत्त हुए। हे अनघ! वह लौटकर पुत्रवधुके संग जा रहे थे, कि ऐसे समय निरालेमें बैठे हुए कल्माषपादको देखा। १६-१८

हे भारत ! उस कठोर राक्षसयुक्त राजा कल्माषपादने मुनिको देखकर उसी

भयसंविग्नया वाचा वसिष्ठमिदमब्रवीत् ॥ २० ॥
असौ मृत्युरिवोग्रेण दण्डेन भगवन्नितः ।
प्रगृहीतेन काष्ठेन राक्षसोऽभ्येति दारुणः ॥ २१ ॥
तं निवारयितुं शक्तो नान्योऽस्ति भुवि कश्चन।
त्वदृतेऽद्य महाभाग सर्ववेदविदां वर ॥ २२ ॥
पाहि मां भगवन्पापादस्माद्दारुणदर्शनात्।
राक्षसोऽयमिहाऽत्तुं वै नूनमावां समीहते ॥ २३ ॥

वसिष्ठ उवाच— मा भैः पुत्रि न भेतव्यं राक्षसात्तु कथंचन ।
नैतद्रक्षो भयं यस्मात्पश्यसि त्वमुपस्थितम् ॥ २४ ॥
राजा कल्माषपादोऽयं वीर्यवान्प्रथितो भुवि।
स एषोऽस्मिन्वनोद्देशे निवसत्यतिभीषणः ॥ २५ ॥

गन्धर्व उवाच —तमापतन्तं संप्रेक्ष्य वसिष्ठो भगवानृषिः ।
वारयामास तेजस्वी हुंकारेणैव भारत ॥ २६ ॥
मन्त्रपूतेन च पुनः स तमभ्युक्ष्य वारिणा ।
मोक्षयामास वै शापात्तस्माद्योगान्नराधिपम् ॥ २७
स हि द्वादश वर्षाणि वसिष्ठस्यैव तेजसा ।

क्षण क्रोधसे उठ करके खा जाना चाहा; अदृश्यन्ती सामने उस कुटिल कर्म वालेको देखकर भयसे घबराकर वसिष्ठसे बोली, कि हे भगवन्! वह कठोर दण्डधारी साक्षात् यमराजके समान लकडी उठाकर इधर आ रहा है। हे सर्ववेद-निपुण महाभाग! धरती भरमें आपके विना कोई भी इसके रोकनेको समर्थ नहीं है। हे भगवन्! इस कठोर भयावने आकारके पापात्मासे मेरी रक्षा करें! मुझको निश्चय जान पडता है, कि वह राक्षस हम दोनोंको खाजानेको उद्यत हुआ है। वसिष्ठ बोले, कि बेटि! भय मत खाओ, राक्षससे कोई भय नहीं है। तुम जिनसे वर्त्तमान भय देखती हो, वह राक्षस नहीं है, जो कल्माषपाद नामक भूमण्डलमें प्रसिद्ध राजा हैं,वही इस वनमें अति भयङ्कर आकार धारणकर राक्षसके स्वरूपमें वास कर रहे हैं। (१९-२५)

गन्धर्व बोले, कि हे भारत! तेजस्वी भगवान ऋषि वसिष्ठने उनको आ गिरते देखकर "हुं"कारसे रोका। आगे मन्त्रसे पवित्र किये हुए जलसे उनको नहला कर उस घोर शापसे मुक्त किया! वह राजा बारह वर्षतक वसिष्ठपुत्र शक्तिके तेजसे इस प्रकार ग्रासित थे, कि जिस

ग्रस्त आसीद् ग्रहेणेव पर्वकाले दिवाकरः ॥ २८ ॥
रक्षसा विप्रमुक्तोऽथ स नृपस्तद्वनं महत् ।
तेजसा रञ्जयामास सन्ध्याभ्रमिव भास्करः॥ २९॥
प्रतिलभ्य ततः संज्ञामभिवाद्य कृताञ्जलिः ।
उवाच नृपतिः काले वसिष्ठमृषिसत्तमम् ॥ ३० ॥
सौदासोऽहं महाभाग याज्यस्ते मुनिसत्तम ।
अस्मिन्काले यदिष्टं ते ब्रूहि किं करवाणि ते ॥३१॥

वसिष्ठ उवाच— वृत्तमेतद्यथाकालं गच्छ राज्यं प्रशाधि वै ।
ब्राह्मणं तु मनुष्येन्द्र माऽवमंस्थाः कदाचन ॥ ३२ ॥

राजोवाच— नाऽवमंस्ये महाभाग कदाचिद्ब्राह्मणर्षभान् ।
त्वन्निदेशे स्थितः सम्यक्पूजयिष्याम्यहं द्विजान् ३३
इक्ष्वाकूणां च येनाऽहमनृणः स्यां द्विजोत्तम ।
तत्त्वत्तः प्राप्तुमिच्छामि सर्ववेदविदांवर ॥ ३४ ॥
अपत्यमीप्सितं मह्यं दातुमर्हसि सत्तम ।
शीलरूपगुणोपेतमिक्ष्वाकुकुलवृद्धये ॥ ३५ ॥

गन्धर्व उवाच— ददानीत्येव तं तत्र राजानं प्रत्युवाच ह ।

प्रकार सूर्य राहुसे होता है, अब शापसे मुक्त होकर ऐसे तेजसे उस बडे वनको सुशोभित किया, कि जैसे सूर्यदेव सन्ध्या कालके बादलको रंग देते हैं। (२६-२९)

तब राजा ज्ञान प्राप्तकर प्रणाम-पूर्वक दोनों हाथ जोडकर ऋषिश्रेष्ठ वसिष्ठसे बोले, कि हे महाभाग ! मैं सुदासराजा का पुत्र आपका यजमान हूं ! हे मुनि-श्रेष्ठ ! कहें अब आपकी क्या इच्छा है, मैं उसको पूरी कर देता हूं। वसिष्ठ बोले, कि हे मानवेन्द्र ! मेरी जो इच्छा थी, वह कालके क्रमसे पूरी हो गयी है, अब तुम राजधानीमें जाकर राज्य शासन करो, फिर कभी ब्राह्मणका अनादर मत करना ! राजा बोले, कि हे महाभाग ! मैं कभी ब्राह्मणका अनादर नहीं करूंगा, आपके आज्ञाधीन रहकर ब्राह्मणोंकी भली भांति पूजा करूंगा। हे सर्ववेद निपुण द्विजोत्तम ! मैं आपसे वह वस्तु पानेकी इच्छा करता हूं, जिस से इक्ष्वाकुवंशके ऋणसे छुटकारा पाजाऊं! हे श्रेष्ठ ! आप इक्ष्वाकुवंशके बढाने वाला रूपगुणशील अच्छा पुत्र मुझको देवें। (२९-३५)

गन्धर्वराज बोले, कि सत्यशील द्वि-जोत्तम वसिष्ठने यह कहकर कि "पुत्र

वसिष्ठः परमेष्वासं सत्यसंधो द्विजोत्तमः ॥ ३६ ॥
ततः प्रतिययौ काले वसिष्ठः सह तेन वै ।
ख्यातां पुरीमिमां लोकेष्वयोध्यां मनुजेश्वर ॥ ३७ ॥
तं प्रजाः प्रतिमोदन्त्यः सर्वाः प्रत्युद्गतास्तदा ।
विपाप्मानं महात्मानं दिवौकस इवेश्वरम् ॥ ३८ ॥
सुचिराय मनुष्येन्द्रो नगरीं पुण्यलक्षणाम् ।
विवेश सहितस्तेन वसिष्ठेन महर्षिणा ॥ ३९ ॥
ददृशुस्तं महीपालमयोध्यावासिनो जनाः ।
पुरोहितेन सहितं दिवाकरमिवोदितम् ॥ ४० ॥
स च तां पूरयामास लक्ष्म्या लक्ष्मीवतां वरः ।
अयोध्यां व्योम शीतांशुः शरत्काल इवोदितः ४१
संसिक्तमृष्टपन्थानं पताकाध्वजशोभितम् ।
मनः प्रह्लादयामास तस्य तत्पुरमुत्तमम् ॥ ४२ ॥
तुष्टपुष्टजनाकीर्णा सा पुरी कुरुनन्दन ।
अशोभत तदा तेन शक्रेणेवाऽमरावती ॥ ४३ ॥

दूंगा" उन बडे चापधारी राजासे अङ्गीकार किया। हे मनुजेन्द्र ! अनन्तर वसिष्ठ कालानुसार उन राजाके साथ अयोध्या नाम्नी प्रसिद्ध नगरीको गये। प्रजाओंने पापमुक्त महात्मा राजाको आते देखकर इस प्रकार प्रसन्न चित्तसे स्वागत किया, कि जैसे देवगण देवराजको आते देखकर प्रमुदित होते हैं। नरेन्द्रने बहुत दिनोंके पीछे महात्मा वसिष्ठके साथ पुण्य लक्षणोंसे भरी हुई नगरीमें प्रवेश किया। तब अयोध्यावासी जन पुरोहितके साथ उन महीपालको उगे हुए सूर्यकी भांति देखने लगे। ३६-४०

उन भूपतिने अपनी शोभासे अयोध्या नगरीको इस प्रकार छा लिया, कि जैसे शरत्कालमें उगा हुआ चन्द्रमा आकाशमण्डलको सुशोभित करता है, उस कालमें राजमार्ग जलसे भिङ्गोया गया और भले प्रकार साफ किया गया था और नगरके स्थान स्थानमें फहराती हुई ध्वजा और पताका सोह रहीं थी, सो नगर देखकर राजाका चित्त आनन्दके समुद्रमें डूब गया। हे कुरुनन्दन ! तब तुष्ट और पुष्ट जनोंसे छायी हूई वह नगरी भूपाल कल्माषपादसे इस प्रकार शोभा पाने लगी, कि जिस प्रकार अमरावती अमरनाथसे सुशोभित होती है। (४१-४३)

ततः प्रविष्टे राजर्षौ तस्मिंस्तत्पुरमुत्तमम् ।
राज्ञस्तस्याऽऽज्ञया देवी वसिष्ठमुपचक्रमे ॥ ४४ ॥
महर्षिः संविदं कृत्वा संबभूव तया सह ।
देव्या दिव्येन विधिना वसिष्ठः श्रेष्ठभागृषिः॥ ४५ ॥
ततस्तस्यां समुत्पन्ने गर्भे स मुनिसत्तमः ।
राज्ञाऽभिवादितस्तेन जगाम मुनिराश्रमम् ॥ ४६ ॥
दीर्घकालेन सा गर्भं सुषुवे न तु तं यदा ।
तदा देव्यश्मना कुक्षिं निर्बिभेद यशस्विनी॥ ४७॥
ततोऽपि द्वादशे वर्षे स जज्ञे पुरुषर्षभः ।
अश्मको नाम राजर्षिः पौदन्यं यो न्यवेशयत् ॥४८॥ [६९६३]

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यामादिपर्वणि चैत्ररथपर्वणि वासिष्ठे सौदाससुतोत्पत्तावूनाशीत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १७९ ॥

गन्धर्व उवाच— आश्रमस्था ततः पुत्रमदृश्यन्ती व्यजायत ।
शक्तेः कुलकरं राजन्द्वितीयमिव शक्तिनम् ॥ १ ॥
जातकर्मादिकांस्तस्य क्रियाः स मुनिसत्तमः ।
पौत्रस्य भरतश्रेष्ठ चकार भगवान्स्वयम् ॥ २ ॥
परासुः स यतस्तेन वसिष्ठः स्थापितो मुनिः ।

अनन्तर राजर्षिके अपूर्व पुरीमें प्रवेश करने पर उनकी आज्ञासे देवी राजराणी वसिष्ठकी उपासना करने लगी। महर्षिश्रेष्ठ वसिष्ठ दिव्यविधिके अनुसार नियम करके उससे मिले। अनन्तर राजराणीके गर्भ होने पर महर्षि राजाके प्रणामसे पूजे जाकर आश्रममें लौट आये। आगे बहुत दिन बीत गये, तिसपर भी राणीको सन्तान नहीं हुई, तब यशस्विनी राजराणीने अश्म अर्थात् पत्थरकी चोटसे कोखको फाड डाला। इस लिये बारह वर्षतक गर्भमें स्थित उन पुरुषश्रेष्ठने अश्मक नामक राजर्षि होकर जन्म लिया, कि जिन्होंने पौदन्य नामक नगरको वसाया था। (४४-४८) [६९६३]

आदि पर्वमें एकसौ उनासी अध्याय समाप्त।

आदिपर्वमें एकसौ अस्सी अध्याय।

गन्धर्वराज बोले, कि हे राजन् ! अनन्तर आश्रममें स्थित अदृश्यन्ती दूसरे शक्तिके समान शक्तिका वंश बढाने वाला पुत्र प्रसव किया। हे भरतश्रेष्ठ ! मुनिश्रेष्ठ भगवान् वसिष्ठने स्वयं उस पोतेकी जात कर्मादि क्रिया की। वह

गर्भस्थेन ततो लोके पराशर इति स्मृतः ॥ ३ ॥
अमन्यत स धर्मात्मा वसिष्ठं पितरं मुनिम्।
जन्मप्रभृति तस्मिंस्तु पितरीवाऽन्ववर्तत ॥ ४ ॥
स तात इति विप्रर्षिं वसिष्ठं प्रत्यभाषत ।
मातुः समक्षं कौन्तेय अदृश्यन्त्याः परंतप ॥ ५ ॥
तातेति परिपूर्णार्थं तस्य तन्मधुरं वचः ।
अदृश्यन्त्यश्रुपूर्णाक्षी शृण्वती तमुवाच ह ॥ ६ ॥
मा तात तात तातेति ब्रूह्येनं पितरं पितुः ।
रक्षसा भक्षितस्तात तव तातो वनान्तरे ॥ ७ ॥
मन्यसे यं तु तातेति नैष तातस्तवाऽनघ ।
आर्य एष पिता तस्य पितुस्तव यशस्विनः ॥ ८ ॥
स एवमुक्तो दुःखार्तः सत्यवागृषिसत्तमः ।
सर्वलोकविनाशाय मतिं चक्रे महामनाः ॥ ९ ॥
तं तथा निश्चितात्मानं स महात्मा महातपाः।
ऋषिर्ब्रह्मविदां श्रेष्ठो मैत्रावरुणिरन्त्यधीः ।
वसिष्ठो वारयामास हेतुना येन तच्छृणु ॥ १० ॥

पुत्र जब गर्भमें था, तब वसिष्ठने परासु होना अर्थात् जीवन त्याग देना निश्चय किया था, सो वह पराशर नामसे भू-मण्डलमें प्रसिद्ध हुए। धर्मात्मा पराशर जन्मसे मुनि वसिष्ठको पिता जानकर उनपर पिताके सदृश व्यवहार किया करते थे। (१-४)

हे शत्रु-मंथन कुन्तीनन्दन! एकदिन उन्होंने माता अदृश्यन्तीके सामने विप्रर्षि वसिष्ठको पिता कहके पुकारा; अदृश्यन्ती उनकी मीठी बोली से स्पष्टरूपसे पिता कहते सुन करके आंखोंमें आंसू भरकर बोली, कि बेटा ! तुम अपने दादाको पिता कहके मत पुकारना। हे पुत्र ! राक्षसने वनमें तुम्हारे पिताको खा लिया है। हे अनघ ! तुम जिनको पिता समझ रहे हो, वह तुम्हारे पिता नहीं हैं, पिताके पिता हैं । सत्यवादी ऋषिश्रेष्ठ पराशरने यह बात सुन करके दुःखी होकर सर्व लोकोंको नष्ट करना निश्चय किया ! महा तपस्वी, वेदमें पण्डितोंसे श्रेष्ठ, परिणामदर्शी मैत्रावरुणि ऋषि वसिष्ठने उनको सर्वलोक नष्ट करनेका प्रण ठानते देख कर रोका; उन्होंने जिस रीतिसे रोका वह कहता हूं, सुनो। (५-१०)

वासिष्ठ उवाच— कृतवीर्य इति ख्यातो बभूव पृथिवीपतिः ।
याज्यो वेदविदां लोके भृगूणां पार्थिवर्षभः॥ ११॥
स तानग्रभुजस्तात धान्येन च धनेन च ।
सोमान्ते तर्पयामास विपुलेन विशाम्पते ॥ १२॥
तस्मिन्नृपतिशार्दूले स्वर्यातेऽथ कथंचन ।
बभूव तत्कुलेयानां द्रव्यकार्यमुपस्थितम् ॥ १३ ॥
भृगूणां तु धनं ज्ञात्वा राजानः सर्व एव ते ।
याचिष्णवोऽभिजग्मुस्तांस्ततो भार्गवसत्तमान्१४॥
भूमौ तु निदधुः केचिद्भृगवो धनमक्षयम् ।
ददुः केचिद् द्विजातिभ्यो ज्ञात्वा क्षत्रियतो भयम्१५
भृगवस्तु ददुः केचित्तेषां वित्तं यथेप्सितम् ।
क्षत्रियाणां तदा तात कारणान्तरदर्शनात् ॥ १६ ॥
ततो महीतलं तात क्षत्रियेण यदृच्छया ।
खनताऽधिगतं वित्तं केनचिद्भृगुवेश्मनि ॥ १७ ॥
तद्वित्तं ददृशुः सर्वे समेताः क्षत्रियर्षभाः ।
अवमन्य ततः क्रोधाद्भृगूंस्ताञ्शरणागतान् ॥१८ ॥
निजघ्नुः परमेष्वासाः सर्वांस्तान्निशितैः शरैः ।
आगर्भादवकृन्तन्तश्चेरुः सर्वां वसुंधराम् ॥ १९ ॥

वासिष्ठ बोले, कि पहिले कृतवीर्य नामक प्रख्यात भूपालश्रेष्ठ पृथ्वीनाथ वेदज्ञ भृगुवंशके यजमान थे। हे पृथ्वीनाथ उन्होंने सोमयज्ञके अन्त होने पर अग्रभुक्त भृगुओं को बहुत धनधान्यसे सन्तुष्ट किया था। अनन्तर उस नृप शार्दूलके स्वर्गको सिधारने पर उनके वंशके राजाओंको धनका प्रयोजन हुआ। तब वे राजा भार्गवोंके बहुत धन है, जानकर याचककी भांति उनके पास जा पहुंचे। भार्गवोंमेंसे किसी किसीने यह सोचकर कि "हमारा धन क्षय न होने पावे" धनको धरतीमें गाड रखा, किसी किसीने क्षत्रियोंसे भय खाकर अपना अपना धन ब्राह्मणोंको दान दे दिया; किसी किसीने और कुछ समझ कर उन क्षत्रियोंको मनमाना धन दे दिया। (११-१६)

ऐ बेटा! अनन्तर किसी क्षत्रियने भार्गवोंके घर खोद कर बहुत धन पाया। तब बडे चापधारी क्षत्रियलोग सब मिलकर उस अतुल धनको देखकरके शरण लिये हुए भार्गवोंको अनादरपूर्वक

ततं उच्छिद्यमानेषु भृगुष्वेवं भयात्तदा।
भृगुपत्न्यो गिरिं दुर्गं हिमवन्तं प्रपेदिरे ॥ २० ॥
तासामन्यतमा गर्भं भयाद्दध्रे महौजसम् ।
ऊरुणैकेन वामोरूर्भर्तुः कुलविवृद्धये ॥ २१ ॥
तद्गर्भमुपलभ्याऽऽशु ब्राह्मणी या भयार्दिता।
गत्वैका कथयामास क्षत्रियाणामुपह्वरे ॥ २२ ॥
ततस्ते क्षत्रिया जग्मुस्तं गर्भं हन्तुमुद्यताः ।
ददृशुर्ब्राह्मणीं तेऽथ दीप्यमानां स्वतेजसा ॥ २३ ॥
अथ गर्भः स भित्त्वोरुं ब्राह्मण्या निर्जगाम ह।
मुष्णन्दृष्टीः क्षत्रियाणां मध्याह्न इव भास्करः ॥२४॥
ततश्चक्षुर्विहीनास्ते गिरिदुर्गेषु बभ्रमुः ॥ २५ ॥
ततस्ते मोहमापन्ना राजानो नष्टदृष्टयः ।
ब्राह्मणीं शरणं जग्मुर्दृष्ट्यर्थं तामनिन्दिताम् ॥२६॥
ऊचुश्चैनां महाभागां क्षत्रियास्ते विचेतसः।
ज्योतिष्प्रहीणा दुःखार्ताः शान्तार्चिष इवाऽग्नयः २७

तेज बाणोंसे मारने लगे; यहां तक कि वे भार्गवोंके गर्भमें स्थित बालकों को भी नष्ट कर पृथ्वी भरमें घूमने लगे। इस प्रकार भृगुवंशके उखड जाने पर भार्गवोंकी स्त्रियां भय खाकर जानेके अयोग्य हिमाचल पर भाग गयीं। उनमें से किसी एक सुन्दरी नारीने पतिकुलकी रक्षाके लिये क्षत्रियके भयसे एक जांघ में अति वीर्यवन्त एक गर्भको धारण किया। (१६—२१)

अनन्तर एक ब्राह्मणीने उस गर्भका हाल जान कर भयके मारे क्षत्रियोंके यहां चल कर कह दिया। क्षत्रिय लोग यह सुनतेही उस गर्भको नष्ट करनेको उद्यत होकर चले और गर्भवती ब्राह्मणी को उसके तेजसे जलती हुई देखा। उस समय गर्भमें स्थित बालक ब्राह्मणी की जांघको भेद कर दुपहरके तेज सूर्य की भांति क्षत्रियोंकी आंखें झुलस कर निकला। राजा लोग नेत्रके बिना दृष्टि चली जानेसे मोहके वशमें होकर चलने के अयोग्य पहाडकी चारों ओर घूमने लगे। (२२—२५)

आगे दृष्टि प्राप्त करनेकी आशासे उस ब्राह्मणीकी शरण ली। उन्होंने बुझी हुई शिखायुक्त अग्निकी भांति ज्योतिसे हाथ धो और अचेत होकर दुःखी चित्तसे महा भाग्यवती ब्राह्मणीसे

भगवत्याः प्रसादेन गच्छेत्क्षत्रं सचक्षुषम् ।
उपरम्य च गच्छेम सहिताः पापकर्मिणः ॥ २८ ॥
सपुत्रा त्वं प्रसादं नः कर्तुमर्हसि शोभने ।
पुनर्दृष्टिप्रसादेन राज्ञः संत्रातुमर्हसि ॥ २९ ॥ [६९९२]

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यामादिपर्वणि चैत्ररथपर्व-
ण्यौर्वोपाख्यानेऽशीत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १८० ॥

ब्राह्मण्युवाच— नाऽहं गृह्णामि वस्ताता दृष्टीर्नास्मि रुषान्विता।
अयं तु भार्गवो नूनमूरुजः कुपितोऽद्य वः ॥ १ ॥
तेन चक्षूंषि वस्ताता व्यक्तं कोपान्महात्मना ।
स्मरता निहतान्बन्धूनादत्तानि न संशयः ॥ २ ॥
गर्भानपि यदा नूनं भृगूणां घ्नत पुत्रकाः ।
तदाऽयमूरुणा गर्भो मया वर्षशतं धृतः ॥ ३ ॥
षडङ्गश्चाऽखिलो वेद इमं गर्भस्थमेव ह ।
विवेश भृगुवंशस्य भूयः प्रियचिकीर्षया ॥ ४ ॥
सोऽयं पितृवधाद्व्यक्तं क्रोधाद्वो हन्तुमिच्छति।
तेजसा तस्य दिव्येन चक्षूंषि मुषितानि वः॥ ५ ॥

कहा, कि हम आपकी कृपासे नेत्र पावें, तो इस पापकर्मसे निवृत्त होकर सब घरको जांयं । ऐ शोभने ! आप पुत्रसहित हम लोगों पर प्रसन्न होवें । आंख देकर इन राजाओं की रक्षा करें । (२६–२९) [६९९२]

आदिपर्वमें एकसौ अस्सी अध्याय समाप्त ।

आदिपर्वमें एकसौ एकासी अध्याय ।

ब्राह्मणी बोली, कि हे पुत्रो ! मैं क्रोधित नहीं हुई हूं और न मैंने तुम्हारी दृष्टि हर ली है; पर सन्देह नहीं है, कि मेरी जांघसे पैदा हुआ यह भृगुवंशी कुमार तुम पर क्रोधित हुआ है । हे पुत्रो ! इस महात्मा बालकहीने बन्धुओंका नाश स्मरण कर क्रोधयुक्त चित्तसे तुम्हारी आंखें हरली हैं ! हे पुत्रो ! जब तुमलोग भार्गवोंके गर्भस्थित बालकोंकोभी नष्ट करने लगे, तबसे मैंने सौवर्ष तक यह गर्भ धारण किया है। भृगुवंशके फिर हितानुष्ठान के निमित्त छओं अङ्गोंके साथ सम्पूर्ण वेद इस बालक के हृदय-मन्दिरमें प्रविष्ट हुए हैं । इस बालकने पितरोंके वधके कारण निश्चयही तुम लोगोंको नष्ट करनेकी इछा की है; इसीके दिव्य तेजके बलसे तुम्हारी आंखें नष्ट हुई हैं । हे पुत्रो ! तुम लोग इस

तमिमं तात याचध्वमौर्वं मम सुतोत्तमम् ।
अयं वः प्रणिपातेन तुष्टो दृष्टीः प्रमोक्ष्यति॥ ६ ॥

वसिष्ठ उवाच — एवमुक्तास्ततः सर्वे राजानस्ते तमूरुजम् ।
ऊचुः प्रसीदेति तदा प्रसादं च चकार सः ॥ ७ ॥
अनेनैव च विख्यातो नाम्ना लोकेषु सत्तमः ।
स और्व इति विप्रर्षिरूरुं भित्त्वा व्यजायत॥ ८ ॥
चक्षूंषि प्रतिलब्ध्वा च प्रतिजग्मुस्ततो नृपाः ।
भार्गवस्तु मुनिर्मेने सर्वलोकपराभवम् ॥ ९ ॥
स चक्रे तात लोकानां विनाशाय महामनाः ।
सर्वेषामेव कार्त्स्न्येन मनः प्रवणमात्मनः ॥ १० ॥
इच्छन्नपचितिं कर्तुं भृगूणां भृगुनन्दनः ।
सर्वलोकविनाशाय तपसा महतैधितः ॥ ११ ॥
तापयामास ताँल्लोकान्सदेवासुरमानुषान् ।
तपसोग्रेण महता नन्दयिष्यन्पितामहान् ॥ १२ ॥
ततस्तं पितरस्तात विज्ञाय कुलनन्दनम् ।
पितृलोकादुपागम्य सर्वं ऊचुरिदं वचः ॥ १३ ॥

मेरी जांघसे पैदा हुए बालकसे प्रार्थना करो; वह तुम्हारे प्रणामसे प्रसन्न होकर आंखें दे सकता है। (१-६)

वसिष्ठ बोले, कि अनन्तर सब राजा-लोग यह बात सुनकर उस जांघसे पैदा हुए बालकसे कहने लगे, कि "प्रसन्न होवें, प्रसन्न होवें", तब और्वने प्रसन्न होकर उनको आंखें दीं। इन साधुश्रेष्ठ विप्रर्षिने उरुको भेदकर जन्म लिया था, इसलिये वह और्व नामसे लोकोंमें प्रख्यात हुए। राजोंके आंखे पाकर अपने स्थान को चले जाने पर भार्गव और्वने सर्व-लोकोंका परास्त करना निश्चय किया। (७-१०)

हे बेटा! भृगुवंशके शत्रुओंको नष्ट करनेको चाहनेवाले महानुभाव भृगुनन्दन ओर्वने सर्वलोक नष्ट करनेके लिये कठोर तपस्यामें नियुक्त होकर अपने मनको संपूर्ण रूपसे निविष्ट किया। यह सोच-कर कि "पितामहोंको आनन्द पहुंचावेंगे" कठोर तपसे सुर, असुर और नर इन सब लोगोंको तापित करने लगे। हे बेटा। अनन्तर उनके सब पितर लोग यह जानकर पितृलोकोंसे आन करके कुलके आनन्द देनेवाले, और्वसे बोले, कि हे पुत्र और्व! तुम तपोबलसे कठोर

पितर ऊचुः— औौर्व दृष्टः प्रभावस्ते तपसोग्रस्य पुत्रक ।
प्रसादं कुरु लोकानां नियच्छ क्रोधमात्मनः ॥ १४ ॥
नाऽनीशैर्हि तदा तात भृगुभिर्भावितात्मभिः ।
वधो ह्युपेक्षितः सर्वैः क्षत्रियाणां विहिंसताम् ॥ १५ ॥
आयुषा विप्रकृष्टेन यदा नः खेद आविशत् ।
तदाऽस्माभिर्वधस्तात क्षत्रियैरीप्सितः स्वयम् १६ ॥
निखातं यच्च वै वित्तं केनचिद्भृगुवेश्मनि ।
वैरायैव तदा न्यस्तं क्षत्रियान्कोपयिष्णुभिः ॥ १७ ॥
किं हि वित्तेन नः कार्यं स्वर्गेप्सूनां द्विजोत्तम ।
यदस्माकं धनाध्यक्षः प्रभूतं धनमाहरत् ॥ १८ ॥
यदा तु मृत्युरादातुं न नः शक्नोति सर्वशः ।
तदास्माभिरयं दृष्ट उपायस्तात संमतः ॥ १९ ॥
आत्महा च पुमांस्तात न लोकाँल्लभते शुभान् ।
ततोऽस्माभिः समीक्ष्यैवं नात्मनात्मा निपातितः २०
न चैतन्नः प्रियं तात यदिदं कर्तुमिच्छसि ।
नियच्छेदं मनः पापात्सर्वलोकपराभवात् ॥ २१ ॥

हुए हो, तुम्हारा प्रभाव हमने प्रत्यक्ष किया है; अब तुम सम्पूर्ण लोकों पर प्रसन्न होओ। अपने क्रोधको त्याग दो। (११-१४)

पहिले जब क्षत्रियोंने भार्गवोंकी हिंसा की थी, तब जितेन्द्रिय भार्गवोंने अपने वधको तुच्छ समझा था; वे उनके प्रति-विधान करनेमें असमर्थ नहीं थे। आयु बहुत बढ जानेसे जब हमको क्लेश होने लगा, तब हमने स्वयं ही क्षत्रियों से मारे जानेकी अभिलाषा की थी। इस लिये भार्गवोंने घरमें धन गाडकर उनको क्रोधित किया था। हे द्विजोत्तम! हम स्वर्ग चाहनेवाले हैं, हमको धनसे क्या प्रजोजन है, कुबेरने हमारे लिये बहुत धन बटोर रखा है। जब हमने देखा, कि मृत्यु किसी प्रकार हमको ले नहीं सकी, तब हमने इस उपायको अच्छा समझा; हे बेटा! आत्मघाती पुरुष शुभलोक नहीं पाता है, इसकी आलोचना कर हमने आत्मघात नहीं किया था। (१५—२०)

हे बेटा! तुमने जो कर्म करनेकी इच्छा की है, वह हमारा प्रिय नहीं है! अतएव तुम सर्वलोकोंके परास्त करनेकी इच्छा रूपी पाप कर्मसे मनको निवृत्त

मा वधीः क्षत्रियांस्तात न लोकान्सप्त पुत्रक।
दूषयन्तं तपस्तेजः क्रोधमुत्पतितं जहि ॥ २२॥ [७०१४]

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यामादिपर्वणि चैत्ररथपर्व—
ण्यौर्वंवारण एकाशीत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १८१ ॥

और्व उवाच — उक्तवानस्मि यां क्रोधात्प्रतिज्ञां पितरस्तदा।
सर्वलोकविनाशाय न सा मे वितथा भवेत् ॥ १ ॥
वृथारोषप्रतिज्ञो वै नाऽहं भवितुमुत्सहे ।
अनिस्तीर्णो हि मां रोषो दहेदग्निरिवाऽरणिम् ॥ २ ॥
यो हि कारणतः क्रोधं संजातं क्षन्तुमर्हति ।
नाऽलं स मनुजः सम्यक्त्रिवर्गं परिरक्षितुम् ॥ ३ ॥
अशिष्टानां नियन्ता हि शिष्टानां परिरक्षिता।
स्थाने रोषः प्रयुक्तः स्यान्नृपैः सर्वजिगीषुभिः ॥ ४ ॥
अश्रौषमहमूरुस्थो गर्भशय्यागतस्तदा ।
आरावं मातृवर्गस्य भृगूणां क्षत्रियैर्वधे । ५ ॥
संहारो हि यदा लोके भृगूणां क्षत्रियाधमैः ।
आगर्भोच्छेदनात्क्रान्तस्तदा मां मन्युराविशत् ॥ ६ ॥

करो। हे पुत्र! तुम तपके तेजसे दूषित इस जन्मे क्रोधको त्याग दो, सातों लोक तो दूरकी बात है, क्षत्रियोंकोभी नष्ट मत करना। (२१-२२) [७०२४]

आदिपर्व में एकसौ एकासी अध्याय समाप्त।

आदिपर्वमें एकसौ बयासी अध्याय।

और्व बोले, कि हे पितरो! मैंने क्रोधित होकर सर्व लोकोंके विनाशके लिये जो प्रतिज्ञा की है, वह कभी व्यर्थ नहीं होगी; मैं व्यर्थ क्रोध और व्यर्थ प्रतिज्ञा करना नहीं चाहता। यदि मैं इस प्रतिज्ञा को पूरी न करूं, तो क्रोधकी आग मुझको इस प्रकार जलावेगी, कि जैसे अग्नि वनको जलाता है। क्रोध किसी कारणसे आजाय, तो जो उसको रोक लेता है वह कभी पूरी रीतिसे धर्म अर्थ काम इन तीन वर्गोंको पालन नहीं कर सकता है और सर्वजय चाहनेवाले भूप भी विशेष विशेष स्थानमें क्रोध दिखावें, तो उस क्रोधसे दुष्टका शासन और सुजनका पालन होता है। (१—४)

पहिले क्षत्रियोंने जब भार्गवोंको नष्ट किया था, तब मैंने उरुके भीतर गर्भशय्या पर लेटे रहकर भार्गवोंकी चिल्लाहट सुनी थी। जब क्षत्रिय-कुलपांशु लोग गर्भ में स्थित बालक तक सब भार्गवों

[Registered No. B. 1819.]

अंक १०

महाभारत।

(भाषा--भाष्य--समेत)

संपादक — श्रीपाद दामोदर सातवळेकर.
स्वाध्याय मंडल, औंध (जि. सातारा)

१२अंकोंका मूल्य म.आ.से. ६) वी.पी.से ७) विदेशके लिये ८)

महाभारतके नियम।

(१) महाभारत मूल और भाषांतर प्रति अंकमें सौ पृष्ठ प्रकाशित होगा।

(२)इसमें मूल श्लोक और उसका सरल भाषानुवाद होगा। महाभारत की समालोचना प्रतिमास वैदिक धर्म मासिक में प्रकाशित होती रहेगी और पर्व समाप्तिके पश्चात् पुस्तक रूपसेभी वह ग्राहकों को मिल जायगी।

(३)भूमिका रूप इस विस्तृत लेखमें धार्मिक, सामाजिक, राजकीय तथा अन्य दृष्टियोंसे परिपूर्ण विवरण होगा, तात्पर्य यह भूमिका का विस्तृत लेख भारतकालीन वस्तुस्थितिका पूर्ण रीतिसे निदर्शक होगा। यह लेख हरएक पर्व छपनेके पश्चात ही ग्राहकों को मिल जायगा।

(४)संपूर्ण महाभारतके मुख्य प्रसंगों के सौ चित्र इस ग्रंथमें दिये जांयगे। उन में प्रतिपर्व एक चित्र रंगीन भी होगा। इसके अतिरिक्त उस समयकी भूगोलिक अवस्था बताने वाले कई नकशे दिये जांयगे।

(५)इसके अतिरिक्त ग्राम,नगर,प्रांत, और देशोंके नाम, जातिवाचक नाम, तथा अन्य नामोंका पूर्ण परिचय देनेवाली विविध सूचियां भी दी जांयगी।

मूल्य।

(६) बारह अंकोंका अर्थात १२०० पृष्ठोंका मूल्य मनी आर्डर से ६)छः रु. होगा और वी.पी.से ७.) रु. होगा, यह मूल्य वार्षिक मूल्य नहीं है, परंतु १२०० पृष्ठोंका मूल्य है।

(७)बहुधा प्रतिमास १०० पृष्ठोंका एक अंक प्रकाशित होगा, परंतु संभव हुआ तो अधिक अंक भी प्रसिद्ध होंगे।

(८)प्रत्येक अंक तैयार होते ही ग्राहकों के पास भेजा जायगा। यदि किसीको न मिला, तो उनकी सूचना अगला अंक मिलते ही आनी चाहिये। जिनकी सूचना अगला अंक मिलते ही आ जायगी उनको ही वह न मिला हुआ अंक पुनः भेजा जायगा। परंतु जिनकी सूचना उक्त समयमें नहीं आवेगी उनको ।।।=)आनेका मूल्य आनेपर, संभव हुआ तो ही अंक भेजा जायगा।

(९)सब ग्राहक अपने अपने अंक संभाल कर रखें और चार अथवा पांच महिनों के पश्चात् अपने अंकोंकी जिल्द बनवा लें जिससे अंक गुम होनेकी संभावना नहीं होगी। दो मास के पश्चात् किसी पुराने ग्राहक को पिछला अंक मूल्य देनेपरभी मिलेगा नहीं क्योंकि एक अंक कम होनेसे

संपूर्णकोशाः किल मे मातरः पितरस्तथा ।
भयात्सर्वेषु लोकेषु नाऽधिजग्मुः परायणम् ॥ ७ ॥
तान्भृगूणां यदा दारान्कश्चिन्नाऽभ्युपपद्यत ।
माता तदा दधारेयमूरुणैकेन मां शुभा ॥ ८ ॥
प्रतिषेद्धा हि पापस्य यदा लोकेषु विद्यते ।
तदा सर्वेषु लोकेषु पापकृन्नोपपद्यते ॥ ९ ॥
यदा तु प्रतिषेद्धारं पापो न लभते क्वचित् ।
तिष्ठन्ति बहवो लोके तदा पापेषु कर्मसु ॥ १० ॥
जानन्नपि च यः पापं शक्तिमान्न नियच्छति ।
ईशः सन्सोऽपि तेनैव कर्मणा संप्रयुज्यते ॥ ११ ॥
राजभिश्चेश्वरैश्चैव यदि वै पितरो मम ।
शक्तैर्न शकितास्त्रातुमिष्टं मत्वेह जीवितम् ॥ १२ ॥
अत एषामहं क्रुद्धो लोकानामीश्वरो ह्यहम् ।
भवतां च वचो नाऽलमहं समभिवर्तितुम् ॥ १३ ॥
ममाऽपि चेद्भवेदेवमीश्वरस्य सतो महत् ।
उपेक्षमाणस्य पुनर्लोकानां किल्बिषाद्भयम्॥ १४ ॥

को नष्ट करने लगे, तभीसे मैं क्रोधित हो गया। मेरे पितृगण और पूर्णगर्भ-वती माता जब शोकसे विकल और भय से कातर हुई थीं तब तीनों लोकमें किसीने उनकी रक्षा नहीं की थी। जब किसीने भृगुपत्नियोंकी रक्षा नहीं की, तब मेरी शुभ लक्षणयुक्ता इस माताने एक उरुसे मुझको धारणकर रखा था। (५-८)

देखो, इस भूमण्डलमें एक मनुष्य पाप कर्म का नष्ट करनेवाला रहे, तो कोई भी पाप कर नहीं सकता, जो लोकोंमें कोई पापकर्मका दण्ड करनेवाला नहीं रहे, तो बहुतेरे पापकर्ममें प्रवृत्त होते हैं। जो जन शक्तिमान और पाप रोकने योग्य होने परभी जान बूझकर पापकर्म नहीं रोकता है, वह उस पापमें लिप्त होता है। पर राजालोग और समर्थजनगण उस पापकर्मके रोकनेकी सामर्थ रखने परभी इस लोकमें अपने जीवनको अभीष्ट जानकर मेरे पितरोंकी रक्षा नहीं कर सके; मैंने इसी हेतु क्रोधित होकर उन सब लोगोंके उस पापकर्मका प्रतिवि-धान करनेका उद्योग किया है,सो आप की आज्ञा मान नहीं सकता। (९-१३)

मैं प्रतिविधानके योग्य होकरकेभी यदि प्रतिविधानका प्रयत्न न करूं, तो

यश्चाऽयं मन्युजो मेऽग्निर्लोकानादातुमिच्छति ।
दहेदेष च मामेव निगृहीतः स्वतेजसा ॥ १५ ॥
भवतां च विजानामि सर्वलोकहितेप्सुताम् ।
तस्माद्विधध्वं यच्छ्रेयो लोकानां मम चेश्वराः ॥ १६ ॥

पितर ऊचुः— य एष मन्युजस्तेऽग्निर्लोकानादातुमिच्छति ।
अप्सु तं मुञ्च भद्रं ते लोका ह्यप्सु प्रतिष्ठिताः॥ १७ ॥
आपोमयाः सर्वरसाः सर्वमापोमयं जगत् ।
तस्मादप्सु विमुञ्चेमं क्रोधाग्निं द्विजसत्तम ॥ १८ ॥
अयं तिष्ठतु ते विप्र यदीच्छसि महोदधौ ।
मन्युजोऽग्निर्दहन्नापो लोका ह्यापोमयाः स्मृताः ॥१९॥
एवं प्रतिज्ञा सत्येयं तवाऽनघ भविष्यति ।
न चैवं सामरा लोका गमिष्यन्ति पराभवम् ॥ २० ॥

वसिष्ठ उवाच— ततस्तं क्रोधजं तात और्वोऽग्निं वरुणालये ।
उत्ससर्ज स चैवाप उपयुङ्क्ते महोदधौ ॥ २१ ॥
महद्धयशिरो भूत्वा यत्तद्वेदविदो विदुः ।

लोकोंपर फिर अत्याचारके कारण बडा भय आन पडेगा । मैंने जिस क्रोधाग्निसे लोकोंको जलानेकी इच्छा की है, यदि उसे अपने तेजसे रोक लूं, तो वह अग्नि मुझकोही जला मारेगा । हे प्रभुगण ! मैं जानता हूं, कि आप सर्व लोकोंके हित चाहनेवाले हैं, सो ऐसी आज्ञा करें, कि मेरा और सर्व लोकों का मङ्गल होवे । (१४—१६)

पितृगण बोले, कि सबही लोक जलपर प्रतिष्ठित हैं, अतएव तुम्हारा जो क्रोधाग्नि सर्वलोकोंको खालेना चाहता है तुम उसको जलमें डाल दो, तबही तुम्हारा मङ्गल होगा । हे द्विजश्रेष्ठ ! सब रस जलपूर्ण हैं,और सम्पूर्ण जगभी जल पूर्ण है, सो तुम इस क्रोधाग्नि को जलमें छोड दो,तुम्हारा क्रोधाग्नि महा समुद्रमें रहकर जलको जलाने लगेगा । हे विप्र ! जब सम्पूर्ण लोक जलपूर्ण हैं, तब तुमने जैसा संकल्प किया है, वह पूरा नहीं होगा । हे अनघ ! ऐसा होनेमे तुम्हारी प्रतिज्ञा भी सच्ची ठहरेगी और देव तथा मानवोंको परास्त भी नहीं होना पडेगा । (१७—२०)

वसिष्ठ बोले,कि अनन्तर और्वने अपने क्रोधसे उपजे हुए अग्निको समुद्रमें छोड दिया । वह अग्नि समुद्रमें रहकर जल पीया करता है । वेदके जानकार

तमग्निमुद्गिरन्वक्त्रात्पिबत्यापो महोदधौ ॥ २२ ॥
तस्मात्त्वमपि भद्रं ते न लोकान्हन्तुमर्हसि ।
पराशर परांल्लोकाञ्ज्ञानञ्ज्ञानवतां वर॥ २३ ॥[७०३७]

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यामादिपर्वणि चैत्ररथपर्वण्यौर्वोपाख्याने द्व्यशीत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १८२॥

गंधर्व उवाच — एवमुक्तः स विप्रर्षिर्वसिष्ठेन महात्मना ।
न्ययच्छदात्मनः क्रोधं सर्वलोकपराभवात्॥ १ ॥
इजे च स महातेजाः सर्ववेदविदां वरः ।
ऋषी राक्षससत्रेण शाक्तेयोऽथ पराशरः ॥ २ ॥
ततो वृद्धांश्च बालांश्च राक्षसान्स महामुनिः ।
ददाह वितते यज्ञे शक्तेर्वधमनुस्मरन् ॥ ३ ॥
न हि तं वारयामास वसिष्ठो रक्षसां वधात् ।
द्वितीयामस्य मा भाङ्क्षं प्रतिज्ञामिति निश्चयात्॥४॥
त्रयाणां पावकानां च सत्रे तस्मिन्महामुनिः ।
आसीत्पुरस्ताद्दीप्तानां चतुर्थ इव पावकः ॥ ५ ॥
तेन यज्ञेन शुभ्रेण हूयमानेन शक्तिजः ।

ब्राह्मण लोग जिस महत् वडवामुखसे ज्ञात हैं, वह अग्नि वह वडवामुख बनकर उस मुखसे लोकोंमें प्रसिद्ध वाडवाग्नि वमन करता हुआ जल पीने लगा। हे ज्ञानियों में श्रेष्ठ पराशर! तुम भी सब परलोकों से ज्ञात हो, तुम्हारा मङ्गल होवे, सर्व लोकोंका विनाश करना तुमको नहीं सोहता है! (२१–२३)[७०३७]

आदिपर्वमें एकसौ बयासी अध्याय समाप्त।

आदिपर्वमें एकसौ तिरासी अध्याय ।

गन्धर्व बोले, कि विप्रर्षि पराशरने महात्मा वासिष्ठकी यह सब बातें सुनकर अपना सर्व लोकोंको परास्त करनेका क्रोध त्याग दिया। पर वह सर्व वेदोंके जानकारोंमें श्रेष्ठ बडे तेजस्वी शक्तिपुत्र महर्षि पराशर राक्षस-यज्ञ करनेको प्रवृत हुए। अनन्तर उस महायज्ञके फैल पडने पर वह शक्तिका नष्ट होना स्मरण कर उस यज्ञमें बालकसे लेकर बूढे तक सम्पूर्ण राक्षसोंको जलाने लगे। वसिष्ठ ने यह समझ कर कि उनकी दूसरी प्रतिज्ञा भङ्ग करना उचित नहीं है, उनको राक्षस वध करनेसे नहीं रोका। महामुनि पराशर राक्षस-यज्ञमें प्रदीप्त तीनों पावकोंके सामने मानो चौथे पावक के समान सोहने लगे। (१—५)

ताद्विदीपितमाकाशं सूर्येणेव घनात्यये ॥ ६ ॥
तं वसिष्ठादयः सर्वे मुनयस्तत्र मेनिरे ।
तेजसा दीप्यमानं वै द्वितीयमिव भास्करम्॥ ७ ॥
ततः परमदुष्प्रापमन्यैरत्रिरुदारधीः ।
समापिपयिषुः सत्रं तमत्रिः समुपागमत् ॥ ८ ॥
तथा पुलस्त्यः पुलहः क्रतुश्चैव महाक्रतुः ।
तत्राऽऽजग्मुरमित्रघ्न रक्षसां जीवितेप्सया ॥ ९ ॥
पुलस्त्यस्तु वधात्तेषां रक्षसां भरतर्षभ ।
उवाचेदं वचः पार्थ पराशरमरिन्दमम् ॥ १० ॥
कच्चित्ताताऽपविघ्नं ते कच्चिन्नन्दसि पुत्रक ।
अजानतामदोषाणां सर्वेषां रक्षसां वधात् ॥ ११ ॥
प्रजोच्छेदमिमं मह्यं न हि कर्तुं त्वमर्हसि ।
नैष तात द्विजातीनां धर्मो दृष्टस्तपस्विनाम्॥ १२ ॥
शम एव परो धर्मस्तमाचर पराशर ।
अधर्मिष्ठं वरिष्ठः सन्कुरुषे त्वं पराशर ॥ १३ ॥
शक्तिं चापि हि धर्मज्ञं नाऽतिक्रान्तुमिहाऽर्हसि ।

शक्तिनन्दनने हवनयुक्त शुभ यज्ञसे इस प्रकार आकाश मण्डलको प्रदीप्त किया, कि जिस प्रकार दिवाकर बादल दूर होनेसे आकाश मण्डलको प्रकाशयुक्त करते हैं। तब वसिष्ठ आदि सम्पूर्ण महर्षि लोग अपने तेजसे जलते हुए पराशर मुनिको दूसरे प्रभाकर समझने लगे। अनन्तर उदार बुद्धियुक्त अत्रि औरोंके करनेके अयोग्य उस यज्ञको पूरा करनेकी इच्छासे उनके निकट आये। हे शत्रुनाशि ! इसके पश्चात् पुलस्त्य, पुलह, क्रतु और महाक्रतु यह सब राक्षसोंके प्राण बचानेके लिये वहां आये। (६-९)

हे भरतश्रेष्ठ! बहुत राक्षसोंके मारे जाने पर पुलस्त्य शत्रुमथन पराशरसे बोले, कि हे बेटा! तुम्हारे अग्निहोत्र कार्य में विघ्न तो नहीं है? हे पुत्र! क्या तुम उन निर्दोष राक्षसोंको जो तुम्हारे पिताके वधके विषयमें कुछ नहीं जानते, मार कर आनन्द प्राप्त कर रहे हो? ऐ बेटा! मेरी प्रजाओंको इस प्रकार उखाडना तुमको नहीं चाहिये! तपस्वी ब्राह्मणोंका धर्म ऐसा नहीं है। हे पराशर! शान्ति ही उनका परम धर्म है, तुम वह धर्म करो। तुमने निष्पाप होकरके अधर्म युक्त कर्ममें हाथ डाला है! यह कर्म

प्रजायाश्च मखोच्छेदं न चैवं कर्तुमर्हसि ॥ १४ ॥
शापाद्धि शक्तेर्वासिष्ठ तदा तदुपपादितम् ।
आत्मजेन स दोषेण शक्तिर्नीत इतो दिवम् १५ ॥
न हि तं राक्षसः कश्चिच्छक्तो भक्षयितुं मुने ।
आत्मनैवात्मनस्तेन सृष्टो मृत्युस्तदाऽभवत् ॥ १६ ॥
निमित्तमात्रस्तत्राऽऽसीद्विश्वामित्रः पराशर ।
राजा कल्माषपादश्च दिवमारुह्य मोदते ॥ १७ ॥
ये च शक्त्यवराः पुत्रा वसिष्ठस्य महामुने ।
ते च सर्वे मुदा युक्ता मोदन्ते सहिताः सुरैः । १८ ॥
सर्वमेतद्वसिष्ठस्य विदितं वै महामुने ।
रक्षसां च समुच्छेद एष तात तपस्विनाम् ॥ १९ ॥
निमित्तभूतस्त्वं चाऽत्र क्रतौ वासिष्ठनन्दन ।
तत्सत्रं मुञ्च भद्रं ते समाप्तमिदमस्तु ते ॥ २० ॥
गन्धर्व उवाच— एवमुक्तः पुलस्त्येन वसिष्ठेन च धीमता ।
तदा समापयामास सत्रं शाक्तो महामुनिः॥ २१ ॥
सर्वराक्षससत्राय संभृतं पावकं तदा ।

करके अपने पिता शक्तिको लङ्घन करना तुमको नहीं सोहता । (१०—१४)

हे वासिष्ठ! विना कारण मेरी प्रजाओं को सम्पूर्ण उखाडना तुमको नहीं चाहिये; क्योंकि उस कालमें तुम्हारे पिताका जो अनिष्ट हुआ था, वह केवल उनके अपनेही शापसे हुआ था, वह अपनेही दोषसे इस लोकसे स्वर्गको सिधारे हैं। हे मुने! तुम्हारे पिताको खालेना किसी राक्षसकी सामर्थमें नहीं था, पर उन्होंने आपही अपनी मृत्यु रची थी, विश्वामित्र इस विषयमें केवल निमित्तही बने थे । हे पराशर! अब शक्ति और राजा कल्माषपाद स्वर्गको सिधार कर सुख लूट रहे हैं और महामुनि वसिष्ठके शक्तिसे छोटे जो सब पुत्र थे, वे भी देवोंके साथ परम आनन्द भोग रहे हैं; हे महामुने! वसिष्ठ सब जानते हैं । (१४—१९)

हे वाशिष्ठनन्दन ! इस यज्ञमें निर्दोष राक्षसोंका जो नाश होरहा है, तुम केवल उस के निमित्तही बन रहे हो; अतएव तुम यह यज्ञ त्याग दो, तुम्हारा मंगल होवे; अब यह यज्ञ पूरा करो । गन्धर्व बोले, कि बुद्धिमान पुलस्त्य और वासिष्ठ के महामुनि शक्तिनन्दन को ऐसा कहने पर उन्होंने तब उस यज्ञको पूरा किया

उत्तरे हिमवत्पार्श्वे उत्ससर्ज महावने ॥ २२ ॥
स तत्राऽद्यापि रक्षांसि वृक्षानश्मान एव च।
भक्षयन्दृश्यते वह्निः सदा पर्वणि पर्वणि ॥ २३ ॥ [७०६०]

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यामादिपर्वणि चैत्ररथपर्वण्यौर्वोपाख्याने त्र्यशीत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १८३ ॥

अर्जुन उवाच— राज्ञा कल्माषपादेन गुरौ ब्रह्मविदां वरे ।
कारणं किं पुरस्कृत्य भार्या वै संनियोजिता ॥ १ ॥
जानता वै परं धर्मं वसिष्ठेन महात्मना ।
अगम्यागमनं कस्मात्कृतं तेन महर्षिणा ॥ २ ॥
अधर्मिष्ठं वसिष्ठेन कृतं चापि पुरा सखे ।
एतन्मे संशयं सर्वं छेत्तुमर्हसि पृच्छतः ॥ ३ ॥
गन्धर्व उवाच — धनञ्जय निबोधेदं यन्मां त्वं परिपृच्छसि ।
वसिष्ठं प्रति दुर्धर्ष तथा मित्रसहं नृपम् ॥ ४ ॥
कथितं ते मया सर्वं यथा शप्तः स पार्थिवः ।
शक्तिना भरतश्रेष्ठ वासिष्ठेन महात्मना ॥ ५ ॥
स तु शापवशं प्राप्तः क्रोधपर्याकुलेक्षणः ।
निर्जगाम पुराद्राजा सहदारः परन्तपः ॥ ६ ॥

और सम्पूर्ण राक्षसोंने यज्ञके लिये जो अग्नि प्रज्वलित हुआ था उसको हिमाचल की उत्तर ओर बडे वनमें छोड दिया। वहां अभीतक यह दीख पडता है, कि वह अग्नि हर त्योहारमें राक्षस, वृक्ष और पत्थरोंको खालेता है। (२०-२३)[७०६०]

आदि पर्वमें एकसौ तिरासी अध्याय समाप्त।

आदिपर्वमें एकसौ चौरासी अध्याय।

अर्जुन बोले, कि हे मित्र! राजा कल्माषपादने क्यों वेदज्ञश्रेष्ठ गुरु वासिष्ठ के प्रति स्त्रीको नियोग किया था? महात्मा महर्षि वसिष्ठभी क्यों धर्मके जानकार होकर मिलनेके अयोग्य स्त्रीसे जा मिले? क्या वह अधर्मयुक्त प्रवृत्त हुए थे? इस विषयमें मुझे शङ्का हो रही है, तुम उसे दूर करो। (१—३)

गन्धर्व बोले, कि हे दुर्द्धर्ष धनञ्जय! तुमने उस प्रजापालक राजा और वसिष्ठ के विषयमें जो कुछ पूछा, वह कहता हूं सुनो। हे भारतश्रेष्ठ! वसिष्ठपुत्र महात्मा शक्तिने जिसप्रकार शाप दिया था, वह मैंने सब सुनाया है। वह शत्रुमथन भूपाल शापग्रस्त होकर क्रोधयुक्तनेत्रसे स्त्रीके साथ नगरसे निकले; आगे निर्जन

अरण्यं निर्जनं गत्वा सदारः परिचक्रमे ।
नानामृगगणाकीर्णं नानासत्त्वसमाकुलम् ॥ ७ ॥
नानागुल्मलताच्छन्नं नानाद्रुमसमावृतम् ॥
अरण्यं घोरसंनादं शापग्रस्तः परिभ्रमन् ॥ ८ ॥
स कदाचित्क्षुधाविष्टो मृगयन्भक्ष्यमात्मनः ।
ददर्श सुपरिक्लिष्टः कस्मिंश्चिन्निर्जने वने ॥ ९ ॥
ब्राह्मणं ब्राह्मणीं चैव मिथुनायोपसंगतौ ।
तौ तं वीक्ष्य सुवित्रस्तावकृतार्थौ प्रधावितौ ॥ १० ॥
तयोः प्रद्रवतोर्विप्रं जग्राह नृपतिर्बलात् ।
दृष्ट्वा गृहीतं भर्तारमथ ब्राह्मण्यभाषत ॥ ११ ॥
शृणु राजन्मम वचो यत्त्वां वक्ष्यामि सुव्रत।
आदित्यवंशप्रभवस्त्वं हि लोके परिश्रुतः ॥ १२ ॥
अप्रमत्तः स्थितो धर्मे गुरुशुश्रूषणे रतः ।
शापोपहत दुर्धर्ष न पापं कर्तुमर्हसि ॥ १३ ॥
ऋतुकाले तु संप्राप्ते भर्तृव्यसनकर्शिता ।
अकृतार्था ह्यहं भर्त्रा प्रसवार्थं समागता ॥ १४ ॥
प्रसीद नृपतिश्रेष्ठ भर्ताऽयं मे विसृज्यताम् ।

वनमें जाकर स्त्रीके साथ घूमने लगे। शापग्रस्त भूपाल अनेक प्रकारके मृगोंसे भरे, भांति भांतिके वनके जीवों से पूरे, नाना वृक्ष और गुल्म लताओंसे ढंपे और घोर शब्दसे गूंजते हुए उस बडे वनमें घूमते हुए बहुत क्षुधित हुए; वह भोजनकी सामग्री ढूंढते हुए थक गये थे, कि ऐसे समयम देखा, कि उस वनके एक निराले स्थानमें एक ब्राम्हण और ब्राह्मणी मैथुनकर्ममें प्रवृत्त हैं। वे राजाको देखकरके ही काम पूरा न होने परभी अति भयभीत चित्तसे वहांसे उठ भागे। (४—१०)

राजाने उनके पीछे दौड कर उस दम्पतिमेंसे ब्राह्मणको पकडा। अनन्तर ब्राह्मणी पतिको पकडे जाते देखकर बोली, कि हे सुव्रत महाराज! मैं जो कहती हूं सुनो। यह सर्वलोकोंमें प्रसिद्ध है, कि तुमने सूर्यवंशमें जन्म लिया है और प्रमत्त न होकर गुरुकी सेवा भी किया करते हो। हे दुर्द्धर्ष! अब तुम शापग्रस्त हुए हो, इसीसे तुमको ऐसा पाप करना नहीं चाहिये; इस समय मेरा ऋतुकाल आजाने पर मैं पतिसे मिल

एवं विक्रोशमानायास्तस्यास्तु स नृशंसवत्॥ १५ ॥
भर्तारं भक्षयामास व्याघ्रो मृगमिवेप्सितम्।
तस्याः क्रोधाभिभूताया यान्यश्रूण्यपतन्भुवि॥ १६ ॥
सोऽग्निः समभवद्दीप्तस्तं च देशं व्यदीपयत्।
ततः सा शोकसंतप्ता भर्तृव्यसनकर्शिता ॥ १७ ॥
कल्माषपादं राजर्षिमशपद्ब्राह्मणी रुषा ।
यस्मान्ममाऽकृतार्थायास्त्वया क्षुद्र नृशंसवत्॥ १८॥
प्रेक्षन्त्या भक्षितो मेऽद्य प्रियो भर्ता महायशाः ।
तस्मात्त्वमपि दुर्बुद्धे मच्छापपरिविक्षतः ॥ १९ ॥
पत्नीमृतावनुप्राप्य सद्यस्त्यक्षसि जीवितम् ।
यस्य चर्षेर्वसिष्ठस्य त्वया पुत्रा विनाशिताः॥ २० ॥
तेन संगम्य ते भार्या तनयं जनयिष्यति ।
स ते वंशकरः पुत्रो भविष्यति नृपाधम ॥ २१ ॥
एवं शप्त्वा तु राजानं सा तमाङ्गिरसी शुभा ।
तस्यैव संनिधौ दीप्तं प्रविवेश हुताशनम् ॥ २२ ॥
वसिष्ठश्च महाभागः सर्वमेतदवैक्षत ।

रही थी, पर मेरा मनोरथ सफल नहीं हुआ है; अतएव हे भूपश्रेष्ठ ! प्रसन्न होओ, मेरे पतिको छोड दो। (११—१५)

ब्राह्मणी यह सब कहती हुई रोने लगी, पर राजाने निर्दयी-पनसे उसके पतिको इस प्रकार खा लिया, कि जैसे व्याघ्र मृगको खाता है। तब ब्राह्मणीने क्रोधके मारे भूमि पर जो आंसू गिराये उनसे जलती हुई आग बनकर उस स्थानमें उजाला होगया; आगे पतिके विछोहसे कातर, शोकसे विकल उस ब्राह्मणीने क्रोधके मारे राजर्षि कल्माष-पादको यह कह शाप दिया, कि रे नीच ! मिलनके सुखसे मेरा मनोरथ सफल होते न होतेही तुमने कुबुद्धिसे निष्ठुरके समान मेरे सामने ही मेरे प्यारे अति यशोवन्त पतिको मार डाला, सो मेरे शापसे तुम घायल होकर ऋतुकालमें स्त्रीसे मिल करकेही उसीक्षण प्राण छोडोगे। तुमने जिन महर्षिके पुत्रोंको नष्ट किया है, तुम्हारी स्त्री उन्हींसे मिल कर पुत्र प्रसव करेगी। रे नृपाधम ! उसी पुत्रसे तेरे वंशकी रक्षा होगी। अङ्गिरा कुलसे उत्पन्न शुभ लक्षणयुक्त वह ब्राह्मणी राजाको यह शाप देकर

ज्ञानयोगेन महता तपसा च परन्तप ॥ २३ ॥
मुक्तशापश्च राजर्षिः कालेन महता ततः ।
ऋतुकालेऽभिपतितो मदयन्त्या निवारितः ।
न हि सस्मार स नृपस्तं शापं काममोहितः ॥ २४ ॥
देव्याः सोऽथ वचः श्रुत्वा संभ्रान्तो नृपसत्तमः ।
तं शापमनुसंस्मृत्य पर्यतप्यद्भृशं तदा ॥ २५ ॥
एतस्मात्कारणाद्राजा वसिष्ठं संन्ययोजयत् ।
स्वदारेषु नरश्रेष्ठ शापदोषसमन्वितः ॥ २६ ॥ [७०८६]

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यामादिपर्वणि चैत्ररथपर्वणि वासिष्ठोपाख्याने चतुरशीत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १८४ ॥

अर्जुन उवाच — अस्माकमनुरूपो वै यः स्याद्गन्धर्व वेदवित् ।
पुरोहितस्तमाचक्ष्व सर्वं हि विदितं तव ॥ १ ॥
गन्धर्व उवाच — यवीयान्देवलस्यैष वने भ्राता तपस्यति ।
धौम्य उत्कोचके तीर्थे तं वृणीध्वं यदीच्छथ ॥ २ ॥
वैशम्पायन उवाच- ततोऽर्जुनोऽस्त्रमाग्नेयं प्रददौ तद्यथाविधि ।
गन्धर्वाय तदा प्रीतो वचनं चेदमब्रवीत् ॥ ३ ॥

उनके सामनेही जली हुई आगमें जा घुसीं । हे शत्रुमथन ! महाभाग वसिष्ठ तपोबलके कारण ज्ञानचक्षुसे वह सब जान गये । (१९—२३)

अनन्तर बहुत दिन पीछे राजर्षि शापसे मुक्त हुए । आगे एक समय मदयन्ती नाम्नी उनकी राणीका ऋतु-काल आन पहुंचा । राजाके उनकी ऋतु रक्षाके लिये उद्यत होने पर मदय-न्तीने उनको रोका । राजा कामसे मोहित होने परभी शापकी बातको सुन-कर बहुत घबराये; और उस शापको स्मरण करतेही बहुत दुःखी हुए । हे नरवर ! शापग्रस्त राजाने इसी हेतु अपनी राणीकी ऋतुरक्षाके लिये वसिष्ठको नियुक्त किया था । (२४-२६) [७०८६]

आदिपर्वमें एकसौ चौरासी अध्याय समाप्त ।

आदिपर्वमें एकसौ पचासी अध्याय ।

अर्जुन बोले कि हे गन्धर्व ! तुम सब जानते हो , सो कहो , कि वेद जानने-वाले कौन ब्राह्मण हमारे पुरोहित होनेके योग्य हैं । गन्धर्व बोले , कि वनके भीतर उत्कोचक नाम तीर्थमें देवलके छोटे भाई धौम्य नामक ऋषि तप कर रहे हैं, तुम चाहो तो उनको पुरोहित बनाओ । वैशम्पायन बोले, कि अनन्तर अर्जुन

त्वय्येव तावत्तिष्ठन्तु हया गन्धर्वसत्तम ।
कार्यकाले ग्रहीष्यामः स्वस्ति तेऽस्त्विति चाऽब्रवीत् ४
तेऽन्योन्यमभिसंपूज्य गन्धर्वः पाण्डवाश्च ह ।
रम्याद्भागीरथीतीराद्यथाकामं प्रतस्थिरे ॥ ५ ॥
तत उत्कोचकं तीर्थं गत्वा धौम्याश्रमं तु ते ।
तं वव्रुः पाण्डवा धौम्यं पौरोहित्याय भारत ॥ ६ ॥
तान्धौम्यः प्रतिजग्राह सर्ववेदविदां वरः ।
वन्येन फलमूलेन पौरोहित्येन चैव ह ॥ ७ ॥
ते समाशंसिरे लब्धां श्रियं राज्यं च पाण्डवाः ।
मातृषष्ठास्तु ते तेन गुरुणा संगतास्तदा ॥ ८ ॥
ब्राह्मणं तं पुरस्कृत्य पाञ्चालीं च स्वयंवरे ॥ ९ ॥
पुरोहितेन तेनाऽथ गुरुणा संगतास्तदा ।
नाथवन्तमिवाऽऽत्मानं मेनिरे भरतर्षभाः ॥ १० ॥
स हि वेदार्थतत्त्वज्ञस्तेषां गुरुरुदारधीः ।
तेन धर्मविदा पार्था याज्या धर्मविदः कृताः ११ ॥
वीरांस्तु स हि तान्मेने प्राप्तराज्यान्स्वधर्मतः ।
बुद्धिवीर्यबलोत्साहैर्युक्तान्देवानिव द्विजः ॥ १२ ॥

प्रसन्न होकर उन गन्धर्वको विधिपूर्वक अग्न्यस्त्र देकर बोले, कि तुम्हारा मङ्गल होवे, तुम्हारे दिये हुए घोडे अभी तुम्हारेही पास रहें, जब काम पडेगा, तब लूंगा। अनन्तर पाण्डवगण और गन्धर्व एक दूसरेकी अभ्यर्थना करके रमणीय भागीरथी तटसे अपने अपने मनमाने स्थानोंको पधारे। (१–५)

हे भारत ! अनन्तर पाण्डवोंने उत्कोचक तीर्थमें धौम्यके आश्रममें जाकर उनको पुरोहित बनाया। वेदज्ञोंमें श्रेष्ठ धौम्यने वनके फलमूलोंसे उनको पूजित कर पुरोहित होना स्वीकार किया। माता के साथ पाण्डवोंने उन ब्राह्मणको गुरुकी भांति पुरस्कृत कर ऐसा समझ लिया, कि राजलक्ष्मी और स्वयंवर स्थानमें पाञ्चाली मिल गयी। वे उन गुरु रूपी पुरोहितसे मिल कर अपनेको नाथयुक्त समझने लगे; क्योंकि वेदार्थतत्त्व जाननेवाले उदार बुद्धियुक्त वह ऋषि उनके गुरु हुए। (६—११)

धर्म जाननेवाले, सर्व विषयोंके जानकार उन द्विजने भी उनके गुरु स्वरूप नियुक्त होकर उनको यजमान बनाया।

कृतस्वस्त्ययनास्तेन ततस्ते मनुजाधिपाः ।
मेनिरे सहिता गन्तुं पाञ्चाल्यास्तं स्वयंवरम् ॥१३॥ [७०९९]

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यामादिपर्वणि चैत्ररथपर्वणि
धौम्यपुरोहितकरणे पञ्चाशीत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १८५ ॥
समाप्तं च चैत्ररथपर्व।

अथ स्वयंवरपर्व ।

वैशम्पायन उवाच—ततस्ते नरशार्दूला भ्रातरः पञ्च पाण्डवाः ।
प्रययुर्द्रौपदीं द्रष्टुं तं च देशं महोत्सवम् ॥ १ ॥
ते प्रयाता नरव्याघ्राः सह मात्रा परन्तपाः ।
ब्राह्मणान्ददृशुर्मार्गे गच्छतः सङ्गतान्बहून् ॥ २ ॥
त ऊचुर्ब्राह्मणा राजन्पाण्डवान्ब्रह्मचारिणः ।
क्व भवन्तो गमिष्यन्ति कुतो वाऽभ्यागता इह ॥३ ॥

युधिष्ठिर उवाच—आगतानेकचक्रायाः सोदर्यानेकचारिणः ।
भवन्तो वै विजानन्तु सहमात्रा द्विजर्षभाः ॥ ४ ॥

ब्राह्मणा ऊचुः— गच्छताऽद्यैव पञ्चालान्द्रुपदस्य निवेशने ।
स्वयंवरो महांस्तत्र भाविता सुमहाधनः ॥ ५ ॥

उन्होंने बुद्धि, वीर्य, बल और उत्साह युक्त देवोंके सदृश उन वीरोंको अपने धर्मके अनुसार राज्य पाये हुए समझा। उन ब्राह्मणके स्वस्त्ययन करने पर मानव श्रेष्ठ पाण्डवोंने एकत्र पाञ्चाल देशको स्वयंवर स्थानमें जाना निश्चय किया। (११—१३) [७०९९]

आदिपर्वमें एकसौ पचासी अध्याय और
चैत्ररथ पर्व समाप्त।

आदिपर्वमें एकसौ छियासी अध्याय
और स्वयंवर पर्व।

श्री वैशम्पायनजी बोले, कि अनन्तर पुरुषश्रेष्ठ पांचों पाण्डव महोत्सव युक्त पाञ्चाल देश और पाञ्चालीको देखनेको चले। शत्रुमथन, नरव्याघ्र भाइयोंने माताके साथ जाते समय पथमें एक साथ मिल कर अनेक ब्राह्मणोंको चलते देखा। हे राजन्! उन ब्रह्मचारी ब्राह्मणोंने पाण्डवोंसे कहा, कि आप कहां जायंगे? कहांसे आते हैं? युधिष्ठिरने उत्तर दिया हम पांचों भाई माताके साथ मिलकर घूमा करते हैं; अब एकचक्रा नगरीसे आरहे हैं। (१–४)

ब्राह्मणोंने कहा, कि आप लोग आजही पाञ्चाल नगरमें राजा द्रुपदके घरको जायं; वहां बहुत धन खर्च कर भारी

एकसार्थप्रयाताः स्म वयं तत्रैव गामिनः ।
तत्र ह्यद्भुतसंकाशो भविता सुमहोत्सवः ॥ ६ ॥
यज्ञसेनस्य दुहिता द्रुपदस्य महात्मनः ।
वेदीमध्यात्समुत्पन्ना पद्मपत्रनिभेक्षणा ॥ ७ ॥
दर्शनीयाऽनवद्याङ्गी सुकुमारी मनस्विनी ।
धृष्टद्युम्नस्य भगिनी द्रोणशत्रोः प्रतापिनः ॥ ८ ॥
यो जातः कवची खड्गी सशरः सशरासनः।
सुसमिद्धे महाबाहुः पावके पावकोपमः ॥ ९ ॥
स्वसा तस्याऽनवद्याङ्गी द्रौपदी तनुमध्यमा।
नीलोत्पलसमो गन्धो यस्याः क्रोशात्प्रवाति वै१०॥
यज्ञसेनस्य च सुतां स्वयंवरकृतक्षणाम् ।
गच्छामो वै वयं द्रष्टुं तं च दिव्यं महोत्सवम्११॥
राजानो राजपुत्राश्च यज्वानो भूरिदक्षिणाः।
स्वाध्यायवन्तः शुचयो महात्मानो यतव्रताः॥१२॥
तरुणा दर्शनीयाश्च नानादेशसमागताः ।
महारथाः कृतास्त्राश्च समुपैष्यन्ति भूमिपाः॥१३॥

भीड भडाके से स्वयंवर होगा। हमभी वहां जा रहे हैं, चलें एकही साथ जायं, वह आश्चर्य महोत्सव होगा, पांचालनाथ महात्मा यज्ञसेन राजा दुरुपदकी सुकुमारी मनस्विनी देखनेके योग्य उस पुत्रीने वेदीमेंसे जन्म लिया हैं, जिसकी आंखे पद्मकी भांति हैं, जिसका कोई अङ्ग निन्दनीय नहीं है और जिसके नील पद्मसी गन्ध कोस भरकी दूरीसे भी अनुभव होती हैं, स्वयंवरा होना निश्चय किया है। वह सुन्दरी अनिंदितांगी उस महाभुज अग्नि समान प्रतापी धृष्टद्युम्नकी बहिन है जिसने द्रोणको मारनेके लिये जलती हुई आगसे खड्ग, कवच, शर, शरासन आदिके साथ जन्म लिया है। (५-११)

हम उस द्रौपदी और महोत्सवको देखनेको जाते हैं। उस महोत्सवमें बहुत दक्षिणा देनेवाले, यज्ञशील, स्वाध्यायमें नियुक्त, पवित्र, स्वधर्मनिष्ठ, महात्मा तरुण अवस्थायुक्त सुन्दर अस्त्र विद्यामें पण्डित महारथी भूमिपालक राजालोग और राज कुमारगण अनेक देशोंसे आवेंगे! वे उस स्वयंवरके स्थान पर विजयकी आशासे गौ, धन, भक्ष्य, भोज्य आदि दान करने योग्य अनेक

ते तत्र विविधान्दायान्विजयार्थं नरेश्वराः ।
प्रदास्यन्ति धनं गाश्च भक्ष्यं भोज्यं च सर्वशः १४ ॥
प्रतिगृह्य च तत्सर्वं दृष्ट्वा चैव स्वयंवरम् ।
अनुभूयोत्सवं चैव गमिष्यामो यथेप्सितम् ॥ १५ ॥
नटा वैतालिकास्तत्र नर्तकाः सूतमागधाः ।
नियोधकाश्च देशेभ्यः समेष्यन्ति महाबलाः ॥ १६ ॥
एवं कौतूहलं कृत्वा दृष्ट्वा च प्रतिगृह्य च ।
सहाऽस्माभिर्महात्मानः पुनः प्रतिनिवर्त्स्यथ ॥ १७ ॥
दर्शनीयांश्च वः सर्वान्देवरूपानवस्थितान् ।
समीक्ष्य कृष्णा वरयेत्संगत्यैकतमं वरम् ॥ १८ ॥
अयं भ्राता तव श्रीमान्दर्शनीयो महाभुजः ।
नियुज्यमानो विजये संगत्या द्रविणं बहु ॥
आहरिष्यन्नयं नूनं प्रीतिं वो वर्धयिष्यति ॥ १९ ॥

युधिष्ठिर उवाच— परमं भो गमिष्यामो द्रष्टुं चैव महोत्सवम् ।
भवद्भिः सहिताः सर्वे कन्यायास्तं स्वयंवरम् ॥ २० ॥ [७११९]

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यामादिपर्वणि स्वयंवरपर्वणि पाण्डवागमने षडशीत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १८६ ॥

सामग्री सर्वप्रकारसे दान देंगे ! हम वह सब लेकर और स्वयंवर तथा महोत्सव देखनेके पीछे अपनी इच्छासे घरको लोटेंगे। स्वयंवर स्थलमें नाना देशोंसे नट-भांति भांतिके वेश धरने वाले, वैतालिक-मङ्गल गान वाले, सूत—पुराणकी कथा कहनेवाले, मागध—बलकी सूचना देनेवाले, महाबली पहलवान और नाचनेवाले आवेंगे। (१२---१६)

हे महात्माओ! आपभी दान लेकर, उस आनन्दको भोगकर फिर हमलोगोंके संग लौटना। आप सबोंको देवोंकी भांति सुन्दर देखते हैं; स्वयंवर स्थानमें आपके रहने से द्रौपदी आपको देख करके देववश आपलोगोंमेंसे श्रेष्ठ किसीको वरणभी कर सकती है । आपके इस भाईको महाभुज श्रीमान और दर्शनयोग्य कार्य कुशल देखते हैं । इनके वर किये जानेसे देववश बहुत धनभी पासकते हैं; युधिष्ठिर बोले, कि हम सब आप लोगोंके साथ द्रौपदीके उस परम महोत्सव युक्त स्वयंवरको देखने जायंगे। (१७-२०)

आदिपर्वमें एकसौ छियासी अध्याय समाप्त ७११९

वैशम्पायन उवाच—एवमुक्ताः प्रयातास्ते पाण्डवा जनमेजय ।
राज्ञा दक्षिणपञ्चालान्द्रुपदेनाऽभिरक्षितान्॥ १ ॥
ततस्तेषु महात्मानं शुद्धात्मानमकल्मषम् ।
ददृशुः पाण्डवा वीरा मुनिं द्वैपायनं तदा ॥ २ ॥
तस्मै यथावत्सत्कारं कृत्वा तेन च सत्कृताः ।
कथान्ते चाऽभ्यनुज्ञाताः प्रययुर्द्रुपदक्षयम् ॥ ३ ॥
पश्यन्तो रमणीयानि वनानि च सरांसि च ।
तत्र तत्र वसन्तश्च शनैर्जग्मुर्महारथाः ॥ ४ ॥
स्वाध्यायवन्तः शुचयो मधुराः प्रियवादिनः ।
आनुपूर्व्येण संप्राप्ताः पञ्चालान्पाण्डुनन्दनाः॥५ ॥
ते तु दृष्ट्वा पुरं तच्च स्कन्धावारं च पाण्डवाः ।
कुम्भकारस्य शालायां निवासं चक्रिरे तदा ॥ ६ ॥
तत्र भैक्ष्यं समाजह्रुर्ब्राह्मणीं वृत्तिमाश्रिताः ।
तान्संप्राप्तांस्तथा वीराञ्जज्ञिरे न नराः क्वचित्॥ ७ ॥
यज्ञसेनस्य कामस्तु पाण्डवाय किरीटिने ।
कृष्णां दद्यामिति सदा न चैतद्विवृणोति सः॥ ८ ॥

आदिपर्वमें एकसौ सतासी अध्याय।

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि हे जनमेजय! पाण्डव लोग ब्राह्मणोंसे वह सब बातें सुनकर दुरुपदके शासन किये जाते हुए दक्षिणीय पाञ्चालमें जाने लगे। पथमें पापके स्पर्शसे खाली विशुद्ध स्वभावी महात्मा मुनि द्वैपायनको देखकर विधिपूर्वक उनकी पूजा की और वे भी उनसे सत्कार किये जाकर नाना वार्त्तालापके पीछे उनकी आज्ञासे दुरुपदके भवनकी ओर चले। स्वाध्यायमें नियुक्त, अच्छे, पवित्र, सुन्दर-दर्शन, मीठी वाणी बोलनेवाले, महारथी पाण्डवगण पथमें सुन्दर सुन्दर वन और ताल देखकर उन स्थानोंमें ठहर ठहर कर धीरे धीरे चलते पाञ्चाल देशमें पहुंच गये। (१—५)

वे पाञ्चाल नगर और वहांके सेनालयको देखकर एक कुंभार के घरमें टिके रहे वहां ब्राह्मणकी चाल लेकर भिख मांग मांग पेट पालते हुए बसे रहे; तिससे यज्ञमें आये हुए उन वीरोंको किसी ने नहीं जाना। (६—७)

राजा यज्ञसेनकी सदा यह कामना थी, कि पाण्डपुत्र किरीटी अर्जुनकोही कन्या दान करें; पर उन्होंने यह बात

सोऽन्वेषमाणः कौन्तेयं पाञ्चाल्यो जनमेजय।
दृढं धनुरनायम्यं कारयामास भारत ॥ ९ ॥
यन्त्रं वैहायसं चापि कारयामास कृत्रिमम्।
तेन यन्त्रेण समितं राजा लक्ष्यं चकार सः ॥१०॥
द्रुपद उवाच— इदं सज्यं धनुः कृत्वा सज्जैरेभिश्च सायकैः।
अतीत्य लक्ष्यं यो वेद्धा स लब्धा मत्सुतामिति॥११॥
वैशम्पायन उवाच—इति स द्रुपदो राजा स्वयंवरमघोषयत् ॥ १२ ॥
तच्छ्रुत्वा पार्थिवाः सर्वे समीयुस्तत्र भारत।
ऋषयश्च महात्मानः स्वयंवरदिदृक्षवः ॥ १३ ॥
दुर्योधनपुरोगाश्च सकर्णाः कुरवो नृप ।
ब्राह्मणाश्च महाभागा देशेभ्यः समुपागमन्॥१४॥
ततोऽर्चिता राजगणा द्रुपदेन महात्मना ।
उपोपविष्टा मञ्चेषु द्रष्टुकामाः स्वयंवरम् ॥ १५ ॥
ततः पौरजनाः सर्वे सागरोद्धूतनिःस्वनाः ।
शिशुमारशिरः प्राप्य न्यविशंस्ते स्म पार्थिवाः १६
प्रागुत्तरेण नगराद्भूमिभागे समे शुभे ।

किसीसे प्रगट नहीं की। हे जनमेजय! उन्होंने कुन्तीपुत्र अर्जुनको स्मरण कर ऐसा एक दृढ चाप बनवाया, कि जिसे अर्जुनके बिना, कोई दूसरा नवा न सके, और आकाशमें स्थित एक कृत्रिम यंत्र बनाकर उस यत्रमें एक लक्ष्य जोडवाया। आगे बोले, कि जो राजा इस शरासनमें गुण चढाकर उस सजे हुए सायकसे उस यन्त्रको पार कर लक्ष्यको विद्ध कर सकेंगे, वही मेरी कन्याको लाभ करेंगे। ८-११

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि हे भारत! राजा द्रुपदके ऐसे स्वयंवर की सूचना देने पर राजालोग उसे सुनकर वहां आने लगे, और नाना देशोंसे महात्मा महर्षिलोग, महाभाग ब्राह्मणगण और कर्ण तथा दुर्योधनादि कौरव स्वयंवरके देखने के लिये आ पहुंचे। महात्मा राजा द्रुपदने उन सब भूपालोंका सत्कार किया। अनन्तर पुरवासी लोग महासमुद्रसे उठती हुई लहरकी भांति बडा कोलाहल मचाते हुए द्रौपदीके स्वयंवरको देखनेकी इच्छा से निकटकी एक एक वेदी पर बैठने लगे। राजालोग शिशुमारशिर नामके स्थानसे होकर सभामें प्रविष्ट होने लगे। (१२-१६)

नगरके ईशान कोनमें अच्छी समभूमि पर चारों ओर की देडेसे घिरी हुई

समाजवाटः शुशुभे भवनैः सर्वतो वृतः ॥ १७ ॥
प्राकारपरिखोपेतो द्वारतोरणमण्डितः ।
वितानेन विचित्रेण सर्वतः समलंकृत ॥ १८ ॥
तूर्यौघशतसंकीर्णः पराध्यागुरुधूपितः ।
चन्दनोदकसिक्तश्च माल्यदामोपशोभितः॥ १९॥
कैलासशिखरप्रख्यैर्नभस्तलविलेखिभिः ।
सर्वतः संवृतः शुभ्रैः प्रासादैः सुकृतोच्छ्रयैः॥ २०॥
सुवर्णजालसंवीतैर्मणिकुट्टिमभूषितैः ।
सुखारोहणसोपानैर्महासनपरिच्छदैः ॥ २१ ॥
स्रग्दामसमवच्छन्नैरगुरूत्तमवासितैः ।
हंसांशुवर्णैर्बहुभिरायोजनसुगन्धिभिः ॥ २२ ॥
असंबाधशतद्वारैः शयनासनशोभितैः ।
बहुधातुपिनद्धाङ्गैर्हिमवच्छिखरैरिव ॥ २३ ॥
तत्र नानाप्रकारेषु विमानेषु स्वलंकृताः ।
स्पर्धमानास्तदाऽन्योन्यं निषेदुः सर्वपार्थिवाः॥२४॥
तत्रोपविष्टान्ददृशुर्महासत्त्वपराक्रमान् ।

स्वयंवरकी सभा शोभा पारही थी। वह सभा खन्दक और प्राचीरोंसे घेरी, द्वार तोरणसे जडी, सर्वत्र चंदवेसे साजी, सैकडों तूर्योंसे बजती, अच्छे अगुरुकी गन्धसे सुगन्धित, चन्दनके जलसे अ-भिषिक्त और फूलके हारोंसे भले प्रकार सुशोभित थी। उसके चारों ओर सोने-के जालसे सजेधजे, मणिमय कुट्टिमोंसे सुहावने,अच्छे अच्छे आसन और साजोंसे बनेठने चढनेमें सुखदायी सीढीयुक्त, कैलासकी चोटीकी नाईं आकाशको चूमने वाले ऊंचे बडे बडे शुभ्र भवन शोभा पा रहे थे! हंसकी गर्दनके रंगकी भांति धौले, जनोंसे भरे, शय्या और आसनों-से सुशोभित, हिमाचलकी चोटिकी नाईं धातुओंसे रंगे और अच्छे अगुरुकी ग-न्धसे सुगन्धित उन सब भवनोंकी सुगन्ध योजन भरकी दूरीसे भी अनुभव होती रही; उन सब भवनोंके सैकडों द्वार इतने लम्बे चौडे थे, कि एक बारही बहुत लोगोंके जानेसेभी एक दूसरे की बाधा नहीं होती थी। (१७-२३)

सब भूप अच्छे प्रकार अलंकृत और एक दूसरे पर अहङ्कारयुक्त होकर उन सब भांति भांतिके साततल्ले भवनोंमें जा बैठे। महासत्त्ववान् अति पराक्रमी,

राजसिंहान्महाभागान्कृष्णागुरुविभूषितान्॥२५॥
महाप्रसादान्ब्रह्मण्यान्स्वराष्ट्रपरिरक्षिणः ।
प्रियान्सर्वस्य लोकस्य सुकृतैः कर्मभिः शुभैः ॥२६॥
मञ्चेषु च परार्ध्येषु पौरजानपदा जनाः ।
कृष्णादर्शनसिध्यर्थं सर्वतः समुपाविशन् ॥ २७॥
ब्राह्मणैस्ते च सहिताः पाण्डवाः समुपाविशन् ।
ऋद्धिं पञ्चालराजस्य पश्यन्तस्तामनुत्तमाम्॥ २८॥
ततः समाजो ववृधे स राजन्दिवसान्बहून् ।
रत्नप्रदानबहुलः शोभितो नटनर्तकैः ॥ २९ ॥
वर्तमाने समाजे तु रमणीयेऽह्नि षोडशे ।
आप्लुतांगी सुवसना सर्वाभरणभूषिता ॥ ३० ॥
मालां च समुपादाय काञ्चनीं समलंकृताम् ।
अवतीर्णा ततो रङ्गं द्रौपदी भरतर्षभ ॥ ३१ ॥
पुरोहितः सोमकानां मंत्रविद्ब्राह्मणः शुचिः ।
परिस्तीर्य जुहावाऽग्निमाज्येन विधिवत्तदा॥ ३२ ॥
संतर्पयित्वा ज्वलनं ब्राह्मणान्स्वस्ति वाच्य च ।
वारयामास सर्वाणि वादित्राणि समन्ततः॥ ३३ ॥

महाभाग, महाप्रसाद तथा गुणयुक्त, निज राज्योंके पालन करनेवाले, शुभकर्मों से सब लोगोंके प्यारे और कृष्णागुरु से सजे उन सब राजसिंहोंके उन स्थानों में बैठ जाने पर, द्रौपदीके देखनेके अभिप्रायसे चारों ओर अच्छी वेदियों पर बैठे हुए नगर और जनपदवासी उन लोगोंको देखने लगे। (२४—२७)

पाण्डवलोग ब्राह्मणसमाजके साथ एकत्र बैठकर राजा पाञ्चालका महत् ऐश्वर्य देखने लगे। नट और नाचनेवालों के नाच आदि और दाताओंके अनेक धन रत्नोंके दानसे सुशोभित वह सभा बहुत दिनों तक इस प्रकारसे बढने लगी। हे भरतश्रेष्ठ ! सोलहें दिन द्रौपदी नहा धोकर और सर्व आभूषणोंसे बन ठनके विचित्र वस्त्र पहिने सुशोभित सुवर्ण माला लेकर उस सुन्दर समाजकी रंगभूमिपर जा पहुंची। सोमवंशके पुरोहित मन्त्रज्ञ ब्राह्मण ने शुचि होकर फूल फैलाकर यथाविधि-अग्निको आहुति दे दे करके हविसे हवि-भक्षीको प्रसन्न कर और ब्राह्मणोंसे स्वस्ति कहलवाकर चारों ओरके बाजोंकी ध्वनिको रोका। (२८-३३)

निःशब्दे तु कृते तस्मिन्धृष्टद्युम्नो विशांपते ।
कृष्णामादाय विधिवन्मेघदुन्दुभिनिस्वनः ॥ ३४॥
रंगमध्ये गतस्तत्र मेघगम्भीरया गिरा ।
वाक्यमुच्चैर्जगादेदं श्लक्ष्णमर्थवदुत्तमम् ॥ ३५ ॥
इदं धनुर्लक्ष्यमिमे च बाणाः शृण्वन्तु मे भूपतयः समेताः ।
छिद्रेण यन्त्रस्य समर्पयध्वं शरैः शितैर्व्योमचरैर्दशार्धैः ३६ ॥
एतन्महत्कर्म करोति यो वै कुलेन रूपेण बलेन युक्तः ।
तस्याऽद्य भार्या भगिनी ममेयं कृष्णा भवित्री न मृषा ब्रवीमि ३७
तानेवमुक्त्वा द्रुपदस्य पुत्रः पश्चादिदं तां भगिनीमुवाच ।
नाम्ना च गोत्रेण च कर्मणा च संकीर्तयन्भूमिपतीन्समेतान् ३८ [७१८७]

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यामादिपर्वणि स्वयंवरपर्वणि
धृष्टद्युम्नवाक्ये सप्ताशीत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १८७ ॥

धृष्टद्युम्न उवाच— दुर्योधनो दुर्विषहो दुर्मुखो दुष्प्रधर्षणः ।
विविंशतिर्विकर्णश्च सहो दुःशासनस्तथा ॥ १ ॥
युयुत्सुर्वायुवेगश्च भीमवेगरवस्तथा ।
उग्रायुधो बलाकी च करकायुर्विरोचनः ॥ २ ॥
कुण्डकश्चित्रसेनश्च सुवर्चाः कनकध्वजः ।

हे पृथ्वीनाथ ! अनन्तर सभाके चुप होने पर बादल और नगाडेकी भांति स्वरयुक्त धृष्टद्युम्नने यथाविधि द्रौपदीको लेकर रंगमें खडे होकरके मेघके समान गंभीर बडे शब्दसे यह अर्थयुक्त मनोहर अच्छी बात कही, कि हे उपस्थित भूपालो ! सुनो, यह शरासन, यह तेज पांच बाण और आकाशमें स्थित लक्ष्य दीख पडता है, इन पांच बाणोंसे उस यन्त्रके छिद्रको विद्ध करना होगा; मैं सत्य करके कहता हूं, कि रूपवान् बली, कुलीन जो राजा इस महत् कार्यको पूरा कर सकेंगे, मेरी बहिन यह कृष्णा आज उनकी भार्या होगी। द्रुपदकुमार आये हुए भूपालोंसे यह कहकर आगे उनके नाम, गोत्र और कर्मको सुना कर बहिनसे कहने लगे। (३४—३८) [७१८७]

आदिपर्वमें एकसौ सतासी अध्याय समाप्त।

आदिपर्वमें एकसौ अठासी अध्याय

धृष्टद्युम्न बोले, कि दुर्योधन, दुर्विषह, दुर्मुख, दुष्प्रधर्षण, विविंशति, विकर्ण, सह, दुःशासन, युयुत्सु, वायुवेग, भीमवेगरव, उग्रायुध, बलाकी, करकायु, विरोचन, कुण्डल, चित्रसेन, सुवर्चा, कनकध्वज,

नन्दको बाहुशाली च तुहुण्डो विकटस्तथा ॥ ३ ॥
एते चाऽन्ये च बहवो धार्तराष्ट्रा महाबलाः ।
कर्णेन सहिता वीरास्त्वदर्थं समुपागताः ॥ ४ ॥
असंख्याता महात्मानः पार्थिवाः क्षत्रियर्षभाः ।
शकुनिः सौबलश्चैव वृषकोऽथ बृहद्बलः ॥ ५ ॥
एते गान्धारराजस्य सुताः सर्वे समागताः ।
अश्वत्थामा च भोजश्च सर्वशस्त्रभृतां वरौ ॥ ६ ॥
समवेतौ महात्मानौ त्वदर्थे समलंकृतौ ।
बृहन्तो मणिमांश्चैव दण्डधारश्च पार्थिवः ॥ ७ ॥
सहदेवजयत्सेनौ मेघसन्धिश्च पार्थिवः ।
विराटः सह पुत्राभ्यां शङ्खेनैवोत्तरेण च ॥ ८ ॥
वार्धक्षेमिः सुशर्मा च सेनाबिन्दुश्च पार्थिवः ।
सुकेतुः सह पुत्रेण सुनाम्ना च सुवर्चसा ॥ ९ ॥
सुचित्रः सुकुमारश्च वृकः सत्यधृतिस्तथा ।
सूर्यध्वजो रोचमानो नीलश्चित्रायुधस्तथा ॥ १० ॥
अंशुमांश्चेकितानश्च श्रेणिमांश्च महाबलः ।
समुद्रसेनपुत्रश्च चन्द्रसेनः प्रतापवान् ॥ ११ ॥
जलसन्धः पितापुत्रौ विदण्डो दण्ड एव च ।
पौण्ड्रको वासुदेवश्च भगदत्तश्च वीर्यवान् ॥ १२ ॥

नन्दक, बाहुशाली, तुहुण्ड, विकट, यह सब और दूसरे महाबली धृतराष्ट्र-कुमार बहुतेरे कर्णके साथ तुम्हारे लिये आये हैं और अगणित क्षत्रियश्रेष्ठ महात्मा राजालोग उपस्थित हुए हैं। शकुनि, सौबल, वृषक, बृहद्बल, यह सब गान्धार राजकुमार आये हैं। सर्वास्त्रधारियोंमें श्रेष्ठ महात्मा अश्वत्थामा और भोज अलंकृत होकर तुम्हारे लिये आये हैं। (१—७)

बृहन्त, मणिमान्, दण्डधर, सहदेव, जयत्सेन, मेघसन्धि, शंख और उत्तर नामक दो पुत्रोंके साथ विराट, वार्धक्षेमि, सुशर्मा, सेनाबिन्दु, सुवर्च और सुनामा नामक दो पुत्रोंके साथ सुकेतु, सुचित्र, सुकुमार, वृक, सत्यधृति, सूर्य-ध्वज, रोचमान, नील, चित्रायुध, अंशु-मान, चेकितान, महाबली श्रेणिमान्, समुद्रसेनके पुत्र प्रतापी चन्द्रसेन, जल-सन्ध, विदण्ड और दण्ड यह दो

कालिङ्गस्ताम्रलिप्तश्च पत्तनाधिपतिस्तथा ।
मद्रराजस्तथा शल्यः सहपुत्रो महारथः ॥ १३ ॥
रुक्माङ्गदेन वीरेण तथा रुक्मरथेन च ।
कौरव्यः सोमदत्तश्च पुत्रश्चाऽस्य महारथः ॥ १४ ॥
समवेतास्त्रयः शूरा भूरिर्भूरिश्रवाः शलः ।
सुदक्षिणश्च काम्बोजो दृढधन्वा च पौरवः ॥ १५ ॥
बृहद्बलः सुषेणश्च शिबिरौशीनरस्तथा ।
पटच्चरनिहन्ता च कारूषाधिपतिस्तथा ॥ १६ ॥
संकर्षणो वासुदेवो रौक्मिणेयश्च वीर्यवान् ।
साम्बश्च चारुदेष्णश्च प्राद्युम्निः सगदस्तथा॥ १७ ॥
अक्रूरः सात्यकिश्चैव उद्धवश्च महामतिः ।
कृतवर्मा च हार्दिक्यः पृथुर्विपृथुरेव च ॥ १८ ॥
विदूरथश्च कङ्कश्च शंकुश्च सगवेषणः ।
आशावहोऽनिरुद्धश्च समीकः सारिमेजयः॥ १९ ॥
वीरो वातपतिश्चैव झिल्ली पिण्डारकस्तथा ।
उशीनरश्च विक्रांतो वृष्णयस्ते प्रकीर्तिताः॥ २० ॥
भगीरथो बृहत्क्षत्रः सैन्धवश्च जयद्रथः ।
बृहद्रथो बाह्लिकश्च श्रुतायुश्च महारथः ॥ २१ ॥
उलूकः कैतवो राजा चित्राङ्गदशुभांगदौ ।
वत्सराजश्च मतिमान्कोसलाधिपतिस्तथा ।

पिता पुत्र, पौण्ड्रक वासुदेव, वीर्य्यवान् भगदत्त, कलिंग,ताम्रलिप्त,पत्तनाधिपति, पुत्रके साथ महारथी मद्रराज शल्य, वीर रुक्माङ्गद, रुक्मरथ, कौरव्य सोमदत्त, सोमदत्तके पुत्र महारथी भूरि, भूरिश्रवा,और शल एकत्र यह तीन वीर; सुदक्षिण, काम्बोज, पौरव दृढ-धन्वा, बृहद्बल, सुषेण, औशीनर शिवि, पटच्चरनिहन्ता, कारुषाधिप, बलदेव, कृष्ण, वीर्यवन्त रौक्मिणेय, साम्ब, चारु-देष्ण,प्राद्युम्नि,गद,अक्रूर,सात्यकि, महा-मति उद्धव, कृतवर्मा, हार्दिक्य, पृथु, विपृथु, विदूरथ, कंक, शंकु, गवेषण,आ-शावह, अनिरुद्ध, समीक, सारिमेजय, वीर वातपति,झील्लि, पिण्डारक, विक्रमी उशीनर, यह सब वृष्णिगण, भगीरथ, बृहत्क्षत्र, सैन्धव, जयद्रथ, बृहद्रथ, बा-ह्लिक, महारथी श्रुतायु, उलूक, कैतव,

शिशुपालश्च विक्रान्तो जरासन्धस्तथैव च ॥ २२ ॥
एते चाऽन्ये च बहवो नानाजनपदेश्वराः ।
त्वदर्थमागता भद्रे क्षत्रियाः प्रथिता भुवि ॥ २३ ॥
एते भेत्स्यन्ति विक्रान्तास्त्वदर्थे लक्ष्यमुत्तमम् ।
विध्येत य इदं लक्ष्यं वरयेथाः शुभेऽद्य तम् ॥२४॥ [७१९१]

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यामादिपर्वणि स्वयंवरपर्वणि राजकीर्तनेऽष्टाशीत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १८८ ॥

वैशम्पायन उवाच—तेऽलंकृताः कुण्डलिनो युवानः परस्परं स्पर्धमाना नरेन्द्राः ।
अस्त्रं बलं चात्मनि मन्यमानाः सर्वे समुत्पेतुरुदायुधास्ते ॥ १ ॥
रूपेण वीर्येण कुलेन चैव शीलेन वित्तेन च यौवनेन ।
समिद्धदर्पा मदवेगभिन्ना मत्ता यथा हैमवता गजेन्द्राः ॥ २ ॥
परस्परं स्पर्धया प्रेक्षमाणाः संकल्पजेनाऽभिपरिप्लुताङ्गाः ।
कृष्णा ममैवेत्यभिभाषमाणा नृपासनेभ्यः सहसोदतिष्ठन् ३ ॥
ते क्षत्रिया रंगगताः समेता जिगीषमाणा द्रुपदात्मजां ताम् ।
चकाशिरे पर्वतराजकन्यामुमां यथा देवगणाः समेताः ॥ ४ ॥
कन्दर्पबाणाभिनिपीडिताङ्गाः कृष्णागतैस्ते हृदयैर्नरेन्द्राः ।

चित्राङ्गद, शुभाङ्गद, मतिमान वत्सराज, कोशलाधिप, शिशुपाल और विक्रमी जरासन्ध । हे भद्रे! भूमण्डलमें प्रसिद्ध विक्रमी यह सब राजा और क्षत्रियवंशी नाना जनपदनाथ तुम्हारे लिये इस अच्छे लक्ष्यको भेद करनेकी इच्छासे आये हैं; हे शुभे! जो इस लक्षको विद्ध करेंगे उनको तुम वरण करना। (७—२४) [७१९१]

आदिपर्वमें एकसौ अठासी अध्याय समाप्त।

आदिपर्वमें एकसौ नवासी अध्याय।

श्री वैशम्पायनजी बोले, कि अनन्तर कुण्डलादि अलंकारोंसे सजे हुए युवा नरेन्द्रगण सबो कोई अपनेको अस्त्रविद्या में पण्डित और बली समझकर एक दूसरे पर अहंकारयुक्त होकरके अस्त्र ले कर उठके खडे हुए। वे धन, यौवन, कुल, शील, रूप और वीर्यमें हिमाचलमें जन्मे मदमत्त हस्तीकी भांति अति दर्पयुक्त होकर एक दूसरेको निहारने लगे और कामके वशमें होकर यह कहते हुए; कि "द्रौपदी मेरीही होगी" एकायक राजासनसे उतरे। रङ्गभूमिमें उतरे हुए क्षत्रिय लोगोंने द्रुपदकन्याको जय करनेकी इच्छासे उसके चारों ओर खडे होकर ऐसी अपूर्व शोभा धारण की, कि जैसी देवोंने गिरिराज पुत्री उमा

रङ्गावतीर्णा द्रुपदात्मजार्थं द्वेषं प्रचक्रुः सुहृदोऽपि तत्र ॥ ५ ॥
अथाऽऽययुर्देवगणा विमानै रुद्रादित्या वसवोऽथाऽश्विनौ च ।
साध्याश्च सर्वे मरुतस्तथैव यमं पुरस्कृत्य धनेश्वरं च ॥ ६ ॥
दैत्याः सुपर्णाश्च महोरगाश्च देवर्षयो गुह्यकाश्चारणाश्च ।
विश्वावसुर्नारदपर्वतौ च गन्धर्वमुख्याः सह चाऽप्सरोभिः ॥ ७ ॥
हलायुधस्तत्र जनार्दनश्च वृष्ण्यन्धकाश्चैव यथाप्रधानम् ।
प्रेक्षां स्म चक्रुर्यदुपुङ्गवास्ते स्थिताश्च कृष्णस्य मते महान्तः ॥ ८ ॥
दृष्ट्वा तु तान्मत्तगजेन्द्ररूपान्पञ्चाभिपद्मानिव वारणेन्द्रान् ।
भस्मावृताङ्गानिव हव्यवाहनान्कृष्णः प्रदध्यौ यदुवीरमुख्यः ॥ ९ ॥
शशंस रामाय युधिष्ठिरं स भीमं सजिष्णुं च यमौ च वीरौ ।
शनैः शनैस्तान्प्रसमीक्ष्य रामो जनार्दनं प्रीतमना ददर्श ॥ १० ॥
अन्ये तु वीरा नृपपुत्रपौत्राः कृष्णागतैर्नेत्रमनःस्वभावैः ।
व्यायच्छमाना ददृशुर्न तान्वै संदष्टदन्तच्छदताम्रनेत्राः ॥ ११ ॥
तथैव पार्थाः पृथुबाहवस्ते वीरौ यमौ चैव महानुभावौ ।

को घेरकर धरी थी। (१--४)

वे कामदेवके बाणोंसे जल कर द्रौपदी लाभकी आशासे हृदयमें उसीको भरकर प्यारे मित्रोंकाभी द्वेष करने लगे। अनन्तर रुद्रगण, आदित्यगण, दोनों अश्विनीकुमार, साध्यगण, मरुद्गण, यमराज,कुबेर और सपूर्ण देवगण, रथों पर चढके वहां आगये। दैत्यगण, सुपर्णगण, देवर्षिगण, गुह्यकगण, चारण गण, विश्वावसु, नारद, ऋषि पर्वत और अप्सराओंके साथ प्रधान प्रधान गन्धर्व वहां आ पहुंचे। हलायुध, कृष्ण और कृष्णके मतको माननेवाले प्रधान प्रधान वृष्णिगण, अन्धकगण और यादवगण, इधर उधर देखने लगे। (५—८)

यदुवीरोंमें प्रधान कृष्ण पद्मकी ओर दौडते हुए गजराजकी भांति द्रौपदीकी ओर मुख किये और भस्मसे ढंपे हुए अग्निसदृश उन उन्मत्त हस्तीके समान पांच पाण्डवोंको देख कर सोचने लगे और बलदेवजीसे बोले, कि मुझको जान पडता है, कि यह युधिष्ठिर, यह भीम, यह अर्जुन, यह नकुल और यह सहदेव हैं। बलदेवजीने भी धीरे धीरे उनको निहार कर प्रसन्न हृदयसे जनार्दनकी ओर देखा। दूसरे वीर राजपौत्र और राजपुत्र लोग नेत्रोंको लाल कर होठोंको काटते हुए द्रौपदीकी ओर स्वभाव मन और नेत्र अर्पण कर द्रौपदीकोही देखने लगे; पाण्डवोंकी ओर उनकी

तां द्रौपदीं प्रेक्ष्य तदा स्म सर्वे कन्दर्पबाणाभिहता बभूवुः ॥ १२ ॥
देवर्षिगन्धर्वसमाकुलं तत्सुपर्णनागासुरसिद्धजुष्टम् ।
दिव्येन गन्धेन समाकुलं च दिव्यैश्च पुष्पैरवकीर्यमाणम् ॥ १३ ॥
महास्वनैर्दुन्दुभिनादितैश्च बभूव तत्संकुलमन्तरिक्षम् ।
विमानसंबाधमभूत्समन्तात्सवेणुवीणापणवानुनादम् ॥ १४ ॥
ततस्तु ते राजगणाः क्रमेण कृष्णानिमित्तं कृतविक्रमाश्च ।
सकर्णदुर्योधनशाल्वशल्यद्रौणायनिक्राथसुनीथवक्राः ॥ १५ ॥
कलिंगवंगाधिपपाण्ड्यपौण्ड्रा विदेहराजो यवनाधिपश्च ।
अन्ये च नानानृपपुत्रपौत्रा राष्ट्राधिपाः पङ्कजपत्रनेत्राः ॥ १६ ॥
किरीटहाराङ्गदचक्रवालैर्विभूषिताङ्गाः पृथुबाहवस्ते ।
अनुक्रमं विक्रमसत्त्वयुक्ता बलेन वीर्येण च नर्दमानाः ॥ १७ ॥
तत्कार्मुकं संहननोपपन्नं सज्यं न शेकुर्मनसाऽपि कर्तुम् ।
ते विक्रमन्तः स्फुरिताधरोष्ठा विक्षिप्यमाणा धनुषा नरेन्द्राः ॥ १८ ॥
विचेष्टमाना धरणीतलस्था यथाबलं शैक्ष्यगुणक्रमाच्च ।

दृष्टि भी नहीं पडी। पृथुबाहु--पृथापुत्र युधिष्ठिर भीम और अर्जुन तथा महानुभाव वीर नकुल और सहदेव यह सब भी उस समय द्रौपदीको देखकर मदनबाणसे घायल हुए थे। (९—१२)

तब दिव्य गन्धकी उमङ्गसे भरे दिव्य फूलोंसे पूरे वेणु वीणा पणव आदिकी ध्वनिसंयुक्त और बडे बडे नगाडोंके शब्दसे गूंजते हुए उस स्थानका आकाश सर्वत्र देव, ऋषि, गन्धर्व, सुपर्ण, नाग, असुर और सिद्धोंसे भर जानेके कारण रथोंमें आपसकी रुकावट होने लगी। कर्ण, दुर्योधन, शाल्व, शल्य, द्रौणायनि, क्राथ, सुनीथ, वक्र, कलिंगाधिप, वंगाधिप, पाण्डय, पौण्ड्र, राजा विदेह, यवनराज, यह सब राजा और दूसरे राजाधिप पद्मपलाशनेत्र राजपुत्र तथा राजपौत्र लोग द्रौपदीके लिये क्रमशः विक्रम प्रगट करने लगे। १३-१६

किरीट, हार, केयूर, चक्रवाल आदि नाना आभूषणोंसे सजे विक्रमी, स्वत्ववान् और बलवीर्यसे तरसाते और गरजते हुए वे सब सुबाहु भूपाल बडे भारी उस चापमें गुण चढानेकी कल्पना मनमें भी नहीं ला सके। उन्होंने होंठोंको फुला कर अपने बल, शिक्षा, गुण और क्रमके अनुसार ज्यों धन्वा नवाने और उस पर गुण चढानेको विक्रम प्रगट किया त्योंही उसी क्षण धन्वाकी कोटिसे भगाये और फेंके जाकर धरती पर लोट

गतौजसः स्रस्तकिरीटहारा विनिःश्वसन्तः शमयांबभूवुः॥१९॥
हाहाकृतं तद्धनुषा दृढेन विस्रस्तहारांगदचक्रवालम् ।
कृष्णानिमित्तं विनिवृत्तकामं राज्ञां तदा मण्डलमार्तमासीत्२०
सर्वान्नृपांस्तान्प्रसमीक्ष्य कर्णो धनुर्धराणां प्रवरो जगाम ।
उद्धृत्य तूर्णं धनुरुद्यतं तत्सज्यं चकाराऽऽशु युयोज बाणान्२१॥
दृष्ट्वा सूतं मेनिरे पाण्डुपुत्रा भित्वा नीतं लक्ष्यवरं धरायाम् ।
धनुर्धरा रागकृतप्रतिज्ञमत्यग्निसोमार्कमथाऽर्कपुत्रम् ॥ २२ ॥
दृष्ट्वा तु तं द्रौपदी वाक्यमुच्चैर्जगाद नाऽहं वरयामि सूतम् ।
सामर्षहासं प्रसमीक्ष्य सूर्यं तत्याज कर्णः स्फुरितं धनुस्तत् २३

एवं तेषु निवृत्तेषु क्षत्रियेषु समन्ततः ।
चेदीनामधिपो वीरो बलवानन्तकोपमः ॥ २४ ॥
दमघोषसुतो धीरः शिशुपालो महामतिः ।
धनुरादाय्यमानस्तु जानुभ्यामगमन्महीम् ॥ २५ ॥
ततो राजा महावीर्यो जरासन्धो महाबलः ।

गये और चेष्टासे मनको हटाया; इससे उनके पहिने हुए किरीट आदि आभूषण अङ्गसे च्युत हो गये और वे बल खोकर बार बार हांफते हुए चुप हो बैठे । तब कठिन शरासनसे भयभीत और अलंकारों से च्युत वे भूपगण द्रौपदीकी आशा छोड कर हाय हाय करने लगे । (१७-२०)

इस प्रकार उन सब राजाओंको दुःखित अवलोकन करके, धनुर्धारियों में श्रेष्ठ कर्ण धनुष्यके समीप गया । उस धनुष्यको उठा और प्रत्यंचा चढा कर, उस पर बाणभी लगाने लगा । तब रागसे लक्ष्यभेद की प्रतिज्ञा करनेवाले और स्वयं अग्नि, इन्द्र, चन्द्र तथा यम से भी अति तेजस्वी, कर्णको देख कर सब राजालोग समझने लगे, कि इसने लक्ष्य-भेद करके उसको पृथ्वीपर गिराया ही है ! परंतु इतनेमें उसको अवलोकन करके द्रौपदीने उच्च स्वर से कहा, कि " मैं सूत जातीय वीरके साथ विवाह नहीं करूंगी । " तब क्रोध पूर्वक हास्य करके सूर्यको देख कर कर्णने उस धनुष्य को फेंक दिया । इस रीतिसे सब भूपाल चारों ओर से निवृत्त होनेके पश्चात् दमघोष पुत्र, महाबली, अंतक सम महामति शिशुपाल उठा और धनुष्य उठाने लगा, तो उस कार्यके लिये उसको घुटने भूमिपर लगाने पडे ! उसके पश्चात् महावीर्यवान् और महाबलाढ्य जरासंध राजा धनुष्यके पास

धनुषोऽभ्याशमागत्य तस्थौ गिरिरिवाऽचलः २६ ॥
धनुषा पीड्यमानस्तु जानुभ्यामगमन्महीम्।
तत उत्थाय राजा स स्वराष्ट्राण्यभिजग्मिवान् २७
ततः शल्यो महावीर्यो मद्रराजो महाबलः।
तदप्यारोप्यमाणस्तु जानुभ्यामगमन्महीम् ॥२८॥
तस्मिंस्तु सम्भ्रान्तजने समाजे निक्षिप्तवादेषु जनाधिपेषु।
कुन्तीसुतो जिष्णुरियेष कर्तुं सज्यं धनुस्तत्सशरं प्रवीरः॥ २९॥[७२२०]

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यामादिपर्वणि स्वयंवरपर्वणि राजपराङ्मुख ऊननवत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १८९ ॥

वैशम्पायन उवाच—यदा निवृत्ता राजानो धनुषः सज्यकर्मणः।
अथोदतिष्ठद्विप्राणां मध्याज्जिष्णुरुदारधीः ॥ १ ॥
उदक्रोशन्विप्रमुख्या विधुन्वंतोऽजिनानि च।
दृष्ट्वा संप्रस्थितं पार्थमिन्द्रकेतुसमप्रभम् ॥ २ ॥
केचिदासन्विमनसः केचिदासन्मुदान्विताः।
आहुः परस्परं केचिन्निपुणा बुद्धिजीविनः ॥ ३ ॥
यत्कर्णशल्यप्रमुखैः क्षत्रियैर्लोकविश्रुतैः ।

आकर पर्वत के समान ही निश्चल हो कर खडा रहा। पश्चात् धनुष्य उठानेकी पीडासे पीडित होकर वह भी घुटनोंपर ही गिर गया, इस लिये वहांसे उठकर वह अपने राष्ट्रके पास चला गया। अनंतर महाशक्तिमान् अतिवीर्यशाली मद्रराज शल्य भी धनुष्यकी प्रत्यंचा चढानेके समय घुटनोंके बल भूमिपर गिर पडा। इसके पीछे सब राजालोग भ्रांतचित्त होनेपर और सब राजाओं की घमंड की बातें कम होनेपर, कुन्तीपुत्र अर्जुनने उस धनुष्यपर गुण चढाने और बाण लगाने की इच्छा की। (२१-२९) [७२२०]

आदिपर्वमें एकसौ नवासी अध्याय समाप्त।

आदिपर्वमें एकसौ नव्वे अध्याय।

वैशम्पायनजी बोले, कि अनन्तर राजाओंके उस शरासन पर रोदा चढानेसे मुख फेर लेने पर उदारचित्त जिष्णु ब्राह्मण-समाजसे उठ खडे हुए। प्रधान प्रधान ब्राह्मण लोग बादल समान प्रकाश युक्त अर्जुनको जाते देखकर मृगचर्म कंपाते हुए कोलाहल मचाने लगे, कोई कोई दुःखी और दूसरे हर्षयुक्त हुए। कोई कोई बुद्धिमान् निपुणतायुक्त विप्र आपस में इस प्रकार कहने लगे, कि हे द्विजगण! धनुर्वेदमें पण्डित, बली, कर्ण

नाऽऽनन्तं बलवद्भिर्हि धनुर्वेदपरायणैः ॥ ४ ॥
तत्कथं त्वकृतास्त्रेण प्राणतो दुर्बलीयसा ।
बटुमात्रेण शक्यं हि सज्यं कर्तुं धनुर्द्विजाः॥ ५ ॥
अवहास्या भविष्यन्ति ब्राह्मणाः सर्वराजसु ।
कर्मण्यस्मिन्नसंसिद्धे चापलादपरीक्षिते ॥ ६ ॥
यद्येष दर्पाद्धर्षाद्वाऽप्यथ ब्राह्मणचापलात् ।
प्रस्थितो धनुरायन्तुं वार्यतां साधु मा गमत् ॥७॥

ब्राह्मणा ऊचुः— नाऽवहास्या भविष्यामो न च लाघवमास्थिताः ।
न च विद्विष्टतां लोके गमिष्यामो महीक्षिताम् ८
केचिदाहुर्युवा श्रीमान्नागराजकरोपमः ।
पीनस्कन्धोरुबाहुश्च धैर्येण हिमवानिव ॥ ९ ॥
सिंहखेलगतिः श्रीमान्मत्तनागेन्द्रविक्रमः ।
संभाव्यमस्मिन्कर्मेदमुत्साहाच्चाऽनुमीयते ॥ १० ॥
शक्तिरस्य महोत्साहा न ह्यशक्तः स्वयं व्रजेत् ।
न च तद्विद्यते किंचित्कर्म लोकेषु यद्भवेत् ॥ ११ ॥
ब्राह्मणानामसाध्यं च नृषु संस्थानचारिषु ।

और शल्य आदि लोकोंमें प्रशंसित क्षत्रिय लोग जिस धन्वाको नवा नहीं सके अस्त्रविद्याके न जानकार शक्तिमें दुर्बल एक बटु क्योंकर उस पर रोदा चढा सकेगा ! (१—५)

इस बटुने, चपलतासे जिस अनजाने काममें हाथ डाला है, वह पूरा न हो, तो हम सब राजाओंसे हंसे जायंगे। हे ब्राह्मणो ! यह ब्राह्मणकुमार अहंकार वा कौतूहल अथवा चपलतासे शरासन नवानेको जा रहा है, इसको रोको, कि ऐसे काममें न जाय ! किसी किसी ब्राह्मणने कहा, कि इससे हमारी लघुता नहीं होगी, हम राजाओंके द्वेषके पात्र वा हंसे जानेके योग्य नहीं होंगे। कोई कोई बोले, कि इस नये विप्रको श्रीमान गजराजके सूंडकी भांति विशाल गर्दन, उरु और भुजधारी, हिमाचल सदृश धीरज युक्त, सिंहके खेलकी नाईं चालवाले और उन्मत्त गजसा विक्रमी देखता हूं; और इनका उत्साह जैसा है, तिससे जान पडता है; कि यह कार्य इन्हींसे पूरा हो सकता है; यह ब्राह्मण बडे उत्साही और शक्तिवान हैं; इनको शक्ति न रहती, तो यह कभी नहीं जाते। (६—११)

अब्भक्षा वायुभक्षाश्च फलाहारा दृढव्रताः ॥ १२ ॥
दुर्बला अपि विप्रा हि बलीयांसः स्वतेजसा ।
ब्राह्मणो नाऽवमन्तव्यः सदसद्वा समाचरन् ॥ १३ ॥
सुखं दुःखं महद्धस्वं कर्म यत्समुपागतम् ।
जामदग्न्येन रामेण निर्जिता क्षत्रिया युधि ॥ १४ ॥
पीतः समुद्रोऽगस्त्येन अगाधो ब्रह्मतेजसा ।
तस्माद् ब्रुवन्तु सर्वेऽत्र बटुरेष धनुर्महान् ॥ १५ ॥
आरोपयतु शीघ्रं वै तथेत्यूचुर्द्विजर्षभाः ।
एवं तेषां विलपतां विप्राणां विविधा गिरः ॥ १६ ॥
अर्जुनो धनुषोऽभ्याशे तस्थौ गिरिरिवाऽचलः ।
स तद्धनुः परिक्रम्य प्रदक्षिणमथाऽकरोत् ॥ १७ ॥
प्रणम्य शिरसा देवमीशानं वरदं प्रभुम् ।
कृष्णं च मनसा कृत्वा जगृहे चाऽर्जुनो धनुः ॥१८॥
यत्पार्थिवै रुक्मसुनीथवक्राधेयदुर्योधनशल्यशाल्वैः ।
तदा धनुर्वेदपरैर्नृसिंहैः कृतं न सज्यं महतोऽपि यत्नात् ॥ १९ ॥

फिरभी तीनों लोकोंमें ऐसा कोईभी कार्य तो नहीं है, कि जो इन मरनेवाले मनुष्योंमें ब्राह्मणका असाध्य हो। कठोर व्रतयुक्त द्विजातिगण फलाहार, वायु-भक्षण अथवा निराहारके हेतु देखनेमें दुर्बल होवें भी, तो अपने तेजसे बली रहते हैं। ब्राह्मण सुकर्म किया करें वा बुरा कर्म किया करें तौभी सुख वा दुःख-दायी और महत् वा क्षुद्र किसी उपस्थित कार्यमें उनका अनादर करना नहीं चाहिये। देखो,जमदग्नि पुत्र रामने क्षत्रियों को युद्धमें परास्त किया था; ऋषि अगस्त्यने ब्रह्मतेजसे गहरे समुद्रको पी लिया था; अतएव तुम सब आज्ञादो, कि यह महात्मा शीघ्र शरासन पर गुण चढावें। (११—१५)

आगे द्विजवरोंने "तथास्तु" कहा। ब्राह्मणलोग इस प्रकारकी नाना बातें कहने सुनने लगे; तब अर्जुन शरासनके निकट जाकर पर्वतकी भांति खडे हुए। आगे उसके चारों ओर घूमकर वरदाता देव प्रभु ईशानको सिर नाय कर प्रणाम किया और मनही मनमें श्रीकृष्णकी चिन्ता कर शरासनको उठा लिया। रुक्म, सुनीथ, वक्र, राधापुत्र, दुर्योधन, शल्य और शाल्व, यह सब धनुर्वेदमें पण्डित नरसिंह भूपाल अति यत्नसेभी जिस धन्वापर रोदा नहीं चढा सके थे,

तदर्जुनो वीर्यवतां सदर्पस्तदैन्द्रिरिन्द्रावरजप्रभावः ।
सज्यं च चक्रे निमिषान्तरेण शरांश्च जग्राह शरार्धसंङ्ख्यान् ॥ २० ॥
विव्याध लक्ष्यं निपपात तच्च छिद्रेण भूमौ सहसाऽतिविद्धम्।
ततोऽन्तरिक्षे च बभूव नादः समाजमध्ये च महान्निनादः ॥ २१ ॥
पुष्पाणि दिव्यानि ववर्ष देवःपार्थस्य मूर्ध्नि द्विषतां निहन्तुः ॥ २२ ॥
चैलानि विव्यधुस्तत्र ब्राह्मणाश्च सहस्रशः ।
विलक्षितास्ततश्चक्रुर्हाहाकारांश्च सर्वशः ॥ २३ ॥
न्यपतंश्चात्र नभसः समन्तात्पुष्पवृष्टयः ।
शताङ्गानि च तूर्याणि वादकाः समवादयन् ॥२४॥
सूतमागधसंघाश्चाऽप्यस्तुवंस्तत्र सुस्वराः ।
तं दृष्ट्वा द्रुपदः प्रीतो बभूव रिपुसूदनः ।
सह सैन्यैश्च पार्थस्य साहाय्यार्थमियेष सः ॥ २५॥
तस्मिंस्तु शब्दे महति प्रवृद्धे युधिष्ठिरो धर्मभृतां वरिष्ठः ।
आवासमेवोपजगाम शीघ्रं सार्धं यमाभ्यां पुरुषोत्तमाभ्याम् २६ ॥
विद्धं तु लक्ष्यं प्रसमीक्ष्य कृष्णा पार्थं च शक्रप्रतिमं निरीक्ष्य।
आदाय शुक्लाम्बरमाल्यदाम जगाम कुंतीसुतमुत्स्मयन्ती ॥ २७ ॥

वीर्यवन्तोंमें दर्पयुक्त, इन्द्रानुज सदृश प्रभावी अर्जुनने देखतेही देखते उस पर गुण चढाया और पांच शर लेकर लक्ष्य को भेद दिया। (१९-२१)

लक्ष्य बहुत विद्ध होकर उसी क्षण यन्त्रकी छेदसे धरती पर गिर गया। तब आकाश मण्डल और समाजमें अति कोलाहलकी ध्वनि उठने लगी।देवताओं ने शत्रुकुलनाशी अर्जुनके सिर पर दिव्य फूल वर्षाये। सहस्रों ब्राह्मण उनकी विजयध्वजाकी भांति अपने अपने दुपट्टोंके छोर उडाते हुए उठ खडे हुए। जो लोग लक्ष्य नहीं भेद कर सके थे; वे लज्जित होकर चारों ओर हाय हाय करने लगे। समाजमें आकाशमण्डलसे चारों ओर फूल वर्षने लगे। बाजेवाले तूर्य-यन्त्रको सैओं अङ्ग मिलाकर बजाने लगे; और सूत मागध लोग मीठे स्वरसे स्तुति गाने लगे। शत्रुमथन राजा द्रुपद अर्जुनको देखकर प्रसन्न हुए; और सेनाओंके साथ उनकी सहायता करनेकी इच्छा की। (२१-२५)

जब वह भारी कोलाहल आरम्भ होगया तब धार्मिकवर युधिष्ठिर वेगसे पुरुष-श्रेष्ठ दोनों यमज भाइयोंको लेकर डेरे पर चले गये। द्रौपदी पार्थसे लक्ष्य का विद्ध होना देखकर और उनको इन्द्र

स तामुपादाय विजित्य रङ्गे द्विजातिभिस्तैरभिपूज्यमानः ।
रङ्गान्निरक्रामदचिन्त्यकर्मा पत्न्या तथा चाऽप्यनुगम्यमानः॥२८॥[७२४८]

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यामादिपर्वणि स्वयंवरपर्वणि लक्ष्यच्छेदने नवत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १९० ॥

वैशम्पायन उवाच— तस्मै दित्सति कन्यां तु ब्राह्मणाय तदा नृपे ।
कोप आसीन्महीपानामालोक्याऽन्योन्यमन्तिकात्॥१॥
अस्मानयमतिक्रम्य तृणीकृत्य च संगतान् ।
दातुमिच्छति विप्राय द्रौपदीं योषितां वराम् ॥ २ ॥
अवरोप्येह वृक्षं तु फलकाले निपात्यते ।
निहन्मैनं दुरात्मानं योऽयमस्मान्न मन्यते ॥ ३ ॥
न ह्यर्हत्येष संमानं नापि वृद्धक्रमं गुणैः ।
हन्मैनं सह पुत्रेण दुराचारं नृपद्विषम् ॥ ४ ॥
अयं हि सर्वानाहूय उत्कृत्य च नराधिपान् ।
गुणवद्भोजयित्वाऽन्नं ततः पश्चान्न मन्यते ॥ ५ ॥
अस्मिन्राजसमावाये देवानामिव सन्नये ।

सदृश निहार कर प्रसन्न चित्तसे शुभ्र वस्त्र और माला लेकर उनके पास जा पहुंची। चिन्तातीत कर्म करनेवाले अर्जुन रंगभूमिमें द्रौपदीको जय कर द्विजातियोंसे सत्कृत होकर उस रंगभूमिसे निकले; द्रौपदी भी उनके पीछे जाने लगी। (२६-२८) [७२४८]

आदिपर्वमें एकसौ नव्वे अध्याय समाप्त ।

आदिपर्वमें एकसौ एकानव्वे अध्याय ।

वैशम्पायन बोले, कि अनन्तर राजाके लक्ष्य भेद करनेवाले उस ब्राह्मणको कन्या दान करनेकी इच्छा प्रगट करने पर निकटस्थित भूपाललोग एक दूसरेको देखकर क्रोधित हो गये और कहने लगे, कि इस राजाने इन सब उपस्थित नरेशोंको तिनके के समान समझ कर इनको लङ्घनकर ब्राह्मणको योषिद्वरा कन्या देनेकी इच्छा की है, यह दुरात्मा वृक्ष रोपण करके फलनेके कालमें काट रहा है, हम लोगोंको अपमानित कर रहा है; इसको मार डालेंगे। यह दुराचारी वृद्ध क्रमके अनुसार गुणयुक्त और सम्मानके योग्य नहीं है, सो राजाओंके द्वेष करनेवाले इस दुरात्माको पुत्रके साथ मारनाही उचित है, यह दुरात्मा सम्पूर्ण भूपालोंको बुलवाकर सम्मानके साथ अपूर्व भोजन आदिसे पूजकर अब अपमान कर रहा है। (१-५)

किमयं सदृशं कंचिन्नृपतिं नैव दृष्टवान् ॥ ६ ॥
न च विप्रेष्वधीकारो विद्यते वरणं प्रति ।
स्वयंवरः क्षत्रियाणामितीयं प्रथिता श्रुतिः ॥ ७ ॥
अथवा यदि कन्येयं न च कञ्चिद् बुभूषति ।
अग्नावेनां परिक्षिप्य याम राष्ट्राणि पार्थिवाः॥ ८ ॥
ब्राह्मणो यदि चापल्याल्लोभाद्वा कृतवानिदम्।
विप्रियं पार्थिवेन्द्राणां नैष वध्यः कथंचन ॥ ९ ॥
ब्राह्मणार्थं हि नो राज्यं जीवितं हि वसूनि च।
पुत्रपौत्रं च यच्चाऽन्यदस्माकं विद्यते धनम्॥ १० ॥
अवमानभयाच्चैव स्वधर्मस्य च रक्षणात् ।
स्वयंवराणामन्येषां मा भूदेवंविधा गतिः ॥ ११ ॥
इत्युक्त्वा राजशार्दूला हृष्टाः परिघबाहवः।
द्रुपदं तु जिघांसन्तः सायुधाः समुपाद्रवन्॥ १२ ॥
तान्गृहीतशरावापान्क्रुद्धानापततो बहून् ।
द्रुपदो वीक्ष्य संत्रासाद्ब्राह्मणाञ्छरणं गतः॥१३॥
वेगेनाऽऽपततस्तांस्तु प्रभिन्नानिव वारणान्।

इन महीपालोंका समागम वैसाही हुआ है; कि जैसा देवोंका समवाय होता है; क्या इनमेंसे एकभी इसको योग्य न समझ पडा ? यह प्रसिद्ध कहावत है, कि स्वयंवर क्षत्रियोंहीके लिये विधिबद्ध हुआ है, इसमें ब्राह्मणका अधिकार नहीं है, फिरभी यदि यह कन्या किसी राजाको पति न बनाया चाहे, तो इसको जलती हुई आगमें छोडकर हम अपने अपने राज्योंमें चले जायंगे। इस ब्राह्मण मे यद्यपि चपलतासे राजाओंका अप्रिय कार्य किया है, तौभी इसको मार डालना किसी प्रकार उचित नहीं है, क्योंकि हमारा राज्य, अर्थ, जीवन, पुत्र, पौत्र और दूसरे जो कुछ धन हैं, वह सबही ब्राह्मणोंके लिये हैं। हम यहां शासन करेंगे, तो दूसरे स्वयंवरके स्थानोंमें फिर कभी ऐसा नहीं होगा, सब लोग अपमानके भयसे अपने अपने धर्मको रक्षा करेंगे। (६—११)

परिघ समान भुजवाले, सब राजसिंह ऐसी बात कहकर प्रसन्न चित्तसे अस्त्र लेकरके राजा द्रुपदको मारनेके लिये दौडे। द्रुपदने राजाओंको क्रोधित होकर शरासन लिये आते देखकर इस भयसे कि ब्राह्मणोंके क्रोधसे कहीं क्षत्रिय-

पाण्डुपुत्रौ महेष्वासौ प्रतियातावरिन्दमौ ॥ १४ ॥
ततः समुत्पेतुरुदायुधास्ते महीक्षितो बद्धतलांगुलित्राः ।
जिघांसमानाः कुरुराजपुत्रावमर्षयन्तोऽर्जुनभीमसेनौ ॥ १५ ॥
ततस्तु भीमोऽद्भुतभीमकर्मा महाबलो वज्रसमानसारः ।
उत्पाट्य दोर्भ्यां द्रुममेकवीरो निष्पत्रयामास यथा गजेन्द्रः ॥ १६ ॥
तं वृक्षमादाय रिपुप्रमाथी दण्डीव दण्डं पितृराज उग्रम् ।
तस्थौ समीपे पुरुषर्षभस्य पार्थस्य पार्थः पृथुदीर्घबाहुः ॥ १७ ॥
तत्प्रेक्ष्य कर्माऽतिमनुष्यबुद्धिर्जिष्णुः स हि भ्रातुरचिन्त्यकर्मा ।
विसिष्मिये चापि भयं विहाय तस्थौ धनुर्गृह्य महेन्द्रकर्मा ॥ १८ ॥
तत्प्रेक्ष्य कर्माऽतिमनुष्यबुद्धिर्जिष्णोः सहभ्रातुरचिन्त्यकर्मा ।
दामोदरो भ्रातरमुग्रवीर्यं हलायुधं वाक्यमिदं बभाषे ॥ १९ ॥
य एष सिंहर्षभखेलगामी महद्धनुः कर्षति तालमात्रम् ।
एषोऽर्जुनो नाऽत्र विचार्यमस्ति यद्यस्मि संकर्षण वासुदेवः ॥ २० ॥
यस्त्वेष वृक्षं तरसाऽवभज्य राज्ञां निकारे सहसा प्रवृत्तः ।

कुल नष्ट न होजाय ब्राह्मणोंकी शरण ली। बडे चापधारी शत्रुदमन पाण्डुनन्दन भीम और अर्जुन भूपालोंको मदोन्मत्त गजोंकी भांति वेगसे दौड कर आते देखकर उनकी ओर चले। अंगलीरक्षक पहिने हुए वह सब राजा क्रोधके मारे अस्त्रशस्त्र उठाकर कुरुराजपुत्र अर्जुन और भीमसेनको मारडालनेके लिये जा गिरे। (१२-१५)

अनन्तर वज्र समान कठोर, महाबली, आश्चर्य डरावने कार्य करने वाले, अद्वितीय वीर भीमसेनने उन्मत्त गजराजकी भांति हाथोंसे एक वृक्ष उखाड कर पत्रोंसे खाली किया। फिर शत्रुमंथन पृथुभुज पृथानन्दनने उसके पत्रोंसे खाली पेडको लेकर पुरुषश्रेष्ठ अर्जुनके संमुख इस प्रकार खडे होगये, कि जैसे यमराज कठोर दण्ड लेकर खडे होते हैं। चिन्तातीत कर्म करने वाले असामान्य बुद्धिमान् महेन्द्र सदृश जिष्णुने भाईका अलौकिक कार्य देखकर अचरज माना। अनन्तर निर्भय चित्तसे चाप लेकर खडे हुए। (१६-१८)

चिन्तातीत कर्म करने वाले असाधारण बुद्धिशाली दामोदर भीमार्जुनका यह आश्चर्य कार्य देखकर महावीर्यवन्त बडे भाई हलायुधसे बोले, कि हे संकर्षण! सिंहवरकी भांति डोलते हुए चलने वाले जो पुरुष पांच हाथसे कुछ कम मापके चापको खींच रहे हैं उनका अर्जुन होना इतना निश्चय है, कि जितना

वृकोदरान्नाऽन्य इहैतदद्य कर्तुं समर्थः समरे पृथिव्याम् ॥ २१ ॥
योऽसौ पुरस्तात्कमलायताक्षस्तनुर्महासिंहगतिर्विनीतः ।
गौरः प्रलम्बोज्ज्वलचारुघोणो विनिःसृतः सोऽच्युत धर्मपुत्रः ॥ २२ ॥
यौ तौ कुमाराविव कार्तिकेयौ द्वावश्विनेयाविति मे वितर्कः ।
मुक्ता हि तस्माज्जतुवेश्मदाहान्मया श्रुताः पाण्डुसुताः पृथा च २३॥
तमब्रवीन्निर्जलतोयदाभो हलायुधोऽनन्तरजं प्रतीतः ।
प्रीतोऽस्मि दृष्ट्वा हि पितृष्वसारं पृथां विमुक्तां सह कौरवाग्र्यैः॥२४॥

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यामादिपर्वणि स्वयंवरपर्वणि
कृष्णवाक्य एकनवत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥१९१॥ [७२७२]

वैशम्पायन उवाच--अजिनानि विधुन्वन्तः करकांश्च द्विजर्षभाः ।
ऊचुस्ते भीर्न कर्तव्या वयं योत्स्यामहे परान् ॥१॥
तानेवं वदतो विप्रानर्जुनः प्रहसन्निव ।
उवाच प्रेक्षका भूत्वा यूयं तिष्ठत पार्श्वतः ॥ २ ॥
अहमेनानजिह्माग्रैः शतशो विकरञ्छरैः ।

मेरा कृष्ण होना निश्चय है। जो वेगसे वृक्ष उखाड कर एकायक भूपालोंकी अन्त करनेको प्रवृत्त हुए हैं, वह वृकोदर होंगे। वृकोदरके विना इस भूमण्डल भरमें कोई मनुष्य आज ऐसा कार्य करनेको समर्थ नहीं होगा। (१९-२१)

हे अच्युत! मुझको जान पडता है, कि इसके पहिले पद्मकी भांति प्रशस्त नेत्रयुक्त भारी सिंह समान चलनेवाले नम्र, गोरे, दीर्घ और उज्वल सुन्दर नाकवाले, चार हाथ इतने लम्बे और उसके योग्य स्थूलदेह युक्त, जो पुरुष पधारे हैं, वही धर्म-पुत्र हैं; उनके साथ कार्तिकेयके सदृश जो दो कुमार गये हैं, वे अश्विनीकुमारोंके पुत्र होंगे। मैंने सुना है, कि पाण्डव लोग पृथाके साथ जतुगृहसे जलनेसे बचे थे। विना जलके बादलके रङ्गयुक्त हलायुध अनिन्दित होकर कनिष्ठ कृष्णसे बोले, कि यह सुनकर कृतार्थ हुआ, कि बडे भाग्यसे पुत्रोंके साथ फूफीजी बच गयी हैं। (२२-२४) [७२७२]

आदि पर्वमें एकसौ एकानव्वे अध्याय समाप्त।

आदिपर्वमें एकसौ बानव्वे अध्याय ।

श्रीवैम्पायनजी बोले, कि अनन्तर ब्राह्मणलोग मृगचर्म और कमण्डलू कंपाते हुए बोले, कि मत डरो, हम शत्रु-ओंसे लडेंगे, अर्जुन ब्राह्मणोंकी यह बात सुन कर हंसके बोले, कि आप एक ओर दर्शक बन कर खडे रहें। मैं सैकडों तेज

वारयिष्यामि संक्रुद्धान्मन्त्रैराशीविषानिव ॥ ३ ॥
इति तद्धनुरानम्य शुल्कावाप्तं महाबलः ।
भ्रात्रा भीमेन सहितस्तस्थौ गिरिरिवाऽचलः ॥ ४ ॥
ततः कर्णमुखान्दृष्ट्वा क्षत्रियान्युद्धदुर्मदान् ।
संपेततुरभीतौ तौ गजौ प्रतिगजानिव ॥ ५ ॥
ऊचुश्च वाचः परुषास्ते राजानो युयुत्सवः ।
आहवे हि द्विजस्याऽपि वधो दृष्टो युयुत्सतः ॥ ६ ॥
इत्येवमुक्त्वा राजानः सहसा दुद्रुवुर्द्विजान् ।
ततः कर्णो महातेजा जिष्णुं प्रति ययौ रणे ॥ ७ ॥
युद्धार्थी वासिताहेतोर्गजः प्रतिगजं यथा ।
भीमसेनं ययौ शल्यो मद्राणामीश्वरो बली ॥ ८ ॥
दुर्योधनादयः सर्वे ब्राह्मणैः सह संगताः ।
मृदुपूर्वमयत्नेन प्रत्ययुध्यंस्तदाऽऽहवे ॥ ९ ॥
ततोऽर्जुनः प्रत्यविध्यदापतन्तं शितैः शरैः ।
कर्णं वैकर्तनं श्रीमान्विकृष्य बलवद्धनुः ॥ १० ॥

बाणोंसे इन सब क्रोधित राजाओंको इधर उधर इस प्रकार तीन तेरह करके रोक दूंगा, कि जिस प्रकार मन्त्रके जानकार मन्त्रसे अति विषैले सर्पको तेजसे खाली कर देते हैं। महाबली अर्जुन यह कहकर रणमें जीत लिये हुए धन्वाको ला करके भाई भीमसेनके साथ पर्वतकी भांति अचल बने रहे। (१—४)

आगे भीम और अर्जुन दोनोंने इस प्रकार, कि जैसे हस्ती विपक्षी हस्तीपर चढ जाता है, रणोन्मत्त कर्णादि राजाओं-को देखकर बिना भय उनकी ओर दौडे। लडाई चाहने वाले, राजालोग अहङ्कारसे बोले, कि युद्धस्थलमें लडने वाले ब्राह्मण भी वध किये जा सकते हैं। भूपाललोग यह कहकर उसीक्षण ब्राह्मणों पर दौडे। अनन्तर बडे तेजस्वी कर्ण लडनेके लिये अर्जुनसे इस प्रकार जा भिडे, कि जैसे हस्ती हथनीके लिये दूसरे हस्ती पर चढ जाता है। महाबली मद्राधिप शल्य भीमसेनकी ओर दौडे। दुर्योधन आदि सबोंने ब्राह्मणों पर चढाई की। वे द्विजोंके साथ विना यत्न धीमी लडाई लडने लगे। (५-९)

अनन्तर श्रीमान अर्जुन आदित्य पुत्र कर्णको विरुद्धमें आते देखकर बडे भारी चापको खींचके तेज बाणोंको मारकर विद्ध करने लगे। राधाकुमारने अर्जुनके

तेषां शराणां वेगेन शितानां तिग्मतेजसाम् ।
विमुह्यमानो राधेयो यत्नात्तमनुधावति ॥ ११ ॥
तावुभावप्यनिर्देश्यौ लाघवाज्जयतां वरौ ।
अयुध्येतां सुसंरब्धावन्योन्यविजिगीषिणौ ॥ १२ ॥
कृते प्रतिकृतं पश्य पश्य बाहुबलं च मे ।
इति शूरार्थवचनैरभाषेतां परस्परम् ॥ १३ ॥
ततोऽर्जुनस्य भुजयोर्वीर्यमप्रतिमं भुवि ।
ज्ञात्वा वैकर्तनः कर्णः संरब्धः समयोधयत ॥ १४ ॥
अर्जुनेन प्रयुक्तांस्तान्बाणान्वेगवतस्तदा ।
प्रतिहत्य ननादोच्चैः सैन्यानि तदपूजयन् ॥ १५ ॥
कर्ण उवाच— तुष्यामि ते विप्रमुख्य भुजवीर्यस्य संयुगे ।
अविषादस्य चैवाऽस्य शस्त्रास्त्रविजयस्य च॥ १६ ॥
किं त्वं साक्षाद्धनुर्वेदो रामो वा विप्रसत्तम ।
अथ साक्षाद्धरिहयः साक्षाद्वा विष्णुरच्युतः ॥ १७ ॥
आत्मप्रच्छादनार्थं वै बाहुवीर्यमुपाश्रितः ।
विप्ररूपं विधायेदं मन्ये मां प्रतियुध्यसे ॥ १८ ॥

तेज बाणोंके वेगसे मुर्झाकर अति यत्नसे। उन पर आक्रमण किया। जय करने वालोंमें श्रेष्ठ अर्जुन और कर्ण एक दूसरे पर क्रोधित होकर जयकी आशासे ऐसी फुर्त्तीसे लडने लगे, कि किसीने समझ न पाया, कि उनमें कौन कब आदान सं-धानादि करते थे। वे एक दूसरे पर शूरता प्रगट कर यह कहके वार्तालाप करने लगे, कि तुमने जो किया, देखो उसको रोक लेता हूं, मेरा भुजबल देख लो। (१०—१३)

अनन्तर सूर्यकुमार कर्ण अर्जुनका ऐसा भुजवीर्य देखकर, कि जिसकी उपमा संसारभरमें नहीं मिलती एकचित्तसे लडने लगे। वह अर्जुनके चलाये हुए बाणोंको रोककर सिंहकी भांति गरजने लगे; सेना उनके उस कार्यकी प्रशंसा करने लगी। आगे कर्णने अर्जुनसे कहा, कि हे द्विजातिश्रेष्ठ ! इस युद्ध स्थलमें तुम्हारा न चूकने वाला भुजवीर्य और विजयी शस्त्र देखकर मैं प्रसन्न हुआ। (१४—१६)

हे ब्राह्मण श्रेष्ठ! मुझको जान पडता है, कि तुम साक्षात् धनुर्वेद वा राम अथवा देवराज इन्द्र वा अच्युत विष्णु होंगे। तुम अपनेको गोपन रखनेके

न हि मामाहवे क्रुद्धमन्यः साक्षाच्छचीपतेः ।
पुमान्योधयितुं शक्तः पाण्डवाद्वा किरीटिनः ॥ १९ ॥
तमेवंवादिनं तत्र फाल्गुनः प्रत्यभाषत ।
नाऽस्मि कर्ण धनुर्वेदो नाऽस्मि रामः प्रतापवान् २० ॥
ब्राह्मणोऽस्मि युधां श्रेष्ठः सर्वशस्त्रभृतां वरः ।
ब्राह्मे पौरंदरे चाऽस्त्रे निष्ठितो गुरुशासनात् ॥ २१ ॥
स्थितोऽस्म्यद्य रणे जेतुं त्वां वै वीर स्थिरो भव ॥ २२ ॥
वैशम्पायन उवाच—एवमुक्तस्तु राधेयो युद्धात्कर्णो न्यवर्तत ।
ब्राह्मं तेजस्तदाऽजय्यं मन्यमानो महारथः ॥ २३ ॥
अपरस्मिन्वनोद्देशे वीरौ शल्यवृकोदरौ ।
बलिनौ युद्धसंपन्नौ विद्यया च बलेन च ॥ २४ ॥
अन्योन्यमाह्वयंतौ तु मत्ताविव महागजौ ।
मुष्टिभिर्जानुभिश्चैव निघ्नन्ताविरेतरम् ॥ २५ ॥
प्रकर्षणाकर्षणयोरभ्याकर्षविकर्षणैः ।
आचकर्षतुरन्योन्यं मुष्टिभिश्चापि जघ्नतुः ॥ २६ ॥
ततश्चटचटाशब्दः सुघोरो ह्यभवत्तयोः ।

लिये ब्राह्मणका स्वरूप लेकर भुजवीर्यको आश्रय करके लड रहे हो; मेरे रणभूमिमें क्रोधित होनेसे साक्षात् इन्द्र अथवा पाण्डुनन्दन किरीटीके विना कोई भी मुझसे लड नहीं सकता है। अर्जुन कर्णकी यह बातें सुन कर बोले, कि हे कर्ण ! मैं धनुर्वेद वा राम नहीं हूं, मैं सर्व शस्त्रधारी और योधोंमें श्रेष्ठ ब्राह्मण हूं। मैं गुरुकी कृपासे ब्राह्म और इन्द्र अस्त्रोंमें दक्ष भया हूं। हे विज्ञ ! तुम रह जाओ, मैं आज लडाईमें तुम पर जय पानेके लिये ठहरा हूं। १७-२२

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि तब राधाकुमार महारथी कर्ण यह बात सुनकर ब्रह्म तेजको जीतनेके अयोग्य समझ कर युद्धसे निवृत्त हुए; दूसरी ओर विद्या और बलसे युद्धमें पण्डित उन्मत्त गजके समान बली वीर वृकोदर और राजा शल्य युद्ध करने लगे। वे दोनों एक दूसरे को पुकारके मुट्ठी और घुटनोंसे मारते हुए कभी दूर फेंकने, कभी आगे खींचने, कभी सामने ललकारने, कभी झपटके एक दूसरेको पकडने और कभी धूंसा मारने लगे। इसके पश्चात् उन दोनों की मारके चट चट शब्द कानों में घुसने लगे। वे एक दूसरे को

पाषाणसंपातनिभैः प्रहारैरभिजघ्नतुः ॥
मुहूर्तं तौ तदाऽन्योन्यं समरे पर्यकर्षताम् ॥२७॥
ततो भीमः समुत्क्षिप्य बाहुभ्यां शल्यमाहवे ।
अपातयत्कुरुश्रेष्ठो ब्राह्मणा जहसुस्तदा ॥ २८ ॥
तत्राऽऽश्चर्यं भीमसेनश्चकार पुरुषर्षभः ।
यच्छल्यं पातितं भूमौ नाऽवधीद्बलिनं बली॥ २९॥
पातिते भीमसेनेन शल्ये कर्णे च शङ्किते ।
शङ्किताः सर्वराजानः परिवव्रुर्वृकोदरम् ॥ ३० ॥
ऊचुश्च सहितास्तत्र साध्विमौ ब्राह्मणर्षभौ ।
विज्ञायेतां क्वजन्मानौ क्वनिवासौ तथैव च॥३१ ॥
को हि राधासुतं कर्णं शक्तो योधयितुं रणे ।
अन्यत्र रामाद्द्रोणाद्वा पाण्डवाद्वा किरीटिनः॥३२॥
कृष्णाद्वा देवकीपुत्रात्कृपाद्वापि शरद्वतः ।
को वा दुर्योधनं शक्तः प्रतियोधयितुं रणे ॥ ३३ ॥
तथैव मद्राधिपतिं शल्यं बलवतां वरम् ।
बलदेवादृते वीरात्पाण्डवाद्वा वृकोदरात् ॥ ३४ ॥

पत्थर पर गिरानेकी भांति मारमारने लगे। परस्पर दोनों को पकडने लगे। (२३-२७)

क्षण भर पीछे कुरुवंश श्रेष्ठ भीमने शल्य को भुजोंसे ऊपर उठाकर रणभूमि पर पटक दिया। वह देखकर ब्राह्मणलोग सब हंस उठे, पर पुरुष श्रेष्ठ भीमसेनने बलशाली शल्यको ऐसे आश्चर्यरूपसे भूमि पर पटक दिया, कि शल्यके कुछ भी चोट नहीं लगी। अनन्तर राजा लोग शल्यको भीमसेनसे गिराये जाते हुए और कर्णको शंकायुक्त देखकर भयभीत चित्तसे शल्यको घेर कर खडे होगये और सब इकट्ठे होकर साधु साधु कहके यह कहने लगे, कि यह दो ब्राह्मण सबोंसे श्रेष्ठ हैं। विशेषरूपसे जान लेना चाहिये, कि वह कहां रहते हैं, और उन्होंने कहां जन्म लिया है। इस धरती भरमें राम, द्रोण, पाण्डुनन्दन अर्जुन, देवकीजीके पुत्र कृष्ण अथवा शारद्वत कृपके विना कौन राधाकुमार कर्णसे लड सकता है? और कौन दुर्योधन-से युद्ध करनेको समर्थ होता है? (२८-३३)

वीर बलदेवजी, पाण्डपुत्र वृकोदर वा दुर्योधनके बिना कौन महाबली मद्र-नाथ शल्यको रणभूमि पर गिरा सकता है? अब सब कोई ब्राह्मणसे यह लडाई

वीराद् दुर्योधनाद्वान्यः शक्तः पातयितुं रणे।
क्रियतामवहारोऽस्माद्युद्धाद्ब्राह्मणसंवृतात् ॥ ३५ ॥
ब्राह्मणा हि सदा रक्ष्याः सापराधापि नित्यदा।
अथैतानुपलभ्येह पुनर्योत्स्याम हृष्टवत् ॥ ३६ ॥
तांस्तथावादिनः सर्वान्प्रसमीक्ष्य क्षितीश्वरान्।
अथान्यान्पुरुषांश्चापि कृत्वा तत्कर्म संयुगे ॥ ३७ ॥
वैशम्पायन उवाच- तत्कर्म भीमस्य समीक्ष्य कृष्णः कुन्तीसुतौ तौ परिशङ्कमानः
निवारयामास महीपतींस्तान्धर्मेण लब्धेत्यनुनीय सर्वान् ॥ ३८
एवं ते विनिवृत्तास्तु युद्धाद्युद्धविशारदाः ।
यथावासं ययुः सर्वे विस्मिता राजसत्तमाः ॥ ३९ ॥
वृत्तो ब्रह्मोत्तरो रङ्गः पाञ्चाली ब्राह्मणैर्वृता।
इति ब्रुवन्तः प्रययुर्ये तत्राऽऽसन्समागताः ॥ ४० ॥
ब्राह्मणैस्तु प्रतिच्छन्नौ रौरवाजिनवासिभिः।
कृच्छ्रेण जग्मतुस्तौ तु भीमसेनधनञ्जयौ ॥ ४१ ॥
विमुक्तौ जनसम्बाधाच्छत्रुभिः परिविक्षतौ ।

बन्द कर दो, ब्राह्मण अपराध भी करें तो भी सदा उनकी रक्षा करनी चाहिये। पहिले इनका परिचय लेकर पीछे प्रसन्न चित्तसे हम इनके साथ लडनेको प्रवृत्त होंगे। इस प्रकार बोलनेवाले उन राजाओं और जनोंको देखकर युद्धमें पराक्रम करनेवाले भीम और अर्जुन वहांही स्थिर रहे। (३४-३७)

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि श्रीकृष्णने भीमसेनका वह अलौकिक कार्य देख कर उन को कुन्ती पुत्र करके जाना। आगे सम्पूर्ण राजाओंको विनय कर यह कहके युद्धसे निवृत्त किया, कि इन ब्राह्मणने धर्मके अनुसारही द्रौपदी लाभ की है, सो इन पर द्वेष करना उचित नहीं है। अनन्तर वे सब युद्धमें पण्डित राजा लोग युद्ध बन्द कर आश्चर्य चित्तसे अपने अपने भवनोंको सिधारे। जो सब लोग दर्शनके लिये एकचित्त हुए थे, वे यह कहते हुए चले गये, कि आज रङ्गस्थलमें ब्राह्मण लोगही प्रधान बने, पाञ्चाली ब्राह्मणोंसे वृता हुई। (३८--४०)

अनन्तर भीम और अर्जुन मृगचर्म पहिने ब्राह्मणोंसे घेरे जाकर अति क्लेशसे पथ पाकर चलने लगे। शत्रुओंसे कटे कूटे नरवीर भीम और अर्जुन पीछे चलती हुई द्रौपदीके साथ जनोंकी भीड

कृष्णयाऽनुगतौ तत्र नृवीरौ तौ विरेजतुः ॥ ४२ ॥
पौर्णमास्यां घनैर्मुक्तौ चन्द्रसूर्याविवोदितौ ।
तेषां माता बहुविधं विनाशं पर्यचिन्तयत् ॥ ४३ ॥
अनागच्छत्सु पुत्रेषु भैक्ष्यकालेऽभिगच्छति ।
धार्तराष्ट्रैर्हता न स्युर्विज्ञाय कुरुपुङ्गवाः ॥ ४४ ॥
मायान्वितैर्वा रक्षोभिः सुघोरैर्दृढवैरिभिः ।
विपरीतं मतं जातं व्यासस्यापि महात्मनः॥४५ ॥
इत्येवं चिन्तयामास सुतस्नेहावृता पृथा ।
ततः सुप्तजनप्राये दुर्दिने मेघसंप्लुते ॥ ४६ ॥
महत्यथाऽपराह्णे तु घनैः सूर्य इवाऽऽवृतः ।
ब्राह्मणैः प्राविशत्तत्र जिष्णुर्भार्गववेश्म तत् ॥ ४७ ॥ [७३१९]

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यामादिपर्वणि स्वयंवरपर्वणि पाण्डवप्रत्यागमने द्विनवत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १९२ ॥

वैशम्पायन उवाच—गत्वा तु तां भार्गवकर्मशालां पार्थौ पृथां प्राप्य महानुभावौ ।
तां याज्ञसेनीं परमप्रतीतौ भिक्षेत्यथावेदयतां नराग्र्यौ ॥ १ ॥
कुटीगता सा त्वनवेक्ष्य पुत्रौ प्रोवाच भुंक्तेति समेत्य सर्वे ।

से मुक्त होकर इस प्रकार सोहने लगे, कि जैसे पूर्णिमा तिथिमें उगे हुए चन्द्र सूर्य शोभा प्राप्त करते हैं। इधर उनकी माता कुन्ती उनके भिक्षाकर लौटनेके काल बीतने पर उनको न आते देखकर भांति भांतिके अनिष्टकी आशंकासे यह चिन्ता करने लगी, कि कदाचित् धृतराष्ट्रके पुत्रोंने मेरे बच्चोंको पहिचान कर मार डाला है अथवा शत्रु मायाधारी अति भयानक राक्षसोंने नष्ट किया होगा! महात्मा व्यासजीकोभी कैसी उलटी बुद्धि हुई थी, उन्होंने क्यों हमको इस देशमें आनेको कहा ? (४१--४५)

कुन्ती पुत्रस्नेहसे इस प्रकार सोच रही थी, कि ऐसे समयमें अर्जुन ब्राह्मणोंसे घेरे जाकर लोगोंके प्रायः चुप होनेके कालमें बडे अपराह्णमें बादलसे घिरे कुदिनके मेघसे ढंपे सूर्यकी भांति उस कुम्भारके घरमें जा घुसे। (४६—४७) [७३१९]

आदिपर्वमें एकसौ बानवे अध्याय समाप्त।

आदिपर्वमें एकसौ तिरानव्वे अध्याय।

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि महानुभव नरश्रेष्ठ भीम और अर्जुन परम प्रसन्न चित्तसे याज्ञसेनीको साथ लेकर कुंभारके घरमें जाकर कुन्तीसे बोले, कि मा !

पश्चाच्च कुन्ती प्रसमीक्ष्य कृष्णां कष्टं मया भाषितमित्युवाच ॥ २ ॥
साऽधर्मभीता परिचिन्तयन्ती तां याज्ञसेनीं परमप्रतीताम् ।
पाणौ गृहीत्वोपजगाम कुन्ती युधिष्ठिरं वाक्यमुवाच चेदम्॥ ३ ॥
कुन्त्युवाच-इयं तु कन्या द्रुपदस्य राज्ञस्तवाऽनुजाभ्यां मयि सन्निविष्टा।
यथोचितं पुत्र मयापि चोक्तं समेत्य भुङ्क्तेति नृप प्रमादात्॥ ४॥
मया कथं नाऽनृतमुक्तमद्य भवेत्कुरूणामृषभ ब्रवीहि ।
पञ्चालराजस्य सुतामधर्मो न चोपवर्तेत न विभ्रमेच्च ॥ ५ ॥
वैशम्पायन उवाच-स एवमुक्तो मतिमान्नृवीरो मात्रा मुहूर्तं तु विचिन्त्य राजा।
कुन्तीं समाश्वास्य कुरुप्रवीरो धनञ्जयं वाक्यमिमं बभाषे ॥ ६ ॥
त्वया जिता फाल्गुन याज्ञसेनी त्वयैव शोभिष्यति राजपुत्री ।
प्रज्वाल्यतामग्निरमित्रसाह गृहाण पाणिं विधिवत्त्वमस्याः ॥ ७ ॥
अर्जुन उवाच- मा मां नरेन्द्र त्वमधर्मभाजं कृथा न धर्मोऽयमशिष्टदृष्टः।
भवान्निवेश्यः प्रथमं ततोऽयं भीमो महाबाहुरचिन्त्यकर्मा ॥ ८ ॥

आज यह भिक्षा मिली है ! कुन्ती तब कुटी के भीतर थी; कुछ न देख करके ही बोली, कि तुम सब मिलकर भोगो। पीछे कृष्णाको देखकर बोली, कि हाय मैंने कैसी अनुचित बात कही है ! अनन्तर वह अधर्मका भय खाकर सोचती हुई अनिन्दिता उस याज्ञसेनीका हाथ पकड कर युधिष्ठिरके पास जाकर उनसे बोली, कि बेटा ! तुम्हारे दो भाइयोंने जब राजा द्रुपदसे इस पुत्रीको लाकर मेरे पास भिक्षा कहके दिया, तब मैंने असावधानतासे उस कालके योग्य यह बात कह डाली है, कि तुम सब मिल करके भोगो; हे कुरुवंशश्रेष्ठ ! अब यह कहो, कि क्यों कर मेरी वह बात झूठी न ठहरे, क्योंकर अधर्म इस राजा पाञ्चालकी पुत्रीको छू न सके और क्योंकर यह अप्रसन्न न होवे। (१—५)

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि नरवीर मतिमान् कुरुप्रवीर राजा युधिष्ठिर माताकी यह बात सुनकर क्षणभर सोचके उनको समझा कर धनञ्जयसे बोले, फाल्गुन ! तुमने इस राजपुत्री याज्ञसेनीको जय कर लिया है, तुम्हींसे इसका विवाह हो, तो ठीक होवे; हे शत्रु वेगसहनेवाले तुम आग बालकर विधिपूर्वक इससे ब्याह कर लो। अर्जुन बोले, कि हे नरेन्द्र ! आप मुझको अधर्ममें न डालें, जैसी आज्ञा करते हैं वह धर्मयुक्त नहीं है, वह अनबूझा पथ है। पहिले आपका, आगे चिन्तातीत कर्म करनेवाले महाभुज भीमसेनका, उनके पीछे मेरा, तब मेरे

अहं ततो नकुलोऽनन्तरो मे पश्चादयं सहदेवस्तरस्वी ।
वृकोदरोऽहं च यमौ च राजन्नियं च कन्या भवतो नियोज्या॥ ९ ॥
एवं गते यत्करणीयमत्र धर्म्यं यशस्यं कुरु तद्विचिन्त्य ।
पाञ्चालराजस्य हितं च यत्स्यात्प्रशाधि सर्वे स्म वशे स्थितास्ते ॥१०॥

वैशम्पायन उवाच— जिष्णोर्वचनमाज्ञाय भक्तिस्नेहसमन्वितम् ।
दृष्टिं निवेशयामासुः पाञ्चाल्यां पाण्डुनन्दनाः ॥ ११ ॥
दृष्ट्वा ते तत्र पश्यन्तीं सर्वे कृष्णां यशस्विनीम् ।
संप्रेक्ष्याऽन्योन्यमासीना हृदयैस्तामधारयन् ॥१२॥
तेषां तु द्रौपदीं दृष्ट्वा सर्वेषाममितौजसाम् ।
संप्रमथ्येन्द्रियग्रामं प्रादुरासीन्मनोभवः ॥ १३ ॥
काम्यं हि रूपं पाञ्चाल्या विधात्रा विहितं स्वयम् ।
बभूवाऽधिकमन्याभ्यः सर्वभूतमनोहरम् ॥ १४ ॥
तेषामाकारभावज्ञः कुन्तीपुत्रो युधिष्ठिरः ।
द्वैपायनवचः कृत्स्नं सस्मार मनुजर्षभः ॥ १५ ॥
अब्रवीत्स हि तान्भ्रातॄन्मिथो भेदभयान्नृपः ।

पीछे जन्मे हुए नकुलका और अन्तमें कनिष्ठ सहदेवका विवाह होनाही विधिपूर्वक है। भीमसेन, नकुल, सहदेव, यह कन्या और मैं आपकी आज्ञाके अनुसारी होते हैं, इससे जो कुछ धर्म और जिससे राजा पाञ्चालका मङ्गल होवे, उस पर ध्यान करके आज्ञा करें, हम लोगोंमेंसे कोईभी आपकी आज्ञा माननेसे मुह नहीं माडेगा। (९–१०)

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि अर्जुनकी भक्तिपूर्ण स्नेहरसभरी बातें सुनकर पाण्डवोंने राजा पाञ्चालकी पुत्री की ओर देखा और पाञ्चाली भी उनकी ओर देखने लगी। पाण्डुपुत्र लोग उस यशस्विनी बालाको देख करके एक दूसरेके मुखकी ओर ताकके बैठ गये और सबोंका चित्त उसकी ओर झुका! विधाताने उस पाञ्चालीका सुन्दर रूप दूसरी नारियोंसे श्रेष्ठ और प्राणियोंका ऐसा मनोहर बनाया, कि बडे तेजस्वी पाण्डुपुत्रोंके देखतेही मदन उनके इन्द्रियोंको मथन करके प्रगट हुआ। मनुष्य श्रेष्ठ कुन्तीपुत्र युधिष्ठिर छोटे भाइयोंके आकारोंको देख करके उनके हृदयके भावको समझ गये और उस समय वेदव्यासजीकी सम्पूर्ण बातें उनके स्मरणपथमें आ पहुंची। वह भाइयोंमें आपसके बिगाडका भय कर बोले, कि

सर्वेषां द्रौपदी भार्या भविष्यति हि नः शुभा ॥१६॥
वैशम्पायन उवाच-- भ्रातुर्वचस्तत्प्रसमीक्ष्य सर्वे ज्येष्ठस्य पाण्डोस्तनयास्तदानीम्।
तमेवार्थं ध्यायमाना मनोभिः सर्वे च ते तस्थुरदीनसत्त्वाः ॥ १७ ॥
वृष्णिप्रवीरस्तु कुरुप्रवीरानाशंसमानः सहरौहिणेयः ।
जगाम तां भार्गवकर्मशालां यत्राऽऽसते ते पुरुषप्रवीराः ॥ १८ ॥
तत्रोपविष्टं पृथुदीर्घबाहुं ददर्श कृष्णः सहरौहिणेयः ।
अजातशत्रुं परिवार्य तांश्चाऽप्युपोपविष्टाञ्ज्वलनप्रकाशान् ॥ १९ ॥
ततोऽब्रवीद्वासुदेवोऽभिगम्य कुंतीसुतं धर्मभृतां वरिष्ठम् ।
कृष्णोऽहमस्मीति निपीड्य पादौ युधिष्ठिरस्याऽजमीढस्य राज्ञः २० ॥
तथैव तस्याऽप्यनुरौहिणेयस्तौ चापि हृष्टाः कुरवोऽभ्यनन्दन्।
पितृष्वसुश्चापि यदुप्रवीरावगृह्णतां भारतमुख्य पादौ ॥ २१ ॥
अजातशत्रुश्च कुरुप्रवीरः पप्रच्छ कृष्णां कुशलं विलोक्य ।
कथं वयं वासुदेव त्वयेह गूढा वसन्तो विदिताश्च सर्वे ॥ २२ ॥
तमब्रवीद्वासुदेवः प्रहस्य गूढोऽप्यग्निर्ज्ञायत एव राजन् ।

शुभ लक्षणोंसे मढी हुई यह द्रौपदी हम सबोंकी भार्या होगी। (११-१६)

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि पाण्डु पुत्रगण बडे भाईकी यह बात सुनकर विना कष्ट मनहीमनमें उस बातकी चर्चा करने लगे। (१७)

अनन्तर वृष्णिवंशके प्रधान वीर श्रीकृष्णजी उनको कुरुवीर समझ कर भार्गवकी जिस शालामें वे वीर पुरुष लोग टिके थे वहां बलदेवजीके सङ्ग आपहुंचे। आगे रोहिणीपुत्र और उन्होंने वहां बैठे हुए दीर्घभुज अजात-शत्रु युधिष्ठिरको और उनकी चारों ओर पासही बैठे अग्नि समान जलते हुए छोटे भाइयोंको देखा। इसके अनन्तर वासुदेव श्रीकृष्ण अजमीढवंशी धार्मिकवर कुन्तीकुमार युधिष्ठिर के सामने जाकर उनके पांव छूकर बोले, मैं कृष्ण हूं, आगे बलदेवजीने भी वैसा किया। पाण्डवगण राम और कृष्णको देख कर प्रसन्न चित्तसे आनन्द प्रकाश करने लगे। हे भारतश्रेष्ठ! अनन्तर यदु वीर राम और कृष्ण फफी पृथाके पांव लगे। (१८-२१)

अजातशत्रु कुरुवीर युधिष्ठिर कृष्णको देख करके कुशल क्षेम पूछ कर बोले, कि हे वासुदेव! तुमने क्यों कर यह जाना, कि हम छिप कर यहां बसे हैं? कृष्णने हंसकर कहा, कि हे महाराज! अग्नि छिप रहनेसे भी कभी अज्ञात नहीं रहता और इस भूमण्डलके मानवोंमें

तं विक्रमं पाण्डवेयानतीत्य कोऽन्यः कर्ता विद्यते मानुषेषु ॥ २३ ॥
दिष्ट्या सर्वे पावकाद्विप्रमुक्ता यूयं घोरात्पाण्डवाः शत्रुसाहाः ।
दिष्ट्या पापो धृतराष्ट्रस्य पुत्रः सहामात्यो न सकामोऽभविष्यत् ॥ २४ ॥
भद्रं वोऽस्तु निहितं यद्गुहायां विवर्धध्वं ज्वलना इवैधमानाः ।
मा वो विद्युः पार्थिवाः केचिदेव यास्यावहे शिबिरायैव तावत् ॥ २५ ॥
सोऽनुज्ञातः पाण्डवेनाऽव्ययश्रीः प्रायाच्छीघ्रं बलदेवेन सार्धम् ॥ २६ ॥

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यामादिपर्वणि स्वयंवरपर्वणि रामकृष्णागमने त्रिनवत्यधिकशततमोऽध्यायः॥ १९३॥ [७३४५]

वैशम्पायन उवाच—धृष्टद्युम्नस्तु पाञ्चाल्यः पृष्ठतः कुरुनन्दनौ ।
अन्वगच्छत्तदा यान्तौ भार्गवस्य निवेशने ॥ १ ॥
सोऽज्ञायमानः पुरुषानवधाय समन्ततः ।
स्वयमाराल्लिलीनोऽभूद्भार्गवस्य निवेशने ॥ २ ॥
सायं च भीमस्तु रिपुप्रमाथी जिष्णुर्यमौ चापि महानुभावौ ।
भैक्ष्यं चरित्वा तु युधिष्ठिराय निवेदयाञ्चक्रुरदीनसत्त्वाः॥ ३ ॥
ततस्तु कुन्ती द्रुपदात्मजां तामुवाच काले वचनं वदान्या ।

पाण्डवोंके विना कौन ऐसा विक्रम दिखा सकता है ? आप लोग बडे भाग्यसे शत्रु का वेग सह कर कठोर जलनसे बचे हैं और भाग्यहीके कारण पापात्मा धृतराष्ट्र-पुत्र और उसके मन्त्रियोंका मनोरथ सफल नहीं हुआ। अब आपका मङ्गल होवे; वह मङ्गल इन दिनों औरोंके बिन देखे स्थानमें छिपा हुआ है, आप बढने वाले अग्निकी भांति बढते रहे। अब आज्ञा करें, कि हम अपनी रानिवासमें चले जायं, कि जिससे कोई राजा आप को न जानने पावे, अक्षय श्रीयुक्त श्री-कृष्णजी यह कहकर युधिष्ठिरकी आज्ञा लेके बलदेवजीके साथ शीघ्र वहांसे पधारे। (२२—२६) [७३४५]

आदिपर्वमें एकसौ तिरानब्वे अध्याय समाप्त।

आदि पर्व में एकसौ चौरानब्वे अध्याय ।

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि कुरुनन्दन भीम और अर्जुन जब भार्गवके घरको जा रहे थे; उस समय पाञ्चालकुमार धृष्टद्युम्न उनके पीछे पीछे छिप कर गये थे। वह साथियोंको सावधान कर पाण्डवों और दूसरोंके न जानते उसके निकट किसी एक स्थानमें छिपे थे। संध्याकाल में शत्रुमथनेहारे असामान्य सत्त्वयुक्त महाबली भीम, अर्जुन, नकुल और सहदेवने भिक्षासे लौट कर भिक्षाकी साम-ग्री युधिष्ठिरको देदी। तब दानशीला

त्वमग्रमादाय कुरुष्व भद्रे बलिं च विप्राय च देहि भिक्षाम्॥ ४ ॥
ये चाऽन्नमिच्छन्ति ददस्व तेभ्यः परिश्रिता ये परितो मनुष्याः ।
ततश्च शेषं प्रविभज्य शीघ्रमर्धं चतुर्धा मम चाऽऽत्मनश्च॥ ५ ॥
अर्धं तु भीमाय च देहि भद्रे य एष नागर्षभतुल्यरूपः ।
गौरो युवा संहननोपपन्न एषो हि वीरो बहुभुक्सदैव ॥ ६ ॥
सा हृष्टरूपेव तु राजपुत्री तस्या वचः साधु विशङ्कमाना ।
यथावदुक्तं प्रचकार साध्वी ते चापि सर्वे बुभुजुस्तदन्नम् ॥ ७ ॥
कुशैस्तु भूमौ शयनं चकार माद्रीपुत्रः सहदेवस्तरस्वी ।
यथा स्वकीयान्यजिनानि सर्वे संस्तीर्य वीराः सुषुपुर्धरण्याम् ८ ॥
अगस्त्यशास्तामभितो दिशं तु शिरांसि तेषां कुरुसत्तमानाम् ।
कुन्ती पुरस्तात्तु बभूव तेषां पादान्तरे चाऽथ बभूव कृष्णा ॥ ९ ॥
अशेत भूमौ सह पाण्डुपुत्रैः पादोपधानीव कृता कुशेषु ।
न तत्र दुःखं मनसापि तस्या न चाऽवमेने कुरुपुङ्गवांस्तान्॥ १० ॥
ते तत्र शूराः कथयाऽबभूवुः कथा विचित्राः पृतनाधिकाराः ।
अस्त्राणि दिव्यानि रथांश्च नागान्खड्गान्गदाश्चापि परश्वधांश्च ११॥

कुन्तीने कहा, कि भद्रे ! तुम इस भिक्षाकी सामग्रीसे अगला भाग लेकर देवोंको उपहार और ब्राह्मणोंको भिक्षा दे दो और जो सब लोग अतिथि बने हैं और जो भोजन करना चाहेंगे, उनको भी दो। आगे जो बची रहेगी, वह दो भागोंमें बांटकर एक भाग भीमको दो; क्योंकि यह पर्वतकी भांति बडे भारी गोरे तरुण वीर वृकोदर नित्य बहुत भोजन करता है; दूसरे भागको छः भागोंमें बांटो, उनको युधिष्ठिर आदि चार भाई, तुम और हम खायंगे। (१-६)

राजपुत्री सती द्रौपदीने उनकी उस श्रेष्ठ बातका कोई विचार न करकेही आनन्दित चित्तसे उसको जो कहा गया था, वह पूरा किया। इसके पीछे सबोंने भोजन किया। अनन्तर तरस्वी माद्रीपुत्र सहदेवने भूमिपर कुश बिछाकर सेज बनायी। आगे उस पर सब यथोपयुक्त अपना अपना मृगचर्म बिछाकर सोगये। कुरुश्रेष्ठोंने दक्षिण ओर सिर करके शयन किया था। उनके सिरकी ओर कुन्ती और पांवकी ओर द्रौपदी सो रही। द्रौपदीने भूमि पर लेटके और सबके पांवके नीचे तकिये की भांति बनने पर न तो मनमें दुःख माना और न उनकी ओर अनादर प्रगट किया। शूरतायुक्त पाण्डवगण लेट कर रथ, नाग, खड्ग,

तेषां कथास्ताः परिकीर्त्यमानाः पञ्चालराजस्य सुतस्तदानीम्।
शुश्राव कृष्णां च तदा निषण्णां ते चापि सर्वे ददृशुर्मनुष्याः॥ १२॥
धृष्टद्युम्नो राजपुत्रस्तु सर्वं वृत्तं तेषां कथितं चैव रात्रौ ।
सर्वं राज्ञे द्रुपदायाऽखिलेन निवेदयिष्यंस्त्वरितो जगाम ॥ १३ ॥
पञ्चालराजस्तु विषण्णरूपस्तान्पाण्डवानप्रतिविन्दमानः।
धृष्टद्युम्नं पर्यपृच्छन्महात्मा क्व सा गता केन नीता च कृष्णा॥ १४॥
कच्चिन्न शूद्रेण न हीनजेन वैश्येन वा करदेनोपपन्ना ।
कच्चित्पदं मूर्ध्नि न पङ्कदिग्धं कच्चिन्न माला पतिता श्मशाने १५ ॥
कच्चित्सवर्णप्रवरो मनुष्य उद्रिक्तवर्णोऽप्युत एव कच्चित्।
कच्चिन्न वामो मम मूर्ध्नि पादः कृष्णाभिमर्शेन कृतोऽद्य पुत्र॥ १६॥
कच्चिन्न तप्स्ये परमप्रतीतः संयुज्य पार्थेन नरर्षभेण ।
वदस्व तत्त्वेन महानुभाव कोऽसौ विजेता दुहितुर्ममाऽद्य ॥ १७ ॥
विचित्रवीर्यस्य सुतस्य कच्चित्कुरुप्रवीरस्य ध्रियन्ति पुत्राः।
कच्चित्तु पार्थेन यवीयसाऽद्य धनुर्गृहीतं निहितं च लक्ष्यम् ॥ १८ ॥ [७३६३]

इति श्रीमहा० स्वयंवरपर्वणि धृष्टद्युम्नप्रत्यागमने चतुर्नवत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १९४ ॥ समाप्तं च स्वयंवर पर्व।

गदा, परश्वध, दिव्यास्त्र और सेना सम्बधी नाना विचित्र कथाओंको कहने लगे। पांचालराजपुत्र धृष्टद्युम्न पाण्डवोंकी उन सब कथाओंको सुनने लगे और वहांके लोगोंनेभी राजकन्या कृष्णाको उस दशामें देखा। (७—१२)

अनन्तर रात्रिको पाण्डवोंने जैसी कही थीं, और वहां जो कुछ हुआ था सब राजा द्रुपदके पास आद्योपान्त कहनेके लिये राजकुमार धृष्टद्युम्न तुरन्त चले गये। महात्मा राजा पांचाल पाण्डवोंको न प्राप्त करके दुःखी होकर पडे थे। धृष्टद्युम्नके वहां जा पहुंचने पर उससे उन्होंने पूछा, कि बेटा! कृष्णाको कौन ले गया है? कृष्णा कहां गयी है? किसी नीच जाति वा शूद्र अथवा कर देने वाले वैश्यने मेरी कन्याको ले जाकर मेरे सिर पर लात तो नहीं मारी है? सुन्दर माला तो श्मशानमें नहीं गिरी है? किसी क्षत्रियश्रेष्ठ अथवा ब्राह्मणने मेरी कन्याको तो नहीं जीत लिया है? किसी नीच जनने कृष्णाको जीत कर मेरे सिर पर बांया पांव तो नहीं डाला है, यदि मेरी कन्या कृष्णा नरसिंह जनके साथ मिलकर चली गयी हो, तो मुझको दुःख नहीं है। हे महानुभव! किसने मेरी पुत्रीको जीत लिया है। क्या कुरुवीर विचित्रवीर्यके पुत्र राजा

अथ वैवाहिक पर्व ।

वैशम्पायन उवाच–ततस्तथोक्तः परिहृष्टरूपः पित्रे शशंसाऽथ स राजपुत्रः।
धृष्टद्युम्नः सोमकानां प्रबर्हो वृत्तं यथा येन हृता च कृष्णा ॥ १ ॥
धृष्टद्युम्न उवाच– योऽसौ युवा व्यायतलोहिताक्षः कृष्णाजिनी देवसमानरूपः।
यः कार्मुकाग्र्यं कृतवानधिज्यं लक्ष्यं च यः पातितवान्पृथिव्याम्॥ २ ॥
असज्जमानश्च ततस्तरस्वी वृतो द्विजाग्र्यैरभिपूज्यमानः ।
चक्राम वज्रीव दितेः सुतेषु सर्वैश्च देवैर्ऋषिभिश्च जुष्टः ॥ ३ ॥
कृष्णा प्रगृह्याऽजिनमन्वयात्तं नागं यथा नागवधूः प्रहृष्टा ।
अमृष्यमाणेषु नराधिपेषु क्रुद्धेषु वै तत्र समापतत्सु ॥ ४ ॥
ततोऽपरः पार्थिवसङ्घमध्ये प्रवृद्धमारुज्य महीप्ररोहम् ।
प्रकालयन्नेव स पार्थिवौघान्क्रुद्धोऽन्तकः प्राणभृतो यथैव ॥ ५ ॥
तौ पार्थिवानां मिषतां नरेन्द्र कृष्णामुपादाय गतौ नराग्र्यौ।
विभ्राजमानाविव चन्द्रसूर्यौ बाह्यां पुराद्भार्गवकर्मशालाम् ॥ ६ ॥

पाण्डुके लडके जीते हैं ? क्या अर्जुनने धन्वा लेकर लक्ष्यभेद किया है?

एकसौ चौरानव्वे अध्याय और स्वयंवरपर्व समाप्त ।

एकसौ पंचानव्वे अध्याय । और वैवाहिक पर्व ।

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि सोमवंश श्रेष्ठ राजपुत्र धृष्टद्युम्न पिताकी यह सब बातें सुनकर प्रसन्न चित्तसे जिसने द्रौपदीको जय कर लिया था और उस विषयमें जो कुछ हुआ था, सब आद्योपान्त पितासे कहने लगे; विशेषरूपसे चौडी और लाल आखोंसे सुहावने काला मृगचर्म पहिने देव सदृश रूपवान जिस युवापुरुषने बडे भारी चापमें गुण चढा कर लक्ष्यभेद करके भूतलमें गिराया था वह तपस्वी किसीसे नहीं मिले। वह ब्राह्मणोंसे घेरे और पूज जाकर राजोंमें इस प्रकार पराक्रम प्रगट करने लगे, कि जैसे संपूर्ण महर्षि और देवोंसे घिरे हुए देवराज दैत्योंमें जा घुसते हैं। (१-३)

कृष्णा उस पुरुषके काले मृगचर्मको पकडे प्रसन्न मनसे इस प्रकार पीछे पीछे चली, कि जैसे सर्पकी स्त्री सर्पराजके पीछे जाती है। तब सब राजाओंके असह्य और क्रोधयुक्त होकर युद्धके लिये दौडने पर दूसरे एक वीर उस पार्थिव सेनामें घुस कर इस प्रकार, कि जैसे क्रोधित यमराज दण्ड लेकर प्राणियोंको नष्ट करते हैं, एक बडे भारी प्राचीन वृक्षको उखाड कर उससे भूपालोंको भगाने लगे। हे नरनाथ। तब राजालोग उन नरसिंह दो वीरोंकी ओर ताकने लगे। वे दोनों वीर चन्द्रमा और सूर्यकी भांति सोहते

तत्रोपविष्टार्चिरिवाऽनलस्य तेषां जनित्रीति मम प्रतर्कः ।
तथाविधैरेव नरप्रवीरैरुपोपविष्टैस्त्रिभिरग्निकल्पैः ॥ ७ ॥
तस्यास्ततस्तावभिवाद्य पादावुक्ता च कृष्णा त्वभिवादयेति।
स्थितां च तत्रैव निवेद्य कृष्णां भिक्षाप्रचाराय गता नराग्र्याः॥८॥
तेषां तु भैक्ष्यं प्रतिगृह्य कृष्णा दत्त्वा बलिं ब्राह्मणसाच्च कृत्वा।
तां चैव वृद्धां परिवेष्य तांश्च नरप्रवीरान्स्वयमप्यभुंक्त ॥ ९ ॥
सुप्तास्तु ते पार्थिव सर्व एव कृष्णा च तेषां चरणोपधाने ॥
आसीत्पृथिव्यां शयनं च तेषां दर्भाजिनाग्रास्तरणोपपन्नम् ॥ १० ॥
ते नर्दमाना इव कालमेघाः कथा विचित्राः कथयांबभूवुः ।
न वैश्यशूद्रौपयिकीः कथास्ता न च द्विजानां कथयन्ति वीराः ११
निःसंशयं क्षत्रियपुङ्गवास्ते यथा हि युद्धं कथयन्ति राजन् ।
आशा हि नो व्यक्तमियं समृद्धा मुक्तान्हि पार्थाञ्शृणुमोऽग्निदाहात् १२
यथा हि लक्ष्यं निहितं धनुश्च सज्यं कृतं तेन तथा प्रसह्य ।

हुए कृष्णाको लेकरके नगरके बाहर एक कुंभारके घरमें जा घुसे। (४—६)

वहां अग्निकी चिनगारीकी भांति एक बुढिया नारी अग्नि सदृश तीन वीरोंके साथ बैठी थी; मुझको जान पडा, कि वह उनकी माता होंगी। अनन्तर वह दोनों उनके निकट जाकर और उनके पांव छूकर कृष्णाको उन्हें प्रणाम करनेको बोले। आगे कृष्णाको भिक्षा कहके जताकर उनके पास सौंपके वे सब भिक्षाके लिये निकले। आगे उनके भीख लेकर लौट आनेपर कृष्णाने उनके भोजन की सामग्री लेकर उसका कुछ अंश देवोंको अर्पण किया और कुछ ब्राह्मणोंको दिया। अनन्तर शेष भाग बुढिया और पांचों वीरोंको परोस कर अन्तमें उसने भोजन किया। हे नरनाथ! इसके पश्चात् धरती पर मृगचर्म बिछाये जानेके पश्चात् वे उस पर सोये! कृष्णा उनके पांवके नीचे तकियेकी भांति सो रही। (७—१०)

तब वे वीर काले बादलके समान गंभीर स्वरसे आपसमें भांति भांतिकी विचित्र कथा कहने लगे। वे जो सब कथा कह रहे थे, वे कभी ब्राह्मण, वैश्य वा शूद्र जातिकी नहीं हो सकतीं; हे महाराज! वे जैसी युद्ध-सबन्धी कथा कहने लगे, उससे वे निःसन्देह क्षत्रिय श्रेष्ठ होंगे! हे पिता! इसमें सन्देह नहीं है; कि हमारी आशा पूरी हुई है, क्योंकि सुन चुका हूं, कि पाण्डव अग्निसे जलनेसे बचे हैं, और उस महावीरने जिस

यथा च भाषन्ति परस्परं ते छन्ना ध्रुवं ते प्रचरन्ति पार्थाः ॥ १३ ॥
ततः स राजा द्रुपदः प्रहृष्टः पुरोहितं प्रेषयाऽऽस तेषाम् ।
विद्याम युष्मानिति भाषमाणो महात्मनः पाण्डुसुताः स्थ कच्चित् १४॥
गृहीतवाक्यो नृपतेः पुरोधा गत्वा प्रशंसामभिधाय तेषाम् ।
वाक्यं समग्रं नृपतेर्यथावदुवाच चाऽनुक्रमविक्रमेण ॥ १५ ॥
विज्ञातुमिच्छत्यवनीश्वरो वः पञ्चालराजो वरदो वरार्हः ।
लक्ष्यस्य वेद्धारमिमं हि दृष्ट्वा हर्षस्य नाऽन्तं प्रतिपद्यते सः ॥ १६ ॥
आख्यात च ज्ञातिकुलानुपूर्वीं पदं शिरःसु द्विषतां कुरुध्वम् ।
प्रह्लादयध्वं हृदयं ममेदं पंचालराजस्य च सानुगस्य ॥ १७ ॥
पाण्डुर्हि राजा द्रुपदस्य राज्ञः प्रियः सखा चाऽऽत्मसमो बभूव।
तस्यैष कामो दुहिता ममेयं स्नुषा प्रदास्यामि हि कौरवाय ॥ १८ ॥
अयं हि कामो द्रुपदस्य राज्ञो हृदि स्थितो नित्यमनिन्दिताङ्गाः।
यदर्जुनो वै पृथुदीर्घबाहुर्धर्मेण विन्देत सुतां ममैताम् ॥ १९ ॥
कृतं हि तत्स्यात्सुकृतं ममेदं यशश्च पुण्यं च हितं तदेतत् ।

प्रकारसे शरासनमें विनाविलंब गुण चढा- या, जिस प्रकार सहजहीमें लक्ष्य भेद किया और उनमें आपसकी जैसी कथा सुनी, उससे निश्चय जान पडता है, कि येही पञ्च पाण्डव होंगे; इसमें सन्देह नहीं कि, वे माताके साथ छिपकर घूम रहे हैं। (११—१३)

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि अनन्तर राजा द्रुपदके आनन्द पूर्वक पुरोहितसे यह कहके पाण्डवोंके पास भेजा, कि आप उनके निकट जाके तुम यह कहना, कि तुम महात्मा पांडुकी सन्तान हो, कि नहीं, मैं तुम्हारी सुध लिया चाहता हूं। राजपुरोहित राजाज्ञा को सुनकर पाण्डवोंके पास जा, क्रमसे उनमेंसे हरेकका यश गाकर राजाकी कही सब बात कहने लगे; हे श्रेष्ठ! वरदाता भूनाथ राजा पाञ्चाल आपका परिचय जानना चाहते हैं; वह इस वीरको लक्ष्य भेद करते देखकर अपार आनन्द पारा- वारमें गोता मार रहे हैं। आप अपनी, ज्ञातिकी और कुलकी कथा आद्यो- पान्त सुनाकर राजापाञ्चालके उनके साथियोंके और मेरे हृदयमें आनन्द दें; शत्रुओंके सिर पर पांव रखें। महाराज पाण्डु राजा द्रुपदके आत्मवत प्यारे सखा थे, सो भूपालके द्रुपदकी यह चाह थी, कि उनकी कन्या कृष्णा सखा पाण्डुकी पुत्रवधू बने; हे अनिन्दित रूपवान वीरो! राजा द्रुपदके हृदयम- न्दिरमें सदा यह कामना जगती थी, कि

अथोक्तवाक्यं हि पुरोहितं स्थितं ततो विनीतं समुदीक्ष्य राजा॥ २० ॥
सम्प्रेषितो भीममिदं शशास प्रदीयतां पाद्यमर्घ्यं तथाऽस्मै ।
मान्यः पुरोधा द्रुपदस्य राज्ञस्तस्मै प्रयोज्याऽभ्यधिका हि पूजा॥ २१ ॥
भीमस्ततस्तत्कृतवान्नरेन्द्र तां चैव पूजां प्रतिगृह्य हर्षात् ।
सुखोपविष्टं तु पुरोहितं तदा युधिष्ठिरो ब्राह्मणमित्युवाच॥ २२ ॥
पञ्चालराजेन सुता निसृष्टा स्वधर्मदृष्टेन यथा न कामात् ।
प्रदिष्टशुल्काद्रुपदेन राज्ञा सा तेन वीरेण तथाऽनुवृत्ता॥ २३ ॥
न तत्र वर्णेषु कृता विवक्षा न चापि शीले न कुले न गोत्रे ।
कृतेन सज्येन हि कार्मुकेण विद्धेन लक्ष्येण हि सा विसृष्टा॥ २४ ॥
सेयं तथा तेन महात्मनेह कृष्णा जिता पार्थिवसङ्घमध्ये ।
नैवं गते सौमकिरद्य राजा संतापमर्हत्यसुखाय कर्तुम्॥ २५ ॥
कामश्च योऽसौ द्रुपदस्य राज्ञः स चापि संपत्स्यति पार्थिवस्य ।
संप्राप्यरूपां हि नरेन्द्रकन्यामिमामहं ब्राह्मण साधु मन्ये॥ २६ ॥
न तद्धनुर्मन्दबलेन शक्यं मौर्व्या समायोजयितुं तथा हि ।

महाभुज अर्जुन धर्मानुसार उनकी कन्या को ब्याहें; यदि वही हुआ हो, तो उनके लिये बडा हित, पुण्य पूरित, यशयुक्त और सुकृत हुआ है। (१४–२०)

पुरोहितके नम्रभावसे यह सब कहके चुप होनेपर पाण्डवराजने उनकी ओर देख निकट स्थित भीमसेनको आज्ञा दी, कि इनको पाद्य अर्घ दो। यह राजा द्रुपदके पुरोहित, बडे माननीय हैं, भले प्रकार इनको पूजना चाहिये। हे नरनाथ! भीमसेनने भाईकी आज्ञानुसार भली भांति उनकी पूजा की; पुरोहित ब्राह्मण पूजा लेकर प्रसन्न चित्तसे सुखपूर्वक बैठने पर युधिष्ठिर उनसे बोले, कि हे ब्राह्मण! राजा पांचालने मनमाना कन्यादान नहीं किया है। उन्होंने निज धर्मके अनुसार लक्ष्यभेदका प्रण करके कन्यादान करना निश्चय किया था, तिससेही इस वीरने उनकी कन्या लाभ की है; अब जाति, कुल, शील, गोतके विषयमें पूछनेका उनको कुछभी अधिकार नहीं है। (२०—२४)

धनुषमें रोदा चढाकर लक्ष्य भेदनेही पर वह सब पूछनेके अधिकार खो चुके हैं। उन्हींके संकल्पसे यह महात्मा सब राजाओंमेंसे द्रौपदी का जय कर लाया है, ऐसी दशामें सोमवंशी राजा द्रुपदका इस समय दुःख मानना केवल सुखसे हाथ धोनाही है। पर उनकी जो चाह है, वह पूरी होगी, क्योंकि इस अतिरूप

न चाऽकृतास्त्रेण न हीनजेन लक्ष्यं तथा पातयितुं हि शक्यम्॥२७॥
तस्मान्न तापं दुहितुर्निमित्तं पञ्चालराजोऽर्हति कर्तुमद्य ।
न चापि तत्पातनमन्यथेह कर्तुं हि शक्यं भुवि मानवेन ॥ २८ ॥
एवं ब्रुवत्येव युधिष्ठिरे तु पञ्चालराजस्य समीपतोऽन्यः ।
तत्राऽऽजगामाऽऽशु नरो द्वितीयो निवेदयिष्यन्निह सिद्धमन्नम्॥२९॥

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यामादिपर्वणि वैवाहिकपर्वणि पुरोहितागमने पंचनवत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १९५ ॥ [७३९२]

दूत उवाच— जन्यार्थमन्नं द्रुपदेन राज्ञा विवाहहेतोरुपसंस्कृतं च ।
तदाऽऽप्नुवध्वं कृतसर्वकार्याः कृष्णां च तत्रैव चिरं न कार्यम् ॥१॥
इमे रथाः काञ्चनपद्मचित्राः सदश्वयुक्ता वसुधाधिपार्हाः।
एतान्समारुह्य परैत सर्वे पञ्चालराजस्य निवेशनं तत् ॥ २ ॥
वैशम्पायन उवाच— ततः प्रयाताः कुरुपुङ्गवास्ते पुरोहितं तं परियाप्य सर्वे ।
आस्थाय यानानि महान्ति तानि कुंती च कृष्णा च सहैकयाने ॥ ३ ॥
श्रुत्वा तु वाक्यानि पुरोहितस्य यान्युक्तवान्भारत धर्मराजः ।

वती राजकुमारीके लक्षण भले दीख पडते हैं । जिसकी सामर्थ थोडी है, वह कभी उस शरासनमें रोदा नहीं चढा सकता है; और जो नीच जाति अथवा व्यवहारसे ज्ञात नहीं है, वह भी कभी लक्ष्यको भेद कर धरती पर गिरा नहीं सकता है, फिरभी इस भूमण्डल भरमें किसीकी ऐसी सामर्थ नहीं है, कि उस लक्ष्यका गिरना व्यर्थ कहे, सो अब कन्याके लिये उनका दुःख मानना ठीक नहीं । युधिष्ठिर ऐसा कह रहे थे, कि राजा पांचालसे एक दूत यह कहनेको वहां आया, कि अन्न बना है। (२५-२९)

आदि पर्वमें एकसौ पंचानवे अध्याय समाप्त । (७३९२)

आदिपर्वमें एकसौ छानवे अध्याय ।

दूत बोला, कि महाराज द्रुपदने व्याहनेकी इच्छासे बराती लोगोंके लिये अच्छा अन्न बनवाया है । आप नित्यकृत्य पूरा कर शीघ्र वहां आवें; वहीं कृष्णाका विवाह होगा, विलम्ब न करें । सुवर्ण पद्मसे सहावने, अच्छे घोडेवाले यह सब रथ खडे हैं, आप सब कोई इन पर चढके पांचालराजभवनमें शुभागमन करें । १-२

श्रीवैशंपायनजी बोले, कि अनन्तर कुरुश्रेष्ठ पाण्डव पुरोहितको बिदा कर उन बडे बडे यानोंमेंसे एक पर कुन्ती और कृष्णाको चढाय आप एक ओर चर चले । इधर राजा पांचालने पुरोहितसे धर्मराज युधिष्ठिरका वचन सुन उनकी

जिज्ञासमानैवाऽथ कुरूत्तमानां द्रव्याण्यनेकान्युपसंजहार ॥ ४ ॥
फलानि माल्यानि च संस्कृतानि वर्माणि चर्माणि तथाऽऽसनानि ।
गाश्चैव राजन्नथ चैव रज्जुर्बीजानि चाऽन्यानि कृषीनिमित्तम् ॥ ५ ॥
अन्येषु शिल्पेषु च यान्यपि स्युः सर्वाणि कृत्यान्यखिलेन तत्र ।
क्रीडानिमित्तान्यपि यानि तत्र सर्वाणि तत्रोपजहार राजा ॥ ६ ॥
वर्माणि चर्माणि च भानुमंति खड्गा महान्तोऽश्वरथाश्च चित्राः ।
धनूंषि चाऽग्र्याणि शराश्च चित्राः शक्त्यृष्टयः काञ्चनभूषणाश्च ॥ ७ ॥
प्रासा भुशुण्डयश्च परश्वधाश्च सांग्रामिकं चैव तथेह सर्वम् ।
शय्यासनान्युत्तमवस्तुवंति तथैव वासो विविधं च तत्र ॥ ८ ॥
कुन्ती तु कृष्णां परिगृह्य साध्वीमन्तःपुरं द्रुपदस्याऽऽविवेश ।
स्त्रियश्च तां कौरवराजपत्नीं प्रत्यर्चयामासुरदीनसत्त्वाः ॥ ९ ॥
तान्सिंहविक्रान्तगतीन्निरीक्ष्य महर्षभाक्षानजिनोत्तरीयान् ।
गूढोत्तरांसान्भुजगेन्द्रभोगप्रलम्बबाहून्पुरुषप्रवीरान् ॥ १० ॥
राजा च राज्ञः सचिवाश्च सर्वे पुत्राश्च राज्ञः सुहृदस्तथैव ।
प्रेष्याश्च सर्वे निखिलेन राजन्हर्षं समापेतुरतीव तत्र ॥ ११ ॥
ते तत्र वीराः परमासनेषु सपादपीठेष्वविशङ्कमानाः ।

जातिका पहिचान और उपहारके किये चारों वर्णयोग्य फल, सुन्दर सुन्दर माला, चर्म, वर्म, आसन, गौ, रस्सी, बीज, कृषीके दूसरे सब पदार्थ, शिल्पयोग्य काटने कूटनेके यन्त्र और क्रीडाकी वस्तु आदि भांति भांतिके पदार्थ बटोरे। आगे चमकीला चर्म, वर्म, और ऋष्टि, सुन्दर खड्ग, घोडे, रथ, अच्छे चाप, भांति भांतिके बाण सुवर्णसे सजी शक्ति, प्रास, भुशुण्डी और कुठार, युद्धयोग्य भांति भांतिकी दूसरी वस्तु और अच्छी सेज, घटाटोप बहुविध चीर आदि अनेक प्रकार की सामग्री अलग अलग रख दी। (३-८)

अनन्तर कौरवराजपत्नी कुन्ती सती द्रौपदीको लेकर राजा द्रुपदके अन्तःपुर में गयी। राजमहरियोंने प्रसन्न चित्तसे उनका स्वागत कर सम्मानित किया। हे राजन्! अनन्तर राजा पांचाल, तथा उनके मन्त्री, पुत्र, मित्र, टहलुये और राजपरिवारके दूसरे लोग, मृगचर्मका दुपट्टा लिये आगये हुए पाण्डवोंकी सिंहसमान विक्रमी चाल, बडे बैलसदृश आंख, सर्पराजकी देहकी भांति लटके भुज और बडे स्कन्ध देख आनन्दके समुद्रमें डूबे। वे नरश्रेष्ठ वीरगण विना आश्चर्य और निडर चित्तसे अलग अलग

यथानुपूर्वं विविशुर्नराग्र्यास्तथा महार्हेषु न विस्मयन्तः ॥ १२ ॥
उच्चावचं पार्थिवभोजनीयं पात्रीषु जाम्बूनदराजतीषु ।
दासाश्च दास्यश्च सुमृष्टवेषाः संभोजकाश्चाऽप्युपजह्रुरन्नम् ॥ १३ ॥
ते तत्र भुक्त्वा पुरुषप्रवीरा यथाऽऽत्मकामं सुभृशं प्रतीताः ।
उत्क्रम्य सर्वाणि वसूनि राजन्साङ्ग्रामिकं ते विविशुर्नृवीराः ॥ १४ ॥
तल्लक्षयित्वा द्रुपदस्य पुत्रो राजा च सर्वैः सह मन्त्रिमुख्यैः ।
समर्थयामासुरुपेत्य हृष्टाः कुन्तीसुतान्पार्थिव राजपुत्रान् ॥ १५ ॥

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यामादिपर्वणि वैवाहिकपर्वणि सांग्रामिकद्रव्यग्रहणे षण्णवत्यधिकशततमोऽध्याय ॥ १९६ ॥ [७४०७]

वैशम्पायन उवाच— तत आहूय पाञ्चाल्यो राजपुत्रं युधिष्ठिरम् ।
परिग्रहेण ब्राह्मेण परिगृह्य महाद्युतिः ॥ १ ॥
पर्यपृच्छददीनात्मा कुन्तीपुत्रं सुवर्चसम् ।
कथं जानीम भवतः क्षत्रियान्ब्राह्मणानुत ॥ २ ॥
वैश्यान्वा गुणसंपन्नानथवा शूद्रयोनिजान् ।
मायामास्थाय वा विप्रांश्चरतः सर्वतो दिशम् ॥ ३ ॥
कृष्णाहेतोरनुप्राप्तान्देवान्सन्दर्शनार्थिनः ।

पादपीठयुक्त अति सुन्दर मूल्यवान आसनों पर बडे छोटेके क्रमसे बैठ गये।९-१२

अनन्तर अच्छे लिबास गहनोंसे बने ठने ठहलुये, महरिन और खिलाने पिलानेवालोंने यथायोग्य सुवर्ण और चांदीके बर्तनोंमें परम स्वादिष्ट राजाके भोजनयोग्य अन्नपानादि भांति भांतिकी सामग्री लाकर दे दी। हे महाराज ! पुरुषोंमें वीर पाण्डव मनमाने भोजन कर तृप्त हुए और उपहारकी वस्तुओंमेंसे दूसरी सब तजकर केवल लडाई योग्य पदार्थोंको देखने लगे। तब राजा द्रुपद और उनके पुत्र और प्रधान मन्त्री यह देख कुन्तीकुमारोंको राजकुमार निश्चय कर आनन्द मानने लगे। (१३-१७) [७४०७]

आदिपर्वमें एकसौ छानवे अध्याय समाप्त।

आदिपर्वमें एकसौ सतानब्बे अध्याय।

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि अनन्तर अति द्युतिमान पाञ्चाल्य द्रुपद, बडे तेजस्वी राजपुत्र युधिष्ठिरको संभाषण करके विना दुःख ब्राह्मणयोग्य आदरके साथ बोले, कि तुमको ब्राह्मण, क्षत्रिय, गुणवान वैश्य वा शूद्र इनमेंसे कौनसी जाती समझूं ! अथवा तुम देवता तो नहीं हो, कि देखनेके लिये माया लेकर ब्राह्मणोंके स्वरूपमें टहलते हुए कृष्णाके

ब्रवीतु नो भवान्सत्यं संदेहो ह्यत्र नो महान्॥ ४॥
अपि नः संशयस्याऽन्ते मनः संतुष्टिमावहेत्।
अपि नो भागधेयानि शुभानि स्युः परंतप॥ ५॥
इच्छया ब्रूहि तत्सत्यं सत्यं राजसु शोभते।
इष्टापूर्तेन च तथा वक्तव्यमनृतं न तु॥ ६॥
श्रुत्वा ह्यमरसंकाशं तव वाक्यमरिंदम।
ध्रुवं विवाहकरणमास्थास्यामि विधानतः॥ ७॥

युधिष्ठिर उवाच— मा राजन्विमना भूस्त्वं पाञ्चाल्य प्रीतिरस्तु ते।
ईप्सितस्ते ध्रुवः कामः संवृत्तोऽयमसंशयम्॥ ८॥
वयं हि क्षत्रिया राजन्पाण्डोः पुत्रा महात्मनः।
ज्येष्ठं मां विद्धि कौन्तेयं भीमसेनार्जुनाविमौ॥ ९॥
आभ्यां तव सुता राजन्निर्जिता राजसंसदि।
यमौ च तत्र कुन्ती च यत्र कृष्णा व्यवस्थिता॥१०॥
व्येतु ते मानसं दुःखं क्षत्रियाः स्मो नरर्षभ।
पद्मिनीव सुतेयं ते ह्रदादन्यह्रदं गता॥ ११॥
इति तथ्यं महाराज सर्वमेतद्ब्रवीमि ते।

निमित्त यहां शुभागमन किया है? तुम सच कहो इस विषयमें हमको शंका हुई है। हे शत्रुमंथन! क्या इस शङ्काके दूर होनेसे हमारे हृदयमें आनन्द जल वर्षेगा? क्या हमारा सौभाग्य उगा है? हे अमर सदृश! अपनी इच्छासे सत्य वचन बोलो, राजाके सामने सच कहना, जितनी शोभा है, इष्टापूर्त अर्थात् यज्ञादि क्रिया और वापी प्रतिष्ठा आदि पुण्यदायी कर्मभी उतनी शोभा नहीं देते, सो असत्य न कहना। हे शत्रुमथन! मैं तुम्हारा वचन सुनके यथारीति तुम्हारी जाति-योग्य विवाह करनेका उद्योग करूंगा। (१-७)

युधिष्ठिर बोले, कि हे पाञ्चालनाथ! आप दुःख न मानें, सन्तोष लें; सन्देह नहीं, कि आपका मनोरथ सफल हुआ है। महाराज! हम क्षत्रियवंशी महात्मा राजा पाण्डुके पुत्र हैं। मैं कुन्तीका ज्येष्ठ पुत्र हूं; यह दो भीमार्जुन हैं, इन्होंनेही राजसभामें आपकी कन्या जय करली है; और जहां कृष्णा है, वहीं यमज भ्राता नकुल सहदेव और माता विराज रही हैं; सो आप हमको क्षत्रिय निश्चय करलें; हे नरसिंह! आप मनका दुःख दूर करें; पद्मिनी समान आपकी यह कन्या एक झीलसे दूसरे झीलमें

भवान्हि गुरुरस्माकं परमं च परायणम् ॥ १२ ॥

वैशम्पायन उवाच—ततः स द्रुपदो राजा हर्षव्याकुललोचनः ।
प्रतिवक्तुं मुदा युक्तो नाशकत्तं युधिष्ठिरम् ॥ १३ ॥
यत्नेन तु स तं हर्षं संनिगृह्य परंतपः ।
अनुरूपं तदा वाचा प्रत्युवाच युधिष्ठिरम् ॥ १४ ॥
पप्रच्छ चैनं धर्मात्मा यथा ते प्रद्रुताः पुरात् ।
स तस्मै सर्वमाचख्यावानुपूर्व्येण पाण्डवः ॥ १५ ॥
तच्छ्रुत्वा द्रुपदो राजा कुन्तीपुत्रस्य भाषितम् ।
विगर्हयामास तदा धृतराष्ट्रं नरेश्वरम् ॥ १६ ॥
आश्वासयामास च तं कुन्तीपुत्रं युधिष्ठिरम् ।
प्रतिजज्ञे च राज्याय द्रुपदो वदतां वर ॥ १७ ॥
ततः कुन्ती च कृष्णा च भीमसेनार्जुनावपि ।
यमौ च राजा संदिष्टं विविशुर्भवनं महत् ॥ १८॥
तत्र ते न्यवसन्राजन्यज्ञसेनेन पूजिताः ।
प्रत्याश्वस्तस्ततो राजा सह पुत्रैरुवाच तम् ॥ १९ ॥
गृह्णातु विधिवत्पाणिमद्याऽयं कुरुनन्दनः ।
पुण्येऽहनि महाबाहुरर्जुनः कुरुतां क्षणम् ॥ २० ॥

लायी गयी है। हे महाराज ! आप हमारे गुरु और परम गति हैं ? सो आपसे यह सब ब्योरा सच कह दिया। (८-१२)

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि हे महाराज शत्रु डरावने धर्मधर राजा द्रुपद पाण्डवोंका परिचय पाकर परम हर्षसे घबराकर युधिष्ठिरको योग्य उत्तर न दे सके। वह उस हर्षको यत्नसे दबाकर धर्मराजको कालयोग्य वचन बोले। पूछा, कि वे क्योंकर वारणावत नगरसे भागे थे। पाण्डुपुत्रने आद्योपान्त वह सब कथा कह सुनायी। वचनशील राजा द्रुपद उनकी बात सुनकर नरनाथ धृतराष्ट्रकी निन्दा करने लगे और कुन्तीपुत्र युधिष्ठिरको ढाडस दे उनको राज्यमें बैठानेकी प्रतिज्ञा की। अनन्तर कुन्ती, द्रौपदी, भीम, अर्जुन, नकुल और सहदेव राजाकी आज्ञासे एक बडे भवन में गये। हे महाराज ! वे राजा यज्ञसेनसे सन्मान पाकर उस भवनमें वसने लगे। अनन्तर राजा पुत्रोंके साथ सोच युधिष्ठिरसे बोले, कि आज शुभ दिन है, आज कुरुनन्दन अर्जुन विवाहके कौलिक कर्मोंको करके कृष्णासे विवाह करें। (१३-२०)

वैशम्पायन उवाच—तमब्रवीत्ततो राजा धर्मात्मा च युधिष्ठिरः ।
ममाऽपि दारसम्बन्धः कार्यस्तावद्विशांपते ॥ २१ ॥
द्रुपद उवाच — भवान्वा विधिवत्पाणिं गृह्णातु दुहितुर्मम ।
यस्य वा मन्यसे वीर तस्य कृष्णामुपादिश ॥ २२ ॥
युधिष्ठिर उवाच— सर्वेषां महिषी राजन्द्रौपदी नो भविष्यति ।
एवं प्रव्याहृतं पूर्वं मम मात्रा विशांपते ॥ २३ ॥
अहं चाऽप्यनिविष्टो वै भीमसेनश्च पाण्डवः ।
पार्थेन विजिता चैषा रत्नभूता सुता तव ॥ २४ ॥
एष नः समयो राजन्रत्नस्य सह भोजनम् ।
न च तं हातुमिच्छामः समयं राजसत्तम ॥ २५ ॥
सर्वेषां धर्मतः कृष्णा महिषी नो भविष्यति ।
आनुपूर्व्येण सर्वेषां गृह्णातु ज्वलने करान् ॥ २६ ॥
द्रुपद उवाच — एकस्य बह्व्यो विहिता महिष्यः कुरुनन्दन ।
नैकस्या बहवः पुंसः श्रूयन्ते पतयः क्वचित् ॥ २७ ॥
लोकवेदविरुद्धं त्वं नाऽधर्मं धर्मविच्छुचिः ।
कर्तुमर्हसि कौन्तेय कस्मात्ते बुद्धिरीदृशी ॥ २८ ॥

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि हे महाराज! धर्मात्मा युधिष्ठिर उनसे बोले, कि हे नरनाथ! मुझकोभी विवाह करना है। द्रुपदने कहा, कि हे वीर! तुमही विधिपूर्वक मेरी बेटीका पाणिग्रहण करो, अथवा तुम जिससे कृष्णाको ब्याहा चाहो उसीसे ब्याहो। युधिष्ठिर बोले, हे महात्मा! द्रौपदी हम सबोंकी रानी बनेगी, क्योंकि पहिले मेरी माताने ऐसी आज्ञा की है, विशेष मेरा और भीमसेनका विवाह नहीं हुआ है; यद्यपि अर्जुनने तुम्हारी रत्नसदृश कन्याको बाजीमें जीत लिया है, पर हे राजेन्द्र! हम भाइयोंमें एक नियम है, कि रत्न पानेसे हम सब एकत्र होकर भोग करेंगे। हम उस नियमके विरुद्ध चलने का साहस नहीं रखते; सो द्रौपदी हम सबोंकी धर्मपत्नी होगी; वह अग्निके सामने बडे छोटेके क्रमसे हम सबोंसे विवाह करे। (२१—२६)

द्रुपद बोले, हे कुरुनन्दन! शास्त्रकी विधिसे एक पुरुषकी बहुत स्त्री होती हैं, पर एक नारिका बहुत पति होना कभी नहीं सुना। हे कुन्तीपुत्र! तुम पवित्र और धर्मके जानकार होकरके भी क्योंकर लोक और वेदके विरोधी कर्ममें हाथ

युधिष्ठिर उवाच—सूक्ष्मो धर्मो महाराज नाऽस्य विद्मो वयं गतिम् ।
पूर्वेषामानुपूर्व्येण यातं वर्त्माऽनुयामहे ॥ २९ ॥
न मे वागनृतं प्राह नाऽधर्मे धीयते मनः ।
एवं चैव वदत्यम्बा मम चैतन्मनोगतम् ॥ ३० ॥
एष धर्मो ध्रुवो राजंश्चरैनमविचारयन् ।
मा च शङ्का तत्र ते स्यात्कथंचिदपि पार्थिव ॥३१॥

द्रुपद उवाच—त्वं च कुन्ती च कौन्तेय धृष्टद्युम्नश्च मे सुतः ।
कथयन्त्वितिकर्तव्यं श्वः काले करवामहे ॥३२ ॥

वैशम्पायन उवाच—ते समेत्य ततः सर्वे कथयन्ति स्म भारत ।
अथ द्वैपायनो राजन्नभ्यागच्छद्यदृच्छया ॥ ३३ ॥ [७४४०]

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यामादिपर्वणि वैवाहिकपर्वणि
द्वैपायनागमने सप्तनवत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १९७ ॥

वैशम्पायन उवाच—ततस्ते पाण्डवाः सर्वे पाञ्चाल्यश्च महायशाः ।
प्रत्युत्थाय महात्मानं कृष्णं सर्वेऽभ्यवादयन् ॥ १ ॥

डाला चाहते हो ! क्यों तुम्हारी ऐसी बुद्धि हुई ? युधिष्ठिर बोले, महाराज ! धर्ममार्ग सूक्ष्म है, उसकी गति हम जान नहीं सकते । पर प्रचेता आदि पहिलेके महात्मा जिस पथसे चले हैं, हम उसी पथसे चलेंगे । हे राजन् ! मेरी माताने वह आज्ञा दी है और वह मेरा भी मनमाना हुआ है ; सो वह अवश्यही सनातन धर्म है, क्यों कि मेरे वागिन्द्रियसे कभी झूठी बात नहीं निकलती, मेरा मन भी अधर्मकी ओर नहीं चलता । आप इस मतसे काम करें, अधिक विचारनेका प्रयोजन नहीं है; हे पृथ्वीनाथ ! इस विषयमें आप कोई शङ्का न करें (२७—३१)

द्रुपद बोले, कि हे कुन्तीपुत्र ! तुम, कुन्ती और मेरा पुत्र धृष्टद्युम्न यह तीन मिलके विचार कर क्या करना है, निश्चय करो, मैं कल जो करना हो, करूंगा । श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि हे भारत ! अनन्तर कुन्ती, युधिष्ठिर और धृष्टद्युम्न यह तीन एकत्र होकर उस विषयमें विचारने लगे। ऐसे समयमें भगवान् द्वैपायन आपही वहां आ पहुंचे । (३२-३३)

आदिपर्वमें एकसौ सतानव्वे अध्याय समाप्त ७४४०

आदिपर्वमें एकसौ अठानव्वे अध्याय ।

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि अनन्तर सब पाण्डव बडे यशोवन्त राजा पाञ्चाल और वहांके दूसरे लोगोंने उठ कर महात्मा कृष्णद्वैपायनका स्वागत किया । महानुभव

प्रतिनन्द्य स तां पूजां पृष्ट्वा कुशलमन्ततः ।
आसने काञ्चने शुद्धे निषसाद महामनाः ॥ २ ॥
अनुज्ञातास्तु ते सर्वे कृष्णेनाऽमिततेजसा ।
आसनेषु महार्हेषु निषेदुर्द्विपदां वराः ॥ ३ ॥
ततो मुहूर्तान्मधुरां वाणीमुच्चार्य पार्षतः ।
पप्रच्छ तं महात्मानं द्रौपद्यर्थं विशांपते ॥ ४ ॥
कथमेका बहूनां स्याद्धर्मपत्नी न सङ्करः ।
एतन्मे भगवान्सर्वं प्रब्रवीतु यथातथम् ॥ ५ ॥

व्यास उवाच— अस्मिन्धर्मे विप्रलब्धे लोकवेदविरोधके ।
यस्य यस्य मतं यद्यच्छ्रोतुमिच्छामि तस्य तत्॥६॥

द्रुपद उवाच— अधर्मोऽयं मम मतो विरुद्धो लोकवेदयोः ।
न ह्येका विद्यते पत्नी बहूनां द्विजसत्तम ॥ ७ ॥
न चाऽप्याचरितः पूर्वैरयं धर्मो महात्मभिः ।
न चाऽप्यधर्मो विद्वद्भिश्चरितव्यः कथंचन ॥ ८ ॥
ततोऽहं न करोम्येनं व्यवसायं क्रियां प्रति ।
धर्मः सदैव संदिग्धः प्रतिभाति हि मे त्वयम् ॥९॥

महर्षि उनका प्रणाम आदर पूर्वक लेके कुशलक्षेम पूछकर सुन्दर सुवर्णके आसन पर बैठे। पाण्डव आदि सबने अति तेजस्वी कृष्णद्वैपायनकी आज्ञासे महामूल्य आसन लिये। हे पृथ्वीनाथ! पृषतराजपुत्र राजा पञ्चालने क्षण भर पीछे मधुर वचन कहके महात्मा ऋषिसे द्रौपदीके ब्याहनेके विषयमें प्रश्न किया। हे भगवन् सच कहें, कि एक स्त्रीके बहुत पुरुषोंकी धर्मपत्नी होनेसे सङ्करता का दोष पहुंचता है, कि नहीं? (१-५)

व्यासजी बोले, कि वेद और लोकाचारमें प्रसिद्ध न रहनेसे यह धर्म लोप होगया है, पर इस विषयमें तुम लोगोंमेंसे किसका क्या मत है, सुनना चाहता हूं।(६)

द्रुपद बोले, कि हे द्विजश्रेष्ठ! कहीं अनेक पुरुषोंकी एक स्त्री नहीं है; सो यह कर्म लोकाचार और वेदके विरोधी होनेके कारण अधर्मयुक्त जान पडता है; पहिलेके महात्माओंने भी ऐसा कार्य नहीं किया। विद्वान जनको किसी प्रकार अधर्म मार्गमें पांव डालना नहीं चाहिये; इस लिये मैं इस काममें हाथ डालनेका साहस नहीं कर सकता हूं; यह धर्म मुझको सदा सन्देहसे भरा हुआ प्रगट हो रहा है। (७-९)

धृष्टद्युम्न उवाच —यवीयसः कथं भार्यां ज्येष्ठो भ्राता द्विजर्षभ ।
ब्रह्मन्समभिवर्तेत सद्वृत्तः संस्तपोधन ॥ १० ॥
न तु धर्मस्य सूक्ष्मत्वाद्गतिं विद्मः कथंचन ।
अधर्मो धर्म इति वा व्यवसायो न शक्यते ॥ ११ ॥
कर्तुमस्मद्विधैर्ब्रह्मंस्ततोऽयं न व्यवस्यते ।
पञ्चानां महिषी कृष्णा भवत्विति कथंचन ॥ १२ ॥
युधिष्ठिर उवाच— न मे वागनृतं प्राह नाऽधर्मे धीयते मतिः ।
वर्तते हि मनो मेऽत्र नैषोऽधर्मः कथंचन ॥ १३ ॥
श्रूयते हि पुराणेऽपि जटिला नाम गौतमी ।
ऋषीनध्यासितवती सप्त धर्मभृतां वरा ॥ १४ ॥
तथैव मुनिजा वार्क्षी तपोभिर्भावितात्मनः ।
संगताऽभूद्दश भ्रातृनेकनाम्नः प्रचेतसः ॥ १५ ॥
गुरोर्हि वचनं प्राहुर्धर्म्यं धर्मज्ञसत्तम ।
गुरूणां चैव सर्वेषां माता परमको गुरुः ॥ १६ ॥
सा चाऽप्युक्तवती वाचं भैक्ष्यवद्भुज्यतामिति ।

धृष्टद्युम्न बोले, कि ब्रह्मन् ! आप द्विजोंमें श्रेष्ठ और तपोबलसे बली हैं; कहें तो सही, कि बडे भाई सुमार्गी होकर क्योंकर छोटे भाई की स्त्रीसे मिल सकता है। धर्म बहुत सूक्ष्म है, सो कौनसा विषय धर्मयुक्त और कौन अधर्म युक्त है, इसका विचार नहीं कर सकते, इसीसे साहस-पूर्वक यह नहीं कहा, कि द्रौपदी पांच पुरुषोंकी स्त्री बने। (१०–१२)

युधिष्ठिर बोले, कि मेरा वचन कभी उलट पुलट बात नहीं बोलता, मन भी कभी अधर्म पर नहीं झुकता, इस विषय में मेरे मनकी भी प्रवृत्ति हो रही है; सो यह किसी प्रकार धर्मके विरुद्ध जान नहीं पडता। पुराणोंमें भी सुना है, कि जटिला नाम्नी गौतम गोत्रकी धर्म पालनेवाली तापसी एक कन्या थी; सात ऋषियोंने उससे विवाह किया था। और पूर्वकालमें तपस्वी जितेन्द्रिय "प्रचेता" इस एक नामके दश भाई थे; वृक्षसे उपजी हुई एक मुनिकन्या उन दशों से ब्याही थी। हे धर्मके जानकारोंमें श्रेष्ठ! कहा है, कि गुरु जैसी आज्ञा करते हैं, वही धर्मयुक्त है; और सब गुरुओंमें माता ही परम गुरु है; उन परमगुरु माताने हमको आज्ञा दी है, कि भिक्षाकी सामग्रीको सब मिलकर भोगो। हे

तस्मादेतदहं मन्ये परं धर्मं द्विजोत्तम ॥ १७ ॥

कुन्त्युवाच — एवमेतद्यथा प्राह धर्मचारी युधिष्ठिरः ।
अनृतान्मे भयं तीव्रं मुच्येऽहमनृतात्कथम् ॥ १८ ॥

व्यास उवाच — अनृतान्मोक्षसे भद्रे धर्मश्चैष सनातनः ।
न तु वक्ष्यामि सर्वेषां पाञ्चाल शृणु मे स्वयम्॥ १९ ॥
यथाऽयं विहितो धर्मो यतश्चायं सनातनः ।
यथा च प्राह कौन्तेयस्तथा धर्मो न संशयः ॥ २० ॥

वैशम्पायन उवाच—तत उत्थाय भगवान्व्यासो द्वैपायनः प्रभुः ।
करे गृहीत्वा राजानं राजवेश्म समाविशत् ॥ २१ ॥
पाण्डवाश्चाऽपि कुन्ती च धृष्टद्युम्नश्च पार्षतः ।
विविशुर्यत्र तत्रैव प्रतीक्षन्ते स्म तावुभौ ॥ २२ ॥
ततो द्वैपायनस्तस्मै नरेन्द्राय महात्मने ।
आचख्यौ तद्यथा धर्मो बहूनामेकपत्निता ॥२३॥[७४६३]

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यामादिपर्वणि वैवाहिकपर्वणि व्यासवाक्येऽष्टनवत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १९८ ॥

व्यास उवाच — पुरा वै नैमिषारण्ये देवाः सत्रमुपासते ।

द्विजोत्तम ! मैंने इस लिये इस कर्मको परम धर्म विचारा है। (१३—१७)

कुन्ती बोली, धर्म आचरनेवाले युधिष्ठिरने जैसा कहा, वह ठीकही है; मेरी वह बात झूठी न ठहर जाये, इसलिये मैं बहुत भय खागयी हूं, हे ब्रह्मन् ! क्यों-कर उस बातकी सचाई बनी रहेगी। (१८)

श्रीव्यासजी बोले, कि भद्रे ! तुम्हारे बातकी सचाई बनी रहेगी; तुमने जो कहा है, वह सनातन धर्म है। हे पांचाल! युधिष्ठिरने जो कहा है वही धर्मयुक्त है; इसमें कोई शङ्का नहीं है। यह जिस प्रकार जिनसे सनातनधर्म करके निश्चय किया गया, वह सबोंसे नहीं कहूंगा, केवल तुमही सुनो। (१९—२०)

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि अनन्तर प्रभु द्वैपायन भगवान व्यासजी उठकर राजाका हाथ थामकर राजमन्दिरमें गये। कुन्ती, पाण्डव और धृष्टद्युम्न उन दोनों की बाट ताकते हुए वहीं बैठे रहे; अनन्तर महर्षि द्वैपायन महात्मा द्रुपदसे यह कथा कहने लगे, कि अनेक पुरुषों-को एक स्त्री होना धर्मके विरुद्ध नहीं है। (२१–२३) [७४६३]

आदिपर्वमें एकसौ बानवे अध्याय समाप्त।

तत्र वैवस्वतो राजञ्छामित्रमकरोत्तदा ॥ १ ॥
ततो यमो दीक्षितस्तत्र राजन्नाऽमारयत्कंचिदपि प्रजानाम्।
ततः प्रजास्ता बहुला बभूवुः कालातिपातान्मरणप्रहीणाः॥ २ ॥
सोमश्च शक्रो वरुणः कुबेरः साध्या रुद्रा वसवोऽथाश्विनौ च।
प्रणेतारं भुवनस्य प्रजापतिं समाजग्मुस्तत्र देवास्तथाऽन्ये॥ ३ ॥
ततोऽब्रुवँल्लोकगुरुं समेता भयात्तीव्रान्मानुषाणां विवृद्ध्या।
तस्माद्भयादुद्विजन्तः सुखेप्सवः प्रयाम सर्वे शरणं भवन्तम्॥४ ॥
पितामह उवाच – किं वो भयं मानुषेभ्यो यूयं सर्वे यदाऽमराः।
मा वो मर्त्यसकाशाद्वै भयं भवितुमर्हति ॥ ५ ॥
देवा ऊचुः– मर्त्या अमर्त्याः संवृत्ता न विशेषोऽस्ति कश्चन।
अविशेषादुद्विजन्तो विशेषार्थमिहाऽऽगताः॥ ६ ॥
भगवानुवाच– वैवस्वतो व्यापृतः सत्रहेतोस्तेन त्विमे न म्रियन्ते मनुष्याः।
तस्मिन्नेकाग्रे कृतसर्वकार्ये तत एषां भवितैवाऽन्तकालः॥ ७ ॥
वैवस्वतस्यैव तनुर्विभूषिता वीर्येण युष्माकमुत प्रवृद्धा ।

आदिपर्वमें एकसौ निनानव्वे अध्याय।

श्रीव्यासजी बोले, कि महाराज! पहिले नैमिषारण्यमें देवोंने महायज्ञ आरम्भ किया था। उस महायज्ञमें वैवस्वत यम पशु मारनेको नियुक्त हुए थे। वह उस काममें प्रवृत्त रहके किसी प्रजाको नहीं मारते थे, इससे मनुष्योंके मृत्युसे बचने पर उनका भय दिनोदिन बढने लगा। अनन्तर चन्द्र, इन्द्र, वरुण, कुबेर, दोनों अश्विनीकुमार, साध्यगण, रुद्रगण, वसुगण, और दूसरे देवगण भुवन रचनेहारे प्रजापतिके निकट जा पहुंचे;और सब मिलकर मनुष्योंकी संख्या वृद्धि होनेके कारण भीतचित्तसे उन लोकोंके गुरु ब्रह्माजीसे बोले, मनुष्योंकी संख्या बढनेसे हम बडे भयसे उदास हैं, और सुखकी आशासे आपकी शरण लेते हैं। (१–४)

पितामह बोले, कि मनुष्योंसे तुम्हे क्या भय है? तुम सब अमर हो, सो मर्त्योंसे तुमको भय खाना नहीं चाहिये। देवगण बोले, कि अब मर्त्यगण अमर्त्य हुए हैं, सो हम लोगोंमें कोई विशेषता नहीं रही,इसलिये हम उदास हो मर्त्योंसे अपना प्रभेद बनाये रखनेकी चाहसे यहां आये हैं। भगवान बोले, कि तपनपुत्र इस कालमें यज्ञमें बसे हैं, सो नरोंको मृत्यु नहीं हो रही है, पर उनके यज्ञसे सम्पूर्ण कार्य हो जाने पर मानवोंका अन्तकाल आ पहुंचेगा। तब यमराजका

सेयामन्तो भविता ह्यन्तकाले न तत्र वीर्यं भविता नरेषु ॥ ८ ॥
व्यास उवाच—ततस्तु ते पूर्वजदेववाक्यं श्रुत्वा जग्मुर्यत्र देवा यजन्ते।
समासीनास्ते समेता महाबला भागीरथ्यां ददृशुः पुण्डरीकम्॥ ९ ॥
दृष्ट्वा च तद्विस्मितास्ते बभूवुस्तेषामिन्द्रस्तत्र शूरो जगाम ।
सोऽपश्यद्योषामथ पावकप्रभां यत्र देवी गङ्गा सततं प्रभूता॥ १० ॥
सा यत्र योषा रुदती जलार्थिनी गङ्गां देवीं व्यवगाह्य व्यतिष्ठत्।
तस्याऽश्रुबिन्दुः पतितो जले यस्तत्पद्ममासीदथ तत्र काञ्चनम्॥११ ॥
तदद्भुतं प्रेक्ष्य वज्री तदानीमपृच्छत्तां योषितमन्तिकाद्वै।
का त्वं भद्रे रोदिषि कस्य हेतोर्वाक्यं तथ्यं कामयेऽहं ब्रवीहि॥ १२ ॥
स्त्र्युवाच— त्वं वेत्स्यसे मामिह याऽस्मि शक्र यदर्थं चाऽहं रोदिमि मन्दभाग्या।
आगच्छ राजन्पुरतो गमिष्ये द्रष्टासि तद्रोदिमि यत्कृतेऽहम्॥ १३ ॥
व्यास उवाच- तां गच्छन्तीमन्वगच्छत्तदानीं सोऽपश्यदारात्तरुणं दर्शनीयम्।
सिंहासनस्थं युवतीसहायं क्रीडन्तमक्षैर्गिरिराजमूर्ध्नि ॥ १४ ॥
तमब्रवीद्देवराजो ममेदं त्वं विद्धि विद्वन्भुवनं वशे स्थितम् ।

शरीर तुम्हारेही वीर्यसे सजकर और बढकर जीवनाशी बन जायगा। मनुष्योंको कुछ वीर्य नहीं रहेगा। (५-८)

श्रीव्यासजी बोले, कि अनन्तर महाबली देवगण पितामहका वचन सुनकर नैमिषारण्यमें यज्ञ भूमिपर गये। वे उस ओर ठहरे थे, कि ऐसे समयमें देखा, कि भागीरथीके जलसे एक सुवर्णपद्म बहा जाता है, उसके देखतेही वे अचंभेमें हो रहे, अनन्तर ढूंढनेके लिये, कि वह सोनेका कमल कहांसे उपजा है, उनमेंसे शूरतायुक्त इन्द्र वहांसे चल निकले। जहांसे गङ्गाजी निकलती हैं, वहां पहुंचकर उन्होंने अग्निकी शोभाके समान एक उजाली कन्या देखी। वह नारी रोती हुई जलकी चाहसे गंगाजीमें देह डुबा रही थी। उसके आंसूके बूंदे गंगाजलमें गिरके सुवर्ण कमल बनते जाते थे। देवराज वैसी अचंभी लीला देखके उसके पास जाकर बोले, कि भद्रे! तुम कौन क्यों रो रही हो? मैं इसका ब्योरा जाना चाहता हूं। बाला बोली, कि देवराज! मैं बडी अभागी हूं, तुम मेरे संग चलो, तो जान सकोगे कि मैं कौन और क्यों रो रही हूं। हे महाराज! तुम मेरे साथ आओ, मैं तुम्हारे आगे चलती हूं; रुलाईका कारण तुम देख लोगे। (९-१३)

श्रीव्यासजी बोले, कि देवराज तब नारीकी यह बात सुनके उसके पीछे पीछे चलने लगे। आगे कुछ दूर जाकर

ईशोऽहमस्मीति समन्युरब्रवीद् दृष्ट्वा तमक्षैः सुभृशं प्रमत्तम्॥ १५॥
क्रुद्धं च शक्रं प्रसमीक्ष्य देवो जहास शक्रं च शनैरुदैक्षत ।
संस्तम्भितोऽभूदथ देवराजस्तेनेक्षितः स्थाणुरिवाऽवतस्थे॥ १६ ॥
यदा तु पर्याप्तमिहाऽस्य क्रीडया तदा देवीं रुदतीं तामुवाच ।
आनीयतामेष यतोऽहमारान्नैनं दर्पः पुनरप्याविशेत ॥ १७ ॥
ततः शक्रः स्पृष्टमात्रस्तथा तु स्रस्तैरङ्गैः पतितोऽभूद्धरण्याम् ।
तमब्रवीद्भगवानुग्रतेजा मैवं पुनः शक्र कृथा कथंचित् ॥ १८ ॥
निवर्तयैनं च महाद्रिराजं बलं च वीर्यं च तवाऽप्रमेयम् ।
छिद्रस्य चैवाऽऽविश मध्यमस्य यत्राऽऽसते त्वाद्विधाः सूर्यभासः१९
स तद्विवृत्य विवरं महागिरेस्तुल्यद्युतींश्चतुरोऽन्यान्ददर्श ।
स तानभिप्रेक्ष्य बभूव दुःखितः कच्चिन्नाऽहं भाविता वै यथेमे २०॥
ततो देवो गिरिशो वज्रपाणिं विवृत्य नेत्रे कुपितोऽभ्युवाच।

पासही हिमाचलकी चोटी पर देखा, कि एक परम सुन्दर युवा पुरुष युवतीके साथ सिंहासन पर बैठ चोसड खेल रहे हैं। सुरनाथ उनको चोसडमें बडे मगन देखके बोले, कि हे पण्डितवर! जानना, कि यह तीनों भुवन मेरेही वशमें हैं। इसपर पुरुषके कोई उत्तर न देने पर इन्द्रने क्रोधके मारे फिर कहा, कि मैं भूमण्डल भरका अधीश हूं। तब उन खेलते हुए पुरुषने देवराजको क्रोधित देख एकबार उनकी ओर आंखें फेरीं। देवराज उनकी आंखोंके सामने पडतेही जडवत बन गये। अनन्तर वह पुरुष चोसड खेल लेनेके पीछे उस रोती हुई बालासे बोले, कि तुम इस इन्द्रको लाओ, उसको शासन कर दूंगा, कि वह मेरे साम-ने फिर अहंकार न प्रगट करे। (१४-१७)

अनन्तर उस नारीके देवराजको लानेके लिये छूतेही देवराजके अंग अवश हुए और वह धरती पर गिर पडे। तब उन पुरुषरूपी कठोर तेजस्वी भगवान् महादेवजीने उनसे कहा, कि इन्द्र! फिर कभी ऐसा काम न करना! तुम्हारा बलवीर्य बहुत अधिक है, सो तुम इस गड्ढेके द्वार रोके हुए बडे पर्वतको खोल कर बिलके भीतर जाघुसो; तुम वहां देखोगे कि तुम्हारे समान सूर्यवत प्रकाश-मान बहुत इन्द्र हैं। (१८—१९)

तब देवराजने पर्वतराजके उस बिलके द्वारको खोलके उसमें अपने ऐसे दूसरे चार इन्द्रोंको देखा। वह उनको देखते ही यह कहके दुःख करने लगे, कि "मुझको भी ऐसी दशामें रहना न पडे!" तब देवदेव महेश्वर क्रोधसे

दरीमेतां प्रविश त्वं शतक्रतो यन्मां बाल्यादवमंस्थाः पुरस्तात् २१॥
उक्तस्त्वेवं विभुना देवराजः प्रावेपताऽऽर्तो भृशमेवाऽभिषङ्गात् ।
स्रस्तैरङ्गैरनिलेनेव नुन्नमश्वत्थपत्रं गिरिराजमूर्ध्नि ॥ २२ ॥
स प्राञ्जलिर्वै वृषवाहनेन प्रवेपमानः सहसैवमुक्तः ।
उवाच देवं बहुरूपमुग्रं द्रष्टाऽशेषस्य भुवनस्य त्वं भवाऽद्य॥ २३ ॥
तमब्रवीदुग्रवर्चाः प्रहस्य नैवंशीलाः शेषमिहाऽऽप्नुवन्ति ।
एतेऽप्येवं भवितारः पुरस्तात्तस्मादेतां दरीमाविशाऽत्रैव शेध्व २४॥
तत्र ह्येवं भवितारो न संशयो योनिं सर्वे मानुषीमाविशध्वम् ।
तत्र यूयं कर्म कृत्वाऽविषह्यं बहूनन्यान्निधनं प्रापयित्वा ॥ २५ ॥
आगन्तारः पुनरेवेन्द्रलोकं स्वकर्मणा पूर्वजितं महार्हम् ।
सर्वं मया भाषितमेतदेवं कर्तव्यमन्यद्विविधार्थयुक्तम् ॥ २६ ॥
पूर्वेन्द्रा ऊचुः—गमिष्यामो मानुषं देवलोका दुराधरो विहितो यत्र मोक्षः ।

नेत्र फैला कर इन्द्रसे बोले कि इन्द्र ! तू बिलमें जा गिर, क्यों कि पहिले तूने चपलतासे मेरा अनादर किया है । इन्द्र विभुके क्रोधित वचनसे अति कातर होकर इस प्रकार वेगसे कांपने लगे, कि जैसे पहाड परके पीपलके पत्ते हवासे डोलाये जाकर थरथरावें । (२०-२२)

वह बैल पर चढे महादेवजी से एकायक ऐसी कटीली बात सुनके थरथराते हुए दोनों हाथ जोडकर अनेक रूप लेनेवाले उन कठोर देवसे बोले , कि हे आदिनाथ ! हे भव! तुम चराचर सहित सम्पूर्ण विश्वके देखनेवाले हो , तुम सब कुछ जान लेते हो। तब कठोर तेजस्वी महादेवजी हंसकर बोले, कि मैं उनपर कभी प्रसन्न नहीं होता,जो लोग ऐसा अहंकारी स्वभाव रखते हैं। देखो, पहिले यह सब इन्द्र ऐसाही कर्म कर इस बिलमें जा गिरे हैं, सो तुमभी उस में जाकर लेट रहो । सन्देह नहीं है, कि तुम सबोंका यही हाल होगा,कि तुम पाचोंको मनुष्यजन्म लेकर मर्त्य लोकमें अनेक भांतिके कठोर कर्म करने पडेंगे, अनेक जीवों को मार कर पहिले के जीत लिये हुए अति मूल्यवान इन्द्रलोकमें शुभागमन करोगे; तुम्हारे लिये मैंने ऐसाही निश्चय किया है । पहिले इन्द्रलोग बोले, कि हम पांचों इंद्र देवलोकसे मर्त्य लोकको शीघ्र जायंगे कि जहां मोक्षको मिलना कठिन है; पर हमारी प्रार्थना यह है, कि उस स्त्रीके कि जो हमारी माता होगी, धर्म, वायु, मघवान और दोनों अश्विनीकुमार यह पांच देव हमारे लिये गर्भाधान करें ।

देवास्त्वस्मानादधीरञ्जनन्यां धर्मो वायुर्मघवानश्विनौ च ।
अस्त्रैर्दिव्यैर्मानुषान्योधयित्वा आगन्तारः पुनरेवेन्द्रलोकम् ॥ २७ ॥
व्यास उवाच-एतच्छ्रुत्वा वज्रपाणिर्वचस्तु देवश्रेष्ठं पुनरेवेदमाह ।
वीर्येणाऽहं पुरुषं कार्यहेतोर्दद्यामेषां पञ्चमं मत्प्रसूतम् ॥ २८ ॥
विश्वभुग्भूतधामा च शिबिरिन्द्रः प्रतापवान् ।
शान्तिश्चतुर्थस्तेषां वै तेजस्वी पञ्चमः स्मृतः ॥ २९ ॥
तेषां कामं भगवानुग्रधन्वा प्रादादिष्टं सन्निसर्गाद्यथोक्तम् ।
तां चाप्येषां योषितं लोककान्तां श्रियं भार्यां व्यदधान्मानुषेषु ॥ ३० ॥
तैरेव सार्धं तु ततः स देवो जगाम नारायणमप्रमेयम् ।
अनन्तमव्यक्तमजं पुराणं सनातनं विश्वमनन्तरूपम् ॥ ३१ ॥
स चापि तद्व्यदधात्सर्वमेव ततः सर्वे संबभूवुर्धरण्याम् ।
स चापि केशौ हरिरुद्बबर्ह शुक्लमेकमपरं चापि कृष्णम् ॥ ३२ ॥
तौ चापि केशौ निविशेतां यदूनां कुले स्त्रियौ देवकीं रोहिणीं च ॥ ३३ ॥
तयोरेको बलदेवो बभूव योऽसौ श्वेतस्तस्य देवस्य केशः ।
कृष्णो द्वितीयः केशवः संबभूव केशो योऽसौ वर्णतः कृष्ण उक्तः ॥ ३४ ॥
ये ते पूर्वं शक्ररूपा निबद्धास्तस्यां दर्यां पर्वतस्योत्तरस्य ।

पर हम मर्त्त धाममें अनेक मनुष्योंसे लडेंगे; आगे इन्द्रलोकमें आवेंगे। (२३-२७)

श्रीव्यासजी बोले, कि इन्द्रजी देवपति देवसे बोले, कि मैं स्वयं न जानकर कार्य पूरा करनेके लिये निज वीर्यसे एक पुरुष उपजा दूंगा। अनन्तर भगवान् पिनाकधारीने दया-स्वभावसे विश्वभुक्, भूतधामा, शिबि, शान्ति और तेजस्वी इन प्रतापी पांच इन्द्रोंकी प्रार्थना मान ली। और लोकोंके मन- हरने वाली स्वर्गकी श्री, उस बालाको मर्त्य लोकमें उनकी पत्नी बनानेका विधान कर दिया। आगे वह देव उनको साथ लेकर अप्रमेय नारायणके पास गये। भगवान श्रीनारायणजीने वह सब जानके उस विषयमें अपनी संमति दी। अनन्तर वे भूमण्डलमें जन्म लेने लगे। भगवान हरिने अपनी शक्तिरूपी कृष्ण और शुक्ल इन दो रङ्गके दो केश उखाड दिये। वे केश यदुवंशमें रोहिणी और देवकीके गर्भमें जाके प्रविष्ट हुए। श्रीनारायणजीके उस शुक्ल केशने बलदेवजीके स्वरूपमें जन्म लिया है; और काले वर्णका वह दूसरा केश स्वरूपके अनुसार कृष्ण बनके उपजा है। इन्द्ररूपी जो चार पुरुष उस पर्वतकी कन्दरामें बंधगये थे उन्होंने इस

इहैव ते पाण्डवा वीर्यवन्तः शक्रस्यांशः पाण्डवः सव्यसाची॥ ३५ ॥
एवमेते पाण्डवाः संबभूवुर्ये ते राजन्पूर्वमिन्द्रा बभूवुः ।
लक्ष्मीश्चैषां पूर्वमेवोपदिष्टा भार्या यैषा द्रौपदी दिव्यरूपा॥ ३६ ॥
कथं हि स्त्री कर्मणा ते महीतलात्समुत्तिष्ठेदन्यतो दैवयोगात्।
यस्या रूपं सोमसूर्यप्रकाशं गन्धश्चाऽस्या क्रोशमात्रात्प्रवाति॥३७॥
इदं चाऽन्यत्प्रीतिपूर्वं नरेन्द्र ददानि ते वरमत्यद्भुतं च ।
दिव्यं चक्षुः पश्य कुन्तीसुतांस्त्वं पुण्यैर्दिव्यैः पूर्वदेहैरुपेतान्॥ ३८ ॥
वैशम्पायन उवाच-ततो व्यासः परमोदारकर्मा शुचिर्विप्रस्तपसा तस्य राज्ञः।
चक्षुर्दिव्यं प्रददौ तांश्च सर्वान्राजाऽपश्यत्पूर्वदेहैर्यथावत् ॥ ३९ ॥
ततोदिव्यान्हेमकिरीटमालिनः शक्रप्रख्यान्पावकादित्यवर्णान् ।
बद्धापीडांश्चारुरूपांश्च यूनो व्यूढोरस्कांस्तालमात्रान्ददर्श ॥ ४० ॥
दिव्यैर्वस्त्रैररजोभिः सुगन्धैर्माल्यैश्चाग्र्यैः शोभमानानतीव।
साक्षात्त्र्यक्षान्वा वसूंश्चापि रुद्रानादित्यान्वा सर्वगुणोपपन्नान्॥४१॥

मर्त्य लोकमें पाण्डवके स्वरूपमें जन्म लिया है। पाण्डव सव्यसाची इन्द्रके अंशसे उपजे हैं (२८—३५)

हे महाराज! जो पाहिले इन्द्र थे, वे इस प्रकारसे पाण्डवोंके रूपमें अवतीर्ण हुए हैं। और जिस दिव्यरूपिणी स्वर्गलक्ष्मीकी बात कही गयी है, वही यह द्रौपदी है। यह पहिलेही निश्चय हुआ है, कि यह इन सबोंकी पत्नी बनेगी। देखो, जिसका रूप चन्द्रमा और सूर्यके उजालेकी भांति है और जिसकी सुगन्ध कोस भरतक पहुंचती है, वह क्या स्त्री दैवसंयोगके बिना धरती से उठ सकती है? हे नरनाथ! मैं प्रीतिपूर्वक तुमको अति आश्चर्य दिव्य नेत्रोंका वर देता हूं, उससे तुम कुन्तीपुत्रोंको दिव्य और पवित्र पहिलेकी देहमें देख लोगे। (३६—३८)

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि अनन्तर परम उदार कर्म करनेवाले पवित्र विप्रवर श्रीव्यासजीके तपोबलसे उस राजाको दिव्यनेत्र देने पर राजाने सब पाण्डवोंको यथावत पूर्वदेहमें देखा। उनको सुवर्ण किरीटधारी, माला पहिने, अग्नि और सूर्यके समान उज्वलवर्ण, उपयुक्त अलंकारोंसे मनोहर, तरुण, विशाल छाती वाले, पांच हाथसे कुछ कम ऊंचे और इन्द्ररूपी देखा। सर्व गुणयुक्त, निर्मल दिव्यवसन पहिने और अच्छी सुगन्धी मालासे सजे पहिलेके इन्द्रोंकी भांति उन पाण्डवोंको साक्षात् त्रिलोचन वा वसुगण, रुद्रगण, अथवा आदित्यगणके समान देख

तान्पूर्वेन्द्रानभिवीक्ष्याऽभिरूपाञ्शक्रात्मजं चेन्द्ररूपं निशम्य ।
प्रीतो राजा द्रुपदो विस्मितश्च दिव्यां मायां तामवेक्ष्याऽप्रमेयाम् ॥ ४२ ॥
तां चैवाग्र्यां स्त्रियमतिरूपयुक्तां दिव्यां साक्षात्सोमवह्निप्रकाशाम् ।
योग्यां तेषां रूपतेजोयशोभिः पत्नीं मत्वा हृष्टवान्पार्थिवेन्द्रः ॥ ४३ ॥
स तद्दृष्ट्वा महदाश्चर्यरूपं जग्राह पादौ सत्यवत्याः सुतस्य ।
नैतच्चित्रं परमर्षे त्वयीति प्रसन्नचेताः स उवाच चैनम् ॥ ४४ ॥

व्यास उवाच— आसीत्तपोवने काचिदृषेः कन्या महात्मनः ।
नाऽध्यगच्छत्पतिं सा तु कन्या रूपवती सती ॥ ४५ ॥
तोषयामास तपसा सा किलोग्रेण शङ्करम् ।
तामुवाचेश्वरः प्रीतो वृणु काममिति स्वयम् ॥ ४६ ॥
सैवमुक्ताऽब्रवीत्कन्या देवं वरदमीश्वरम् ।
पतिं सर्वगुणोपेतमिच्छामीति पुनः पुनः ॥ ४७ ॥
ददौ तस्मै स देवेशस्तं वरं प्रीतमानसः ।
पञ्च ते पतयो भद्रे भविष्यन्तीति शंकरः ॥ ४८ ॥
सा प्रसादयती देवमिदं भूयोऽभ्यभाषत ।

कर और इन्द्रपुत्र अर्जुनको साक्षात् इन्द्ररूपी निहारकर प्रसन्न हुए । आगे उस अप्रमेय दिव्य मायाको देखके अचरज मान कर चन्द्र और अग्नि समान प्रकाशवती लक्ष्मीजी सदृश परम रूपवती, श्रेष्ठतमा उस स्वर्ग-कन्याको उसके रूप, तेज और यशके द्वारा उनकी भार्या बनने योग्य समझा । (३९–४३)

राजा द्रुपद उस अति आश्चर्यलीला-को देखकर सत्यवती पुत्रके पांव छूकर बोले, कि हे परमर्षे! मुझको दिव्य नेत्र देकर इन सब आश्चर्य रूपोंका दिखाना आपके लिये कोई बडी बात नहीं है । अनन्तर द्वैपायन प्रसन्नचित्तसे फिर बोले, कि एक तपोवनमें किसी महात्मा ऋषिकी एक कन्या थी; वह कन्या रूप-वती युवती और सती होने परभी पति पा नहीं सकी थी; सो कठोर तप कर शङ्करको प्रसन्न किया । स्वयं वरदाता देवोंके ईश्वर प्रसन्न होकर बोले, कि अपना मनमाना वर मांगो । कन्या यह सुनके हडबडीसे वरदाता ईश्वरसे बार बार बोली, कि मैं सर्वगुणशील पति मांगती हूं । (४४—४७)

देवनाथ शङ्करने प्रसन्नमनसे यह कहके वर दिया, कि भद्रे ! तुम्हारे पांच पति होंगे ! शिवकी कृपा लाभ की हुई

एकं पतिं गुणोपेतं त्वत्तोऽर्हामीति शंकर ॥ ४९ ॥
तां देवदेवः प्रीतात्मा पुनः प्राह शुभं वचः ।
पञ्चकृत्वस्त्वयोक्तोऽहं पतिं देहीति वै पुनः ॥ ५० ॥
तत्तथा भविता भद्रे वचस्तद्भद्रमस्तु ते ।
देहमन्यं गतायास्ते सर्वमेतद्भविष्यति ॥ ५१ ॥
द्रुपदैषा हि सा जज्ञे सुता वै देवरूपिणी ।
पञ्चानां विहिता पत्नी कृष्णा पार्षत्यनिन्दिता ॥ ५२ ॥
स्वर्गश्रीः पाण्डवार्थं तु समुत्पन्ना महामखे ।
सेह तप्त्वा तपो घोरं दुहितृत्वं तवाऽऽगता ॥ ५३ ॥
सैषा देवी रुचिरा देवजुष्टा पञ्चानामेका स्वकृतेनेह कर्मणा ।
सृष्टा स्वयं देवपत्नी स्वयंभुवा श्रुत्वा राजन्द्रुपदेष्टं कुरुष्व ॥ ५४ ॥

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यामादिपर्वणि वैवाहिकपर्वणि पञ्चेन्द्रोपाख्याने नवनवत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १९९ ॥ [७५१७]

द्रुपद उवाच-श्रुत्वा वचस्तथ्यमिदं महार्हं नष्टप्रमोहोऽस्मि महानुभाव ।
अश्रुत्वैवं वचनं ते महर्षे मया पूर्वं यतितं संविधातुम् ।
नैव शक्यं विहितस्याऽपयानं तदेवेदमुपपन्नं विधानम् ॥ १ ॥

वह बाला वरदाता देवसे फिर बोली, कि हे शङ्कर ! मैं आपसे गुणशील एक पतिकी प्रार्थना करती हूं । प्रसन्नात्मा देव-देवने उससे फिर यह शुभ वचन कहा कि भद्रे ! तुमने यह कहा, कि पति दो, मुझसे पांच बार प्रार्थना की है, सो तुम्हारे पांच पति होंगे, तुम्हारा मङ्गल होवे, मेरी बात न पलटेगी, दूसरे जन्ममें तुम्हारे पांच पति होंगे । हे द्रुपद ! देवीरूपिणी अनिन्दिता वह तुम्हारी कन्या पांच मनुष्योंकी पत्नी होनेके लिये निश्चय की गयी है । स्वर्गकी श्री यह बाला कठोर तप करके पाण्डवोंके लिये महामखसे उपज कर तुम्हारी कन्या हुई है, देवोंसे सेवी जाती हुई सुन्दरी यह देवी स्वकृत कर्मसे अकेली पांच मनुष्योंकी स्त्री होगी ! इस अभिप्रायसे विधाताने स्वयं इसको रचा है । हे महाराज द्रुपद ! तुमने सब कथा सुन ली, अब जो चाहो सो करो । (४८—५४) [७५१७]

आदिपर्वमें एकसौ निनानव्वे अध्याय समाप्त ।

आदिपर्वमें दो सौ अध्याय ।

द्रुपद बोले, कि महर्षे ! मैंने पहिले आपसे यह न सुने रहनेसे वैसा विधान करनेका प्रयत्न किया था, अब विशेष

दिष्टस्य ग्रन्थिरनिवर्तनीयः स्वकर्मणा विहितं नेह किंचित् ।
कृतं निमित्तं हि वरैकहेतोस्तदेवेदमुपपन्नं विधानम् ॥ २ ॥
तथैव कृष्णोक्तवती पुरस्तान्नैकान्पतीन्मे भगवान्ददातु ।
स चाप्येवं वरमित्यब्रवीत्तां देवो हि वेत्ता परमं यदत्र ॥ ३ ॥
यदि चैवं विहितः शंकरेण धर्मोऽधर्मो वा नाऽत्र ममाऽपराधः।
गृह्णन्त्विमे विधिवत्पाणिमस्या यथोपजोषं विहितैषां हि कृष्णा॥४॥
वैशम्पायन उवाच- ततोऽब्रवीद्भगवान्धर्मराजं पुण्याहमद्यैव युधिष्ठिरेति ।
अद्य पौष्यं योगमुपैति चन्द्रमाः पाणिं कृष्णायास्त्वं गृहाणाऽद्य पूर्वम्॥५॥
ततो राजा यज्ञसेनः सपुत्रो जन्यार्थमुक्तं बहु तत्तदग्र्यम् ।
समानयामास सुतां च कृष्णामाप्लाव्य रत्नैर्बहुभिर्विभूष्य ॥ ६ ॥
ततस्तु सर्वे सुहृदो नृपस्य समाजग्मुः सहिता मन्त्रिणश्च ।
द्रष्टुं विवाहं परमप्रतीता द्विजाश्च पौराश्च यथाप्रधानाः ॥ ७ ॥

ज्ञात हुआ; देवताके ठहराये हुए विषय को कभी उपेक्षा नहीं की जा सकती है, अतएव पहिलेके ठहराये हुए विधान के अनुसारही कर्त्तव्य निश्चय करता हूं। भाग्यकी गांठ पलटी नहीं जा सकती; निजकर्मसे कुछ होता नहीं; एक वरके लिये लक्ष्य रचा था, वही अब पांचके लिये निश्चय होगया। कृष्णा पहिले जन्ममें जिस प्रकार पांच बार बोली थी। कि मुझको पतिका वर दें, उसही प्रकार भगवान् ने भी कहा था, कि तुमको पांच पतिकाही वर मिलता है; सो इस बातकी भलाई बुराई वही जानते हैं। जब भगवान शङ्करने ऐसा विधान किया है, और इन्हीके लिये कृष्णा बनायी गयी है, तब यह चाहे धर्म वा अधर्म होवे, मुझको कोई दोष नहीं लग सकता। यह लोग विधिके विधानसे सुखपूर्वक द्रौपदीसे विवाह करें। (१-४)

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि अनन्तर भगवान् महर्षि धर्मराजसे बोले, कि हे युधिष्ठिर! आज शुभदिन है, चन्द्रमा पुष्यनक्षत्र से योग प्राप्त करेगा, सो पहिले तुम आज द्रौपदीसे विवाह करो। भगवान द्वैपायनके ऐसा कहने पर पुत्र-सहित राजा यज्ञसेन कन्याको ब्याहनेका प्रयत्न करने लगे। वह दानके लिये यथायोग्य अनेक अच्छी अच्छी सामग्री बटोरकर और द्रौपदीको भांति भांतिके रत्न अलंकारोंसे सजाकर लिवा लाये। राजाके मित्र और मन्त्री तथा ब्राह्मण और दूसरे पुरवासी सब विवाहको देख-नेके लिये, प्रसन्नचित्तसे अपनी अपनी प्रधानताके अनुसार मिलकर आने लगे।

ततोऽस्य वेश्माग्र्यजनोपशोभितं विस्तीर्णपद्मोत्पलभूषिताजिरम् ।
बलौघरत्नौघविचित्रमाबभौ नभो यथा निर्मलतारकान्वितम्॥ ८ ॥
ततस्तु ते कौरवराजपुत्रा विभूषिताः कुण्डलिनो युवानः ।
महार्हवस्त्रा वरचन्दनोक्षिताः कृताभिषेकाः कृतमङ्गलक्रियाः॥ ९ ॥
पुरोहितेनाऽग्निसमानवर्चसा सहैव धौम्येन यथाविधि प्रभो ।
क्रमेण सर्वे विविशुस्ततः सदो महर्षभा गोष्ठमिवाऽभिनन्दिनः॥१०॥
ततः समाधाय स वेदपारगो जुहाव मंत्रैर्ज्वलितं हुताशनम् ।
युधिष्ठिरं चाप्युपनीय मन्त्रविन्नियोजयामास सहैव कृष्णया॥११ ॥
प्रदक्षिणं तौ प्रगृहीतपाणी परीणयामास स वेदपारगः ।
ततोऽभ्यनुज्ञाय तमाजिशोभिनं पुरोहितो राजगृहाद्विनिर्ययौ॥१२ ॥
क्रमेण चानेन नराधिपात्मजा वरस्त्रियस्ते जगृहुस्तदा करम् ।
अहन्यहन्युत्तमरूपधारिणो महारथाः कौरववंशवर्धनाः ॥ १३ ॥
इदं च तत्राऽद्भुतरूपमुत्तमं जगाद देवर्षिरतीव मानुषम् ।
महानुभावा किल सा सुमध्यमा बभूव कन्यैव गते गतेऽहनि॥ १४ ॥

राज भवनका आंगन पद्म आदि जलसे उपजे हुए अनेक फूलोंकी बडी बडी मालासे सजा था; सम्मानित जनोंके शुभागमनसे उसकी अपूर्व शोभा हुई । वह राजभवन यथा योग्य ठौरमें सजी सजाई सेना और भांति भांतिके विचित्र रत्नोंसे खचित होकर ऐसी सुन्दर शोभा पाने लगा, कि जैसे आकाशमण्डल अमल नक्षत्रोंकी मण्डलीसे ढपे जाकर परमरूपसे सुशोभित हो । (५-८)

हे प्रभो ! अनन्तर जलती हुई अग्निकी भांति तेजस्वी पुरोहित धौम्यके पाण्डवोंके अभिषेक और माङ्गलिकक्रिया करलेने पर तरुण अवस्थावाले पाण्डवगण नाना वस्त्र आभूषणोंसे सजके सुगन्धी चन्दन लगाकर और कुण्डल पहिरे गोशालामें घुसते हुए बडे बडे बैलोंकी भांति बडे आनन्दकी उमंगसे उस सभामें जा पहुंचे। अनन्तर मन्त्रके जानकार वेददक्ष धौम्य अग्नि स्थापन कर जलती हुई आगमें यथाविधि मन्त्र पढकर आहुति चढाने लगे, आगे युधिष्ठिरको लायकर द्रौपदीसे गांठ देने पर वर कन्या दोनोंने अग्निकी परिक्रमा कर पाणिग्रहण किया। वेदपारग पुरोहित उनकी विवाह-क्रिया पूरी कर युद्धमें पण्डित युधिष्ठिरकी आज्ञा लेकर राज-भवनसे पधारे।(९-१२)

इस प्रकार महारथी कौरववंशके बढानेवाले राज-पुत्रगणने सबसे अच्छे अच्छे लिवास गहनोंसे सजके क्रमसे एक एक

कृते विवाहे द्रुपदो धनं ददौ महारथेभ्यो बहुरूपमुत्तमम् ।
शतं रथानां वरहेममालिनां चतुर्युजां हेमखलीनमालिनाम् ॥ १५ ॥
शतं गजानामपि पद्मिनां तथा शतं गिरीणामिव हेमशृङ्गिणाम् ।
तथैव दासी शतमग्र्ययौवनं महार्हवेषाभरणाम्बरस्रजम् ॥ १६ ॥
पृथक्पृथग्दिव्यदृशां पुनर्ददौ तदा धनं सौमकिरग्निसाक्षिकम् ।
तथैव वस्त्राणि विभूषणानि प्रभावयुक्तानि महानुभावः ॥ १७ ॥
कृते विवाहे तु ततस्तु पाण्डवाः प्रभूतरत्नामुपलभ्य तां श्रियम् ।
विजह्रुरिन्द्रप्रतिमा महाबलाः पुरे तु पाञ्चालनृपस्य तस्य ह ॥ १८ ॥

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यामादिपर्वणि वैवाहिकपर्वणि द्रौपदीविवाहे द्विशततमोऽध्याय॥ २०० ॥ [७५३५]

वैशम्पायन उवाच– पाण्डवैः सह संयोगं गतस्य द्रुपदस्य ह ।
न बभूव भयं किंचिद्देवेभ्योऽपि कथंचन ॥ १ ॥
कुन्तीमासाद्य ता नार्यो द्रुपदस्य महात्मनः ।
नामसंकीर्तयन्त्योऽस्या जग्मुः पादौ स्वमूर्धभिः ॥२॥

दिन उस सुन्दरीका पाणिग्रहण किया हे महाराज! महर्षि श्रीव्यासजीने इस विषयमें मुझको एक आश्चर्यलीलाकी कथा कही थी;उस महानुभव सुन्दरी द्रौपदीकी एक विवाह हो जाने पर फिर दूसरे दिन कन्यावस्था हो जाती थी । इस प्रकार विवाह हो जाने पर महानुभव सौमिक राजा द्रुपदने महारथी पाण्डवोंको नाना उत्तम धन यौतुकमें दिया । (१३—१५)

उन्होंनें सुवर्ण रासयुक्त चार घोडोंके साथ सुवर्णसे सजे हुए सौ रथ, सुवर्णकी चोटीवाले पहाडके समान और बिन्दुजालसे सुशोभित सौ गज, नवयौवनसे मदमाती, मूल्यवान् चीर, गहने और मालादिकोंसे बनीठनी सौ दासी, अनेक भांति मूल्यवान चार और गहने तथा उनमेंसे हरेकको अलग अलग एक एकलाख सुवर्ण मुद्रा दे दिया । अनन्तर विवाह हो जाने पर महाबली पाण्डव बहुत रत्नके साथ उस रत्नरूपी स्त्रीको लाभ कर राजा पाञ्चालकी पुरीमें समान विहार करने लगे । (१५— १८)[७५३५]

आदि पर्व्वमें दोसौ अध्याय समाप्त ।

आदिपर्वमें दोसौ एक अध्याय ।

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि पाण्डवों से राजा द्रुपदकी मित्रता हो जाने पर वह एकबारही निडर बने; देवोंसेभी उनको कोई भय न रहा। महात्मा द्रुपदकी स्त्रियोंने कुन्तींके पास आके अपना अपना नाम कहकर उनके पांवपर सिर नायके

कृष्णा च क्षौमसंवीता कृतकौतुकमङ्गला ।
कृताभिवादना श्वश्र्वास्तस्थौ प्रह्वा कृताञ्जलिः॥३॥
रूपलक्षणसंपन्नां शीलाचारसमान्विताम् ।
द्रौपदीमवदत्प्रेम्णा पृथाऽऽशीर्वचनं स्नुषाम्॥ ४ ॥
यथेन्द्राणी हरिहये स्वाहा चैव विभावसौ ।
रोहिणी च यथा सोमे दमयन्ती यथा नले॥ ५ ॥
यथा वैश्रवणे भद्रा वसिष्ठे चाऽप्यरुन्धती ।
यथा नारायणे लक्ष्मीस्तथा त्वं भव भर्तृषु॥ ६ ॥
जीवसूर्वीरसूर्भद्रे बहुसौख्यसमन्विता ।
सुभगा भोगसंपन्ना यज्ञपत्नी पतिव्रता ॥ ७ ॥
अतिथीनागतान्साधून्वृद्धान्बालांस्तथा गुरून्।
पूजयन्त्या यथान्यायं शश्वद्गच्छन्तु ते समाः॥ ८ ॥
कुरुजाङ्गलमुख्येषु राष्ट्रेषु नगरेषु च ।
अनु त्वमभिषिच्यस्व नृपतिं धर्मवत्सला ॥ ९ ॥
पतिभिर्निर्जितामुर्वीं विक्रमेण महाबलैः ।
कुरु ब्राह्मणसात्सर्वामश्वमेधे महाक्रतौ ॥ १० ॥
पृथिव्यां यानि रत्नानि गुणवन्ति गुणान्विते ।

प्रणाम किया। मांगलिक सूत्रादि लिये हुई क्षौम पहिनी द्रौपदी सासके पांव पर लोटके दोनों हाथ जोडकर सिर नाय खडी हुई। (१—३)

कुन्तीने रूपलणक्षोंसे सजी, सुशीला, शुभआचारवती, पुत्रवधू द्रौपदीको प्यार से यह अशीस दिया, कि ऐ कल्याणि! जिस प्रकार इन्द्राणी महेन्द्रकी, स्वाहा विभावसुकी, रोहिणी चन्द्रमाकी, दमयन्ती नलकी, भद्रा कुबेरकी, अरुन्धती वसिष्ठकी और लक्ष्मी नारायणकी प्यारी है, वैसेही तुम पतियोंकी प्यारी बनो; हे भद्रे! तुम दीर्घजीवनवाले वीरपुत्र प्रसव करो; बहुत सुख लेके, सौभाग्य पायके यश भोग करो, पतिव्रता हो, यज्ञमें दीक्षित पतियोंकी सदा साथी बनी रहो। अतिथि, पाहुने, बाल, वृद्ध और गुरुओंकी सदा विधि पूर्वक सेवा करते तुम्हारा काल बीते। तुम कुरुजाङ्गलका राज्य और नगरमें धर्मराजके साथ गद्दी पर बैठो। सम्पूर्ण धरती तुम्हारे महाबली पतियोंके पराक्रमसे जय होकर अश्वमेध महायज्ञ द्वारा तुमसे ब्राह्मणोंको सौंप दी जावे। हे गुणवति! पृथ्वी भरमें जो

तान्याप्नुहि त्वं कल्याणि सुखिनी शरदां शतम् ११॥
यथा च त्वाऽभिनन्दामि वध्वद्य क्षौमसंवृताम्।
तथा भूयोऽभिनन्दिष्ये जातपुत्रां गुणान्विताम् १२॥

वैशम्पायन उवाच—ततस्तु कृतदारेभ्यः पाण्डुभ्यः प्राहिणोद्धरिः।
वैडूर्यमणिचित्राणि हैमान्याभरणानि च ॥ १३ ॥
वासांसि च महार्हाणि नानादेश्यानि माधवः।
कम्बलाजिनरत्नानि स्पर्शवन्ति शुभानि च॥ १४॥
शयनासनयानानि विविधानि महान्ति च।
वैदूर्यवज्रचित्राणि शतशो भाजनानि च ॥ १५॥
रूपयौवनदाक्षिण्यैरुपेताश्च स्वलंकृताः ।
प्रेष्याः संप्रददौ कृष्णो नानादेश्याः सहस्रशः॥१६॥
गजान्विनीतान्भद्रांश्च सदश्वांश्च स्वलंकृतान्।
रथांश्च दान्तान्सौवर्णैः शुभ्रैः पट्टैरलंकृतान् ॥ १७॥
कोटिशश्च सुवर्णं च तेषामकृतकं तथा ।
वीथीकृतममेयात्मा प्राहिणोन्मधुसूदनः ॥ १८॥
तत्सर्वं प्रतिजग्राह धर्मराजो युधिष्ठिरः ।

सब गुणयुक्त रत्न हैं, उनपर तुम्हारा हाथ लगे। तुम परम सुखसे शत वर्ष गंवाओ। ऐ गुणवती वधू! आज तुमको क्षौम पहिनी देखकर जैसा आनन्द प्रगट करती हूं, तुम्हारा पुत्र उपजनेसे फिर ऐसा आनन्द लूटूंगी। (४—१२)

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि अन्तर श्रीकृष्णचन्द्रने ब्याहे हुए पाण्डवोंके लिये नीचे कहे यौतुक धन भेजा। उन्हों-ने मोती मण्डित वैदुर्यमाणिचित्रित सुवर्ण अलङ्कार, नाना देशोंके दुर्लभ वस्त्र, सुन्दर कोमल अच्छे अच्छे कम्बल तथा मृगछाल, भांति भांतिकी अच्छीसे अच्छी सेज, शय्या, आसन और यान, वैदूर्यसे झलकते हीरेसे खचित सैकडों बर्त्तन, भले सिखाये पढाये सुन्दर लक्षणवाले हाथी, गहनोंसे भले सजे अच्छे अच्छे घोडे, सुन्दर वर्ण ऊंचे ऊंचे अच्छे दांत वाले घोडोंसे जुते हुए रथ और खानि-मे उपजा शुद्ध सुवर्ण, ये सब वस्तु बहुत अधिक और करोडो सुवर्णके टुकडे भेज दिये। अमेयात्मा मधुसूदनने पाण्डवोंकी सेवाके लिये रूप, यौवन और दयासे सुहावनी गहनोंसे बनीठनी अनेक देशोंकी सहस्रों दासी दीं। धर्मराज युधिष्ठिरने गोविन्दकी प्रीतिके लिये परम प्रसन्न

मुदा परमया युक्तो गोविंदप्रियकाम्यया ॥ १९ ॥ [७५५४]

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यामादिपर्वणि वैवाहिकपर्वणि श्रीकृष्णोपहारप्रेषण एकाधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २०१ ॥

समाप्तं वैवाहिकपर्व ॥

अथ विदुरागमनपर्व ॥

वैशम्पायन उवाच-- ततो राज्ञां चरैराप्तैः प्रवृत्तिरुदनीयत ।
पाण्डवैरुपसंपन्ना द्रौपदी पतिभिः शुभा ॥ १ ॥
येन तद्धनुरायम्य लक्ष्यं विद्धं महात्मना ।
सोऽर्जुनो जयतां श्रेष्ठो महाबाणधनुर्धरः ॥ २ ॥
यः शल्यं मद्रराजं वै प्रोत्क्षिप्याऽपातयद्बली ।
त्रासयामास संक्रुद्धो वृक्षेण पुरुषान्रणे ॥ ३ ॥
न चाऽस्य संभ्रमः कश्चिदासीत्तत्र महात्मनः ।
स भीमो भीमसंस्पर्शः शत्रुसेनाङ्गपातनः ॥ ४ ॥
ब्रह्मरूपधराञ्श्रुत्वा प्रशान्तान्पाण्डुनन्दनान् ।
कौन्तेयान्मनुजेन्द्राणां विस्मयः समजायत ॥ ५ ॥
सपुत्रा हि पुरा कुन्ती दग्धा जतुगृहे श्रुता ।
पुनर्जातानिव च तांस्तेऽमन्यन्त नराधिपाः ॥ ६ ॥

चित्तसे वह सब सामग्री ले ली।(१३ १९)

दोसौ एक अध्याय और वैवाहिक पर्व समाप्त।

आदिपर्वमें दोसौ दो अध्याय और विदुरागमन पर्व।

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि अनन्तर भूपालोंको अपने अपने दूतोंसे सुध मिल गयी, कि अच्छे लक्षणवाली द्रौपदी पाण्डवोंको पति पा गयी है; और जिन महात्माने धनुषको नवाकर लक्ष्यको विद्ध किया था, वही महा धनुषबाणधारी जयशील अर्जुन हैं और जिन बली पुरुषने मद्रनाथ शल्यको धरती पर पटक दिया था, जिन्होंने क्रोधके मारे युद्ध स्थलमें खडे होकर वृक्षसे सबोंको डराया था, उस कालमें जिन महात्माके मनमें कुछभी भय हमको दीख नहीं पडता था, जिनका स्पर्शभी शत्रुओंको भयानक जान पडा था, वही शत्रुनाशी भीमसेन हैं। हे महाराज! नरेशोंने पहिले सुना था, कि पाण्डवगण माता-सहित जतुगृहमें जल मरे, अब पाण्डवोंको प्रशान्त और ब्राह्मणोंका वेश किये हुए सुनकर वे अचंभेमें हो गये! उन्होंने समझा कि पाण्डव फिर जन्म लेकर आये हैं। आगे वे पुरोचनका किया बडा

धिगकुर्वंस्तदा भीष्मं धृतराष्ट्रं च कौरवम् ।
कर्मणाऽतिनृशंसेन पुरोचनकृतेन वै ॥ ७ ॥
वृत्ते स्वयंवरे चैव राजानः सर्व एव ते ।
यथागतं विप्रजग्मुर्विदित्वा पाण्डवान्वृतान्॥ ८ ॥
अथ दुर्योधनो राजा विमना भ्रातृभिः सह ।
अश्वत्थाम्ना मातुलेन कर्णेन च कृपेण च ॥ ९ ॥
विनिवृत्तो वृतं दृष्ट्वा द्रौपद्या श्वेतवाहनम् ।
तं तु दुःशासनो व्रीडन्मन्दं मन्दमिवाऽब्रवीत्॥१०॥
यद्यसौ ब्राह्मणो न स्याद्विन्देत द्रौपदीं न सः ।
न हि तं तत्त्वतो राजन्वेद कश्चिद्धनञ्जयम् ॥ ११ ॥
दैवं च परमं मन्ये पौरुषं चाऽप्यनर्थकम् ।
धिगस्तु पौरुषं तात ध्रियन्ते यत्र पाण्डवाः ॥१२॥
एवं संभाषमाणास्ते निन्दन्तश्च पुरोचनम् ।
विविशुर्हास्तिनपुरं दीना विगतचेतसः ॥ १३ ॥
त्रस्ता विगतसंकल्पा दृष्ट्वा पार्थान्महौजसः ।
मुक्तान्हव्यभुजश्चैव संयुक्तान्द्रुपदेन च ॥ १४ ॥

निष्ठुर कर्म स्मरण कर कौरव धृतराष्ट्र और भीष्मको धिकार देने लगे । अनन्तर सम्पूर्ण स्वयंवरका कार्य पूरा होने पर द्रौपदी पाण्डवोंसे ब्याही गयी सुनके वे सब भूपाल निज राजधानी को पधारे । (१—८)

राजा दुर्योधन यह जानके कि द्रौपदीने अर्जुनसे विवाह किया है ! अश्वत्थामा, शकुनि, कर्ण, कृप और भाईयोंके साथ उदास होकर लौटे । आगे दुःशासन लज्जित मुखसे मन्द मन्द वचनोंमें उनसे बोले कि, महाराज ! धनञ्जय ब्राह्मणके वेशमें न होता, तो कभी द्रौपदीको लाभ नहीं कर सकता; लोग उसको धनञ्जय कहके ठीक समझ नहीं सके थे, इसी लिये उसकी क्षमा कर दी थी । भैया ! पाण्डवोंके नष्ट करनेको हमारे बडा प्रयत्न करने परभी वे जीते जागते हैं, अतएव हमारी पुरुषतामें धिकार है; सो दैवहीको परम साधन कहना चाहिये; पुरुषका किया यत्न कोई कार्य नहीं दे सकता । दुःशासन आदि सब ऐसी बातें करते और पुरोचनको निन्दते हुए दीन और दुःखी चित्तसे हस्तिनापुरमें आन पहुंचे; और पाण्डवोंको अति बलवन्त, अग्निसे बचे और

धृष्टद्युम्नं तु संचिन्त्य तथैव च शिखण्डिनम् ।
द्रुपदस्याऽऽत्मजांश्चाऽऽन्यान्सर्वयुद्धविशारदान् ॥१५॥
विदुरस्त्वथ तां श्रुत्वा द्रौपदीं पाण्डवैर्वृताम् ।
व्रीडितान्धार्तराष्ट्रांश्च भग्नदर्पानुपागतान् ॥ १६ ॥
ततः प्रीतमनाः क्षत्ता धृतराष्ट्रं विशांपते ।
उवाच दिष्ट्या कुरवो वर्धन्त इति विस्मितः ॥ १७ ॥
वैचित्रवीर्यस्तु नृपो निशम्य विदुरस्य तत् ।
अब्रवीत्परमप्रीतो दिष्ट्या दिष्ट्येति भारत ॥ १८ ॥
मन्यते स वृतं पुत्रं ज्येष्ठं द्रुपदकन्यया ।
दुर्योधनमविज्ञानात्प्रज्ञाचक्षुर्नरेश्वरः ॥ १९ ॥
अथ त्वाऽऽज्ञापयामास द्रौपद्या भूषणं बहु ।
आनीयतां वै कृष्णेति पुत्रं दुर्योधनं तदा ॥ २० ॥
अथाऽस्य पश्चाद्विदुर आचख्यौ पाण्डवान्वृतान् ।
सर्वान्कुशलिनो वीरान्पूजितान्द्रुपदेन ह ॥ २१ ॥
तेषां संबान्धिनश्चाऽन्यान्बहून्बलसमन्वितान् ।

द्रुपदसे मिले देखके धृष्टद्युम्न, शिखण्डी तथा सर्व प्रकारसे युद्धमें दक्ष द्रुपदके दूसरे पुत्रोंको स्मरण कर भयभीत हुए और उनका उत्साह जाता रहा। (९-१५)

हे मनुष्यनाथ! यह सुनके, कि पाण्डवों ने द्रौपदीको लाभ किया और धृतराष्ट्र-के पुत्रगण लज्जित और टूटे फूटे अहंकार के साथ लौटे हैं, विदुर प्रसन्नमनसे धृतराष्ट्रसे बोले, कि हमारे सौभाग्यसे कौरवगण बढ रहे हैं। राजा विचित्रवीर्य के पुत्र विदुरका यह वचन सुन करके अचम्भेमें होके और बडे प्रसन्न होकर कहने लगे, कि हमारा कैसा सौभाग्य है! कैसा सौभाग्य है! हे भारत! प्रज्ञानेत्र भूपाल विदुरसे संक्षेपमें कहे हुए कौरव शब्दको सुन कर समझ नहीं सके, कि पाण्डव जीवित रहकर बढ रहे हैं। उन्हों ने समझा, कि द्रुपदपुत्रीने उनके ज्येष्ठ-पुत्र दुर्योधनसे विवाह कर लिया; अतएव उन्होंने उसी क्षण पुत्रवधू द्रौपदीको भांति भांतिके गहने और उसे लिवा लानेके लिये पुत्र दुर्योधनको आज्ञा की। (१६-२०)

अनन्तर विदुरने उनको विशेषरूपसे कहा, कि सब पाण्डव कुशलसे हैं, द्रौपदीने उन्हीं वीरोंसे विवाह किया है; द्रुपद ने उनका बडा सन्मान किया है; और उन स्वयंवर-स्थलहीमें उनके सम्बन्धी;

समागतान्पाण्डवेयैस्तस्मिन्नेव स्वयंवरे ॥ २२ ॥

धृतराष्ट्र उवाच— यथैव पाण्डोः पुत्रास्तु तथैवाऽभ्यधिका मम ।
यथा चाऽभ्यधिका बुद्धिर्मम तान्प्रति तच्छृणु ॥ २३ ॥
यत्ते कुशलिनो वीरा मित्रवन्तश्च पाण्डवाः ।
तेषां संबन्धिनश्चाऽन्ये बहवश्च महाबलाः ॥ २४ ॥
को हि द्रुपदमासाद्य मित्रं क्षत्तः सबान्धवम् ।
न बुभूषेद्भवेनार्थी गतश्रीरपि पार्थिवः ॥ २५ ॥

वैशम्पायन उवाच– तं तथा भाषमाणं तु विदुरः प्रत्यभाषत ।
नित्यं भवतु ते बुद्धिरेषा राजञ्छतं समाः ॥ २६ ॥
इत्युक्त्वा प्रययौ राजन्विदुरः स्वं निवेशनम् ॥ २७ ॥
ततो दुर्योधनश्चापि राधेयश्च विशांपते ।
धृतराष्ट्रमुपागम्य वचोऽब्रूतामिदं तदा ॥ २८ ॥
संनिधौ विदुरस्य त्वां दोषं वक्तुं न शक्नुवः ।
विविक्तमिति वक्ष्यावः किं तवेदं चिकीर्षितम् ॥ २९ ॥
सपत्नवृद्धिं यत्तात मन्यसे वृद्धिमात्मनः ।
अभिष्टौषि च यत्क्षत्तुः समीपे द्विषतां वर ॥ ३० ॥

बन्धु आदि दूसरे बहुतेरे बलवन्त उनसे जा मिले हैं। धृतराष्ट्र बोले, कि हे क्षत्त ! वे जिस प्रकार पाण्डुके स्नेहपात्र हैं, उस सेभी मेरे अधिक स्नेहके पात्र हैं। इससे उन पर मेरी और भी प्रसन्नता होरही है, कि वे वीरपुरुष कुशलसे रह गये, मित्रों से मिले और उनके सम्बंधी दूसरे महाबली बहुतेरे उनसे जा मिले। विशेषकर ऐसे कौन राजा होंगे, जिनकी चाहे श्री न रहे अथवा श्री बनी रहे बन्धुसहित राजा द्रुपदको मित्र पाकर कुशलयुक्त होनेकी इच्छा न रखते होंगे। (२१-२५

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि भूपालकी यह बात सुनकर विदुरने उत्तर दिया, कि महाराज! आपकी सैकडों वर्षोंतक सदा ऐसीही बुद्धि बनी रहे। हे नरनाथ! अनन्तर दुर्योधन और राधापुत्र धृतराष्ट्रके निकट आकर बोले, कि हम आपसे विदुरके सामने कोई दोष दर्शा नहीं सके थे। अब एकान्त पाकर कहते हैं, सुनिये। आपकी यह कैसी इच्छा हुई ? पिता! क्या आप शत्रुओंकी बढतीसे अपनी बढती समझ रहे हैं ? हे नरवर! क्या आप विदुरसे विपक्षियोंकी प्रसंसा कर रहे थे ? हे अनघ! जहां जैसा काम करना चाहिये, आप उसका

अन्यास्मिन्नृपकर्तव्ये त्वमन्यत्कुरुषेऽनघ ।
तेषां बलविघातो हि कर्तव्यस्तात नित्यशः ॥ ३१ ॥
ते वयं प्राप्तकालस्य चिकीर्षां मन्त्रयामहे ।
यथा नो न ग्रसेयुस्ते सपुत्रबलबान्धवान् ॥ ३२ ॥ [७५८६]

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यामादिपर्वणि विदुरागमनपर्वणि दुर्योधनवाक्ये द्व्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २०२ ॥

धृतराष्ट्र उवाच— अहमप्येवमेवैतच्चिकीर्षामि यथा युवाम् ।
विवेक्तुं नाऽहमिच्छामि त्वाकारं विदुरं प्रति ॥ १ ॥
ततस्तेषां गुणानेव कीर्तयामि विशेषतः ।
नाऽवबुध्येत विदुरो ममाऽभिप्रायमिङ्गितैः ॥ २ ॥
यच्च त्वं मन्यसे प्राप्तं तद्ब्रवीहि सुयोधन ।
राधेय मन्यसे यच्च प्राप्तकालं वदाऽऽशु मे ॥ ३ ॥
दुर्योधन उवाच— अद्य तान्कुशलैर्विप्रैः सुगुप्तैराप्तकारिभिः ।
कुन्तीपुत्रान्भेदयामो माद्रीपुत्रौ च पाण्डवौ ॥ ४ ॥
अथ वा द्रुपदो राजा महाद्भिर्वित्तसंचयैः ।
पुत्राश्चाऽस्य प्रलोभ्यन्ताममात्याश्चैव सर्वशः ॥ ५ ॥

उलटा करते हैं ! हे पिता । अब सदा यह चेष्टा करनी चाहिये, कि उनका बल घटे; हालमें जैसा काल आ पडा है, अब ऐसी युक्ति करनी चाहिये, कि वे लोग हमको और हमारे पुत्र, बन्धु तथा सेनाओंको नष्ट न कर सकें। (२६--३२)

आदि पर्वमें दोसौदो अध्याय समाप्त । ७५८६

आदिपर्वमें दोसौ तीसरा अध्याय।

धृतराष्ट्र बोले, कि तुम्हारी जैसी इच्छा है, मैं भी वही रखना चाहता हूं; पर विदुरसे कोई अभिप्राय प्रगट नहीं करना चाहता, इस लिये कि विदुर इशारे से भी मेरा अभिप्राय समझ न पावे मैं पाण्डवोंका गुण गा रहा था। हे सुयोधन ! अब तुम्हारी समझमें जो करना उचित निश्चय हुआ है; और हे राधानन्दन ! तुमने भी जैसा समझा है, वह सब कहनेका यहां समय है, सो इस कालमें कह दो। (१— ३)

दुर्योधन बोले, कि अब हमारे विश्वासी और ब्राह्मणगण बहुत छिप करके जांय; कुन्तीपुत्र और माद्रीपुत्रोंमें आपसका बिगाड कर देवें, अथवा राजा द्रुपद और उनके पुत्र तथा सम्पूर्ण मन्त्रियोंको बहुत धन देकर लुभावें कि, वे कुन्तीपुत्र युधिष्ठिरको त्याग देवें । अथवा हमारे भेजे हुए लोगोंमें

परित्यजेद्यथा राजा कुन्तीपुत्रं युधिष्ठिरम् ।
अथ तत्रैव वा तेषां निवासं रोचयन्तु ते ॥ ६ ॥
इहैषां दोषवद्वासं वर्णयन्तु पृथक्पृथक् ।
ते भिद्यमानास्तत्रैव मनः कुर्वन्तु पाण्डवाः ॥ ७ ॥
अथवा कुशलाः केचिदुपायनिपुणा नराः ।
इतरेतरतः पार्थान्भेदयन्त्वनुरागतः ॥ ८ ॥
व्युत्थापयन्तु वा कृष्णां बहुत्वात्सुकरं हि तत्।
अथवा पाण्डवांस्तस्यां भेदयन्तु ततश्च ताम्॥ ९ ॥
भीमसेनस्य वा राजन्नुपायकुशलैर्नरैः ।
मृत्युर्विधीयतां छन्नैः स हि तेषां बलाधिकः ॥ १० ॥
तमाश्रित्य हि कौन्तेयः पुरा चाऽस्मान्न मन्यते।
स हि तीक्ष्णश्च शूरश्च तेषां चैव परायणम्॥ ११ ॥
तस्मिंस्त्वभिहते राजन्हतोत्साहा हतौजसः ।
यतिष्यन्ते न राज्याय स हि तेषां व्यपाश्रयः॥ १२ ॥
अजेयो ह्यर्जुनः सङ्ख्ये पृष्ठगोपे वृकोदरे ।
तमृते फाल्गुनो युद्धे राधेयस्य न पादभाक्॥ १३ ॥

हरेक अलग अलग पाण्डवोंके इस स्थानमें बसने का दोष दर्शा कर उन्हें ससुरके यहां बसनेको लुभावें, ऐसा करनेसेही पाण्डवोंको वहां रहनेकी इच्छा होगी। अथवा कुछ उपायोंके जानकार दक्ष जन ऐसा करें कि पाण्डवोंमें बिगाड हो और उनमें आपसका प्रेम न बना रहे। अथवा कृष्णाको ऐसा उभाडें कि, उसका पतियोंसे मन टल जाय। उसके बहुत पति हैं, सो यह करना कठिन नहीं होगा। अथवा ऐसा करें कि पाण्डवों पर द्रौपदी का प्रेम न रहे; ऐसा होनेसे द्रौपदी उन पर चिढ जायगी। (४—९)

अथवा अच्छे उपाय निकालने वाले वहां जाके छिप कर ऐसा कोई उपाय करें, कि भीमकी मृत्यु हो, क्योंकि उनमें भीम ही बडा बली है; उसकेही भरोसे युधिष्ठिर हमको नहीं मानता था। भीमसेन बडा बली और पाण्डवोंका प्रधान अवलम्ब है। हे महाराज! उसका एकही आसरा रूपी उस भीमके मारे जानेपर वे तेज और उत्साहसे हाथ धोके फिर राज्य पानेका प्रयत्न नहीं करेंगे। युद्धस्थलमें वृकोदर पृष्ठरक्षक रहे, तो अर्जुन पर कोई भी जय नहीं पा सकता; पर युद्धस्थलमें वृकोदरके न रहनेसे अर्जुन कर्ण-

ते जानानास्तु दौर्बल्यं भीमसेनमृते महत् ।
अस्मान्बलवतो ज्ञात्वा न यतिष्यन्ति दुर्बलाः॥ १४ ॥
इहाऽऽगतेषु वा तेषु निदेशवशवर्तिषु ।
प्रवर्तिष्यामहे राजन्यथाशास्त्रं निबर्हणम् ॥ १५ ॥
अथ वा दर्शनीयाभिः प्रमदाभिर्विलोभ्यताम्।
एकैकस्तत्र कौन्तेयस्ततः कृष्णा विरज्यताम्॥ १६ ॥
प्रेष्यतां चैव राधेयस्तेषामागमनाय वै ।
तैस्तैः प्रकारैः संनीय पात्यन्तामाप्तकारिभिः॥ १७ ॥
एतेषामप्युपायानां यस्ते निर्दोषवान्मतः ।
तस्य प्रयोगमातिष्ठ पुरा कालोऽतिवर्तते ॥ १८ ॥
यावदृयकृतविश्वासा द्रुपदे पार्थिवर्षभे ।
तावदेव हि ते शक्या न शक्यास्तु ततः परम्॥१९ ॥
एषा मम मतिस्तात निग्रहाय प्रवर्तते ।
साध्वी वा यदि वाऽसाध्वी किं वा राधेय मन्यसे॥२०॥ ७६०६

इति श्रीमहा० विदुरागमनपर्वणि दुर्योधनवाक्ये त्र्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २०३ ॥

का चौथा अंश भी नहीं हो सकता। भीमसेनके विना दुर्बल पाण्डव अपनेको बल-वर्जित और हमको अधिक बलवन्त जानके राज्य पानेका प्रयत्न नहीं करेंगे। पर यदि वे यहां आकर हमारे अधीन और आज्ञानुसारी होवें, तो हम उन पर नीतिशास्त्रके अनुसार शास्त्र नीति दण्ड देनेको प्रवृत्त होंगे। (१०-१५)

अथवा परम रूपवती प्यारी युवतीसे उनको लुभाना चाहिये; ऐसा करनेसे द्रौपदीका प्रेम उनसे टल जायगा। अथवा उनको लिवा लानेके लिये राधानन्दन कर्ण को भेजा जाय, उनके एकत्र मिलकर आनेसे पहिले किसी उपायसे वे नष्ट किये जा सकेंगे। हे पिता! इन सब उपायोंमेंसे आपकी समझमें जो दोष-रहित जान पडे, वही करें, काल बीत रहा है, अधिक विलम्ब करना उचित नहीं है। जब तक पृथ्वीनाथ द्रुपद पर उसका विश्वास न जमे, उसके पहिले योग्य उपाय करनेसे उनसे बढ चढ सकेंगे; राजा द्रुपद पर उनका विश्वास होजानेसे फिर कोई उपाय न चलेगा। हे पिता! उनको सतानेके लिये मैंने यह उपाय निश्चय किये। यह भले हैं वा बुरे, आप समझ लें। कर्ण! तुम क्या समझते हो? (१६-२०) [७६०६]

आदिपर्वमें दोसौ तीसरा अध्याय समाप्त ।

कर्ण उवाच— दुर्योधन तव प्रज्ञा न सम्यगिति मे मतिः।
न ह्युपायेन ते शक्याः पाण्डवाः कुरुवर्धन॥ १ ॥
पूर्वमेव हि ते सूक्ष्मैरुपायैर्यतितास्त्वया।
निग्रहीतुं तदा वीर न चैव शकितास्तथा ॥ २ ॥
इहैव वर्तमानास्ते समीपे तव पार्थिव।
अजातपक्षाः शिशवः शकिता नैव बाधितुम्॥ ३ ॥
जातपक्षा विदेशस्था विवृद्धाः सर्वशोऽद्य ते।
नोपायसाध्याः कौन्तेया ममैषा मतिरच्युता॥ ४ ॥
न च ते व्यसनैर्योक्तुं शक्या दिष्टकृतेन च।
शकिताश्चेप्सवश्चैव पितृपैतामहं पदम् ॥ ५ ॥
परस्परेण भेदश्च नाऽऽधातुं तेषु शक्यते।
एकस्यां ये रताः पत्न्यां न भिद्यन्ते परस्परम्॥ ६ ॥
न चापि कृष्णा शक्येत तेभ्यो भेदयितुं परैः।
परिद्यूनान्वृतवती किमुताऽद्य मृजावतः ॥ ७ ॥
इप्सितश्च गुणः स्त्रीणामेकस्या बहुभर्तृता।

आदिपर्वमें दोसौ चौथा अध्याय।

कर्ण बोले, कि हे दुर्योधन! तुमने जो सोचा है, वह सुयुक्ति समझ नहीं पडती। हे कुरुनन्दन! इसमेंसे कोई उपाय पाण्डवोंके विरुद्ध न चलेगा। हे वीर! तुमने पहिले सूक्ष्म उपायोंसे उनको नष्ट करनेका प्रयत्न किया था, पर उससे मनोरथ सफल नहीं होसका था। उस समय वे अल्प अवस्थावाले निःसहाय और तुम्हारे निकट थे, तिस परभी उनकी कोई हानि नहीं कर सके थे। हे पुरुषार्थशील! अब वे दूसरे देशमें स्थित, सहायसहित और सब प्रकारसे बढ गये हैं, सो यह मुझको निश्चय जान पडता है, कि इस समय इन उपायोंसे उनकी कोई हानि नहीं की जा सकेगी। और लुभानेसे भी वे न भूलेंगे क्योंकि उनमें दैवीशक्ति भरी है, और वे बाप दादोंके पदके चाहनेवाले हैं, उन भाइयोंमे आपसका बिगाड कर देनाभी शक्तिके बाहर है; क्योंकि जो लोग पांच भाई एक स्त्रीसे मिलते हैं, उनमें कभी आपसका विरुद्ध भाव होना सम्भव नहीं है। (१–६)

किसी उपाय से कृष्णाके चित्तको पाण्डवोंसे टालना भी कठिन है; क्योंकि उनकी कडी दीन दशाके दिनोंमें विवाह किया था; अब तो वे भले अस्त्र गहनोंसे

तं च प्राप्तवती कृष्णा न सा भेदयितुं क्षमा॥ ८ ॥
आर्यव्रतश्च पाञ्चाल्यो न स राजा धनप्रियः।
न संत्यक्ष्यति कौन्तेयान्राज्यदानैरपि ध्रुवम् ॥ ९ ॥
तथाऽस्य पुत्रो गुणवाननुरक्तश्च पाण्डवान्।
तस्मान्नोपायसाध्यांस्तानहं मन्ये कथंचन ॥
इदं त्वत्र क्षमं कर्तुमस्माकं पुरुषर्षभ ॥ १० ॥
यावन्न कृतमूलास्ते पाण्डवेया विशांपते।
तावत्प्रहरणीयास्ते तत्तुभ्यं तात रोचताम् ॥ ११ ॥
अस्मत्पक्षो महान्यावद्यावत्पाञ्चालको लघुः।
तावत्प्रहरणं तेषां क्रियतां मा विचारय ॥ १२ ॥
वाहनानि प्रभूतानि मित्राणि च कुलानि च।
यावन्न तेषां गान्धारे तावद्विक्रम पार्थिव ॥ १३ ॥
यावच्च राजा पाञ्चाल्यो नोद्यमे कुरुते मनः।
सहपुत्रैर्महावीर्यैस्तावद्विक्रम पार्थिव ॥ १४ ॥
यावन्नायाति वार्ष्णेयः कर्षन्यादववाहिनीम्।
राज्यार्थे पाण्डवेयानां पाञ्चाल्यसदनं प्रति ॥ १५ ॥

सजे हैं, विशेष स्त्रियोंके लिये बहुत पतियोंका मिलना प्रार्थनाकी बात है, कृष्णाको वह मिले हैं; सो पतियोंसे उसका मन टालना असंभव है, राजा पाञ्चाल सुपथमें चलते हैं, वह धनके लोभी नहीं हैं, सो इसमें सन्देह नहीं, कि उनको सब राज्य देभी दो, तो पाण्डवोंको नहीं छोडेंगे। उन राजाके पुत्रगण गुणवन्त हैं, विशेष पाण्डवोंके वे प्रेमी बने हैं, सो लुभा करके वे वशमें नहीं लाये जा सकेंगे; सो मुझको जान पडता है, कि उक्त प्रकारके किसी उपायसे पाण्डवोंका कुछ नहीं होनेवाला है। (७—१०)

हे पुरुषश्रेष्ठ महाराज! इस समय हमारा यही कर्त्तव्य है, कि जबतक पाण्डव दृढमूल न हो जायं, तबतक उनको मारते रहें। हे पिता! इस विषय में आप सम्मत होवें। जबतक हमारा पक्ष महान और पांचालका पक्ष लघु है, तबतक युद्ध प्रारम्भ कर उनको मारना आरम्भ करें। इसका अन्य विचार करने का प्रयोजन नहीं है। हे महाराज गान्धारीनंदन! जबतक उनके मित्र और बन्धु तथा बहुत वाहन न एकत्रित हों, उसके पहिले ही उन पर विक्रम प्रगट करके चढ जाओ, जबतक राजा पाञ्चाल

वसूनि विविधान्भोगान्राज्यमेव च केवलम् ।
नाऽत्याज्यमस्ति कृष्णस्य पाण्डवार्थे कथंचन॥१६॥
विक्रमेण मही प्राप्ता भरतेन महात्मना ।
विक्रमेण च लोकांस्त्रीञ्जितवान्पाकशासनः॥ १७ ॥
विक्रमं च प्रशंसन्ति क्षत्रियस्य विशांपते ।
स्वको हि धर्मः शूराणां विक्रमः पार्थिवर्षभ॥१८॥
ते बलेन वयं राजन्महता चतुरङ्गिणा ।
प्रमथ्य द्रुपदं शीघ्रमानयामेह पाण्डवान् ॥ १९ ॥
न हि साम्ना न दानेन न भेदेन च पाण्डवाः ।
शक्याः साधयितुं तस्माद्विक्रमेणैव ताञ्जहि॥२०॥
तान्विक्रमेण जित्वेमामखिलां भुङ्क्ष्व मेदिनीम् ।
अतो नाऽन्यं प्रपश्यामि कार्योपायं जनाधिप॥२१॥
वैशम्पायन उवाच– श्रुत्वा तु राधेयवचो धृतराष्ट्रः प्रतापवान् ।
अभिपूज्य ततः पश्चादिदं वचनमब्रवीत् ॥ २२ ॥
उपपन्नं महाप्राज्ञे कृतास्त्रे सूतनन्दने ।

अति वीर्यवन्त पुत्रोंके साथ लडाईका उद्योग न कर सकें, उस कालसे पहिलेही विक्रम दिखाओ ! और जबतक श्रीकृष्ण पाण्डवोंके राज्यके लिये यादवी सेना लेकर राजा पांचालके भवनमें न आवें, तिससे पहिलेही विक्रम प्रगट करो११-१५

कृष्ण पाण्डवोंके उपकारके लिये भांति भांतिके भोग धन और राज्यको छोड सकते हैं। हे भूनाथ ! महात्मा भरत विक्रमहीसे भूपोंके अधीश बने थे और इन्द्रने अपने विक्रमहीके द्वारा तीनों लोक जीत लिये थे । हे राजेन्द्र ! क्षत्रियोंको विक्रम दिखानाही प्रशंसायोग्य है । विक्रमही शूरोंका धर्म है; अतएव हम बडी भारी चतुरङ्गिणी सेनासे विना विलम्ब राजा द्रुपदको मँथन करके पाण्डवोंको यहां लेते आवें । साम, दान वा भेद द्वारा पाण्डव नष्ट नहीं किये जा सकेंगे; सो विक्रमहीसे उनका भले प्रकार नाश करो ; विक्रम दिखाके उनको हराकर इस संपूर्ण धरती पर राज्य करते रहो । हे जनाधिप ! मैं इसके विना कार्य पूरा करनेका कोई दूसरा उपाय नहीं देखता । (१६—२१)

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि प्रतापी धृतराष्ट्र राधानन्दनकी बात सुनके उनकी प्रशंसा कर बोले, कि हे सूतपुत्र ! तुम बडे बुद्धिमान और अस्त्रविद्यामें पण्डित

त्वयि विक्रमसंपन्नमिदं वचनमीदृशम् ॥ २३ ॥
भूय एव तु भीष्मश्च द्रोणो विदुर एव च ।
युवां न कुरुतं बुद्धिं भवेद्या नः सुखोदया ॥ २४ ॥
तत आनाय्य तान्सर्वान्मन्त्रिणः सुमहायशाः ।
धृतराष्ट्रो महाराज मन्त्रयामास वै तदा ॥ २५ ॥ [७६३१]

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यामादिपर्वणि विदुरागमनपर्वणि धृतराष्ट्रमन्त्रणे चतुरधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २०४॥

भीष्म उवाच— न रोचते विग्रहो मे पाण्डुपुत्रैः कथंचन ।
यथैव धृतराष्ट्रो मे तथा पाण्डुरसंशयम् ॥ १ ॥
गान्धार्याश्च यथा पुत्रास्तथा कुन्तीसुता मम ।
यथा च मम ते रक्ष्या धृतराष्ट्र तथा तव ॥ २ ॥
यथा च मम राज्ञश्च तथा दुर्योधनस्य ते ।
तथा कुरूणां सर्वेषामन्येषामपि पार्थिव ॥ ३ ॥
एवं गते विग्रहं तैर्न रोचे संधाय वीरैर्दीयतामर्धभूमिः ।
तेषामपीदं प्रपितामहानां राज्यं पितुश्चैव कुरूत्तमानाम् ॥ ४ ॥
दुर्योधन यथा राज्यं त्वमिदं तात पश्यसि ।

हो; सो ऐसा विक्रमयुक्त वचन बोलना तुम्हारे योग्यही हुआ है ! पर भीष्म, द्रोण, विदुर और तुम दोनों फिर युक्ति करके यह निश्चय करो, कि जिससे हमारा मंगल होवे। महाराज ! अतियशोवन्त धृतराष्ट्र भीष्मादि संपूर्ण मंत्रियोंको बुलवाकर युक्ति करने लगे।२२-२५

आदिपर्वमें दोसौ चौथा अध्याय समाप्त । [७६३१]

आदिपर्वमें दोसौ पांच अध्याय ।

भीष्मजी बोले, कि हे धृतराष्ट्र ! पाण्डवोंके साथ युद्ध करना किसी प्रकार मेरा अभीष्ट नहीं है ; क्योंकि मेरे लिये जैसे तुम, पाण्डुभी तैसेही थे;और गान्धारी के पुत्र जिस प्रकार स्नेहके पात्र हैं; कुंती के पुत्रभी तैसेही हैं। मुझको जिसप्रकार उनकी रक्षा करनी है, तुम्हारीभी वैसेही करनी है। हे पृथ्वीपाल ! वे मेरे जैसे आत्मजन हैं, राजा दुर्योधन आदि सब कौरव भी वैसेही आत्मजन हैं, इसमें कोई शंका नहीं है। ऐसी दशामें क्योंकर उनसे लडनेकी मेरी संमति हो सकती है ? हे महाराज ! उन वीरोंसे संधि कर के उनको आधा राज्य दे दो; क्योंकि यह उन कुरुसत्तमोंकाभी राज्य है।(१-४)

बेटा दुर्योधन ! तुम जिस प्रकार इसे अपना पैतिक राज्य समझ रहे हो, तैसेही

मम पैत्रिकमित्येवं तेऽपि पश्यन्ति पाण्डवाः॥ ५ ॥
यदि राज्यं न ते प्राप्ताः पाण्डवेया यशस्विनः ।
कुत एव तवाऽपीदं भारतस्याऽपि कस्यचित्॥ ६ ॥
अधर्मेण च राज्यं त्वं प्राप्तवान्भरतर्षभ ।
तेऽपि राज्यमनुप्राप्ताः पूर्वमेवेति मे मतिः ॥ ७ ॥
मधुरेणैव राज्यस्य तेषामर्धं प्रदीयताम् ।
एतद्धि पुरुषव्याघ्र हितं सर्वजनस्य च ॥ ८ ॥
अतोऽन्यथा चेत्क्रियते न हितं नो भविष्यति।
तवाऽप्यकीर्तिः सकला भविष्यति न संशयः॥ ९ ॥
कीर्तिरक्षणमातिष्ठ कीर्तिर्हि परमं बलम् ।
नष्टकीर्तेर्मनुष्यस्य जीवितं ह्यफलं स्मृतम् ॥ १० ॥
यावत्कीर्तिर्मनुष्यस्य न प्रणश्यति कौरव ।
तावज्जीवति गान्धारे नष्टकीर्तिस्तु नश्यति॥ ११ ॥
तमिमं समुपातिष्ठ धर्मं कुरुकुलोचितम् ।
अनुरूपं महाबाहो पूर्वेषामात्मनः कुरु ॥ १२ ॥

पाण्डव भी अपना पैतिक राज्य जानते हैं। यदि वे यशोवन्त पाण्डव राज्यके अधिकारी न हों, तो तुम अथवा कोई दूसरा भरतवंशी क्योंकर राज्यका अधिकारी हो सकता है? हे भरतश्रेष्ठ! यदि तुमने ऐसा समझा है, कि "मैं धर्मानुसार राज्यका अधिकारी बना हूं" तो पहिले धर्मानुसार उन्हीका अधिकार हुवा है; सो मेरा मत यह है, कि प्रसन्नतासे उनको आधा राज्य दो। हे पुरुषव्याघ्र! ऐसा करनेसे सबोंका मंगल होगा! यदि इसकी विरुद्धता करो, तो हममेंसे किसीका मंगल नहीं होगा; और इसमें सन्देह नहीं, कि तुम्हारी बडी निन्द फैलेगी। (५—९)

हे गान्धारी नन्दन! तुम कीर्तिकी रक्षा करनेका प्रयत्न करो। इस भूमण्डलमें कीर्तिही परम बल है, और किर्ति न रखने वालेका जीवनही व्यर्थ है। हे कौरव! जबतक किसीकी कीर्ति नहीं बिगडती, उसके परलोकमें सिधारने परभी तबतक वह जीवित रहता है; और कीर्ति नष्ट होने पर जीवन रहनेसे भी वह मरा कहा जाता है। हे महाभुज! तुम कुरुकुलके योग्य धर्ममें चित्त लगाओ; और अपने पूर्व पुरुषोंकी भांति कार्य करो। हमारे सौभाग्यहीसे पाण्डव और कुन्ती जीवित हैं। यह हमाराही

दिष्ट्या ध्रियन्ते पार्था हि दिष्ट्या जीवति सा पृथा ।
दिष्ट्या पुरोचनः पापो न सकामोऽत्ययं गतः॥ १३ ॥
यदा प्रभृति दग्धास्ते कुन्तिभोजसुतासुताः ।
तदा प्रभृति गान्धारे न शक्नोम्यभिवीक्षितुम्॥ १४ ।
लोके प्राणभृतां कंचिच्छ्रुत्वा कुन्तीं तथागताम्१५॥
न चापि दोषेण तथा लोको मन्येत्पुरोचनम् ।
यथा त्वां पुरुषव्याघ्र लोको दोषेण गच्छति॥ १६ ॥
तदिदं जीवितं तेषां तव किल्बिषनाशनम् ।
संमन्तव्यं महाराज पाण्डवानां च दर्शनम्॥ १७ ॥
न चापि तेषां वीराणां जीवतां कुरुनन्दन ।
पित्र्योंऽशः शक्य आदातुमपि वज्रभृता स्वयम्१८॥
ते सर्वेऽवस्थिता धर्मे सर्वे चैवैकचेतसः ।
अधर्मेण निरस्ताश्च तुल्ये राज्ये विशेषतः ॥ १९ ॥
यदि धर्मस्त्वया कार्यो यदि कार्यं प्रियं च मे ।
क्षेमं च यदि कर्तव्यं तेषामर्धं प्रदीयताम् ॥ २० ॥ [७६५१]

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां० विदुरागमनपर्वणि भीष्मवाक्ये पञ्चाधिकद्विशततमोध्यायः ॥२०५॥

सौभाग्य है, कि पापात्मा पुरोचनका मनोरथ सफल नहीं हुआ और वह यमराजके घरको जा पहुंचा है। हे गान्धारीकुमार ! मैंने जब सुना, कि कुन्तीभोजकी पुत्रीके पुत्र जल मरे हैं, तबसे मैं इस धरती पर किसीसे भले प्रकार भेंट नहीं कर सकता हूं। (९—१५)

हे पुरुषव्याघ्र ! लोग कुन्तीको उस दशामें गिरी सुनके जिस प्रकार तुमको दोषी जानते हैं, पुरोचनको वैसा दोषी नहीं समझते। हे महाराज ! पाण्डवोंका जीना और उनको फिर देखना तुमको केवल अपना कलंक नष्ट होनेका हेतु करके जानना चाहिये। हे कुरुनन्दन ! उन सब वीरोंके जीवित रहनेसे स्वयं महेन्द्रभी उनके पैतिक राज्यको लेनेकी सामर्थ नहीं रखते; विशेष पाण्डव सब एकमत और धर्म पथके चलने-वाले होने परभी तुल्य अधिकारके राज्यसे अधर्म पूर्वक हटाये जाते हैं, अतएव यदि तुमको धर्मरक्षा करनी उचित हो यदि तुमको मेरा प्रिय-कार्य करना हो और यदि तुम अपनी भलाई चाहो, तो पाण्डवोंको आधा राज्य दो। (१६-२०)

आदिपर्व में दो सौ पांच अध्याय समाप्त। (७६५१)

—

द्रोण उवाच—
मन्त्राय समुपानीतैर्धृतराष्ट्र हितैर्नृप ।
धर्म्यमर्थ्यं यशस्यं च वाच्यमित्यनुशुश्रुम ॥ १ ॥
ममाऽप्येषा मतिस्तात या भीष्मस्य महात्मनः ।
संविभज्यास्तु कौन्तेया धर्म एष सनातनः ॥ २ ॥
प्रेष्यतां द्रुपदायाऽऽशु नरः कश्चित्प्रियंवदः ।
बहुलं रत्नमादाय तेषामर्थाय भारत ॥ ३ ॥
मिथः कृत्यं च तस्मै स आदाय वसु गच्छतु ।
वृद्धिं च परमां ब्रूयात्त्वत्संयोगोद्भवां तथा ॥ ४ ॥
संप्रीयमाणं त्वां ब्रूयाद्राजन्दुर्योधनं तथा ।
असकृद् द्रुपदे चैव धृष्टद्युम्ने च भारत ॥ ५ ॥
उचितत्वं प्रियत्वं च योगस्यापि च वर्णयेत् ।
पुनः पुनश्च कौन्तेयान्माद्रीपुत्रौ च सान्त्वयन् ॥ ६ ॥
हिरण्मयानि शुभ्राणि बहून्याभरणानि च ।
वचनात्तव राजेन्द्र द्रौपद्याः संप्रयच्छतु ॥ ७ ॥
तथा द्रुपदपुत्राणां सर्वेषां भरतर्षभ ।
पाण्डवानां च सर्वेषां कुन्त्या युक्तानि यानि च ॥ ८ ॥

आदिपर्वमें दोसौ छठवां अध्याय ।

द्रोण बोले, कि हे महाराज धृतराष्ट्र ! हमने सुना है, मंत्रियोंके युक्तिके लिये आ पहुंचने पर धर्म, अर्थ और यश देनेवाला वचन कहनाही उनका कर्त्तव्य है । ऐ तात ! महात्मा भीष्मसे मैं सहमत हूं । पाण्डवोंको अंश देना उचित है, ऐसा कहनेहीसे सनातन धर्मकी रक्षा होगी । हे भारत ! अब प्यारी बोली बोलनेवाले किसी पुरुषको आज्ञा करें, कि पाण्डवोंके लिये बहुत धन लेकर द्रुपदके यहां जाय । वह भेजा हुआ पुरुष वर और वधूके योग्य रत्न और अलङ्कार भी लेकर द्रुपद के सन्मुख जाकर कहे, कि हे महाराज ! आपके साथ राजा धृतराष्ट्र और दुर्योधनकी पाहुनाई होनेसे वे बहुत कृतार्थ हुए और अपनेको श्रीमन्त समझते हैं । (१—५)

हे भारत ! वह दूत राजा द्रुपद और धृष्टद्युम्नसे बार बार ऐसा कहे, कि आपके साथ विवाहसे जो पाहुनाई बनी वह बहुत योग्य और कौरवोंके मनभावन हुई है । हे महाराज ! अनन्तर वह दूत पाण्डवोंको बार बार समझाने की बात कहके द्रौपदीको शुद्ध सुवर्णके अनेक अलङ्कार देके राजा पाञ्चालके सब पुत्रों,

एवं सान्त्वसमायुक्तं द्रुपदं पाण्डवैः सह ।
उक्त्वा सोऽनन्तरं ब्रूयात्तेषामागमनं प्रति ॥ ९ ॥
अनुज्ञातेषु वीरेषु बलं गच्छतु शोभनम् ।
दुःशासनो विकर्णश्चाऽप्यानेतुं पाण्डवानिह ॥ १० ॥
ततस्ते पाण्डवाः श्रेष्ठाः पूज्यमानाः सदा त्वया।
प्रकृतीनामनुमते पदे स्थास्यन्ति पैतृके ॥ ११ ॥
एतत्तव महाराज पुत्रेषु तेषु चैव हि ।
वृत्तमौपयिकं मन्ये भीष्मेण सह भारत ॥ १२ ॥

कर्ण उवाच— योजितावर्थमानाभ्यां सर्वकार्येष्वनन्तरौ ।
न मन्त्रयेतां त्वच्छ्रेयः किमद्भुततरं ततः ॥ १३ ॥
दुष्टेन मनसा यो वै प्रच्छन्नेनाऽन्तरात्मना ।
ब्रूयान्निःश्रेयसं नाम कथं कुर्यात्सतां मतम् ॥ १४ ॥
न मित्राण्यर्थकृच्छ्रेषु श्रेयसे चेतराय वा ।
विधिपूर्वं हि सर्वस्य दुःखं वा यदि वा सुखम् ॥ १५ ॥
कृतप्रज्ञोऽकृतप्रज्ञो बालो वृद्धश्च मानवः ।
ससहायोऽसहायश्च सर्वं सर्वत्र विन्दति ॥ १६ ॥

पाण्डवों और कुन्तीके योग्य चीर गहने देवे। हे भरतश्रेष्ठ! इस प्रकार द्रुपद और पाण्डवोंको समझा कर अन्तमें उन को लानेकी बात कहे। पाण्डवोंके द्रुपद से आनेकी आज्ञा पाने पर दुःशासन और विकर्ण अच्छी सेनादिके साथ उन को लिवा लानेको जावें। आगे पुरुषश्रेष्ठ पाण्डवोंके राजधानीमें आजाने पर आप उनकी सादर पूर्वक स्वागत करना। अनन्तर वे प्रजाओंके मनसे पैत्रिक पदपर आरूढ होवें। महाराज! मेरा और भीष्म का मत यह है, कि आपके पुत्ररूपी उन पाण्डवोंसे ऐसा व्यवहारही आपको करना चाहिये। (९—१२)

कर्ण बोले, कि भीष्म और द्रोण यह दोनों सब कार्योंके बिगाडनेवाले हैं, और आपहीके दिये धन और मानसे बढे हैं, इससे और क्या आश्चर्य होगा, कि यह आपको आपके मङ्गलका परामर्श नहीं देते? महाराज! जो जीमें मित्रका द्रोह रखके शत्रुके हितकी बुद्धिसे युक्ति कहते हैं, वे क्योंकर मङ्गलका निश्चय कर सकते हैं? पर ऐसा नहीं है, कि विपद आ पडने से साधु वा असाधु मितही मङ्गल वा अमङ्गलके कारण बनते हैं, क्योंकि सुख और दुःखकी जड भाग्यही है, देखें, विज्ञ,

श्रूयते हि पूरा कश्चिदम्बुवीच इतीश्वरः ।
आसीद्राजगृहे राजा मागधानां महीक्षिताम् ॥१७॥
स हीनः करणैः सर्वैरुच्छ्वासपरमो नृपः ।
अमात्यसंस्थः सर्वेषु कार्येष्वेवाऽभवत्तदा ॥ १८ ॥
तस्याऽमात्यो महाकर्णिर्बभूवैकेश्वरस्तदा ।
स लब्धबलमात्मानं मन्यमानोऽवमन्यते ॥ १९ ॥
स राज्ञ उपभोग्यानि स्त्रियो रत्नधनानि च।
आददे सर्वशो मूढ ऐश्वर्यं च स्वयं तदा ॥ २० ॥
तदादाय च लुब्धस्य लोभाल्लोभोऽप्यवर्धत।
तथा हि सर्वमादाय राज्यमस्य जिहीर्षति ॥ २१ ॥
हीनस्य करणैः सर्वैरुच्छ्वासपरमस्य च ।
यतमानोऽपि तद्राज्यं न शशाकेति नः श्रुतम्॥२२॥
किमन्यद्विहिता नूनं तस्य सा पुरुषेन्द्रता ।
यदि ते विहितं राज्यं भविष्यति विशांपते ॥२३॥
मिषतः सर्वलोकस्य स्थास्यते त्वयि तद् ध्रुवम्।

अविज्ञ बाल वृद्ध, सहाय वा विना सहाय, सब प्रकारके लोग सब ठौर में सब वस्तु पाजाते हैं। (१३—१६)

सुना है, कि पहिले राजगृह नामक राजधानीमें मगधदेशी राजाओंके अधीश अम्बुवीच नामक एक पृथ्वीनाथ थे। राजकार्यमें उनकी टुकभी दृष्टि नहीं थी, वह इतनाही काम करते थे, कि श्वास खैंचते और छोडते थे; इससे उनका सम्पूर्ण राजकार्य मन्त्रियोंके हाथमें गया। महाकर्णिक नामक उनका मन्त्री पूरा अधिकार पाकर वा अपनेको बलयुक्त जानकर राजाका अनादर करने लगा। उस मूर्ख मन्त्रीने राजाके भोगनेकी स्त्री, रत्न और धन सब ऐश्वर्य आप ले लिया। आगे यह सब लेकर उस लोभीका लोभ बढा; वह राजाका सब कुछ लेकरके भी चुप नहीं हुआ, राज्य तक हरना चाहा, पर हमने सुना है, कि वह मन्त्री अपनी पूरी सामर्थसे चेष्टा करने परभी उस कार्यरहित श्वास मात्र लेते हुए राजा का राज्य नहीं हर सका। (१७-२२)

भाग्यके विना कौनसा पुरुषार्थ था, कि तिससे राज्यकी रक्षा हुई ? हे महाराज! यदि विधिने यह राज्य आपके लिये निश्चय कर दिया हो, तो आपके सब लोगोंके परास्त होने पर भी यह आपहीके हाथमें बना रहेगा। यदि भाग्य

अतोऽन्यथा चेद्धि हितं यतमानो न लप्स्यसे॥ २४ ॥
एवं विद्वन्नुपादत्स्व मन्त्रिणां साध्वसाधुताम्।
दुष्टानां चैव बोद्धव्यमदुष्टानां च भाषितम्॥ २५ ॥
द्रोण उवाच— विद्म ते भावदोषेण यदर्थमिदमुच्यते ।
दुष्टः पाण्डवहेतोस्त्वं दोषमाख्यापयस्युत ॥ २६ ॥
हितं तु परमं कर्ण ब्रवीमि कुलवर्धनम् ।
अथ त्वं मन्यसे दुष्टं ब्रूहि यत्परमं हितम् ॥ २७ ॥
अतोऽन्यथा चेत्क्रियते यद्ब्रवीमि परं हितम् ।
कुरवो वै विनङ्क्ष्यन्ति न चिरेणैव मे मतिः ॥ २८ ॥ [७६७९]

इतिश्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यामादिपर्वणि विदुरागमनपर्वणि द्रोणवाक्ये षडधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २०६ ॥

विदुर उवाच— राजन्निःसंशयं श्रेयो वाच्यस्त्वमसि बान्धवैः।
न त्वशुश्रूषमाणे वै वाक्यं संप्रतितिष्ठति ॥ १ ॥
प्रियं हितं च तद्वाक्यमुक्तवान्कुरुनन्दनः ।
भीष्मः शान्तनवो राजन्प्रतिगृह्णासि तन्न च॥ २ ॥
तथा द्रोणेन बहुधा भाषितं हितमुत्तमम् ।

में न रहे, तो आप चेष्टा भी करें, तो बचा नहीं सकेंगे। हे महाराज! आप पाण्डव हैं, मन्त्रियोंमें कौन साधु हैं और कौन असाधु हैं आपही विचार लेवें। और दुष्ट अदुष्ट जनोंके वचनका कार्य समझें। (२३ – २५)

द्रोण बोले, कि कर्ण! मैं समझ गया, कि तुम्हारा हृदय दोषसे भरे रहनेहीके कारण तुम ऐसा कहते हो, पाण्डवों पर तुम्हारा द्वेष रहनेहीके हेतु तुमने हम पर दोष लगाया। पर मैंने जो कहा वह कुल बढानेवाला और परम हित देनेहारा है; यदि वह तुम्हारी समझमें बुरा जान पडे, तो जिससे परम हित होना है वही कहो। वास्तवमें मुझको निश्चय जान पडता है, कि यदि मेरे कहे परम हित वचनकी विरुद्धता की जावे तो, विना विलम्ब कौरवगण लय पा जायंगे। (२६—२८)

आदिपर्वमें दोसौ छठवां अध्याय समाप्त। ७६७९

आदिपर्वमें दोसौ सात अध्याय।

विदुर बोले, कि हे महाराज! आपके बन्धु लोग निःसन्देह आपको हितवचन कह रहे हैं, पर आपके ध्यानके बिना उसकी रक्षा नहीं होती है। हे महाराज! कुरुश्रेष्ठ शान्तनुपुत्र भीष्म जो प्रिय और हित वचन बोले, आप उस पर ध्यान नहीं

तच्च राधासुतः कर्णो मन्यते न हितं तव ॥ ३ ॥
चिन्तयंश्च न पश्यामि राजंस्तव सुहृत्तमम्।
आभ्यां पुरुषसिंहाभ्यां यो वा स्यात्प्रज्ञयाऽधिकः ४ ॥
इमौ हि वृद्धौ वयसा प्रज्ञया च श्रुतेन च ।
समौ च त्वयि राजेन्द्र तथा पाण्डुसुतेषु च॥ ५ ॥
धर्मे चाऽनवरौ राजन्सत्यतायां च भारत ।
रामाद्दाशरथेश्चैव गयाच्चैव न संशयः ॥ ६ ॥
न चोक्तवन्तावश्रेयः पुरस्तादपि किंचन ।
न चाऽप्यपकृतं किंचिदनयोर्लक्ष्यते त्वयि ॥ ७ ॥
तावुभौ पुरुषव्याघ्रावनागसि नृप त्वयि ।
न मन्त्रयेतां त्वच्छ्रेयः कथं सत्यपराक्रमौ ॥ ८ ॥
प्रज्ञावन्तौ नरश्रेष्ठावस्मिँल्लोके नराधिप ।
त्वन्निमित्तमतो नेमौ किंचिज्जिह्मं वदिष्यतः ॥ ९ ॥
इति मे नैष्ठिकी बुद्धिर्वर्तते कुरुनन्दन ।
न चाऽर्थहेतोर्धर्मज्ञौ वक्ष्यतः पक्षसंश्रितम्॥ १० ॥
एतद्धि परमं श्रेयो मन्येऽहं तव भारत ।

देते हैं। आचार्य द्रोणने अनेक हित बात कही, राधापुत्र कर्णकी समझमें वे आपके हितकारी नहीं हैं। हे महाराज! मैं सोचकर नहीं समझ सकता, कि भीष्म और द्रोणसे अधिक ज्ञानी और आपका परम मित्र कौन विद्यमान है; वे दोनों बुद्धि विद्या और अवस्थामें वृद्ध हैं। हे महाराज! आपपर उनका जैसा भाव है, पाण्डवों परभी वैसाही है। (१-५)

हे भारतराज! इसमें सन्देह नहीं, कि यह लोग धर्म और सत्यके विषयमें दशरथके पुत्र रामचन्द्र और गयसे भी श्रेष्ठ हैं। यह दीखही नहीं पडता, कि इन्होंने पहिलेभी कभी आपका कोई अहित वाक्य कहा वा कोई हानि की हो। हे पृथ्वीनाथ! आपने तो इन दोनों पुरुषवरोंका कोई अनिष्ट नहीं किया, कि जिससे यह आपके लिये कल्याणदायी परामर्श न दें। विशेष यह दोनों पुरुषसिंह सत्यशील और ज्ञानी हैं; सो हे नरनाथ! यह आपके विषयमें कभी कुछ कुटिल वचन नहीं बोलेंगे। हे कुरुनन्दन! मेरी समझमें यह निश्चय किया हुआ है, कि यह दो धर्मज्ञ पुरुष धनके लोभसे कभी पक्षपातकी बात नहीं कहेंगे; सो इन्होंने जो कहा है, मेरी

दुर्योधनप्रभृतयः पुत्रा राजन्यथा तव ॥
तथैव पाण्डवेयास्ते पुत्रा राजन्न संशयः ॥ ११ ॥
तेषु चेदहितं किंचिन्मन्त्रयेयुरतद्विदः ।
मन्त्रिणस्ते न च श्रेयः प्रपश्यन्ति विशेषतः॥ १२ ॥
अथ ते हृदये राजन्विशेषः स्वेषु वर्तते ।
अन्तरस्थं विवृण्वानाः श्रेयः कुर्युर्न ते ध्रुवम्॥ १३ ॥
एतदर्थमिमौ राजन्महात्मानौ महाद्युती ।
नोचतुर्विकृतं किंचिन्न ह्येष तव निश्चयः ॥ १४ ॥
यच्चाऽप्यशक्यतां तेषामाहतुः पुरुषर्षभौ ।
तत्तथा पुरुषव्याघ्र तव तद्भद्रमस्तु ते ॥ १५ ॥
कथं हि पाण्डवः श्रीमान्सव्यसाची धनञ्जयः।
शक्यो विजेतुं संग्रामे राजन्मघवताऽपि हि ॥१६॥
भीमसेनो महाबाहुर्नागायुतबलो महान् ।
कथं स्म युधि शक्येत विजेतुममरैरपि ॥ १७ ॥
तथैव कृतिनौ युद्धे यमौ यमसुताविव ।

समझमें वह आपके लिये मंगलदायी है। (६—११)

हे महाराज! आपके लिये दुर्योधनादि पुत्र जैसे स्नेहपात्र हैं, सन्देह नहीं, कि पाण्डवभी वैसेही स्नेह-पात्र हैं । जो सब मन्त्री उस विषयको न जान करउन पाण्डवोंके अहितका परामर्श देते हैं,वे आपकी भलाई पर विशेष दृष्टि नहीं देते। हे भूप! यद्यपि आपके हृदयसे अपने पुत्रों पर विशेषता भी रहे; तौभी जो लोग उस हृदयस्थित भावके अनुसार बोलेंगे, इसमें सन्देह नहीं, कि वे आपका अनिष्ट करेंगे। इसलिये यह दो महातेजस्वी महात्माओंने उस प्रकार अनुचित परामर्श नहीं कहा है, पर आपके चित्तका भाव पक्षपातरहित न होनेहीके हेतु उसे आप समझ नहीं सकते हैं। हे पुरुषव्याघ्र! इन दोनोंने आपसे कहा है, कि पाण्डव जीते नहीं जा सकेंगे, वह झूठ नहीं है, सो हमारी यही प्रार्थना है, कि पाण्डवोंसे आपकी भलाई होवे। (११—१५)

हे नरनाथ! क्या देवराजभी युद्धस्थलमें श्रीमान् सव्यसाची पाण्डव धनञ्जयको जय कर सकते हैं? रणभूमिमें दश सहस्र गजोंके समान बली महान् महाभुज भीमसेनको क्या देवगण भी जय कर सकते हैं? रणस्थलमें क्या कोई भी जय चाहने वाले युद्धदक्ष यमवत यमज नकुल

कथं विजेतुं शक्यौ तौ रणे जीवितमिच्छता ॥ १८ ॥
यस्मिन्धृतिरनुक्रोशः क्षमा सत्यं पराक्रमः ।
नित्यानि पाण्डवे ज्येष्ठे स जीयेत रणे कथम् ॥ १९ ॥
येषां पक्षधरो रामो येषां मन्त्री जनार्दनः ।
किं नु तैरजितं संख्ये येषां पक्षे च सात्यकिः ॥ २० ॥
द्रुपदः श्वशुरो येषां येषां श्यालाश्च पार्षताः ।
धृष्टद्युम्नमुखा वीरा भ्रातरो द्रुपदात्मजाः ॥ २१ ॥
सोऽशक्यतां च विज्ञाय तेषामग्रे च भारत ।
दायाद्यतां च धर्मेण सम्यक्तेषु समाचर ॥ २२ ॥
इदं निर्दिष्टमयशः पुरोचनकृतं महत् ।
तेषामनुग्रहेणाऽद्य राजन्प्रक्षालयाऽऽत्मनः ॥ २३ ॥
तेषामनुग्रहश्चाऽयं सर्वेषां चैव नः कुले ।
जीवितं च परं श्रेयः क्षत्रस्य च विवर्धनम् ॥ २४ ॥
द्रुपदोऽपि महान्राजा कृतवैरश्च नः पुरा ।
तस्य संग्रहणं राजन्स्वपक्षस्य विवर्धनम् ॥ २५ ॥
बलवन्तश्च दाशार्हा बहवश्च विशांपते ।

सहदेवका पराक्रम सह सकता है ? जिस पुरुषमें धीरज, दया, क्षमा, सत्य और पराक्रम यह सब गुण सदा विराजमान हैं, क्या वह पाण्डवोंके ज्येष्ठ युधिष्ठिर जीते जानेके योग्य हैं ? विशेष राजा द्रुपद जिनके ससुर, द्रुपदके पुत्र वीर धृष्टद्युम्नादि भाई जिनके साले, बलराम कृष्ण और सात्यकि जिनके मन्त्री हैं, रणस्थल में क्या कुछभी उनसे जीते जानेके अयोग्य है ? (१६–२१)

अतएव, हे भारत ! रणस्थलमें उनकी अजेयता और धर्मानुसार राज्याधिकारिताकी बातोंको ध्यानमें लाकर पहिले ही उनसे योग्य व्यवहार करें । हे पृथ्वीपाल ! पुरोचनका किया जो बडे कुयश का धब्बा आप पर लग गया है, आप आज पाण्डवो पर कृपा दर्शाकर उसको धो डालें; आगे उन पर इस कृपाके दर्शानेसे हमारे वंशमें सबके जीवनकी रक्षा, परम मङ्गल और क्षत्रियकुलकी वृद्धि होगी । हे भूनाथ ! पाञ्चाल देशीय द्रुपद बहुत बडे राजा हैं, पहिले उनसे हमारी शत्रुता उभडी थी, पर उनको मिला लेनेसे हमारा पक्ष बहुत बढेगा । (२२-२५)

हे नरनाथ ! यह भी समझने योग्य है, कि दशार्ह देशीयगण बली और बहुत हैं,

यतः कृष्णस्ततः सर्वे यतः कृष्णस्ततो जयः॥ २६ ॥
यच्च साम्नैव शक्येत कार्यं साधयितुं नृप ।
को दैवशप्तस्तत्कार्यं विग्रहेण समाचरेत् ॥ २७ ॥
श्रुत्वा च जीवतः पार्थान्पौरजानपदा जानाः।
बलवद्दर्शने हृष्टास्तेषां राजन्प्रियं कुरु ॥ २८ ॥
दुर्योधनश्च कर्णश्च शकुनिश्चाऽपि सौबलः ।
अधर्मयुक्ता दुष्प्रज्ञा बाला मैषां वचः कृथाः॥ २९ ॥
उक्तमेतत्पुरा राजन्मया गुणवतस्तव ।
दुर्योधनापराधेन प्रजेयं वै विनङ्क्ष्यति ॥ ३० ॥[७७०९]

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यामादिपर्वणि विदुरागमनपर्वणि विदुरवाक्ये सप्ताधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २०७ ॥

धृतराष्ट्र उवाच-भीष्मः शान्तनवो विद्वान्द्रोणश्च भगवानृषिः।
हितं च परमं वाक्यं त्वं च सत्यं ब्रवीषि माम्॥ १ ॥
यथैव पाण्डोस्ते वीराः कुन्तीपुत्रा महारथाः ।
तथैव धर्मतः सर्वे मम पुत्रा न संशयः ॥ २ ॥
यथैव मम पुत्राणामिदं राज्यं विधीयते ।

कृष्ण जिस ओर रहेंगे, वे भी उसी ओर रहेंगे; सो जिस पक्ष में कृष्ण, उसी पक्षकी जय होगी । जो कार्य सामके द्वारा भले प्रकार सिद्ध हो सकता है, विना दैवी विडम्बना कौन उसको युद्धद्वारा सिद्ध करना चाहता होगा ? हे महाराज । नगर और जनपदवासी सब जन पाण्डवोंको जीवित सुनके उन की भेंटके लिये प्रसन्न हुए हैं; सो अवश्य ही उनका प्रिय करना चाहिये । दुर्योधन, कर्ण और सुबलपुत्र शकुनि, यह अधार्मिक कुसमझ और बालक हैं, इनकी बात किसी प्रकार सुननेके योग्य नहीं है। हे गुणोंसे सजे भूप ! मैंने पहिले भी आप से कहा था, कि दुर्योधनके दोषसे यह सब प्रजा नष्ट होगी। (२६-३०)[७७०९]

आदिपर्वमें दो सौ सात अध्याय समाप्त ।

आदिपर्वमें दो सौ आठ अध्याय ।

धृतराष्ट्र बोले, कि पण्डित शान्तनुनन्दन और भगवान ऋषि द्रोणने जो कहा तथा तुम जो कहते हो, वह परम हित और सब सत्य है । वे सब महारथी वीर कुन्तीनन्दन जिस प्रकार पाण्डुके पुत्र हैं, वैसेही धर्मानुसार मेरे भी पुत्र हैं; और मेरेभी पुत्र जिस प्रकार इस राज्यके अधिकारी हैं, इसमें सन्देह नहीं,

तथैव पाण्डुपुत्राणामिदं राज्यं न संशयः ॥ ३ ॥
क्षत्तरानय गच्छैतान्सह मात्रा सुसत्कृतान् ।
तथा च देवरूपिण्या कृष्णया सह भारत ॥ ४ ॥
दिष्ट्या जीवन्ति ते पार्था दिष्ट्या जीवति सा पृथा ।
दिष्ट्या द्रुपदकन्यां च लब्धवन्तो महारथाः॥ ५ ॥
दिष्ट्या वर्धामहे सर्वे दिष्ट्या शान्तः पुरोचनः।
दिष्ट्या मम परं दुःखमपनीतं महाद्युते ॥ ६ ॥
वैशम्पायन उवाच— ततो जगाम विदुरो धृतराष्ट्रस्य शासनात् ।
सकाशं यज्ञसेनस्य पाण्डवानां च भारत ॥ ७ ॥
समुपादाय रत्नानि वसूनि विविधानि च ।
द्रौपद्याः पाण्डवानां च यज्ञसेनस्य चैव ह ॥ ८ ॥
तत्र गत्वा स धर्मज्ञः सर्वशास्त्रविशारदः ।
द्रुपदं न्यायतो राजन्संयुक्तमुपतस्थिवान् ॥ ९ ॥
स चापि प्रतिजग्राह धर्मेण विदुरं ततः ।
चक्रतुश्च यथान्यायं कुशलप्रश्नसंविदम् ॥ १० ॥
ददर्श पाण्डवांस्तत्र वासुदेवं च भारत ।
स्नेहात्परिष्वज्य स तानपृच्छाऽनामयं ततः॥ ११ ॥

कि पाण्डुपुत्र भी वैसेही अधिकारी हैं। हे क्षत्त! जाओ, मातासहित पाण्डव और देवीरुपिणी कृष्णाको सत्कार करके लिवा लाओ। मेरे सौभाग्यहीसे पाण्डव जीवित हैं, मेरे सौभाग्यहीसे कुन्तीका कोई बडा अहित नहीं हुआ, महारथी पाण्डवोंका द्रौपदी लाभ करना भी मेरे सौभाग्यही का फल है। हे महा प्रकाश! बडे भाग्य हीसे हम सब बढ रहे हैं; सौभाग्य हीके वश हमारा परम दुःख दूर हुआ। (१-६)

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि हे भारत! अनन्तर विदुर धृतराष्ट्रकी आज्ञासे राजा यज्ञसेन, द्रौपदी और पाण्डवोंके लिये अनेक धन रत्न लेकर उनके निकट गये। आगे उन सर्व शास्त्रोंमें पण्डित धर्मके जानकार यज्ञसेनके पास पहुंचकर यथा-योग्य नमस्कार आलिङ्गन आदि किया। राजा यज्ञसेनने धर्मानुसार उठकर विदुर को सम्मानित किया। अनन्तर वे दोनों विधिपूर्वक आपसमें कुशल क्षेम पूछने पाछने लगे। हे भारत! अति बुद्धिमान विदुरने उस स्थानमें पाण्डव और वासुदेव को देखकर स्नेहसे हृदय गला के गलेसे लगाकर स्वास्थ्यकी बात पूछी। (७-११)

तैश्चाऽप्यमितबुद्धिः स पूजितो हि यथाक्रमम्।
वचनाद्धृतराष्ट्रस्य स्नेहयुक्तः पुनः पुनः ॥ १२ ॥
पप्रच्छाऽनामयं राजंस्ततस्तान्पाण्डुनन्दनान् ।
प्रददौ चापि रत्नानि विविधानि वसूनि च ॥ १३ ॥
पाण्डवानां च कुन्त्याश्च द्रौपद्याश्च विशांपते ।
द्रुपदस्य च पुत्राणां यथा दत्तानि कौरवैः ॥ १४ ॥
उवाच चाऽमितमतिः प्रश्रितं विनयान्वितः ।
द्रुपदं पाण्डुपुत्राणां संनिधौ केशवस्य च ॥ १५ ॥

विदुर उवाच— राजञ्छृणु सहामात्यः सपुत्रश्च वचो मम ।
धृतराष्ट्रः सपुत्रस्त्वां सहामात्यः सबान्धवः ॥ १६ ॥
अब्रवीत्कुशलं राजन्प्रीयमाणः पुनः पुनः ।
प्रीतिमांस्ते दृढं चापि संबन्धेन नराधिप ॥ १७ ॥
तथा भीष्मः शान्तनवः कौरवैः सह सर्वशः ।
कुशलं त्वां महाप्राज्ञः सर्वतः परिपृच्छति ॥ १८ ॥
भारद्वाजो महाप्राज्ञो द्रोणः प्रियसखस्तव ।
समाश्लेषमुपेत्य त्वां कुशलं परिपृच्छति ॥ १९ ॥
धृतराष्ट्रश्च पाञ्चाल्य त्वया संबन्धमीयिवान् ।
कृतार्थं मन्यतेऽऽत्मानं तथा सर्वेऽपि कौरवाः ॥ २० ॥

अनन्तर वह उनसे क्रमके अनुसार सत्कृत होकर धृतराष्ट्रकी आज्ञासे स्नेह पूर्वक बार बार कुशल पूछने लगे। हे नरनाथ! आगे उन्होंने पाण्डव, कुन्ती, द्रौपदी और द्रुपदके पुत्रोंको यथोचित धृतराष्ट्रका भेजा अनेक धन और रत्न दिया;और वह अमितबुद्धि विनयसे नम्र होके पाण्डव और केशवके सन्मुख द्रुपद को प्रेमभरी बातोंमें कहने लगे, कि हे महाराज! आप मन्त्री और पुत्रोंके साथ मेरा वचन सुनें। राजा धृतराष्ट्रने मन्त्री पुत्र और मित्रोंके साथ प्रसन्न होकर बार बार आपका कुशल पूछा है। हे नरनाथ! आपसे यह सम्बन्ध होनेसे वह आप पर प्रसन्न हुए हैं। बडे ज्ञानी शान्तनुनन्दन भीष्मने सम्पूर्ण कौरवोंके सहित सब प्रकारसे आपका स्वास्थ्य पूछा है; और आपके प्रिय सखा बडे ज्ञानी भारद्वाज द्रोणजीने आपसे संयोग पाकर उद्देशमें आलिङ्गन करके कुशल प्रश्न किया है। (१२-१९)

हे महाराज पाञ्चाल! धृतराष्ट्र और

न तथा राज्यसंप्राप्तिस्तेषां प्रीतिकरी मता ।
यथा संबन्धकं प्राप्य यज्ञसेन त्वया सह ॥ २१ ॥
एतद्विदित्वा तु भवान् प्रस्थापयतु पाण्डवान् ।
द्रष्टुं हि पाण्डुपुत्रांश्च त्वरन्ति कुरवो भृशम् ॥२२॥
विप्रोषिता दीर्घकालमेते चापि नरर्षभाः ।
उत्सुका नगरं द्रष्टुं भविष्यन्ति तथा पृथा ॥२३ ॥
कृष्णामपि च पाञ्चालीं सर्वाः कुरुवरस्त्रियः ।
द्रष्टुकामाः प्रतीक्षन्ते पुरं च विषयाश्च नः ॥२४ ॥
स भवान्पाण्डुपुत्राणामाज्ञापयतु मा चिरम् ।
गमनं सहदाराणामेतदत्र मतं मम ॥ २५ ॥
निसृष्टेषु त्वया राजन्पाण्डवेषु महात्मसु ।
ततोऽहं प्रेषयिष्यामि धृतराष्ट्रस्य शीघ्रगान् ॥२६ ॥
आगमिष्यन्ति कौन्तेयाः कुन्ती च सह कृष्णया २७ [७७३६]

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यामादिपर्वणि विदुरागमनपर्वणि विदुरसंवादेऽष्टाधिकशततमोऽध्यायः ॥ २०८ ॥ समाप्तं च विदुरागमनपर्व।

अथ राज्यलाभपर्व।

द्रुपद उवाच — एवमेतन्महाप्राज्ञ यथाऽऽत्थ विदुराऽद्य माम् ।

सब कौरव आपसे सम्बन्ध लाभकर अपनेको कृतार्थ मान रहे हैं। हे यज्ञसेन अधिक क्या कहें, आपसे वैवाहिक सम्बन्ध प्राप्त करनेसे उनकी जितनी प्रीति हुई, राज्य मिलनेसे उतनी नहीं होती; आप यह समझकर पाण्डवोंको वहां भेज देवें! कौरव लोग पाण्डवोंको देखनेके लिये बहुत व्यग्र हुए हैं। यह नरश्रेष्ठ पाण्डव और पृथा बहुत काल तक निरुद्देश थे, सो नगर देखनेको बहुत घबराये होंगे, कौरवों की स्त्रियां और हमारे नगर तथा जनपदवासी सब लोग पाञ्चाली कृष्णाको देखनेके लिये बाट देख रहे हैं; अतएव मेरा मत यह है, कि आप पाण्डवोंको पत्नीके साथ वहां जानेकी आज्ञा दें, विलम्ब न करें। हे महाराज! महात्मा पाण्डवोंको आपसे वहां जाने की आज्ञा मिलेगी, तो मैं शीघ्र जानेवाले दूत द्वारा धृतराष्ट्रको यह समाचार दूंगा। अनन्तर पाण्डव और कुन्ती कृष्णाको साथ लेके वहां जायंगी। (२०—२७)

आदिपर्वमें दो सौ आठ अध्याय और विदुरागमनपर्व समाप्त।(७७३६)

ममाऽपि परमो हर्षः संबन्धेऽस्मिन्कृते प्रभो ॥ १ ॥
गमनं चापि युक्तं स्याद् दृढमेषां महात्मनाम्।
न तु तावन्मया युक्तमेतद्वक्तुं स्वयं गिरा ॥ २ ॥
यदा तु मन्यते वीरः कुन्तीपुत्रो युधिष्ठिरः।
भीमसेनार्जुनौ चैव यमौ च पुरुषर्षभौ ॥ ३ ॥
रामकृष्णौ च धर्मज्ञौ तदा गच्छन्तु पाण्डवाः।
एतौ हि पुरुषव्याघ्रावेषां प्रियहिते रतौ ॥ ४ ॥

युधिष्ठिर उवाच—परवन्तो वयं राजंस्त्वयि सर्वे सहानुगाः ।
यथा वक्ष्यसि नः प्रीत्या तत्करिष्यामहे वयम्॥ ५ ॥

वैशम्पायन उवाच—ततोऽब्रवीद्वासुदेवो गमनं रोचते मम ।
यथा वा मन्यते राजा द्रुपदः सर्वधर्मवित्॥ ६ ॥

द्रुपद उवाच— यथैव मन्यते वीरो दाशार्हः पुरुषोत्तमः ।
प्राप्तकालं महाबाहुः सा बुद्धिर्निश्चिता मम ॥ ७ ॥
यथैव हि महाभागाः कौन्तेया मम सांप्रतम्।
तथैव वासुदेवस्य पाण्डुपुत्रा न संशयः ॥ ८ ॥
न तद्ध्यायति कौन्तेयः पाण्डुपुत्रो युधिष्ठिरः।
यथैषां पुरुषव्याघ्रः श्रेयो ध्यायति केशवः ॥ ९ ॥

राजा द्रुपद बोले, कि हे महाप्राज्ञ विदुर! इसकालमें आपने जो कहा, वही ठीक है। हे प्रभो! इस वैवाहिक सम्बन्धसे मैं भी बडा प्रसन्न हूं। अब इन महात्माओंको घर जानाही सब प्रकारसे योग्य है; पर स्वयं वह कहना मेरे लिये उचित नहीं है, यदि कुन्ती-पुत्र युधिष्ठिर, भीम, अर्जुन और पुरुष-श्रेष्ठ नकुल तथा सहदेव, यहांसे जाना चाहें और धर्मज्ञ राम तथा कृष्ण आज्ञा दें, तो ले जाइये; क्योंकि यह पुरुषव्याघ्र राम और कृष्ण सदा इनका प्रिय करने और हित साधनेमें नियुक्त हैं। युधिष्ठिर बोले, कि महाराज! अब मैं भाइयोंके साथ आपके अधीन हूं, आप प्रसन्न होके हमको जो कहेंगे, वही करेंगे (१-५)

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि अनन्तर वासुदेवजीने कहा, कि मेरी समझमें जाना उचित है, पर सर्वधर्मोंके जानकार राजा द्रुपदका जो विचार हो, वही उचित है। द्रुपद बोले, कि इस कालके अनुसार महा-भुज पुरुषोत्तम वीर दशार्हने जैसा विचा-रा, मेरी समझमें वही ठीक है। अब महा-

[Registered No. B. 1819.]

अंक ११

महाभारत।

(भाषा--भाष्य--समेत)

संपादक — श्रीपाद दामोदर सातवळेकर.
स्वाध्याय मंडल, औंध (जि. सातारा)

१२ अंकोंका मूल्य म.आ.से. ६) वी.पी.से ७) विदेशके लिये ८)

महाभारतके नियम।

(१) महाभारत मूल और भाषांतर प्रति अंकमें सौ पृष्ठ प्रकाशित होगा।

(२) इसमें मूल श्लोक और उसका सरल भाषानुवाद होगा। महाभारत की समालोचना प्रतिमास वैदिक धर्म मासिक में प्रकाशित होती रहेगी और पर्व समाप्तिके पश्चात् पुस्तक रूपसेभी वह ग्राहकों को मिल जायगी।

(३) भूमिका रूप इस विस्तृत लेखमें धार्मिक, सामाजिक, राजकीय तथा अन्य दृष्टियोंसे परिपूर्ण विवरण होगा, तात्पर्य यह भूमिका का विस्तृत लेख भारतकालीन वस्तुस्थितिका पूर्ण रीतिसे निदर्शक होगा। यह लेख हरएक पर्व छपनेके पश्चात ही ग्राहकों को मिल जायगा।

(४) संपूर्ण महाभारतके मुख्य प्रसंगों के सौ चित्र इस ग्रंथमें दिये जांयगे। उन में प्रतिपर्व एक चित्र रंगीन भी होगा। इसके अतिरिक्त उस समयकी भूगोलिक अवस्था बताने वाले कई नकशे दिये जांयगे।

(५) इसके अतिरिक्त ग्राम, नगर, प्रांत, और देशोंके नाम, जातिवाचक नाम, तथा अन्य नामोंका पूर्ण परिचय देनेवाली विविध सूचियां भी दी जांयगी।

मूल्य।

(६) बारह अंकोंका अर्थात् १२०० पृष्ठोंका मूल्य मनी आर्डर से ६) छः रु. होगा और वी.पी.से ७.) रु. होगा, यह मूल्य वार्षिक मूल्य नहीं है, परंतु १२०० पृष्ठोंका मूल्य है।

(७) बहुधा प्रतिमास १०० पृष्ठोंका एक अंक प्रकाशित होगा, परंतु संभव हुआ तो अधिक अंक भी प्रसिद्ध होंगे।

(८) प्रत्येक अंक तैयार होते ही ग्राहकों के पास भेजा जायगा। यदि किसीको न मिला, तो उनकी सूचना अगला अंक मिलते ही आनी चाहिये। जिनकी सूचना अगला अंक मिलते ही आ जायगी उनको ही वह न मिला हुआ अंक पुनः भेजा जायगा। परंतु जिनकी सूचना उक्त समयमें नहीं आवेगी उनको ।।।=) आनेका मूल्य आनेपर, संभव हुआ तो ही अंक भेजा जायगा।

(९) सब ग्राहक अपने अपने अंक संभाल कर रखें और चार अथवा पांच महिनों के पश्चात् अपने अंकोंकी जिल्द बनवा लें जिससे अंक गुम होनेकी संभावना नहीं होगी। दो मास के पश्चात् किसी पुराने ग्राहक को पिछला अंक मूल्य देनेपरभी मिलेगा नहीं क्योंकि एक अंक कम होनेसे

वैशम्पायन उवाच–ततस्ते समनुज्ञाता द्रुपदेन महात्मना ।
पाण्डवाश्चैव कृष्णश्च विदुरश्च महीपते ॥ १० ॥
आदाय द्रौपदीं कृष्णां कुन्तीं चैव यशस्विनीम् ।
सविहारं सुखं जग्मुर्नगरं नागसाह्वयम् ॥ ११ ॥
श्रुत्वा चाऽप्यागतान्वीरान्धृतराष्ट्रो जनेश्वरः ।
प्रतिग्रहाय पाण्डूनां प्रेषयामास कौरवान् ॥ १२ ॥
विकर्णं च महेष्वासं चित्रसेनं च भारत ।
द्रोणं च परमेष्वासं गौतमं कृपमेव च ॥ १३ ॥
तैस्ते परिवृता वीराः शोभमाना महाबलाः ।
नगरं हास्तिनपुरं शनैः प्रविविशुस्तदा ॥ १४ ॥
कौतूहलेन नगरं दीप्यमानमिवाऽभवत् ।
तत्र ते पुरुषव्याघ्राः शोकदुःखविनाशनाः ॥ १५ ॥
तत उच्चावचा वाचः पौरैः प्रियचिकीर्षुभिः ।
उदीरिता अशृण्वंस्ते पाण्डवा हृदयंगमाः ॥ १६ ॥
अयं स पुरुषव्याघ्रः पुनरायाति धर्मवित् ।
यो नः स्वानिव दायादान्धर्मेण परिरक्षति ॥ १७ ॥

भाग पाण्डव जैसे मेरे स्नेहके पात्र हैं, वैसे ही इसमें सन्देह नहीं है, कि पुरुषश्रेष्ठ वासुदेवके भी स्नेहके पात्र हैं। वह जैसे इन की मङ्गलचिन्ता करते हैं, कुंती नन्दन युधिष्ठिरसे भी वैसी बन नहीं पडती। ६-९

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि हे पृथ्वीनाथ! अनन्तर पाण्डव, कृष्ण और विदुर महात्मा द्रुपदकी आज्ञा पाके परम सुख से विहार करते हुए यशस्विनी कुन्ती और द्रौपदीके साथ हास्तिनापुरमें जाने लगे। हे भारत! जननाथ धृतराष्ट्रने वीर पाण्डवोंके शुभागमनका समाचार सुनके, उनको लिवा लानेके लिये बडे चापधारी विकर्ण, चित्रसेन, धनुष धरनेवालोंमें श्रेष्ठ द्रोण और गौतमकृप, इन सब कौरव पक्षके लोगोंको भेजा। महाबली वीर पाण्डव उनसे घेरे जाके सोहते हुए धीरे धीरे हस्तिनापुरमें गये। तब वह नगर नगरवालोंके देखनेकी बडी चाहकी हडबडीसे मानो फटने लगा। (१०–१४)

पुरुषव्याघ्र पाण्डवोंको देखके पुरवासियोंके शोक दुःख दूर होगये। प्रिय चाहनेवाले पुरवासियोंके हृदयप्यारे पाण्डव उनसे कहे जाते हुए इस प्रकार के भांति भांतिके वचन सुनने लगे, कि यह वही धर्मज्ञ पुरुषव्याघ्र फिर आ

अद्य पाण्डुर्महाराजो वनादिव जनप्रियः ।
आगतः प्रियमस्माकं चिकीर्षुर्नाऽत्र संशयः ॥ १८ ॥
किं नु नाऽद्य कृतं तात सर्वेषां नः परं प्रियम् ।
यं नः कुन्तीसुता वीरा नगरं पुनरागताः ॥ १९ ॥
यदि दत्तं यदि हुतं विद्यते यदि नस्तपः ।
तेन तिष्ठन्तु नगरे पाण्डवाः शरदां शतम् । २० ॥
ततस्ते धृतराष्ट्रस्य भीष्मस्य च महात्मनः ।
अन्येषां च तदर्हाणां चक्रुः पादाभिवन्दनम् ॥ २१ ॥
कृत्वा तु कुशलप्रश्नं सर्वेण नगरेण च ।
न्यविशन्ताऽथ वेश्मानि धृतराष्ट्रस्य शासनात्॥२२॥
विश्रान्तास्ते महात्मानः कंचित्कालं महाबलाः ।
आहूता धृतराष्ट्रेण राज्ञा शान्तनवेन च ॥ २३ ॥
धृतराष्ट्र उवाच– भ्रातृभिः सह कौन्तेय निबोध गदतो मम ।
पुनर्नो विग्रहो मा भूत्खाण्डवप्रस्थमाविश ॥ २४ ॥
न च वो वसतस्तत्र कश्चिच्छक्तः प्रबाधितुम् ।
संरक्ष्यमाणान्पार्थेन त्रिदशानिव वज्रिणा ॥ २५ ॥

रहे हैं, कि जो अपने परिवारोंकी भांति हमारी रक्षा करते थे। आज मानो सब जनोंके प्यारे महाराज पाण्डुही हमारे प्रिय चाहनेवाले बनके, वनसे लौट आरहे हैं। इससे बढकर हमारा कौनसा प्रिय कार्य होगा, कि आज वीर कुन्तिपुत्रगण हमारे नगरमें फिर आरहे हैं। यदि हमने दान वा हवन किया हो अथवा यदि हमारा बटोरा हुआ तप हो, तो उसके बलसे पाण्डव लोग इस नगरमें सैकडों वर्ष बसें। (१५—२०)

अनन्तर पाण्डवोंने धृतराष्ट्र, महात्मा भीष्म और दूसरे गुरुजनोंके पांव छुए। आगे नगरवालोंका कुशल पूछ के वार्त्तालाप कर धृतराष्ट्रकी आज्ञासे राज-मन्दिर में बसने लगे। महात्मा महाबली पाण्डवों के कुछ काल विश्राम करनेके पीछे राजा धृतराष्ट्र और शान्तनुपुत्र भीष्मने उनको बुलवाया। अनन्तर उनके जाने पर धृतराष्ट्रने युधिष्ठिरसे कहा, कि हे कुन्तीपुत्र ! मैं जो कहूं, भाइयोंके साथ सुनो; तुम खाण्डवप्रस्थमें जाय बसो, कि तुमसे हमारा फिर बिगाड न हो। तुम अर्जुनसे इस प्रकार रक्षित होकर, कि जैसे इन्द्रजीसे देवता रक्षित होते हैं, वहां वास करो, तो तुमसे कोई छेड छाड

अर्धं राज्यस्य संप्राप्य खाण्डवप्रस्थमाविश।

वैशम्पायन उवाच-प्रतिगृह्य तु तद्वाक्यं नृपं सर्वे प्रणम्य च ॥ २६ ॥
प्रतस्थिरे ततो घोरं वनं तन्मनुजर्षभाः ।
अर्धं राज्यस्य संप्राप्य खाण्डवप्रस्थमाविशन्॥ २७॥
ततस्ते पाण्डवास्तत्र गत्वा कृष्णपुरोगमाः।
मण्डयांचक्रिरे तद्वै पुरं स्वर्गवदच्युताः ॥ २८ ॥
ततः पुण्ये शिवे देशे शांतिं कृत्वा महारथाः।
नगरं मापयामासुर्द्वैपायनपुरोगमाः ॥ २९ ॥
सागरप्रतिरूपाभिः परिखाभिरलंकृतम् ।
प्राकारेण च संपन्नं दिवमावृत्य तिष्ठता ॥ ३० ॥
पाण्डुराभ्रप्रकाशेन हिमरश्मिनिभेन च ।
शुशुभे तत्पुरश्रेष्ठं नागैर्भोगवती यथा ॥ ३१ ॥
द्विपक्षगरुडप्रख्यैर्द्वारैः सौधैश्च शोभितम् ।
गुप्तमभ्रचयप्रख्यैर्गोपुरैर्मन्दरोपमैः ॥ ३२ ॥
विविधैरतिनिर्विद्धैः शस्त्रोपेतैः सुसंवृतैः ।
शक्तिभिश्चाऽऽवृतं तद्धि द्विजिह्वैरिव पन्नगैः॥ ३३ ॥

नहीं कर सकेगा; सो तुम राज्यका आधा भाग लेकर खाण्डवप्रस्थमें रहो। २१-२६

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि मनुष्य-श्रेष्ठ पाण्डवोंने राजा धृतराष्ट्रकी बात मानकर राज्यका आधा भाग पाके उनके पांव छूकर वने वनमें जाय खाण्डवप्रस्थमें प्रवेश किया। उन अच्युत पुरुषोंने कृष्णके साथ वहां पहुंच कर उस ठौरको देवलोककी भांति बनाया! महारथी पाण्डवोंने कृष्णद्वैपायनके साथ शुभ पुण्यस्थानमें शान्ति-कार्य करवाकर भले प्रकारसे नगर बसाया। वह नगर सागर समान बडी खांई और चन्द्रमा तथा धुन्धले बादल समान आकाश चूमनेवाले भवनोंकी कतारसे ऐसी शोभा पाने लगा, कि जैसी भोगवती नगरी सर्पोंसे सुशोभित होती है। उसके घरोंकी किवाडयुक्त प्रशस्त द्वारोंसे उडनेको चाहने वाले पंख फैलाये गरुडकी शोभा हुई। वह श्रेष्ठ पुरी बादल दल और मन्दरपर्वत सदृश भलेप्रकार संवृत्त, अस्त्रयुक्त, भेदनेके अयोग्य और भांति भांतिके गोपुरोंसे अच्छे प्रकार रक्षित हुई। ठौर ठौरमें दो जीभवाले सर्पवत शक्ति नामक अस्त्रोंसे घिरी, अस्त्र शिक्षाके लिये बडे बडे

तल्पैश्चाऽभ्यासिकैर्युक्तं शुशुभे योधरक्षितम्।
तीक्ष्णाङ्कुशशतघ्नीभिर्यन्त्रजालैश्च शोभितम् ३४
आयसैश्च महाचक्रैः शुशुभे तत्पुरोत्तमम् ।
सुविभक्तमहारथ्यं देवताबाधवर्जितम् ॥ ३५ ॥
विरोचमानं विविधैः पाण्डुरैर्भवनोत्तमैः ।
तत्त्रिविष्टपसंकाशमिन्द्रप्रस्थं व्यरोचत ॥ ३६ ॥
मेघवृन्दमिवाऽऽकाशे विद्धं विद्युत्समावृतम्।
तत्र रम्ये शिवे देशे कौरवस्य निवेशनम् ॥ ३७ ॥
शुशुभे धनसंपूर्णं धनाध्यक्षक्षयोपमम् ।
तत्राऽगच्छन्द्विजा राजन्सर्ववेदविदां वराः ॥ ३८ ॥
निवासं रोचयन्ति स्म सर्वभाषाविदस्तथा ।
वणिजश्चाऽभ्ययुस्तत्र नानादिग्भ्यो धनार्थिनः॥३९॥
सर्वशिल्पविदस्तत्र वासायाऽभ्यागमंस्तदा ।
उद्यानानि च रम्याणि नगरस्य समन्ततः ॥ ४० ॥
आम्रैराम्रातकैर्नीपैरशोकैश्चम्पकैस्तथा ।
पुन्नागैर्नागपुष्पैश्च लकुचैः पनसैस्तथा ॥ ४१ ॥

भवनोंसे सुशोभित, योधोंसे रक्षित, तेज अङ्कुश तथा एकवारही सैकडों मनुष्योंके प्राणनाशी शतघ्नी नामक अस्त्रयुक्त यन्त्र जाल और लोहेके बडे बडे चक्रोंसे सुशोभित हुई; उसके पथ चौडे और बडे हिसाबसे बनाये गये। उन नगरोंमें कभी दैवी छेड छाडकी सम्भावना नहीं रही। वह नगर धूधले रंगके भांति भांतिके अच्छे अच्छे भवनोंकी कतारोंसे अमरोंकी पुरीके समान शोभायमान होनेके कारण इन्द्रप्रस्थ कहलाया! ऐसे नगरके सुन्दर शुभ स्थानमें पाण्डवोंकी धनभरी धननाथसदृश भवन मण्डली आकाश मण्डलमें चमकती हुई बिजलीसे जटित बादलसमान सोहने लगी।२६-३८

हे महाराज! अनन्तर संस्कृत प्राकृत आदि देश देशकी भाषा जानने वाले और सब वेदोंके जानकार ब्राह्मणोंने आकर उस ठौरमें बसना निश्चय किया। वणिक लोग धनार्जनके अभिलाषी बनके अनेक दिशाओंसे वहां आने लगे। अनेक प्रकार शिल्प विज्ञान जानने वाले वहां आ बसे। नगरके चारों ओर सुन्दर सुन्दर फुलवाडी आम, आम्रातक कदम्ब, अशोक, चम्पा, पुन्नाग, नागकेशर, लकुच, पनस, शाल, ताल, तमाल, बकुल,

शालतालतमालैश्च बकुलैश्च सकेतकैः ।
मनोहरैः सुपुष्पैश्च फलभारावनामितैः ॥ ४२ ॥
प्राचीनामलकैर्लोध्रैरङ्कोलैश्च सुपुष्पितैः ।
जम्बूभिः पाटलाभिश्च कुब्जकैरतिमुक्तकैः ॥ ४३ ॥
करवीरैः पारिजातैरन्यैश्च विविधैर्द्रुमैः ।
नित्यपुष्पफलोपेतैर्नानाद्विजगणायुतैः ॥ ४४ ॥
मत्तबर्हिणसंघुष्टैः कोकिलैश्च सदामदैः ।
गृहैरादर्शविमलैर्विविधैश्च लतागृहैः ॥ ४५ ॥
मनोहरैश्चित्रगृहैस्तथा जगतिपर्वतैः ।
वापीभिर्विविधाभिश्च पूर्णाभिः परमाम्भसा॥४६ ॥
सरोभिरतिरम्यैश्च पद्मोत्पलसुगन्धिभिः ।
हंसकारण्डवयुतैश्चक्रवाकोपशोभितैः ॥ ४७ ॥
रम्याश्च विविधास्तत्र पुष्करिण्यो वनावृताः।
तडागानि च रम्याणि बृहन्ति सुबहूनि च ॥ ४८ ॥
तेषां पुण्यजनोपेतं राष्ट्रमाविशतां महत् ।
पाण्डवानां महाराज शश्वत्प्रीतिरवर्धत ॥ ४९ ॥
तत्र भीष्मेण राज्ञा च धर्मप्रणयने कृते ।
पाण्डवाः समपद्यन्त खाण्डवप्रस्थवासिनः ॥ ५० ॥

मनोहर फूलसहित केतक, फलके भारसे नम्र पानीय आमलक, लोध्र, सुन्दर फूल-युक्त अङ्कोल, जम्बु, पाटल,माधवी-लता-कुञ्ज, करवीर और पारिजात यह सब और दूसरे नित्य फुल फलवाले भांति भांतिके वृक्षोंसे सुहायी। वे फुलवाडी अनेक प्रकारके पक्षी,उन्मत्त मयूरदल और उमङ्गसे चुहचुहाती हुई कायलकुलसे भरकर पहिलेकी अनदेखी सुन्दरता फैलाने लगीं। और अनेक प्रकारके आदर्श-सदृश निर्मल गृह, भांति भांतिके लता-गृह, सुहावने चित्रगृह, क्रीडार्थ मिट्टीके कृत्रिम पहाड, श्वेत लाल आदि नाना प्रकारके पद्मकी गन्धसे अति मनोर स-रोवर, हंस कारण्डव और चकवोंसे सुहा-वने वनसे घिरे, भांति भांतिके ताल और बडे बडे सुन्दर तडागोंसे सुहायी। (३८—४८)

महाराज! उस पुण्यशील जनोंसे पूरित महान् प्रदेशमें जाके पाण्डवोंका आनन्द दिन दिन बढने लगा। राजा धृतराष्ट्र और भीष्मके पाण्डवोंके लिये

पञ्चभिस्तैर्महेष्वासैरिन्द्रकल्पैः समन्वितम् ।
शुशुभे तत्पुरश्रेष्ठं नागैर्भोगवती यथा ॥ ५१ ॥
तां निवेश्य ततो वीरो रामेण सह केशवः ।
ययौ द्वारवतीं राजन्पाण्डवानुमते तदा ॥ ५२ ॥ [७७८८]

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यामादिपर्वणि राज्यलम्भपर्वणि पुरनिर्माणे नवाधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २०९॥

जनमेजय उवाच—एवं संप्राप्य राज्यं तदिन्द्रप्रस्थं तपोधन ।
अत ऊर्ध्वं महात्मानः किमकुर्वत पाण्डवाः॥ १ ॥
सर्व एव महासत्त्वा मम पूर्वपितामहाः ।
द्रौपदी धर्मपत्नी च कथं तानन्ववर्तत ॥ २ ॥
कथं च पञ्च कृष्णायामेकस्यां ते नराधिपाः।
वर्तमाना महाभागा नाऽभिद्यन्त परस्परम्॥ ३ ॥
श्रोतुमिच्छाम्यहं सर्वं विस्तरेण तपोधन ।
तेषां चेष्टितमन्योन्यं युक्तानां कृष्णया सह ॥ ४ ॥
वैशम्पायन उवाच—धृतराष्ट्राभ्यनुज्ञाताः कृष्णया सह पाण्डवाः ।
रेमिरे खाण्डवप्रस्थे प्राप्तराज्याः परंतपाः ॥ ५ ॥

उस प्रकार धर्मकी व्यवस्था कर देने पर पाण्डव खाण्डवप्रस्थमें वासकर आनन्दित हुए । भोगवती नगरी जिस प्रकार नागोंसे सोहती है; वैसेही वह नगर पञ्च पाण्डवोंसे अच्छी शोभा पाने लगा । हे महाराज ! बलदेवजीके साथ वीर श्रीकृष्ण इस प्रकारसे पाण्डवोंको राज्यमें बैठाकर उनकी सम्मतिसे द्वारका को गये । (४९—५२) [७७८८]

आदिपर्वमें दो सौ नौ अध्याय समाप्त ।

आदिपर्वमें दो सौ दस अध्याय ।

जनमेजय बोले, कि हे तपोधन ! महासत्व महात्मा मेरे पहिलेके दादे पाण्डवोंने इन्द्रप्रस्थमें इसके पीछे क्या किया था ? उनकी भार्या द्रौपदी क्योंकर उन सबोंके संग मिलती थी और ये महाभाग भूपति पांचों एक द्रौपदीसे रत होते थे; फिर तिस परभी उन पांचोंमें आपसका झगडा नहीं उभडा था, इसका क्या कारण है ? हे तपोधन ! कृष्णासे मिलते हुए उन महात्माओंने आपसमें कैसा व्यवहार किया था ? यह सब विस्तारपूर्वक सुनना चाहता हूं । (१—४)

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि शत्रु मंथनेहारे पाण्डव धृतराष्ट्रकी आज्ञासे राज्य-

प्राप्य राज्यं महातेजाः सत्यसन्धो युधिष्ठिरः।
पालयामास धर्मेण पृथिवीं भ्रातृभिः सह ॥ ६ ॥
जितारयो महाप्राज्ञाः सत्यधर्मपरायणाः ।
मुदं परमिकां प्राप्तास्तत्रोषुः पाण्डुनन्दनाः ॥ ७ ॥
कुर्वाणाः पौरकार्याणि सर्वाणि पुरुषर्षभाः ।
आसांचक्रुर्महार्हेषु पार्थिवेष्वासनेषु च ॥ ८ ॥
अथ तेषूपविष्टेषु सर्वेष्वेव महात्मसु ।
नारदस्त्वथ देवर्षिराजगाम यदृच्छया ॥ ९ ॥
आसनं रुचिरं तस्मै प्रददौ स्वं युधिष्ठिरः ।
देवर्षेरुपविष्टस्य स्वयमर्घ्यं यथाविधि ॥ १० ॥
प्रादाद्युधिष्ठिरो धीमान्राज्यं तस्मै न्यवेदयत् ।
प्रतिगृह्य तु तां पूजामृषिः प्रीतमनास्तदा ॥ ११ ॥
आशीर्भिर्वर्धयित्वा च तमुवाचाऽऽस्यतामिति ।
निषसादाऽभ्यनुज्ञातस्ततो राजा युधिष्ठिरः ॥ १२ ॥
कथयामास कृष्णायै भगवन्तमुपस्थितम् ।
श्रुत्वैतद् द्रौपदी चापि शुचिर्भूत्वा समाहिता॥१३ ॥
जगाम तत्र यत्राऽऽस्ते नारदः पाण्डवैः सह ।
तस्याऽभिवाद्य चरणौ देवर्षेर्धर्मचारिणी ॥ १४ ॥

लाभ कर खाण्डवप्रस्थमें कृष्णाके साथ गृहस्थी करने लगे। बडे तेजस्वी सत्यशील युधिष्ठिर राज्य पाकर भाईयोंके साथ धर्मके अनुसार प्रजा पालने लगे। शत्रु विनाशी, महाप्राज्ञ, सत्यधर्मशील पुरुष--श्रेष्ठ दूसरे पाण्डवगण बडे आनन्द से उस स्थानमें वसे रहे। वे बडे कीमती राजासनों पर बैठके सम्पूर्ण पौरकर्मोंको निबटारा करते थे। (६—८)

अनन्तर एक दिन वे सब महात्मा बैठे थे, कि ऐसे समयमें देवर्षि नारद मनमाने वहां आ पहुंचे। बुद्धिमान् युधिष्ठिरने ऋषिको आते देखकर अपना सुन्दर आसन छोड दिया। अनन्तर देवर्षिके बैठने पर उन्होंने उनको विधिपूर्वक अर्घ देकर सम्पूर्ण राजकार्यकी बातें कह सुनायी। ऋषिने पूजा लेकर प्रसन्न चित्तसे उनको अशीस देकर बैठने कहा। राजा युधिष्ठिर मुनिकी आज्ञासे बैठ गये और कृष्णाके पास देवर्षिके आनेका समाचार भिजवाया। द्रौपदी वह बात सुनते ही शुचि और समाहित

कृताञ्जलिः सुसंवीता स्थिताऽथ द्रुपदात्मजा।
तस्याश्चापि स धर्मात्मा सत्यवागृषिसत्तमः॥ १५॥
आशिषो विविधाः प्रोच्य राजपुत्र्यास्तु नारदः।
गम्यतामिति होवाच भगवांस्तामनिन्दिताम्॥१६॥
गतायामथ कृष्णायां युधिष्ठिरपुरोगमान्।
विविक्ते पाण्डवान्सर्वानुवाच भगवानृषिः॥ १७॥

नारद उवाच— पाञ्चाली भवतामेका धर्मपत्नी यशस्विनी।
यथा वो नाऽत्र भेदः स्यात्तथा नीतिर्विधीयताम् १८
सुन्दोपसुन्दौ हि पुरा भ्रातरौ सहितावुभौ।
आस्तामवध्यावन्येषां त्रिषु लोकेषु विश्रुतौ॥ १९॥
एकराज्यावेकगृहावेकशय्यासनाशनौ।
तिलोत्तमायास्तौ हेतोरन्योन्यमभिजघ्नतुः॥ २०॥
रक्ष्यतां सौहृदं तस्मादन्योन्यप्रीतिभावकम्।
यथा वो नाऽत्र भेदः स्यात्तत्कुरुष्व युधिष्ठिर॥ २१॥

युधिष्ठिर उवाच—सुन्दोपसुन्दावसुरौ कस्य पुत्रौ महामुने।
उत्पन्नश्च कथं भेदः कथं चाऽन्योन्यमघ्नताम्॥ २२॥

होकर उस ठौरमें आगयी जहां देवर्षि पाण्डवोंके साथ बैठे थे। धर्मचारिणी कृष्णा देवर्षिके पांवोंको प्रणाम कर हाथ जोड अवगुण्ठितभावसे खडी हुई। ९-१५

धर्मात्मा सत्यवादी ऋषिश्रेष्ठ नारदने अनिन्दिता राजकन्याको अनेक अशीस देकर जानेकी आज्ञा दी। अनन्तर द्रौपदी के चले जाने पर भगवान् देवर्षि युधिष्ठिर आदि पाण्डवोंसे निरालेमें बोले, कि यशस्विनी द्रौपदी अकेली तुम सबोंकी धर्मपत्नी बनी है; ऐसी दशामें तुम भाईयोंमें विगाड हो सकता है, सो ऐसा कोई नियम करो, कि वह न होने पावे! पूर्वकालमें सुन्द और उप सुन्द नामक दो भाई एकत्र वसते थे। वे दूसरोंसे वधे जानेके अयोग्य और उनका एक राज्य, एक गृह, एक सेज, एक भोजन-स्थान था। उनमें सदा ऐसी मित्रता बनी रहने परभी तिलोत्तमाके लिये उन्होंने एक दूसरेको मार डाला। सो हे युधिष्ठिर! तुम आपसकी प्रीति बढानेवाले भ्रातृप्रेम बनाये रखो। यह प्रयत्न करो, कि तुममें भ्रातृभेद न होने पावे। (१६-२१)

युधिष्ठिर बोले, कि हे महामुने! सुन्द और उपसुन्द किसके पुत्र थे! क्योंकर उनमें आपसका भेद होगया? और

अप्सरा देवकन्या वै कस्य चैषा तिलोत्तमा।
यस्याः कामेन संमत्तौ जघ्नतुस्ता परस्परम् ॥ २३ ॥
एतत्सर्वं यथावृत्तं विस्तरेण तपोधन ।
श्रोतुमिच्छामहे ब्रह्मन्परं कौतूहलं हि नः ॥ २४ ॥ [७८१२]

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यामादिपर्वणि राज्यलंभपर्वणि युधिष्ठिरनारदसंवादे दशाधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २१० ॥

नारद उवाच— शृणु मे विस्तरेणेममितिहासं पुरातनम् ।
भ्रातृभिः सहितः पार्थ यथावृत्तं युधिष्ठिर ॥ १ ॥
महासुरस्याऽन्ववाये हिरण्यकशिपोः पुरा ।
निकुम्भो नाम दैत्येन्द्रस्तेजस्वी बलवानभूत् ॥ २ ॥
तस्य पुत्रौ महावीर्यौ जातौ भीमपराक्रमौ ।
सुन्दोपसुन्दौ दैत्येन्द्रौ दारुणौ क्रूरमानसौ ॥ ३ ॥
तावेकनिश्चयौ दैत्यावेककार्यार्थसंमतौ ।
निरन्तरमवर्तेतां समदुःखसुखावुभौ ॥ ४ ॥
विनाऽन्योन्यं न भुञ्जाते विनाऽन्योन्यं न जग्मतुः ।
अन्योन्यस्य प्रियकरावन्योन्यस्य प्रियंवदौ ॥ ५ ॥

क्योंकर उन्होंने एक दूसरे को मारडाला था ? और जिस नारीके लिये उन्होंने एक दूसरेको मारडाला था, वह तिलोत्तमा किसकी कन्या थी ? वह बाला अप्सरा वा देवकन्या थी ? हे ब्रह्मन् ! यह सब विस्तारपूर्वक आद्योपांत सुनना चाहता हूं । हे तपोधन ! यह सुननेकी मुझमें बडी इच्छा उभडी है । (२२–२४)

आदिपर्व में दो सौ दश अध्याय समाप्त। [७८१२]

आदिपर्व में दोसौ ग्यारह अध्याय ।

श्रीनारदजी बोले, कि हे पृथापुत्र युधिष्ठिर ! भाइयोंके साथ तुम यह पुरानी कथा सुनो । पूर्वकालमें महावीर हिरण्यकशिपुके वंशमें निकुम्भ नामक बली तेजस्वी एक दैत्यवरने जन्म लिया था । उसके बडे पराक्रमी, बडे वीर्यवन्त कुटिलचित्त दो कठोर पुत्र उपजे । उन दो दैत्यराज पुत्रोंमें एकका नाम सुन्द और दूसरेका उपसुन्द था । वे दोनों सदा एकही विषयमें सम्मत, एकही विषयमें दत्तचित्त और एकही कार्यके करनेवाले होके समान सुख दुःखसे काल गवाते थे । दोनों एक दूसरेको प्यारी बोली बोलते और एक दूसरेका प्रियकार्य करते थे; एक भाइके बिना दूसरा भाई भोजन वा गमन नहीं करता था।

एकशीलसमाचारौ द्विधैवैकं यथा कृतौ ।
तौ विवृद्धौ महावीर्यौ कार्येष्वप्येकनिश्चयौ ॥ ६ ॥
त्रैलोक्यविजयार्थाय समाधायैकनिश्चयम् ।
दीक्षां कृत्वा गतौ विन्ध्यं तावुग्रं तेपतुस्तपः॥ ७ ॥
तौ तु दीर्घेण कालेन तपोयुक्तौ बभूवतुः ।
क्षुत्पिपासापरिश्रान्तौ जटावल्कलधारिणौ ॥ ८ ॥
मलोपचितसर्वाङ्गौ वायुभक्षौ बभूवतुः ॥ ९ ॥
आत्ममांसानि जुह्वन्तौ पादाङ्गुष्ठाग्रधिष्ठितौ।
ऊर्ध्वबाहू चाऽनिमिषौ दीर्घकालं धृतव्रतौ ॥ १० ॥
तयोस्तपःप्रभावेण दीर्घकालं प्रतापितः ।
धूमं प्रमुमुचे विन्ध्यस्तदद्भुतमिवाऽभवत् ॥ ११ ॥
ततो देवा भयं जग्मुरुग्रं दृष्ट्वा तयोस्तपः ।
तपोविघातार्थमथो देवा विघ्नानि चक्रिरे ॥ १२ ॥
रत्नैः प्रलोभयामासुः स्त्रीभिश्चोभौ पुनः पुनः।
न च तौ चक्रतुर्भङ्गं व्रतस्य सुमहाव्रतौ ॥ १३ ॥
अथ मायां पुनर्देवास्तयोश्चक्रुर्महात्मनोः ।

उन दो भाइयोंके स्वभाव और व्यवहारमें भेद न रहनेके हेतु जान पडता था, कि मानों एक मनुष्य दो भागोंमें बट गया है। हर काममें एक बुद्धि रखनेवाले वे दो बडे वीर्यवन्त भाई क्रमसे बढ गये। (१—६)

वे तीनों लोक जीतना निश्चय कर विंध्य पर्वत पर जाकर दीक्षित और समाहित होके कठोर तप करने लगे। पहिले वल्कल पहिनके और भूखप्यास छोडके तपमें चित्त लगाया और सर्व शरीरमें भस्म लगाकर वायु पीकर, पांवके अंगूठोंके बल खडे होकर, हाथ ऊंचे उठाकर, निमेष तजकर और व्रत धारणकर बहुत काल तक अपने मांसकी आहुति चढायी। उस कालमें यह एक आश्चर्य लीला हुई, कि विंध्य पर्वतने उनकी तपस्याके प्रभावसे तप कर धुआं वमन किया था। अनन्तर देवगण उनकी कठोर तपस्या देखकर भय खाके तप नष्ट करनेके लिये विघ्न डालने लगे। उन्होंने लुभानेवाले रत्न और नारीसे उन दोनोंको बार बार लुभाया; पर उन दोनों बडे अच्छे व्रत करने वाले भाइयोंने किसी प्रकार व्रत नहीं छोडा। (७—१३)

भगिन्यो मातरो भार्यास्तयोश्चाऽऽत्मजनस्तथा१४॥
प्रपात्यमाना वित्रस्ताः शूलहस्तेन रक्षसा ।
भ्रष्टाभरणकेशान्ता भ्रष्टाभरणवाससः ॥ १५ ॥
अभिभाष्य ततः सर्वास्तौ त्राहीति विचुक्रुशुः।
न च तौ चक्रतुर्भङ्गं व्रतस्य सुमहाव्रतौ ॥ १६ ॥
यदा क्षोभं नोपयाति नाऽऽर्तिमन्यतरस्तयोः।
ततः स्त्रियस्ता भूतं च सर्वमन्तरधीयत ॥ १७ ॥
ततः पितामहः साक्षादभिगम्य महासुरौ ।
वरेण च्छन्दयामास सर्वलोकहितः प्रभुः ॥ १८ ॥
ततः सुन्दोपसुन्दौ तौ भ्रातरौ दृढविक्रमौ ।
दृष्ट्वा पितामहं देवं तस्थतुः प्राञ्जली तदा ॥ १९ ॥
ऊचतुश्च प्रभुं देवं ततस्तौ सहितौ तदा ।
आवयोस्तपसाऽनेन यदि प्रीतः पितामहः ॥ २० ॥
मायाविदावस्त्रविदौ बलिनौ कामरूपिणौ ।
उभावप्यमरौ स्यावः प्रसन्नो यदि नौ प्रभुः ॥ २१ ॥
ब्रह्मोवाच— कृतेऽमरत्वं युवयोः सर्वमुक्तं भविष्यति ।

आग उन्होंने फिर उन दो महात्माओंके सामने माया फैलाकर यह एक बडी भारी लीला दिखायी,कि उन दोनों असुरोंकी माता, बहिन स्त्री और दूसरे स्वजन अलङ्कारोंसे च्युत होके, केशसे रहित होके और वस्त्र खोके, हाथोंमें शूल लिये हुए एक राक्षससे गिराये जाके अति भय खाकर उन दोनों असुरोंसे पुकार पुकार कर त्राहि त्राहि चिल्लाने लगे। यह देखनेपर भी अति बडे व्रतधारी सुन्द और उपसुन्दने व्रत नहीं छोडा, अनन्तर जब दोनोंमेंसे कोई भी उससे असन्तुष्ट वा कातर नहीं हुआ तब वे स्त्रियां और राक्षस अन्तर्हित हुए। (१४-१७)

तिसके पश्चात् सर्वलोकोंके मङ्गलकारी प्रभु पितामहने उन दोनों महावीरोंके सामने आकर उनको वर मांगनेको कहा। दृढविक्रमी सुन्द और उपसुन्द दोनों भाई प्रभु पितामहदेवको देखकर दोनों हाथ जोडके खडे हुए और दोनों एकत्र होकर बोले, कि प्रभो पितामह ! हमारी तपस्यासे यदि आप प्रीत और प्रसन्न हुए हो, तो हमको यह वर दें, कि हम दोनों मायाके जानकार,अस्त्रके जानकार, बली, कामरूपी और अमर होसके । (१८-२१)

श्रीब्रह्माजी बोले,कि तुमने जो जो

अन्यद्वृणीतं मृत्योश्च विधानममरैः समम् ॥ २२ ॥
प्रभविष्याव इति यन्महदभ्युद्यतं तपः ।
युवयोर्हेतुनाऽनेन नाऽमरत्वं विधीयते ॥ २३ ॥
त्रैलोक्यविजयार्थाय भवद्भ्यामास्थितं तपः।
हेतुनाऽनेन दैत्येन्द्रौ न वां कामं करोम्यहम्॥ २४ ॥
सुन्दोपसुन्दावूचतुः-त्रिषु लोकेषु यद्भूतं किंचित्स्थावरजङ्गमम् ।
सर्वस्मान्नौ भयं न स्यादृतेऽन्योन्यं पितामह॥ २५ ॥
पितामह उवाच—यत्प्रार्थितं यथोक्तं च काममेतद्ददानि वाम् ।
मृत्योर्विधानमेतच्च यथावद्व भविष्यति ॥ २६ ॥
नारद उवाच-- ततः पितामहो दत्वा वरमेतत्तदा तयोः ।
निवर्त्य तपसस्तौ च ब्रह्मलोकं जगाम ह ॥ २७ ॥
लब्ध्वा वराणि दैत्येन्द्रावथ तौ भ्रातरावुभौ ।
अवध्यौ सर्वलोकस्य स्वमेव भवनं गतौ ॥ २८ ॥
तौ तु लब्धवरौ दृष्ट्वा कृतकामौ मनास्विनौ ।
सर्वः सुहृज्जनस्ताभ्यां प्रहर्षमुपजग्मिवान् ॥ २९ ॥
ततस्तौ तु जटां भित्त्वा मौलिनौ संबभूवतुः ।

प्रार्थना की उनमेंसे अमर होनेके अतिरिक्त तुम्हारी सब अभिलाषा पूरी होगी। अमरताके बिना और कुछ प्रार्थना ऐसी करो, कि अमर होनेके तुल्य है। तीनों लोकों के प्रभु बननेहीकी इच्छासे तुमने यह बडी तपस्या प्रारम्भ की थी, इस लिये तुमको अमरता लाभ होना ठीक नहीं है। हे दोनों दैत्यवर ! तीनों लोक जय करनाही तुम्हारी तपस्याका अभिप्राय है; इस कारण मैंने तुम्हारे अमर होनेकी अभिलाषा पूरी नहीं की। सुन्द और उपसुन्दने कहा कि, हे पितामह ! हम दोनोंको एक दूसरेके बिना इस त्रिलोक भरमें स्थावर जङ्गम आदि किसीसे मृत्यु का भय न रहे। (२२-२७)

पितामह बोले, कि तुमने जो प्रार्थना की और जो कहा, वही होगा। मैंने तुम्हारी इस प्रार्थनाके अनुसार तुम्हारी मृत्युका नियम निश्चय किया। श्रीनारद जी बोले, कि अनन्तर पितामह सुन्द और उपसुन्दको यह वर देके तपसे निवृत्त कर ब्रह्मलोकमें गये। दोनों भाई दैत्यवर वर पाकर सब लोकोंके वधके अयोग्य होके अपने घरको पधारे। उनके स्वजन उन दोनों मनस्वियोंको वर पाते और उनका मनोरथ सफल होते देख

महार्हाभरणोपेतौ विरजोऽम्बरधारिणौ ॥ ३० ॥
अकालकौमुदीं चैव चक्रतुः सार्वकालिकीम् ।
नित्यप्रमुदितः सर्वस्तयोश्चैव सुहृज्जनः ॥ ३१ ॥
भक्ष्यतां भुज्यतां नित्यं दीयतां रम्यतामिति ।
गीयतां पीयतां चेति शब्दश्चाऽऽसीद् गृहे गृहे ॥३२॥
तत्र तत्र महानादैरुत्कृष्टतलनादितैः ।
हृष्टं प्रमुदितं सर्वं दैत्यानामभवत्पुरम् ॥ ३३ ॥
तैस्तैर्विहारैर्बहुभिर्दैत्यानां कामरूपिणाम् ।
समाः संक्रीडतां तेषामहरेकमिवाऽभवत् ॥ ३४ ॥ [७८४६]

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यामादिपर्वणि राज्यलम्भपर्वणि सुन्दोपसुन्दोपाख्याने एकाधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २११ ॥

नारद उवाच– उत्सवे वृत्तमात्रे तु त्रैलोक्याकांक्षिणावुभौ ।
मन्त्रयित्वा ततः सेनां तावाज्ञापयतां तदा ॥ १ ॥
सुहृद्भिरप्यनुज्ञातौ दैत्यैर्वृद्धैश्च मन्त्रिभिः ।
कृत्वा प्रास्थानिकं रात्रौ मघासु ययतुस्तदा ॥ २ ॥
गदापट्टिशधारिण्या शूलमुद्गरहस्तया ।

कर बडे प्रसन्न हुए। उन दो भाईयोंने तब जटा छोडके किरीट आदि अतिमूल्यवान आभूषण और साफ वस्त्र पहिने। (२६-३०)

अनन्तर सार्वकालिक अकाल कौमुदीका महोत्सव करना प्रारम्भ किया। उनके स्वजन सदा आमोद प्रमोद से काल काटने लगे। उनके घर घर भक्षण करो, भोजन करो, दान करो, खेलो, गीत गाओ, पीओ, ऐसे शब्द सदा उचारे जाने लगे। ठौर ठौरमें दैत्योंके सिंह समान गर्जनके साथ करतालीकी कठोर आहटसे सम्पूर्ण नगरमें आनन्दकी उमङ्ग फैल पडी। कामरूपी दैत्योंके बडे आनन्दसे उस प्रकारोंके भांति भांतिके विहारमें लगे रहनेसे उनको एक एक वर्ष एक एक दिन जान पडने लगा। (३१-३४)

आदिपर्वमें दोसौ ग्यारह अध्याय समाप्त। [७८४६]

आदिपर्वमें दोसौ बारह अध्याय।

श्रीनारदजी बोले, कि अकालकौमुदीके महोत्सवके अन्त होने पर तीनों लोकोंके अधिकार लाभ करनेके अभिलाषी होके दोनों भाइयोंने युक्तिकर सेनाओंको सजने की आज्ञा दी। उन्होंने स्वजन, और वृद्ध दैत्य मन्त्रियोंकी आज्ञासे यात्रा करनेकी क्रिया पूरी कर रात्रिको मघा नक्षत्रमें यात्रा की। तुल्यधर्मवाली बडी

प्रस्थितौ सह वर्मिण्या महत्या दैत्यसेनया ॥ ३ ॥
मङ्गलैः स्तुतिभिश्चापि विजयप्रतिसंहितैः ।
चारणैः स्तूयमानौ तौ जग्मतुः परया मुदा॥ ४ ॥
तावन्तरिक्षमुत्प्लुत्य दैत्यौ कामगमावुभौ ।
देवानामेव भवनं जग्मतुर्युद्धदुर्मदौ ॥ ५ ॥
तयोरागमनं ज्ञात्वा वरदानं च तत्प्रभोः ।
हित्वा त्रिविष्टपं जग्मुर्ब्रह्मलोकं ततः सुराः॥ ६ ॥
ताविन्द्रलोकं निर्जित्य यक्षरक्षोगणांस्तदा ।
खेचराण्यपि भूतानि जघ्नतुस्तीव्रविक्रमौ ॥ ७ ॥
अन्तर्भूमिगतान्नागाञ्जित्वा तौ च महारथौ।
समुद्रवासिनीः सर्वा म्लेच्छजातीर्विजिग्यतुः॥ ८ ॥
ततः सर्वां महीं जेतुमारब्धावुग्रशासनौ ।
सैनिकांश्च समाहूय सुतीक्ष्णं वाक्यमूचतुः॥ ९ ॥
राजर्षयो महायज्ञैर्हव्यकव्यैर्द्विजातयः ।
तेजो बलं च देवानां वर्धयन्ति श्रियं तथा॥ १० ॥
तेषामेवं प्रवृत्तानां सर्वेषामसुरद्विषाम् ।
संभूय सर्वैरस्माभिः कार्यः सर्वात्मना वधः॥ ११ ॥

दैत्यसेना गदा, पट्टिश, शूल, मुद्गर आदि शस्त्र लेकर उनके साथ चली। दोनों दैत्यराज चारणोंकी विजयसूचक माङ्गलिक स्तुति पाठसे प्रशंसित होके परम हर्षपूर्वक जाने लगे। युद्धमें कठोर कामगामी वे दोनों दैत्यवर आकाश पर चढके देवलोकको गये। (१—५)

देवगण उनके आनेकी सुध पाय पितामहका वर देना स्मरण कर अपनी अपनी ठौर छोडके ब्रह्मलोकमें गये। तेजस्वी विक्रमी दोनों दैत्योंने इन्द्रलोक, यक्षगण, राक्षसगण और दूसरे खेचरी प्राणियोंको जीतकर वहांसे चले चले पातालमें बसे हुए सर्पोंको परास्त कर, समुद्र द्वीपमें म्लेच्छोंको हराया। अनन्तर कठोर शासनेवाले दोनों महाबली भाइयोंने भूमण्डलको परास्त करनेको उद्यत होके सेनाओंको पुकार पुकार यह कटीली बात कही, कि राजर्षि वृन्द महायज्ञोंसे और ब्राह्मणगण हव्यकव्यसे देवोंको तेज बल और श्रीवृद्धि पहुंचाते हैं; वह सब लोग इन कार्योंसे हमारी शत्रुता करते हैं; सो हम सब एकत्र होकर सर्वप्रकारसे उनको नष्ट करेंगे। (६—११)

एवं सर्वान्समादिश्य पूर्वतीरे महोदधेः ।
क्रूरां मतिं समास्थाय जग्मतुः सर्वतोमुखौ॥ १२ ॥
यज्ञैर्यजन्ति ये केचिद्याजयन्ति च ये द्विजाः।
तान्सर्वान्प्रसभं हत्वा बलिनौ जग्मतुस्ततः॥ १३ ॥
आश्रमेष्वग्निहोत्राणि मुनीनां भावितात्मनाम्।
गृहीत्वा प्रक्षिपन्त्यप्सु विश्रब्धं सैनिकास्तयोः॥ १४॥
तपोधनैश्च ये क्रुद्धैः शापा उक्ता महात्मभिः ।
नाऽऽक्रामन्त तयोस्तेऽपि वरदाननिराकृताः॥ १५ ॥
नाऽऽक्रामन्त यदा शापा बाणा मुक्ताः शिलास्विव।
नियमान्संपरित्यज्य व्यद्रवन्त द्विजातयः ॥ १६ ॥
पृथिव्यां ये तपःसिद्धा दान्ताः शमपरायणाः ।
तयोर्भयाद्दुद्रुवुस्ते वैनतेयादिवोरगाः ॥ १७ ॥
मथितैराश्रमैर्भग्नैर्विकीर्णकलशस्रुवैः ।
शून्यमासीज्जगत्सर्वं कालेनेव हतं तदा ॥ १८ ॥
ततो राजन्नदृश्यद्भिर्ऋषिभिश्च महासुरौ ।
उभौ विनिश्चयं कृत्वा विकुर्वाते वधैषिणौ ॥ १९ ॥

वे महासमुद्रके पूर्व तट पर ऐसी निष्ठुर कल्पना कर सब सेनाओंको आज्ञा देके चारों ओर दौडे। उन दोनों बली भाइयोंने जिन जिन ब्राह्मणोंको यजन वा याजन करते देखा, उसी क्षण उनको मारके आगे बढने लगे। उनकी सेना निःशङ्कचित्तसे मुनियोंके आश्रममें जाके उनके अग्निहोत्र ले लेके जलमें छोडने लगी! महात्मा तपोधनवृन्द क्रोधित हो शाप देने लगे, पर वह ब्रह्माजीके वरसे व्यर्थ होने लगा, उन पर वर्त्ताव नहीं कर सका। जब द्विजोंका शाप शिला पर छोडे शिलीमुखकी भांति व्यर्थ होने लगा, तब वे नियम छोडकर भागने लगे। भूमण्डलमें जितने शमशील, तपःसिद्ध दान्त ऋषि थे, वे इस प्रकार भागे, कि जैसे गरुडके भयसे सर्प भागे। इस प्रकार आश्रम मथने और कलसे स्रुव आदि इधर उधर छिरकाये तथा टूट फूट जाने पर सम्पूर्ण जग प्रलयकाल में नष्ट होनेकी भांति खाली होगया। १२-१८

हे महाराज! अनन्तर मुनियोंके इधर उधर छिपकर दृष्टिके बाहर हो जाने पर दोनों महावीर उनका वध निश्चय कर नाना रूप धरने लगे। वे कभी मदोन्मत्त गजका स्वरूप लेकर दुर्गमें गये हुए

प्रभिन्नकरटौ मत्तौ भूत्वा कुञ्जररूपिणौ।
संलीनमपि दुर्गेषु निन्यतुर्यमसादनम् ॥ २० ॥
सिंहौ भूत्वा पुनर्व्याघ्रौ पुनश्चान्तर्हितावुभौ।
तैस्तैरुपायैस्तौ क्रूरावृषीन्दृष्ट्वा निजघ्नतुः ॥ २१ ॥
निवृत्तयज्ञस्वाध्याया प्रणष्टनृपतिद्विजा ।
उत्सन्नोत्सवयज्ञा च बभूव वसुधा तदा ॥ २२ ॥
हाहाभूता भयार्ता च निवृत्तविपणापणा ।
निवृत्तदेवकार्या च पुण्योद्वाहविवर्जिता ॥ २३ ॥
निवृत्तकृषिगोरक्षा विध्वस्तनगराश्रमा ।
अस्थिकङ्कालसंकीर्णा भूर्बभूवोग्रदर्शना ॥ २४ ॥
निवृत्तपितृकार्यं च निर्वषट्कारमङ्गलम् ।
जगत्प्रतिभयाकारं दुष्प्रेक्ष्यमभवत्तदा ॥ २५ ॥
चन्द्रादित्यौ ग्रहास्तारा नक्षत्राणि दिवौकसः।
जग्मुर्विषादं तत्कर्म दृष्ट्वा सुन्दोपसुन्दयोः ॥ २६ ॥
एवं सर्वा दिशो दैत्यौ जित्वा क्रूरेण कर्मणा।
निःसपत्नौ कुरुक्षेत्रे निवेशमभिचक्रतुः ॥ २७ ॥ [७८७३]

इति श्रीमहाभारते श० सं० वै० राज्यलम्भपर्वणि सुन्दोपसुन्दोपाख्याने द्वादशाधिकशततमोऽध्यायः ॥२१२॥

तपस्वियोंको भी नष्ट करने लगे। वे दोनों कुटिल कभी सिंहका स्वरूप कभी व्याघ्रका रूप धारण करते थे और कभी दृष्टिके बाहर हो जाते थे। इस प्रकार उन्होंने नाना उपायोंसे ऋषियोंको नष्ट किया। तब धरती पर यज्ञ और स्वाध्याय रुकजाकर और ब्राह्मण तथा राजा नष्ट होके एकबारही यज्ञोत्सव का नाश होगया। सब लोक भयभीत होकर हाय हाय करने लगे। मोल विक्री, हाटका कार्य, दैवी कार्य, पुण्यकार्य, विवाहकार्य, कृषिकार्य और गोरक्षा आदि सम्पूर्ण कार्यही रुक गये। (१९—२४)

नगर और आश्रमोंका सत्यानाश होके केवल हड्डी कङ्कालोंसे पृथ्वी बहुत भयावनी दीख पडने लगी। सम्पूर्ण देशोंमें पितृकार्य और वषट्कार आदि माङ्गलिक क्रिया के लोपहो जानेपर जग बडा भयानक हो देखनेके अयोग्य हुआ। चन्द्र, सूर्य, ग्रह, तारे और आकाशमें रहनेवाले अश्विनी आदि नक्षत्र सुन्द उपसुन्दका यह कार्य देखकर उदास हुए। वे इस प्रकार कुटिल कार्यसे सब ओर पराजय कर अन्तको शत्रुवर्जित हो कर कुरुक्षेत्र में निवास करने लगे। २४-२७

आदिपर्वमें दोसौ बारह अध्याय समाप्त। [७८७३]

नारद उवाच—

ततो देवर्षयः सर्वे सिद्धाश्च परमर्षयः ।
जग्मुस्तदा परामार्तिं दृष्ट्वा तत्कदनं महत् ॥ १ ॥
तेऽभिजग्मुर्जितक्रोधा जितात्मानो जितेन्द्रियाः ।
पितामहस्य भवनं जगतः कृपया तदा ॥ २ ॥
ततो ददृशुरासीनं सह देवैः पितामहम् ।
सिद्धैर्ब्रह्मर्षिभिश्चैव समन्तात्परिवारितम् ॥ ३ ॥
तत्र देवो महादेवस्तत्राऽग्निर्वायुना सह ।
चन्द्रादित्यौ च शक्रश्च पारमेष्ठ्यास्तथर्षयः ॥ ४ ॥
वैखानसा वालखिल्या वानप्रस्था मरीचिपाः ।
अजाश्चैवाऽविमूढाश्च तेजोगर्भास्तपस्विनः ॥ ५ ॥
ऋषयः सर्व एवैते पितामहमुपागमन् ।
ततोऽभिगम्य ते दीनाः सर्व एव महर्षयः ॥ ६ ॥
सुन्दोपसुन्दयोः कर्म सर्वमेव शशंसिरे ।
यथा हृतं यथा चैव कृतं येन क्रमेण च ॥ ७ ॥
न्यवेदयंस्ततः सर्वमखिलेन पितामहे ।
ततो देवगणाः सर्वे ते चैव परमर्षयः ॥ ८ ॥
तमेवार्थं पुरस्कृत्य पितामहमचोदयन् ।
ततः पितामहः श्रुत्वा सर्वेषां तद्वचस्तदा ॥ ९ ॥

आदिपर्वमें दोसौ तेरह अध्याय ।

श्रीनारदजी बोले, कि अनन्तर शमदमशील देवर्षि, परमर्षि और सिद्धगण उस भारी प्राणीहत्याको देखकर बडे दुःखी हुए। वे तब जगत् पर कृपायुक्त हो पितामहके भवनमें गये। अनन्तर वहां पितामहको सिद्ध और ब्रह्मर्षियोंसे चारों ओरसे घिरे और देवोंके साथ बैठे पाया। वहां देवोंके देव महादेव, अग्नि, वायु, चन्द्र, आदित्य, इन्द्र, ब्रह्मनिष्ठ ऋषिगण, वैखानस, वालखिल्य, वानप्रस्थ, मरीचि, अज, अविमुग्ध, और तेजोगर्भ आदि भिन्न भिन्न तपस्वी ऋषिगण सभी उपस्थित हुए। (१—६)

सम्पूर्ण महर्षिगण दुःखीचित्तसे सुन्द और उपसुन्द के कार्योंका वृत्तान्त कह सुनाया उन दोनों दैत्योंने जैसे धूमके साथ जो काम किया और जैसे मारा वह सब क्रमसे आद्योपान्त कह सुनाया! सम्पूर्ण देवगण और परमर्षियोंने उस विषयके लिये पितामहका अनुरोध किया। अनन्तर पितामह उन सबोंका वचन सुन

मुहूर्तमिव संचिन्त्य कर्तव्यस्य च निश्चयम्।
तयोर्वधं समुद्दिश्य विश्वकर्माणमाह्वयत् ॥ १० ॥
दृष्ट्वा च विश्वकर्माणं व्यादिदेश पितामहः ।
सृज्यतां प्रार्थनीयैका प्रमदेति महातपाः ॥ ११ ॥
पितामहं नमस्कृत्य तद्वाक्यमभिनन्द्य च ।
निर्ममे योषितं दिव्यां चिन्तयित्वा पुनः पुनः॥१२॥
त्रिषु लोकेषु यत्किंचिद्भूतं स्थावरजङ्गमम् ।
समानयद्दर्शनीयं तत्तद्यत्नात्ततस्ततः ॥ १३ ॥
कोटिशश्चैव रत्नानि तस्या गात्रे न्यवेशयत् ।
तां रत्नसंघातमयीमसृजद्देवरूपिणीम् ॥ १४ ॥
सा प्रयत्नेन महता निर्मिता विश्वकर्मणा ।
त्रिषु लोकेषु नारीणां रूपेणाऽप्रतिमाऽभवत्॥ १५ ॥
न तस्याः सूक्ष्ममप्यास्ति यद्गात्रे रूपसंपदा ।
न युक्तं यत्र वा दृष्टिर्न सज्जति निरीक्षताम्॥ १६ ॥
सा विग्रहवतीव श्रीः कामरूपा वपुष्मती ।
जहार सर्वभूतानां चक्षूंषि च मनांसि च ॥ १७ ॥
तिलं तिलं समानीय रत्नानां यद्विनिर्मिता ।

के क्षणभर सोचकर क्या करना ठीक है। उसका निश्चय कर दुराचारी दोनों दैत्यों के वधके लिये विश्वकर्माको बुलवाया । ९-१०

विश्वकर्माके आने पर महानुभव पितामह ने उसकी ओर देख आज्ञा दी, कि "सबोंकी प्रार्थनीया मनभावनी एकप्रमदा बनाओ" विश्वकर्मा उनको प्रणाम कर आदरपूर्वक उनकी आज्ञा मानके यत्नसे बार बार सोच विचारकर एकसुन्दरी बाला बनाने लगा। त्रिलोकभरमें दर्शनयोग्य परम सुन्दर जितने स्थावर जङ्गम पदार्थ हैं, विश्वकर्मा उन सबोंसे चुन चुन कर देव-रूपी एक कामिनी बनाके अङ्गादि संपूर्ण शरीरको सजा कर उनकी रत्नकी प्रतिमा बनाया । विश्वकर्माके बडे प्रयत्नसे बनायी हुई वह कन्या ऐसी रूपवती बनी, कि तीनों भुवनमें कोई भी नारी उसकी उपमाके योग्य न रही; उसके शरीर भरमें ऐसा कोई सूक्ष्म स्थानभी न था, कि जिस पर देखनेवालेकी आंख पडनेसे उसको अपूर्व रूपकी शोभामें फंस नहीं जाता था । साक्षात् लक्ष्मीकी भांति वह कामिनी हरेक प्राणीके नयन मन चुराने लगी। विश्वकर्माने सम्पूर्ण रत

तिलोत्तमेति तत्तस्या नाम चक्रे पितामहः ॥ १८ ॥
ब्रह्माणं सा नमस्कृत्य प्राञ्जलिर्वाक्यमब्रवीत्।
किं कार्यं मयि भूतेश येनाऽस्म्यद्येह निर्मिता॥१९॥

पितामह उवाच- गच्छ सुन्दोपसुन्दाभ्यामसुराभ्यां तिलोत्तमे।
प्रार्थनीयेन रूपेण कुरु भद्रे प्रलोभनम् ॥ २० ॥
त्वत्कृते दर्शनादेव रूपसंपत्कृतेन वै ।
विरोधः स्याद्यथा ताभ्यामन्योन्येन तथा कुरु॥२१॥

नारद उवाच- सा तथेति प्रतिज्ञाय नमस्कृत्य पितामहम् ।
चकार मण्डलं तत्र विबुधानां प्रदक्षिणम् ॥ २२॥
प्राङ्मुखो भगवानास्ते दक्षिणेन महेश्वरः ।
देवाश्चैवोत्तरेणाऽऽसन्सर्वतस्त्वृषयोऽभवन् ॥ २३ ॥
कुर्वन्त्यां तु तदा तत्र मण्डलं तत्प्रदक्षिणम्।
इन्द्रः स्थाणुश्च भगवान्धैर्येण प्रत्यवस्थितौ॥ २४ ॥
द्रष्टुकामस्य चाऽत्यर्थं गतायां पार्श्वतस्तथा ।
अन्यदञ्चितपद्माक्षं दक्षिणं निःसृतं मुखम् ॥ २५॥

बटोरके तिल तिल चुनकर उस कन्याको बनाया था; इसलिये पितामहने उसका नाम तिलोत्तमा रखा। (११—१८)

अनन्तर तिलोत्तमा दोनों हाथ जोडके ब्रह्माजीसे बोली, कि हे भूतनाथ! मुझको क्या करना होगा? कहो, कि मैं क्यों साम्प्रत बनायी गयी। पितामह बोले, कि तुम सुन्द और उपसुन्द, दोनों असुरोंके यहां चली जाओ, वहां जाय सुन्दर रूप दिखाय उनको लुभानेकी चेष्टा करो। ऐसी चेष्टा करो, कि वे तुम्हारे रूपकी सम्पद देखके आपसमें झगडा छेडें। (१९–२१)

श्रीनारदजी बोले, कि अनन्तर तिलोत्तमा उनका कहना मानके प्रतिज्ञा ठानकर पितामहके पांव पर सिर नाय देवोंकी चारों ओर परिक्रमा देने लगी। उस समय भगवान पितामह पूर्व ओर, महेश्वर दक्षिण ओर, दूसरे देवगण उत्तर ओर और ऋषिवृन्द नाना ओरको मुह फेरे थे। तिलोत्तमा जब परिक्रमा देती रही, तब इन्द्र और भगवान् महेश्वर अति धीरज धर अपने अपने स्थानोंमें बैठे थे। महेश्वरमें बडे वेगसे देखनेकी चाह उमडने पर तिलोत्तमा जब उनकी दक्षिण ओरको गयी तब खिले पद्म-पलाश समान नेत्रोंसे सुशोभित एक दक्षिण मुख निकल आया; तिलोत्तमा

पृष्ठतः परिवर्तन्त्या पश्चिमं निःसृतं मुखम् ।
गतया चोत्तरं पार्श्वमुत्तरं निःसृतं मुखम् ॥ २६ ॥
महेन्द्रस्यापि नेत्राणां पृष्ठतः पार्श्वतोऽग्रतः ।
रक्तान्तानां विशालानां सहस्रं सर्वतोऽभवत् ॥ २७ ॥
एवं चतुर्मुखः स्थाणुर्महादेवोऽभवत्पुरा ।
तथा सहस्रनेत्रश्च बभूव बलसूदनः ॥ २८ ॥
तथा देवनिकायानां महर्षीणां च सर्वशः ।
मुखानि चाऽभ्यवर्तन्त येन याता तिलोत्तमा ॥ २९ ॥
तस्या गात्रे निपतिता दृष्टिस्तेषां महात्मनाम् ।
सर्वेषामेव भूयिष्ठमृते देवं पितामहम् ॥ ३० ॥
गच्छन्त्या तु तया सर्वे देवाश्च परमर्षयः ।
कृतमित्येव तत्कार्यं मेनिरे रूपसंपदा ॥ ३१ ॥
तिलोत्तमायां तस्यां तु गतायां लोकभावनः ।
सर्वान्विसर्जयामास देवानृषिगणांश्च तान् ॥ ३२ ॥ [७९०५]

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यामादिपर्वणि राज्यलम्भपर्वणि तिलोत्तमाप्रस्थापने त्रयोदशाधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २१३ ॥

जब उनके पीछे गयी, तब उनका एक पश्चिम मुख निकला; और वह बाला जब उत्तर ओर गयी, तब उनको बांई ओरसे एक मुख निकला। महेन्द्र केभी देखनेकी चाह रहनेके कारण जब तिलोत्तमा उनकी परिक्रमा देती रही, तब उनके सामने पार्श्वमें और पीठ पर सम्पूर्ण शरीरहीमें बडी बडी सहस्र लाल आंखें निकलीं। (२२—२७)

हे पार्थ ! पूर्वकालमें इस प्रकार महादेवजी चतुर्मुख और इंद्रजी सहस्रनेत्रयुक्त हुए, और परिक्रमाके काल तिलोत्तमा जिस जिस ओरको गयी थी, देव और महर्षियोंके मुख उस उस ओरको घूम गये थे। उस कालमें उस ब्रह्मसभामें जो जो उपस्थित थे उनमें केवल पितामहके बिना सब महात्माओंकी दृष्टि उस नारीकी देह पर पडी थी। जब तिलोत्तमा जाने लगी, तब सम्पूर्ण देव और परमर्षियोंने उसके रूपका उजाला देख अभीष्टकामनाको सिद्ध जाना। तिलोत्तमाके देवकार्य साधनेको चले जाने पर लोकभावन हिरण्यगर्भने सम्पूर्ण देव और ऋषियोंको विदा किया। (२८-३२)

आदिपर्वमें दो सौ तेरह अध्याय समाप्त। ७९०५

नारद उवाच— जित्वा तु पृथिवीं दैत्यौ निःसपत्नौ गतव्यथौ ।
कृत्वा त्रैलोक्यमव्यग्रं कृतकृत्यौ बभूवतुः ॥ १ ॥
देवगन्धर्वयक्षाणां नागपार्थिवरक्षसाम् ।
आदाय सर्वरत्नानि परां तुष्टिमुपागतौ ॥ २ ॥
यदा न प्रतिषेद्धारस्तयोः सन्तीह केचन ।
निरुद्योगी तदा भूत्वा विजह्रातेऽमराविव ॥ ३ ॥
स्त्रीभिर्माल्यैश्च गन्धैश्च भक्ष्यभोज्यैः सुपुष्कलैः ।
पानैश्च विविधैर्हृद्यैः परां प्रीतिमवापतुः ॥ ४ ॥
अन्तःपुरवनोद्याने पर्वतेषु वनेषु च ।
यथेप्सितेषु देशेषु विजह्रातेऽमराविव ॥ ५ ॥
ततः कदाचिद्विन्ध्यस्य प्रस्थे समशिलातले ।
पुष्पिताग्रेषु शालेषु विहारमभिजग्मतुः ॥ ६ ॥
दिव्येषु सर्वकामेषु समानीतेषु तावुभौ ।
वरासनेषु संहृष्टौ सह स्त्रीभिर्निषीदतुः ॥ ७ ॥
ततो वादित्रनृत्याभ्यामुपातिष्ठन्त तौ स्त्रियः ।
गीतैश्च स्तुतिसंयुक्तैः प्रीत्या समुपजग्मिरे ॥ ८ ॥

आदिपर्वमें दो सौ चौदह अध्याय ।

श्री नारदजी बोले, कि इधर दैत्य, सुन्द और उपसुन्द दो भाई भूमण्डलको परास्त कर तीनों भुवनोंको तुल्यरूपसे हथेली तले लाय दुःख खोय बिना एक भी विरोधी अपनोंका मनोरथ सफल जाना और देव, गन्धर्व, यक्ष, राक्षस, सर्प, भूपाल आदिके सम्पूर्ण रत्न लेके परम सन्तुष्ट होय काल गंवाने लगे। जब देखा, कि इस त्रिलोक भरमें कोई भी उनका रोकनेवाला नहीं है, तब उद्योग छोडके देवोंकी भांति परम सुखसे विहार करने लगे। माला, चन्दन, स्त्री, सुन्दर खाने, चबाने और चूसनेकी सामग्री इन सब भांति भांतिकी वस्तुओंसे अति आनन्द भोगने लगे। देवोंकी भांति कभी अन्तःपुरमें, कभी वनमें, कभी फूल बाडीमें, कभी पर्वतपर, जब जहां मन चले विहार करने लगे। (१-५)

एक दिन फूलयुक्त वृक्षोंसे सुशोभित अनरूखी शिलातलवाली विन्ध्याचलकी चोटी पर विहार करनेको गये। वहां मनमाने सम्पूर्ण दिव्य काम्य वस्तुओंको ले जाने पर स्त्रियोंके साथ प्रमुदित मनसे सुन्दर आसनों पर जा बैठे। नारियां उनसे संतोषके लिये सुन्दर नाच, गीत

ततस्तिलोत्तमा तत्र वने पुष्पाणि चिन्वती ।
वेषमाक्षिप्तमाधाय रक्तेनैकेन वाससा ॥ ९ ॥
नदीतीरेषु जातान्सा कर्णिकारान्प्रचिन्वती ।
शनैर्जगाम तं देशं यत्राऽऽस्तां तौ महासुरौ ॥ १० ॥
तौ तु पीत्वा वरं पानं मदरक्तान्तलोचनौ ।
दृष्ट्वैव तां वरारोहां व्यथितौ संबभूवतुः ॥ ११ ॥
तावुत्थायाऽऽसनं हित्वा जग्मतुर्यत्र सा स्थिता ।
उभौ च कामसंमत्तावुभौ प्रार्थयतश्च ताम् ॥ २१ ॥
दक्षिणे तां करे सुभ्रूं सुन्दो जग्राह पाणिना ।
उपसुन्दोऽपि जग्राह वामे पाणौ तिलोत्तमाम् ॥ १३ ॥
वरप्रदानमत्तौ तावौरसेन बलेन च ।
धनरत्नमदाभ्यां च सुरापानमदेन च ॥ १४ ॥
सर्वैरेतैर्मदैर्मत्तावन्योन्यं भ्रुकुटीकृतौ ।
मदकामसमाविष्टौ परस्परमथोचतुः ॥ १५ ॥
मम भार्या तव गुरुरिति सुन्दोऽभ्यभाषत ।
मम भार्या तव वधूरुपसुन्दोऽभ्यभाषत ॥ १६ ॥

और स्तुतिभरे संगीतोंसे उनकी उपासना करने लगीं। ऐसे समय तिलोत्तमा एकही लाल वस्त्र पहिन मनमाने बने ठने उस बनमें आय फूल तोडने लगी; और नदी तीरमें उपजे हुए कर्णिकार फूल तोडती हुई उस ठौरमें दोनों दैत्यके सामने धीरे धीरे गये। (६—१०)

वे दोनों बहुत मद पीकर आंखे लालकर नशेसे चूर थे, सो उस सुन्दरीको देखतेही कामदेवके बाणसे बहुत घायल हुए। वे दोनों कामवश हो करके आसन छोडके उठ कर उस नारिके पास गये और दोनोंने उस पर मन चलाया। सुन्दने अपने हाथसे उस सुन्दरीका दहिना हाथ थाम लिया और उपसुन्दने उसका बायां हाथ पकडा। वे एक तो वर पानेके अहङ्कार, अपने भुजवीर्यके अहंकार और धनरत्नोंके अहङ्कारसे उन्मत्त थेही, फिर तिस पर दोनों मद्य और कामके नशेसे बावलोंके समान बने थे; सो एक दूसरेकी ओर भौंह चढायके झगडने लगे। (११–१५)

सुन्द बोला, कि यह बाला मेरी स्त्री है, तुम्हारी गुरुयानी है, तुम छोड दो। उपसुन्द बोला, कि यह नारी मेरी महरी है, तुम्हारे छोटे भाईकी वधु है, तुम

नैषा तव ममैषेति ततस्तौ मन्युराविशत् ।
तस्या रूपेण संमत्ता विगतस्नेहसौहृदौ ॥ १७ ॥
तस्या हेतोर्गदे भीमे संगृह्णीतामुभौ तदा ।
प्रगृह्य च गदे भीमे तस्यां तौ काममोहितौ॥ १८ ॥
अहं पूर्वमहंपूर्वमित्यन्योन्यं निजघ्नतुः ।
तौ गदाभिहतौ भीमौ पेततुर्धरणीतले ॥ १९ ॥
रुधिरेणाऽवसिक्ताङ्गौ द्वाविवाऽर्कौ नभश्च्युतौ।
ततस्ता विद्रुता नार्यः स च दैत्यगणस्तथा ॥ २० ॥
पातालमगमत्सर्वो विषादभयकम्पितः ।
ततः पितामहस्तत्र सह देवैर्महर्षिभिः ॥ २१ ॥
आजगाम विशुद्धात्मा पूजयंश्च तिलोत्तमाम्।
वरेण च्छन्दयास भगवान्प्रपितामहः ॥ २२ ॥
वरं दित्सुः स तत्रैनां प्रीतः प्राह पितामहः।
आदित्यचरिताँल्लोकान्विचरिष्यसि भाविनि॥ २३ ॥
तेजसा च सुदृष्टां त्वां न करिष्यति कश्चन ।
एवं तस्मै वरं दत्वा सर्वलोकपितामहः ॥ २४ ॥

त्याग दो । अनन्तर आपसमें ऐसा कहते हुए, कि " यह मेरी स्त्री है, तुम्हारी नहीं" दोनोंहीका क्रोध उभडा, दोनोंने उसके रूपकी शोभासे मोहित हो और उसके लिये क्रोधके मारे स्नेह खोय स्नेहै को भूलके भारी भारी गदा उठायी। उस एक नारी के लिये काममोहित दोनों भाइयोंने बडी बडी गदा उठाके यह कहते हुए, कि " मैंने पहिले कर थामा है, मैंने पहिले कर थामा है " एक दूसरेको बडी मार मारी। उस गदाकी चोटसे वे भयानक दोनों दैत्य मारे जाय और शरीरोंको रक्तसे नहाय आकाशसे गिरे दो सूर्योंकी भांति धरती पर लौट गये। तब उनके मित्र,दैत्य और दैत्योंकी स्त्रियां भाग कर पातालमें जाय घुसीं। अनन्तर विशुद्धात्मा भगवान पितामह तिलोत्तमाके सत्कारके लिये देव और महर्षियोंके साथ वहां आ पहुंचे। भगवान पितामहने वहां पहुंच कर तिलोत्तमाको वर देना चाहा। वह वर देना स्वीकारकर उससे बोले,कि भाविनि! तुम सूर्यलोकमें विचर सकोगी। तुम्हारा इतना तेज होगा, कि कोई पुरुष तुमको देर तक नहीं देख सकेगा। सर्वलोकोंके पितामह प्रभु हिरण्यगर्भ ऐसा वर देके

इन्द्रे त्रैलोक्यमाधाय ब्रह्मलोकं गतः प्रभुः ।

नारद उवाच— एवं तौ सहितौ भूत्वा सर्वार्थेष्वेकनिश्चयौ ॥ २५ ॥

तिलोत्तमार्थे संक्रुद्धावन्योन्यमभिजघ्नतुः ।

तस्माद्ब्रवीमि वः स्नेहात्सर्वान्भरतसत्तमाः ॥ २६ ॥

यथा वो नात्र भेदः स्यात्सर्वेषां द्रौपदीकृते ।

तथा कुरुत भद्रं वो मम चेत्प्रियमिच्छथ ॥ २७ ॥

वैशम्पायन उवाच—एवमुक्ता महात्मानो नारदेन महर्षिणा ।

समयं चक्रिरे राजंस्तेऽन्योन्यं वशमागताः ॥

समक्षं तस्य देवर्षेर्नारदस्याऽमितौजसः ॥ २८ ॥

द्रौपद्या नः सहासीनानन्योन्यं योऽभिदर्शयेत् ।

स नो द्वादशवर्षाणि ब्रह्मचारी वने वसेत् ॥ २९ ॥

कृते तु समये तस्मिन्पाण्डवैर्धर्मचारिभिः ।

नारदोऽप्यगमत्प्रीत इष्टं देशं महामुनिः ॥ ३० ॥

एवं तैः समयः पूर्वं कृतो नारदचोदितैः ।

न चाऽभिद्यन्त ते सर्वे तदाऽन्योन्येन भारत ॥ ३१ ॥ [७९३६]

इति श्री०राज्यलम्भपर्वणि सुन्दोपसुन्दोपाख्याने चतुर्दशाधिकद्विशततमोऽध्यायः॥२१४॥समाप्तं च राज्यलंभपर्व।

और इन्द्रके हाथ तीनों लोकोंका अधिकार सौंप कर ब्रह्मलोकको सिधारे। (१६-२५)

श्रीनारदजी बोले, कि हे भरतवंश-श्रेष्ठो! सुन्द और उपसुन्द दोनों भाई मित्र-भावयुक्त और हरबातमें एकमत होने परभी तिलोत्तमाके लिये क्रोधित होकर आपही एक दूसरेको मारकर नष्ट हुए। सो स्नेहके हेतु मैं तुमको कहता हूं, कि तुम मेरा प्रिय कर्म करना चाहो, तो ऐसा कोई नियम ठहरा लो, कि द्रौपदी के लिये तुम भाइयोंमें बिगाड न हो। (२५—२७)

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि हे महा-राज! महात्मा पाण्डवोंनें अमित तेजस्वी महर्षि नारदकी यह बात सुन कर एक दूसरेके मतके अनुसार उस देवर्षिके सामनेही यह नियम ठहराया, कि हममें से एक भाई जब द्रौपदीसे मिलेगा, तब जो दूसरा भाई उसको देख लेगा, उसे बारह वर्ष ब्रह्मचारी बनके वनमें वसना होगा। धर्मचारी पाण्डवोंके ऐसा नियम निश्चय करने पर महामुनि नारद प्रसन्न होय मनमानी ठौरको चले गये। हे भारत! पहिले पाण्डवोंके नारदकी बातसे ऐसा नियम करलेने पर उन भाईयोंमें आपसका बिगाड नहीं हुआ था। (२८—३१)

दोसौ चौदह अध्याय और राज्यलंभपर्व समाप्त।

अथार्जुनवनवासपर्व ।

वैशम्पायन उवाच—एवं ते समयं कृत्वा न्यवसंस्तत्र पाण्डवाः ।
वशे शस्त्रप्रतापेन कुर्वन्तोऽन्यान्महीक्षितः॥ १ ॥
तेषां मनुजसिंहानां पञ्चानाममितौजसाम् ।
बभूव कृष्णा सर्वेषां पार्थानां वशवर्तिनी ॥ २ ॥
ते तया तैश्च सा वीरैः पतिभिः सह पञ्चभिः ।
बभूव परमप्रीता नागैरिव सरस्वती ॥ ३ ॥
वर्तमानेषु धर्मेण पाण्डवेषु महात्मसु ।
व्यवर्धन्कुरवः सर्वे हीनदोषाः सुखान्विताः॥ ४ ॥
अथ दीर्घेण कालेन ब्राह्मणस्य विशांपते ।
कस्यचित्तस्करा जन्हु केचिद्गा नृपसत्तम ॥ ५ ॥
ह्रियमाणे धने तस्मिन्ब्राह्मणः क्रोधमूर्छितः ।
आगम्य खाण्डवप्रस्थमुदक्रोशत्स पाण्डवान्॥ ६ ॥
ह्रियते गोधनं क्षुद्रैर्नृशंसैरकृतात्मभिः ।
प्रसह्य चाऽस्मद्विषयादभ्यधावत पाण्डवाः ॥ ७ ॥
ब्राह्मणस्य प्रशान्तस्य हविर्ध्वाङ्क्षैः प्रलुप्यते ।

आदिपर्वमें दो सौ पन्द्रह अध्याय और

अर्जुनवनवास पर्व ।

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि इसके पीछे पाण्डवोंने द्रौपदीके विषयमें उस प्रकार का नियम ठहराके उस स्थानमें वास कर अस्त्रोंके प्रभावसे दूसरे भूपालोंको वशीभूत किया। कृष्णा उन बडे तेजस्वी मनुष्यसिंह पांच पाण्डवोंहीके वशमें बनी रही। सरोवरयुक्त बन और हस्तीगण जिस प्रकार एक दूसरेका सौभाग्य बढाते हैं, वैसेही द्रौपदी और उसके पांच पति एक दूसरेकी प्रीति बढाने लगे। महात्मा पाण्डवोंके धर्मपथ पर चलनेसे कौरव मात्रही दोषकी आंचसे बचके सुखपूर्वक वृद्धि पाने लगे । १-४

हे नरनाथ ! कितनेएक दिन बीतने पर एक ब्राह्मणके घरमें कुछ चोर आकर गौ चुराने लगे। हे नृपश्रेष्ठ! लुटेरोंसे ब्राह्मण की गौ चुरायी जाने पर ब्राह्मण क्रोधसे चेत खोय खाण्डवप्रस्थमें आय दुःख प्रगट करते हुए चिल्ला चिल्लाकर पाण्डवोंको पुकार पुकार के बोले, कि हे पाण्डवों! तुम्हारे राज्यमें आज दुष्ट नीच निष्ठुर लुटेरे एकायक मेरी गौ चुरा रहे हैं, तुम तुरन्त दौडो ! हा! कितने दुःख की बात है ! काक आकर ब्राह्मणके

शार्दूलस्य गुहां शून्यां नीचः क्रोष्टाऽभिमर्दति॥ ८ ॥
अरक्षितारं राजानं बलिषड्भागहारिणम् ।
तमाहुः सर्वलोकस्य समग्रं पापचारिणम् ॥ ९ ॥
ब्राह्मणस्वे हृते चौरैर्धर्मार्थे च विलोपिते ।
रोरूयमाणे च मयि क्रियतां हस्तधारणा ॥ १० ॥
वैशम्पायन उवाच– रोरूयमाणस्याऽभ्याशे भृशं विप्रस्य पाण्डवः।
तानि वाक्यानि शुश्राव कुन्तीपुत्रो धनञ्जयः॥ ११ ॥
श्रुत्वैव च महाबाहुर्माभैरित्याह तं द्विजम् ।
आयुधानि च यत्राऽऽसन्पाण्डवानां महात्मनाम्१२
कृष्णया सह तत्राऽऽस्ते धर्मराजो युधिष्ठिरः।
संप्रवेशाय चाऽशक्तो गमनाय च पाण्डवः ॥ १३ ॥
तस्य चाऽऽर्तस्य तैर्वाक्यैश्चोद्यमानः पुनः पुनः।
आक्रन्दे तत्र कौन्तेयश्चिन्तयामास दुःखितः॥१४॥
ह्रियमाणे धने तस्मिन्ब्राह्मणस्य तपस्विनः।
अश्रुप्रमार्जनं तस्य कर्तव्यमिति निश्चयः ॥ १५ ॥
उपप्रेक्षणजोऽधर्मः सुमहान्स्यान्महीपतेः ।

शान्त यज्ञका घृत हर रहा है, नीच सियार सिंहकी गुफा खाली देखकर मथ रहा है, जो राजा प्रजाकी रक्षा नहीं करते, और छठां भाग करभी लेते हैं, पण्डित लोग उन्हीको सर्वलोकोंमें पापी कहते हैं, हे पाण्डवो ! चोर ब्राह्मणका धन हर रहे हैं, धर्म कर्म लोप हो रहे हैं, मैं शोकरूपी कीचडमें डूबकर बार बार रो रहा हूं, सो मेरा हाथ थामकर मुझको बचाओ । (५–१०)

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि कुन्तीपुत्र धनञ्जयने निकट आके रोते पीटते हुए उन ब्राह्मणकी रुलाई सुनी । उन महाभुजने वह सुनतेही ब्राह्मणको माभैः कहके समझा कर ढाडस दिया, पर जिस घरमें महात्मा पाण्डवोंके अस्त्र धरे थे, उस घरमें धर्मराज युधिष्ठिर द्रौपदीके साथ विराज रहे थे, सो वह भय खाये ब्राह्मणकी बातोंसे बार बार जल उठने परभी ठहराये हुए नियमके अनुसार अस्त्रशालामें प्रवेश करने वा चोरी रोकनेको नहीं जा सके । ब्राह्मणकी वैसी रुलाई सुनके दुःखीचित्तसे सोचने लगे, कि इन तपस्वी ब्राह्मणकी गौ चुरायी जाती हैं, उन्हें बचाकर इनकी आंसू मुझको अवश्य मिटाने चाहिये। ११-१५

यद्यस्य रुदतो द्वारि न करोम्यद्य रक्षणम् ॥ १६ ॥
अनास्तिक्यं च सर्वेषामस्माकमपि रक्षणे ।
प्रतितिष्ठेत लोकेऽस्मिन्नधर्मश्चैव नो भवेत् ॥ १७ ॥
अनाहृत्य तु राजानं गते मयि न संशयः ।
अजातशत्रोर्नृपतेर्मयि चैवाऽनृतं भवेत् ॥ १८ ॥
अनुप्रवेशो राज्ञस्तु वनवासो भवेन्मम ।
सर्वमन्यत्परिहृतं धर्षणात्तु महीपतेः ॥ १९ ॥
अधर्मो वै महानस्तु वने वा मरणं मम ।
शरीरस्य विनाशेन धर्म एव विशिष्यते ॥ २० ॥
एवं विनिश्चित्य ततः कुन्तीपुत्रो धनञ्जयः ।
अनुप्रविश्य राजानमापृच्छ्य च विशाम्पते ॥ २१ ॥
धनुरादाय संहृष्टो ब्राह्मणं प्रत्यभाषत ।
ब्राह्मणाऽऽगम्यतां शीघ्रं यावत्परधनैषिणः ॥ २२ ॥
न दूरे ते गताः क्षुद्रास्तावद्गच्छावहे सह ।
यावन्निवर्तयाम्यद्य चोरहस्ताद्धनं तव ॥ २३ ॥
सोऽनुसृत्य महाबाहुर्धन्वी वर्मी रथी ध्वजी ।
शरैर्विध्वस्य तांश्चौरानवजित्य च तद्धनम् ॥ २४ ॥

यह ब्राह्मण द्वारपर आकर रो रहे हैं, इनको न बचावें, तो मेरे रक्षा न करनेके हेतु राजाको बडा अधर्म होगा और बचानेहीसे इन सबोंकी इसलोकमें आस्तिकता बन जायगी और अधर्मभी नहीं होगा। पर अब अजातशत्रु राजाके यहां जानेसे उनका अनादर होगा, और मेरा झूठा व्यवहार होगा, इसमें सन्देह नहीं। और उनके सामने जानेसे मुझको वनमें जाना भी पडेगा। वास्तवमें राजाका चाहे अनादर हो, मेरा अनुचित व्यवहारके लिये अधर्म हो, और वनमें चाहे मृत्युही हो, इन सबोंको तो सिर पर चढाभी ले सकता हूं, पर धर्मको छोड नहीं सकता; क्योंकि देह छूटने परभी धर्म बना रहेगा। (१६–२०)

हे नरनाथ! वह ऐसा निश्चय कर अस्त्रशालामें घुस राजा युधिष्ठिरसे मिले, और धनुष लेकर प्रसन्न मनसे निकल ब्राह्मणसे बोले, कि हे द्विज! शीघ्र चलो, पराये धनके लोभी नीच लुटेरोंके बडी दूर जाते न जाते हम एकत्र चलकर उनके हाथसे तुम्हारे चुराये हुए धनको छीन लें। महाभुज पृथापुत्र सव्यसाची

ब्राह्मणं समुपाकृत्य यशः प्राप्य च पाण्डवः ।
ततस्तद्गोधनं पार्थो दत्वा तस्मै द्विजातये ॥ २५ ॥
आजगाम पुरं वीरः सव्यसाची धनञ्जयः ।
सोऽभिवाद्य गुरून्सर्वान्सर्वैश्चाप्यभिनन्दितः २६ ॥
धर्मराजमुवाचेदं व्रतमादिश मे प्रभो ।
समयः समतिक्रान्तो भवत्संदर्शने मया ॥ २७ ॥
वनवासं गमिष्यामि समयो ह्येष नः कृतः ।
इत्युक्तो धर्मराजस्तु सहसा वाक्यमप्रियम् ॥ २८ ॥
कथमित्यब्रवीद्वाचा शोकार्तः सज्जमानया ।
युधिष्ठिरो गुडाकेशं भ्राता भ्रातरमित्युत ॥ २९ ॥
उवाच दीनो राजा च धनञ्जयमिदं वचः ।
प्रमाणमस्मि यदि ते मत्तः शृणु वचोऽनघ ॥ ३० ॥
अनुप्रवेशे यद्वीर कृतवांस्त्वं ममाऽप्रियम् ।
सर्वं तदनुजानामि व्यलीकं न च मे हृदि ॥ ३१ ॥
गुरोरनुप्रवेशो हि नोपघातो यवीयसः ।

धनञ्जय यह कहके देहरक्षक कससे धनुष लेकर ध्वजा फहराते हुए रथ पर चढे और वेगसे लुटेरोंकी पछियाते जाकर बाणोंसे काटकूट कर परास्त किया। आगे उन ब्राह्मणको उनकी गौ देके प्रसन्नकर यश लिया। (२१—२५)

अनन्तर वह अपने पुरमें लौटकर सब गुरुओंके पांव लगके उनसे स्वागत किये गये। कुछकाल बीतने पर उन्होंने धर्मराजसे कहा, कि प्रभो! मैंने द्रौपदीके संग आपको देखकर तुम्हारे ठहराये हुए नियमको तोड दिया है, तो मुझको व्रत पालनेकी आज्ञा दें, मैं वनवास को जाऊं। (२६—२८)

धर्मराज युधिष्ठिर एकायक भाई अर्जुनकी यह बात सुन करकेही, शोकसे विकल हुए; और कुछ टूटी फूटी बातोंमें कहा, कि "क्यों? आगे यह मलिनाचित्तसे भाई धनञ्जयसे बोले, कि हे अनघ! यदि मैं तुम्हारे लिये प्रमाण स्वरूप हूं, तो मेरी बात सुनो मैं जब द्रौपदीसे विराज रहा था, तब मेरे यहा जाके मेरी जो अप्रिय किया है, उससे मेरे चित्तमें असन्तोष नहीं पहुंचा। उन विषयमें मैं तुम को आज्ञा देता हूं सुनो। जब बडे भाई स्त्रीके साथ विराजते हैं; तब छोटेके उस घरमें जानेसे हानि नहीं होती, पर ज्येष्ठ भाईहीका कनिष्ठके घरमें जाना नियमके

यवीयसोऽनुप्रवेशो ज्येष्ठस्य विधिलोपकः ॥ ३२ ॥
निवर्तस्व महाबाहो कुरुष्व वचनं मम ।
न हि ते धर्मलोपोऽस्ति न च मे धर्षणा कृता॥ ३३ ॥
अर्जुन उवाच— न व्याजेन चरेद्धर्ममिति मे भवतः श्रुतम् ।
न सत्याद्विचलिष्यामि सत्येनाऽऽयुधमालभे॥ ३४ ॥
वैशम्पायन उवाच—सोऽभ्यनुज्ञाप्य राजानं वनचर्याय दीक्षितः ।
वने द्वादश वर्षाणि वासायाऽनुजगाम ह ॥ ३५ ॥ [७९७१]
इति श्रीमहाभारते शत० सं० वै० अर्जुनवनवासपर्वण्यर्जुनतीर्थयात्रायां पञ्चदशाधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥२१५॥

वैशम्पायन उवाच—तं प्रयातं महाबाहुं कौरवाणां यशस्करम् ।
अनुजग्मुर्महात्मानो ब्राह्मणा वेदपारगाः ॥ १ ॥
वेदवेदांगविद्वांसस्तथैवाऽध्यात्मचिन्तकाः ।
भैक्षाश्च भगवद्भक्ताः सूताः पौराणिकाश्च ये॥ २ ॥
कथकाश्चापरे राजञ्श्रमणाश्च वनौकसः ।
दिव्याख्यानानि ये चापि पठन्ति मधुरं द्विजाः॥३ ॥
एतैश्चाऽन्यैश्च बहुभिः सहायैः पाण्डुनन्दनः ।
वृतः श्लक्ष्णकथैः प्रायान्मरुद्भिरिव वासवः ॥ ४ ॥

विरुद्ध है। अतएव इसमें तुम्हारा धर्म-लोप नहीं हुआ और मेरा मान भी नहीं टूटा। हे महाभुज! रह जाओ, मेरी बात मानो। (२९—३३)

अर्जुन बोले, मैंने आपसे सुना है,कि छलपूर्वक धर्म करना उचित नहीं है, सो मैं सत्यसे टल नहीं सकूंगा। सत्यको लेकरकेही अस्त्र धर रहा हूं। श्रीवैशंपायनजी बोले,कि अनन्तर अर्जुन राजा युधिष्ठिरकी आज्ञा लेकर वनचर्यामें दीक्षित हो बारह वर्ष वनवासके लिये गये। (३४-३५)

आदिपर्वमें दो सौ पन्द्रह अध्याय समाप्त। ७९७१

आदिपर्वमें दोसौ सोलह अध्याय।

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि अनन्तर कुरुकुल कीर्तिरूपी महाभुज अर्जुन पधारे। महात्मा वेदज्ञ ब्राह्मण आदि बहुतेरे उनके साथ चले। हे महाराज! वेदपारग और वेदवेदाङ्गोंमें पण्डित, अध्यात्मकी चिन्ता करनेवाले ब्राह्मण, गानके पण्डित, पुराणकी कथा कहनेवाले सूत;भगवद्भक्त कथक, उर्द्धरेता वनवासी और जो मधुर भावसे सुन्दर उपाख्यान पाठ करते हैं, यह सब जन और दूसरे साथियोंके संग मरुद्गणके साथ चलते हुए देवराजकी भांति अर्जुन चलने लगे। (१—४)

रमणीयानि चित्राणि वनानि च सरांसि च।
सरितः सागरांश्चैव देशानपि च भारत ॥ ५ ॥
पुण्यानपि च तीर्थानि ददर्श भरतर्षभ ।
स गङ्गाद्वारमाश्रित्य निवेशमकरोत्प्रभुः ॥ ६ ॥
तत्र तस्याऽद्भुतं कर्म शृणु त्वं जनमेजय ।
कृतवान्यद्विशुद्धात्मा पाण्डूनां प्रवरो हि सः ॥ ७ ॥
निविष्टे तत्र कौन्तेये ब्राह्मणेषु च भारत ।
अग्निहोत्राणि विप्रास्ते प्रादुश्चक्रुरनेकशः ॥ ८ ॥
तेषु प्रबोध्यमानेषु ज्वलितेषु हुतेषु च ।
कृतपुष्पोपहारेषु तीरान्तरगतेषु च ॥ ९ ॥
कृताभिषेकैर्विद्वद्भिर्नियतैः सत्पथे स्थितैः ।
शुशुभेऽतीव तद्राजन्गङ्गाद्वारं महात्मभिः ॥ १० ॥
तथा पर्याकुले तस्मिन्निवेशे पाण्डवर्षभः ।
अभिषेकाय कौन्तेयो गङ्गामवततार ह ॥ ११ ॥
तत्राऽभिषेकं कृत्वा स तर्पयित्वा पितामहान्।
उत्तितीर्षुर्जलाद्राजन्नग्निकार्यचिकीर्षया ॥ १२ ॥
अपकृष्टो महाबाहुर्नागराजस्य कन्यया ।

भरतवंश चूडामणी अर्जुनने जानेके कालमें अनेक प्रकार सुन्दर सुन्दर वन, सरोवर, नदी, समुद्र, भांति भांतिके देश और पुण्यतीर्थोंको देखा। गङ्गाद्वारमें पहुंचकर वहां बसने लगे। हे जनमेजय! पाण्डववर विशुद्धात्मा अर्जुनने उस स्थानमें जो अद्भुत कर्म किया था, वह कहता हूं सुनो। कुन्तीपुत्रके साथ ब्राह्मणोंके वहां विराजनेके काल वे सब ब्राह्मण नाना प्रकारके अग्निहोत्र प्रगट करने लगे। हे महाराज! गंगातीरमें अभिषेक किये हुए पण्डित, नियमयुक्त सुमार्गी महात्मा ब्राह्मणोंसे उन सब अग्निहोत्रोंके प्रबोधित, और फुलोंसे सुशोभित होने तथा ज्वलित और आहुति दिये जाने पर गङ्गाद्वारकी बडी शोभा हुई। (५-१०)

किसी एक समय पाण्डववर अर्जुन नहानके लिये द्विजोंसे भरे हुए आश्रमके निकट भागीरथीके जलमें जा उतरे। महाराज! वह नहाय धोय पितरोंको तर्पण कर अग्निकार्यके लिये जलसे उठना चाहते थे, कि ऐसे समयमें पातालके नीचे रहनेवाली उलूपी नाम्नी नागराजपुत्री मदनकी आज्ञा मानके उनको

अन्तर्जले महाराज उलूप्या कामयानया ॥ १३ ॥
ददर्श पाण्डवस्तत्र पावकं सुसमाहितः ।
कौरव्यस्याऽथ नागस्य भवने परमार्चितम् ॥ १४ ॥
तत्राऽग्निकार्यं कृतवान्कुन्तीपुत्रो धनञ्जयः ।
अशङ्कमानेन हुतस्तेनाऽतुष्य द्धुताशनः ॥ १५ ॥
अग्निकार्यं स कृत्वा तु नागराजसुतां तदा ।
प्रहसन्निव कौन्तेय इदं वचनमब्रवीत् ॥ १६ ॥
किमिदं साहसं भीरु कृतवत्यसि भाविनि ।
कश्चाऽयं सुभगे देशः का च त्वं कस्य चात्मजा ॥ १७ ॥

उलूप्युवाच— ऐरावतकुले जातः कौरव्यो नाम पन्नगः ।
तस्याऽस्मि दुहिता राजन्नुलूपी नाम पन्नगी ॥ १८ ॥
साऽहं त्वामभिषेकार्थमवतीर्णं समुद्रगाम् ।
दृष्ट्वैव पुरुषव्याघ्र कन्दर्पेणाऽभिमूर्च्छिता ॥ १९ ॥
तां मामनङ्गग्लपितां त्वत्कृते कुरुनन्दन ।
अनन्यां नन्दयस्वाऽद्य प्रदानेनाऽऽत्मनोऽनघ ॥ २० ॥

अर्जुन उवाच— ब्रह्मचर्यमिदं भद्रे मम द्वादशवार्षिकम् ।
धर्मराजेन चादिष्टं नाऽहमस्मि स्वयं वशः ॥ २१ ॥

जलमें घसीट ले गयी। तब उन्होंने कौरव्य नामक सर्पराजके भवनमें जाके अग्नि देखा। आगे भले प्रकार समाहित होकर उसमें अग्निकार्य कर लिया। उनके आशङ्कित चित्तसे आहुति देनेसे अग्निका बडा सन्तोष हुआ। कुन्तीपुत्र धनञ्जय अग्निकार्य होजाने पर मुसकिराते हुए नागराजकन्यासे बोले, कि भाविनि! तुमने यह क्या साहस किया? हे भीरु सुभगे! यह कौन देश है? और तुम कौन! किसकी कन्या हो? (११-१७)

उलूपी बोली, कि हे महाराज! ऐरावतवंशमें उपजे कौरव्य नामक एक नागराज हैं, मैं उनकी कन्या उलूपी नाम्नी पन्नगी हूं। हे पुरुषव्याघ्र! तुम स्नानके लिये जब गङ्गाजीमें उतरे, तब मैं तुमको देख करके मदनबाणसे घायल हुई। हे कुरुनन्दन! मेरा विवाह नहीं हुआ, मैं किसीसे पहिले मिली नहीं, अब तुम्हारे लिये कामसे मोहित हुई हूं। हे अनघ! अब तुम आत्मदान कर मुझे आनन्द दो। (१८—२०)

अर्जुन बोले, कि हे भद्रे, जलमें विराजनेवाली! मैंने धर्मराजकी आज्ञासे

तव चापि प्रियं कर्तुमिच्छामि जलचारिणि।
अनृतं नोक्तपूर्वं च मया किंचन कर्हिचित् ॥ २२ ॥
कथं च नाऽनृतं मे स्यात्तव चापि प्रियं भवेत् ।
न च पीड्येत मे धर्मस्तथा कुर्यां भुजङ्गमे ॥ २३ ॥

उलूप्युवाच— जानाम्यहं पाण्डवेय यथा चरसि मेदिनीम् ।
यथा च ते ब्रह्मचर्यमिदमादिष्टवान्गुरुः ॥ २४ ॥
परस्परं वर्तमानान्द्रुपदस्याऽऽत्मजां प्रति ।
यो नोऽनुप्रविशेन्मोहात्स वै द्वादशवार्षिकम् ॥ २५ ॥
वने चरेद्ब्रह्मचर्यमिति वः समयः कृतः ।
तदिदं द्रौपदीहेतोरन्योन्यस्य प्रवासनम् ॥ २६ ॥
कृतं वस्तत्र धर्मार्थमत्र धर्मो न दुष्यति ।
परित्राणं च कर्तव्यमार्तानां पृथुलोचन ॥ २७ ॥
कृत्वा मम परित्राणं तव धर्मो न लुप्यते ।
यदि वाप्यस्य धर्मस्य सूक्ष्मोऽपि स्याद्व्यतिक्रमः ॥ २८ ॥
स च ते धर्म एव स्याद्दत्त्वा प्राणान्ममाऽर्जुन ।
भक्तां च भज मां पार्थ सतामेतन्मतं प्रभो ॥ २९ ॥

बारहवर्षके लिये ब्रह्मचर्यव्रत लिया है, सो अपने अधीन नहीं हूं; तुम्हारा प्रियभी किया चाहता हूं; पर मैंने पहिले कभी झूठी बात नहीं कही; सो हे भुजङ्गमे ! तुम ऐसा विधान करो, कि अब मेरी बातकी सचाई बनी रहे और तुम्हारा प्रियभी कर सकूं और मुझको अधर्ममें पडना न हो । (२१—२३)

उलूपी बोली, कि हे पाण्डव ! तुम जिस निमित्त पृथ्वीका भ्रमण कर रहे हो और गुरुने जिस प्रकार तुमको ब्रह्मचर्य व्रत करनेकी आज्ञा दी है, वह सब कुछ मैं जानती हूं । तुमने नियम किया था, कि तुम पांच भाइयोंमें कोई जब द्रौपदीसे मिलता रहे, तब जो मोहसे वहां जा पहुंचेगा, उसको बारह वर्षतक ब्रह्मचर्य ले वनमें जाना पडेगा । तुममें आपसका वनमें जानेका यह नियम केवल द्रौपदीहीसे बना है, सो तुम केवल उस धर्मकी रक्षाहीके लिये भेज गये हो; ऐसी दशामें तुम्हारा धर्म बिगडनेकी कौनसी सम्भावना है? (२४–२७)

हे सुन्दर नेत्रवाले पुरुष ! विह्वल जनको तुम्हे बचाना उचित है, सो मुझको विह्वल जान बचानेसे तुम्हारा धर्म नहीं बिगडेगा । हे अर्जुन ! यद्यपि

न करिष्यसि चेदेवं मृतां मामुपधारय ।
प्राणदानान्महाबाहो चर धर्ममनुत्तमम् ॥ ३० ॥
शरणं च प्रपन्नाऽस्मि त्वामद्य पुरुषोत्तम ।
दीनाननाथान्कौन्तेय परिरक्षासि नित्यशः ॥ ३१ ॥
साऽहं शरणमभ्येमि रोरवीमि च दुःखिता।
याचे त्वां चाभिकामाहं तस्मात्कुरु मम प्रियम् ३२ ॥
स त्वमात्मप्रदानेन सकामां कर्तुमर्हसि ॥ ३३ ॥
वैशम्पायन उवाच—एवमुक्तस्तु कौन्तेयः पन्नगेश्वरकन्यया ।
कृतवांस्तत्तथा सर्वं धर्ममुद्दिश्य कारणम् ॥ ३४ ॥
स नागभवने रात्रिं तामुषित्वा प्रतापवान् ।
उदितेऽभ्युत्थितः सूर्ये कौरवस्य निवेशनात् ॥ ३५ ॥
आगतस्तु पुनस्तत्र गंगाद्वारं तया सह ।
परित्यज्य गता साध्वी उलूपी निजमन्दिरम् ॥ ३६ ॥
दत्वा वरमजेयत्वं जले सर्वत्र भारत ।
साध्या जलचराः सर्वे भविष्यन्ति न संशयः ॥ ३४ ॥ [८००८]

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यामादिपर्वण्यर्जुनवनवासपर्वण्युलूपीसंगे षोडशाधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २१६ ॥

इसमें धर्मकी कुछ हानि होती है, सो मुझको प्राण देनेसे तुम्हारा वह पूराही बना रहेगा। साधुलोग मिलन चाहती हुई नारीकी कामना पूरी करनेका उपदेश करते हैं, सो मुझको भक्ता जान भजो। हे प्रभो! यदि तुम इसमें सम्मत न हो, तो मुझको मरी जान लो! हे पुरुषोत्तम महाभुज! आज मैंने तुम्हारी शरण ली है, मुझको प्राण देकर परम धर्म उपार्जन करो। हे कुन्तीपुत्र! मैं अनाथ और दीन होके बार बार रोती हुई तुम्हारी शरण लेती हूं और कामवश होके तुम्हारे मिलनकी प्रार्थना कर रही हूं और तुमभी दीनों और अनाथोंकी सदा रक्षा करते हो, सो तुमको मेरा प्रिय करना चाहिये। अतएव तुम अपनेको सौंप कर मेरी अभिलाषा पूरी करो। (२७—४३)

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि नागराज पुत्रीके प्रतापी अर्जुनसे ऐसी बात कहने पर अर्जुनने धर्मके उपदेशसे उसका मनमाना सम्पूर्ण कार्य पूरा किया। उसकी उस कौरव्य नामक सर्पराजके भवनमें वह रात गंवा कर सूर्योदयके समय उठे और उस नागराजपुत्रीके संग फिर गङ्गा-

वैशम्पायन उवाच–कथयित्वा च तत्सर्वं ब्राह्मणेभ्यः स भारत।
प्रययौ हिमवत्पार्श्वं ततो वज्रधरात्मजः ॥ १ ॥
अगस्त्यवटमासाद्य वसिष्ठस्य च पर्वतम् ।
भृगुतुंगे च कौन्तेयः कृतवाञ्शौचमात्मनः॥ २ ॥
प्रददौ गोसहस्राणि सुबहूनि च भारत ।
निवेशांश्च द्विजातिभ्यः सोऽददत्कुरुसत्तमः॥ ३ ॥
हिरण्यबिन्दोस्तीर्थे च स्नात्वा पुरुषसत्तमः।
दृष्टवान्पाण्डवश्रेष्ठः पुण्यान्यायतनानि च ॥ ४ ॥
अवतीर्य नरश्रेष्ठो ब्राह्मणैः सह भारत ।
प्राचीं दिशमभिप्रेप्सुर्जगाम भरतर्षभः ॥ ५ ॥
आनुपूर्व्येण तीर्थानि दृष्टवान्कुरुसत्तमः ।
नदीं चोत्पलिनीं रम्यामरण्यं नैमिषं प्रति ॥ ६ ॥
नन्दामपरनन्दां च कौशिकीं च यशस्विनीम्।
महानदीं गयां चैव गङ्गामपि च भारत ॥ ७ ॥
एवं तीर्थानि सर्वाणि पश्यमानस्तथाऽऽश्रमान्।
आत्मनःपावनं कुर्वन्ब्राह्मणेभ्यो ददौ च गाः॥ ८ ॥

द्वारको लौट आये। आगे सती उलूपी उनको यह वर देकर लौटी, कि तुम जलमें सर्वत्र अजेय बनोगे। सन्देह नहीं है, कि सबही जलकर तुमसे जीते जानेके योग्य होंगे। (३४–३७) [८००८]

आदिपर्वमें दो सौ सोलह अध्याय समाप्त।

आदिपर्वमें दो सौ सतरह अध्याय।

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि अनन्तर इन्द्र पुत्र ब्राह्मणोंसे पहिले दिन का सब ब्योरा कहके हिमालयके पास गये। आगे अगस्त्य वटको देखकर वसिष्ठ पर्वतमें जा पहुंचे और भृगुतुङ्ग नामक पर्वत पर अपनी शौचाक्रिया करके शुचि होके ब्राह्मणोंको अनेक सहस्र गौ और गृह दान किये। अनन्तर पुरुषोत्तम पाण्डवश्रेष्ठ हिरण्यबिन्दु नामक तीर्थमें नहाय धोय वहांके पुण्यस्थानोंको देखने लगे। अनन्तर ब्राह्मणोंके साथ उस स्थानमें उतर कर पूर्वदिशाको देखनेकी इच्छासे चले। (१—५)

हे भारत! वह क्रमसे तीर्थोंको देखने लगे; नैमिषारण्यसे बहती हुई सुन्दर उत्पलिनी नदी,गया और यशस्विनी महानदी गङ्गा, कौशिकी, नन्दा और अपरनन्दा और अन्यान्य तीर्थ तथा आश्रमोंकी दर्शन करते हुए आत्माको पवित्र कर

अङ्गवङ्गकलिङ्गेषु यानि तीर्थानि कानिचित् ।
जगाम तानि सर्वाणि पुण्यान्यायतनानि च॥ ९ ॥
दृष्ट्वा च विधिवत्तानि धनं चापि ददौ ततः।
कलिङ्गराष्ट्रद्वारेषु ब्राह्मणाः पाण्डवानुगाः ॥
अभ्यनुज्ञाय कौन्तेयमुपावर्तन्त भारत ॥ १० ॥
स तु तैरभ्यनुज्ञातः कुन्तीपुत्रो धनञ्जयः ।
सहायैरल्पकैः शूरः प्रययौ यत्र सागरः ॥ ११ ॥
स कलिङ्गानतिक्रम्य देशानायतनानि च ।
वनानि रमणीयानि प्रेक्षमाणो ययौ प्रभुः ॥ १२ ॥
महेन्द्रपर्वतं दृष्ट्वा तापसैरुपशोभितम् ।
समुद्रतीरेण शनैर्मणिपूरं जगाम ह ॥ १३ ॥
तत्र सर्वाणि तीर्थानि पुण्यान्यायतनानि च ।
अभिगम्य महाबाहुरभ्यगच्छन्महीपतिम् ॥ १४ ॥
मणिपूरेश्वरं राजन्धर्मज्ञं चित्रवाहनम् ।
तस्य चित्राङ्गदा नाम दुहिता चारुदर्शना ॥ १५ ॥
तां ददर्श पुरे तस्मिन्विचरन्तीं यदृच्छया ।
दृष्ट्वा च तां वरारोहां चकमे चैत्रवाहनीम् ॥ १६ ॥

ब्राह्मणोंको अनेक गौ दान दी। अङ्ग, वङ्ग और कलिङ्ग देशोंमें जितने तीर्थ और पवित्र स्थान हैं,उन्होंने उन स्थानोंमें जाय उनका दर्शन कर उन स्थानोंमें ब्राह्मणों को धन दान दिया। (९—१०)

हे भरतनन्दन! जो सब ब्राह्मण कुन्तीनन्दनके साथ जा रहे थे, वे कालिङ्ग राज्यके द्वार अर्थात् वहांकी पर्वत-सन्धि तक जाके उनकी आज्ञासे लौट गये। कुन्तीपुत्र वीर धनञ्जय द्विजोंकी आज्ञासे थोडे मनुष्योंको संग लेकर समुद्रकी ओर चले। वह प्रभु कलिङ्ग देशको पीछे छोड के नाना देश, आश्रम और बडे बडे भवनोंको देखते हुए चले। क्रमसे तपस्वियोंसे सुशोभित महेन्द्र पर्वतको देखकर समुद्र तीरसे मणिपुरमें जा पहुंचे। हे महाराज! वह महाभुज उस देशमें पुण्यतीर्थ और यज्ञ स्थानोंको देखकर अन्तमें मणिपुरनाथ चित्रवाहन नामक धर्मज्ञ महीपालके निकट गये। उस भूपकी चित्राङ्गदा नाम्नी एक सुन्दरी कन्या थी। (१०—१५)

एक दिन वह सुन्दरी मनमारु उस नगरमें टहलती थी, कि ऐसे समय अर्जुन

अभिगम्य च राजानमवदत्स्वं प्रयोजनम् ।
देहि मे खल्विमां राजन्क्षत्रियाय महात्मने ॥ १७ ॥
तच्छ्रुत्वा त्वब्रवीद्राजा कस्य पुत्रोऽसि नाम किम्।
उवाच तं पाण्डवोऽहं कुन्तीपुत्रो धनञ्जयः॥ १८ ॥
तमुवाचाऽथ राजा स सान्त्वपूर्वमिदं वचः ।
राजा प्रभञ्जनो नाम कुलेऽस्मिन्संबभूव ह ॥ १९ ॥
अपुत्रः प्रसवेनार्थी तपस्तेपे स उत्तमम् ।
उग्रेण तपसा तेन देवदेवः पिनाकधृक् ॥ २० ॥
ईश्वरस्तोषितः पार्थ महादेव उमापतिः ।
स तस्मै भगवान्प्रादादेकैकं प्रसवं कुले ॥ २१ ॥
एकैकः प्रसवस्तस्माद्भवत्यस्मिन्कुले सदा ।
तेषां कुमाराः सर्वेषां पूर्वेषां मम जज्ञिरे ॥ २२ ॥
एका तु मम कन्येयं कुलस्योत्पादनी भृशम्।
पुत्रो ममाऽयमिति मे भावना पुरुषर्षभ ॥ २३ ॥
पुत्रिकाहेतुविधिना संज्ञिता भरतर्षभ ।
तस्मादेकः सुतो योऽस्यां जायेत भारत त्वया॥२४ ॥

उसको देखकर कामके वशमें हो-गये और अभिलाषा पूरी करनेके लिये राजाके पास पहुंचकर बोले, कि हे महा-राज ! मैं महात्मा क्षत्रियका पुत्र हूं, मुझको कन्या दान दें, राजा वह बात सुनकर बोले, कि तुम किसके पुत्र हो? तुम्हारा नाम क्या है ? अर्जुन बोले, कि मैं पाण्डव कुन्तीपुत्र हूं; मेरा नाम धन-ञ्जय है। (१६—१८)

अनन्तर राजा मीठी बातोंमें उनसे बोले, कि हे पुरुषश्रेष्ठ ! इस देशमें प्रभ-ञ्जन नामक एक भूपने जन्म लिया था। उनकी सन्तान न होनेसे वह सन्तानकी कामनासे भले प्रकार तप करने लगे। पिनाकधारी ईश्वर उमापति भगवान् देव-देव महादेवने उनकी कठोर तपस्यासे प्रसन्न होकर उनको वर दिया, कि पुरु-षोंकी परम्परासे उनके इस वंशमें एक एक सन्तान जन्म ले। इस लिये हमारे कुलमें सदा एकही सन्तान उपजती है। मेरे-सब पूर्वजोंके पुत्र उपजे थे। हे पुरुषे-न्द्र ! मेरे वंश बढानेवाली यह एकही कन्या हुई है। मैं इसको पुत्र करके समझता हूं। (१९—२३)

हे भारतवर ! मैंने इस कन्याको विधि-पूर्वक पुत्रिका बनायी है; इस लिये

एतच्छुल्कं भवत्वस्याः कुलकृज्जायतामिह ।
एतेन समयेनेमां प्रतिगृह्णीष्व पाण्डव ॥ २५ ॥
स तथेति प्रतिज्ञाय तां कन्यां प्रतिगृह्य च ।
उवास नगरे तस्मिंस्तिस्रः कुन्तीसुतः समाः ॥ २६ ॥
तस्यां सुते समुत्पन्ने परिष्वज्य वराङ्गनाम् ।
आमन्त्र्य नृपतिं तं तु जगाम परिवर्तितुम् ॥ २७ ॥ [८०३५]

इति श्रीमहाभारते शत० अर्जुनवनवासपर्वणि चित्रांगदासंग्रहे सप्तदशाधिकाद्विशततमोऽध्यायः ॥ २१७ ॥

वैशम्पायन उवाच–ततः समुद्रे तीर्थानि दक्षिणे भरतर्षभः ।
अभ्यगच्छत्सुपुण्यानि शोभनानि तपस्विभिः ॥ १ ॥
वर्जयन्ति स्म तीर्थानि पञ्च तत्र तु तापसाः ।
अवकीर्णानि यान्यासन्पुरस्तात्तु तपस्विभिः ॥ २ ॥
अगस्त्यतीर्थं सौभद्रं पौलोमं च सुपावनम् ।
कारन्धमं प्रसन्नं च हयमेधफलं च तत् ॥ ३ ॥
भारद्वाजस्य तीर्थं तु पापप्रशमनं महत् ।
एतानि पञ्च तीर्थानि ददर्श पुरुषोत्तमः ॥ ४ ॥
विविक्तान्युपलक्ष्याऽथ तानि तीर्थानि पाण्डवः ।

इस कन्याके गर्भ और तुम्हारे वीर्यसे जो एक पुत्र उत्पन्न होगा वह मेरी पुत्रिका का पुत्र होगा । वह पुत्र ही इस कन्याके शुल्कवत होकर मेरे वंशकी रक्षा करेगा, इस नियममें तुम मेरी यह कन्या लो । कुन्ती-पुत्र अर्जुनने "तथास्तु" कहके मान लिया । और उस कन्यासे विवाह कर उस नगरमें तीन वर्ष गवाया । सुन्दरी चित्राङ्गदाके गर्भसे पुत्र उपजने पर वह उसको गले लगाके और प्रेमसे सम्भाषण करके राजासे विदा होकर देश-भ्रमणको निकला । (२४-२७) [८०३५]

आदिपर्वमें दो सौ सतरह अध्याय समाप्त ।

आदिपर्व में दोसौ अठारह अध्याय ।

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि अनन्तर भरतवंश श्रेष्ठ अर्जुन दक्षिण समुद्रके तपस्वियोंसे शोभायमान सब पुण्य तीर्थों में गये । उस स्थानमें अश्वमेधका फलदायी पापनाशी प्रसन्न सुपवित्र अगस्त्य, सौभद्र, पौलोम, कारन्धम, और भरद्वाज यह पांच महातीर्थ थे । उन पांच तीर्थोंके सामने बहुतेरे तपस्वी वसते थे, पर इनके भीतर किसी तपस्वीका वास नहीं था । (१—४)

पुरुषश्रेष्ठ अर्जुनने उन पञ्चतीर्थोंको देखा । उन्होंने उन पञ्चतीर्थोंको पूर्वोक्त

दृष्ट्वा च वर्ज्यमानानि मुनिभिर्धर्मबुद्धिभिः ॥ ५ ॥
तपस्विनस्ततोऽपृच्छत्प्राञ्जलिः कुरुनन्दनः ।
तीर्थानीमानि वर्ज्यन्ते किमर्थं ब्रह्मवादिभिः॥ ६ ॥
तापसा ऊचुः— ग्राहाः पञ्च वसन्त्येषु हरन्ति च तपोधनान्।
तत एतानि वर्ज्यन्ते तीर्थानि कुरुनन्दन ॥ ७ ॥
वैशम्पायन उवाच—तेषां श्रुत्वा महाबाहुर्वार्यमाणस्तपोधनैः ।
जगाम तानि तीर्थानि द्रष्टुं पुरुषसत्तमः ॥ ८ ॥
ततः सौभद्रमासाद्य महर्षेस्तीर्थमुत्तमम् ।
विगाह्य सहसा शूरः स्नानं चक्रे परंतपः ॥ ९ ॥
अथ तं पुरुषव्याघ्रमन्तर्जलचरो महान् ।
जग्राह चरणे ग्राहः कुन्तीपुत्रं धनञ्जयम् ॥ १० ॥
स तमादाय कौन्तेयो विस्फुरन्तं जलेचरम् ।
उदतिष्ठन्महाबाहुर्बलेन बलिनां वरः ॥ ११ ॥
उत्कृष्ट एव ग्राहस्तु सोऽर्जुनेन यशस्विना ।
बभूव नारी कल्याणी सर्वाभरणभूषिता ॥ १२ ॥
दीप्यमाना श्रिया राजन्दिव्यरूपा मनोरमा ।
तदद्भुतं महद् दृष्ट्वा कुन्तीपुत्रो धनंजयः ॥ १३ ॥

और धर्मज्ञ मुनियोंसे त्यागे हुए देखके उसके सामने वसे हुए तपस्वियोंसे पूछा, कि ब्रह्मवादी ब्राह्मण लोग क्यों यह पञ्चतीर्थ छोड देते हैं? तपस्वीगण बोले, कि हे कुरुनन्दन! इन पञ्चतीर्थोंके जलमें पांच ग्राह हैं, वे तपस्वियोंको मार डालते हैं, सो मुनिलोग इन तीर्थोंमें नहीं वसते। (५—७)

वैशम्पायनजी बोले, कि पुरुषोत्तम महाभुज अर्जुन तपोधनोंका वह वचन सुनके उनसे रोके जाने परभी उन सब तीर्थोंको देखने गये। वह पहिले महर्षि सम्बन्धी सौभद्र नामक अच्छे तीर्थमें पहुंच कर उसमें एकायक देहको डुबाकर नहाने लगे। ऐसे समयमें जलके भीतर चलनेवाले एक बडे ग्राहने उन शत्रु-दमन वीरपुरुषोंमें व्याघ्ररूपी कुन्तीपुत्र धनञ्जयका पांव पकडा। महाबली महाभुज पाडुपुत्र उस फुर्तीले जलचरजन्तु को लेकर बलपूर्वक तट पर उठ आये। हे महाराज! जलचर ग्राह यशोवन्त अर्जुनसे ऊपर उठाये जातेही एक नारी के स्वरूपमें दिखाई दिया। वह बाला दिव्यस्वरूप सुन्दरतासे चमकती हुई,

तां स्त्रियं परमप्रीत इदं वचनमब्रवीत् ।
का वै त्वमसि कल्याणि कुतो वासि जलेचरी॥ १४ ॥
किमर्थं च महत्पापमिदं कृतवती पुरा ।

नार्युवाच — अप्सराऽस्मि महाबाहो देवारण्यविहारिणी ॥ १५ ॥
इष्टा धनपतेर्नित्यं वर्गा नाम महाबल ।
मम सख्यश्चतस्रोऽन्याः सर्वाः कामगमाः शुभाः १६
ताभिः सार्धं प्रयाताऽस्मि लोकपालनिवेशनम् ।
ततः पश्यामहे सर्वा ब्राह्मणं संशितव्रतम् ॥ १७ ॥
रूपवन्तमधीयानमेकमेकान्तचारिणम् ।
तस्यैव तपसा राजंस्तद्वनं तेजसा वृतम् ॥ १८ ॥
आदित्य इव तं देशं कृत्स्नं सर्वं व्यकाशयत् ।
तस्य दृष्ट्वा तपस्तादृग्रूपं चाऽद्भुतमुत्तमम् ॥ १९ ॥
अवतीर्णाः स्म तं देशं तपोविघ्नचिकीर्षया ।
अहं च सौरभेयी च समीची बुद्बुदा लता॥ २० ॥
यौगपद्येन तं विप्रमभ्यगच्छाम भारत ।

कल्याणी, मनोरमा और सर्व आभूषणों-से सजी थी। (८—१३)

कुन्तीपुत्र धनञ्जय उस बडी आश्चर्य लीलाको देखके अति प्रसन्नचित्तसे उस नारीसे बोले, कि ऐ कल्याणि जल-चरि ! तुम कौन ? क्यों ऐसी बनी हो? और क्यों पहिले ऐसा महापाप किया था ? वर्गानाम्नी वह नारी बोली, कि हे महाबली महाभाग ! मैं देववनमें विराज-नेवाली अप्सरा हूं, मेरा नाम वर्गा है, मैं सदासे कुबेरकी प्यारी हूं, मेरी काम-गामी शुभ–लक्षणा और चार सखी हैं, किसी समय मैं उन चार सखियोंकी साथ लोकपालके यहां जा रही थी; उस समय देखा, कि प्रशंशित व्रतधारी एका-न्तमें रहनेवाले परम रूपवान एक ब्राह्मण वेद पढ रहे हैं।(१३—१७)

हे महाराज ! उनके तपके तेजसे वह वन ढंप गया है; उन्होंने आदित्यकी भांति उस सब स्थानमें उजाला कर दिया है। हम उनकी वैसी अति तपस्या और आश्चर्य रूप देखकर तपमें विघ्न डालनेकी इच्छासे वहां उतरगयीं। हे भारत ! सौरभेयी, समीचि, बुद्बुदा लता और मैं यह पांच एकत्र हो कर उस ब्राह्मणके यहां एकबारही जा पहुंची। हे वीर ! हम उनके लुभानेके लिये हंस-ने और गीत गाने लगीं; पर उस विप्रने

गायन्त्योऽथ हसन्त्यश्च लोभयित्वा च तं द्विजम्॥२१॥
स च नाऽस्मासु कृतवान्मनो वीर कथंचन।
नाऽकम्पत महातेजाः स्थितस्तपसि निर्मले॥२२॥
सोऽशपत्कुपितोऽस्मासु ब्राह्मणः क्षत्रियर्षभ।
ग्राहभूता जले यूयं चरिष्यथ शतं समाः॥२३॥ [८०५८]

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यामादिपर्वण्यर्जुनवनवासपर्वणि तीर्थग्राहविमोचनेऽष्टादशाधिकद्विशततमोऽध्यायः॥ २१८॥

वर्गोवाच— ततो वयं प्रव्यथिताः सर्वा भरतसत्तम।
प्रयाम शरणं विप्रं तं तपोधनमच्युतम्॥१॥
रूपेण वयसा चैव कन्दर्पेण च दर्पिताः।
अयुक्तं कृतवत्यः स्म क्षन्तुमर्हसि नो द्विज॥२॥
एष एव वधोऽस्माकं सुपर्याप्तस्तपोधन।
यद्वयं संशितात्मानं प्रलोब्धुं त्वामिहाऽऽगताः॥३॥
अवध्यास्तु स्त्रियः सृष्टा मन्यन्ते धर्मचिन्तकाः।
तस्माद्धर्मेण वर्ध त्वं नाऽस्मान्हिंसितुमर्हसि॥४॥
सर्वभूतेषु धर्मज्ञ मैत्रो ब्राह्मण उच्यते।
सत्यो भवतु कल्याण एष वादो मनीषिणाम्॥५॥

किसी प्रकारने हमारी ओर ध्यान नहीं दिया। उनका मन निर्मल तपस्यामें निश्चल बना रहा, किसी प्रकार नहीं टला। हे क्षत्रिय वर! अनन्तर उन्होंने क्रोधित होके हमको यह शाप दिया, कि तुम ग्राह बनके जलमें सौ वर्ष चरा करोगी। (१८—२३) [८०५८]

आदिपर्वमें दोसौ अठारह अध्याय समाप्त।

आदिपर्वमें दोसौ उन्नीस अध्याय।

वर्गा बोली, कि हे भरतवंशश्रेष्ठ! अनन्तर हमने कातर होकर उन अच्युत तपोधनकी शरण लेकर कहा, कि हे तपोधन! हमने रूप, यौवन और काम के अहङ्कारसे यह अनुचित कार्य किया है। हे द्विज! हमारी क्षमा करनी योग्य है। यही हमारे लिये मृत्युवत हुआ है, कि हम ऐसे जितेन्द्रिय मुनिको लुभाने की इच्छासे यहां आई हैं, धर्मचारी लोग विचारते हैं, कि नारी वधके अयोग्य बनायी गयी हैं; सो आप हमारी हिंसा न करें। हे धर्मज्ञ! पण्डित लोग कहते हैं, कि ब्राह्मण सर्वप्राणियोंके मित्र हैं; हे कल्याणास्पदयुक्त! पण्डितोंके उस वचनको सत्य होने दें। शिष्टलोग शरण

शरणं च प्रपन्नानां शिष्टाः कुर्वन्ति पालनम् ।
शरणं त्वां प्रपन्नाः स्मस्तस्मात्त्वं क्षन्तुमर्हसि॥ ६ ॥

वैशम्पायन उवाच—एवमुक्तः स धर्मात्मा ब्राह्मणः शुभकर्मकृत् ।
प्रसादं कृतवान्वीर रविसोमसमप्रभः ॥ ७ ॥

ब्राह्मण उवाच— शतं शतसहस्रं तु सर्वमक्षय्यवाचकम् ।
परिमाणं शतं त्वेतन्नेदमक्षय्यवाचकम् ॥ ८ ॥
यदा च वो ग्राहभूता गृह्णन्तीः पुरुषाञ्जले ।
उत्कर्षति जलात्तस्मात्स्थलं पुरुषसत्तमः ॥ ९ ॥
तदा यूयं पुनः सर्वाः स्वं रूपं प्रतिपत्स्यथ ।
अनृतं नोक्तपूर्वं मे हसताऽपि कदाचन ॥ १० ॥
तानि सर्वाणि तीर्थानि ततः प्रभृति चैव ह ।
नारीतीर्थानि नाम्नेह ख्यातिं यास्यन्ति सर्वशः॥
पुण्यानि च भविष्यन्ति पावनानि मनीषिणाम् ११॥

वर्गोवाच— ततोऽभिवाद्य तं विप्रं कृत्वा चापि प्रदक्षिणम् ।
अचिन्तयामोपसृत्य तस्माद्देशात्सुदुःखिताः॥ १२ ॥
क नु नाम वयं सर्वाः कालेनाऽल्पेन तं नरम् ।

लिये हुए लोगोंकी रक्षा करते हैं; हमने आपकी शरण ली है; सो आपको हमारी क्षमा करनी चाहिये । (१—६)

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि हे वीर ! अनन्तर सूर्यचन्द्रमाकी उजला रखनेवाले शुभकर्म किये धर्मात्मा वह ब्राह्मण अप्सराओं की यह बात सुनके प्रसन्न हुए और बोले, कि शत और शत सहस्रका अर्थ अनन्त कालभी होता है, पर मैंने "शत वर्ष" यह शब्द कहा है, उसका अर्थ सौंही होगा, अनन्तकाल नहीं होगा । तुम जलचर ग्राह बनके पुरुषोंको पकडा करोगी, पर शत वर्ष होने पर एक पुरुष श्रेष्ठ तुमको पकड कर स्थल पर उठा लेंगे, तब तुम फिर अपना रूप प्राप्त करोगी, मेरी बात कभी झूठी नहीं टहरेगी । मैंने पहिले कभी हंसीमेंभी झूठी बात नहीं कही है । तुम्हारे छुटकारा पाने पर वे सब तीर्थ, नारीतीर्थ नामसे प्रख्यात होकर साधुओंके तारनेवाले और पुण्य दायी बनेंगे । (७—११)

वर्गा बोली, कि अनन्तर हम उन ब्राह्मणको प्रणाम कर परिक्रमा दे दुःखी चित्तसे वहांसे भागकर सोचने लगी, कि जो महापुरुष हमको स्वरूप दिलावेंगे उनसे कहां थोडे कालके बीच हमारी

समागच्छेम यो नस्तद्रूपमापादयेत्पुनः ॥ १३ ॥
ता वयं चिन्तयित्वैव मुहूर्तादिव भारत ।
दृष्टवत्यो महाभागं देवर्षिमुत नारदम् ॥ १४ ॥
संप्रहृष्टाः स्म तं दृष्ट्वा देवर्षिममितद्युतिम् ।
अभिवाद्य च तं पार्थ स्थिताः स्म व्रीडिताननाः॥१५॥
स नोऽपृच्छद्दुःखमूलमुक्तवत्यो वयं च तम् ।
श्रुत्वा तत्र यथावृत्तमिदं वचनमब्रवीत् ॥ १६ ॥
दक्षिणे सागरानूपे पञ्चतीर्थानि सन्ति वै ।
पुण्यानि रमणीयानि तानि गच्छत मा चिरम्॥ १७॥
तत्राऽऽशु पुरुषव्याघ्रः पाण्डवेयो धनञ्जयः ।
मोक्षयिष्यति शुद्धात्मा दुःखादस्मान्न संशयः॥१८॥
तस्य सर्वा वयं वीर श्रुत्वा वाक्यमितो गताः।
तदिदं सत्यमेवाऽद्य मोक्षिताऽहं त्वयाऽनघ ॥ १९ ॥
एतास्तु मम ताः सख्यश्चतस्रोऽन्या जले श्रिताः।
कुरु कर्म शुभं वीर एताः सर्वा विमोक्षय ॥ २० ॥
वैशम्पायन उवाच-ततस्ताः पाण्डवश्रेष्ठः सर्वा एव विशाम्पते ।
तस्माच्छापाददीनात्मा मोक्षयामास वीर्यवान् २१
उत्थाय च जलात्तस्मात्प्रतिलभ्य वपुः स्वकम् ।

भेंट हो सकती है? हे भारत! हम सब ऐसी चिन्ता करती हुई, पल भरमें महाभाग देवर्षिको देखकर प्रसन्न चित्तसे उनके पांव पर सिर नायके लज्जासे मुह नीचे कर खडी रहीं। उनके हमारे दुःखका कारण पूछने पर हमने आद्योपान्त सब ब्योरा कह सुनाया। वह हमारी बात सुनके बोले, कि दाक्षिण-समुद्रमें प्रायः जलभरी ठोरमें पांच तीर्थ हैं, तुम वहां जाओ, देर मत करो, उस स्थानमें शुद्धात्मा पुरुषश्रेष्ठ पाण्डुपुत्र धनञ्जय तुमको इस दुःखसे निःसन्देह बचावेंगे। हे वीर! हम सब उन महर्षिका वचन सुनके यहां आयी थीं। हे अनघ! अब सचमुच तुमसे मुक्त होगई। मेरी वे चार सखी इसी प्रकार दूसरे जलमें हैं, हे वीर! तुम इस प्रकार उन चारोंको भी मुक्तकर शुभ कर्मका फल लो। (१२—२०)

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि हे भूपाल! अनन्तर वीर्यवन्त पाण्डवश्रेष्ठ अर्जुनने प्रसन्न मनसे उन सबोंहीको उस शापसे बचाया। हे महाराज! अप्सरायें उस

तास्तदाऽप्सरसो राजन्नदृश्यन्त यथा पुरा ॥ २२ ॥
तीर्थानि शोधयित्वा तु तथाऽनुज्ञाय ताः प्रभुः।
चित्राङ्गदां पुनर्द्रष्टुं मणिपूरं पुनर्ययौ ॥ २३ ॥
तस्यामजनयत्पुत्रं राजानं बभ्रुवाहनम् ।
तं दृष्ट्वा पाण्डवो राजंश्चित्रवाहनमब्रवीत् ॥ २४ ॥
चित्राङ्गदायाः शुल्कं त्वं गृहाण बभ्रुवाहनम् ।
अनेन च भविष्यामि ऋणान्मुक्तो नराधिप ॥२५॥
चित्राङ्गदां पुनर्वाक्यमब्रवीत्पाण्डुनन्दनः ।
इहैव भव भद्रं ते वर्धेथा बभ्रुवाहनम् ॥ २६ ॥
इन्द्रप्रस्थनिवासं मे त्वं तत्राऽऽगत्य रंस्यसि।
कुन्तीं युधिष्ठिरं भीमं भ्रातरौ मे कनीयसौ॥ २७ ॥
आगत्य तत्र पश्येथा अन्यानपि च बान्धवान्।
बान्धवैः सहिता सर्वैर्नन्दसे त्वमनिन्दिते॥ २८ ॥
धर्मे स्थितः सत्यधृतिः कौन्तेयोऽथ युधिष्ठिरः।
जित्वा तु पृथिवीं सर्वां राजसूयं करिष्यति ॥ २९ ॥

जलसे उठके अपने पहिलेके रूपमें दीख-पडीं। इस प्रकार अर्जुन उस पञ्चतीर्थोंको सुधारकर उनको विदाकर देके चित्राङ्ग-दाको देखनेके लिये फिर मणिपुरको पधारे। हे राजन्! तब उनके वीर्य और चित्रांगदाके गर्भसे उपजे राजा बभ्रु-वाहन नामक पुत्र वहां हुए थे। उस बभ्रुवाहनको देखकर पाण्डुपुत्र अर्जुन चित्रवाहनसे बोले, कि "तू चित्रांगदाका शुल्क समझ कर इस बभ्रुवाहन ही को ले। हे नराधिप! इससे मैं ऋणसे मुक्त हो जाऊंगा।" (२१—२५)

अर्जुन चित्रांगदासे फिर बोले, कि तू यहां ही रह और इस बभ्रुवाहनका उत्तम पालन पोषण कर। मेरे निवास स्थान इंद्रप्रस्थ में जब तू आजायगी, तब मेरे साथ रममाण होकर कुंती, युधि-ष्ठिर, भीम और दो छोटे भाई तथा मेरे अन्य बंधुगणोंको देखकर तुमको बहुत ही आनंद हो जायगा। हे अनिंदिते! धर्म और सत्यका अवलंबन करके कुन्ती-पुत्र युधिष्ठिर संपूर्ण पृथ्वीको जीत कर राजसूय यज्ञ करेगा, उस यज्ञमें पृथ्वीभर के सब नृपगण अनंत रत्नोंके साथ आ-जांयगे, उनमें तेरा पिताभी आजायगा। उस समय तूभी अपने पिता चित्रवाहन के साथ आजाना, तो राजसूय यज्ञके समय मैं तेरा दर्शन करूंगा। तब तक तू

तत्राऽऽगच्छन्ति राजानः पृथिव्यां नृपसंज्ञिताः।
बहूनि रत्नान्यादाय आगमिष्यति ते पिता॥ ३० ॥
एकसार्थं प्रयाताऽसि चित्रवाहनसेवया ।
द्रक्ष्यामि राजसूये त्वां पुत्रं पालय मा शुचः ॥ ३१ ॥
बभ्रुवाहननाम्ना तु मम प्राणो महीचरः ।
तस्माद्भरस्व पुत्रं वै पुरुषं वंशवर्धनम् ॥ ३२ ॥
चित्रवाहनदायादं धर्मात्पौरवनन्दनम् ।
पाण्डवानां प्रियं पुत्रं तस्मात्पालय सर्वदा ॥ ३३ ॥
विप्रयोगेन संतापं मा कृथास्त्वमनिन्दिते ।
चित्राङ्गदामेवमुक्त्वा गोकर्णमभितोऽगमत्॥ ३४ ॥
आद्यं पशुपतेः स्थानं दर्शनादेव मुक्तिदम् ।
यत्र पापोऽपि मनुजः प्राप्नोत्यभयदं पदम् ॥ ३५ ॥ [८०९३]

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यामादिपर्वण्यर्जुनवनवासपर्वण्यर्जुन-तीर्थयात्रायामूनविंशत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २१९ ॥

वैशम्पायन उवाच—सोऽपरान्तेषु तीर्थानि पुण्यान्यायतनानि च ।
सर्वाण्येवाऽनुपूर्व्येण जगामाऽमितविक्रमः ॥ १ ॥
समुद्रे पश्चिमे यानि तीर्थान्यायतनानि च ।
तानि सर्वाणि गत्वा स प्रभासमुपजग्मिवान् ॥२॥

इस पुत्रका उत्तम पालन कर और शोक न कर। यह सत्य है, कि यह बभ्रुवाहन पृथ्वीपर संचार करनेवाला मेरा प्राणही है, इस लिये वंशवृद्धि करनेवाले इस पुरुष संतानकी उत्तम रक्षा कर। यह पौरवनंदन धर्मसे चित्रवाहनका दायाद हैं, और पाण्डवोंका प्रियपुत्र है, इस कारण इसका उत्तम पालन कर। हे अनिंदिते! तू अब मेरे वियोगके कारण शोक न कर।" चित्रांगदासे इतना कहकर पार्थ गोकर्ण की ओर चले। यह पशुपतिका आद्य स्थान दर्शनसे ही मुक्ति देनेवाला है और यहां पापी मनुष्य भी अभय पद को प्राप्त कर सकता है। (२६-३५)

आदिपर्वमें दोसौ उन्नीस अध्याय समाप्त।[८०९३]

आदिपर्वमें दोसौ बीस अध्याय।

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि अनन्तर अति विक्रमी अर्जुन पश्चिम प्रदेशमें जितने तीर्थ और पुण्य स्थान हैं, एक एक कर उन सबोंमें गये और पश्चिम समुद्रमें जितने तीर्थ और स्थान हैं, वहां घूम घाम अन्तमें प्रभास तीर्थमें जा पहुंचे। मधु-

प्रभासदेशं संप्राप्तं बीभत्सुमपराजितम् ।
सुपुण्यं रमणीयं च शुश्राव मधुसूदनः ॥ ३ ॥
ततोऽभ्यगच्छत्कौन्तेयं सखायं तत्र माधवः।
ददृशाते तदाऽन्योन्यं प्रभासे कृष्णपाण्डवौ॥ ४ ॥
तावन्योन्यं समाश्लिष्य पृष्ट्वा च कुशलं वने।
आस्तां प्रियसखायौ तौ नरनारायणावृषी ॥ ५ ॥
ततोऽर्जुनं वासुदेवस्तां चर्यां पर्यपृच्छत ।
किमर्थं पाण्डवैतानि तीर्थान्यनुचरस्युत ॥ ६ ॥
ततोऽर्जुनो यथावृत्तं सर्वमाख्यातवांस्तदा ।
श्रुत्वोवाच च वार्ष्णेय एवमेतदिति प्रभुः ॥ ७ ॥
तौ विहृत्य यथाकामं प्रभासे कृष्णपाण्डवौ ।
महीधरं रैवतकं वासायैवाऽभिजग्मतुः ॥ ८ ॥
पूर्वमेव तु कृष्णस्य वचनात्तं महीधरम् ।
पुरुषा मण्डयाञ्चक्रुरुपजग्मुश्च भोजनम् ॥ ९ ॥
प्रतिगृह्याऽर्जुनः सर्वमुपभुज्य च पाण्डवः ।
सहैव वासुदेवेन दृष्टवान्नटनर्तकान् ॥ १० ॥
अभ्यनुज्ञाय तान्सर्वानर्चयित्वा च पाण्डवः ।

सूदन माधवने सुना, कि अति पुण्ययुक्त सुन्दर प्रभास तीर्थमें अजेय सखा अर्जुन जा पहुंचे हैं। अनन्तर वह उनकी भेंटके लिये वहां गये । उन प्रभासमें कृष्ण और पाण्डवसे परस्परकी भेंट होने पर दोनों प्यारे सखा ऋषि नर और नारायणरूपी कृष्ण तथा अर्जुन एक दूसरेका गले लगाके कुशलक्षेम पूछ कर उस ठौरमें बैठे। वासुदेव अर्जुनका भ्रमण वृत्तान्त सुननेकी इच्छासे बोले, कि हे पाण्डव! तुम क्यों इन तीर्थोंमें फिरा करते हो ? (१–७)

अर्जुनने आद्योपान्त सब कह सुनाया। प्रभु वार्ष्णेयने सुनकर कहा, कि यह उचितही हुआ है। अनन्तर वे दोनों प्रभासमें मनमाने विहारकर रहनेके लिये रैवतक पर्वत पर गये। इसके पहिलेही कृष्णकी आज्ञासे नौकरोंने पर्वत पर भांति भांतिकी सामग्री बनवा रखी थी, इतनी कि जिनसे पहाड छिप गया था। अर्जुन वासुदेवके साथ वहां भोजनादि कर और नट नाचनेवालोंके नाच आदि देखने लगे। आगे महामति पाण्डव उनको यथोचित पारितोषिक देके विदा

सत्कृतं शयनं दिव्यमभ्यगच्छन्महामतिः ॥ ११ ॥
ततस्तत्र महाबाहुः शयानः शयने शुभे ।
नदीनां पल्वलानां च पर्वतानां तथैव च ॥ १२ ॥
आपगानां वनानां च कथयामास सात्वते ॥ १३ ॥
एवं स कथयन्नेव निद्रया जनमेजय ।
कौन्तेयोऽपि हृतस्तस्मिञ्शयने स्वर्गसंनिभे ॥ १४ ॥
मधुरेणैव गीतेन वीणाशब्देन चैव ह ।
प्रबोध्यमानो बुबुधे स्तुतिभिर्मङ्गलैस्तथा ॥ १५ ॥
स कृत्वाऽवश्यकार्याणि वार्ष्णेयेनाऽभिनन्दितः ।
रथेन काञ्चनाङ्गेन द्वारकामभिजग्मिवान् ॥ १६ ॥
अलंकृता द्वारका तु बभूव जनमेजय ।
कुन्तीपुत्रस्य पूजार्थमपि निष्कुटकेष्वपि ॥ १७ ॥
दिदृक्षन्तश्च कौन्तेयं द्वारकावासिनो जनाः ।
नरेन्द्रमार्गमाजग्मुस्तूर्णं शतसहस्रशः ॥ १८ ॥
अवलोकेषु नारीणां सहस्राणि शतानि च ।
भोजवृष्ण्यन्धकानां च समवायो महानभूत् ॥ १९ ॥
स तथा सत्कृतः सर्वैर्भोजवृष्ण्यन्धकात्मजैः ।
अभिवाद्याऽभिवाद्यांश्च सर्वैश्च प्रतिनन्दितः ॥ २० ॥

कर भलेप्रकार सजी सेज पर जाकर सोये । (७—११)

अनन्तर महाभुज अर्जुन उस शुभ बिछौने पर लेटकर कृष्णसे भांति भांतिकी नदी, सोते, पर्वत, वन आदि की कथा कहने लगे । जनमेजय ! वह इस प्रकार की नाना कथा कहते हुए सो गये । आगे रात बीतने पर मीठे गीत स्तुतिपाठ वीणे की ध्वनिसे जग उठे; और नित्यकृत्योंका अन्त कर, यादवोंसे नमस्कार किये जाय सुवर्णके रथ पर द्वारकाको गये । (१२—१६)

हे जनमेजय ! कुन्तीनन्दनके गौरवके लिये द्वारकापुरीके राजपथ, फुलवाडी और भवन आदि सब ठांर सजाये गये थे । सैकडों सहस्रों द्वारकावासी अर्जुन को देखनेके लिये राजपथ पर वेगसे पहुंचने लगे; पाण्डवदर्शनके लिये सैकडों सहस्रों भोज वृष्णि और अंधकवंशी नरनारियों की बडी भीड लगी; अर्जुन भोज वृष्णि और अन्धकवंशियोंसे यथायोग्य सत्कृत हुए, नमस्कारयोग्य जनोंको नमस्कार

कुमारैः सर्वशो वीरः सत्कारेणाऽभिचोदितः ।
समानवयसः सर्वानाश्लिष्य स पुनः पुनः ॥ २१ ॥
कृष्णस्य भवने रम्ये रत्नभोज्यसमावृते ।
उवास सह कृष्णेन बहुलास्तत्र शर्वरीः ॥ २२ ॥ [८११५]

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यामादिपर्वण्यर्जुनवनवासपर्वण्यर्जुनद्वारकागमने विंशत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २२० ॥ समाप्तं चार्जुनवनवासपर्व ।

अथ सुभद्राहरणपर्व ॥

वैशम्पायन उवाच–ततः कतिपयाहस्य तस्मिन्रैवतके गिरौ ।
वृष्ण्यन्धकानामभवदुत्सवो नृपसत्तम ॥ १ ॥
तत्र दानं ददुर्वीरा ब्राह्मणेभ्यः सहस्रशः ।
भोजवृष्ण्यन्धकाश्चैव महेन्द्रस्य गिरेस्तदा ॥ २ ॥
प्रासादै रत्नचित्रैश्च गिरेस्तस्य समन्ततः ।
स देशः शोभितो राजन्कल्पवृक्षैश्च सर्वशः॥ ३ ॥
वादित्राणि च तत्राऽन्ये वादकाः समवादयन् ।
ननृतुर्नर्तकाश्चैव जगुर्गेयानि गायकाः ॥ ४ ॥
अलंकृताः कुमाराश्च वृष्णीनां सुमहौजसाम् ।
यानैर्हाटकचित्रैश्च चञ्चूर्यन्ते स्म सर्वशः ॥ ५ ॥

किया, और उनसे प्रणाम किये जाय और सब कुमारोंकी पावलगी ले सम अवस्थावालोंको बारबार गले लगाया। आगे कृष्णके साथ भांति भांतिके रत्न तथा भोग की सामग्रियोंसे भरे पूरे सुन्दर भवनमें बहुत दिन काटे। (१७-२२) [८११५]

दोसौबीस अध्याय और अर्जुनवनवासपर्व समाप्त ।

दोसौ इक्कीस अध्याय और सुभद्राहरणपर्व ।

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि अनन्तर कुछ दिनों तक उस रैवतक पर्वत पर वृष्णि और अन्धकवंशियोंका उत्सव होने लगा। भोज वृष्णि और अन्धकवंशी वीर उस गिरि सम्बन्धी उत्सवमें सहस्रों ब्राह्मणोंको भांति भांतिकी सामग्री दान देने लगे। हे महाराज ! रैवतक पर्वतकी चारों ओरकी उपत्यका और अधित्यकायें रत्नोंसे सजे कल्पवृक्ष समान कामनाओं की वस्तुओंसे भरे गृहोंसे सुहाने लगी। बाजावाले नाचनेवाले और गानेवाले नाना भांतिके बाजे नाच और गीत आरम्भ कर दिये। अति वीर्यवन्त वृष्णिवंशी कुमारगण सज धज कर सुनौले रथों पर इधर उधर घूमते हुए सुहाने लगे। सैकडों सहस्रों पुरवासी पत्नी और साथियों

पौराश्च पादचारेण यानैरुच्चावचैस्तथा ।
सदाराः सानुयात्राश्च शतशोऽथ सहस्रशः॥ ६ ॥
ततो हलधरः क्षीबो रेवतीसहितः प्रभुः ।
अनुगम्यमानो गन्धर्वैरचरत्तत्र भारत ॥ ७ ॥
तथैव राजा वृष्णीनामुग्रसेनः प्रतापवान् ।
अनुगीयमानो गन्धर्वैः स्त्रीसहस्रसहायवान्॥ ८ ॥
रौक्मिणेयश्च साम्बश्च क्षीबो समरदुर्मदौ ।
दिव्यमाल्याम्बरधरौ विजह्रातेऽमराविव ॥ ९ ॥
अक्रूरः सारणश्चैव गदो बभ्रुर्विदूरथः ।
विशठश्चारुदेष्णश्च पृथुर्विपृथुरेव च ॥ १० ॥
सत्यकः सात्यकिश्चैव भङ्गकारमहारवौ ।
हार्दिक्य उद्धवश्चैव ये चाऽन्ये नाऽनुकीर्तिताः॥ ११ ॥
एते परिवृताः स्त्रीभिर्गन्धर्वैश्च पृथक्पृथक् ।
तमुत्सवं रैवतके शोभयाञ्चक्रिरे तदा ॥ १२ ॥
चित्रकौतूहले तस्मिन्वर्तमाने महाद्भुते ।
वासुदेवश्च पार्थश्च सहितौ परिजग्मतुः ॥ १३ ॥
तत्र चंक्रममाणौ तौ वसुदेवसुतां शुभाम् ।
अलंकृतां सखीमध्ये सुभद्रां ददृशुस्तदा ॥ १४ ॥

समेत अनेकप्रकारके यान पर टहलने लगे। कोई कोई पैदलही घूमने लगा। (१-६)

हे भारत ! रेवतीके साथ प्रभु हलधर मधुसे मतवाले सहचर गन्धर्वोंसे घिरे जाय घूमने लगे। वैसेही सहस्र नारियोंके साथ वृष्णियोंके राजा प्रतापी उग्रसेन सहचर गन्धर्वोंसे घेरे जाय घूमने घामनेमें प्रवृत्त हुए। युद्धमें कठोर साम्ब और रुक्मिणीकुमार मधुसे मतवाले हो सुन्दर माला और वस्त्र पाहिने देवोंकी भांति विहार करने लगे। अक्रूर, सारण, गद, बभ्रु, विदूरथ, निशठ, चारुदेष्ण, पृथु, विपृथु, सत्यक, सात्यकि, भङ्गकार, महारव, हार्दिक्य, उद्धव, और दूसरे बहुतेरोंने अलग अलग स्त्री और गन्धर्वों के साथ वहां टहलते हुए उस महोत्सवकी शोभा बढायी। (७-१२)

इस प्रकार उस मनोहर अति आश्चर्य कौतूहलके बर्त्ताव होने पर वासुदेव और पार्थ एकत्र हो टहलने लगे। उन्होंने इधर उधर घूमते समय सखियोंसे घिरी नाना आभूषणोंसे बनीठनी, शुभलक्षणों

दृष्ट्वैव तामर्जुनस्य कन्दर्पः समजायत ।
तं तदैकाग्रमनसं कृष्णः पार्थमलक्षयत् ॥ १५ ॥
अब्रवीत्पुरुषव्याघ्रः प्रहसन्निव भारत ।
वनेचरस्य किमिदं कामेनाऽऽलोड्यते मनः ॥ १६ ॥
ममैषा भगिनी पार्थ सारणस्य सहोदरा ।
सुभद्रा नाम भद्रं ते पितुर्मे दयिता सुता ।
यदि ते वर्तते बुद्धिर्वक्ष्यामि पितरं स्वयम् ॥ १७ ॥

अर्जुन उवाच— दुहिता वसुदेवस्य वासुदेवस्य च स्वसा ।
रूपेण चैषा संपन्ना कमिवैषा न मोहयेत् ॥ १८ ॥
कृतमेव तु कल्याणं सर्वं मम भवेद् ध्रुवम् ।
यदि स्यान्मम वार्ष्णेयी महिषीयं स्वसा तव ॥१९॥
प्राप्तौ तु क उपायः स्यात्तं ब्रवीहि जनार्दन ।
आस्थास्यामि तदा सर्वं यदि शक्यं नरेण तत् २०

वासुदेव उवाच— स्वयंवरः क्षत्रियाणां विवाहः पुरुषर्षभ ।
स च संशयितः पार्थ स्वभावस्याऽनिमित्ततः २१ ॥

से जडी वसुदेवकन्या सुभद्राको देखा । अर्जुन उस कोमलाङ्गी बालाको देखकरके ही मदन बाणसे मोहित हुए। हे भारत ! पुण्डरीकाक्ष कृष्ण उनके मनको सुभद्रा पर बहुत चलते देखके हंसकर बोले, कि यह क्या है ? वनवासीके मनमेंभी काम डामाडोल मचाता है ? हे पार्थ ! यह कन्या सारणकी सगी बहिन, मेरीभी बहिन है, इसका नाम सुभद्रा है। यह बालाही मेरे पिताकी प्यारी कन्या है। तुम्हारा चित्त इस पर झुका हो, तो कहो, मैं स्वयं ही पितासे यह कहूं, तिससे तुम्हारा मङ्गल हो सकता है। (१३-१७)

अर्जुन बोले, कि वसुदेवकी कन्या, वासुदेवकी बहिन अनुपम रूपवती यह कन्या किसके मनको मोहित न करेगी ? तुम्हारी बहिन यह सुभद्रा यदि मेरी रानी बने, तो इसमें सन्देह नहीं, कि तुमसे मेरा सर्व प्रकार कल्याण होगा। हे जनार्दन ! कहो, अब किस उपायसे सुभद्रा मिल सकती है। यदि मनुष्यकी सामर्थ में हो तो सर्व प्रकारसे वह करूं।

वासुदेव बोले, कि हे पुरुषश्रेष्ठ पार्थ ! क्षत्रियोंका स्वयंवर विवाहका नियम तो है, पर उसकी शङ्का होरही है, क्योंकि नारियोंका स्वभाव और हृदय शूरता पाण्डित्य आदि पर नहीं चलता। वे पहिले देखनेमें सुन्दर जन पर मोहित

प्रसह्य हरणं चापि क्षत्रियाणां प्रशस्यते ।
विवाहहेतुः शूराणामिति धर्मविदो विदुः ॥ २२ ॥
स त्वमर्जुन कल्याणीं प्रसह्य भगिनीं मम ।
हर स्वयंवरे ह्यस्याः को वै वेद चिकीर्षितम् ॥ २३ ॥
ततोऽर्जुनश्च कृष्णश्च विनिश्चित्येतिकृत्यताम् ।
शीघ्रगान्पुरुषानन्यान्प्रेषयामासतुस्तदा ॥ २४ ॥
धर्मराजाय तत्सर्वमिन्द्रप्रस्थगताय वै ।
श्रुत्वैव च महाबाहुरनुजज्ञे स पाण्डवः ॥ २५ ॥ [८१४०]

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यामादिपर्वणि सुभद्राहरणपर्वणि युधिष्ठिरानुज्ञायामेकाविंशत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २२१ ॥

वैशम्पायन उवाच—ततः संवादिते तस्मिन्ननुज्ञातो धनंजयः ।
गतां रैवतके कन्यां विदित्वा जनमेजय ॥ १ ॥
वासुदेवाभ्यनुज्ञातः कथयित्वेतिकृत्यताम् ।
कृष्णस्य मतमादाय प्रययौ भरतर्षभः ॥ २ ॥
रथेन काञ्चनांगेन कल्पितेन यथाविधि ।
शैब्यसुग्रीवयुक्तेन किङ्किणीजालमालिना ॥ ३ ॥
सर्वशस्त्रोपपन्नेन जीमूतरवनादिना ।

होती है। अतएव शूर, क्षत्रियोंके लिये बलसे कन्या हर कर विवाह करनेके जिस नियमकी धर्मज्ञगण प्रशंसा करते हैं, हे अर्जुन! तुम उस विधानके अनुसार बलपूर्वक इस शुभलक्षणा मेरी बहिनको हरलो, स्वयंवरका प्रयोजन नहीं है, क्योंकि कौन जानता है, कि सुभद्राका कैसा अभिप्राय है? अनन्तर अर्जुन और कृष्णने क्या करना उचित है, उसका निश्चय कर इन्द्रप्रस्थमें धर्मराजके यहां शीघ्र जानेवाला दूत भेज दिया। महाबाहु पाण्डवनन्दन युधिष्ठिरने वह सब वृत्तान्त सुनतेही उसकी आज्ञा भिजवायी। (१८-२५) [८१४०]

आदि पर्वमें दोसौ इक्कीस अध्याय समाप्त।

आदिपर्वमें दो सौ बाईस अध्याय।

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि हे जनमेजय! अनन्तर युधिष्ठिरकी आज्ञा पाने पर पुरुषश्रेष्ठ धनञ्जयने वासुदेवके उपदेशसे क्या करना है, ठीक कर उनकी आज्ञा लेकर यात्रा की। वह खड्ग, कवच गोधा, उङ्गली रक्षक आदि पहिने बद्ध सन्नाह हो शैब्य और सुग्रीव नामक घोडे जोते, जालमालासे सजे, विधिपूर्वक

ज्वलिताग्निप्रकाशेन द्विषतां हर्षघातिना ॥ ४ ॥
संनद्धः कवची खड्गी बद्धगोधाङ्गुलित्रवान्।
मृगयाव्यपदेशेन प्रययौ पुरुषर्षभः ॥ ५ ॥
सुभद्रा त्वथ शैलेन्द्रमभ्यर्च्यैव हि रैवतम् ।
दैवतानि च सर्वाणि ब्राह्मणान्स्वस्ति वाच्य च॥६॥
प्रदक्षिणं गिरेः कृत्वा प्रययौ द्वारकां प्रति ।
तामभिद्रुत्य कौन्तेयः प्रसह्याऽऽरोपयद्रथम् ॥ ७ ॥
सुभद्रां चारुसर्वाङ्गीं कामबाणप्रपीडितः ॥ ८ ॥
ततः स पुरुषव्याघ्रस्तामादाय शुचिस्मिताम् ।
रथेन काञ्चनांगेन प्रययौ स्वपुरं प्रति ॥ ९ ॥
ह्रियमाणां तु तां दृष्ट्वा सुभद्रां सैनिका जनाः ।
विक्रोशन्तोऽद्रवन्सर्वे द्वारकामभितः पुरीम्॥१०॥
ते समासाद्य सहिताः सुधर्मामभितः सभाम्।
सभापालस्य तत्सर्वमाचख्युः पार्थविक्रमम् ॥ ११ ॥
तेषां श्रुत्वा सभापालो भेरीं सांनाहिकीं ततः।
समाजघ्ने महाघोषां जाम्बूनदपरिष्कृताम् ॥ १२ ॥
क्षुब्धास्तेनाऽथ शब्देन भोजवृष्ण्यन्धकास्तदा।

कल्पित, सर्वशास्त्रोंके अनुसार बने, प्रज्व-लित अग्नि समान चमकीले सुनाले, बादल सदृश गम्भीर शब्द करने वाले और विपक्षीके हर्षनाशी रथ पर चढ आखेटके मिषसे चलने लगे । सुभद्रा शैलराज रैवतकको पूजकर परिक्रमा दे देवोंकी पूजा कर और ब्राह्मणोंसे स्वस्ति कहलवा कर द्वारकाकी ओर जारही थी, कि ऐसे समय कामबाणसे घायल कुन्ती-नन्दन धनञ्जयने उसकी ओर दौडके एकायक उस सर्वाङ्ग-सुन्दरी सुभद्राको रथ पर चढाया। (१-८)

पुरुषव्याघ्र अर्जुन इस प्रकारसे सुन्द-री सुभद्राको लेके सुवर्णरथ पर अपने नगरकी ओर जाने लगे। सैनिक लोग सुभद्राको अर्जुनसे पकडे जाते देखकर चिल्लाते हुए द्वारका नगरकी ओर दौडे। उन सबोंने सर्व प्रकारसे देवसभासमान उस राजसभामें उपस्थित हो सभापालसे अर्जुनका विक्रमवृत्तान्त कह सुनाया। सभापाल उनसे सब वृत्तान्त सुनके सुव-र्णसे सुहावनी बडी आहट मचानेवाली युद्धके लिये सजनकी सूचना देनेवाली भेरी बजाने लगा। (९-१२)

अन्नपानमपास्याऽथ समापेतुः समन्ततः ॥ १३ ॥
तत्र जाम्बूनदाङ्गानि स्पर्ध्यास्तरणवन्ति च।
मणिविद्रुमचित्राणि ज्वलिताग्निप्रभाणि च ॥ १४ ॥
भेजिरे पुरुषव्याघ्रा वृष्ण्यन्धकमहारथाः ।
सिंहासनानि शतशो धिष्ण्यानीव हुताशनाः॥१५॥
तेषां समुपविष्टानां देवानामिव संनये ।
आचख्यौ चेष्टितं जिष्णोः सभापालः सहानुगः१६॥
तच्छ्रुत्वा वृष्णिवीरास्ते मदसंरक्तलोचनाः।
अमृष्यमाणाः पार्थस्य समुत्पेतुरहंकृताः ॥ १७ ॥
योजयध्वं रथानाशु प्रासानाहरतेति च ।
धनूंषि च महार्हाणि कवचानि बृहन्ति च ॥ १८ ॥
सूतानुच्चुक्रुशुः केचिद्रथान्योजयतेति च ।
स्वयं च तुरगान्केचिद्युयुञ्जन्हेमभूषितान् ॥ १९ ॥
रथेष्वानीयमानेषु कवचेषु ध्वजेषु च ।
अभिक्रन्दे नृवीराणां तदासीत्तुमुलं महत् ॥ २० ॥
वनमाली ततः क्षीबः कैलासशिखरोपमः ।

भोज वृष्णि और अन्धक लोग उस भेरीके शब्दसे उदास हो, अन्नपान तज करके चारों ओरसे बटुरने लगे। तेज अग्नि जिसप्रकार अपना आधार इन्धन पकड लेता है, वैसेही महारथी पुरुषव्याघ्र वृष्णि और अन्धक लोग परम सुन्दर चादरोंसे आच्छादित मणियोंसे खचित अग्निके उजाले समान चमकीले सैकडों सुनौले सिंहासनों पर जा बैठे। देवोंके समागमकी भांति उनके बटुरने पर सभापाल ने उनसे अर्जुनका किया कार्य कह सुनाया। अहङ्कारसे नेत्र लाल किये गर्वित वे वीरगण उस वृत्तान्तको सुनतेही रिसाकर सिंहासनोंसे उठ खडे हुए।(१३--१७)

उनमेंसे किसी किसीने कहा, कि तुरन्त रणकी तय्यारी करो; किसी किसीने कहा, कि प्रास लाओ; किसी किसीने कहा मूल्यवान् शरासन और बडे बडे कवच लाओ; किसी किसीने चिल्लाकर सारथीको पुकारके कहा, कि तुरन्त रथ जोतो; कोई कोई शीघ्रताके लिये सुवर्ण जडे घोडे लेकर रथ जोतने लगे। तब रथ कवच ध्वजा आदि लानेके लिये वीरोंका कोलाहल उडने लगा। (१८-२०)

अनन्तर गलेसे बनमाला डाले कैलासपर्वत समान नीलाम्बर पहिरे मदसे

नीलवासा मदोत्सिक्त इदं वचनमब्रवीत् ॥ २१ ॥
किमिदं कुरुथाऽप्रज्ञास्तूष्णींभूते जनार्दने ।
अस्य भावमविज्ञाय संक्रुद्धा मोघगर्जिताः ॥ २२ ॥
एष तावदभिप्रायमाख्यातु स्वं महामतिः ।
यदस्य रुचिरं कर्तुं तत्कुरुध्वमतन्द्रिताः ॥ २३ ॥
ततस्ते तद्वचः श्रुत्वा ग्राह्यरूपं हलायुधात् ।
तूष्णींभूतास्ततः सर्वे साधु साध्विति चाऽब्रुवन् २४
समं वचो निशम्यैव बलदेवस्य धीमतः ।
पुनरेव सभामध्ये सर्वे ते समुपाविशन् ॥ २५ ॥
ततोऽब्रवीद्वासुदेवं वचो रामः परंतपः ।
किमवागुपविष्टोऽसि प्रेक्ष्यमाणो जनार्दन ॥ २६ ॥
सत्कृतस्त्वत्कृते पार्थः सर्वैरस्माभिरच्युत ।
न च सोऽर्हति तां पूजां दुर्बुद्धिः कुलपांसनः ॥२७॥
को हि तत्रैव भुक्त्वाऽन्नं भाजनं भेत्तुमर्हति ।
मन्यमानः कुले जातमात्मानं पुरुषः क्वचित् ॥२८॥
इच्छन्नेव हि सम्बन्धं कृतं पूर्वं च मानयन् ।
को हि नाम भवेनार्थी साहसेन समाचरेत् ॥ २९ ॥

उझले मदोन्मत्त बलदेवजी बोले, कि जनार्दनके कुछ न कहतेही तुम यह क्या कर रहे हो ? इनका अभिप्राय न जान करकेही तुम क्रोधके मारे गर्जन कर रहे हो । यह महामति कृष्ण पहिले अपना मत प्रगट करें, आगे वह जानके तुम वेगसे वही पूरा करना। (२१— २३)

अनन्तर सब जन धीमान् हलधरकी सुनने योग्य वह बात सुनके उनको साधु साधु कहकर चुप हो, फिर सभामें बैठ गये; तब शत्रुमर्दन रामने वासुदेवसे कहा, कि जनार्दन! तुम क्यों कुछ नहीं कहते ? क्यों उदासीन समान बैठे ताक रहे हो ? अच्युत! हम सबने पृथापुत्रका भले प्रकार सत्कार किया था । वह कुबुद्धि कुलाङ्गार तैसे सत्कारके योग्य नहीं है; जो सुवंशी करके अपना परिचय देता है, वह कभी अन्न-खाकर अन्नके बासनको तोड नहीं सकता है । (२४-२८)

यद्यपि ऐसा वैवाहिक सम्बन्ध बनाने को मन चाहता है, तौभी कोई ऐश्वर्य चाहनेवाला पहिलेका उपकार स्मरण

सोऽवमन्य तथाऽस्माकमनादृत्य च केशवम्।
प्रसह्य हृतवानद्य सुभद्रां मृत्युमात्मनः ॥ ३० ॥
कथं हि शिरसो मध्ये कृतं तेन पदं मम ।
मर्षयिष्यामि गोविन्द पादस्पर्शमिवोरगः ॥ ३१ ॥
अद्य निष्कौरवामेकः करिष्यामि वसुन्धराम्।
न हि मे मर्षणीयोऽयमर्जुनस्य व्यतिक्रमः ॥ ३२ ॥
तं तथा गर्जमानं तु मेघदुन्दुभिनिःस्वनम् ।
अन्वपद्यन्त ते सर्वे भोजवृष्ण्यन्धकास्तथा ॥ ३३ ॥

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यामादिपर्वणि सुभद्राहरणपर्वणि बलदेवक्रोधे द्वाविंशत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २२२ ॥ समाप्तं च सुभद्राहरणपर्व ।

अथ हरणाहरणपर्व ।

वैशम्पायन उवाच—उक्तवन्तो यथावीर्यमसकृत्सर्ववृष्णयः ।
ततोऽब्रवीद्वासुदेवो वाक्यं धर्मार्थसंयुतम् ॥ १ ॥
नाऽवमानं कुलस्याऽस्य गुडाकेशः प्रयुक्तवान्।
संमानोऽभ्यधिकस्तेन प्रयुक्तोऽयं न संशयः॥ २ ॥
अर्थलुब्धान्न वः पार्थो मन्यते सात्वतान्सदा ।
स्वयंवरमनाधृष्यं मन्यते चाऽपि पाण्डवः ॥ ३ ॥

कर ऐसे साहसके काममें हाथ नहीं डालते हैं! उस पाण्डवने हमारा अनादर कर और तुमको तुच्छ समझके अपनी मृत्युस्वरूप सुभद्राको हर लिया है। गोविंद! उसने मेरे शिर पर लात मारी है; सो सर्प जिस प्रकार दूसरेके पांवको सह नहीं सकता, तैसेही मैं भी कभी यह न सह सकूंगा! भोज, वृष्णि और अन्धक सबोंने बादल और नगाडेकी भांति उन गरजते हुए बलदेवकी बातको मान लिया। (२९-३३) [८१७३]

दोसौ बाईस अध्याय और सुभद्राहरणपर्व समाप्त।

दोसौ तेईस अध्याय और हरणाहरणपर्व।

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि अनन्तर वृष्णियोंके निज निज वीर्यके अनुसार बार बार इस प्रकार कहने पर, वासुदेव धर्मार्थयुक्त यह वचन कहने लगे, कि अर्जुनने जो कार्य किया है, उससे हमारे कुलका अपमान नहीं हुआ; वास्तवमें इसका सन्देह नहीं कि उन्होंने हमारा सम्मान बहुत बढाया है। वह जानते हैं, कि हम धनके लोभी नहीं हैं, इस लिये उन्होंने धन देकर विवाहकी चेष्टा नहीं की है। और स्वयंवरमें शङ्का है, सो उन्होंने उस

प्रदानमपि कन्यायाः पशुवत्को नु मन्यते ।
विक्रयं चाऽप्यपत्यस्य कः कुर्यात्पुरुषो भुवि॥ ४ ॥
एतान्दोषांस्तु कौन्तेयो दृष्टवानिति मे मतिः।
अतः प्रसह्य हृतवान्कन्यां धर्मेण पाण्डवः॥ ५ ॥
उचितश्चैव संबन्धः सुभद्रा च यशस्विनी ।
एष चाऽपीदृशः पार्थः प्रसह्य हृतवानिति ॥ ६ ॥
भरतस्याऽन्वये जातं शान्तनोश्च यशस्विनः।
कुन्तिभोजात्मजापुत्रं को बुभूषेत नाऽर्जुनम्॥ ७ ॥
न तं पश्यामि यः पार्थं विजयेत रणे बलात्।
वर्जयित्वा विरूपाक्षं भगनेत्रहरं हरम् ॥ ८ ॥
अपि सर्वेषु लोकेषु सेन्द्ररुद्रेषु मारिष ।
स च नाम रथस्तादृङ् मदीयास्ते च वाजिनः॥ ९ ॥
योद्धा पार्थश्च शीघ्रास्त्रः को नु तेन समो भवेत्
तमभिद्रुत्य सान्त्वेन परमेष्ठी धनंजयम् ॥ १० ॥
न्यवर्तयत संहृष्टा ममैषा परमा मतिः ।
यदि निर्जित्य वः पार्थो बलाद्गच्छेत्स्वकं पुरम्११॥

का भी प्रयत्न नहीं किया । पशुकी भांति कन्यादान किसी क्षत्रियका प्यारा नहीं है, और कन्या बेचनाभी किसी मनुष्य-की सम्मतियुक्त नहीं । मुझको जान पडता है, कि इन सब दोषोंकी भली भांति आलोचना करकेही अर्जुनने एका-यक कन्या हरली है। (१—५)

सुभद्रा जैसी यशस्विनी है, पार्थभी वैसेही गुणवन्त हैं, सो यह सम्बन्ध अ-योग्य नहीं है; इसकाभी विचार कर उन्होंने कन्या बलसे हरली है । फिरभी भरतवंशी यशोवन्त शान्तनुनन्दन कुंती-भोजके दौहित्र उस अर्जुनको ऐसा कौन है, जो मित्र बनाना न चाहता होगा ? विशेष इस त्रिलोकी भरमें भगनेत्रहर विरूपाक्ष महादेवके बिना कोईभी ऐसा नहीं दीखता; जो बलपूर्वक अर्जुनको परास्त कर सके । हे आर्य ! उनका वह रथ, मेरे वे सब घोडे, वह स्वयं वैसे योद्धा और वैसी शीघ्रतासे शस्त्र फेंकना (यह सब बने रहते) इन्द्रलोक आदि जितने भर लोक हैं, उनमें ऐसा कौन होगा जो उनका सामना कर सके ? सो मेरा विचार यह है; कि तुम तुरन्त दौड कर प्रसन्नचित्तसे धनञ्जयको ढाढस देके लौटा लाओ । यदि वह बलपूर्वक तुम

प्रणश्येद्वो यशः सद्यो न तु सान्त्वे पराजयः ।
तच्छ्रुत्वा वासुदेवस्य तथा चक्रुर्जनाधिप ॥ १२ ॥
निवृत्तश्चाऽर्जुनस्तत्र विवाहं कृतवान्प्रभुः ।
उषित्वा तत्र कौन्तेयः संवत्सरपराः क्षपाः॥ १३ ॥
विहृत्य च यथाकामं पूजितो वृष्णिनन्दनैः ।
पुष्करे तु ततः शेषं कालं वर्तितवान्प्रभुः ॥ १४ ॥
पूर्णे तु द्वादशे वर्षे खाण्डवप्रस्थमागतः ।
अभिगम्य च राजानं नियमेन समाहितः ॥ १५ ॥
अभ्यर्च्य ब्राह्मणान्पार्थो द्रौपदीमभिजग्मिवान् ।
तं द्रौपदी प्रत्युवाच प्रणयात्कुरुनन्दनम् ॥ १६ ॥
तत्रैव गच्छ कौन्तेय यत्र सा सात्वतात्मजा ।
सुबद्धस्यापि भारस्य पूर्वबन्धः श्लथायते ॥ १७ ॥
तथा बहुविधं कृष्णां विलपन्तीं धनंजयः ।
सान्त्वयामास भूयश्च क्षमयामास चाऽसकृत्॥१८॥
सुभद्रां त्वरमाणश्च रक्तकौशेयवासिनीम् ।

सबोंको परास्त कर अपनी राजधानीमें जाय, तो आज ही तुम्हारा यश लोप हो जायगा, तो ढाडस देनेसे तुम्हारी पराजय नहीं होगी। (६—१२)

हे जनाधिप! यादवोंने वासुदेवकी वह बात सुन कर उसके अनुसार कार्य किया। प्रभावी अर्जुनने वृष्णियोंसे आदर पाय द्वारकापुरीमें लौटकर सुभद्रासे विवाह कर नाना प्रकार मनमाने विहार कर वर्ष भर काल गंवाया। अनन्तर पुष्करतीर्थमें जाय शेष काल काटने लगे। बारह वर्ष होजाने पर खाण्डवप्रस्थमें लौट राजा युधिष्ठिरके निकट जा पहुंचे। आगे वह विनयपूर्वक राजा युधिष्ठिर और ब्राह्मणोंको पूजकर द्रौपदीके निकट गये। द्रौपदी प्रेमकी दृष्टिके साथ उनसे बोली, कि हे कुन्तीपुत्र! फिर यहां क्यों? जहां सात्वतपुत्री है, वहीं जाओ; रस्सीसे बंधी वस्तुके ढेर पर एक और भी कठिन बंधन डालनेसे पहिलेका बन्धन अवश्यही ढीला हो जाता है, अब तुम नये प्रेमके जालमें बहुत फंसे हो, सो पहिलेका बंधा मेरे प्रेमजालका बन्धन ढीला होगया है। धनंजय द्रौपदीको इस प्रकार नाना रीतिसे विलपते देखकर बार बार समझाने लगे और बार बार क्षमा मांगी। १२-१८

अनन्तर उन्होंने लाल पीताम्बर पहिरे हुई सुभद्राके यहां जाय वेगसे उसका

पार्थः प्रस्थापयामास कृत्वा गोपालिकावपुः॥ १९ ॥
साऽधिकं तेन रूपेण शोभमाना यशस्विनी।
भवनश्रेष्ठमासाद्य वीरपत्नी वराङ्गना ॥ २० ॥
ववन्दे पृथुताम्राक्षी पृथां भद्रा यशस्विनी ।
तां कुन्ती चारुसर्वाङ्गीमुपाजिघ्रत मूर्धनि ॥ २१ ॥
प्रीत्या परमया युक्ता आशीर्भिर्युञ्जताऽतुलम्।
ततोऽभिगम्य त्वरिता पूर्णेन्दुसदृशानना ॥ २२ ॥
ववन्दे द्रौपदीं भद्रा प्रेष्याऽहमिति चाऽब्रवीत्।
प्रत्युत्थाय तदा कृष्णा स्वसारं माधवस्य च॥ २३ ॥
परिष्वज्याऽवदत्प्रीत्या निःसपत्नोऽस्तु ते पतिः।
तथैव मुदिता भद्रा तामुवाचैवमस्त्विति ॥ २४ ॥
ततस्ते हृष्टमनसः पाण्डवेया महारथाः ।
कुन्ती च परमप्रीता बभूव जनमेजय ॥ २५ ॥
श्रुत्वा तु पुण्डरीकाक्षः संप्राप्तं स्वं पुरोत्तमम् ।
अर्जुनं पाण्डवश्रेष्ठमिन्द्रप्रस्थगतं तदा ॥ २६ ॥
आजगाम विशुद्धात्मा सह रामेण केशवः ।
वृष्ण्यन्धकमहामात्रैः सह वीरैर्महारथैः ॥ २७ ॥

गोपीवेष बनाके उसको अन्तःपुरमें भेजवाया । वीरपत्नी यशस्विनी ताम्र रङ्गकी बडी बडी आंखवाली उस बालाने उस वेषमें औरभी सुहाकर परम सुन्दर भवन में पहुंचके पहिले कल्याणी कुन्तीके निकट जाय उनके पांवको प्रणाम किया। कुन्तीने अति प्रसन्न हो सर्वाङ्ग सुन्दरी नयी वधू सुभद्राका सिर चूम कर अनेक अशीस दी । अनन्तर पूर्ण चन्द्रमाके समान मुखवाली सुभद्राने वेगसे द्रौपदीके निकट जाय उसको प्रणाम किया और कहा, कि मैं आपकी दासी आयी हूं। कृष्णा उसी क्षण उठकर माधवकी बहिनको लगे लगा प्रीति पूर्वक बोली, कि तुम्हारे पतिका कोई सपत्न न रहे। सुभद्राने तब प्रमुदित चित्तसे "तथास्तु" यह बात कही । (१९-२४)

हे जनमेजय ! अनन्तर महारथी पाण्डवगण और कुन्ती परम प्रीति पूर्वक रहने लगे । शत्रुओंके दुःखदायी विशुद्धात्मा पुण्डरीकाक्ष श्रीकृष्णचन्द्रने जब सुना, कि पाण्डवश्रेष्ठ अर्जुन इन्द्रप्रस्थमें जाकर राजधानी को पहुंचे हैं, तब वह युद्धविद्यामें पण्डित महारथी वीर सेनाओंकी अच्छी रखवारीमें भ्राता और

भ्रातृभिश्च कुमारैश्च योधैश्च बहुभिर्वृतः ।
सैन्येन महता शौरिरभिगुप्तः परंतपः ॥ २८ ॥
तत्र दानपतिर्धीमानाजगाम महायशाः ।
अक्रूरो वृष्णिवीराणां सेनापतिररिन्दमः ॥ २९ ॥
अनाधृष्टिर्महातेजा उद्धवश्च महायशाः ।
साक्षाद् बृहस्पतेः शिष्यो महाबुद्धिर्महामनाः॥३०॥
सत्यकः सात्यकिश्चैव कृतवर्मा च सात्वतः ।
प्रद्युम्नश्चैव साम्बश्च निशठः शङ्कुरेव च ॥ ३१ ॥
चारुदेष्णश्च विक्रान्तो झिल्ली विपृथुरेव च ।
सारणश्च महाबाहुर्गदश्च विदुषां वरः ॥ ३२ ॥
एते चाऽन्ये च बहवो वृष्णिभोजान्धकास्तथा ।
आजग्मुः खाण्डवप्रस्थमादाय हरणं बहु ॥ ३३ ॥
ततो युधिष्ठिरो राजा श्रुत्वा माधवमागतम् ।
प्रतिग्रहार्थं कृष्णस्य यमौ प्रास्थापयत्तदा ॥ ३४ ॥
ताभ्यां प्रतिगृहीतं तु वृष्णिचक्रं महर्द्धिमत् ।
विवेश खाण्डवप्रस्थं पताकाध्वजशोभितम् ॥ ३५ ॥

पुत्रोंसे घेरे जाय और श्रेष्ठ वृष्णि तथा अन्धकोंसे मिल कर बलभद्रके साथ खाण्डवप्रस्थमें आ पहुंचे। (२७–२८)

और धीमान् अति कीर्तिवन्त दाता अक्रूर, वृष्णि सेनापति अतितेजस्वी शत्रुनाशी अनाधृष्टि, बडे यशोवन्त उद्धव, साक्षात् बृहस्पतिके चेले अति बुद्धिमान महानुभव सत्यक, सात्यकि, सात्वत, कृतवर्मा, प्रद्युम्न, साम्ब, निशठ, शंकु, चारुदेष्ण, विक्रमी झिल्ली, विपृथु, सारण और महाभुज पण्डित गद, यह सब और बहुतेरे दूसरे वृष्णि, भोज और अन्धक अनेक यौतुक लेकर उस स्थानमें आये। (२९–३३)

राजा युधिष्ठिरने यह सुनकर, कि माधवका शुभागमन हुआ, उनको आदर पूर्वक लिवालानेके लिये नकुल और सहदेवको भेजा। बडे भारी वृष्णिदलने उन दो पुरुषोंसे आदर पूर्वक लिवाये जाय खाण्डवप्रस्थ पुरीमें प्रवेश किया। तब हृष्ट पुष्ट जनोंसे भरे, वणिकोंसे सुहावने उस नगरकी ठौर ठौरमें फूलोंकी माला लटकती, जलती हुई सुगन्धी अगुरुकी गन्ध उडती, तथा पवित्र गन्धवाले चंदनका रस छिरका था और वहांके सब राजपथ साफ आर्द्र और ध्वजा पताका-

संमृष्टासिक्तपंथानं पुष्पप्रकरशोभितम् ।
चन्दनस्य रसैः शीतैः पुण्यगन्धैर्निषेवितम् ॥ ३६ ॥
दह्यताऽगुरुणा चैव देशे देशे सुगन्धिना ।
हृष्टपुष्टजनाकीर्णं वणिग्भिरुपशोभितम् ॥ ३७ ॥
प्रतिपेदे महाबाहुः सह रामेण केशवः ।
वृष्ण्यन्धकैस्तथा भोजैः समेतः पुरुषोत्तमः ॥ ३८ ॥
संपूज्यमानः पौरैश्च ब्राह्मणैश्च सहस्रशः ।
विवेश भवनं राज्ञः पुरन्दरगृहोपमम् ॥ ३९ ॥
युधिष्ठिरस्तु रामेण समागच्छद्यथाविधि ।
मूर्ध्नि केशवमाघ्राय बाहुभ्यां परिषस्वजे ॥ ४० ॥
तं प्रीयमाणो गोविन्दो विनयेनाऽभिपूजयन् ।
भीमं च पुरुषव्याघ्रं विधिवत्प्रत्यपूजयत् ॥ ४१ ॥
तांश्च वृष्ण्यन्धकश्रेष्ठान्कुन्तीपुत्रो युधिष्ठिरः ।
प्रतिजग्राह सत्कारैर्यथाविधि यथागतम् ॥ ४२ ॥
गुरुवत्पूजयामास कांश्चित्कांश्चिद्वयस्यवत् ।
कांश्चिदभ्यवदत्प्रेम्णा कैश्चिदप्यभिवादितः ॥ ४३ ॥
तेषां ददौ हृषीकेशो जन्यार्थे धनमुत्तमम् ।
हरणं वै सुभद्राया ज्ञातिदेयं महायशाः ॥ ४४ ॥

ओंसे सुहाते थे। वृष्णि, अंधक और भोजोंसे घेरे पुरुषोत्तम महाभुज केशव रामके साथ उस नगरमें आकर सहस्रों ब्राह्मण और पुरवासियोंसे आदर पूर्वक ग्रहण किये गये; अनन्तर इन्द्रपुरके समान राजभवनमें प्रवेश किया। ३४-३९

राजा युधिष्ठिरने विधि पूर्वक बलदेवजीको स्वागत कर श्रीकृष्णकी सिर सूंघके हाथोंसे गले लगाया। कृष्णने प्रसन्न मनसे विनयपूर्वक उनकी पूजा कर पुरुषश्रेष्ठ भीमको विधिपूर्वक नमस्कार किया। युधिष्ठिरने उन सब वृष्णि और अन्धकोंको यथा नियम आदरसे ग्रहण किया। उन्होंने किसी किसीको गुरुकी भांति प्रणाम किया, किसी किसीसे समवस्थावालोंके सदृश व्यवहार किया और किसी किसीको प्रेमालापसे सम्मानित किया; और किसीने उनको प्रणाम किया। (४०-४३)

अति यशोवन्त श्रीमान् कमलनेत्र कृष्णने विवाहकी रीतिके अनुसार वर और वरकी ओरके लोगोंको अच्छे धन

रथानां काञ्चनाङ्गानां किंकिणीजालमालिनाम्।
चतुर्युजामुपेतानां सूतैः कुशलशिक्षितैः ॥ ४५ ॥
सहस्रं प्रददौ कृष्णो गवामयुतमेव च ।
श्रीमान्माथुरदेश्यानां दोग्ध्रीणां पुण्यवर्चसाम्॥४६॥
वडवानां च शुद्धानां चन्द्रांशुसमवर्चसाम् ।
ददौ जनार्दनः प्रीत्या सहस्रं हेमभूषितम् ॥ ४७ ॥
तथैवाऽश्वतरीणां च दान्तानां वातरंहसाम्।
शतान्यञ्जनकेशीनां श्वेतानां पञ्च पञ्च च ॥ ४८ ॥
स्नापनोत्सादने चैव प्रयुक्तं वयसान्वितम् ।
स्त्रीणां सहस्रं गौरीणां सुवेषाणां सुवर्चसाम्॥ ४९ ॥
सुवर्णशतकण्ठीनामरोमाणां स्वलंकृतम् ।
परिचर्यासु दक्षाणां प्रददौ पुष्करेक्षणः ॥ ५० ॥
पृष्ठ्यानामपि चाश्वानां बाह्लिकानां जनार्दनः।
ददौ शतसहस्राख्यं कन्याधनमनुत्तमम् ॥ ५१ ॥
कृताकृतस्य मुख्यस्य कनकस्याऽग्निवर्चसः।
मनुष्यभारान्दाशार्हो ददौ दश जनार्दनः ॥ ५२ ॥
गजानां तु प्रभिन्नानां त्रिधा प्रस्रवतां मदम्।

दिये और सुभद्राकी ज्ञातियोंके देने योग्य यौतुकके स्वरूपमें धन दिया। उन्होंने पाण्डवोंको सुशिक्षित सारथि समेत चार घोडेके किङ्किणीजाल माला-से सुहावने सहस्र सुनौले रथ, मथुरा खण्डकी तेजस्वी बहुत दूध देने वाली दश सहस्र गौ, चन्द्रमा समान रङ्गवाली विशुद्ध सुवर्णसे सजी सहस्र घोडी, काले केशवाली सुफेद पवन समान तेज-स्विनी अच्छी सिखी सिखायी सहस्र घोडी, स्नानपानोत्सव प्रयोग दक्ष सेवामें तेज युवती गौर रङ्गकी सुवेश पोहनी, रोगोंसे छूटी, सुन्दरी, भली प्रकार बनी-ठनी, गलेमें सोनेके सौ मुहर पहिनी हुई सहस्र दासी, बाह्लिक देशीय सैकडों सहस्रों घोडे, भांति भांतिके मूल्यवान वस्त्र और कम्बल आदि अनेक सामग्री प्रसन्न मन से दे दी, और सुभद्राको मनुष्यके ले जाने योग्य दश मनुष्य भार विशुद्ध और बिन मिलावटी दो प्रकार अग्नि के रंगका सुवर्ण यौतुक में दे दिया। (४४—५२)

हलधर रामने प्रसन्न हो विवाहके विषयमें संबन्धकी बडाई बढानेके लिये

गिरिकूटनिकाशानां समरेष्वनिवर्तिनाम् ॥ ५३ ॥
क्लृप्तानां पटुघण्टानां चारूणां हेममालिनाम् ।
हस्त्यारोहैरुपेतानां सहस्रं साहसप्रियम् ॥ ५४ ॥
रामः पाणिग्रहणिकं ददौ पार्थाय लाङ्गली ।
प्रीयमाणो हलधरः संबन्धं प्रतिमानयन् ॥ ५५ ॥
स महाधनरत्नौघो वस्त्रकम्बलफेनवान् ।
महागजमहाग्राहः पताकाशैवलाकुलः ॥ ५६ ॥
पाण्डुसागरमाविद्धः प्रविवेश महानदः ।
पूर्णमापूरयंस्तेषां द्विषच्छोकावहोऽभवत् ॥ ५७ ॥
प्रतिजग्राह तत्सर्वं धर्मराजो युधिष्ठिरः ।
पूजयामास तांश्चैव वृष्ण्यन्धकमहारथान् ॥ ५८ ॥
ते समेता महात्मानः कुरुवृष्ण्यन्धकोत्तमाः ।
विजह्रुरमरावासे नराः सुकृतिनो यथा ॥ ५९ ॥
तत्र तत्र महानादैरुत्कृष्टतलनादितैः ।
यथायोगं यथाप्रीति विजह्रुः कुरुवृष्णयः ॥ ६० ॥
एवमुत्तमवीर्यास्ते विहृत्य दिवसान्बहून् ।
पूजिताः कुरुभिर्जग्मुः पुनर्द्वारवतीं प्रति ॥ ६१ ॥

नाना मद प्रगट करनेवाले पहाडके समान बडे, साहस प्यारे, युद्धसे मुह न मोडने वाले सुवर्णहारसे सजे, झनकती हुई घण्टालियां लटकाये, बैठनेके हौदे लगाये, अनेक प्रकारके सुन्दर सुन्दर सहस्र हस्ती महावत समेत धनञ्जय को दिये। वस्त्र कम्बलादि रूपी फेन भरे बडे बडे गज रूपी बडे ग्राहोंसे पूर्ण और झण्डेरूपी शैवालोंसे पूरे उस अनंत धनरत्न रूपी जलकी लहरोंके प्रशस्त पाण्डवरूपी सागरके भर जानेपर, वह शत्रुओंको शोकमें डुबाने लगा॥५४-५७

धर्मराज युधिष्ठिरने वह सब लेकर वृष्णि और अंधकोंके महारथीओंका भले प्रकार सत्कार किया। अनंतर पुण्यवंत जन जिस प्रकार देवलोकमें विहार करते हैं, तैसेही महात्मा कुरु, वृष्णि और अंधक वंशी लोग वहां एकत्र होकर आनंद लूटने लगे। वे अपनी अपनी प्रीतिके अनुसार वहां ठौर ठौरमें बडे बडे यानों पर घूम और ताल बजा बजाके नाचने गानेका बडा कोलाहल मचाते हुए यथा योग्य विहार करने लगे। अति वीर्यवंत महारथी अन्धक और वृष्णिलोग

रामं पुरस्कृत्य ययुर्वृष्ण्यन्धकमहारथाः ।
रत्नान्यादाय शुभ्राणि दत्तानि कुरुसत्तमैः ॥ ६२ ॥
वासुदेवस्तु पार्थेन तत्रैव सह भारत ।
उवास नगरे रम्ये शक्रप्रस्थे महात्मना ॥ ६३ ॥
व्यचरद्यमुनातीरे मृगयां स महायशाः ।
मृगान्विध्यन्वराहांश्च रेमे सार्धं किरीटिना ॥ ६४ ॥
ततः सुभद्रा सौभद्रं केशवस्य प्रिया स्वसा ।
जयन्तमिव पौलोमी ख्यातिमन्तमजीजनत् ॥ ६५ ॥
दीर्घबाहुं महोरस्कं वृषभाक्षमरिंदमम् ।
सुभद्रा सुषुवे वीरमभिमन्युं नरर्षभम् ॥ ६६ ॥
अभिश्च मन्युमांश्चैव ततस्तमरिमर्दनम् ।
अभिमन्युमिति प्राहुरार्जुनिं पुरुषर्षभम् ॥ ६७ ॥
स सात्वत्यामतिरथः संबभूव धनंजयात् ।
मखे निर्मथनेनेव शमीगर्भाद्धुताशनः ॥ ६८ ॥
यस्मिञ्जाते महातेजाः कुन्तीपुत्रो युधिष्ठिरः ।
अयुतं गा द्विजातिभ्यः प्रादान्निष्कांश्च भारत ॥ ६९ ॥

उस नगरमें बहुत दिनोंतक आनन्द उडाते रहे। अन्तमें कौरवोंसे पूजे जाय उनके दिये अमल रत्नोंको ले रामको आगे करके द्वारका पुरीमें गये! हे भारत! बडे यशोवन्त महानुभव वासुदेव अर्जुनके साथ उस सुन्दर इन्द्रप्रस्थ नगरहीमें रहे और उनके साथ यमुना तटपर मृग शूकर विद्ध करते हुए आखेटका आनन्द लेने लगे। (५८—६४)

अनन्तर शचीने जिस प्रकार प्रख्यात जयन्तको प्रसव किया था, तैसेही कृष्णकी प्यारी बहिन कल्याणी सुभद्राने दीर्घबाहु चौडी छातीवाले, बैल समान नेत्रवान, नरोंमें श्रेष्ठ, शत्रुमर्दन वीर अभिमन्युको प्रसव किया। वह शत्रुनाशी पुरुषश्रेष्ठ अर्जुन कुमार अभी अर्थात् निर्भयचित्त मन्युयुक्त हुए थे, सो सब लोग उनको अभिमन्यु कहते थे। यज्ञस्थल में मथनद्वारा जिस प्रकार शमीगर्भसे अग्नि उपजता है, वैसेही सात्वतीके गर्भसे धनञ्जयसे उस महारथी अभिमन्युने जन्म लिया था। हे भारत! उस कुमारके जन्म होतेही बडे तेजस्वी कुन्तीपुत्र युधिष्ठिरने ब्राह्मणोंको दश सहस्र गौ और दश सहस्र निष्क दान दिया। चन्द्रमा जिस प्रकार सब प्रजाओंका प्यारा

दयितो वासुदेवस्य बाल्यात्प्रभृति चाऽभवत्।
पितॄणां चैव सर्वेषां प्रजानामिव चन्द्रमाः ॥ ७० ॥
जन्मप्रभृति कृष्णश्च चक्रे तस्य क्रियाः शुभाः।
स चाऽपि ववृधे बालः शुक्लपक्षे यथा शशी॥ ७१ ॥
चतुष्पादं दशविधं धनुर्वेदमरिंदमः।
अर्जुनाद्वेद वेदज्ञः सकलं दिव्यमानुषम् ॥ ७२ ॥
विज्ञानेष्वपि चाऽस्त्राणां सौष्ठवे च महाबलः।
क्रियास्वपि च सर्वासु विशेषानभ्यशिक्षयत्॥ ७३ ॥
आगमे च प्रयोगे च चक्रे तुल्यमिवाऽऽत्मना।
तुतोष पुत्रं सौभद्रं प्रेक्षमाणो धनंजयः ॥ ७४ ॥
सर्वसंहननोपेतं सर्वलक्षणलक्षितम्।
दुर्धर्षं वृषभस्कन्धं व्यात्ताननमिवोरगम् ॥ ७५ ॥
सिंहदर्पं महेष्वासं मत्तमातङ्गविक्रमम्।
मेघदुन्दुभिनिर्घोषं पूर्णचन्द्रनिभाननम् ॥ ७६ ॥
कृष्णस्य सदृशं शौर्ये वीर्ये रूपे तथाऽऽकृतौ।
ददर्श पुत्रं बीभत्सुर्मघवानिव तं यथा ॥ ७७ ॥

है, वैसेही अभिमन्यु बालेपनसे पिता, चचे और वासुदेवके प्यारे बने।(६५-७०)

कृष्णने उनके सब शुभ जात कर्म किये थे। वह असाधारण शुभ तिथिके चन्द्रमाके समान दिन पर दिन बढने लगा। वेदका जानकर शत्रुनाशी अभिमन्युने अर्जुनसे आदान, सन्धान, मोक्षण विनिवर्त्तन, स्थान, मुष्टि प्रयोग, प्रतिकार, मण्डल और भेद इन दशाङ्ग युक्त तथा मन्त्रमुक्त, पाणिमुक्त, मुक्तामुक्त और अमुक्त यह चार पादयुक्त सम्पूर्ण दिव्य और मानुषी वेदोंकी शिक्षा प्राप्त की। महाबली अर्जुन ने उन को अस्त्रविज्ञान, सौष्ठव और उत्सर्पण, प्रसर्पण आदि सब क्रियाओंके विषयमें अच्छी शिक्षा दी; उन्होंने शास्त्रमें और प्रयोगके विषयमें उन को अपने सदृश बनाया और उसे गुणयुक्त परपराभवी सर्व लक्षणोंसे भरे, कठोर, बैलके समान कंधेवाले, बडे मुखवाले सर्प समान, सिंह सदृश दर्पयुक्त, बडे चापधारी उन्मत्त गजकी भांति विक्रमी, बादल और नगाडेके समान गरजने वाले पूर्णचद्रानन और शूरता वीर्य तथा डोलडौलमें कृष्णकी भांति देखकर सतोष माना। देवराज जिस प्रकार अर्जुनको देखते थे अर्जुन उस पुत्रको वैसेही देखते रहे। (७१-७७)

पाञ्चाल्यपि तु पञ्चभ्यः पतिभ्यः शुभलक्षणा।
लेभे पञ्च सुतान्वीराञ्श्रेष्ठान्पञ्चाचलानिव ॥ ७८ ॥
युधिष्ठिरात्प्रतिविन्ध्यं सुतसोमं वृकोदरात् ।
अर्जुनाच्छ्रुतकर्माणं शतानीकं च नाकुलिम्॥ ७९ ॥
सहदेवाच्छ्रुतसेनमेतान्पञ्च महारथान् ।
पाञ्चाली सुषुवे वीरानादित्यानदितिर्यथा ॥ ८० ॥
शास्त्रतः प्रतिविन्ध्यं तमूचुर्विप्रा युधिष्ठिरम् ।
परप्रहरणज्ञाने प्रतिविन्ध्यो भवत्वयम् ॥ ८१ ॥
सुते सोमसहस्रे तु सोमार्कसमतेजसम् ।
सुतसोमं महेष्वासं सुषुवे भीमसेनतः ॥ ८२ ॥
श्रुतं कर्म महत्कृत्वा निवृत्तेन किरीटिना ।
जातः पुत्रस्तथेत्येवं श्रुतकर्मा ततोऽभवत् ॥ ८३ ॥
शतानीकस्य राजर्षेः कौरव्यस्य महात्मनः ।
चक्रे पुत्रं सनामानं नकुलं कीर्तिवर्धनम् ॥ ८४ ॥
ततस्त्वजीजनत्कृष्णा नक्षत्रे वह्निदैवते ।
सहदेवात्सुतं तस्माच्छ्रुतसेनेति तं विदुः ॥ ८५ ॥

शुभलक्षणा पाञ्चालीनेभी पांच पतियोंसे पांच पर्वत समान बडे वीर पांचपुत्र प्राप्त किये । अदितिने जिस प्रकार देवोंको प्रसव किया था, वैसेही पाञ्चालीने युधिष्ठिरसे प्रतिविंध्य, वृकोदरसे सुतसोम, अर्जुनसे श्रुतकर्मा, नकुलसे शतानीक, सहदेवसे श्रुतसेन ये पांच महारथी वीरपुत्र प्रसव किये । ब्राह्मणोंने शास्त्रोंके अनुसार यह जानकर, कि युधिष्ठिरका पुत्र प्रतिविन्ध्य पर्वतकी भांति शत्रुको मारने योग्य होगा, उसका नाम प्रतिविन्ध्य रखा । सहस्र सोमयज्ञ करनेके पीछे भीमसेनसे सोमके उजाले समान तेजस्वी बडे चापधारी सुतके उपजनेसे उसका नाम सुतसोम हुआ । किरीटीके अनेक श्रुतकर्म कर लौटने पर उनका वह पुत्र उपजा था, सो उसका नाम श्रुतकर्मा हुआ ! कुरुवंशकी कीर्ति बढानेवाले शतानीक नाम एक राजर्षि थे, नकुलने उस राजाके नामके अनुसार अपने पुत्रका नाम शतानीक रखा था और सहदेवसे द्रौपदीके जिस पुत्रने जन्म लिया था, वह कृत्तिका नक्षत्रमें हुआ था, सेनापति कार्तिकेय कृत्तिकाकी सन्तान थे, सो सहदेवके पुत्रका नाम श्रुतसेन हुआ । (७८—८५)

एकवर्षान्तरास्त्वेते द्रौपदेया यशस्विनः ।
अन्वजायन्त राजेन्द्र परस्परहितैषिणः ॥ ८६ ॥
जातकर्माण्यानुपूर्व्याच्चूडोपनयनानि च ।
चकार विधिवद्धौम्यस्तेषां भरतसत्तम ॥ ८७ ॥
कृत्वा च वेदाध्ययनं ततः सुचरितव्रताः ।
जगृहुः सर्वमिष्वस्त्रमर्जुनाद्दिव्यमानुषम् ॥ ८८ ॥
दिव्यगर्भोपमैः पुत्रैर्व्यूढोरस्कैर्महारथैः ।
अन्विता राजशार्दूल पाण्डवा मुदमाप्नुवन् ॥ ८९ ॥ [८२६२]

इति श्रीमहाभारते श० सं० हरणाहरणपर्वणि त्रयोविंशत्यधिकद्विशततमोध्यायः ॥ २२३ ॥
समाप्तं च हरणाहरणपर्व ॥ अथ खाण्डवदाहपर्व ।

वैशम्पायन उवाच—इन्द्रप्रस्थे वसन्तस्ते जघ्नुरन्यान्नराधिपान् ।
शासनाद्धृतराष्ट्रस्य राज्ञः शान्तनवस्य च ॥ १ ॥
आश्रित्य धर्मराजानं सर्वलोकोऽवसत्सुखम् ।
पुण्यलक्षणकर्माणं स्वदेहमिव देहिनः ॥ २ ॥
स समं धर्मकामार्थान्सिषेवे भरतर्षभ ।
त्रीनिवात्मसमान्बन्धून्नीतिमानिव मानयन् ॥ ३ ॥

हे महाराज ! द्रौपदीके कुमारोंमें हरेक ने एक दूसरेके वर्ष वर्ष भर पीछे जन्म लिया था, वे सब एक दूसरेके हित चाहने- वाले और यशोवन्त हुए थे । हे भरत- वंश श्रेष्ठ ! पुरोहित धौम्यने विधिपूर्वक उनका जातकर्म, चूडा, उपनयन, संस्कार कर्म एकके बाद दूसरा, उसी रीतिसे सब कराया । अनन्तर सुचरित्र बालकोंने वेद पढके अर्जुनसे सब दिव्य और मानुषी अस्त्रोंकी शिक्षा ली । हे राज- शार्दूल ! पाण्डवलोग देवकुमारोंके समान उन सब चौडी छातीवाले कुमारोंको लाभ कर प्रसन्न हुए । (८६-८९) [८२६२]

दोसौतेईस अध्याय और हरणाहरणपर्व समाप्त ।

दोसौ चौबीस अध्याय और खाण्डवदाहपर्व ।

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि हे भारतश्रेष्ठ! पाण्डवगण राजा धृतराष्ट्र और शान्तनु- नन्दन भीष्मकी आज्ञासे इन्द्रप्रस्थमें वस कर दूसरे राजाओंको वशमें लाने लगे। आत्मा जिस प्रकार पुण्यलक्षणयुक्त शरीर को अवलम्ब कर सुखसे विराजती है, वैसे ही सब प्रजा धर्मराज युधिष्ठिरको आश्रय कर सुखसे रहने लगी । नीति- मान युधिष्ठिर धर्म, अर्थ, काम इन तीनों वर्गों की, अपने बन्धुओंकी भांति इस प्रकार सेवा करने लगे, कि उनमें एक

तेषां समविभक्तानां क्षितौ देहवतामिव ।
बभौ धर्मार्थकामानां चतुर्थ इव पार्थिवः ॥ ४ ॥
अध्येतारं परं वेदान्प्रयोक्तारं महाध्वरे ।
रक्षितारं शुभाँल्लोकाँल्लेभिरे तं जनाधिपम् ॥ ५ ॥
अधिष्ठानवती लक्ष्मीः परायणवती मतिः ।
वर्धमानोऽखिलो धर्मस्तेनाऽऽसीत्पृथिवीक्षिताम् ॥ ६ ॥
भ्रातृभिः सहितो राजा चतुर्भिरधिकं बभौ ।
प्रयुज्यमानैर्विततो वेदैरिव महाध्वरः ॥ ७ ॥
तं तु धौम्यादयो विप्राः परिवार्योपतस्थिरे ।
बृहस्पतिसमा मुख्याः प्रजापतिमिवाऽमराः ॥ ८ ॥
धर्मराजे ह्यतिप्रीत्या पूर्णचन्द्र इवाऽमले ।
प्रजानां रेमिरे तुल्यं नेत्राणि हृदयानि च ॥ ९ ॥
न तु केवलदैवेन प्रजा भावेन रेमिरे ।
यद्बभूव मनःकान्तं कर्मणा स चकार तत् ॥ १० ॥
न ह्ययुक्तं न चाऽसत्यं नाऽसह्यं न च वाऽप्रियम् ।

दूसरेका बिगाड न उभडने पावे। धर्म अर्थ, काम, मानो यह देह धरके धरती पर उतर आये थे; राजा युधिष्ठिर मानो उनमें एक चौथे बन कर शोभा पाने लगे। प्रजाओंने उन राजाको अच्छे वेद-पाठी बडे यज्ञकारी और सम्पूर्ण पुण्यवन्त प्राप्त किया था। (१—५)

उनके साम्राज्यके दिनोंमें राजाओंकी लक्ष्मी न टलती, चित्त परब्रह्मकी ओर झुका और धर्म बहुतही वृद्धि पर था। जिस प्रकार प्रयुज्यमान चतुर्वेदसे फैला हुआ बडा यज्ञ सुशोभित होता है, वैसेही धर्मराज युधिष्ठिर चार भाइयोंसे और भी अधिक सुहाने लगे। जिस प्रकार देवगण प्रजापतिजीको घेरकर उपासना किया करते हैं, वैसेही धौम्य आदि बृहस्पति सदृश प्रधान प्रधान ब्राह्मणगण उनको चारों ओर घेरकर उपासना करते थे। पूर्णचन्द्रमा समान निर्मल धर्मराज युधिष्ठिरकी ओर प्रजाओं-के नयन और मन दोनों एक ही रूप झुक पडे थे। यही नहीं, कि प्रजा उनको राजाही जान कर प्रेमी बनी थी, वरण वह ऐसेही कार्य में दत्तचित्त होते थे, कि जिनसे प्रजाका सन्तोष मिले। (६—१०)

वह बुद्धिमान बडे पाण्डव मीठी बोली बोलते थे, उनका वचन कभी

भाषितं चारुभाषस्य जज्ञे पार्थस्य धीमतः ॥ ११ ॥
स हि सर्वस्य लोकस्य हितमात्मन एव च ।
चिकीर्षन्सुमहातेजा रेमे भरतसत्तम ॥ १२ ॥
तथा तु मुदिताः सर्वे पाण्डवा विगतज्वराः ।
अवसन्पृथिवीपालास्तापयन्तः स्वतेजसा ॥ १३ ॥
ततः कतिपयाहस्य बीभत्सुः कृष्णमब्रवीत् ।
उष्णानि कृष्ण वर्तन्ते गच्छावो यमुनां प्रति ॥ १४ ॥
सुहृज्जनवृतौ तत्र विहृत्य मधुसूदन ।
सायाह्ने पुनरेष्यावो रोचतां ते जनार्दन ॥ १५ ॥
वासुदेव उवाच- कुन्तीमातर्ममाऽप्येतद्रोचते यद्वयं जले ।
सुहृज्जनवृताः पार्थ विहरेम यथासुखम् ॥ १६ ॥
वैशम्पायन उवाच- आमन्त्र्य तौ धर्मराजमनुज्ञाप्य च भारत ।
जग्मतुः पार्थगोविन्दौ सुहृज्जनवृतौ ततः ॥ १७ ॥
विहारदेशं संप्राप्य नानाद्रुमवदुत्तमम् ।
गृहैरुच्चावचैर्युक्तं पुरंदरपुरोपमम् ॥ १८ ॥
भक्ष्यैर्भोज्यैश्च पेयैश्च रसवद्भिर्महाधनैः ।
माल्यैश्च विविधैर्गन्धैर्युक्तं वार्ष्णेयपार्थयोः ॥ १९ ॥

झूठा, युक्तिके विरुद्ध असह्य वा अप्रिय नहीं होता था। हे भरत श्रेष्ठ! वह बडे तेजस्वी पुरुष अपने और दूसरे सब जनोंके हित साधनमें सदा तुल्य भावसे रह कर परम सुखसे काल गवाने लगे। उनके भाईलोग भी अपने अपने तेज बलसे भूपालोंको तपा कर बिना कण्टक प्रमुदित चित्तसे वसने लगे। (११--१३)

कुछ दिन बीते, अर्जुन श्रीकृष्णसे बोले, कि कृष्ण! अब ग्रीष्मकाल आया, यदि तुम चाहो तो चलो हम यमुनाजी के किनारे जांय; हे जनार्दन! हम मित्रोंसे जूट बांधके वहां विहार कर सन्ध्याको फिर लौटेंगे। श्रीकृष्णजी महाराज बोले, कि कुन्तीपुत्र! मेरी भी इच्छा हो रही है, कि हम मित्रोंके संग सुख चैनसे यमुना किनारे विहार करें। (१४--१६)

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि हे भारत! अनन्तर अर्जुन और कृष्ण आपसमें ऐसी बातें कर धर्मराजकी आज्ञा ले मित्रोंके साथ निकले। वे अनेक पेडोंसे घिरी, इन्द्रपुरीकी भांति नाना घरोंसे सजी, स्वादिष्ट भक्ष्य, भोज्य और पानकी सामग्रीसे भरी, महामूल्य भांति भांतिकी

विवेशाऽन्तःपुरं तूर्णं रत्नैरुच्चावचैः शुभैः ।
यथोपजोषं सर्वश्च जनश्चिक्रीड भारत ॥ २० ॥
स्त्रियश्च विपुलश्रोण्यश्चारुपीनपयोधराः ।
मदस्खलितगामिन्यश्चिक्रीडुर्वामलोचनाः ॥ २१ ॥
वने काश्चिज्जले काश्चित्काश्चिद्वेश्मसु चाङ्गनाः ।
यथादेशं यथाप्रीति चिक्रीडुः पार्थकृष्णयोः॥२२॥
द्रौपदी च सुभद्रा च वासांस्याभरणानि च ।
प्रायच्छतां महाराज स्त्रीणां ते स्म मदोत्कटे॥२३॥
काश्चित्प्रहृष्टा ननृतुश्चुक्रुशुश्च तथा पराः ।
जहसुश्च परा नार्यः पपुश्चान्या वरासवम् ॥ २४ ॥
रुरुधुश्चाऽपरास्तत्र प्रजघ्नुश्च परस्परम् ।
मन्त्रयामासुरन्याश्च रहस्यानि परस्परम् ॥ २५ ॥
वेणुवीणामृदङ्गानां मनोज्ञानां च सर्वशः ।
शब्देन पूर्यते ह स्म तद्वनं सुमहर्द्धिमत ॥ २६ ॥
तस्मिंस्तदा वर्तमाने कुरुदाशार्हनन्दनौ ।
समीपं जग्मतुः कंचिदुद्देशं सुमनोरमम् ॥ २७ ॥

सुगन्धी मालाओंसे सुहावनी, अच्छी विहारकी ठौरमें जा पहुंचे और नाना प्रकारके रत्नोंसे सुशोभित पुरीमें बिना विलम्ब जा घुसे। साथी लोग सुखसे खेलने कूदने लगे ! स्थूलकुचवाली सुन्दर नितंबिनी,मतवाली चाल चलती युवती श्रीकृष्ण और अर्जुनकी आज्ञासे खेलमें प्रवृत्त हुईं, कोई वनमें, कोई जलमें, कोई घरमें प्रीतिके साथ विहार करने लगीं ! (१७-२२)

महाराज ! तब द्रौपदी और सुभद्रा मदसे मतवाली बन उन सब स्त्रियोंको वस्त्र और गहने देने लगीं। कोई कोई नारी आनन्दित चित्तसे नाचने लगीं। कोई कोई गाने लगीं, कोई कोई रमणी हंसी ठट्टेमें मग्न हुई, कोई कोई अच्छा आसव पीने लगीं, कोई कोई एक दूसरेको मारने, पाटने तथा रोने लगीं; और कोई कोई रहस्य युक्ति करने लगीं, वास्तवमें जिस की जैसी इच्छा थी, वह उसीको करनेमें प्रवृत्त हुई। तब वह वन बंसी, वीणा, मृदङ्ग, आदिके मनभावन बाजेसे भर कर बहुत सुहावना बन गया। (२३-२६)

हे महाराज ! इस प्रकारसे बडा भारी उत्सव उपस्थित हो जाने पर महात्मा शत्रुपुरके जयकारी धनञ्जय और श्रीकृष्ण

तत्र गत्वा महात्मानौ कृष्णौ परपुरंजयौ ।
महार्हासनयो राजंस्ततस्तौ सन्निषीदतुः ॥ २८ ॥
तत्र पूर्वव्यतीतानि विक्रान्तान्यतराणि च ।
बहूनि कथयित्वा तौ रेमाते पार्थमाधवौ ॥ २९ ॥
तत्रोपविष्टौ मुदितौ नाकपृष्ठेऽश्विनाविव ।
अभ्यागच्छत्तदा विप्रो वासुदेवधनञ्जयौ ॥ ३० ॥
बृहच्छालप्रतीकाशः प्रतप्तकनकप्रभः ।
हरिपिंगोज्वलश्मश्रुः प्रमाणायामतः समः ॥ ३१ ॥
तरुणादित्यसंकाशश्चीरवासा जटाधरः ।
पद्मपत्राननः पिंगस्तेजसा प्रज्वलन्निव ॥ ३२ ॥
उपसृष्टं तु तं कृष्णो भ्राजमानं द्विजोत्तमम् ।
अर्जुनो वासुदेवश्च तूर्णमुत्पत्य तस्थतुः ॥ ३३ ॥ [८२९५]

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यामादिपर्वणि खाण्डवदाहपर्वणि
ब्राह्मणरूप्यनलागमे चतुर्विंशत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २२४ ॥

वैशम्पायन उवाच— सोऽब्रवीदर्जुनं चैव वासुदेवं च सात्वतम् ।
लोकप्रवीरौ तिष्ठन्तौ खाण्डवस्य समीपतः ॥ १ ॥
ब्राह्मणो बहुभोक्ताऽस्मि भुञ्जेऽपरिमितं सदा ।

निकटकी एक सुन्दर ठौरमें जाय बडे नामी आसनों पर बैठे। वे उस स्थानमें अतीत विक्रमके सम्बन्धमें और दूसरी भांति भांतिकी कथा कहते सुनते हुए खेलने लगे। जिस प्रकार देवलोकमें दोनों अश्विनीकुमार एकत्र विराजते हैं; तैसेही वासुदेव और धनञ्जय प्रमुदित मनसे उस स्थानमें बैठे थे, कि ऐसे समय में बडे सालके वृक्ष समान लम्बे, तपे सुवर्ण सदृश उजालावाले, हरी और पिङ्गल रङ्गकी चमकीली दाढीसे शोभित, लम्बाई और चौडाईमें उपयुक्त प्रमाण, सम्पन्न बालसूर्यकी भांति, पद्मपत्र मुखयुक्त, तेजसे प्रदीप्त पिङ्गल वर्ण, जटाधारी, चीर पहिने हुए एक ब्राह्मण उनके पास आया। वे लोकोंमें न मिलने योग्य, तेजसे प्रकाशमान द्विजोत्तमको निकट देखतेही आसन छोड के खडे हुए। (२७—३३) [८२९५]

आदि पर्वमें दोसौ चौबीस अध्याय समाप्त।

आदिपर्वमें दो सौ पच्चीस अध्याय।

श्री वैशम्पायनजी बोले, कि अनन्तर ब्राह्मणने श्रीकृष्णचन्द्रजी महाराज और अर्जुनसे कहा, कि तुम दोनो सब लोकों

भिक्षे वार्ष्णेयपार्थौ वामेकां तृप्तिं प्रयच्छताम्॥ २ ॥
एवमुक्तौ तमब्रूतां ततस्तौ कृष्णपाण्डवौ ।
केनाऽन्नेन भवांस्तृप्येत्तस्याऽन्नस्य यतावहे ॥ ३ ॥
एवमुक्तः स भगवानब्रवीत्तावुभौ ततः ।
भाषमाणौ तदा वीरौ किमन्नं क्रियतामिति॥ ४ ॥
ब्राह्मण उवाच— नाऽहमन्नं बुभुक्षे वै पावकं मां निबोधतम् ।
यदन्नमनुरूपं मे तद्युवां संप्रयच्छतम् ॥ ५ ॥
इदमिन्द्रः सदा दावं खाण्डवं परिरक्षति ।
न च शक्नोम्यहं दग्धुं रक्ष्यमाणं महात्मना॥ ६ ॥
वसत्यत्र सखा तस्य तक्षकः पन्नगः सदा ।
सगणस्तत्कृते दावं परिरक्षति वज्रभृत् ॥ ७ ॥
तत्र भूतान्यनेकानि रक्ष्यन्तेऽस्य प्रसङ्गतः।
तं दिधक्षुर्न शक्नोमि दग्धुं शक्रस्य तेजसा॥ ८ ॥
स मां प्रज्वलितं दृष्ट्वा मेघाम्भोभिः प्रवर्षति।
ततो दग्धुं न शक्नोमि दिधक्षुर्दावमीप्सितम्॥ ९ ॥

में बडे वीर हो, इस खाण्डवप्रस्थके निकट विराजते हो; मैं बहुत खानेवाला ब्राह्मण हूं, सदा अपरिमित भोजन खा जाता हूं। अब तुमसे भिक्षा करता हूं, कि तुम भोजन देकर मुझको प्रसन्न करो। वीर अर्जुन और कृष्ण यह बात सुनके उनसे बोले, कि कहिये, कैसा अन्न भोजन करनेसे आपकी तृप्ति होगी, हम उसका प्रयत्न करेंगे। वे कैसा अन्न बनवायेंगे, इस विषयमें आपसमें बात चीत कर रहे थे, कि ऐसे अवसरमें उस ब्राह्मणरूपी भगवानने उत्तर दिया, कि मैं वैसा अन्न खाया नहीं चाहता हूं। मैं अग्नि हूं, जो अन्न मेरे योग्य हो वही मुझको दो। (१-५)

देवराज इन्द्र सदा खाण्डव नामक बडे बनकी रखवारी करते हैं, सो मैं उनको जला नहीं सकता हूं। इन्द्रका सखा तक्षक नाम सर्प साथियों समेत सदा इस वनमें वसता है, इसी लिये वह वज्रधारी सर्व प्रयत्नोंसे इसकी रक्षा करते हैं, साथ साथ अनेक जीव इस वनमें रहते हैं, उनको जलाने चाहने परभी मैं देवराजके तेजसे मनोरथको सफल कर नहीं सकता हूं। वह मुझको जलते देखनेसे जलधरकी जलधारासे बुझा देते हैं, सो मनमें खाण्डवको जलानेकी बडी चाह रखने पर जला नहीं सकता

स युवाभ्यां सहायाभ्यामस्त्रविद्भ्यां समागतः ।
दहेयं खाण्डवं दावमेतदन्नं वृतं मया ॥ १० ॥
युवां ह्युदकधारास्ता भूतानि च समन्ततः ।
उत्तमास्त्रविदौ सम्यक्सर्वतो वारयिष्यथः ॥ ११ ॥

जनमेजय उवाच- किमर्थं भगवानग्निः खाण्डवं दग्धुमिच्छति ।
रक्ष्यमाणं महेन्द्रेण नानासत्त्वसमायुतम् ॥ १२ ॥
न ह्येतत्कारणं ब्रह्मन्नल्पं संप्रतिभाति मे ।
यद्ददाह सुसंक्रुद्धः खाण्डवं हव्यवाहनः ॥ १३ ॥
एतद्विस्तरशो ब्रह्मञ्श्रोतुमिच्छामि तत्त्वतः ।
खाण्डवस्य पुरा दाहो यथा समभवन्मुने ॥ १४ ॥

वैशम्पायन उवाच- शृणु मे ब्रुवतो राजन्सर्वमेतद्यथातथम् ।
यन्निमित्तं ददाहाऽग्निः खाण्डवं पृथिवीपते ॥ १५ ॥
हन्त ते कथयिष्यामि पौराणीमृषिसंस्तुताम् ।
कथामिमां नरश्रेष्ठ खाण्डवस्य विनाशिनीम् ॥ १६ ॥
पौराणः श्रूयते राजन्राजा हरिहयोपमः ।
श्वेतकिर्नाम विख्यातो बलविक्रमसंयुतः ॥ १७ ॥

हूं । तुम दोनों अस्त्र-विद्यामें पण्डित हो, तुम मेरी सहायता करो, तो मैं इस खाण्डववनको जला सकता हूं; तभी मेरा अच्छा भोजन होगा, तुमसे मैं यही अन्न मांगता हूं । खाण्डवदाहके कालमें जो सब जीव इधर उधर भागने पर होंगे, उनको और जलधरकी जलधाराओंको तुम अस्त्रविद्याके बलसे सब प्रकार रोकना । (६-११)

श्रीजनमेजयजी बोले, कि ब्रह्मन् ! भगवान अग्निने क्यों देवराजसे रक्षित अनेक जीवोंसे पूरित खाण्डव वनको जलाना चाहा था ? मुझको जान पडता है, कि उनके रिसाकर खाण्डवके जलानेको चाहनेका कोई विशेष कारण होगा। हे ब्रह्मन् ! मैं इसका सत्यतत्त्व जानना चाहता हूं; सो यह कहो, कि क्यों वह खाण्डवदाह हुआ था । (१२-१४)

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि हे नरनाथ ! खाण्डवदाहके विषयमें ऋषिकी स्वीकृत पौराणिक कथा आपसे कहता हूं, सुनिये। महाराज ! पुराणोंमें सुना है, कि पूर्वकाल में बल विक्रमयुक्त महेन्द्र समान श्वेतकि नामक प्रख्यात एक भूप थे। उनके सदृश धीमान, दाता और यज्ञशाली कोई दूसरा नहीं था। उन्होंने बहुत

यज्वा दानपतिर्धीमान्यथा नान्योऽस्ति कश्चन।
ईजे च स महायज्ञैः क्रतुभिश्चाऽऽप्तदक्षिणैः॥ १८॥
तस्य नान्याऽभवद् बुद्धिर्दिवसे दिवसे नृप।
सत्रे क्रियासमारम्भे दानेषु विविधेषु च ॥ १९॥
ऋत्विग्भिः सहितो धीमानेवमीजे स भूमिपः।
ततस्तु ऋत्विजश्चास्य धूमव्याकुललोचनाः॥ २०॥
कालेन महता खिन्नास्तत्यजुस्तं नराधिपम्।
ततः प्रचोदयामास ऋत्विजस्तान्महीपतिः॥ २१॥
चक्षुर्विकलतां प्राप्ता न प्रपेदुश्च ते क्रतुम्।
ततस्तेषामनुमते तद्विप्रैस्तु नराधिपः ॥ २२॥
सत्रं समापयामास ऋत्विग्भिरपरैः सह।
तस्यैवं वर्तमानस्य कदाचित्कालपर्यये ॥ २३॥
सत्रमाहर्तुकामस्य संवत्सरशतं किल।
ऋत्विजो नाऽभ्यपद्यन्त समाहर्तुं महात्मनः॥ २४॥
स च राजाऽकरोद्यत्नं महान्तं ससुहृज्जनः।
प्रणिपातेन सान्त्वेन दानेन च महायशाः॥ २५॥

दक्षिणा दे दे कर ज्योतिष्टोम आदि क्रतु और देवयज्ञ आदि पांच महायज्ञ किये थे। (१५—१८)

हे महाराज! उनकी बुद्धि सदा केवल क्रियारम्भ, यज्ञ और नाना दान विना किसी अन्य कार्यमें बुझी नहीं रहती थी। बुद्धिमान पृथ्वीपतिके ऋत्विजोंके साथ बहुत दिनों तक यज्ञ करने पर ऋत्विजों ने धुएंसे घबराकर और उदास होके उन नरेशको छोड दिया। भूपालने बार बार समझाय बुझाय उनको बुलाया, पर उनकी आखें धुंधली हो जानेसे उन्होंने फिर उस यज्ञमें आना नहीं चाहा। अनन्तर भूपालसे उन सब पुरोहितोंकी आज्ञासे दूसरे पुरोहित लाकर उस आरंभ किये हुए यज्ञको पूरा किया। (१९--२३)

कुछकाल बीते महीपालने एक समय सौ वर्षोंमें पूरा होनेवाला यज्ञ करना चाहा; पर उनके पुरोहितोंने उसको पूरा करना स्वीकार नहीं किया। बडे यशोवन्त भूप आलस्य तज मित्रोंके साथ अतियत्नसे शिरनाय गिडगिडाय समझाय बुझाय दान दे पुरोहितोंको हाथ जोडने लगे। पर अति तेजस्वी पुरोहितोंने किसी प्रकार उनका मनोरथ सिद्ध नहीं किया। तब राजर्षि रिसा कर उन आश्रमोंमें टिके

ऋत्विजोऽनुनयामास भूयो भूयस्त्वतान्द्रितः ।
ते चास्य तमभिप्रायं न चक्रुरमितौजसः ॥ २६ ॥
स चाऽऽश्रमस्थान्राजर्षिस्तानुवाच रुषान्वितः ।
यद्यहं पतितो विप्राः शुश्रूषायां न च स्थितः ॥ २७ ॥
आशु त्याज्योऽस्मि युष्माभिर्ब्राह्मणैश्च जुगुप्सितः ।
तन्नाऽर्हथ क्रतुश्रद्धां व्याघातयितुमद्य ताम् ॥२८॥
अस्थाने वा परित्यागं कर्तुं मे द्विजसत्तमाः ।
प्रपन्न एव वो विप्राः प्रसादं कर्तुमर्हथ ॥ २९ ॥
अथवाऽहं परित्यक्तो भवद्भिर्द्वेषकारणात् ।
ऋत्विजोऽन्यान्गमिष्यामि याजनार्थं द्विजोत्तमाः ३०
सान्त्वदानादिभिर्वाक्यैस्तत्त्वतः कार्यवत्तया ।
प्रसादयित्वा वक्ष्यामि यन्नः कार्यं द्विजोत्तमाः॥३१॥
एतावदुक्त्वा वचनं विरराम स पार्थिवः ।
यदा न शेकू राजानं याजनार्थं परंतप ॥ ३२ ॥
ततस्ते याजकाः क्रुद्धास्तमूचुर्नृपसत्तमम् ।
तव कर्माण्यजस्रं वै वर्तन्ते पार्थिवोत्तम ॥ ३३ ॥

विप्रोंसे कहने लगे, कि ब्राह्मणो ! यदि मैं पतित हूं और सदा आपकी सेवामें दत्त चित्त न हूं, तो मैं ब्राह्मणोंसे निन्दित हूंगा और आप उसी क्षण मुझको त्याग दे सकते हैं; पर जब मैं न तो पतित और आप पर अप्रसन्न चित्त हूं, तब अनुचित रीतिसे मुझको त्यागना वा जिस क्रतुश्रद्धाको करनेमें मैं उद्यत हूं उनमें बाधा देना आपके योग्य नहीं है। मैं आपकी शरण लेता हूं, सो आप प्रसन्न होवें। (२३—२९)

हे द्विजवरगण ! यदि विद्वेषवश मुझको त्याग देवें, तो मुझको याज्य कार्यके लिये अन्य पुरोहितोंके निकट जाना पडेगा और अपना कार्य पूरा करनेके लिये समझाय बुझाय दान दे उनको प्रसन्नकर अपना काम उनको सच सच जताके अभिलाषा सिद्ध कर लूंगा। राजा यह वचन कह कर चुप हो रहे। (३०—३१)

अनन्तर पुरोहित लोग यह तो जानतेही थे, कि स्वयं उन नृपवरका याजन कार्य नहीं कर सकेंगे, सो क्रोध कर बोले, कि हे महाराज ! सदा आपके महान कर्म होते हैं, हम सदा उन कार्यों को कर कर थक गये हैं, तुमभी बुद्धिकी

ततो वयं परिश्रान्ताः सततं कर्मवाहिनः ।
अस्मादस्मात्परिश्रान्तान्स त्वं नस्त्यक्तुमर्हसि॥ ३४ ॥
बुद्धिमोहं समास्थाय त्वरासंभावितोऽनघ ।
गच्छ रुद्रसकाशं त्वं स हि त्वां याजयिष्यति ३५॥
साधिक्षेपं वचः श्रुत्वा संक्रुद्धः श्वेतकिर्नृपः ।
कैलासं पर्वतं गत्वा तप उग्रं समास्थितः ॥ ३६ ॥
आराधयन्महादेवं नियतः संशितव्रतः ।
उपवासपरो राजन्दीर्घकालमतिष्ठत ॥ ३७ ॥
कदाचिद् द्वादशे काले कदाचिदपि षोडशे ।
आहारमकरोद्राजा मूलानि च फलानि च ॥ ३८ ॥
ऊर्ध्वबाहुस्त्वनिमिषस्तिष्ठन्स्थाणुरिवाऽचलः ।
षण्मासानभवद्राजा श्वेतकिः सुसमाहितः॥ ३९ ॥
तं तथा नृपशार्दूलं तप्यमानं महत्तपः ।
शंकरः परमप्रीत्या दर्शयामास भारत ॥ ४० ॥
उवाच चैनं भगवान्स्निग्धगम्भीरया गिरा ।
प्रीतोऽस्मि नरशार्दूल तपसा ते परंतप ॥ ४१ ॥
वरं वृणीष्व भद्रं ते यं त्वमिच्छसि पार्थिव ।
एतच्छ्रुत्वा तु वचनं रुद्रस्याऽमिततेजसः ॥ ४२ ॥

गडबडीसे शीघ्रता चाहते हो, सो इन थके मादे पुरोहितोंको त्याग कर तुमको अन्य पुरोहितोंका आसरा ढूंढना चाहिये; तुम रुद्रके यहां जाओ, वही तुम्हारे याजन कार्य करनेके समर्थ होंगे। भूप श्वेतकि उनका यह लाञ्छन वचन सुनकर क्रोधके वशमें होगये, अनन्तर कैलासपर्वत पर जाके कठोर तपस्या करने लगे। (३२-३६)

हे महाराज! उन्होंने वहां नियमयुक्त व्रतशील और उपासना में नियुक्त होके बहुत दिनोंतक महादेवजीकी आराधना की और कुछकाल कभी बारहवे मुहूर्त, कभी सोलहवे मुहूर्त पर फलमात्र खाते थे। उन्होंने छःमास भले प्रकार समाहित, ऊर्ध्वबाहु और निमेष वर्जित होके अचल जडवत काटे। हे भारत! भगवान शङ्कर उस प्रकार कठोर तपस्या करते हुए उन नृपशार्दूलकी तपस्यासे बडे प्रसन्न हो उनको दर्शन देकर बोले, कि हे नरवर ! मैं तुम्हारी तपस्या देखकर बडा प्रसन्न हूं, तुम्हारा मंगल होगा, तुम मनमाना वर मांगो। ३७-४२

प्रणिपत्य महात्मानं राजर्षिः प्रत्यभाषत ।
यदि मे भगवान्प्रीतः सर्वलोकनमस्कृतः ॥ ४३ ॥
स्वयं मां देवदेवेश याजयस्व सुरेश्वर ।
एतच्छ्रुत्वा तु वचनं राज्ञा तेन प्रभाषितम् ॥ ४४ ॥
उवाच भगवान्प्रीतः स्मितपूर्वमिदं वचः ।
नाऽस्माकमेतद्विषये वर्तते याजनं प्रति ॥ ४५ ॥
त्वया च सुमहत्तप्तं तपो राजन्वरार्थिना ।
याजयिष्यामि राजंस्त्वां समयेन परंतप ॥ ४६ ॥

रुद्र उवाच—

समा द्वादश राजेन्द्र ब्रह्मचारी समाहितः ।
सततं त्वाज्यधाराभिर्यदि तर्पयसेऽनलम् ॥ ४७ ॥
कामं प्रार्थयसे यं त्वं मत्तः प्राप्स्यसि तं नृप ।
एवमुक्तस्तु रुद्रेण श्वेतकिर्मनुजाधिपः ॥ ४८ ॥
तथा चकार तत्सर्वं यथोक्तं शूलपाणिना ।
पूर्णे तु द्वादशे वर्षे पुनरायान्महेश्वरः ॥ ४९ ॥
दृष्ट्वैव च स राजानं शंकरो लोकभावनः ।
उवाच परमप्रीतः श्वेतकिं नृपसत्तमम् ॥ ५० ॥
तोषितोऽहं नृपश्रेष्ठ त्वयेह स्वेन कर्मणा ।

राजर्षि श्वेतकि अति तेजस्वी महात्मा महादेवजीकी यह बात सुन शिर नाय बोले, कि हे सुरेश्वर ! हे देवनाथ ! सर्व लोकोंके प्रणाम योग्य भगवान् ! आप यदि मुझपर प्रसन्न हुए हों; तो आप स्वयं मेरा याजन कार्य करें । भगवन् रुद्र राजाका यह वचन सुन प्रसन्न हो, लाजभरे मुहसे बोले, कि महाराज ! इस याजन कार्य करनेका हम लोगोंको अधिकार नहीं है;पर तुमने याजन-रूपी वर मांगनेके लिये कठोर तपस्या की है, सो हे शत्रुनाशी नृप ! मैं इस नियमसे तुम्हारा याजन कार्य कर सकता हूं, कि यदि तुम बारह वर्ष ब्रह्मचारी और भले प्रकार समाहित सदा बिना रोक टोक आज्यकी धारासे अग्निको तपा सको, तो जो प्रार्थना करते हो वह मुझसे प्राप्त करोगे । (४२–४८)

पृथ्वीनाथ श्वेतकि शूलधर रुद्रकी ऐसी आज्ञा सुनकर उनका कहा सब काम करने लगे । जब बारह वर्ष बीते, तब वह फिर लोकभावन भगवान् भूतनाथ के निकट जा पहुंचे । शङ्कर उनको देख करकेही बडे प्रसन्न हो बोले, नरनाथ !

याजनं ब्राह्मणानां तु विधिदृष्टं परंतप ॥ ५१ ॥
अतोऽहं त्वां स्वयं नाऽद्य याजयामि परंतप ।
ममांऽशस्तु क्षितितले महाभागो द्विजोत्तमः॥ ५२ ॥
दुर्वासा इति विख्यातः स हि त्वां याजयिष्यति ।
मन्नियोगान्महातेजाः संभाराः संभ्रियन्तु ते ॥ ५३ ॥
एतच्छ्रुत्वा तु वचनं रुद्रेण समुदाहृतम् ।
स्वपुरं पुनरागम्य संभारान्पुनरार्जयत् ॥ ५४ ॥
ततः संभृतसंभारो भूयो रुद्रमुपागमत् ।
संभृता मम संभाराः सर्वोपकरणानि च ॥ ५५ ॥
त्वत्प्रसादान्महादेव श्वो मे दीक्षा भवेदिति ।
एतच्छ्रुत्वा तु वचनं तस्य राज्ञो महात्मनः ॥ ५६ ॥
दुर्वाससं समाहूय रुद्रो वचनमब्रवीत् ।
एष राजा महाभागः श्वेतकिर्द्विजसत्तम ॥ ५७ ॥
एनं याजय विप्रेन्द्र मन्नियोगेन भूमिपम् ।
बाढमित्येव वचनं रुद्रं त्वृषिरुवाच ह ॥ ५८ ॥
ततः सत्रं समभवत्तस्य राज्ञो महात्मनः ।
यथाविधि यथाकालं यथोक्तं बहुदक्षिणम् ॥ ५९ ॥

मैं तुम्हारे कार्यसे बहुत सन्तुष्ट हुआ हूं, पर हे शत्रुदमन ! याजन कार्य करना ब्राह्मणों ही के लिये विधिबद्ध है, सो मैं स्वयं इस समय तुम्हारा याजन करनेमें प्रवृत्त नहीं हूंगा। धरती पर दुर्वासा नामसे प्रख्यात महाभाग एक द्विजोत्तम हैं, वह मेरा ही अंश हैं। वह तेजस्वी महर्षि मेरे नियोगसे तुम्हारा याज्य कार्य करेंगे । तुम यज्ञकी सामग्री बटोरो। (४८--५३)

राजा श्वेतकिने रुद्रकी आज्ञासे राजधानीमें लौटकर यज्ञकी सामग्री फिर इकट्ठी की और पुनः रुद्रके यहां पहुंच कर बोले, कि हे प्रभो महादेव! मैंने सब वस्तु तथा उपकरण संग्रह किये हैं। मेरी प्रार्थना यह है, कि आपकी कृपासे कल मेरी दीक्षा होवे। भगवान रुद्र उन महात्मा महीपालकी यह बात सुनके दुर्वासाको बुलाकर बोले, कि विप्रवर ! इन महीपाल का नाम श्वेतकि है, तुम मेरे नियोग से इसका याज्य कार्य करो । ऋषिने स्वीकार किया। (५४—५८)

अनन्तर महात्मा महीपतिकी अभिलाषानुसार जैसे कहा गया था, वैसेही

तस्मिन्परिसमाप्ते तु राज्ञः सत्रे महात्मनः ।
दुर्वाससाऽभ्यनुज्ञाता विप्रतस्थुः स्म याजकाः॥६० ॥
ये तत्र दीक्षिताः सर्वे सदस्याश्च महौजसः ।
सोऽपि राजन्महाभागः स्वपुरं प्राविशत्तदा॥६१ ॥
पूज्यमानो महाभागैर्ब्राह्मणैर्वेदपारगैः ।
बन्दिभिस्तूयमानश्च नागरैश्चाऽभिनन्दितः॥ ६२ ॥
एवंवृत्तः स राजर्षिः श्वेतकिर्नृपसत्तमः ।
कालेन महता चाऽपि ययौ स्वर्गमभिष्टुतः ॥ ६३ ॥
ऋत्विग्भिः सहितः सर्वैःसदस्यैश्च समन्वितः।
तस्य सत्रे पपौ वह्निर्हविर्द्वादश वत्सरान् ॥ ६४ ॥
सततं चाऽऽज्यधाराभिरैकात्म्ये तत्र कर्मणि।
हविषा च ततो वह्निः परां तृप्तिमगच्छत ॥ ६५ ॥
न चैच्छत्पुनरादातुं हविरन्यस्य कस्यचित् ।
पाण्डुवर्णो विवर्णश्च न यथावत्प्रकाशते ॥ ६६ ॥
ततो भगवतो वह्नेर्विकारः समजायत ।
तेजसा विप्रहीणं च ग्लानिश्चैनं समाविशत्॥६७॥
स लक्षयित्वा चाऽऽत्मानं तेजोहीनं हुताशनः ।
जगाम सदनं पुण्यं ब्रह्मणो लोकपूजितम् ॥ ६८ ॥

भूरिदक्षिण यज्ञ प्रारम्भ हुआ। हे महाराज ! अनन्तर महायज्ञ हो जाने पर जो सब बडे तेजस्वी याजक और सदस्य लोग उसमें दीक्षित हुए थे, वे दुर्वासाकी आज्ञासे अपने अपने घरको चले गये। अनन्तर महाभाग दुर्वासाभी अपने आश्रमको पधारे। (५९—६०)

तत्पश्चात् महाभाग्य शाली श्वेतकि राजा भी अपने नगरमें प्रविष्ट हुआ। महाभाग्यवान वेदवेदांगपारंगत ब्राह्मण उसका संमान करते थे, बंदीजन उसकी प्रशंसा गाते थे, और नागरिक जन उसका अभिनंदन करते थे। इस प्रकारका प्रशंसनीय राजर्षि भूपति श्रेष्ठ श्वेतकि राजा बडा समय व्यतीत होनेके पश्चात् सब ऋत्विज और सदस्योंके समेत स्वर्गको पधारा। महाराज! उस भारी यज्ञमें अपरिमित हव्य पीकर भगवान हुताशनको विकार हो गया। वह दिन पर दिन तेजसे हाथ धोने लगे। उनके अङ्गमें ग्लानि जान पडने लगी। वह अपनेको कम तेजस्वी होते देखकर सर्वलोकोंसे

तत्र ब्रह्माणमासीनमिदं वचनमब्रवीत् ।
भगवन्परमा प्रीतिः कृता मे श्वेतकेतुना ॥ ६९ ॥
अरुचिश्चाऽभवत्तीव्रा तां न शक्नोम्यपोहितुम् ।
तेजसा विप्रहीणोऽस्मि बलेन च जगत्पते ॥ ७० ॥
इच्छेयं त्वत्प्रसादेन स्वात्मनः प्रकृतिं स्थिराम्।
एतच्छ्रुत्वा हुतवहाद्भगवान्सर्वलोककृत् ॥ ७१ ॥
हव्यवाहमिदं वाक्यमुवाच प्रहसन्निव ।
त्वया द्वादश वर्षाणि वसोर्धाराहुतं हविः ॥ ७२ ॥
उपयुक्तं महाभाग तेन त्वां ग्लानिराविशत् ।
तेजसा विप्रहीणत्वात्सहसा हव्यवाहन ॥ ७३ ॥
मा गमस्त्वं व्यथां वह्ने प्रकृतिस्थो भविष्यसि।
अरुचिं नाशयिष्येऽहं समयं प्रतिपद्य ते ॥ ७४ ॥
पुरा देवनियोगेन यत्त्वया भस्मसात्कृतम् ।
आलयं देवशत्रूणां सुघोरं खाण्डवं वनम् ॥ ७५ ॥
तत्र सर्वाणि सत्त्वानि निवसन्ति विभावसो।
तेषां त्वं मेदसा तृप्तः प्रकृतिस्थो भविष्यसि॥७६॥

पूजे जाते हुए पवित्र ब्रह्मलोकमें गये। आगे वहां बैठे हुए श्रीब्रह्माजीसे बोले, कि हे जगपते! राजा श्वेतकेतुने मेरी बहुत तृप्ति की, उससे मुझे बडी अरुचि हुई है, जिसका निराकरण मैं नहीं कर सकता। अब मैं तेजरहित और दुर्बल हुआ हूं, आपकी कृपासे अपनी पूर्व प्रकृतिको पाना चाहता हूं। सर्वलोकोंके धाता भगवान् अग्निका यह वचन सुनकर हंसके बोले, कि हे महाभाग! तुमने बारह वर्ष बिना रोक टोक वसुधारासे आहुति दिये हुए हव्यको पान किया है, सो तुमको ऐसी ग्लानि हुई है। हव्यवाहन! तुम कमतेज हुए हो; इससे एकायक दुःखी मत होना, तुम स्वास्थ्यको प्राप्त करोगे। समय प्राप्त होनेपर मैं तेरी अरुचि नष्ट करूंगा। हे विभावसो! पूर्वकालमें तुमने देवोंके शत्रुओंकी वास-भूमि जिस कठोर खाण्डव वनको भस्म किया था, अब उस स्थानमें अनेक प्रकारके प्राणी वसते हैं, तुम उनकी चर्बीसे तृप्त हो और अपनी प्रकृतिको प्राप्त कर सकोगे; सो उस खाण्डवको जलानेके लिये शीघ्र जाओ। उसको जलानेसे तुम्हारी यह ग्लानि दूर होजायगी। (६०—७६)

गच्छ शीघ्रं प्रदग्धुं त्वं ततो मोक्ष्यसि किल्बिषात् ।
एतच्छ्रुत्वा तु वचनं परमेष्ठिमुखाच्च्युतम्॥ ७७ ॥
उत्तमं जवमास्थाय प्रदुद्राव हुताशनः ।
आगम्य खाण्डवं दावमुत्तमं वीर्यमास्थितः।
सहसा प्राज्वलच्चाऽग्निः क्रुद्धो वायुसमीरितः॥७८॥
प्रदीप्तं खाण्डवं दृष्ट्वा ये स्युस्तत्र निवासिनः।
परमं यत्नमातिष्ठन्पावकस्य प्रशान्तये ॥ ७९ ॥
करैस्तु करिणः शीघ्रं जलमादाय सत्वराः ।
सिषिचुः पावकं क्रुद्धा शतशोऽथ सहस्रशः॥ ८० ॥
बहुशीर्षास्ततो नागाः शिरोभिर्जलसंततिम्।
मुमुचुः पावकाभ्याशे सत्वराः क्रोधमूर्छिताः॥८१॥
तथैवाऽन्यानि सत्त्वानि नानाप्रहरणोद्यमैः ।
विलयं पावकं शीघ्रमनयन्भरतर्षभ ॥ ८२ ॥
अनेन तु प्रकारेण भूयोभूयश्च प्रज्वलन् ।
सप्तकृत्वः प्रशमितः खाण्डवे हव्यवाहनः ॥८३॥ [८३७८]

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यामादिपर्वणि खाण्डवदाहपर्व-
ण्यग्निपराभवे पञ्चविंशत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २२५ ॥

वैशम्पायन उवाच—स तु नैराश्यमापन्नः सदा ग्लानिसमन्वितः ।

अग्नि पितामहके मुखसे यह वचन सुन उसी क्षण बडे वेगसे दौडे और घोर खाण्डव वनमें शीघ्र पहुंच क्रोधसे एकायक पवनके सहारे जल उठे । खाण्डव वनवासी सब प्राणी उस वनको जलते देखकर आग बुझानेके लिये निज निज शक्तिके अनुसार प्रयत्न करने लगे । सैकडों सहस्रों हस्ती क्रोधकर शीघ्रताके साथ सूंडसे तुरन्त जल उठाके सींचने लगे और अनेक सिरवाले सर्प क्रोधसे मुर्छाकर वेगपूर्वक बहुत फणोंसे अग्नि पर जल छोडने लगे । हे भरतकुल प्रदीप ! तैसेही दूसरे प्राणियोंने भी धूल छिरकरना शाखा पीटना आदि अनेक उपायोंसे शीघ्र आग बुझायी । हव्यवाहन खाण्डव वनमें बारबार,यहां तक कि सातवार जल उठे थे, पर इस प्रकार रोके जानेके कारण उनका मनोरथ सफल नहीं हो सका । (७७-८३)

आदिपर्वमें दोसौपच्चीस अध्याय समाप्त । [८३७८]

आदिपर्वमें दो सौ छब्बीस अध्याय ।

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि अनन्तर ग्लानियुक्त हव्यवाहन खाण्डव दाहकी

पितामहमुपागच्छत्संक्रुद्धो हव्यवाहनः ॥ १ ॥
तच्च सर्वं यथान्यायं ब्रह्मणे स न्यवेदयत् ।
उवाच चैनं भगवान्मुहूर्तं स विचिन्त्य तु ॥ २ ॥
उपायः परिदृष्टो मे यथा त्वं धक्ष्यसेऽनघ ।
कालं च कंचित्क्षमतां ततस्त्वां वक्ष्यतेऽनल॥ ३ ॥
भविष्यतः सहायौ तौ नरनारायणौ तदा ।
ताभ्यां त्वं सहितो दावं धक्ष्यसे हव्यवाहन॥ ४ ॥
एवमस्त्विति तं वह्निर्ब्रह्माणं प्रत्यभाषत ।
संभूतौ तौ विदित्वा तु नरनारायणावृषी ॥ ५ ॥
कालस्य महतो राजंस्तस्य वाक्यं स्वयंभुवः ।
अनुस्मृत्य जगामाऽथ पुनरेव पितामहम् ॥ ६ ॥
अब्रवीच्च तदा ब्रह्मा यथा त्वं धक्ष्यसेऽनल ।
खाण्डवं दावमद्यैव मिषतोऽस्य शचीपतेः ॥ ७ ॥
नरनारायणौ यौ तौ पूर्वदेवौ विभावसो ।
संप्राप्तौ मानुषे लोके कार्यार्थं हि दिवौकसाम् ॥ ८ ॥
अर्जुनं वासुदेवं च यौ तौ लोकोऽभिमन्यते ।
तावेतौ सहितावेहि खाण्डवस्य समीपतः ॥ ९ ॥

आज्ञा छोडकर क्रोधित-चित्तसे पितामह श्रीब्रह्माजीके निकट गये और ब्योरेवार उनसे सब अहवाल कह सुनाया। उन भगवानने पल भर सोच कर कहा, कि "हे अनघ! मैंने इसका एक अच्छा उपाय निश्चय किया है, परंतु कुछ समय ठहर जाओ, योग्य समयमें वह उपाय तुम्हें बताया जायगा। हे हव्यवाहन ! जब नरनारायण तेरी सहायता करेंगे, तब उनके सहाय्यसे तू उस वनको दग्ध कर सकोगे।" यह बात सुन कर "ठीक है" ऐसा अग्निने कहा, तत्पश्चात् नर नारायण ऋषि उत्पन्न हुए हैं यह जान कर, बहुत समय व्यतीत होने पर, हे राजन्! अग्निने ब्रह्माजीका भाषण स्मरण करके फिर एक वार अग्निदेव ब्रह्माजीके पास पहुंचे। तब ब्रह्माजी उनसे बोले, कि "हे अग्ने ! जिससे आजही तुम देवराजके सामने खाण्डववन जला सकोगे, वह उपाय कहता हूं। हे विभावसो ! नर नारायण नामक उन सनातन दो देवताओंने देवकार्यके लिये मर्त्यलोकमें अवतार लिया है। लोग उनको अर्जुन और वासुदेव करके जानते हैं। अब वे

तौ त्वं याचस्व साहाय्ये दाहार्थं खाण्डवस्य च।
ततो धक्ष्यसि तं दावं रक्षितं त्रिदशैरपि ॥ १० ॥
तौ तु सत्त्वानि सर्वाणि यत्नतो वारयिष्यतः।
देवराजं च सहितौ तत्र मे नास्ति संशयः ॥ ११ ॥
एतच्छ्रुत्वा तु वचनं त्वरितो हव्यवाहनः ।
कृष्णपार्थावुपागम्य यमर्थं त्वभ्यभाषत ॥ १२ ॥
तं ते कथितवानस्मि पूर्वमेव नृपोत्तम ।
तच्छ्रुत्वा वचनं त्वग्नेर्बीभत्सुर्जातवेदसम् ॥ १३ ॥
अब्रवीन्नृपशार्दूल तत्कालसदृशं वचः ।
दिधक्षुं खाण्डवं दावमकामस्य शतक्रतोः ॥ १४ ॥

अर्जुन उवाच— उत्तमास्त्राणि मे सन्ति दिव्यानि च बहूनि च ।
यैरहं शक्नुयां योद्धुमपि वज्रधरान्बहून् ॥ १५ ॥
धनुर्मे नास्ति भगवन्बाहुवीर्येण संमितम् ।
कुर्वतः समरे यत्नं वेगं यद्विषहेन्मम ॥ १६ ॥
शरैश्च मेऽर्थो बहुभिरक्षयैः क्षिप्रमस्यतः ।
न हि वोढुं रथः शक्तः शरान्मम यथेप्सितान् ॥ १७ ॥
अश्वांश्च दिव्यानिच्छेयं पाण्डुरान्वातरंहसः।

दोनों खाण्डवके निकट विराजते हैं । खाण्डवदाहके लिये उनसे सहारा मांगो; तब वन सब देवोंसे रक्षित होने परभी जला सकोगे । वासुदेव और अर्जुन वहां के प्राणियोंको बिना सन्देह रोक सकेंगे! हव्यवाहन यह सुन करकेही तुरन्त कृष्णार्जुनके पास गये। (१—१२)

हे नृपोत्तम ! अग्निने उनके सामने पहुंच कर जो कहा था, वह मैंने पहिले ही आपसे कहा है । हे नृपशार्दूल ! तिसके पीछे अर्जुन इन्द्रके बिनासम्मति से खाण्डववनको जलानेकी इच्छा करनेवाले अग्निसे बोले, कि हे भगवन्! मेरे अनेक दिव्य अस्त्र हैं, उनसे मैं वज्रधारी सैकडों इन्द्रसे युद्ध कर सकता हूं, पर युद्धकालमें मेरा वेग सर्वप्रकारसे सह ले, ऐसा मेरे भुज वीर्यके योग्य चाप नहीं है; विशेष मुझको शीघ्रतासे बाण छोडने पडेंगे, सो अनेक अक्षय बाणोंका प्रयोजन है । और मेरा जो रथ है, वह प्रयोजनके अनुसार उन बाणोंको ले नहीं सकेगा, सो श्वेत वर्ण वायु समान वेगवान दिव्य घोडे और बादल सदृश गरजनेवाले सूर्यकी भांति तेजयुक्त रथका

रथं च मेघनिर्घोषं सूर्यप्रतिमतेजसम् ॥ १८ ॥
तथा कृष्णस्य वीर्येण नाऽयुधं विद्यते समम्।
येन नागान्पिशाचांश्च निहन्यान्माधवो रणे ॥ १९ ॥
उपायं कर्मसिद्धौ च भगवन्वक्तुमर्हसि ।
निवारयेयं येनेन्द्रं वर्षमाणं महावने ॥ २० ॥
पौरुषेण तु यत्कार्यं तत्कर्तारौ स्व पावक ।
करणानि समर्थानि भगवन्दातुमर्हसि ॥ २१ ॥ [८३९९]

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यामादिपर्वणि खाण्डवदाहपर्वण्यर्जुनाग्निसंवादे षड्विंशत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २२६ ॥

वैशम्पायन उवाच- एवमुक्तः स भगवान्धूमकेतुर्हुताशनः ।
चिन्तयामास वरुणं लोकपालं दिदृक्षया ॥ १ ॥
आदित्यमुदके देवं निवसन्तं जलेश्वरम् ।
स च तच्चिन्तितं ज्ञात्वा दर्शयामास पावकम्॥ २ ॥
तमब्रवीद्धूमकेतुः प्रतिगृह्य जलेश्वरम् ।
चतुर्थं लोकपालानां देवदेवं सनातनम् ॥ ३ ॥
सोमेन राज्ञा यद्दत्तं धनुश्चैवेषुधी च ते ।
तत्प्रयच्छोभयं शीघ्रं रथं च कपिलक्षणम् ॥ ४ ॥

प्रयोजन होगा ! और इन माधवके भुजवीर्यके योग्य कोई अस्त्र नहीं है, कि जिससे यह रणभूमिमें पिशाच और सर्पोंको गिरावें। अतएव हे भगवन् ! ऐसा कोई उपाय कहें, कि जिससे देवराज इस बडे वनमें वर्षा करनेसे हम उनको रोक सकें और यह बडा कार्य भली भांति पूरा हो। हे पावक ! पौरुषसे जिसकी साधना होगी, वह हम करने को प्रस्तुत हैं, पर युद्ध करनेके लिये जिन उपकरणोंकी आवश्यकता हो, वह आप हमको देवें। ॥२१॥

आदि पर्वमें दोसौ छब्बीस अध्याय समाप्त।

आदिपर्वमें दो सौ सताईस अध्याय।

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि अनन्तर भगवान् धूमकेतु हुताशनने अर्जुनका यह वचन सुन जलके घर जलनाथ आदिति नन्दन लोकपाल वरुणजीकी भेंट के लिये उनको स्मरण किया। जलनाथ वरुण उनका स्मरण करना जानके सम्मुख आ पहुंचे। हुताशन चौथे लोकपाल उन सनातन देवदेव जलाधिपका आदरपूर्वक स्वागत कर बोले, कि राजा सोमने तुमको जो तूणीर और शरासन तथा कपिध्वज रथ दिया था, वह सब तुरन्त

कार्यं च सुमहत्पार्थो गाण्डीवेन करिष्यति।
चक्रेण वासुदेवस्य तन्ममाऽद्य प्रदीयताम् ॥ ५ ॥
ददानीत्येव वरुणः पावकं प्रत्यभाषत ।
तदद्भुतं महावीर्यं यशःकीर्तिविवर्धनम् ॥ ६ ॥
सर्वशस्त्रैरनाधृष्यं सर्वशस्त्रप्रमाथि च ।
सर्वायुधमहामात्रं परसैन्यप्रधर्षणम् ॥ ७ ॥
एकं शतसहस्रेण संमितं राष्ट्रवर्धनम् ।
चित्रमुच्चावचैर्वर्णैः शोभितं श्लक्ष्णमव्रणम् ॥ ८ ॥
देवदानवगन्धर्वैः पूजितं शाश्वतीः समाः ।
प्रादाच्चैव धनूरत्नमक्षय्यौ च महेषुधी ॥ ९ ॥
रथं च दिव्याश्वयुजं कपिप्रवरकेतनम् ।
उपेतं राजतैरश्वैर्गान्धर्वैर्हेममालिभिः ॥ १० ॥
पाण्डुराभ्रप्रतीकाशैर्मनोवायुसमैर्जवे ।
सर्वोपकरणैर्युक्तमजय्यं देवदानवैः ॥ ११ ॥
भानुमन्तं महाघोषं सर्वरत्नमनोरमम् ।
ससर्ज यं सुतपसा भौमनो भुवनप्रभुः ॥ १२ ॥

दे दो। पार्थ उस गाण्डीव शरासनसे और वासुदेव चक्रसे बडा भारी कार्य पूरा करेंगे।सो वह आजही मुझको दो।वरुणजी ने देता हूं कहके मान लिया। (१—६)

अनन्तर जो धनुष बडा वीर्यवन्त, सर्वशस्त्र मथनयोग्य, यश और कीर्त्ति बढानेहारा, शस्त्रोंसे काटे जानेके अयोग्य, सम्पूर्ण अस्त्रोंसे बडा, शत्रुसेनाको नष्ट करनेवाला, राज्यबढानेवाला, सैकडों सहस्रों चापका सामना करने परभी न टूटने फूटनेवाला,रंग विरंगके सुन्दर सुन्दर वरणोंसे रंगा, मनोहर और जिसकी पूजा देव दानव गन्धर्व सदा किया करते हैं,वरुणजी ने ऐसाही अद्भुत धनुष और दो ऐसे तूणीर, कि जिनमें बाण रखनेसे खर्च किये नहीं चुकते, दे दिये। (६—९)

जो रथ मन और पवनकी भांति वेगवान,पाण्डुरवर्ण बादल सदृश चांदी की नाईं उजालावाले सुवर्णसे सुशोभित, गधर्वोंके नगरके घोडोंसे खींचा जाता है, जो दिव्यास्त्र और सब उपकरणोंसे भरा और देव दानवोंमे अजय, जिसकी घरघराहट बडी दूरसे सुनाई देती है, जिसको भुवनके प्रभु प्रजापति विश्वकर्मा ने बडी तपस्यासे बनाया था, जिसका

प्रजापतिरनिर्देश्यं यस्य रूपं रवेरिव ।
यं स्म सोमः समारुह्य दानवानजयत्प्रभुः ॥ १३ ॥
नवमेघप्रतीकाशं ज्वलन्तमिव च श्रिया ।
आश्रितौ तं रथश्रेष्ठं शक्रायुधसमावुभौ ॥ १४ ॥
तापनीया सुरुचिरा ध्वजयष्टिरनुत्तमा ।
तस्यां तु वानरो दिव्यः सिंहशार्दूलकेतनः ॥ १५ ॥
दिधक्षन्निव तत्र स्म संस्थितो मूर्ध्न्यशोभत ।
ध्वजे भूतानि तत्राऽऽसन्विविधानि महान्ति च १६ ।
नादेन रिपुसैन्यानां येषां संज्ञा प्रणश्यति ।
स तं नानापताकाभिः शोभितं रथसत्तमम् ॥ १७ ॥
प्रदक्षिणमुपावृत्य दैवतेभ्यः प्रणम्य च ।
संनद्धः कवची खड्गी बद्धगोधाङ्गुलित्रकः ॥ १८ ॥
आरुरोह तदा पार्थो विमानं सुकृती यथा ।
तच्च दिव्यं धनुः श्रेष्ठं ब्रह्मणा निर्मितं पुरा ॥ १९ ॥
गाण्डीवमुपसंगृह्य बभूव मुदितोऽर्जुनः ।
हुताशनं पुरस्कृत्य ततस्तदपि वीर्यवान् ॥ २० ॥
जग्राह बलमास्थाय ज्यया च युयुजे धनुः ।

रूप सूर्यसदृश दृष्टिसे देखनेके अयोग्य, जिस पर चढ प्रभु सोमने दानवोंको परास्त किया था, जिसका उजाला बहुत जलता है, जिसके किरण दूर से अनुभव होते हैं, जो आकाशतलके नये बादलसमान दीख पडता है, जिसके ऊपर इन्द्रधनुषसदृश शोभायमान मनोहर परम सुन्दर सुनौले झण्डेकी लकडीके ऊपर सिंहशार्दूल समान पराक्रमी सुन्दर दिव्य बन्दर मानों सर्वलोकों को जलानेकी इच्छासे विराज रहा है, और ध्वजापताकोंमे प्रकटित भांति भांतिके गम्भीर कोलाहल को सुनकर शत्रुसेनाकी चेतना जाती रहती है, वरुणजीने ऐसा कपिवर सहित, ध्वजयुक्त रथ दिया। (१०—१७)

अर्जुन खड्ग कवच गोधा और अङ्गरक्षक पहिनके स्नान कर अनेक उस पताकाओंसे सुशोभित अनुपम सुन्दर रथकी परिक्रमा देकर देवोंको प्रणामकर पुण्यात्मा जनके विमान पर चढनेकी भांति उस पर चढ और ब्रह्माके बनाये उस गाण्डीव श्रेष्ठ शरासनको आनन्दसे ले लिया। अनन्तर वीर्यवन्त अर्जुनने हुताशनके आगे सिर नाय, बल प्रकट कर उस

मौर्व्यां तु योज्यमानायां बलिना पाण्डवेन ह ॥ २१ ॥
येऽश्रृण्वन्कूजितं तत्र तेषां वै व्यथितं मनः ।
लब्ध्वा रथं धनुश्चैव तथाऽक्षय्ये महेषुधी ॥ २२ ॥
बभूव कल्पः कौन्तेयः प्रहृष्टः साह्यकर्मणि ।
वज्रतुल्यं ततश्चक्रं ददौ कृष्णाय पावकः ॥ २३ ॥
आग्नेयमस्त्रं दयितं स च कल्पोऽभवत्तदा ।
अब्रवीत्पावकश्चैनमेतेन मधुसूदन ॥ २४ ॥
अमानुषानपि रणे जेष्यसि त्वमसंशयम् ।
अनेन तु मनुष्याणां देवानामपि चाऽऽहवे ॥ २५ ॥
रक्षःपिशाचदैत्यानां नागानां चाऽधिकस्तथा।
भविष्यसि न संदेहः प्रवरोऽपि निबर्हणे ॥ २६ ॥
क्षिप्तं क्षिप्तं रणे चैतत्त्वया माधव शत्रुषु ।
हत्वाऽप्रतिहतं सङ्ख्ये पाणिमेष्यति ते पुनः॥ २७ ॥
वरुणश्च ददौ तस्मै गदामशनिनिःस्वनाम् ।
दैत्यान्तकरणीं घोरां नाम्ना कौमोदकीं प्रभुः॥ २८ ॥
ततः पावकमब्रूतां प्रहृष्टावर्जुनाच्युतौ ।
कृतास्त्रौ शस्त्रसंपन्नौ रथिनौ ध्वजिनावपि ॥ २९ ॥

गाण्डीवमें गुण चढाया। बली पाण्डुनन्दनके गुण चढानेके कालमें उसका शब्द जिस जिसके कानोंमें बैठा उस उसका हृदय थरथराने लगा; अर्जुन इस प्रकारसे रथ, धनुष और दो महान अक्षय तूणीर पाकर आनन्दित चित्तसे हुताशनको सहारा देनेको समर्थ हुए, अनन्तर हुताशनने श्रीकृष्णचन्द्रको चक्र और दयित अग्न्यस्त्र दे दिया, इससे वह भी तब अग्निकी सहायता करनेके योग्य बने। (१७----२४)

आगे अग्निने उनसे कहा, कि हे मधुसूदन ! तुम युद्धस्थलमें इस अस्त्रसे बिना सन्देह मानवके अरितिक्त अन्य प्राणियोंकोभी परास्त कर सकोगे। तुम रणस्थलमें इस अस्त्रसे देव, दानव, राक्षस, पिशाच, नाग और मनुष्य इनसे निःसन्देह अधिक शक्तिमान होगे। हे माधव ! यह अस्त्र यदि शत्रुदल पर बार बार फेंका जाय, तौभी बिना रुकावट शत्रुनाश करता हुआ फिर तुम्हारे हाथमें आ जायगा। (२४— २७)

अनन्तर वरुणजीने उनको दैत्यकुलनाशी घोररूपी वज्रसमान गरजनेवाली

कल्यौ स्वो भगवन्योद्धुमपि सर्वैः सुरासुरैः ।
किं पुनर्वज्रिणैकेन पन्नगार्थे युयुत्सुना ॥ ३० ॥

अर्जुन उवाच — चक्रपाणिर्हृषीकेशो विचरन्युधि वीर्यवान् ।
त्रिषु लोकेषु तन्नाऽस्ति यन्न कुर्याज्जनार्दनः ॥ ३१ ॥
गाण्डीवं धनुरादाय तथाऽक्षय्ये महेषुधी ।
अहमप्युत्सहे लोकान्विजेतुं युधि पावक ॥ ३२ ॥
सर्वतः परिवार्यैव दावमेतं महाप्रभो ।
कामं संप्रज्वलाऽद्यैव कल्यौ स्वः साह्यकर्मणि ॥ ३३ ॥

वैशम्पायन उवाच— एवमुक्तः स भगवान्दाशार्हेणाऽर्जुनेन च ।
तैजसं रूपमास्थाय दावं दग्धुं प्रचक्रमे ॥ ३४ ॥
सर्वतः परिवार्याऽथ सप्तार्चिर्ज्वलनस्तथा ।
ददाह खाण्डवं दावं युगान्तमिव दर्शयन् ॥ ३५ ॥
प्रतिगृह्य समाविश्य तद्वनं भरतर्षभ ।
मेघस्तनितनिर्घोषः सर्वभूतान्यकल्पयत् ॥ ३६ ॥
दह्यतस्तस्य च बभौ रूपं दावस्य भारत ।

कौमोदकी गदा दी, तब अस्त्रमें पण्डित अर्जुन और श्रीकृष्ण ध्वजा, रथ और शस्त्रादि प्राप्त कर प्रसन्नचित्तसे बोले, कि हे भगवन्! अब हम लोग सम्पूर्ण सुरासुरसे लडनेको समर्थ हुए; सर्परक्षाके लिये युद्ध चाहनेवाले अकेले वज्रधारी इन्द्रसे लडना हमारे लिये कोई बडी बात न रही। अर्जुन बोले, कि हे पावक! तीनों लोकोंमें ऐसा पदार्थही नहीं है, कि जिसे वीर्यवन्त चक्रपाणि जनार्दन रणस्थलमें टहलते हुए इस चक्रसे मार नहीं सकेंगे। मैं भी यह अक्षय तूण और गाण्डीव धनुष लेकर सम्पूर्ण लोक परास्त करनेका उत्साह कर सकता हूं। सो आप आजही इच्छानुसार इस बडे वनको सम्पूर्ण रूपसे घेर कर जलावें; हम आपको सहारा देनेको समर्थ हुए हैं। (२८-३३)

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि भगवान् हुताशन अर्जुन और श्रीकृष्णचन्द्रके यह वचन सुनके पावक तैजसका रूप धारण कर उस वनको जलाने लगे। तब वह सातशिखा फैला कर सब ओर फैलकर खाण्डववन जलाने लगे। उस कालमें जान पडने लगा, कि मानो युगके अन्त होनेवाला काल प्रकाटित हो रहा है। हे भरतवंशश्रेष्ठ! प्रज्वलित अग्निदेव उस भारी वनको पकड कर उसमें घुसके बादल की गडगडाहटकी भांति भयानकी

मेरोरिव नगेन्द्रस्य कीर्णस्यांशुमतोऽशुभिः ॥३७॥ [८४३६]

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यामादिपर्वणि खाण्डवदाहपर्वणि खाण्डवदाहे सप्तविंशत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २२७ ॥

वैशंम्पायन उवाच–तौ रथाभ्यां रथिश्रेष्ठौ दावस्योभयतः स्थितौ।
दिक्षु सर्वासु भूतानां चक्राते कदनं महत् ॥ १ ॥
यत्र यत्र च दृश्यन्ते प्राणिनः खाण्डवालयाः।
पलायन्तः प्रवीरौ तौ तत्र तत्राऽभ्यधावताम् ॥२॥
छिद्रं न स्म प्रपश्यन्ति रथयोराशुचारिणोः।
आविद्धाविव दृश्येते रथिनौ तौ रथोत्तमौ ॥ ३ ॥
खाण्डवे दह्यमाने तु भूतानि शतसङ्घशः।
उत्पेतुर्भैरवान्नादान्विनदन्तः समन्ततः ॥ ४ ॥
दग्धैकदेशा बहवो निष्टप्ताश्च तथाऽपरे।
स्फुटिताक्षा विशीर्णाश्च विप्लुताश्च तथा परे॥ ५ ॥
समालिंग्य सुतानन्ये पितॄन्भ्रातॄनथाऽपरे।
त्यक्तुं न शेकुः स्नेहेन तत्रैव निधनं गताः ॥ ६ ॥

शब्दसे सब प्राणियोंको थरथराने लगे। हे भारत ! तब जलते हुए उस वनने सूर्यकिरणोंसे रंगे सुमेरु पर्वतका स्वरूप धारण किया। (३४-३७)[८४३६]

आदिपर्वमें दोसौ सताईस अध्याय समाप्त।

आदिपर्वमें दोसौ अठाईस अध्याय।

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि अनन्तर रथियोंमें श्रेष्ठ श्रीकृष्ण और अर्जुन रथ पर चढकर उस वनकी दोनों ओर रहके चारों ओरके प्राणियोंको नष्ट करने लगे। खाण्डववासी प्राणी जहां जहां भागते दीख पडे, वे दोनों वीर तहां तहां दौडने लगे। वे दोनों महारथी, रथ पर वनके चारों ओर इतना शीघ्र फिरने लगे, कि दोनों रथ आपसमें जुडे हुए जान पडने लगे; तिनमें बिछोह दीख नहीं पडा। खाण्डव वनके जलनेसे सैकडों सहस्रों प्राणी बडा कोलाहल मचाते हुए चारों ओर गिरने लगे। किसी किसीका एक एक अङ्ग जल गया; कोई कोई अति तापसे जल भुनके गिरगया; किसी किसी जन्तुकी आंख फूट गयी; कोई कोई दुबकाय गये; कोई कोई भयसे दौडने लगे; किसी किसी प्राणीने बच्चेसे, किसी किसीने पितासे, किसी किसीने भाईसे लिपट कर वासस्थल ही में प्राण छोडे, पर स्नेहवश उनको छोड नहीं सके। (१—६)

संदष्टदशनाश्चाऽन्ये समुत्पेतुरनेकशः ।
ततस्तेऽतीव घूर्णन्तः पुनरग्नौ प्रपेदिरे ॥ ७ ॥
दग्धपक्षाक्षिचरणा विचेष्टन्तो महीतले ।
तत्र तत्र स्म दृश्यन्ते विनशन्तः शरीरिणः॥ ८ ॥
जलाशयेषु तप्तेषु क्वाथ्यमानेषु वह्निना ।
गतसत्त्वाः स्म दृश्यन्ते कूर्ममत्स्याः समन्ततः॥९॥
शरीरैरपरैर्दीप्तैर्देहवन्त इवाऽग्नयः ।
अदृश्यन्त वने तत्र प्राणिनः प्राणसंक्षये ॥ १० ॥
कांश्चिदुत्पततः पार्थः शरैः संछिद्य खण्डशः।
पातयामास विहगान्प्रदीप्ते कृष्णवर्त्मनि ॥ ११ ॥
ते शराचितसर्वाङ्गा निनदन्तो महारवान् ।
ऊर्ध्वमुत्पत्य वेगेन निपेतुः खाण्डवे पुनः ॥ १२ ॥
शरैरभ्याहतानां च सङ्घशः स्म वनौकसाम् ।
विरावः शुश्रुवे घोरः समुद्रस्येव मथ्यतः ॥ १३ ॥
वह्नेश्चापि प्रदीप्तस्य खमुत्पेतुर्महार्चिषः ।
जनयामासुरुद्वेगं सुमहान्तं दिवौकसाम् ॥ १४ ॥
तेनाऽर्चिषा सुसंतप्ता देवाः सर्षिपुरोगमाः ।

कोई कोई देहधारी दांतसे दांत पीसता अनेकवार गिरता पीटता और वहुत चक्कर खाता आगमें गिरने लगा। कोई पंख जलने,कोई नेत्र जलने अथवा कोई पांव जलने पर मृत दीख पडने लगा। वहांके जलाशय अग्निसे तपने और उबल उठनेसे मछली कछुए आदि प्राणी इधर उधर मरे दिखाई देने लगे। उस वनमें देहियोंकी जो सब देह जली, वह सब जली देह मानो भांति भांतिकी अग्निदेहके समान प्रतीत होती रहीं। उस वनमें जो सब पक्षी उछल रहे थे, अर्जुन उनको बाणोंसे टुकडे टुकडे कर कर जलते हुए अग्निमें गिराने लगे। वे प्राणी सब देह काटे जानेसे बडा कोलाहल मचाते हुए वेगसे कुछ ऊपर चढकर फिर उस खाण्डव वनही में गिरने गिरने लगे; समुद्रमथनके कालमें जैसा घोर शब्द उठा था वैसेभी बाणोंसे घायल वनैले जानवरोंका बडा कोलाहल सुन पडने लगा और जलते हुए अग्निकी बडी बडी शिखा देवोंको घबराहटमें डालनेवाली वनके आकाश मण्डलमें छागई। (७-१४)

अनन्तर महात्मा देवगण उस अग्नि

ततो जग्मुर्महात्मानः सर्व एव दिवौकसः ॥ १५ ॥
शतक्रतु सहस्राक्षं देवेशमसुरार्दनम् ॥ १६ ॥
देवा ऊचुः — किं न्विमे मानवाः सर्वे दह्यन्ते चित्रभानुना।
कच्चिन्न संक्षयः प्राप्तो लोकानाममरेश्वर ॥ १७ ॥
वैशम्पायन उवाच—तच्छ्रुत्वा वृत्रहा तेभ्यः स्वयमेवाऽन्ववेक्ष्य च।
खाण्डवस्य विमोक्षार्थं प्रययौ हरिवाहनः ॥ १८ ॥
महता रथवृन्देन नानारूपेण वासवः ।
आकाशं समवाकीर्य प्रववर्ष सुरेश्वरः ॥ १९ ॥
ततोऽक्षमात्रा व्यसृजन्धाराः शतसहस्रशः।
चोदिता देवराजेन जलदाः खाण्डवं प्रति ॥ २० ॥
असंप्राप्तास्तु ता धारास्तेजसा जातवेदसः ।
ख एव समशुष्यन्त न काश्चित्पावकं गताः॥ २१ ॥
ततो नमुचिहा क्रुद्धो भृशमर्चिष्मतस्तदा ।
पुनरेव महामेघैरम्भांसि व्यसृजद्बहु ॥ २२ ॥
अर्चिर्धाराभिसंबद्धं धूमविद्युत्समाकुलम् ।
बभूव तद्वनं घोरं स्तनयित्नुसमाकुलम् ॥ २३ ॥ [८४५९]

इति श्रीमहाभारते० खाण्डवदाहपर्वणीन्द्रक्रोधेऽष्टाविंशत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २२८ ॥

की शिखाओंसे बहुत तपकर पुरमें बसे ऋषियोंके साथ असुरनाशी सहस्र नेत्र शतक्रतु सुरनाथके पास गये और बोले, कि अमरनाथ ! क्या अग्नि इन मानव वृन्दको जला रहा है ? क्या अब हम सब-लोगोंका प्रलय काल आ गया है ? श्रीवैश-म्पायनजी बोले, कि हाथी पर चढे हुए वृत्र-नाशी उनसे वह सुनके और देखके खाण्डव वनकी रक्षाके लिये चल निकले।(१५-१८)

उन्होंने अनेक महारथोंसे आकाशम-ण्डलको छाकर जल वर्षाना आरम्भ कर दिया। सैकडों बादल देवराजकी आज्ञा-से खाण्डव वन पर रथके पहियेकी लक-डीके समान मोटी धारसे जल वर्षाने लगे। सब मोटी धार अग्निके तेजसे आकाशहीमें सूख गयी, एकभी धार अग्नि पर गिर नहीं सकी। आगे नमुचिसू-दन इन्द्र बहुत क्रोध कर फिर बडे बादलोंसे अग्निके ऊपर बहुत जल वर्षाने लगे। तब वह बडा भारी वन अग्नि शिखा और जल धारासे गीला धूआं और बिजलीसे मिला और ऊपरके बादलोंसे घिरा प्रकट होकर बडा भयानक दीख पडने लगा। १९-२३

आदिपर्वमें दोसौ अठ्ठाइस अध्याय समाप्त। ८४५९

वैशम्पायन उवाच—तस्याऽथ वर्षतो वारि पाण्डवः प्रत्यवारयत्।
शरवर्षेण बीभत्सुरुत्तमास्त्राणि दर्शयन् ॥ १ ॥
खाण्डवं च वनं सर्वं पाण्डवो बहुभिः शरैः।
प्रच्छादयदमेयात्मा नीहारेणेव चन्द्रमाः ॥ २ ॥
न च स्म किंचिच्छक्नोति भूतं निश्चरितुं ततः।
संछाद्यमाने खे बाणैरस्यता सव्यसाचिना ॥ ३ ॥
तक्षकस्तु न तत्राऽऽसीन्नागराजो महाबलः।
दह्यमाने वने तस्मिन्कुरुक्षेत्रं गतो हि सः ॥ ४ ॥
अश्वसेनोऽभवत्तस्य तक्षकस्य सुतो बली।
स यत्नमकरोत्तीव्रं मोक्षार्थं जातवेदसः ॥ ५ ॥
न शशाक स निर्गन्तुं निरुद्धोऽर्जुनपत्रिभिः।
मोक्षयामास तं माता निगीर्य भुजगात्मजा ॥ ६ ॥
तस्य पूर्वं शिरो ग्रस्तं पुच्छमस्य निगीर्यते।
निर्गीर्यमाणा साऽक्रामत्सुतं नागी मुमुक्षया ॥ ७ ॥
तस्याः शरेण तीक्ष्णेन पृथुधारेण पाण्डवः।
शिरश्चिच्छेद गच्छन्त्यास्तामपश्यच्छचीपतिः ॥ ८ ॥

आदिपर्वमें दोसौ उनतीस अध्याय।

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि अनन्तर पाण्डुनन्दन अर्जुनने देवराजको उस प्रकार जल वर्षाते देखकर अपना उत्तम अस्त्र प्रकट करके बाण वर्षा कर उसको रोका। चन्द्रमा जिस प्रकार ओससे जगको छाय देता है वैसेही अमेयात्मा पाण्डुनन्दनने सैकडों बाणोंसे सम्पूर्ण खाण्डव वनको छुपाया। वहांका आकाश मण्डल सव्यसाची धनञ्जयके फेंके बाणोंसे ऐसा ढंपा, कि कोई प्राणी वहांसे निकल नहीं सका। पर महाबली सर्पराज तक्षक उस समय वहां नहीं था। जब खाण्डवदाह आरम्भ हुआ था, तब कुरुक्षेत्रमें गया था। उसका पुत्र बली अश्वसेन वहां था। तक्षकके उस पुत्रने अग्निसे निकलनेकी बडी चेष्टा की, अर्जुनके बाणोंसे बद्ध हो कर निकल नहीं सका। (१—६)

आगे उसकी माता सर्पकन्याने उसको निगल कर बचाया। नागकन्या उसे बचानेकी चाहसे उसका सिर निगल कर उसकी पूछको निगलती हुई आकाशमार्गसे निकल रही थी, ऐसे समयमें अर्जुनने उसको देख चौडी नोखवाले तेजबाणसे उस सर्पिनका सिर काट

तं मुमोचयिषुर्वज्री वातवर्षेण पाण्डवम् ।
मोहयामास तत्कालमश्वसेनस्त्वमुच्यत ॥ ९ ॥
तां च मायां तदा दृष्ट्वा घोरां नागेन वञ्चितः।
द्विधा त्रिधा च खगतान्प्राणिनः पाण्डवोऽच्छिनत् १०
शशाप तं च संक्रुद्धो बीभत्सुर्जिह्मगामिनम् ।
पावको वासुदेवश्चाऽप्यप्रतिष्ठो भविष्यसि ॥ ११ ॥
ततो जिष्णुः सहस्राक्षं खं वितत्याऽऽशुगैः शरैः ।
योधयामास संक्रुद्धो वञ्चनां तामनुस्मरन् ॥ १२ ॥
देवराजोऽपि तं दृष्ट्वा संरब्धं समरेऽर्जुनम् ।
स्वमस्त्रमसृजत्तीव्रं छादयित्वाऽखिलं नभः ॥ १३ ॥
ततो वायुर्महाघोषः क्षोभयन्सर्वसागरान् ।
वियत्स्थो जनयन्मेघाञ्जलधारासमाकुलान् ॥ १४ ॥
ततोऽशनिमुचो घोरांस्तडित्स्तनितनिःस्वनान् ।
तद्विघातार्थमसृजदर्जुनोऽप्यस्त्रमुत्तमम् ॥ १५ ॥
वायव्यमभिमन्त्र्याऽथ प्रतिपत्तिविशारदः ।
तेनेन्द्राशनिमेघानां वीर्यौजस्तद्विनाशितम् ॥१६॥

डाला । शचीनाथने यह देखकर अश्वसेनको बचानेके लिये उसीक्षण पवन चालकर अर्जुनको मोहमें डाला । उस अवसरमें अश्वसेन बचकर भागा । अर्जुनने तब उस सर्पसे ठगे जाकर और वह माया देखकर आकाश तक पहुंचे हुए भयानक प्राणियोंको दो तीन भागोंमें काट कूट डाला । (९—१०)

बिभत्सु, वासुदेव और पावकने बहुत क्रोध कर उस कुटिल गामी सर्पको शाप दिया, कि तुम्हारी प्रतिष्ठा जाती रहेगी। अनन्तर पाण्डुपुत्रने उस वञ्चनाको स्मरण कर क्रोधसे तुरन्त दौडनेवाले बाणों से आकाश मण्डलको छाय सहस्रनेत्रसे लडाई मचायी । देवराजनेभी उनको युद्धमें कटिबद्ध देखकर अपना तीक्ष्ण अस्त्र छोडकर आकाश मण्डलको छा लिया । अनन्तर पवनने बडे शब्दके साथ फैलकर सम्पूर्ण समुद्रमें हलचल मचाके अति घोर बादल वृन्द उपजाये। उन सब बादलोंसे उस ठौरमें बिजली, वज्राघात और गडगडाहटके साथ जलधार बर्षने लगी । (११—१५)

प्रतिविधानकी शक्ति रखनेवाले अर्जुनने उन सबको दूर करनेके लिये सुन्दर वायव्यास्त्रको मन्त्र पढ कर छोडा,

जलधाराश्च ताः शोषं जग्मुर्नेशुश्च विद्युतः ।
क्षणेन चाऽभवद्व्योम संप्रशान्तरजस्तमः ॥ १७ ॥
सुखशीतानिलवहं प्रकृतिस्थार्कमण्डलम् ।
निष्प्रतीकारहृष्टश्च हुतभुग्विविधाकृतिः ॥ १८ ॥
सिच्यमानो वसौघैस्तैः प्राणिनां देहनिःसृतैः ।
प्रजज्वालाऽथ सोऽर्चिष्मान्स्वनादैः पूरयञ्जगत्॥१९॥
कृष्णाभ्यां रक्षितं दृष्ट्वा तं च दावमहंकृताः ।
खमुत्पेतुर्महाराज सुपर्णाद्याः पतत्रिणः ॥ २० ॥
गरुत्मान्वज्रसदृशैः पक्षतुण्डनखैस्तथा ।
प्रहर्तुकामो न्यपतदाकाशात्कृष्णपाण्डवौ ॥ २१ ॥
तथैवोरगसङ्घाताः पाण्डवस्य समीपतः ।
उत्सृजन्तो विषं घोरं निपेतुर्ज्वलिताननाः ॥ २२॥
तांश्चकर्त शरैः पार्थः स्वरोषाग्निसमुक्षितैः ।
विविशुश्चाऽपि तं दीप्तं देहभावाय पावकम्॥ २३ ॥
ततोऽसुराः सगन्धर्वा यक्षराक्षसपन्नगाः ।
उत्पेतुर्नादमतुलमुत्सृजन्तो रणार्थिनः ॥ २४ ॥

तिससे इन्द्रके उस वज्र और बादलोंका वीर्य तथा तेज नष्ट हुआ, और जलधारा सूखी तथा बिजली नष्ट हुई, पल भरमें आकाश मण्डल गर्द और अन्धेरेसे साफ होगया ! सुखदायी ठण्डी हवा चलने लगी और सूर्यमण्डलने पहिलेकी प्रकृति प्राप्त की; तब अग्नि बिना रोक टोक देहियोंकी देहसे निकली हुई चर्बीसे और भी प्रबल होकर आनन्दकी उमङ्गमें नाना आकार धरके और बडे शब्दसे जग भरमें शिखायें फैलाकर जल उठा। (१५--१९)

हे महाराज ! सुपर्ण आदि पतत्रीगण श्रीकृष्ण और अर्जुनसे उस खाण्डव दावानल को रक्षित होते देखकर अहङ्कारसे आकाशको उडे और वज्रसमान पंख चोंच और नखोंसे वासुदेव और धनञ्जय को मारनेकी इच्छासे आकाशसे नीचे उतर आये तथा जलतेहुए मुखवाले विषैले सर्पगण कठोर विष गिराते हुए पाण्डवके सामने आ गिरे । आगे पाण्डुनन्दनने क्रोधकी आगसे सुलगे हुए बाणोंसे उन सबोंको काट कूट डाला, सो वे देवको नष्ट करनेके लिये भले प्रकार जलते हुए अग्निमें जा गिरे। (२०–२३)

अनन्तर असुर, गन्धर्व, यक्ष, राक्षस, और पन्नगगण लडनेके लिये बडा कोला-

अयःकणपचक्राश्मभुशुण्डयुद्यतबाहवः ।
कृष्णपार्थौ जिघांसन्तः क्रोधसंमूर्छितौजसः॥ २५॥
तेषामतिव्याहरतां शस्त्रवर्षं च मुञ्चताम् ।
प्रममाथोत्तमाङ्गानि बीभत्सुर्निशितैः शरैः ॥ २६ ॥
कृष्णश्च सुमहातेजाश्चक्रेणाऽरिविनाशनः ।
दैत्यदानवसङ्घानां चकार कदनं महत् ॥ २७ ॥
अथाऽपरे शरैर्विद्धाश्चक्रवेगेरितास्तथा ।
वेलामिव समासाद्य व्यतिष्ठन्नमितौजसः ॥ २८ ॥
ततः शक्रोऽतिसंक्रुद्धस्त्रिदशानां महेश्वरः ।
पाण्डुरं गजमास्थाय तावुभौ समुपाद्रवत् ॥ २९ ॥
वेगेनाऽशनिमादाय वज्रमस्त्रं च सोऽसृजत् ।
हतावेताविति प्राह सुरानसुरसूदनः ॥ ३० ॥
ततः समुद्यतां दृष्ट्वा देवेन्द्रेण महाशनिम् ।
जगृहुः सर्वशस्त्राणि स्वानि स्वानि सुरास्तथा॥ ३१ ॥
कालदण्डं यमो राजन्गदां चैव धनेश्वरः ।

हल मचाते हुए दौडे । क्रोधके मारे तब उनका तेज बढने लगा । वे अयःकण अर्थात् लोहेकी गेंद गिरानेके यन्त्र और चक्राश्म अर्थात् पत्थरके टुकडोंके बडी दूर फेंकनेका लकडीका बना यन्त्र, भुसुण्डी अर्थात् पत्थर फेंकनेका चमडेकी रस्सीसे बना हुआ यन्त्र,यह सब अस्त्र लेके हाथ उठाकर श्रीकृष्ण और अर्जुनको नष्ट करनेके लिये उद्यत हुए । बिभत्सु उनको अयोग्य वचन कह कहके बाण वर्षाते देखकर चोखे बाणोंसे उनके सिर मथने लगे । शत्रुकुलनाशी बडे तेजस्वी श्रीकृष्ण चक्रसे उन सब दैत्य दानवोंको नष्ट करने लगे । कोई कोई अति बली दैत्य दानव शरोंसे विद्ध और चक्रसे घायल हो उत्साह छोड ऐसे चुप हुए, कि जैसे जलके सोतमें लहरकी चोटसे घूमते हुए तिनके तीर पाके स्थिर होते हैं । (२५--२८)

अनन्तर देवोंके अधीश असुरसूदन इन्द्र अति क्रोधकर पाण्डुरवर्ण गज पर चढके धनञ्जय और श्रीकृष्ण पर चढ आये और वेगसे अमोघ अस्त्र वज्र लेकर उन पर छोडनेको उद्यत होके देवोंसे बोले, कि इस बार यह दोनों मरेंगे । देवोंने देवराजको महावज्र उठाते देखकर सबने अपना अपना अस्त्र ले लिया । हे महाराज ! यमराज कालदण्ड लेकर खडे

पाशांश्च तत्र वरुणो विचित्रं च तथाऽशनिम् ॥ ३२ ॥
स्कन्दः शक्तिं समादाय तस्थौ मेरुरिवाऽचलः ।
ओषधीर्दीप्यमानाश्च जगृहातेऽश्विनावपि ॥ ३३ ॥
जगृहे च धनुर्धाता मुसलं तु जयस्तथा ।
पर्वतं चाऽपि जग्राह क्रुद्धस्त्वष्टा महाबलः ॥ ३४ ॥
अंशस्तु शक्तिं जग्राह मृत्युर्देवः परश्वधम् ।
प्रगृह्य परिघं घोरं विचचाराऽर्यमा अपि ॥ ३५ ॥
मित्रश्च क्षुरपर्यन्तं चक्रमादाय तस्थिवान् ।
पूषा भगश्च संक्रुद्धः सविता च विशांपते ॥ ३६ ॥
आत्तकार्मुकनिस्त्रिंशाः कृष्णपार्थौ प्रदुद्रुवुः ।
रुद्राश्च वसवश्चैव मरुतश्च महाबलाः ॥ ३७ ॥
विश्वेदेवास्तथा साध्या दीप्यमानाः स्वतेजसा ।
एते चान्ये च बहवो देवास्तौ पुरुषोत्तमौ ॥ ३८ ॥
कृष्णपार्थौ जिघांसन्तः प्रतीयुर्विविधायुधाः ।
तत्राऽद्भुतान्यदृश्यन्त निमित्तानि महाहवे ॥ ३९ ॥
युगान्तसमरूपाणि भूतसंमोहनानि च ।
तथा दृष्ट्वा सुसंरब्धं शक्रं देवैः सहाच्युतौ ॥ ४० ॥

हुए, धननाथने गदा ली; वरुणने पाश और विचित्र अशनि लिया; स्कन्द शक्ति लेकर अचल गिरि मेरुकी भांति खडे हुए; दोनों अश्विनी कुमार हाथोंमें दीप्यमान औषधि लेकर खडे हुए, धाताने धनुष लिये; जयने मूषल लिया; महाबली त्वष्टाने रिसाकर पर्वत उठाया; सूर्यका अंश हाथोंमें देवशक्ति लेके लडनेको उद्यत हुआ। मृत्युदेवने परश्वध लिया; अर्यमा घोर परिघ लेके घूमने लगे और मित्र अस्तुरेके समान नोकदार चक्र लेकर खडे रहे। भग, पूषा और सविता भयानक धनुष और निस्त्रंश लेके क्रोधसे अर्जुन और श्रीकृष्णकी ओर दौडे। अपने तेजसे दीप्यमान महाबली रुद्रगण, वसुगण, मरुद्गण, विश्वेदेवगण, और साध्यगण यह और दूसरे अनेक देवगण भांति भांतिके अस्त्र लेकर पुरुषोत्तम श्रीकृष्ण और अर्जुनको नष्ट करनेके लिये चढ दौडे। (२९—३९)

तब युग अन्त होनेके कालकी भांति भूतोंको मोहनेवाले आश्चर्य नक्षत्र-पतन आदि बुरे बुरे चिन्ह प्रगट होने

अभीतौ युधि दुर्धर्षौ तस्थतुः सज्यकार्मुकौ ।
आगच्छतस्ततो देवानुभौ युद्धविशारदौ ॥ ४१ ॥
व्यताडयेतां संक्रुद्धौ शरैर्वज्रोपमैस्तदा ।
असकृद्भग्नसंकल्पाः सुराश्च बहुशः कृताः ॥ ४२ ॥
भयाद्रणं परित्यज्य शक्रमेवाऽभिशिश्रियुः ।
दृष्ट्वा निवारितान्देवान्माधवेनाऽर्जुनेन च ॥ ४३ ॥
आश्चर्यमगमंस्तत्र मुनयो नभसि स्थिताः ।
शक्रश्चापि तयोर्वीर्यमुपलभ्याऽसकृद्रणे ॥ ४४ ॥
बभूव परमप्रीतो भूयश्चैतावयोधयत् ।
ततोऽश्मवर्षं सुमहद्व्यसृजत्पाकशासनः ॥ ४५ ॥
भूय एव तदा वीर्यं जिज्ञासुः सव्यसाचिनः ।
तच्छरैरर्जुनो वर्षं प्रतिजघ्नेऽत्यमर्षितः ॥ ४६ ॥
विफलं क्रियमाणं तत्समवेक्ष्य शतक्रतुः ।
भूयः संवर्धयामास तद्वर्षं पाकशासनः ॥ ४७ ॥
सोऽश्मवर्षं महावेगैरिषुभिः पाकशासनिः ।
विलयं गमयामास हर्षयन्पितरं तथा ॥ ४८ ॥

लगे। युद्धमें अति कठोर अर्जुन और श्रीकृष्ण देवोंके साथ देवराजको युद्धमें सब प्रकारसे सन्नद्ध देखकर सज्य शरासन लेकर निर्भय और अटल चित्तसे खडे हुए। युद्धमें दक्ष वे दोनों वीर सब आये हुए देवोंको वज्र समान बाणोंसे क्रोधपूर्वक सब प्रकारसे पछाडने लगे; अनन्तर देवोंने कृष्णार्जुनसे वारंवार सब प्रकार सङ्कल्प खोकर भय खायके युद्धस्थलको छोडकर देवराजकी शरण ली। आकाशमें खडे मुनियोंने देवोंको कृष्णार्जुनके आगे पीठ दिखाते देखकर अचरज माना। अर्जुन और श्रीकृष्णका रणस्थलमें बार बार भुजवीर्यका प्रमाण पाय देवराज बहुत प्रसन्न हुए; और फिर लडने लगे। वह तब सव्यसाची धनञ्जयकी सामर्थ जानने की चाहसे बहुत पत्थर वर्षाने लगे। अर्जुन बहुत क्रोधकर महावेगवान बाणोंसे उस पत्थरवृष्टिको रोका। इन्द्र पत्थर वृष्टिको विफल देखकर फिर औरभी अधिक पत्थर गिराने लगे। इन्द्रनन्दन बडे तेज बाणोंसे उस भयानक पत्थर वृष्टिको रोककर पिताका आनन्द बढाने लगे। अनन्तर महेन्द्रने पाण्डुपुत्रको मारनेकी इच्छासे दोनों हाथोंसे मन्दर पर्वतको वृक्षसहित एक बडी भारी चोटीको उखाड कर

तत उत्पाट्य पाणिभ्यां मन्दराच्छिखरं महत् ।
सद्रुमं व्यसृजच्छक्रो जिघांसुः पाण्डुनन्दनम् ॥ ४९ ॥
ततोऽर्जुनो वेगवद्भिर्ज्वलिताग्रैरजिह्मगैः ।
शरैर्विध्वंसयामास गिरेः शृंगं सहस्रधा ॥ ५० ॥
गिरेर्विशीर्यमाणस्य तस्य रूपं तदा बभौ ।
सार्कचन्द्रग्रहस्येव नभसः परिशीर्यतः ॥ ५१ ॥
तेनाऽभिपतता दावं शैलेन महता भृशम् ।
शृङ्गेण निहतास्तत्र प्राणिनःखाण्डवालयाः॥ ५२ ॥ [८५११]

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यामादिपर्वणि खाण्डवदाहपर्वणि देवकृष्णार्जुनयुद्ध ऊनत्रिंशत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २२९ ॥

वैशम्पायन उवाच—तथा शैलनिपातेन भीषिताः खाण्डवालयाः ।
दानवा राक्षसा नागास्तरक्ष्वृक्षवनौकसः ॥ १ ॥
द्विपाः प्रभिन्नाः शार्दूलाः सिंहाः केसरिणस्तथा ।
मृगाः समहिषाश्चैव शरभाः पक्षिणस्तथा ॥
समुद्विग्ना विसस्रुपुस्तथाऽन्या भूतजातयः ॥ २ ॥
तं दावं समुदैक्षन्त कृष्णौ चाभ्युद्यतायुधौ ।
उत्पातनादशब्देन संत्रासितमिव स्थितम् ॥ ३ ॥
ते वनं प्रसमीक्ष्याऽथ दह्यमानमनेकधा ।
कृष्णमभ्युद्यतास्त्रं च नादं मुमुचुरुल्बणम् ॥ ४ ॥

फेका। अर्जुनने अजिह्मग,जलती हुई नोख वाले बडे तेजबाणोंसे उसपहाडकी चोटीको सहस्र खण्डोंमें तोड डाला। आकाश मण्डल से चन्द्र सूर्यादि ग्रह टुकडेही गिरनेके काल में जैसे पडते हैं, वह टूटी फूटी पहाडकी चोटी गिरनेके कालमें तैसीही दीख पडी। उस बडी भारी चोटीके खाण्डववन पर गिर जानेके हेतु उस काल उसकी चोटसे बहुतेरे प्राणियोंने प्राण छोडे। (४५-५२)

दोसौ उनतीस अध्याय समाप्त। [८५११]

आदिपर्वमें दो सौ तीस अध्याय।

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि अनन्तर खाण्डव वनके रहने वाले, दानव राक्षस सर्प ऋक्ष भेडिये उन्मत्त हस्ती केशरवाले सिंह, बाघ और दूसरे बनैले भूत उस पहाडके गिरनेसे भय खाय भीतिसे भागने लगे; और श्रीकृष्ण तथा अर्जुन को अस्त्र उठाये और उस वनकी सब ओरको बडे शब्दसे डोलता हुआ देखा। तब वे वनकी चारों ओरसे जलते और

तेन नादेन रौद्रेण नादेन च विभावसोः ।
ररास गगनं कृत्स्नमुत्पातजलदैरिव ॥ ५ ॥
ततः कृष्णो महाबाहुः स्वतेजोभास्वरं महत् ।
चक्रं व्यसृजदत्युग्रं तेषां नाशाय केशवः ॥ ६ ॥
तेनाऽऽर्ता जातयः क्षुद्राः सदानवनिशाचराः।
निकृत्ताः शतशः सर्वा निष्पेतुरनलं क्षणात् ॥ ७ ॥
तत्राऽदृश्यन्त ते दैत्याः कृष्णचक्रविदारिताः।
वसारुधिरसंपृक्ताः सन्ध्यायामिव तोयदाः ॥ ८ ॥
पिशाचान्पक्षिणो नागान्पशूंश्चैव सहस्रशः।
निघ्नंश्चरति वार्ष्णेयः कालवत्तत्र भारत ॥ ९ ॥
क्षिप्तं क्षिप्तं पुनश्चक्रं कृष्णस्याऽमित्रघातिनः।
छित्त्वाऽनेकानि सत्त्वानि पाणिमेति पुनः पुन॥१०॥
तथा तु निघ्नतस्तस्य पिशाचोरगराक्षसान् ।
बभूव रूपमत्युग्रं सर्वभूतात्मनस्तदा ॥ ११ ॥
समेतानां तु सर्वेषां देवतानां च सर्वशः ।
विजेता नाऽभवत्कश्चित्कृष्णपाण्डवयोर्मृधे ॥ १२ ॥

श्रीकृष्णको अस्त्र मारते देखकर बडा भयानक शब्द करने लगे। उन सब वनैले जीवोंके भयानक शब्द और अग्निकी चटचटाहट से आकाश मण्डल ऐसे गूंजने लगा, कि जैसे मेघ गर्जनसे गूंजे। (१-५)

अनन्तर महाभुज श्रीकृष्णने उनको मारनेके लिये अपने तेजसे जलता हुआ अति ऊंची नोखवाला बडा भारी चक्र उठाया। उस चक्रसे दानव निशाचर आदि वे सब जानवर भय खाय टुकडे टुकडे होय उसी क्षण अनलके मुखमें जाय गिरे। दैत्यगण श्रीकृष्णचन्द्रके चक्रसे टुकडे टुकडे हो और चर्बी तथा रक्तधार से नहाकर सन्ध्याकालके घने बादलकी भांति दीखने लगे। हे भारत! वृष्णि नन्दन श्रीकृष्ण यमराजकी भांति सहस्रों पिशाच, पक्षी, सर्प और पशु मारते हुए फिरने लगे। सर्व भूतोंकी आत्मा श्रीकृष्ण के इस प्रकार पिशाच उरग राक्षस आदिको नष्ट करने पर उस कालमें उन का आकार बडा रूखा जान पडने लगा, आये हुए देवोंमेंसे एकभी कृष्णार्जुनके युद्धमें जय नहीं पासका। देवोंने जब देखा, कि कृष्णार्जुनके बाहुबलसे उस वनको बचानेके लिये दावानल बुझाना उनसे बन नहीं पडा, तब वे पीठ

तयोर्बलात्परित्रातुं तं च दावं यदा सुराः ।
नाऽशक्नुवन्समाधितुं तदाऽभूवन्पराङ्मुखाः ॥ १३ ॥
शतक्रतुस्तु संप्रेक्ष्य विमुखानमरांस्तथा ।
बभूव मुदितो राजन्प्रशंसन्केशवार्जुनौ ॥ १४ ॥
निवृत्तेष्वथ देवेषु वागुवाचाऽशरीरिणी ।
शतक्रतुं समाभाष्य महागम्भीरनिःस्वना ॥ १५ ॥
न ते सखा संनिहितस्तक्षको भुजगोत्तमः ।
दाहकाले खाण्डवस्य कुरुक्षेत्रं गतो ह्यसौ ॥ १६ ॥
न च शक्यो युधा जेतुं कथंचिदपि वासव ।
वासुदेवार्जुनावेतौ निबोध वचनान्मम ॥ १७ ॥
नरनारायणावेतौ पूर्वदेवौ दिवि श्रुतौ ।
भवानप्यभिजानाति यद्वीर्यौ यत्पराक्रमौ ॥ १८ ॥
नैतौ शक्यौ दुराधर्षौ विजेतुमजितौ युधि ।
अपि सर्वेषु लोकेषु पुराणावृषिसत्तमौ ॥ १९ ॥
पूजनीयतमावेतावपि सर्वैः सुरासुरैः ।
यक्षराक्षसगन्धर्वनरकिंनरपन्नगैः ॥ २० ॥
तस्मादितः सुरैः सार्धं गन्तुमर्हसि वासव ।
दिष्टं चाऽप्यनुपश्यैतत्खाण्डवस्य विनाशनम् ॥ २१ ॥

दिखाकर चले गये । (६-१३)

हे महाराज ! अमरनाथ अमरोंको मुख मोडते देख प्रसन्न होकर केशव और अर्जुनकी प्रशंसा करने लगे। अनन्तर सब स्वर्गवासियोंके निवृत्त होनेपर महेन्द्र को इस प्रकार आकाशवाणी हुई, कि तुम्हारा सखा सर्पराज तक्षक मारा नहीं गया, खाण्डवदाहके कालमें वह कुरुक्षेत्र में गया था। हे इन्द्र! तुम मेरे वचनसे निश्चय जानना, कि कोई भी किसी प्रकारसे वासुदेव अर्जुनका युद्धमें सामना नहीं कर सकेगा । यह लोग देवलोकमें प्रशंसित पुरातन देव नर नारायण हैं; इनका जैसा वीर्य और जितना पराक्रम है, वह तुमभी जानते हो । यह युद्धमें अजेय और दुर्द्धर्ष हैं, इनको पराजय करना सर्व लोकोंमें किसीकी सामर्थ नहीं है । यह दो पुराण ऋषिसत्तम; अमर, असुर, यक्ष, राक्षस, गन्धर्व, नर, किन्नर, पन्नग आदि सबोंके बडे पूजनीय हैं, सो हे इन्द्र ! तुम देवोंके साथ यहां से लौट जाओ । यह खाण्डवदाह विधिपूर्वकही हुआ । (१४-२१)

इति वाक्यमुपश्रुत्य तथ्यमित्यमरेश्वरः ।
क्रोधामर्षौ समुत्सृज्य संप्रतस्थे दिवं तदा ॥ २२ ॥
तं प्रस्थितं महात्मानं समवेक्ष्य दिवौकसः ।
सहिताः सेनया राजन्ननुजग्मुः पुरंदरम् ॥ २३ ॥
देवराजं तदा यान्तं सह देवैरवेक्ष्य तु ।
वासुदेवार्जुनौ वीरौ सिंहनादं विनेदतुः ॥ २४ ॥
देवराजे गते राजन्प्रहृष्टौ केशवार्जुनौ ।
निर्विशङ्कं वनं वीरौ दाहयामासतुस्तदा ॥ २५ ॥
स मारुत इवाऽभ्राणि नाशयित्वाऽर्जुनः सुरान् ।
व्यधमच्छरसङ्घातैर्देहिनः खाण्डवालयान् ॥२६॥
न च स्म किंचिच्छक्नोति भूतं निश्चरितुं ततः ।
संछिद्यमानमिषुभिरस्यता सव्यसाचिना ॥ २७ ॥
नाऽशक्नुवंश्च भूतानि महान्त्यपि रणेऽर्जुनम् ।
निरीक्षितुममोघास्त्रं योद्धुं चापि कुतो रणे ॥ २८ ॥
शतं चैकेन विव्याध शतमेकं पतत्रिणाम् ।
व्यसवस्तेऽपतन्नग्नौ साक्षात्कालहता इव ॥ २९ ॥
न चाऽलभन्त ते शर्म रोधःसु विषमेषु च ।
पितृदेवनिवासेषु संतापश्चाऽप्यजायत ॥ ३० ॥

तब अमरनाथ इन्द्र वह वचन सच जानकर क्रोध तज देवलोकको गये । हे महाराज ! देवोंने अपने नाथ इन्द्रको चले जाते देखकर सेनाओंके साथ उन की राह ली । वीर अर्जुन और वासुदेवने सेनागण और इन्द्रको मुख मोडते देख-कर सिंहनाद किया । हे महाराज ! इन्द्रके चले जाने पर वे निर्भय होकर खाण्डववनको जलाने लगे । पवन जिस प्रकार बादलोंको भगाता है, तैसे ही अर्जुन देवोंको परास्त कर खाण्डवमें रहने वाले प्राणियोंको मारमारकर फूकने लगे । उनके बाणोंसे काटे जानेसे कोई भी प्राणी वहांसे निकल नहीं सका । बडे बडे महाब-ली प्राणियोंका अर्जुनसे लडना तो दूर रहा, वे उनकी ओर ताकभी नहीं सके। २२-२८

अर्जुन कभी कभी एक बाणसे सौ प्राणी मारने लगे । वे सब प्राणी मानों साक्षात् कालसे मारे जाय और प्राण छोड अग्निके मुखमें गिरने लगे, वे न तो नदी, न तो तट, न रूखी ठौर और न श्मशान कहीं भी मङ्गल प्राप्ति नहीं कर सके;

सत्वसंघाश्च बहवो दीनाश्चक्रुर्महास्वनम् ।
रुरुदुर्वारणाश्चैव तथा मृगतरक्षवः ॥ ३१ ॥
तेन शब्देन वित्रेसुर्गङ्गोदधिचरा झषाः ।
विद्याधरगणाश्चैव ये च तत्र वनौकसः ॥ ३२ ॥
न त्वर्जुनं महाबाहो नापि कृष्णं जनार्दनम्।
निरीक्षितुं वै शक्नोति कश्चिद्योद्धुं कुतः पुनः॥ ३२ ॥
एकायनगता येऽपि निष्पेतुस्तत्र केचन ।
राक्षसा दानवा नागा जघ्ने चक्रेण तान्हरिः ॥३४॥
ते तु भिन्नशिरोदेहाश्चक्रवेगाद्गतासवः ।
पेतुरन्ये महाकायाः प्रदीप्ते वसुरेतसि ॥ ३५ ॥
स मांसरुधिरौघैश्च वसाभिश्चापि तर्पितः ।
उपर्याकाशगो भूत्वा विधूमः समपद्यत ॥ ३६ ॥
दीप्ताक्षो दीप्तजिह्वश्च संप्रदीप्तमहाननः ।
दीप्तोर्ध्वकेशः पिङ्गाक्षः पिबन्प्राणभृतां वसाः॥ ३७॥
तां स कृष्णार्जुनकृतां सुधां प्राप्य हुताशनः ।
बभूव मुदितस्तृप्तः परां निर्वृतिमागतः ॥ ३८ ॥

सभी ठौर कडे तापसे तपने लगे । अगणित प्राणी दीन मनसे बडी चिल्लाहटके साथ रोने पीटने लगे, हस्ती हरिन और भेडिये चिल्लाकर रोने लगे, उस शब्दसे अति दूरकी गङ्गाचर और समुद्रचर मछलियां और विद्याधर तथा उन स्थानोंके निकट जितने वनवासी थे,सब बहुत भय खागये। हे महाभुज! किसीका कृष्णार्जुनसे लडना तो दूर रहा,अर्जुन और जनार्दन पर दृष्टि चलाना भी बन नहीं पडा,जिन सब राक्षस, दानव और नागोंने एकत्र मिल कर दौडके भागना चाहा। श्रीकृष्णने उनको चक्रसे नष्ट किया, वे चक्रके वेगसे सिरकाटे,धडकटे बनके प्राण छोड जलती हुई आगमें जा गिरे और दूसरे बडे भारी भारी जीवभी आगके मुहमें गिरने लगे। तब अग्नि मांस रक्त और चर्बीसे भले प्रकार तृप्त होय धुआं तज आकाशको चढ गये और पिङ्गल आंखें, जीभ, मुख और ऊंचे ऊंचे बालों को प्रज्वलित कर जीवोंकी चर्बी पीने लगे। उन कृष्णार्जुनसे अमृत पीकर प्रमुदित और तृप्त होय परम सन्तोष प्राप्त किया । (२९—३८)

अनन्तर मधुसूदनने एकायक देखा, कि मय नामक असुर तक्षकके वासस्थान से भागा जाता है । और पवनके सारथि

तथाऽसुरं मयं नाम तक्षकस्य निवेशनात् ।
विप्रद्रवन्तं सहसा ददर्श मधुसूदनः ॥ ३९ ॥
तमाग्निः प्रार्थयामास दिधक्षुर्वातसारथिः ।
शरीरवाञ्जटी भूत्वा नदन्निव बलाहकः ॥ ४० ॥
विज्ञाय दानवेन्द्राणां मयं वै शिल्पिनां वरम् ।
जिघांसुर्वासुदेवस्तं चक्रमुद्यम्य धिष्ठितः ॥ ४१ ॥
स चक्रमुद्यतं दृष्ट्वा दिधक्षन्तं च पावकम् ।
अभिधावाऽर्जुनेत्येवं मयस्त्राहीति चाऽब्रवीत् ॥४२॥
तस्य भीतस्वनं श्रुत्वा मा भैरिति धनंजयः ।
प्रत्युवाच मयं पार्थो जीवयन्निव भारत ॥ ४३ ॥
तं न भेतव्यमित्याह मयं पार्थो दयापरः ॥ ४४ ॥
तं पार्थनाऽभये दत्ते नमुचेर्भ्रातरं मयम् ।
न हन्तुमैच्छद्दाशार्हः पावको न ददाह च ॥४५ ॥
वैशम्पायन उवाच- तद्वनं पावको धीमान्दिनानि दश पञ्च च ।
ददाह कृष्णपार्थाभ्यां रक्षितः पाकशासनात् ॥ ४६ ॥
तस्मिन्वने दह्यमाने षडग्निर्न ददाह च ।
अश्वसेनं मयं चैव चतुरः शार्ङ्गकांस्तथा ॥ ४७ ॥ [८५५८]

इति श्रीमहाभारते० खाण्डवदाहपर्वणि मयदानवत्राणे त्रिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २३० ॥

अग्नि शरीर लेके और जटा धरके बादल के समान शब्द करते हुए उसको पकडनेकी इच्छा कर रहे हैं; तब वासुदेवजी उसको मारनेके लिये चक्र उठाके खडे हुए। मयदानवने उनको चक्र उठाते और अग्निको निगलनेकी इच्छा पर आते देखकर कहा, कि हे अर्जुन दौडो, मुझे बचाओ। अर्जुन उसका वह करुणस्वर सुनकर मानों जीवन दे करही बोले, कि मत डरो। वह दयाशील थे, सो मयको ढाढस दिया। अनन्तर अर्जुनके नमुचिके भाई उस दैत्यको ढाढस देने पर दाशार्ह श्रीकृष्णने फिर उसे मारना नहीं चाहा। और अग्निभी जलानेको प्रवृत्त नहीं हुए। (३९—४५)

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि धीमान हुताशनने अर्जुन और श्रीकृष्ण द्वारा इंद्रसे रक्षित होकर पन्द्रह दिनमें उस वनको जलाया। उस वनके जलानेके कालमें अग्निने केवल अश्वसेन, मय और शार्ङ्गक नामक चार पक्षी इन छओंको नहीं जलाया

आदिपर्वमें दोसौ तीस अध्याय समाप्त। [८५५८]

जनमेजय उवाच-- किमर्थं शार्ङ्गकानग्निर्न ददाह तथागते ।
तस्मिन्वने दह्यमाने ब्रह्मन्नेतत्प्रचक्ष्व मे ॥ १ ॥
अदाहे ह्यश्वसेनस्य दानवस्य मयस्य च ।
कारणं कीर्तितं ब्रह्मञ्शार्ङ्गकाणां न कीर्तितम् ॥२॥
तदेतदद्भुतं ब्रह्मञ्शार्ङ्गकाणामनामयम् ।
कीर्तयस्वाऽग्निसंमर्दे कथं ते न विनाशिताः ॥ ३ ॥
वैशम्पायन उवाच--यदर्थं शार्ङ्गकानग्निर्न ददाह तथागते ।
तत्ते सर्वं प्रवक्ष्यामि तथाभूतमरिंदम ॥ ४ ॥
धर्मज्ञानां मुख्यतमस्तपस्वी संशितव्रतः ।
आसीन्महर्षिः श्रुतवान्मन्दपाल इति श्रुतः ॥ ५ ॥
स मार्गमाश्रितो राजन्नृषीणामूर्ध्वरेतसाम् ।
स्वाध्यायवान्धर्मरतस्तपस्वी विजितेन्द्रियः ॥ ६ ॥
स गत्वा तपसः पारं देहमुत्सृज्य भारत ।
जगाम पितृलोकाय न लेभे तत्र तत्फलम् ॥ ७ ॥
स लोकानफलान्दृष्ट्वा तपसा निर्जितानपि ।
पप्रच्छ धर्मराजस्य समीपस्थान्दिवौकसः ॥ ८ ॥

आदिपर्वमें दोसौ इकतीस अध्याय।

जनमेजय बोले, कि हे ब्रह्मन्! यह प्रगट करो, कि उस वनके जलानेके समय उस दशामें अग्निने क्यों शार्ङ्गक पक्षियोंको नहीं जलाया। अश्वसेन और मयदानव जिन उपायोंसे नहीं जले वह आपने कह सुनाया है; पर चार शार्ङ्गके न जलनेका कारण नहीं कहा; हे ब्रह्मन्! शार्ङ्गकोंका बचना मुझको अचरजसा जान पडता है; कहो, कि वे उस अग्निदाहसे क्यों नहीं मरे। (१--३)

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि शत्रुदमन! उस दशामें हुताशनने जिस कारण शार्ङ्गकोंको नहीं जलाया, वह आपसे कहता हूं, सुनो। हे महाराज! मन्दपाल नामक प्रख्यात तपस्वी विद्वान् व्रतशील धर्मके जानकार अति श्रेष्ठ एक महर्षि थे। वह स्वाध्यायमें नियुक्त और जितेन्द्रिय होके सदा तपस्या और धर्म करते थे। वह ऊर्ध्वरेता ऋषियोंकी बाटसे चलकर तपस्याके दूसरे पारको उतर गये थे। हे भारत! जब वह देह छोडके पितृलोकको गये, तब बटोरी हुई तपस्याका कोई फल प्राप्त नहीं हुआ। (४--७)

उन महर्षिने अपनी कठोर तपस्यासे उपार्जन किये हुए लोकमें न जाने पाकर

मन्दपाल उवाच—किमर्थमावृता लोका ममैते तपसाऽर्जिताः ।
किं मया न कृतं तत्र यस्यैतत्कर्मणः फलम् ॥ ९ ॥
तत्राऽहं तत्करिष्यामि यदर्थमिदमावृतम् ।
फलमेतस्य तपसः कथयध्वं दिवौकसः ॥ १० ॥
देवा ऊचुः— ऋणिनो मानवा ब्रह्मञ्जायन्ते येन तच्छृणु ।
क्रियाभिर्ब्रह्मचर्येण प्रजया च न संशयः ॥ ११ ॥
तदपाक्रियते सर्वं यज्ञेन तपसा सुतैः ।
तपस्वी यज्ञकृच्चापि न च ते विद्यते प्रजा ॥ १२ ॥
त इमे प्रसवस्यार्थे तव लोकाः समावृताः ।
प्रजायस्व ततो लोकानुपभोक्ष्यासि पुष्कलान्॥१३॥
पुंनाम्नो नरकात्पुत्रस्त्रायते पितरं श्रुतिः ।
तस्मादपत्यसंताने यतस्व ब्रह्मसत्तम ॥ १४ ॥
वैशम्पायन उवाच—तच्छ्रुत्वा मन्दपालस्तु वचस्तेषां दिवौकसाम्।
क नु शीघ्रमपत्यं स्याद्बहुलं चेत्यचिन्तयत् ॥ १५ ॥
स चिन्तयन्नभ्यगच्छत्सुबहुप्रसवान्खगान् ।
शार्ङ्गिकां शार्ङ्गको भूत्वा जरितां समुपेयिवान् ।

धर्मराजके निकट देवोंसे पूछा, कि मेरी तपस्यासे उपार्जन किया हुआ पुण्यलोक क्यों रुका है ? जिन कर्मोंके करनेसे इन सब पुण्यलोकोंमें जाया जाता है, क्या मैंने उन कर्मोंको नहीं किया है? हे देव-गण ! आप कहें, कि क्यों मेरी तपस्या का फल रुका हुआ है, मैं उसको करनेको प्रस्तुत हूं । (८—१०)

देवोंने कहा, कि हे ब्रह्मन् ! सुनो इसमें संन्देह नहीं कि मानवगण क्रिया, ब्रह्मचर्य और सन्तान उपजाना इन सब विषयोंका ऋणियां बनके जन्म लेते हैं । यज्ञ, तपस्या और पुत्रोत्पादन इन तीन कर्मोंसे यह ऋण चुकता है । तुमने बहुत तपस्या और यज्ञ किया है, पर तुम्हारे सन्तान नहीं है, सो यह सब पुण्यलोग तुम्हारे लिये रुके हैं । तुम पुत्र उपजा-ओ, तो इन श्रेष्ठ लोकों को भोगने पाओगे। हे ब्रह्मश्रेष्ठ! श्रुति है, कि पुत्र पिता को पुतनामक नरकसे बचाता है सो तुम पुत्र उपजानेका प्रयत्न करो । (११-१४)

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि अनन्तर मन्दपाल देवोंका वह वचन सुनकर सो-चने लगे, कि किस योनिमें जन्म लेनेसे शीघ्र अधिक सन्तान उपज सकती हैं। अनन्तर उन्होंने यह सोचकर कि पक्षी-

तस्यां पुत्रानजनयच्चतुरो ब्रह्मवादिनः ॥ १६ ॥
तानपास्य स तत्रैव जगाम लपितां प्रति ।
बालान्सुतानण्डगतान्सह मात्रा मुनिर्वने ॥ १७ ॥
तस्मिन्गते महाभागे लपितां प्रति भारत ।
अपत्यस्नेहसंयुक्ता जरिता बह्वचिन्तयत् ॥ १८ ॥
तेन त्यक्तानसंत्याज्यानृषीनण्डगतान्वने ।
न जहौ पुत्रशोकार्ता जरिता खाण्डवे सुतान् ॥ १९ ॥
बभार चैतान्संजातान्स्ववृत्त्या स्नेहविक्लवा ।
ततोऽग्निं खाण्डवं दग्धुमायान्तं दृष्टवानृषिः ॥ २० ॥
मन्दपालश्चरंस्तस्मिन्वने लपितया सह ।
तं संकल्पं विदित्वाऽग्नेर्ज्ञात्वा पुत्रांश्च बालकान् ॥ २१ ॥
सोऽभितुष्टाव विप्रर्षिर्ब्राह्मणो जातवेदसम् ।
पुत्रान्प्रति वदन्भीतो लोकपालं महौजसम् ॥ २२ ॥

मन्दपाल उवाच——त्वमग्ने सर्वलोकानां मुखं त्वमसि हव्यवाट् ।
त्वमन्तः सर्वभूतानां गूढश्चरसि पावक ॥ २३ ॥

की जातिको स्वल्पकाल में बहुत सन्तान होती हैं, शार्ङ्गिक पक्षी बनके जरिता नाम शर्ङ्गितकासे मिलकर उसके गर्भ-से चार ब्रह्मवादी पुत्र उपजाये। अनन्तर वह अण्डेसे उपजे हुए बच्चोंको उनकी माताके साथ उस वनहीमें छोडके लपिताके पास गये। (१६—१७)

हे भारत! उन महाभागके लपिताके पास चले जानेपर जरिता पुत्रस्नेहसे कातर हो अनेक प्रकारकी चिंता करने लगी। ऋषिके उस खांडव वनमें उन अण्डोंमें स्थित बच्चोंको छोडने परभी जरिता पुत्र शोकसे कातर हो कर त्यागनेके अयोग्य उन बच्चोंको छोड नहीं सकी; उनको स्नेहके मारे अपनी वृत्ति अवलम्बन कर पालने लगी। (१८--२०)

अनन्तर ऋषि मन्दपालने लपिताके साथ उस वनमें चरते हुए देखा, कि अग्नि खाण्डव वन जलानेको आरहा है; ब्रह्मके जानकार विप्रर्षि वह महातेजस्वी मन्दपाल जातवेदाका वह अभिप्राय समझकर, अपनी सन्तानोंको बालक जानके उनके लिये उनसे विनय करनेकी इच्छासे भयखाय स्तव करने लगे, कि हे अग्ने! तुम सर्वलोकोंके मुखस्वरूप हुए हो; तुम हवन के पदार्थ ग्रहण किया करते हो। हे पावक! तुम सर्व लोकोंके हृदयमें छिप कर चरा करते हो।

त्वामेकमाहुः कवयस्त्वामाहुस्त्रिविधं पुनः ।
त्वामष्टधा कल्पयित्वा यज्ञवाहमकल्पयन् ॥ २४॥
त्वया विश्वमिदं सृष्टं वदन्ति परमर्षयः ।
त्वदृते हि जगत्कृत्स्नं सद्यो नश्येद्धुताशन ॥२५ ॥
तुभ्यं कृत्वा नमो विप्राः स्वकर्मविजितां गतिम् ।
गच्छन्ति सह पत्नीभिः सुतैरपि च शाश्वतीम्॥२६॥
त्वामग्ने जलदानाहुः खे विषक्तान्सविद्युतः ।
दहन्ति सर्वभूतानि त्वत्तो निष्क्रम्य हेतयः ॥२७॥
जातवेदस्त्वयैवेदं विश्वं सृष्टं महाद्युते ।
तवैव कर्म विहितं भूतं सर्वं चराचरम् ॥ २८ ॥
त्वयाऽऽपो विहिताः पूर्वं त्वयि सर्वमिदं जगत् ।
त्वयि हव्यं च कव्यं च यथावत्संप्रतिष्ठितम्॥२९॥
त्वमेव दहनो देव त्वं धाता त्वं बृहस्पतिः ।
त्वमश्विनौ यमौ मित्रः सोमस्त्वमसि चाऽनिलः ३०॥
वैशम्पायन उवाच- एवं स्तुतस्तदा तेन मन्दपालेन पावकः ।
तुतोष तस्य नृपते मुनेरमिततेजसः ॥ ३१ ॥

कविगण तुमको अद्वितीय कहा करते हैं, और तीन प्रकारका भी कहते हैं, तथा तुमको अष्टधा कल्पना करके यज्ञ किया करते हैं। हे हुताशन ! परमार्षिगण कहते हैं, कि तुम्हीने संसारको रचा है; और तुम्हारे न रहनेसे आजही जगन्मण्डल नष्ट होता। ब्राह्मणगण तुम्हीको प्रणाम कर स्त्रीपुत्रोंके साथ शाश्वत-लोकको जय करके उसमें जाते हैं। हे अग्ने! पण्डित लोग तुमको विद्युतके साथ आकाश में स्थित मेघ कहते हैं। हे पावक ! तुमसे शिखा निकलकर सर्व भूतोंको जलाती हैं । हे महाद्युत ! कर्मोंका विधान करनेवाला वेद तुम्हाराही वचन है; और यह सब स्थावर जङ्गमात्मक जीव तुम्हीसे बने हैं। हे अग्ने ! पहिले तुम्हींमें जलका विधान है। यह सम्पूर्ण जगत तुममें स्थित है; और सम्पूर्ण हव्यकव्य तुम्हीको आश्रय कर विद्यमान हैं। हे देव ! तुम्ही दहन, तुम्ही विधाता, तुम्ही बृहस्पति, तुम्ही दोनों अश्विनी-कुमार, तुम्ही अर्क, तुम्ही सोम और तुम्ही पवन स्वरूप हो। (२१—३०)

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि हे महाराज! अति तेजस्वी मन्दपालमुनिके इस प्रकार अग्निकी स्तुति करने पर अग्नि उन पर

उवाच चैनं प्रीतात्मा किमिष्टं करवाणि ते ॥ ३२ ॥
तमब्रवीन्मन्दपालः प्राञ्जलिर्हव्यवाहनम् ।
प्रदहन्खाण्डवं दावं मम पुत्रान्विसर्जय ॥ ३३ ॥
तथेति तत्प्रतिश्रुत्य भगवान्हव्यवाहनः ।
खाण्डवे तेन कालेन प्रजज्वाल दिधक्षया ॥ ३४ ॥ [८५९२]

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यामादिपर्वणि खाण्डवदाहपर्वणि
शार्ङ्गकोपाख्याने एकत्रिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २३१ ॥

ततः प्रज्वलिते वह्नौ शार्ङ्गकास्ते सुदुःखिताः ।
व्यथिताः परमोद्विग्ना नाऽधिजग्मुः परायणम् ॥ १ ॥
निशम्य पुत्रकान्बालान्माता तेषां तपस्विनी ।
जरिता दुःखशोकार्ता विललाप सुदुःखिता ॥ २ ॥

जरितोवाच — अयमग्निर्दहन्कक्षमित आयाति भीषणः ।
जगत्सन्दीपयन्भीमो मम दुःखविवर्धनः ॥ ३ ॥
इमे च मां कर्षयन्ति शिशवो मन्दचेतसः ।
अबर्हाश्चरणैर्हीनाः पूर्वेषां नः परायणाः ॥ ४ ॥
त्रासयंश्चाऽयमायाति लेलिहानो महीरुहान् ।

प्रसन्न हुए और प्रीतिपूर्वक उनसे कहा, कि बोलो तुम्हारा अभीष्ट क्या है, मैं पूरा कर देता हूं। मन्दपाल दोनों हाथ जोडके बोले, कि हव्यवाहन ! तुम जब खाण्डववनको जलाओगे, तब मेरे बच्चों-को मत जलाना। भगवान् हव्यवाहनने तथास्तु कहके मान लिया, और उस कालमें खाण्डवदाव जलानेके वास्ते जल उठे। (३१-३४) [८५९२]

आदिपर्वमें दोसौ इकतीस अध्याय समाप्त।

आदिपर्वमें दोसौ बत्तीस अध्याय।

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि अनन्तर अग्निके जलने पर वे शार्ङ्गकपक्षीके बच्चे बहुत भय खाय घबरा उठे; उनको ढूंढने परभी बचनेका कोई उपाय नहीं मिला। उनकी माता तपस्विनी जरिता बच्चोंको बहुत छोटे देखकर दुःख शोक से विलपती हुई कहने लगी, कि मेरा दुःख बढानेवाला यह भयानक अग्नि वनको जलाता हुआ सब ठौरमें उजाला करके डरावने स्वरूपमें आय रहा है। पर मेरे छोटे छोटे इन बच्चोंके पंख नहीं जमे हैं, तथा वे उड भी नहीं सकते और अज्ञान हैं; और यह पुरुषोंकी एकही गति हैं, यह मेरे हृदय दुःखी हो रहे हैं। यह अग्नि हर घडी वृक्षोंको चाटता

अजातपक्षाश्च सुता न शक्ताः सरणे मम ॥ ५ ॥
आदाय च न शक्नोमि पुत्रांस्तरितुमात्मना ।
न च त्यक्तुमहं शक्ता हृदयं दूयतीव मे ॥ ६ ॥
कं तु जह्यामहं पुत्रं कमादाय व्रजाम्यहम् ।
किं नु मे स्यात्कृतं कृत्यं किं वा मन्यत पुत्रकाः७॥
चिन्तयाना विमोक्षं वो नाधिगच्छामि किंचन ।
छादयिष्यामि वो गात्रैः करिष्ये मरणं सह ॥८॥
जरितारौ कुलं ह्येतज्ज्येष्ठत्वेन प्रतिष्ठितम् ।
सारिसृक्कः प्रजायेत पितॄणां कुलवर्धनः ॥ ९ ॥
स्तम्बमित्रस्तपःकुर्याद् द्रोणो ब्रह्मविदां वरः।
इत्येवमुक्त्वा प्रययौ पिता वो निर्घृणः पुरा ॥१०॥
कमुपादाय शक्येयं गन्तुं कष्टाऽऽपदुत्तमा ।
किं नु कृत्वा कृतं कार्यं भवेदिति च विह्वला ।
नाऽपश्यत्स्वधिया मोक्षं स्वसुतानां तदाऽनलात् ११

वैशम्पायन उवाच—एवं ब्रुवाणं शार्ङ्गास्ते प्रत्यूचुरथ मातरम् ।

और भय उभाडता हुआ इधर आ रहा है। पर मेरे इन बिना पंखके बच्चोंको भागनेकी शक्ति नहीं है,और मुझ अकेली कोभी इतनी सामर्थ नहीं है,कि इन सबोंको लेकर इस विपत समुद्रसे भाग सकूं;इनको छोडकर भागभी नहीं सकती हूं। हा ! मेरा हृदय मानों डोल रहा है। मैं किस बच्चेको लेकर जाऊं; किसको छोड, क्या करूं जो मनोरथ सिद्ध हो ? ऐ बेटो ! तुम क्या विचारते हो ? मैं तो सोच समझ कर तुम्हारे बचनेका कोई उपाय नहीं देखती; मैं अपनी देहसे तुमको छिपाके अन्तमें तुम सबोंके साथ जल मरूंगी। तुम्हारा निर्दयी पिता पहिले चले जानेके कालमें बोला था, कि "मेरे चार बेटोंमें ज्येष्ठ जरितारी नामक पुत्र-से वंश प्रतिष्ठित होगा;सारिसृक नामक पुत्र सन्तान उपजायके कुल बढावेगा; स्तम्बमित्र नामक पुत्र तपस्या करेगा और द्रोणनामक प्रशंसित पुत्र वेदमें पण्डित होगा।" पर अब यह दुःखदायी विपद आ पडी;मैं किसे ले जा सकूंगी?क्या करनेसे कार्यको निबटा सकूंगी!जरिता ऐ-से बहुविधि सोच कर घबरा उठी;उसको अपनी बुद्धिसे अपने पुत्रोंको बचानेका कोई उपाय नहीं सूझ पडा।(१---११)

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि शार्ङ्ग-कोंने माताको इस प्रकार विलपते सुनकर

स्नेहमुत्सृज्य मातस्त्वं पत यत्र न हव्यवाट् ॥१२॥
अस्मास्विह विनष्टेषु भवितारः सुतास्तव ।
त्वयि मातर्विनष्टायां न नः स्यात्कुलसन्ततिः १३॥
अन्ववेक्ष्यैतदुभयं क्षेमं स्याद्यत्कुलस्य नः ।
तद्वै कर्तुं परः कालो मातरेष भवेत्तव ॥ १४ ॥
मा त्वं सर्वविनाशाय स्नेहं कार्षीः सुतेषु नः ।
न हीदं कर्म मोघं स्याल्लोककामस्य नः पितुः॥१५॥

जरितोवाच — इदमाखोर्बिलं भूमौ वृक्षस्याऽस्य समीपतः ।
तदाविशध्वं त्वरिता वह्नेरत्र न वो भयम् ॥१६॥
ततोऽहं पांसुना छिद्रमपिधास्यामि पुत्रकाः ।
एवं प्रतिकृतं मन्ये ज्वलतः कृष्णवर्त्मनः ॥ १७ ॥
तत एष्याम्यतीतेऽग्नौ विहन्तुं पांसुसञ्चयम् ।
रोचतामेष वो वादो मोक्षार्थं च हुताशनात्॥१८॥

शार्ङ्गा ऊचुः— अबर्हान्मांसभूतान्नः क्रव्यादाखुर्विनाशयेत् ।
पश्यमाना भयमिदं प्रवेष्टुं नाऽत्र शक्नुमः॥ १९ ॥

कहा, कि माता ! तू स्नेह छोडकर वहां जा, कि जहां आग नहीं हो ! हे माता! हम मर जायंगे तो तेरी और सन्तान उपज सकेंगी;पर तेरी मरनेसे वंशरक्षाका उपाय न रहेगा । हे माता ! अब तेरे लिये वह काल आ पहुंचा है, जब कि हमारे साथ प्राण छोडना अथवा हमें छोडके अपनेको बचाना, इन दो विषयोंकी भले प्रकार आलोचना वही करना चाहिये, जिसके करनेसे हमारे कुलका मंगल हो, तू फिर सर्वनाशी पुत्रस्नेह मत कर, ऐसा करनेसे स्वर्गलोकदायी पुत्र चाहनेवाले पिताका सब कर्म व्यर्थ हो जायगा । (१२-१५)

जरिता बोली, कि हे पुत्रो! इस वृक्षके निकट धरतीके भीतर मूषका बिल दीख पडता है, तुम तुरन्त इसमें जा घुसो; यहां अग्निका भय जाता रहेगा। तुम्हारे इसमें बैठनेसे मैं धूलसे इस बिलका मुह तोप दूंगी; अब प्रज्वालित अग्निसे बचने का यही एक उपाय देखती हूं । जब आग बुझेगी, तब मैं आकर बिलके मुख से राखका ढेर हटा दूंगी । तुम अग्निसे बचनेके लिये मेरा यह वचन मानो । (१६—१८)

शार्ङ्गोंने कहा, कि हमारे पंख नहीं जमे हैं,हम मांसपिण्डही हैं,सो मांस खानेवाले मूष अवश्य हमको नष्ट करेंगे; इस

कथमग्निर्न नो धक्ष्येत्कथमाखुर्न नाशयेत् ।
कथं न स्यात्पिता मोघः कथं माता ध्रियेत नः॥२०॥
बिल आखोर्विनाशः स्यादग्नेराकाशचारिणाम्।
अन्ववेक्ष्यैतदुभयं श्रेयान्दाहो न भक्षणम् ॥ २१ ॥
गर्हितं मरणं नः स्यादाखुना भक्षिते बिले।
शिष्टादिष्टः परित्यागः शरीरस्य हुताशनात् ॥ २२ ॥[८६१४]

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यामादिपर्वणि खाण्डवदाहपर्वणि
जरिताविलापे द्वात्रिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २३२ ॥

जरितोवाच -- अस्माद्बिलान्निष्पतितमाखुं श्येनो जहार तम्।
क्षुद्रं पद्भ्यां गृहीत्वा च यातो नाऽत्र भयं हि वः॥१॥
शार्ङ्गका ऊचुः— न हृतं तं वयं विद्मः श्येनेनाऽऽखुं कथंचन ।
अन्येऽपि भवितारोऽत्र तेभ्योऽपि भयमेव नः॥२॥
संशयो वह्निरागच्छेद् दृष्टं वायोर्निवर्तनम्।
मृत्युर्नो बिलवासिभ्यो बिले स्यान्नाऽत्र संशयः॥३॥

भयकी बातको जान बूझ कर हम इसके भीतर घुस नहीं सकते। अब क्योंकर अग्नि हमें न जलावे, क्योंकर मूष हमें न खावे, क्योंकर पिताका पुत्र उपजाना व्यर्थ न होवे, क्योंकर हमारी माताका प्राण बचे, इनमेंसे किसीका एकभी उपाय नहीं देखते; सो निश्चयही हमारी मृत्यु आ पहुंची है। पर बिलमें घुसें, तो मूषसे और बाहर रहें तो अग्निसे मरेंगे; इन दो मृत्युओंके विषयमें समझ बूझके देखनेसे यही युक्ति होती है, कि अग्निसे जल मरना अच्छा है,मूषसे खाये जाना उचित नहीं है, क्योंकि शिष्ट हुताशनके मुखसे देह छोडनेसे सुगति होगी। बिलमें मूषसे खाये जानेसे अनुचित मृत्यु होगी। (१९-२२) [८६१४]

आदिपर्वमें दोसौ बत्तीस अध्याय समाप्त।

आदिपर्वमें दो सौ तैतीस अध्याय।

जरिता बोली, कि इस गड्ढेसे एक छोटा मूष निकला था; एक बाज आके पावोंसे उसे पकड ले गया है; इस बिलमें तुमको भय नहीं है। शार्ङ्गोंने कहा, कि हम बाजका मूष ले जानेका ब्योरा नहीं जानते, और लेभी गया हो, तो उस बिलमें और अधिकमूष रहभी सकते हैं;उनसे हमको बिना संदेह भय होरहा है; और यह अग्नि आवे, कि नहीं इसमें संदेह है, क्योंकि उलटे वायुसे अग्निका बुझना भी देखा गया है; सो बिलमें रहनेसे निश्चयही हमारी मृत्यु होगी और बाहर

निःसंशयात्संशयितो मृत्युर्मातर्विशिष्यते ।
चर खे त्वं यथान्यायं पुत्रानाप्स्यसि शोभनान् ४

जरितोवाच— अहं वेगेन तं यान्तमद्राक्षं पततांवरम् ।
बिलादाखु समादाय श्येनं पुत्रा महाबलम् ॥ ५॥
तं पतन्तं महावेगा वारिता पृष्ठतोऽन्वगाम् ।
आशिषोऽस्य प्रयुञ्जाना हरतो मूषिकं बिलात्॥६॥
यो नो द्वेष्टारमादाय श्येनराज प्रधावसि ।
भव त्वं दिवमास्थाय निरमित्रो हिरण्मयः ॥ ७ ॥
स यदा भक्षितस्तेन श्येनेनाऽऽखुः पतत्रिणा ।
तदाऽहं तमनुज्ञाप्य प्रत्युपायां पुनर्गृहम् ॥ ८ ॥
प्रविशध्वं बिलं पुत्रा विश्रब्धा नास्ति वो भयम् ।
श्येनेन मम पश्यन्त्या हृत आखुर्महात्मना ॥ ९॥

शार्ङ्गका ऊचुः— न विद्महे हृतं मातः श्येनेनाऽऽखुं कथंचन ।
अविज्ञाय न शक्यामः प्रवेष्टुं विवरं भुवः ॥ १० ॥

जरितोवाच— अहं तमभिजानामि हृतं श्येनेन मूषिकम् ।
नाऽस्ति वोऽत्र भयं पुत्राः क्रियतां वचनं मम॥११॥

रहनेसे मृत्यु होनेमें संदेह है । हे माता! जिस स्थानमें मृत्युका होना निश्चय है, उससे वह किसी प्रकार अच्छा है, कि जहां मृत्युमें संदेह है; सो न्यायके अनुसार तुमको आकाशहीको उड जाना उचित है; तुम्हारा जीवन बचे तो तुम दूसरे अच्छे पुत्र पासकोगी । (१—४)

जरिता बोली, कि "हे बेटो! जब पक्षीवर बाज बिलसे मूषको लेकर वेगसे भागा था, तब मैंने उसके पीछे दौडकर अशीस दिया था, कि "हे बाजराज ! तुम हमारे शत्रुको लेके भागते हो, सो तुम विना शत्रु देवलोकमें सुनौली देह पाकर वसो।" अनन्तरउस बाजके मूषको खाजाने पर मैं उसे जता कर घरको लौट आयी। हे बेटो ! अब तुम चित्तमें कोइ शङ्का न उठाकर बिलमें जाओ, तुमको कोई शङ्का न होगी; महात्मा बाजने मेरे सामनेही मूषको खाडाला है। शार्ङ्गोंने कहा, कि हे मायी! हमने नहीं देखा, कि बाज मूषको हरले गया है, सो हम विशेष न जानके बिल में घुस नहीं सकते । जरिता बोली, बेटो! तुम मेरी बात मानो, इसमें तुम्हे कोई भय नहीं है, क्योंकि मैं जानती हूं, कि बाज मूषको हर लेगया है। (५-११)

शार्ङ्गका ऊचुः— न त्वं मिथ्योपचारेण मोक्षयेथा भयाद्धि नः ।
समाकुलेषु ज्ञानेषु न बुद्धिकृतमेव तत् ॥ १२ ॥
न चोपकृतमस्माभिर्न चाऽस्मान्वेत्थ ये वयम्।
पीड्यमाना बिभर्ष्यस्मान्का सती के वयं तव१३॥
तरुणी दर्शनीयाऽसि समर्था भर्तुरेषणे ।
अनुगच्छ पतिं मातः पुत्रानाप्स्यसि शोभनान१४॥
वयमग्निं समाविश्य लोकानाप्स्याम शोभनान् ।
अथाऽस्मान्न दहेदग्निरायास्त्वं पुनरेव नः ॥ १५ ॥

वैशम्पायन उवाच--एवमुक्ता ततः शार्ङ्गी पुत्रानुत्सृज्य खाण्डवे ।
जगाम त्वरिता देशं क्षेममनग्निनामयम् ॥ १६ ॥
ततस्तीक्ष्णार्चिरभ्यागात्त्वरितो हव्यवाहनः ।
यत्र शार्ङ्गा बभूवुस्ते मन्दपालस्य पुत्रकाः ॥१७॥
ततस्तं ज्वलितं दृष्ट्वा ज्वलनं ते विहङ्गमाः ।
जरितारिस्ततो वाक्यं श्रावयामास पावकम्॥ १८॥ [८६३२]

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यामादिपर्वणि खाण्डवदाहपर्वणि
शार्ङ्गोपाख्याने त्रयस्त्रिंशदधिक-त्रिशततमोऽध्यायः ॥ २३३ ॥

शार्ङ्गोंने कहा, कि हम नहीं समझते, कि तुम झूठे उपचारसे हमारा भय भगाती हो, क्यों कि बुद्धि भयद्वारा बिगडनेसे जो कर्म किया जाता है, वह ज्ञानसे नहीं होता है । हमने कभी तुम्हारा कोई उपकार नहीं किया, और तुम यहभी नहीं जानती, कि हम कौन हैं, फिर क्यों कष्ट उठाकर हमको बचानेकी चेष्टा कर रही हो ? देखो न तो तुम हमारी कोई हो और न हम तुम्हारे कोई लगते हैं । हे मा ! तुम युवती और रूपवती हो और पति ढूंढनेको सामर्थभी रखती हो, सो तुम पतिके पीछे जाओ, तिनसे अच्छा पुत्र पा सकोगी । हम अग्निमें घुसकर अच्छे लोकमें जायंगे । यदि अग्नि हमको न जलावे; तो फिर तुम हमारे पास आना। श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि शार्ङ्गी पुत्रोंसे यह बात सुनकर, उन्हें उस खाण्डववनमें छोडके तुरन्त ऐसी बिन पीडा की ठौरमें चली गयी, कि जहां अग्निका भय नहीं था; अनन्तर अग्नि वेगसे और तेज शिखायें लिये मन्दपालके पुत्र शार्ङ्गोंके खोतेके पास आये। तब उन पक्षियोंने प्रज्वालित अग्निको देखा; और उनका ज्येष्ठ जरितारि उस अग्निको कहने लगा। ८६३२

आदिपर्वमें दोसौ तैंतीस अध्याय समाप्त ।

जरितारिरुवाच— पुरतः कृच्छ्रकालस्य धीमाञ्जागर्ति पूरुषः ।
स कृच्छ्रकालं संप्राप्य व्यथां नैवैति कर्हिचित् ॥१॥
यस्तु कृच्छ्रमनुप्राप्तं विचेता नाऽवबुध्यते ।
स कृच्छ्रकाले व्यथितो न श्रेयो विन्दते महत् २॥
सारिसृक्क उवाच—धीरस्त्वमसि मेधावी प्राणकृच्छ्रमिदं च नः ।
प्राज्ञः शूरो बहूनां हि भवत्येको न संशयः ॥ ३ ॥
स्तम्बमित्र उवाच—ज्येष्ठस्त्राता भवति वै ज्येष्ठो मुञ्चति कृच्छ्रतः ।
ज्येष्ठश्चेन्न प्रजानाति कनीयान्किं करिष्यति ॥ ४ ॥
द्रोण उवाच— हिरण्यरेतास्त्वरितो ज्वलन्नायाति नः क्षयम्।
सप्तजिह्वाननः क्रूरो लेलिहानो विसर्पति ॥ ५ ॥
वैशम्पायन उवाच—एवं संभाष्य तेन्योन्यं मन्दपालस्य पुत्रकाः ।
तुष्टुवुः प्रयता भूत्वा यथाऽग्निं शृणु पार्थिव ॥ ६ ॥
जरितारिरुवाच— आत्माऽसि वायोर्ज्वलन शरीरमसि वीरुधाम् ।
योनिरापश्च ते शुक्रं योनिस्त्वमसि चाऽम्भसः ७ ॥

आदिपर्वमें दोसौ चौंतीस अध्याय ।

जरितारि बोला, कि ज्ञानी जन मृत्यु कालके पहिलेसे जागते रहते हैं, उनको कभी मृत्यु की पीडा सहनी नहीं पडती। विना चेतन जन मृत्यु काल आजाने पर सोते हुएके समान रहता है, उसको मृत्यु की पीडा भोगनी पडती है; और वह मोक्षको नहीं पा सकता। (१-२)

सारिसृक्क बोला, हमारा यह प्राणका क्लेश आ गया है;तुम धीर और बुद्धिमान हो, तुम्हीं हमारी रक्षा करो ; क्योंकि बहुतेरोंमेंसे एकही पुरुष बुद्धिमान और शूर होता है। (३)

स्तम्बमित्र बोला, ज्येष्ठ भ्राता कनिष्ठोंके त्राता होते हैं, सो ज्येष्ठ भ्राताही विपतसे बचाते हैं। जो ज्येष्ठ भाई न बचावें, तो कनिष्ठ क्या कर सकता है ? (४)

द्रोण बोला,कि वह कुटिल कर्मवाला सुवर्णरेता सात जीभ सात मुह सहित वेगसे जलाता लहलहाता हमारे खोते पर आरहा है। (५)

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि हे पृथ्वीनाथ ! मन्दपालके पुत्रोंने ऐसा कह सुनकर जिस प्रकार अग्निका स्तव किया था,वह कहता हूं सुनो। जरितारि बोला, कि हे जलानेवाले ! तुम वायुकी आत्मा हो, तुम लताओं की देह हो। हे शुक्र !तुम्हारे उपजनेका स्थान जल है और तुम जलके उपजानेका स्थान

ऊर्ध्वं चाऽधश्च सर्पन्ति पृष्ठतः पार्श्वतस्तथा ।
अर्चिषस्ते महावीर्य रश्मयः सवितुर्यथा ॥ ८ ॥

सारिसृक्क उवाच–माता प्रणष्टा पितरं न विद्मः पक्षा जाता नैव नो धूमकेतो ।
न नस्त्राता विद्यते वै त्वदन्यस्तस्मादस्मांस्त्राहि बालांस्त्वमग्ने ॥ ९ ॥
यदग्ने ते शिवं रूपं ये च ते सप्त हेतयः ।
तेन नः परिपाहि त्वमार्तान्नः शरणैषिणः ॥ १० ॥
त्वमेवैकस्तपसे जातवेदो नाऽन्यस्तप्ता विद्यते गोषु देव ।
ऋषीनस्मान्बालकान्पालयस्व परेणाऽस्मान्प्रैहि वै हव्यवाह ११ ॥

स्तम्बमित्र उवाच–सर्वमग्ने त्वमेवैकस्त्वयि सर्वमिदं जगत् ।
त्वं धारयसि भूतानि भुवनं त्वं बिभर्षि च ॥ १२ ॥
त्वमग्निर्हव्यवाहस्त्वं त्वमेव परमं हविः ।
मनीषिणस्त्वां जानन्ति बहुधा चैकधापि च ॥ १३ ॥
सृष्ट्वा लोकांस्त्रीनिमान्हव्यवाह काले प्राप्ते पचसि पुनः समिद्धः ।
त्वं सर्वस्य भुवनस्य प्रसूतिस्त्वमेवाग्ने भवसि पुनः प्रतिष्ठा ॥ १४ ॥

हो । हे महावीर्य ! तुम्हारी शिखा सूर्यके उजालेके समान उंचे नीचे पीछे किनारे और सब जगह फैली रहती हैं । (६—८)

सारिसृक्क बोला, कि हे धूमकेतो ! हमारी मा दृष्टिके बाहर उड गयी है, पिताको भी हम नहीं पहिचानते और अभीतक हमारे पंख नहीं जमे,हम बहुत बच्चे हैं । हे अग्ने ! अब तुम्हारे बिना हमारा बचानेहारा नहीं है; सो तुम हमको बचाओ । हे अग्ने ! तुम्हारा जो कल्याणकारी रूप और सात शिखा हैं, उन्हीसे हम भय खाये और शरण लिये हुओंको बचाओ । हे जातवेद ! तुम अकेलेही ताप फैलाते हो। हे देव! किसी किरणको तुम्हारे बिना ताप पहुंचानेवाला कोई नहीं है । हे हव्यवाहन ! हम ऋषि-पुत्र और बच्चे हैं, हमारी रक्षा करो,हमारे यहांसे अन्य स्थानको जाओ ।(९-११)

स्तम्बमित्र बोला, कि हे अग्ने ! तुम अकेले संपूर्ण ब्राह्मणरूपी हो; तुम्ही पर यह संपूर्ण जगत् विराजमान है; तुम जीवोंको पालते हो; तुम तेज पदार्थ हो; तुम हव्यको वहन करते हो; और तुम अच्छे हव्यरूपी हो। पण्डितलोग तुमको कारण रूपमें एकरूपी और कार्य-रूपमें बहुरूपी जानते हैं । हे हव्यवाहन अग्ने ! तुम पहिले सृष्टिको रचते हो;आगे काल आने पर तुम्ही बढकर फिर उसका नाश करते हो; तुम्ही संम्पूर्ण भुवनकी

द्रोण उवाच— त्वमन्न प्राणिभिर्भुक्तमन्तर्भूतो जगत्पते ।
नित्यप्रवृद्धः पचसि त्वयि सर्वं प्रतिष्ठितम् ॥ १५ ॥
सूर्यो भूत्वा रश्मिभिर्जातवेदो भूमेरम्भो भूमिजातान्रसांश्च ।
विश्वानादाय पुनरुत्सृज्य काले वृष्ट्या सृष्ट्या भावयसीह शुक्र ॥१६॥
त्वत्त एताः पुनः शुक्र वीरुधो हरितच्छदाः ।
जायन्ते पुष्करिण्यश्च सुभद्रश्च महोदधिः ॥ १७ ॥
इदं वै सद्म तिग्मांशो वरुणस्य परायणम् ।
शिवस्त्राता भवाऽस्माकं माऽस्मानद्य विनाशय ॥ १८ ॥
पिङ्गाक्ष लोहितग्रीव कृष्णवर्त्मन्हुताशन ।
परेण प्रैहि मुञ्चाऽस्मान्सागरस्य गृहानिव ॥ १९ ॥
वैशम्पायन उवाच—एवमुक्तो जातवेदा द्रोणेन ब्रह्मवादिना ।
द्रोणमाह प्रतीतात्मा मन्दपालप्रतिज्ञया ॥ २० ॥
अग्निरुवाच— ऋषिर्द्रोणस्त्वमसि वै ब्रह्मैतद्व्याहृतं त्वया ।
ईप्सितं ते करिष्यामि न च ते विद्यते भयम् ॥ २१ ॥
मन्दपालेन वै यूयं मम पूर्वं निवेदिताः ।
वर्जयेः पुत्रकान्मह्यं दहन्दावमिति स्म ह ॥ २२ ॥

उत्पत्ति-स्थान हो और प्रलय स्थानभी तुम्ही हो। (१२–१४)

द्रोण बोला, कि हे जगत्पते ! तुम जीवोंके भीतर रहके बढकर उन का खाया हुआ अन्न नित्य नित्य पचाते हो; सो सब भूत तुम्हारी ही शरणमें रहते हैं। हे शुक्र ! हे जातवेद ! तुम सूर्य स्वरूप बनके किरणसे भूमिमें उपजा हुआ सब रस और धरतीमें स्थित जल ले, समय समय पर फिर उसे वृष्टि द्वारा छोडकर सब अनाज उपजाते हो। हे शुक्र ! तुम्हीसे यह सब पत्तोंवाली लता, सरोवर और मङ्गलनिधान समुद्र उपज रहे हैं। हे कडे किरणधारिन् ! हमारी यह देह रसनेन्द्रिय के नाथ जलपति वरुण पर निर्भर है; अतएव तुम जब उस जलके विधाता हो, सो हमारे कल्याणकारी हो; ऐसी दशामें हमको बचानाही तुमको उचित है, तुम हमको नष्ट मत करो। हे पिङ्गलनेत्र ! हे लालग्रीव ! हे कृष्णवर्त्मन् ! हे हुताशन ! तुम हमसे दूर रहो, सागरके पास बने घरके समान हमें छोडो। १५-१९

श्रीवैशम्पायनजी बोले, आगे जातवेदा अग्नि द्रोणकी यह बात सुने प्रसन्न हुए; और मन्दपालसे जो कुछ सुना था, वह स्मरण कर बोले, हे द्रोण ! तुम

तस्य तद्वचनं द्रोण त्वया यच्चेह भाषितम् ।
उभयं मे गरीयस्तु ब्रूहि किं करवाणि ते ॥ २३ ॥
भृशं प्रीतोऽस्मि भद्रं ते ब्रह्मन्स्तोत्रेण सत्तम॥ २४ ॥

द्रोण उवाच— इमे मार्जारकाः शुक्र नित्यमुद्वेजयन्ति नः ।
एतान्कुरुष्व दग्धांस्त्वं हुताशन सबान्धवान्॥ २५ ॥
तथा तत्कृतवानग्निरभ्यनुज्ञाय शार्ङ्गकान् ।
ददाह खाण्डवं दावं समिद्धो जनमेजय ॥ २६ ॥ [८६५८]

इति श्रीमहाभारते० खाण्डवदाहपर्वणि शार्ङ्गोपाख्याने चतुस्त्रिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २३४ ॥

वैशम्पायन उवाच- मन्दपालोऽपि कौरव्य चिन्तयामास पुत्रकान् ।
उक्त्वाऽपि च स तिग्मांशुं नैव शर्माऽधिगच्छति १॥
स तप्यमानः पुत्रार्थे लपितामिदमब्रवीत् ।
कथं त्वशक्ताः शरणे लपिते मम पुत्रकाः ॥ २ ॥
वर्धमाने हुतवहे वाते चाऽऽशु प्रवायति ।
असमर्था विमोक्षाय भविष्यन्ति ममात्मजाः ॥३॥

ऋषि हो, तुमने जो कहा,वह वेदस्वरूप है, तुम्हारी अभिलाषा पूरी करूंगा, तुम भय मत खाओ । पहिले मन्दपालने तुम्हारे लिये मुझसे कहा था, कि "जब तुम खाण्डव वनको जलाओगे, तब मेरे पुत्रोंको न जलाना । " हे द्रोण ! मन्दपालकी वह बात और तुम्हारी यह बात हमारे लिये बहुत अधिक हुई है; सो कहो, तुम्हारे लिये मुझको क्या करना होगा ? हे ब्रह्मश्रेष्ठ ! तुम्हारी इस स्तुति पर मैं बडा कृतार्थ हुआ हूं; तुम्हारा मंगल होगा । द्रोण बोला, हे हुताशन शुक्र! यह सब बिल्ली नित्य हमको सताती है, सो तुम इन्हे वंशसहित जलाओ । अनन्तर अग्निने शार्ङ्गोंको जनाय जनायके उनकी प्रार्थना पूरी की, और बढचढकर खाण्डव वनको जलाने लगे । (१०-२६) [८६५८]

आदिपर्वमें दोसौ चौंतीस अध्याय समाप्त ।

आदिपर्वमें दोसौ पैंतीस अध्याय ।

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि हे कौरव्य! इधर वह मन्दपाल तेज प्रकाशमान अग्निसे वैसा वचन कहने परभी पुत्रोंके लिये सोचमें रहे; किसी प्रकार मनको स्थिर नहीं कर सके । वह पुत्रके लिये मनको उदास कर लपितासे बोले,लपिते! नहीं जानता मेरे बेटे जो चलने नहीं जानते हैं, कैसे हैं ! जब वायु चलनेके साथ अग्नि तेज होगा, तब मेरे बेटे अग्निसे बच नहीं सकेंगे, उनकी माता

कथन्त्वशक्ता त्राणाय माता तेषां तपस्विनी।
भविष्यति हि शोकार्ता पुत्रत्राणमपश्यती ॥ ४ ॥
कथमुड्डीयनेऽशक्तान्पतने च ममात्मजान्।
संतप्यमाना बहुधा वाशमाना प्रधावती ॥ ५ ॥
जरितारिः कथं पुत्रः सारिसृक्कः कथं च मे।
स्तम्बमित्रः कथं द्रोणः कथं सा च तपस्विनी।।६॥
लालप्यमानं तमृषिं मन्दपालं यथा वने।
लपिता प्रत्युवाचेदं सासूयमिव भारत ॥ ७ ॥
न ते पुत्रेष्ववेक्षाऽस्ति यानृषीनुक्तवानसि।
तेजस्विनो वीर्यवन्तो न तेषां ज्वलनाद्भयम् ॥ ८ ॥
त्वयाऽग्नौ ते परीताश्च स्वयं हि मम संनिधौ।
प्रतिश्रुतं तथा चेति ज्वलनेन महात्मना ॥ ९ ॥
लोकपालो न तां वाचमुक्त्वा मिथ्या करिष्यति।
समक्षं बन्धुकृत्ये न तेन ते स्वस्थ मानसम् ॥१० ॥
तामेव तु ममाऽमित्रां चिन्तयन्परितप्यसे।
ध्रुवं मयि न ते स्नेहो यथा तस्यां पुराऽभवत् ११॥

क्योंकर उन बच्चोंको बचा सकेगी? वह तपस्विनी पुत्रोंको बचानेका उपाय न देखकर शोकसे विकल होगी। क्योंकर ऊपर उडने में असमर्थ मेरे बच्चोंको लेके हृदयमें दुःख पाय बहुत रोती पीटती दौडेगी! हा! बेटा जरितारि क्योंकर जीयेगा? सारिसृक्क क्योंकर प्राण बचावेगा? स्तम्बामित्र क्योंकर बचेगा? द्रोण क्योंकर रक्षा पावेगा? मेरी वह तपस्विनी स्त्री क्योंकर जी सकेगी? १-६

हे भारत! महर्षि मन्दपाल वनमें इस प्रकार विलप रहे थे; वह देखकर लपिता द्वेषवश उनसे कहने लगी, कि तुमने जिन पुत्रोंकी बात कही, उनके लिये मत सोचो, वे तेजस्वी और वीर्यवन्त हैं, अग्निसे उनको भय नहीं है, और तुमने स्वयं उन पुत्रोंकी रक्षाके लिये अग्निसे कहा था। महात्मा हुताशननेभी तथास्तु कहके उस बातको मान लिया था। वह लोकपाल होकर कभी कही बातकी विरुद्धता नहीं करेंगे, इस लिये इस विषय में तुम्हारा चित्त स्वस्थ है, वास्तवमें तुम्हारा मन बन्धुके कार्यका विरोधी है; तुम मेरी शत्रु जरिताहीको स्मरण कर व्याकुल होरहे हो। पहिले जरिता पर तुम्हारा जैसा स्नेह था, अब मुझ पर वैसा

न हि पक्षवता न्याय्यं निःस्नेहेन सुहृज्जने ।
पीडयमान उपद्रष्टुं शक्तेनाऽऽत्मा कथंचन ॥ १२ ॥
गच्छ त्वं जरितामेव यदर्थं परितप्यसे ।
चरिष्याम्यहमप्येका यथा कुपुरुषाश्रिता ॥ १३ ॥
मन्दपाल उवाच—नाहमेवं चरे लोके यथा त्वमभिमन्यसे ।
अपत्यहेतोर्विचरे तच्च कृच्छ्रगतं मम ॥ १४ ॥
भूतं हित्वा च भाव्यर्थे योऽवलम्बेत्स मन्दधीः ।
अवमन्येत तं लोको यथेच्छसि तथा कुरु ॥ १५ ॥
एष हि प्रज्वलन्नग्निर्लेलिहानो महीरुहान् ।
आविग्ने हृदि संतापं जनयत्याशिवं मम ॥ १६ ॥
वैशम्पायन उवाच--तस्माद्देशादतिक्रान्ते ज्वलने जरिता पुनः ।
जगाम पुत्रकानेव जरिता पुत्रगृद्धिनी ॥ १७ ॥
सा तान्कुशलिनः सर्वान्विमुक्ताञ्जातवेदसः ।
रोरूयमाणान्ददृशे वने पुत्रान्निरामयान् ॥ १८ ॥
अश्रूणि मुमुचे तेषां दर्शनात्सा पुनः पुनः ।

नहीं है;जिनके दो पक्ष हैं,वह स्त्री पुत्रादि स्वजनोंका कष्टमें पडनेसे स्नेह खोय उनकी उपेक्षा कर सकता है,उसको कभी आत्मपक्षकी उपेक्षा न करनी चाहिये,सो अब तुम जिसके लिये शोक करते हो,उस जरिताहीके निकट चले जाओ, मैंने न समझ बूझके जैसे पुरुषकी शरण ली थी; उसीके फलसे अकेली चरा करूंगी । (७—१३)

मन्दपाल बोले, तुम मुझको जैसा समझ रही हो, मैं तिस भावसे नहीं चलता हूं । पर केवल सन्तान उपजाने हीके लिये ऐसे फिर रहा हूं । अब मेरी उपजायी सन्तान कष्टमें पडी हैं। जो गये विषयको छोड भावीकी आशा करता है, वह मूढजन लोगोंका अनादर प्राप्त करता है, सो तुम जो चाहती हो सो करो, मेरा हृदय उन सन्तानोंके लिये बडा उदास है, यह प्रज्वलित अग्नि वृक्षको चाटते हुए मेरे उस विकल हृदयमें अमङ्गलका भय और दुःखहीको ला रहा है । श्रीवैशम्पायनजी बोले, अनन्तर अग्निके शार्ङ्गोंके खाताको छोडकर आगे बढनेसे जरिता रोती पीटती हुई तथा पुत्रोंको ढूंढती फिरती वहां आ पहुंची और देखा, कि सब पुत्र वनमें अग्निसे बचे चंगे और कुशल हैं। अनन्तर वे माताको देखकर रोने लगे । जारिता उनको निहारकर बार बार आंसू गिराने लगी और उनको हर घडी

एकैकश्येन तान्सर्वान्क्रोशमानाऽन्वपद्यत ॥ १९ ॥
ततोऽभ्यगच्छत्सहसा मन्दपालोऽपि भारत ।
अथ ते सर्व एवैनं नाऽभ्यनन्दंस्तदा सुताः ॥२० ॥
लालप्यमानमेकैकं जरितां च पुनः पुनः ।
न चैवोचुस्तदा किंचित्तमृषिं साध्वसाधु वा ॥२१॥

मन्दपाल उवाच— ज्येष्ठः सुतस्ते कतमः कतमस्तस्य चाऽनुजः ।
मध्यमः कतमश्चैव कनीयान्कतमश्च ते ॥ २२ ॥
एवं ब्रुवन्तं दुःखार्तं किं मां न प्रतिभाषसे ।
कृतवानपि हि त्यागं नैव शान्तिमितो लभे ॥२३॥

जरितोवाच— किं नु ज्येष्ठेन ते कार्यं किमनन्तरजेन ते ।
किं वा मध्यमजातेन किं कनिष्ठेन वा पुनः ॥२४ ॥
यां त्वं मां सर्वतो हीनामुत्सृज्याऽपि गतः पुरा ।
तामेव लपितां गच्छ तरुणीं चारुहासिनीम् ॥२५॥

मन्दपाल उवाच— न स्त्रीणां विद्यते किंचिदमुत्र पुरुषान्तरात् ।
सापत्नकमृते लोके नाऽन्यदर्थविनाशनम् ॥ २६ ॥
वैराग्निदीपनं चैव भृशमुद्वेगकारि च ।

चिल्लाते देखकर धीरे धीरे सबको निकट जाके गले लगाया। (१४-१९)

हे भारत! इस अवसर में महर्षि मन्दपाल एकायक जा पहुंचे, उनके पुत्रोंने उनको देखकर आनन्द प्रकाश नहीं किया। वह ऋषि हर पुत्र और जरितासे बार बार संभाषण करने लगे, पर उन्हों ने भला बुरा कुछभी उत्तर नहीं दिया। आगे मन्दपाल जरिताका नाम लेकर बोले, कौन तुम्हारा बडा बेटा, कौन मझला, कौन तीसरा और कौन छोटा है। मैं दुःखवश बार बार तुमसे यह पूछता हूं, तुम क्यों प्रतिउत्तर वा संभाषण नहीं करती हो। मैं तुम्हें छोडके यहांसे चले जा करके शांति पा नहीं सका। (२०--२३)

जरिता बोली, तुमको बडे बेटे, मझले, तीसरे बेटे वा छोटे बेटेसे क्या प्रयोजन है? पहिले तुमने मुझको हर बातमें निकृष्ट देखा था; जिसके पास गये थे, अब उस मधुरहासिनी युवती लपिताही के पास जाओ। मन्दपाल बोले, नारिओंके लिये सौत वा दूसरे पुरुषके बिना इस लोक में अधिक शोचनीय वैरकी आग जलानेवाला और परलोकमें पुरुषार्थ नष्टकारी और कुछ दीख नहीं पडता।

सुव्रता चाऽपि कल्याणि सर्वभूतेषु विश्रुता॥२७॥
अरुन्धती महात्मानं वसिष्ठं पर्यशङ्कत ।
विशुद्धभावमत्यन्तं सदा प्रियहिते रतम् ॥ २८॥
सप्तर्षिमध्यगं वीरमवमेने च तं मुनिम् ।
अपध्यानेन सा तेन धूमारुणसमप्रभा ॥
लक्ष्यालक्ष्या नाऽभिरूपा निमित्तमिव पश्यति २९
अपत्यहेतोः संप्राप्तं तथा त्वमपि मामिह ।
इष्टमेवं गते हि त्वं सा तथैवाऽद्य वर्तते ॥ ३०॥
न हि भार्येति विश्वासः कार्यः पुंसा कथंचन ।
न हि कार्यमनुध्याति नारी पुत्रवती सती ॥ ३१॥
वैशम्पायन उवाच–ततस्ते सर्व एवैनं पुत्राः सम्यगुपासते ।
स च तानात्मजान्सर्वानाश्वासयितुमुद्यतः॥ ३२॥ [८६९०]

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यामादिपर्वणि खाण्डवदाहपर्वणि शार्ङ्गोपाख्याने पञ्चत्रिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २३५ ॥

मन्दपाल उवाच– युष्माकमपवर्गार्थं विज्ञप्तो ज्वलनो मया ।

सप्तर्षिके बीचमें स्थित ऋषिश्रेष्ठ महानुभव वसिष्ठ अति पवित्र स्वभावी और सदा पत्नीके प्रेमी और हितकारी कार्यमें लगे रहते थे। तिस परभी सर्व लोकोंमें प्रशंसिता सुव्रता अरुन्धतीने उन ऋषिवर वसिष्ठको व्यभिचारका कलङ्क लगाके अनादर किया था। (२४—२९)

वह कल्याणी अरुन्धतीके वैसी अनुचित चिंता करने पर वह धूआं और सूर्यसमान प्रकाशवती, बिन देखे रूपधरी कभी दीखती कभी न दीखती कुलक्षणों के समान लोगोंकी आखोंमें पडती है। वसिष्ठ जैसे अरुन्धतीके अनिष्ट नहीं थे; मैं भी तैसेही तुम्हारा अनिष्ट नहीं हूं; मैं केवल सन्तानहीके लिये मिला हूं; ऐसी दशामें तुम मुझ पर अरुन्धतीके समान व्यवहार करती हो; स्त्रियोंको भार्या कहके कदापि न विश्वास करना चाहिये; उनके पुत्र होनेसे वे पतिकी सेवादि कार्य अवश्य कर्तव्य करने नहीं समझती। श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि अनन्तर उनके पुत्र उनकी उपासनामें प्रवृत्त हुए, वह भी उन पुत्रोंको ढाढस देने लगे। (२९—३२) [८६९०]

आदिपर्वमें दोसो पैंतीस अध्याय समाप्त।

आदिपर्वमें दोसौ छत्तीस अध्याय।

मन्दपाल बोले, मैंने तुमको अग्निसे जल जानेसे बचानेके लिये महानुभव

अग्निना च तथेत्येवं प्रतिज्ञातं महात्मना ॥ १ ॥
अग्नेर्वचनमादाय मातुर्धर्मज्ञतां च वः ।
भवतां च परं वीर्यं पूर्वं नाऽहमिहाऽऽगतः ॥ २ ॥
न संतापो हि वः कार्यः पुत्रका हृदि मां प्रति ।
ऋषीन्वेद हुताशोऽपि ब्रह्म तद्विदितं च वः ॥ ३ ॥
वैशम्पायन उवाच—एवमाश्वासितान्पुत्रान्भार्यामादाय स द्विजः ।
मन्दपालस्ततो देशादन्यं देशं जगाम ह ॥ ४ ॥
भगवानपि तिग्मांशुः समिद्धः खाण्डवं गतः ।
ददाह सह कृष्णाभ्यां जनयञ्जगतो हितम् ॥ ५ ॥
वसामेदोवहाः कुल्यास्तत्र पीत्वा च पावकः ।
जगाम परमां तृप्तिं दर्शयामास चाऽर्जुनम् ॥ ६ ॥
ततोऽन्तरिक्षाद्भगवानवतीर्य पुरंदरः ।
मरुद्गणैर्वृतः पार्थं केशवं चेदमब्रवीत् ॥ ७ ॥
कृतं युवाभ्यां कर्मेदममरैरपि दुष्करम् ।
वरं वृणीतं तुष्टोऽस्मि दुर्लभं पुरुषेष्विह ॥ ८ ॥
वैशम्पायन उवाच—पार्थस्तु वरयामास शक्रादस्त्राणि सर्वशः ।
प्रदातुं तच्च शक्रस्तु कालं चक्रे महाद्युतिः ॥ ९ ॥

अग्निको जनाया था; उस पर उन्होंने तथास्तु करके मान लिया था। (१)

मैं उन अग्निकी बात, तुम्हारे माताकी धर्मनिष्ठा और तुम्हारे वीर्यको स्मरण कर पहिले यहां नहीं आया था। हे बेटो! तुम वेदमें प्रसिद्ध ऋषि हो; अग्निभी तुमको जानते हैं। श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि अनन्तर ऋषि मन्दपाल पुत्रोंको समझाय बुझाय पत्नीको साथ लेके वहांसे दूसरी ठौर गये। (२-४)

भगवान अग्निने इस प्रकार श्रीकृष्ण और अर्जुनकी सहायतासे जगत्‌के हितके निमित्त खाण्डव वनको जलाया। उस स्थानमें मेद और वसाकी नदी सोख कर परम परितृप्त होके अर्जुनके सामने प्रगट हुए। अनन्तर भगवान इन्द्र देवोंसे घेरे जाय आकाशमण्डलसे उतरकर अर्जुन और केशवसे बोले, कि जो कर्म देवतालोग भी सहजमें निमटा नहीं सकते, तुमने उसे पूरा किया है, अब मैं तुम पर प्रसन्न हूं, तुम वर मांगो; यद्यपि पुरुषके लिये वह दुर्लभ हो, तौभी तुमको दूंगा। (५-८)

वैशम्पायन बोले, अनन्तर पार्थने इन्द्रजीसे सब अस्त्र मांगे। अति द्युति-

यदा प्रसन्नो भगवान्महादेवो भविष्यति ।
तदा तुभ्यं प्रदास्यामि पाण्डवाऽस्त्राणि सर्वशः॥१०॥
अहमेव च तं कालं वेत्स्यामि कुरुनन्दन ।
तपसा महता चापि दास्यामि भवतोऽप्यहम्॥११॥
आग्नेयानि च सर्वाणि वायव्यानि च सर्वशः ।
मदीयानि च सर्वाणि ग्रहीष्यसि धनंजय॥ १२ ॥
वासुदेवोऽपि जग्राह प्रीतिं पार्थेन शाश्वतीम् ।
ददौ सुरपतिश्चैव वरं कृष्णाय धीमते ॥ १३ ॥
एवं दत्वा वरं ताभ्यां सह देवैर्मरुत्पतिः ।
हुताशनमनुज्ञाप्य जगाम त्रिदिवं प्रभुः ॥ १४ ॥
पावकश्च तदा दावं दग्ध्वा समृगपक्षिणम् ।
अहानि पञ्च चैकं च विरराम सुतर्पितः ॥ १५ ॥
जग्ध्वा मांसानि पीत्वा च मेदांसि रुधिराणि च ।
युक्तः परमया प्रीत्या तावुवाचाऽच्युतार्जुनौ॥१६ ॥
युवाभ्यां पुरुषाग्र्याभ्यां तर्पितोऽस्मि यथासुखम् ।
अनुजानामि वां वीरौ चरतं यत्र वाञ्छितम्॥१७॥
एवं तौ समनुज्ञातौ पावकेन महात्मना ।

मान देवराज उन्हें देनेका काल निश्चय कर बोले, कि हे पाण्डव! जब भगवान महादेव तुम पर प्रसन्न होंगे, तब मैं तुमको सब अस्त्र दे दूंगा। हे कुरुनन्दन! जब उन अस्त्रोंके देनेका काल आ पहुंचेगा तब मैं जान लूंगा; मैं तुम्हारी महातपस्यासे तुमको सब अग्न्यस्त्र, सब वायव्य अस्त्र और अपने दूसरे अस्त्रोंको भी दे दूंगा; तुम लेना।(९--१२)

अनन्तर वासुदेवने प्रार्थना की, कि अर्जुनसे उनका सदा प्रेम बना रहे। देवराजने सुबुद्धिमान श्रीकृष्णको वह वर दिया; प्रभु देवराज इस प्रकार श्रीकृष्ण और अर्जुनको वर देकर हुताशनको सम्भाषण करके देवलोकमें गये। भगवान पावक मृग और पक्षियोंके सहित खाण्डव वनको जलाके अति तृप्त होकर पन्दरह दिनके पीछे बुझ गये। वह रक्त, मेद और मांस खाय परम प्रसन्न होय श्रीकृष्ण और अर्जुनसे बोले, कि तुम दोनों वीर और पुरुषोंमें श्रेष्ठ हो, मैं तुमहीसे बडा सुख पाके तृप्त हुआ, अब आज्ञा करता हूं,कि तुम्हारी गति न रुकेगी, जहां चाहोगे, वहीं जा

अर्जुनो वासुदेवश्च दानवश्च मयस्तथा ॥ १८ ॥
परिक्रम्य ततः सर्वे त्रयोऽपि भरतर्षभ ।
रमणीये नदीकूले सहिताः समुपाविशन् ॥ १९ ॥ [८७०९]

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यामादिपर्वणि खाण्डवदाहपर्वणि
वरप्रदाने षट्त्रिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २३६ ॥
समाप्तमिदं खाण्डवदाहपर्व ॥ समाप्तं चादिपर्व ॥

——ऽऽ——

अतः परं सभापर्व भविष्यति ॥ तस्यायमाद्यः श्लोकः ॥

वैशम्पायन उवाच--ततोऽब्रवीन्मयः पार्थं वासुदेवस्य संनिधौ ।
प्राञ्जलिः श्लक्ष्णया वाचा पूजयित्वा पुनः पुनः ॥ १ ॥

सकोगे। (१३--१७)

हे भरतश्रेष्ठ ! महात्मा पावक उनको ऐसी आज्ञा देने पर अर्जुन वासुदेव और मयदानव यह तीन एकत्र होकर कुछ काल घूम फिरकर सुन्दर नदी तटमें जा बैठे। (१८--१९) [८७०९]

आदिपर्वमें दोसौ छत्तीस अध्याय और खाण्डवदाह पर्व समाप्त ।

आदिपर्व समाप्त।

—×—

महाभारत आदिपर्वकी अनुक्रमणिका।

❀

आदिपर्व समाप्त ।